॥ श्रीः ॥

जयकृष्णदास-कृष्णदास प्राच्यविद्या ग्रन्थमाला

५



॥ श्रीः ॥

कालिकापुराणम्

सम्पादक

श्रीविश्वनारायणशास्त्री, संसदसदस्यः

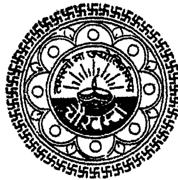
साहित्य-व्याकरण मीमांसाशास्त्रि-काव्यतीर्थः

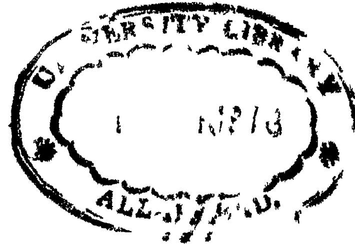
प्रस्तावना लेखक

आचार्य बलदेव उपाध्याय

भू० पू० सचालक, अनुसन्धान संस्थान

वाराणसेय संस्कृत विश्वविद्यालय, वाराणसी





चौखम्भा संस्कृत संस्थान

भारतीय संस्कृति एवं साहित्य के प्रकाशक तथा विक्रेता

पो० आ० चौखम्भा, पो० बा० नं० १३९

जड़ाव भवन के ३७/११६, गोपाल मन्दिर लेन

वाराणसी (भारत)

प्रकाशक चौखम्बा सस्कृत सीरीज आफिस, वाराणसी
मुद्रक • विद्याविलास प्रेस, वाराणसी
संस्करण • प्रथम, वि० संवत् २०२९
मूल्य • ३२-००

गोपाल मन्दिर लेन
पो० बा० ८, वाराणसी-१ (भारतवर्ष)
फोन : ६३१४५

प्रधान शाखा
चौखम्बा विद्याभवन
चौक, पो० बा० ६९, वाराणसी-१
फोन : ६३०७६

THE
JAIKRISHNADAS-KRISHNADAS PRACHYAVIDYA GRANTHAMAL
5
****

KĀLIKĀPURĀṆAM

Edited by
ŚRĪ BIŚWANĀRĀYAN ŚĀSTRĪ, M A
Sāhitya-vyākaran-Mīmānsā Shāstri-Kāvyatīrthā,
Member of Pārliāment (India)

PREFACE
By
ĀCĀRYA BALDEVA UPĀDHYĀYA
Ex-Director Research Institute
Varaṇaseya Sanskrit University, Varanasi

THE
CHOWKHAMBA SANSKRIT SERIES OFFICE
VARANASI-1 (India)
1972

The Chowkhamba Sanskrit Series Office
Gopal Mandir Lane
P O Chowkhamba, Post Box 8
Varanasi-1 (India)
1972
Phone 63145

First Edition
1972
Price Rs ~~35-00~~

Also can be had of
THE CHOWKHAMBA VIDYABHAWAN
Publishers and Oriental Book-Sellers
Chowk, Post Box 69, Varanasi-1 (India)
Phone · 63076

FOREWORD

The Kālikāpurāna is one of the important Upa-purānas. This Purāna is also known as Kālipurāna Kālikāpurāna is extensively quoted by the Smrtinibandha-Kāras of Assam, Bengal and Mithilā Internal and external evidences show that this work was composed in or around Kāmarūpa i. e Assam in tenth or eleventh century A D These aspects will be dealt with in a separate volume proposed to be published as "Studies in the Kālikāpurāna"

The present edition of Kālikāpurāna is based on the Calcutta edition of Pt Pañchānana Tarkaratna and two sets of manuscripts collected in Assam The two manuscripts are almost identical No major or substantial difference is noticed For preparing the text of the present edition the text of the two manuscripts are minutely compared with the text of the Calcutta edition The readings which appear to be more reasonable and correct are accepted and the variant readings are given at the foot note Variant readings due to scribing mistake are ignored Variation such as च, वा तु हि are also not mentioned

The two manuscripts differ from the printed edition in arrangement of chapters. Following chapter-division of the manuscripts the present edition is divided into 90 chapters instead of 91 or 92 as is found in some editions

While the printing was in progress I had the opportunity to compare the text of the present edition with a manuscript preserved in Gaikawad Oriental Library, Baroda. Photostat

copy of the work from India Library, London was also compared Variant reading, however, could not be inserted I propose to refer to all the important variant readings in the second volume "Studies in the Kālikāpurāna" where all aspects of this Purāna are dealt with

I am gratefull to Pt Monoranjana Shastri for his advice and to Prof Naliniranjan Sharma for his help in preparing the text of the work

I am also thankfull to the authority of M/S Chowkhamba Sanskrit Series Office, Varanasi for bringing out the work to the light

65 North Avenue
New Delhi
15-3-72

Biswanarayan Shastri

प्रस्तावना

(विवेचनिका)

पुराण के विस्तृत साहित्य मे कालिका पुराण की भूयसी ख्याति है। शक्ति-पूजा के महत्त्वपूर्ण विषय को आश्रित कर लिखे गये पुराणो मे इसका स्थान नितान्त महनीय तथा आदरणीय है। धर्मशास्त्र के निबन्धकारो ने इस पुराण से अनेक उद्धरण अपने ग्रन्थो के तत्तत् प्रसङ्ग पर बडे आदर, श्रद्धा तथा सत्कार के साथ उद्धृत कर अपने कथन की पुष्टि की है। ऐसे निबन्धकारो की एक लम्बी परम्परा है जिनमे मुख्य निबन्धकार तथा उनके निबन्ध इस प्रकार हैं—लक्ष्मीधर का कृत्यकल्पतरु, अपरार्क की याज्ञवल्क्यस्मृति-टीका, बल्लालसेन का दान-सागर, हेमाद्रि का चतुर्वर्ग-चिन्तामणि, श्रीदत्त उपाध्याय का समयप्रदीप एव आचारादर्श, चण्डेश्वर का कृत्यरत्नाकर तथा गृहस्थ-रत्नाकर, मदनपाल का मदनपारिजात, माधवाचार्य का कालनिर्णय और पाराशरस्मृति का भाष्य, विद्यापति की गगावाक्यावली, वाचस्पति मिश्र का द्वैतनिर्णय, कृत्यचिन्तामणि एव शुद्धिचिन्तामणि, मदनसिंहदेव का मदनरत्न-प्रदीप, रुद्रधर का शुद्धिविवेक, नरसिंह वाजपेयी का नित्याचारप्रदीप। इन निबन्धो मे कालिकापुराण के पद्य उद्धृत है, परन्तु डा० हाजरा के अनुसार वे वर्तमान पुराण मे उपलब्ध नही होते। इनसे भिन्न निबन्धो मे वर्तमान कालिका पुराण के श्लोक मिलते है। ऐसे निबन्धकारो के नाम हैं—शूलपाणि, विद्यापति (दुर्गाभक्तितरङ्गिणी मे) श्रीनाथ आचार्यचूडामणि, गोविन्दानन्द, रघुनन्दन, कृष्णानन्द आगमवागीश, गदाधर, मित्रमिश्र, अनन्त भट्ट, कमलाकर भट्ट, नन्द पण्डित। इन निबन्धकारो के उद्धरणो तथा नाम-निर्देशो से किसी भी आलोचक को कालिकापुराण के महत्त्व, प्रामाण्य तथा प्रसिद्धि के विषय मे किसी प्रकार के सन्देह करने की गुजाइश नही रहती।

कालिकापुराण के प्रस्तुत सस्करण मे ९० अध्याय है जिनके श्लोको की सख्या आठ सहस्र तीन सौ चौरानबे (८३९४) है। मेरी दृष्टि मे इस पुराण के वर्ण्य विषयो तथा वक्ता-श्रोता की भिन्नता के कारण दो प्रधान खण्ड है। आदि के ४५ अध्यायो को हम पूर्वार्द्ध कह सकते है एव अन्तिम ४५ अध्यायो को हम उत्तरार्ध मान सकते हैं। पूर्वार्ध मे कथानक का प्राधान्य है। विष्णु, शिव तथा महामाया की अनेक स्तुतियाँ है तथा शङ्कर एव सती का,

तदनन्तर शङ्कर तथा पार्वती का विश्रुत आख्यान प्राय प्रसिद्ध घटनाचक्र से सवलित यहाँ दिया गया है। कालिका-पुराण का उत्तरार्ध कामरूप मे प्रतिष्ठित कामाख्या देवी के अनुष्ठान तथा पूजा के विधिविधान का बडा ही विस्तृत विशद विवरण प्रस्तुत करता है। इसी प्रसङ्ग मे शक्ति के अन्यरूपो का भी विशेषत त्रिपुरा की उपासना की भी विस्तृत उपलब्धि होती है। इस पूजा के ऊपर तान्त्रिकता की पूरी छाप है। आधारभूत तन्त्रो के नाम भी यहाँ दिये गये हैं। तथ्य तो यह है कि कालिकापुराण का यह उत्तरार्ध पूर्वार्ध की अपेक्षा अधिक महत्त्वपूर्ण माना गया है और ऊपर निर्दिष्ट निबन्धकारो द्वारा इसी खण्ड के श्लोक बहुश उद्धृत किये गये है। दोनो खण्डो के स्वरूप की जानकारी के लिए अध्यायो के वर्ण्यविषय का प्रथमत परिचय देना समुचित है।

वर्ण्य विषय का विवरण

१ अध्याय—आरम्भ मे भगवान् विष्णु के पादपद्म की प्रणति के अनन्तर माया की स्तुति है। प्रष्टा ऋषिगण हैं तथा उत्तरदाता मार्कण्डेय है। ब्रह्मा की मानसी कन्या सन्ध्या की उत्पत्ति तथा रूप का वर्णन (श्लोक २७-३८) ब्रह्मा के मानस पुत्र कामदेव का वर्णन (श्लोक ४२-४५)।

२ अध्याय—कामदेव द्वारा ब्रह्मा के मोहन का वर्णन।

३ अध्याय—दक्ष की कन्या रति का जन्म तथा कामदेव द्वारा उसका ग्रहण, रति के सौन्दर्य का वर्णन (३९-४२)।

४ अध्याय—कामदेव के सहायतार्थ ब्रह्मा के नि श्वास से वसन्त का प्रादुर्भाव हुआ। वसन्त के रूप का वर्णन बडा सुन्दर है (श्लोक २५-२९)।

५ अध्याय—शिव को मोहने के लिये विष्णु-माया की स्तुति ब्रह्मा ने की। यह पर्याप्तरूपेण दार्शनिक तथा मनोरम है, (श्लोक १५-५०)। योगमाया का स्वरूप स्निग्ध अजन द्युति-वाला, चार भुजाओ से युक्त, सिंह पर आसीन, तलवार एक हाथ मे और नीलकमल दूसरे हाथ मे, केश बिल्कुल खुले हुए बतलाया गया है (श्लोक ५२)। योगमाया की पुन स्तुति (श्लोक५४-५९)। इन्ही का नाम 'काली' था। इन्हीं के पूजा-विधान के प्रतिपादक होने से यह पुराण कालीपुराण और कालिकापुराण दोनो कहलाता है।

६ अध्याय—शिव के गणो का रूपत वर्णन (श्लोक ३०-४५) मार शब्द की व्युत्पत्ति (श्लोक ४९-५०), योगमाया की महिमा का बहुत सुन्दर दार्शनिक वर्णन (श्लोक ५९-७२)।

७ अध्याय—काम द्वारा शिव को मोहने के लिये अपने मारगणो को उद्बुद्ध करना।

८ अध्याय—दक्ष द्वारा महामाया की स्तुति (श्लोक १२-२६) तपस्या द्वारा दक्ष ने महामाया को प्रसन्न किया और वे ही सती रूप मे उनकी पुत्री बनी (श्लोक ५९)।

९ अध्याय—सती द्वारा शिवप्राप्ति के लिए शिव की आराधना प्रतिमास मे क्रमश उल्लिखित है। ब्रह्मा ने सती को पत्नी के रूप मे ग्रहण करने के लिए शिव से प्रार्थना की। (हरानुनयन, श्लोक २३–४३)।

१० अध्याय—दक्ष से शिवजी की पत्नी ग्रहण करने के लिए ब्रह्मादिक देवो की प्रार्थना (श्लोक ५०–६१)।

११ अध्याय—त्रिदेवो—विष्णु, ब्रह्मा तथा शङ्कर—का एकत्व प्रतिपादित किया गया है। यह वर्णन कालिकापुराण के उदारभाव का सकेत करता है, इस प्रसङ्ग मे नारायण के ये वचन ध्यान देने योग्य हैं—

न ब्रह्मा भवतो भिन्नो न शम्भुर्ब्रह्मणस्तथा।
न चाह युवयोर्भिन्नोऽभिन्नत्व सनातनम् ॥ ५१ ॥
यज्ज्योतिरग्र्य स्वपरप्रकाश कूटस्थमव्यक्तमनन्तरूपम्।
नित्य च दीर्घादिविशेषणाद्यैर्हीन पर तच्च वय न भिन्ना ॥ ५६ ॥

१२ अध्याय—सृष्टि का विस्तार से वर्णन किया गया है (श्लोक ११–३७)। इसमे भी देवत्रय के एकत्व का विधान है। काल तथा माया का वर्णन (श्लोक ६०–६६)। उपनिषद् की यह प्रख्यात अद्वैत भावना यहाँ भी उल्लिखित है—"एकमेवाद्वय ब्रह्म नेह नानाऽस्ति किञ्चन" (श्लोक ६०) और इसी भावना के फलरूप तीन देवो मे अभेद है।

[यहाँ १३ से १८ अध्याय तक विषय की एक ही इकाई वर्णित है और वह है शिव तथा सती का चरित्र-वर्णन]।

१३ अध्याय—ब्रह्मा से क्रुद्ध होने वाले शङ्कर को विष्णु ने त्रिदेवो का एकत्व प्रतिपादित कर शान्त किया। एकत्वप्रतिपादक श्लोक बडे ही भावसम्पन्न हैं (श्लोक ४८–५०)।

१४ अध्याय—शिव और सती के विहार का विशद एव विस्तृत वर्णन (श्लोक १५–५५)।

१५ अध्याय—बडा ही कवित्वपूर्ण अध्याय है जिसमे वर्षाकाल का भव्य, रोचक तथा अलङ्कार–प्रचुर वर्णन है (श्लोक २–१७ श्लोक) हिमालय का भी वर्णन साहित्यिक सौन्दर्य से मण्डित है (श्लोक ३५–४८)।

१६ अध्याय—दक्ष के यज्ञ मे शिव के भाग को न देखकर पति के घोर अपमान से सती का शरीर जल उठा और होमाग्नि मे उसने अपने को भस्म

कर दिया। इसपर सती की सखी विजया का क्रन्दन अतीव करुणोत्पादक है। वियोग का वर्णन सीधे-सादे शब्दो मे अतीव प्रभावशाली है (श्लोक ५३–६८)।

१७ अध्याय—दक्ष के यज्ञ का शिवगुणो द्वारा विध्वस (श्लोक ३०–४८)।

१८ अध्याय—सती के दाह की बात सुन कर शङ्कर अत्यन्त दुखित होकर रोने लगे। उनके आँसुओ को रोकने के लिए देवो ने शनैश्चर की स्तुति की (श्लोक १३–२०) शनैश्चर के सन्तत उद्योग करने पर भी शिव के नेत्रो की अश्रु-धारा रुकी नही। पर्वत को विदीर्ण कर वह अश्रुधारा समुद्र मे गिर कर कुछ शान्त हुई। इसलिये पृथ्वी पर आते-आते धारा शान्त हो गई और पृथ्वी की हानि नही पहुँचा सकी। सती के शव को शिव अपने कन्धे पर रखकर उन्मत्त की तरह चारो ओर घूमने लगे। अन्य उपाय न देखकर ब्रह्मा, विष्णु और शनैश्चर सती के शव के भीतर घुस गये और उसे काट-काट गिराने लगे। सती के अङ्गो के गिरने के स्थानो पर तीर्थ की प्रतिष्ठा हुई (श्लोक ४०–५०)। यह अध्याय भौगोलिक तथा धार्मिक दृष्टि से महत्त्वपूर्ण है।

देवीकूट पर सबसे पहिले सती के दोनो पैर गिरे,

उड्डीयान पर सती के दोनो जघा गिरे,

कामरूप मे कामगिरि पर सती का योनिमण्डल गिरा (कामरूपे कामगिरौ न्यपतद् योनिमण्डलम्),

कामगिरि की भूमि पर सती का नाभि–मण्डल गिरा,

जालन्धर मे सुवर्णहार से भूषित स्तन–युगल गिरा,

कामरूप से आगे पूर्णगिरि पर सती के कन्धे, ग्रीवा तथा शिर गिरे।

सती के शव को लेकर शिव जिस प्रदेश मे घूमते रहे, पूर्वप्रान्त मे वही याज्ञिक प्रदेश बन गया। सती के अन्य अग काटकर आकाश-गगा मे फेक दिये गये। सती के अग गिरने वाले स्थानो पर शिव लिंग के रूप मे विद्यमान रहने लगे। सती से उनका अत्यधिक जो नैसर्गिक अनुराग था। महामाया भिन्न-भिन्न नामो से उन स्थानो पर विश्रुत हुइ (श्लोक ४८–५०) —

देवीकूट पर महाभागा ,
उड्डीयान पर कात्यायनी ,
कामरूप पर कामाख्या ,
पूर्णगिरि पर पूर्णेश्वरी ,
जालन्धर गिरि पर चण्डी ,

कामरूप के पूर्वी प्रान्त मे दिक्करवासिनी तथा ललितकान्ता नाम से।

सती का सिर जहाँ गिरा, वही पर्वत पर शकर बैठ गये और देवो ने उनकी

प्रशस्त स्तुनि की (श्लोक ५५–६७) ब्रह्मा ने भी उन से प्रार्थना की (श्लोक ७०–८१)।

१९–२३ अध्याय—शिव को शान्त करने की इच्छा से ब्रह्मा उनको हिमालय के पश्चिम भाग मे स्थित शिप्रसरोवर पर ले गये जहाँ से शिप्रा नदी निकलती है।

[यहाँ तीन अवान्तर कथाये दी गई है—(१) शिप्रा नदी के उद्गम की कथा, (२) अरुन्धती का जन्म जो ब्रह्मा की मानसी कन्या सन्ध्या थी—(अध्याय २०) तीव्र तपस्या और वसिष्ठ के साथ विवाह (अध्याय २३), (३) दक्ष ने चन्द्रमा को शाप दिया जिससे वे यक्ष्मा से पीडित हो गये। ब्रह्मा ने उन्हे इस रोग से मुक्त कराया—देवगण जहाँ चन्द्रमा को बचाने के लिए भूतल पर आये, वही सीता नामक नदी निकली जो बृहत् लोहित–सरोवर मे गिर कर बाहर बहने लगी, तब उसका नाम चन्द्रभागा हुआ (अध्याय २०–२१)—चन्द्रभागा की उत्पत्ति की कथा यहाँ दी गई है।]

२४ अध्याय—ब्रह्मा ने योगमाया की प्रशस्त स्तुति की (श्लोक ९–२७) कि शिव के हृदय मे अपना आवास छोड दे। विष्णु ने वहाँ प्रवेश कर शिव को शान्त किया, तब शिव एक हजार वर्ष तक तपस्या मे लीन हो गये। (श्लोक ७०–८०)

[अध्याय २४ से लेकर ४० तक अवान्तर कथा—२४ वे अध्याय मे सृष्टि का वर्णन, २५ अध्याय मे वराह की उत्पत्ति, २६—२९ अध्याय मे सृष्टि का वर्णन तथा छोटी कथाये, ३० अध्याय मे गोविन्द की सुन्दर स्तुति (श्लोक ४–१७) देवो ने विष्णु से वराह के द्वारा किये गये सकट से स्वर्ग के रक्षण के निमित्त प्रार्थना की। शिव ने वराह का रूप छोड कर शरभ का रूप धारण कर लिया, तब वराह को शरभ ने पराजित कर दिया।

३१ अध्याय—वराह शरीर से यज्ञ के विभिन्न अगो के उदय की रहस्यमयी कथा। इसीलिए वराह यज्ञवराह के नाम से प्रख्यात है।[1]

---

१ यज्ञवराह का वर्णन निम्न लिखित पुराणो मे उपलब्ध होता है—(१) मत्स्य २४८।६७–७२, (२) वायु ६।१६–२३, (३) ब्रह्माण्ड का प्रक्रियापाद ५।९–२३, (४) ब्रह्मपुराण २१३।३३–३७, (५) हरिवश, (६) पद्म–सृष्टिखण्ड १६।५५–६१, (७) विष्णुधर्मोत्तर १।२, ३।८, (८) विष्णुस्मृति १।३–९, (९) विष्णुसहस्रनाम का शाकरभाष्य (यज्ञाग शब्द की व्याख्या पर, श्लोक ११७)। इन पुराणो मे एक ही प्रकार के श्लोक हैं। इन से भिन्न पाठ मिलता है विष्णुपुराण १।४।३२–३५, भागवतपुराण ३।१३। ३५–३८, अहिर्बुध्न्यसहिता ३७।४०–४८। यज्ञवराह के इस रूप की आध्यात्मिक व्याख्या के लिए द्रष्टव्य पुराण, पञ्चम खण्ड पृ० १९९–२३६ (वाराणसी : रामनगरदुर्ग, का शराजन्यास द्वारा प्रकाशित, १९६३)।

३२ अध्याय—सृष्टि के प्रसग मे मत्स्यावतार का सक्षेप मे कथन।

३३ अध्याय—अकाल मे प्रलय होने का वणन।

३४ अध्याय—अकाल प्रलय के अनन्तर पदार्थों की सृष्टि।

३५ अध्याय—शिव ने वराह के उपद्रवो से जगत् की रक्षाकर अपना शरभ रूप छोड दिया।

३६ से ४० अध्याय तक पाँच अध्यायो की एक इकाई है—जिसमे नरक की कथा विस्तार से दी गई है। नरक पृथ्वी और वराह का पुत्र था। उसके जन्म की कथा ३७ अध्याय मे, अभिषेक की ३८ अध्याय मे, उसकी तीव्र तपस्या की ३९ अध्याय मे तथा उसके राज्य एव चरित का विस्तार से वर्णन ४० अध्याय मे किया गया है।]

४१ से ४५ अध्याय तक पाँच अध्यायो मे शिव-पार्वती का प्रसिद्ध आख्यान वर्णित है। ४१ अध्याय मे हिमालय की पुत्री के रूप मे पार्वती का जन्म होता है तथा नारद जी वहाँ आकर उसके भावी पति के विषय मे कहते हैं। ४२ अध्याय मे शिव की समाधि भग करने के लिए कामदेव का प्रयाण तथा उसकी सहायता के रूप मे वसन्त का उदय होता है। वसन्त का वर्णन (श्लोक १३६–१४०)। ४३ अध्याय मे मदनदहन के अनन्तर हताश होकर काली (पार्वती) हिमालय पर घोर तपस्या करती है। शिव परीक्षा के लिए जाते हैं आदि प्रख्यात कथा ४४—४५ अध्याय मे दी गई है।

यहाँ कालिका पुराण का पूर्वार्ध समाप्त होता है।

४६ से ९० अध्याय तक कालिकापुराण का उत्तरार्ध

इस खण्ड के प्राश्निक है सगर और उत्तरदाता है और्व और इन्ही दोनो के प्रश्नोत्तर रूप मे शक्तिपूजा से सम्बद्ध नाना विषयो का विराट वर्णन प्रस्तुत होता है और इसी तान्त्रिक पूजा के वर्णन तथा रहस्योद्घाटन के लिए कालिकापुराण की चरितार्थता है।

४६ अध्याय—भैरव तथा वेताल के शिवपुत्र के रूप मे उत्पन्न होने की कथा का आरम्भ है। शिव की स्तुति (श्लोक २९–४०)

४७—५० अध्याय शिव पौष्यराज के पुत्र चन्द्रशेखर के रूप मे तथा पार्वती तारावती के रूप मे उत्पन्न होते हैं। इन दोनो के विवाह को कथा यहाँ दी गई है। कपोत मुनि का प्रसग यहाँ आता है (४९ अध्याय) चन्द्रशेखर तथा तारावती के विलास का स्थान करवीरपुर बताया गया है (५०।१५१) मेरी दृष्टि मे यह करवीरपुर दक्षिण महाराष्ट्र का कोल्हापुर है जो महालक्ष्मी का प्रख्यात क्षेत्र आज भी माना जाता है और जहाँ महालक्ष्मी की पूजा विशेष रूप से प्रचलित है।

५१ अध्याय—वसिष्ठ द्वारा शिव के पूजन का विधान वर्णित है पञ्चवक्त्र शिव के पूजन के पाँच प्रकार के मन्त्रो का वर्णन तथा शिव का ध्यान निर्दिष्ट है (श्लोक १३७–१४८)। मन्त्रो के नाम है—सम्मद, सन्दोह, नाद, गौरव तथा प्रासाद। इन नामो का अर्थ वर्णित है (श्लोक १३१–१३५)। शिव के पाँच मुख हैं—(१) सद्योजात पश्चिम ओर वाला शुक्ल वर्ण, (२) वामदेव (उत्तर तथा पीतपर्ण), (३) अघोर (दक्षिण तथा नील वर्ण), (४) तत्पुरुष (पूर्व तथा रक्तवर्ण) तथा (५) ईशान् (मध्यस्थित तथा श्यामल वर्ण)। शिव के पूजन का विधान यहाँ वर्णित है। वेताल तथा भैरव द्वारा पञ्चवक्त्र की सुन्दर स्तुति (श्लोक १७९–१९७)।

५२ से ५६ अध्याय तक पाँच अध्यायो मे वर्णित पूजाविधान वैष्णवी तन्त्र कहा गया है। सगर के प्रश्न करने पर और्व ने इस पूजापद्धति का वर्णन किया है जो अष्टादश पटलो द्वारा निर्णीत बतलाया गया है।[1] ५२ अध्याय की पुष्पिका है—महामायाकल्पेऽष्टादशपटले। वैष्णवी देवी का अष्टाक्षर मन्त्र है—ओ ह्री श्री वेष्णव्यै नम । पूजाविधान का प्रकार इस प्रकार सक्षेपमे है—प्रथम किसी नदी या तीर्थ मे स्नान करना चाहिये। आसन ग्रहण करने के बाद जल से भूमि का अभ्युक्षण कर भूतो का अपसारण करे। हाथ से दिग्बन्धन करे। तदनन्तर रक्त वर्ण के मण्डल की रचना करे। अर्घपात्र मे ओ ह्रीं ह्रौ मन्त्र के द्वारा गन्ध, पुष्प तथा जल डाले। मन्त्रो के द्वारा अगन्यास और करन्यास करे—पूजा के उपकरणो का शोधन, कामेश्वरी, गुप्तदुर्गा, विन्ध्यकन्दर-वासिनी कोटेश्वरी, भुवनेश्वरी आदि ६४ योगिनियो का मध्य मे पूजन (अध्याय ५४ श्लोक ३५–३९) इसके अनन्तर शैलपुत्री, चण्डघण्टा, स्कन्दमाता, कालिरात्रि आदि अष्ट योगिनी का पूजन आठो दिशाओ मे करने का विधान (अध्याय ५४। श्लोक ४३-४४), बलिदान जिसके पक्षी, महिष, छाग आदि नाना पशुओ का नाम निर्दिष्ट है (अध्याय ५५ श्लोक २–५) तथा नर–बलिदान के लिए उल्लिखित है। माला तथा जप का विधान, माला-जप की गणना करने का निर्देश (असख्यात च यज् जप्त तस्य तन्निष्फल भवेत्—५५।५७); सर्वकर्मो के साधन मे समर्थ मन्त्र का जप (जो सप्तशती का प्रसिद्ध मन्त्र है)—

सर्वमङ्गलमाङ्गल्ये शिवे सर्वार्थसाधिके।
शरण्ये त्र्यम्बके देवि नारायणि नमोऽस्तु ते ॥ —सप्तशती ११।१०

योनिमुद्रा का प्रदर्शन (५५।६५)—ये पूजा के क्रमिक अग बतलाये गये हैं।

---

१ यदष्टादशभि. पश्चात् पटलैश्च स भैरव ।
सनिर्णयविधि कल्प निबबन्ध शिवामृते ॥ —कालिकपु० ५२।५

५६ अध्याय—देवी का कवच वर्णित है जिसके द्वारा साधक अपने शरीर के अगो का तथा मन का रक्षण विधिवत् सम्पन्न करता है।

विशेष रूप से ध्यातव्य है—५२ वे अध्याय का विषय अष्टादशपटल वाले 'महामायाकल्प' मे वर्णित बताया गया है और ५६ अध्याय तक पञ्चाध्यायी का विषय 'महामायाकल्प' के अनुसार निर्दिष्ट किया गया है, क्योकि इन अध्यायो की पुष्पिका मे यही नाम सर्वत्र निर्दिष्ट हुआ है। अत इन अध्यायो की पूजा विधि 'महामायाकल्प' के अनुसार है।

५७ अध्याय—यहाँ पूजनविधि उत्तरतन्त्र के अनुसार है। पूजा का प्रकार बडे विस्तार से वर्णित है। इसमे कामराज मन्त्र तथा वाग्भव बीज का वर्णन है।

५८ से ६१ अध्याय देवी तन्त्र का कथन—देवी की विशेष तिथियो पर नाना विशिष्ट द्रव्यो से पूजन—५८ अध्याय कामाख्या देवी के विषय मे कहता है कि वही मूलमूर्ति, महामाया, योगनिद्रा है तथा प्रथम प्रतिपादित वैष्णवी तन्त्र मन्त्र उन्ही का है (५८।४८)। कामाख्या ही प्रधान देवी है जो वास्तव मे एक रूप ही है, परन्तु विभिन्न कार्यों के सम्पादन के निमित्त नाना रूपो को धारण करती हैं—

> एकैव तु महामाया कार्यार्थं भिन्नता गता ॥ ५१ ॥
> कामाख्या तु महामाया मूलमूर्ति प्रगीयते।
> पीठैर्भिन्नाह्वया सा तु महामाया प्रगीयते ॥ ५२ ॥
>
> —कालिका पुराण, अध्याय ५८।

कामाख्या के विशिष्ट स्वरूपो का वर्णन (श्लोक ५६—७१)

५९ अध्याय—चण्डिका का पूजा विधान, देवी के रूपका वर्णन (श्लोक १२-२१)। उग्रचण्डा, प्रचण्डा, चण्डोग्रा, चण्डनायिका, चण्डा, चण्डवती, चामुण्डा तथा चण्डिका इन आठ शक्तियो से परिवृत देवी का पूजन अभीष्ट है (श्लोक २२—२३)।

६० अध्याय—दुर्गातन्त्र के अनुसार महानवमी तिथिको दुर्गोत्सव का विधान—महिषमर्दिनी के पूजन का अन्य तिथियो मे विधान और इसी प्रसग मे महिषासुरवध की कथा निर्दिष्ट है।

६१ अध्याय—इस अध्याय मे अष्टादश-भुजा उग्रचण्डा, षोडश-भुजा भद्रकाली तथा दशभुजा दुर्गा के शारदीय उत्सव का वर्णन विस्तार से किया गया है। अष्टमी तथा नवमी मे पूजन कर दशमी मे विसर्जन करना चाहिये। दशमी को नाना प्रकार के वाद्य, गायन, नर्तन आदि के द्वारा उत्सव मनाना चाहिये। (श्लोक १९-२२) इस अवसर पर अश्लील गायनो की छूट दी गई है। अन्य देवियो के भी पूजाप्रकार का विवरण यहाँ विस्तार से दिया गया है।

६२ अध्याय—नीलगिरि पर्वत पर स्थित कामाख्या देवी की पूजा-अर्चा का विशेष विधान विस्तार से किया गया है। अन्त मे उनकी दिव्य स्तुति है (श्लोक १३८–१४४) इस अध्याय की पुष्पिका मे इसे 'कामाख्यापूजातन्त्र' कहा गया है।

६३ अध्याय—त्रिपुरातन्त्र के अनुसार त्रिपुरा का पूजन—देवी के पूजन से पूर्व बटुक आदि भैरवो की पूजा बताई गई है। शक्तियो तथा इतर देवियो के साथ प्रधानभूता देवी त्रिपुरा की पूजा विशेषरूपेण वर्णित है।

६४ अध्याय—कामेश्वरीतन्त्र—कामेश्वरी के पूजनप्रकार वर्णित है। षट्कोण रक्तवर्ण मण्डल की रचना जिसके उत्तर मे जालन्धर पीठ, पश्चिम मे ओड्रपीठ, दक्षिण मे कामरूप पीठ को अंकित करना चाहिये (श्लोक ११)। देवी का आवाहन, पूजन षोडशोपचारो से, अन्त मे विसर्जन।

६५ अध्याय—शारदातन्त्र—सिंह पर आसीन तथा दशभुजाओ को धारण करने वाली देवी शारदा है (रूपमस्या पुरा प्रोक्त सिंहस्थ दशबाहुभि— (६५–८)। शारदा के विशेष पूजन नवरात्र मे होता है जिसका यहा पूरा विस्तृत वर्णन किया गया है।

६६ अध्याय—इस अध्याय मे (क) नमस्कार तथा (ख) मुद्रा का यथा-विधि विशद वर्णन है। सात प्रकारो के नमस्कारो के नाम और लक्षण—त्रिकोण (श्लोक १०), षट्कोण (श्लोक १२) अर्धचन्द्र (श्लोक १३), प्रदक्षिण (श्लोक १४), दण्ड (श्लोक १५), अष्टाङ्ग (श्लोक १७), तथा उग्र (श्लोक १८–१९) इनमे उग्र सबसे श्रेष्ठ तथा विष्णु को प्रसन्न करने वाला कहा गया है (योऽसावुग्रो नमस्कार प्रीतिद सतत हरे (श्लोक २३) (ख) मुद्रा—ब्रह्मा के द्वारा १०८ मुद्राओ की उत्पत्ति बताई गई है जिनमे ५५ मुद्रायें ही देवो के चिन्तन, योग, ध्यान, जप तथा विसर्जन मे उपादेय मानी गई है। उनका नाम (श्लोक २५–३१) तथा उनका लक्षण (श्लोक ३६–१२०) मुद्रा के विना जप, प्राणयाम आदि सब निष्फल होते है—

मुद्रा विना तु यज्जप्य प्राणायाम. सुरार्चनम्।
योगो ध्यानासने वापि निष्फलानि च भैरव ॥ —का० पु० ५६।३५

६७ अध्याय—बलिदान का विशद विवेचन। बलि देने के योग्य पक्षि पशुओ के नाम—सब पक्षी, कच्छप, ग्राह, मत्स्य, महिष, गोधिका, गौ, छाग, रुरु, शूकर, खड्ग (गैंडा), मृग, शरभ, शार्दूल। बलि के लिए मनुष्य का तथा स्वगात्र-रुधिर को बलि देने का उल्लेख है। इन पशुओ की बलि का फल।

नर-मास की बलि देवी तथा कामाख्या दोनों को अत्यन्त प्रीतिकारक[1] होता है। बलि के शीर्ष के रुधिरदान का विधान है। कहा गया है कि मन्त्रपूत रक्त सद्य अमृत बन जाता है (मन्त्रपूत शोणित तु पीयूष जायते सदा, श्लोक २०)। क्षत्रिय राजा के लिए बलिदान के विशेष नियम है—मनुष्य के रक्त को राजा कभी पत्ते मे रख न देवे, बल्कि उसे धातु के पात्र मे अथवा मिट्टी के बने बरतन मे ही अर्पण करे। अश्वमेध को छोडकर राजा अश्व की बलि न करे (श्लोक ४५–४६) नरबलि क्षत्रिय के लिए विहित है, ब्राह्मण के लिए नही। ब्राह्मण महादेवी के निमित्त कभी मद्य न देवे। सिह, व्याघ्र तथा मनुष्य के बलि देने पर उसे नरक प्राप्त होता है। परन्तु जहाँ इनके बलि का विधान है वहाँ इनका प्रतिरूप बनाना चाहिये। बलि–पशु की प्रतिमा घी, अपूप (पूआ) अथवा यव-चूर्ण की बनानी चाहिये और उसे मन्त्रो से सस्कृत कर तलवार (चन्द्रहास) से काटना चाहिये।[2]

इस सामान्य बलिविधान के अनन्तर विशेष बलिदान विशिष्ट देव या देवी के लिए देने का बिधान है, जैसे भैरवदेव या भैरवी देवी को भैंसे की बलि दी जानी चाहिए और इसके लिए उपयुक्त मन्त्र का निर्देश है। (श्लोक ५७–५८) खड्ग (गैंडा), कृष्णसार, शरभ आदि पशुओ की बलि के विशेष नियम तथा मन्त्र हैं। बलिदान का विषय यहाँ बडे विस्तार तथा वैशद्य के साथ दो सौ श्लोको मे प्रतिपादित है।

६८ से ७१ अध्याय तक चार अध्यायो मे षोडश उपचारों का विस्तृत वर्णन है।

६८ अध्याय—भिन्न-भिन्न वृक्षो के काष्ठ के आसन बनाये जाते हैं जिस पर देवी की प्रतिमा प्रतिष्ठित की जाती है। पशुओ के (जिनमे ९ प्रकार के मृग सम्मिलित किये गये हैं) चर्म से भी आसन बनाने का विधान है (श्लोक १८)। आसन की लम्बाई-चौडाई का वर्णन। धातु से बने आसन उत्तम माने गये है, परन्तु लोहा, कासा तथा सीसे के आसन न होकर शिला, मणि तथा रत्न के

---

१ नरेण बलिना देवी सहस्र परिवत्सरान्
विधिदत्तेन चाप्नोति तृप्ति लक्ष त्रिभिर्नरै ॥ १८ ॥
नारेणेवाथ मांसेन त्रिसहस्र च वत्सरान्
तृप्तिमाप्नोति कामाख्या भैरवी मम रूपधृक् ॥ १९ ॥

२ कृत्वा घृतमय व्याघ्र नर सिह च भैरव ॥ ५३ ॥
अथवाऽपूपविकृत यवक्षोदमय च वा।
घातयेत् चन्द्रहासेन तेन मन्त्रेण सस्कृतम् ॥ ५४ ॥ का० पु०—अध्याय ६७

बने होने चाहिये।[1] इस निषेध के कारण इन धातुओ की हीनता है। ये तीनो धातु अधम कोटि के माने जाते है। अर्घपात्र का भी विधान बतलाया गया है।

६९ अध्याय—चार प्रकार के वस्त्र (कपास, ऊनी, बल्कल तथा रेशमी) के नाम नियत हैं, निषिद्ध वस्त्रो का भी निर्देश है (श्लोक २–४) परिधान सिले हुये वस्त्रो से बनाये जाते है, ४० प्रकार के आभूषण तथा विभिन्न प्रकार के गन्ध तथा धूप का विधान, पुष्पो का चयन, देवताविशेष के लिए विशिष्ट पुष्पो का उपहार दिया जाता है।[2] उनका यहाँ उल्लेख है। दीपक की तैयारी–दीपवर्ति बनाने के लिए विशिष्ट कपडे का उल्लेख है। दीपक के प्रकार– ध्यान देने की बात है कि जिस दीपक से चार अगुल की दूरी पर गरमी का अनुभव हो, तो वह दीप नही होता,[3] उसे कभी पूजा मे प्रयुक्त न करना चाहिए। यक्षधूप, वृक्षधूप आदि नाना प्रकार के धूप प्रकार (श्लोक १४२–१४३) देवता के प्रीत्यर्थं षड्विध अजन का उपदेश (सौवीर, यामुन, तुत्थ, मयूरयामुन, दुर्विका तथा मेघनील श्लो० १५५–१५६)

७० अध्याय—नैवेद्य का विधान। फलो के विभिन्न प्रकार देवताप्रीत्यथ, अन्य वस्तुओ का नैवेद्य के लिए निर्देश, भोज्य द्रव्यो का उल्लेख। खिचडी के नैवेद्य चढाने से अतुल सौभाग्य पाने का उल्लेख है (कृशरान्नप्रदानेन सौभाग्यमतुल लभेत्। श्लोक ३४) नाना प्रकार के नैवेद्यार्थं शाको के नाम निर्दिष्ट है (श्लोक ४७–४९),

७१ अध्याय—परिक्रमा तथा नमस्कार का विवरण। इस विधान के साथ षोडश उपचार का वर्णन समाप्त होता है।

७२ अध्याय—कामाख्या देवी की महिमा का वर्णन। नील पर्वत पर स्थित देवी गरुडगामी विष्णु को समुद्रतल पर फेक देती है और उसके पूजन से ही विष्णु का सकट छूटता है। कामाख्या का कवच (श्लोक ४७–६५) यहाँ कामाख्या के ध्यानविषयक रमणीय पद्य हैं (श्लोक ६३–६५)

७३ अध्याय—मातृकान्यास का वर्णन।

---

१ आयस वर्जयित्वा तु कास्य सीसकमेव वा।
शिलामय मणिमय तथा रत्नमय मतम्॥—वही श्लोक २०

२ इसके लिए द्रष्टव्य पुष्पचिन्तामणि (प्रकाशक राजकीय पुस्तकालय, क.ठमाण्डू, नेपाल)

३ लभ्यते यस्य तापस्तु दीपस्य चतुरंगुलात्।
न स दीप इति ख्यातो ह्योघवह्निस्तु स श्रुत.॥
—कालिकापुराण ६९।१२०

७४ अध्याय—नाना देवो के मन्त्र, यन्त्र, जप तथा ध्यान का वर्णन बडे विस्तार से दिया गया है (२३६ श्लोकात्मक अध्याय)

७५ अध्याय—आरम्भ मे पुरश्चरण का विधान (श्लोक १–२६) तथा त्रिपुराकवच का विस्तार से निर्देश (श्लोक ३२–६६)। त्रिपुरा ही भैरवी नाम्ना प्रसिद्ध है। अत 'त्रिपुराभैरवी' इन्हीका अपर नाम है। स्तुति भी बडी सुन्दर है—

आद्या मध्या भाविनी नीतियुक्ता सम्यग्ज्ञानज्ञेयरूपा परा वा।
आदावन्ते मध्यभागे च तारा पायाद् देवी त्रैपुरी भैरवी वा ॥ ६४ ॥

अनन्तर त्रिपुरा के पूजन का विधान बतलाया गया है।

७६ अध्याय—मन्त्रो द्वारा सिद्धि का वर्णन। मन्त्रो के चार प्रकार होते है—सिद्ध, सुसिद्ध, साध्य तथा शात्रव। वसिष्ठ के उपदेश से वेताल तथा भैरव ने महामाया कामाख्या का पूजन किया और शिव के गणो का पदप्राप्त किया। इस अध्याय मे शिव की गीतिमयी स्तुति अत्यन्त सरस तथा साहित्यिक सौन्दर्य से सम्पन्न है।

७७ से ८० अध्याय—इन चार अध्यायो में कामरूप-मण्डल का बडा ही विस्तृत भौगोलिक वर्णन है। वहाँ के नदी, पर्वत, कुण्डो का तथा वहाँ स्नान करने के माहात्म्य का प्रतिपादन किया गया है। ८० अध्याय मे नाना देवो के पूजाविधान के अवसर पर तत्तत् मन्त्रो का बाहुल्येन निर्देश है। वासुदेव की पूजा विस्तार से दी गई है जहाँ नारद द्वारा प्रोक्त 'पाचरात्र' से मन्त्रो के ग्रहण का उपदेश दिया गया है (पञ्चरात्रोदिते मार्गे नरदेन यथोदित, ८०।१४०) फलत उस युग मे वासुदेव-पूजन के लिए 'नारदपञ्चरात्र' वैष्णवो का सर्वाधिक मान्य ग्रन्थ प्रतीत होता है।

८१ अध्याय—वसिष्ठमुनि के शाप के कारण कामरूप मे वामाचार के प्रचार का उल्लेख किया गया है। यह महत्त्वपूर्ण कथा इस प्रकार है—एक बार वसिष्ठ ने शिव से कामरूप को यम के अधिकार मे रखने की प्रार्थना की। तब शिव ने उग्रतारा तथा अपने गणो को समस्त लोगो को और चारो वर्णों के जनो को भी वहाँ से निकालने का आदेश दिया। आदेश के पालन के बाद ये लोग सन्ध्याचल पर रहने वाले वसिष्ठ को भी वहाँ से निकालने लगे। क्रुद्ध वसिष्ठ ने शाप दिया[1] कि हे उग्रतारा, तुमने उन्हे वामभाग से

---

१ यस्मादह धृतो वामे त्वयोत्सारयितु मुनि।
तस्मात् त्व वाम्यभावेन पूज्या भव समन्त्रिका ॥
भ्रमन्ति म्लेच्छवद् यस्मात् गणाना मन्दबुद्धय।
भवन्तु म्लेच्छास्तस्माद् वै भवन्तो कामरूपके ॥

खदेड ने का प्रयत्न किया था, इसलिये तुम्हारी पूजा वामभाव से होगी। शिव के गण म्लेच्छ हो जायँगे और शिव स्वय म्लेच्छप्रिय बन कर अस्थि और भस्म धारण करेंगे और पूरा कामरूप-मण्डल म्लेच्छो से व्याप्त हो जायेगा। न विष्णु का वहाँ आगमन न होगा, और न उनके आगम का प्रचलन होगा—आगम विरल हो जायेंगे। इस विरल कामरूपागम को जो कोई जानेगा, वही समय आने पर सम्पूर्ण फल को प्राप्त करेगा। वसिष्ठ के इसी शाप के कारण मूलत विशुद्ध वैष्णवभावापन्न कामरूप मे वामाचार का प्रचण्ड प्रचार सम्पन्न हुआ।

समग्र काम रूप जलप्लवित हो गया और ब्रह्मा का पुत्र लौहित्य नामक नद ही एकमात्र जलस्रोत रहा जो दक्षिण समुद्र मे जाकर गिरता है।

८२ अध्याय—लौहित्य (अर्थात् ब्रह्मपुत्र) नद की उत्पत्ति की कथा यहाँ वर्णित है। शन्तनु की पत्नी अमोघा थी। शन्तनु कैलास के समीपस्थ लोहित सरोवर के किनारे रहते थे। अमोघा की नासिका से जलधारा प्रवाहित हुई जिसके एक बालक वर्तमान था। उसके रूप का वर्णन इस प्रकार है—

नीलवासा किरीटधृक् ॥ ३३ ॥
रत्नमालासमायुक्तो रत्नगौरश्च ब्रह्मवत्।
चतुर्भुज पद्मविद्याध्वजशक्तिधरस्तथा ॥ ३४ ॥
शिशुमारशिर स्थश्च तुल्यकायो जलोत्करै ।

शन्तनु ने इस लौहित्यनामा पुत्र को चार पर्वतो के बीच मे रख दिया—कैलास उत्तर मे, गन्धमादन दक्षिण मे, जारुधि पश्चिम मे तथा सवर्तक पूरब मे। कालान्तर मे वह बढते बढते पञ्च योजन तक फैल गया और दूसरा समुद्र प्रतीत होने लगा (श्लोक ४०)। उस ब्रह्मकुण्ड पर परशुराम अपने मातृवध के दोष के निवारणार्थ कालान्तर मे आये।

८३ अध्याय—परशुराम के चरित का विस्तृत वर्णन।

८४ अध्याय—सदाचार का वर्णन। साधारण नीति के वर्णन के अनन्तर नृपधर्म का विस्तार से कथन।

तस्मात् म्लेच्छप्रियो भूयात् शकरश्चास्थिभस्मधृक् ॥
एतत्तु कामरूपाख्य म्लेच्छैर्गुप्त मदत्वरम्।
स्वय विष्णुर्न चायाति यावत् स्थानमिद पुन ॥
विरलाश्चागमा सन्तु य एतत्प्रतिपादका ।
विरल यस्तु जानाति कामरूपागम बुध ॥
स एव प्राप्ते कालेऽपि सम्पूर्णफलमास्यति ॥

—कालिकापुराण ८१।१९-२४

८५ अध्याय—राजा के कर्तव्य का वर्णन। इसी प्रसग मे राजा के द्वारा करणीय उत्सवो का विवरण है—शरत्काल मे शारद नवरात्र की महाष्टमी मे दुर्गापूजन, दशमी मे नीराजन, पौष मास की तृतीया तिथि को पुष्याभिषेचन, श्री पञ्चमी को भी यज्ञ, ज्येष्ठ मास मे दशहरा पर्व तथा भाद्रपद द्वादशी को इन्द्रध्वज महोत्सव (श्लोक ९–१२)। इस अध्याय के शेषभाग मे नीराजन विधि का वर्णन विस्तार से है (श्लोक १८–६०) तथा शत्रुबलि का भी सकेत है।

८६ अध्याय—पुष्यस्नान की विधि। पुष्यनक्षत्र से युक्त तृतीया को देवी का विशेष पूजन करना राजा का विशिष्ट कर्तव्य है।

८७ अध्याय—शक्रध्वज के उत्थापन का विशिष्ट विवरण। पुराण का कथन है कि इस उत्सव का प्रवर्तन राजा उपरिचर ने (जिनका दूसरा नाम वसु था) किया था। भाद्रपक्ष की द्वादशी को करणीय इस पूजन का विवरण बडे विस्तार से यहाँ वर्णित है।

८८ अध्याय—जेठ की दशहरा मे विष्णु की इष्टि राजा को करनी चाहिये। तथा श्रीपचमी को लक्ष्मी का पूजन कुन्द पुष्पो से करना चाहिये (श्लोक २१–२३) तदनन्तर राजा के लिए निषिद्ध कर्मो का निर्देश विस्तरश किया गया है (श्लोक २५–६५) १२ प्रकार के पुत्रो के नाम—औरस, क्षेत्रज, दत्तक, कृत्रिम गूढोत्पन्न तथा अपविद्ध—ये छ पुत्र राजा के भाग के अधिकारी हो सकते है,) परन्तु कानीन, सहोढ, क्रीत, पौनर्भव, स्वयदत्त तथा दास—ये छ पुत्र अधिकार के अयोग्य है। इनमे अन्तिम दासी पुत्र सबसे अधम होता है जो राज्य का अधिकारी नही होता। अनन्तर शूद्रो के आचार का वर्णन उपलब्ध है (श्लोक ४७–५०) अवशिष्ट भाग मे राजा के कर्तव्याकर्तव्य का सक्षिप्त वर्णन है। विष्णुधर्मोत्तर मे प्रथम ही इस विषय के वर्णन का निर्देश किया गया है (विष्णुधर्मोत्तरे पूर्वं मया रहसि भाषितम् ८८।७०)।

८९ अध्याय—'अपुत्रस्य गतिर्नास्ति' का उदाहरणो से समर्थन। भैरव और वेताल के इस प्रसग मे कथानक का प्रतिपादन। खाण्डवदाह की कथा। भैरव के सन्तानो का वर्णन।

९० अध्याय—वेताल के सन्तान का कथन। कालिकापुराण की प्रशसा। कालिका नामक पुण्यपुराण मन्त्र-यन्त्रमय है, शुद्ध, ज्ञान तथा काम देने वाला, वेद तथा लोक दोनो मे गुह्यतम है।[1] मार्कण्डेय का कथन है कि वसिष्ठ जी ने इस अमृतमय पुराण को मुझसे सुना और पढा था। इन्हो ने इसे सुरालय

---

१ इति व कथित पुण्य पुराण कालिकाह्वयम्।
मन्त्र-यन्त्र-मय शुद्ध ज्ञानद कामद परम्॥ २९॥
इति गुह्यतम लोके वेदेषु च तथा द्विजा,।—कालिकापुराण, अध्याय ९०

(स्वर्गभूत) कामरूप मे छिपा रखा था और अब महर्षियो को इस गुह्यपुराण को प्रकाश मे ले आने का श्रेय है। अन्त मे विष्णु तथा माया की स्तुति से यह कालिकापुराण समाप्त होता है।

इति सकलजगद् बिभर्ति यासा मधुरिपुमोहकरी रमास्वरूपम्।
रमयति च हर शिवास्वरूपा वितरतु वो विभव शुभानि माया॥

कालिकापुराण—महापुराण या उपपुराण ?

कालिकापुराण के धार्मिक महत्व की मीमांसा से पूर्व उसके स्वरूप का विवेचन आवश्यक है। प्रश्न है कि वह महापुराणो के अन्तर्गत माना जाय अथवा उपपुराण समझा जाय। महापुराणो की नामावली प्रस्तुत करने वाले, देवी-भागवत के प्रख्यात श्लोक

मद्वय भद्वय चैव बत्रय व्रचतुष्टयम्।
आनापल्लिङ्गकूस्कानि पुराणनि विनिर्दिशेत्॥

के कथनानुसार केवल एक ही पुराण ककार या 'कू' से आरम्भ होता है और वह है कूर्मपुराण। कालिकापुराण का इसमे निर्देश नही है। परन्तु इसे भी महापुराणो के अन्तर्गत मानने का प्राचीन काल मे आग्रह था और यही मूल भागवतपुराण माना जाता था। इस तथ्य का परिचय हमे हेमाद्रि (१३ शती) के प्रसिद्ध धर्मग्रन्थ 'चतुर्वर्गचिन्तामणि' के इस कथन से होता है —

यदिद कालिकाख्य च मूल भागवत स्मृतम्। (प्रथम जिल्द पृ० ५३१)
परन्तु हेमाद्रि से लगभग एक शताब्दी पूर्व होने वाले, वाराणसी के गहडवालवशी राजा जयचन्द्र के धर्माध्यक्ष लक्ष्मीधर ने अपने कृत्यकल्पतरु मे कालिकापुराण को स्पष्टत उपपुराण की सज्ञा दी है —

अष्टादशभ्यस्तु पृथक् पुराण यत्तु दृश्यते।
विजानीध्व मुनिश्रेष्ठास्तदेतेभ्यो विनिर्गतम्॥

विनिर्गतम् उद्भूत यथा कालिकापुराणादि। (कृत्यकल्पतरु, खण्ड १, पृ० ३०)
यहाँ लक्ष्मीधर ने कालिकापुराण को अष्टादश पुराणो से ही उद्भूत बतलाया है। चण्डेश्वर ने अपने 'कृत्यरत्नाकर' मे भी इस तथ्य को स्वीकार किया है। बगाल के निबन्धकार बल्लालसेन (१२ शती का अन्तिम चरण) ने दानविधि के स्पष्ट प्रतिपादक जिन उपपुराणो का निर्देश किया है उनमे कालिकाह्वय पुराण भी है —

उक्तान्युपपुराणानि व्यक्तदानविधीनि च।
आद्य पुराण साम्ब च कालिह्वयमेव च॥ (दानसागर, पृ० ३)
उपपुराणो की जितनी सूची उपलब्ध हुई हैं उनमे कालिकापुराण का उल्लेख

सर्वत्र है। इतने स्पष्ट प्रमाणो के आधार पर यह निष्कर्ष निकलता है कि कालिकापुराण नि सन्दिग्ध रूप से उपपुराण ही है। महापुराणो के अन्तर्गत इसे मानना साम्प्रदायिक हठधर्मिता के अतिरिक्त और कुछ नही है।

मूल कालिकापुराण का अस्तित्व

इस प्रस्तावना के आरम्भ मे ही नान्यदेव आदिको का नामोल्लेख किया गया है जिनके ग्रन्थो मे कालिकापुराण के मत तथा उद्धरण तो मिलते है, परन्तु ये उद्धरण वर्तमान कालिकापुराण मे उपलब्ध नही होते। उद्धरणो का सम्बन्ध इन धर्मशास्त्रीय विषयो से है[1]—सुवर्णादि पदार्थों का दान, वर्ण तथा आश्रमो के धर्म, कालिका और शिव की पूजा, नाना प्रकार के व्रत, श्राद्ध, गगा-स्नान की विशिष्ट पवित्रता आदि आदि। उपलब्ध कालिकापुराण मे इन विषयो का नितान्त अभाव है। अत इससे भिन्न कालिकापुराण की कल्पना करना असगत न होगा। एक और भी विषय विचारणीय है। इन प्राचीन निबन्धकारो के ग्रन्थो मे दिये गये कालिकापुराण के लम्बे लम्बे उद्धरणो मे कही भी तान्त्रिक प्रभाव लक्ष्य नही होता। प्रचलित कालिकापुराण के स्वरूप से ठीक विपरीत स्वरूप वाले मूल कालिकापुराण की सत्ता मानने का विशदतर प्रमाण उपस्थित करता है वल्लालसेन का दानसागर। वल्लालसेन ने अपने 'दानसागर' मे दान विधिविषयक पुराणो के स्वरूप का गम्भीरता से विचार किया है। वे देवी-पुराण को इसीलिए त्याज्य मानते हैं कि उसमे तान्त्रिक प्रभावो का स्पष्ट निर्देश था।[2] इतना ही नही, भविष्यपुराण के उन्ही परिच्छेदो वाले भागाश का अपने कार्य के लिये उपयोग किया है, जहाँ तक सप्तमी कल्प का वर्णन हुआ था। अष्टमी तथा नवमी कल्प वाले परिच्छेदो पर तान्त्रिक प्रभावो की सत्ता होने से वे उनके उपयोगक्षेत्र के बाहर ही रहे।[3] परन्तु कालिकापुराण के विषय मे वल्लालसेन ऐसी कोई चर्चा नही करते। पुराणो पर तान्त्रिक प्रभाव के इस गम्भीर विवेचक का कालिकापुराण के विषय मे मौनावलम्बन इस तथ्य का स्पष्ट

---

१ विशेष के लिए द्रष्टव्य डा० हाजरा—स्टडीज इन उपपुराणज् पृष्ठ २३६—२३८, द्वितीय खण्ड, कलकत्ता, १९६३

२ तत्तत्-पुराणोपपुराण-सख्या बहिष्कृत कश्मलकर्मयोगात्।
पाषण्ड-शास्त्रानुमत निरूप्य देवीपुराण न निबद्धमत्र ॥

—दानसागर, श्लोक ६७

३ सप्तम्यवधि पुराण भविष्यमपि सगृहीतमतियत्नात्।
त्यक्त्वाऽष्टमीनवम्यो कल्पौ पाषण्डिभिर्ग्रस्तौ ॥

—दानसागर, श्लोक ५९

सकेत करता है कि उस युग मे प्रचलित कालिकापुराण मे तान्त्रिक विधि-विधानो का सर्वथा अभाव था और वह पुराण अधुना प्रचलित तन्त्रबहुल कालिकापुराण से सर्वतोभावेन भिन्न एव पृथक् था। और यही था मूल कालिकापुराण। इस सिद्धान्त का पोषक प्रमाण रघुनन्दन के दुर्गापूजातत्त्व मे उद्धृत इस वाक्य से उपलब्ध होता है—दुष्प्रापकालिकापुराणान्तरेऽपि। जहाँ कई पक्तियाँ उद्धृत की गई है। इससे स्पष्ट प्रतीत होता है कि रघुनन्दन प्रचलित कालिकापुराण से भिन्न कालिकापुराण को जानते थे, जिसके हस्तलेख उनके समय मे भी दुर्लभ हो गये थे।

निष्कर्ष—किसी मूल कालिकापुराण का अस्तित्व मध्य युग मे अवश्य था जिसमे योगमाया शिव की शक्ति के रूप मे चित्रित थी, जहाँ शैवमत का प्राचुर्य था तथा जहाँ धर्मशास्त्रीय विषयो के तथा पूजानुष्ठाव के वर्णन मे तान्त्रिक प्रभाव का सर्वतोभावेन अभाव था। प्रचलित कालिकापुराण इन तीनो तथ्यो मे उससे भिन्नता रखता है। इसमे योगमाया नारायण की शक्ति बताई गई है (तत्र गत्वा जगद्धात्री विष्णुमाया जगन्मयीम्—कालिका ५।१४) तथा नारायण की पूजा नारदपञ्चरात्र की विधि से आदिष्ट है और वैष्णव आगमो का प्रभाव बहुश निर्दिष्ट है तथा देवीपूजा के अवसर पर मन्त्र, यन्त्र, मुद्रा कवच आदि समस्त तान्त्रिक उपकरणो का प्रचुर वर्णन है।[1]

मूल (?) कालिकापुराण का हस्तलेख

कालिकापुराण का एक अपूर्व हस्तलेख वाराणसेय सस्कृत विश्वविद्यालय के पुस्तकालयाध्यक्ष श्री बलरामशास्त्री भारद्वाज के पास सुरक्षित है, जो प्रचलित कालिकापुराण से एकदम भिन्न है। यह मूल कालिकापुराण प्रतीत होता है। नान्यदेव, हेमाद्रि, चण्डेश्वर आदि के अनुसार मूल कालिकापुराण तृणबिन्दु तथा अनिलाद के मुख्य सवाद रूप मे वर्णित है,[2] यहाँ भी ये ही दोनो व्यक्ति आदि से अन्त तक सवाद चलाते है। तृणबिन्दु प्रश्न करते है जिनका उत्तर अनिलाद (या पवनाद) देते है। यह हस्तलेख अशुद्धि-प्रचुर तथा अधूरा है, परन्तु उपलब्ध अश की परीक्षा इसके स्वरूप की पर्याप्त परिचायिका है। इसमे भगवान् शङ्कर तथा सती का चरित्र बडे विस्तार के साथ दिया गया है। तदनन्तर पार्वती का विवाह तथा स्कन्द की पूरी कथा (जन्म तथा उनका वृत्तान्त, युद्धभी) बडे विस्तार से दी गई है। कथा के प्रसङ्ग मे अवान्तर

१ द्रष्टव्य कालिकापुराण, अध्याय ५२—७६

२ डा० हाजरा—स्टडीज इन उपपुराणज् भाग २ पृष्ठ २३५ पर प्रथम टिप्पणी द्रष्टव्य।

कथाएँ भी है। स्तुतियाँ भी हैं। पूजन का भी प्रसङ्ग है, परन्तु तान्त्रिक विधि-विधान का कही स्पर्श भी नही है। तीर्थमाहात्म्य का भी यत्र तत्र प्रसङ्ग आता है। गङ्गाद्वार, कुशावर्त, नीलाचल—तीर्थों के नामनिर्देश मिलते है (अध्याय ३९, श्लोक० ८५) इसी अवसर पर कहा गया है —

स्नात्वादौ कणितीर्थेसु मुक्तकेलुशिवामुखे।
कुशाख्ये तु ततो नीले मोक्ष स्याद् देहसक्षये॥ (३९।८)

देवी का जहाँ-जहाँ स्थान है, वहाँ-वहाँ 'ऊषर तीर्थ माना जाता है और ऐसे नव ऊषरो का नाम निर्दिष्ट है, परन्तु यह नाम स्पष्ट प्रतीत नही होता (४०।७४) नव ऊषर तीर्थों की परम्परागत नामावली वाराहपुराण मे इस प्रकार निर्दिष्ट है —

रेणुका सूकर काशी काली कालो वटेश्वरौ।
कालिञ्जरो महाकालो ऊषरा नवमुक्तिदा॥[1]

इन नव स्थानो मे प्राणत्याग करने वाले जीवो को समान पुण्य मिलता है (नवेषु सदृश पुण्य मृतानामेषु देहिनाम्। (४० ७५)

स्तुतियो से दो-चार पद्य नमूने के तौर पर उद्धृत किये जाते है।

शिव की स्तुति —

नम काण्डसृजे तुभ्य हरिवामागभूषिते।
विरचिजनने तुभ्य नीलकण्ठाय धन्विने॥ १७॥
पुरुषोत्तमस्त्वमेवैको स्थूलसूक्ष्मो निरञ्जन।
अणोरणुतरश्चासि अलक्ष सर्वलक्षक॥ २०॥

—अध्याय २३

स्कन्द की स्तुति —

त्व ब्रह्मा ब्रह्मवादी त्व सुब्रह्मो ब्रह्मवत्सल.।
ब्रह्मण्यो ब्रह्मदेवश्च ब्रह्मज्ञो ब्रह्मसग्रह॥ ११॥
त्व सावित्रीमयो देव सर्वत्रैवापराजित।
मनु सर्वात्मको देव षडक्षररतीपर॥ १३॥
त्व भर्ता सर्वभूतानां त्व भूत त्व सुखावह।
सर्वदृक् सर्व जेता षड्वक्त्रो भयनाशन॥ १७॥
भीमसेन सुषेणश्च वीरसेनश्च भूपति।
सिद्धसेन सुराध्यक्षो भीमसेनो निरामय॥ १९॥

—अध्याय २५

१ शब्दार्थचिन्तामणि मे यह श्लोक वाराहपुराणीय मानकर उद्धृत है, परन्तु वाराहपुराण की किसी भी मुद्रित प्रति मे यह उपलब्ध नही होता।

अर्धनारीश्वर की स्तुति—

शरण्याना शरण्यस्त्व भव देव त्रिशूलिन ।
नमो मुञ्जार्धदेहाय रसनार्धविधारिणे ॥ ११ ॥
पीनोन्नतकुचार्धाय वक्षोर्धाय नमो नम ।
युग्मरूपाय तुर्याय विस्मयानन्दकारिणे ॥
अर्धनारी—शरीराय स्त्रीपुसाय नमो नम ॥ १२ ॥

—अध्याय ४०

अनेक अध्यायो की पुष्पिका मे यह कालिकापुराण कालीपुराण भी कहा गया है। यह हस्तलिखित प्रति पाठ की दृष्टि से नितान्त महनीय तथा आदरणीय है। हस्तलेख की छिन्नभिन्नता के कारण विशुद्ध पाठ का निर्णय नही किया जा सकता। अत एव अन्य साधनो के अभाव मे यह प्रकाशन-योग्य नही है[1]।

कालिकापुराण देश और काल

कालिकापुराण के अन्तरङ्ग परीक्षण से स्पष्ट है कि इस पुराण का भौगोलिक क्षेत्र भारतवर्ष का पूर्वाञ्चल है और तिस पर भी कामरूप का प्रदेश। कालिका-पुराण के ७७ वे अध्याय मे कामरूप के क्षेत्र मे वर्तमान नदियो, सरोवरो, कुण्डो तथा पर्वतो का निर्देश बडी ही सूक्ष्मता तथा विस्तार के साथ किया गया है। पुराण का लेखक उस प्रदेश के इन भौगोलिक इकाइयो के पूर्ण परिचय रखता है। इस प्रसग मे एक प्रमाण विचारणीय है। विद्यापति ने अपने 'दुर्गाभक्ति-तरगिणी' मे देवी के नैवेद्य के लिए उपयुक्त फलो के नाम प्रस्तुत करने वाले श्लोक कालिका पुराण (अध्याय ७०।४–१२) से उद्धृत किये हैं जिनमे एक श्लोक है —

अक्षोड पिण्डखर्जूर करुण श्रीफल तथा ।
औदुम्बर च पुन्नाग माधव कर्कटीफलम् ॥ ६ ॥

—कालिका० अध्याय ७०

इन फलो के ऊपर टीका करते हुये वे करुण को गौडदेश मे प्रसिद्ध फल बतलाते हैं (करुण गौडदेशे प्रसिद्धम्) इससे विद्यापति का अभिप्राय यही प्रतीत होता है कि पुराण का रचयिता बगाल मे प्रख्यात फल से परिचित था। इन तथ्यो के आधार पर हम कह सकते हैं कि कालिकापुराण का उत्पत्तिस्थल

---

१ इसके १६० + ९६ पृष्ठो को श्री बलिरामशास्त्री भारद्वाज ने मुद्रित भी किया था, परन्तु साधनाभाव से आगे मुद्रण नही हो सका। इन छपे फार्मों को मुझे अवलोकनार्थ देने के लिए मैं भारद्वाज जी का आभार मानता हूँ।

आसाम का कामरूप प्रदेश है अथवा आसाम का वह भाग है जो बगाल के सन्निकट है ।

कालिकापुराण के रचनाकाल के विषय मे इदमित्थि रूप से निर्णय करना कठिन व्यापार है । रचना-काल का कोई भी सकेत ग्रन्थ के भीतर उपलब्ध नही होता । केवल बाह्य साक्ष्य के ऊपर अवलम्बित होना पडता है । कालिकापुराण का प्राचीनतम निर्देश नान्यदेव के 'भरतभाष्य' मे उपलब्ध होता है —

इति रोविन्दक समाप्तम् ॥ कालिकाख्यपुराणे । यत्पुराणे पुरुषेरित रोविन्दकाभिध गीत नान्यमहीभुजा । इति रोविन्दक प्रोक्त स्याद्दुत्तरमत परम ॥

(भाष्य के हस्तलेख के पृष्ठ १३८ पर, मद्रास)

'भरतभाष्य' के रचयिता नान्यदेव महीपति मिथिला के राजा नान्यदेव से अभिन्न माने जाते है जिसका राज्यकाल ईस्वी १०९७ से लेकर ११३३ है । डा० सिलवन लेवी ने सप्रमाण सिद्ध किया है कि नान्यदेव का सिहासनारूढ होने का काल १०९७ ई० मे पडता है ।

फलत कालिकापुराण का रचनाकाल १०५० ई० से अनन्तर नही हो सकता । पूर्वतन मर्यादा का उल्लेख हेमाद्रि के उस उद्धरण के द्वारा किया गया है जिसमे कालिकापुराण ही वास्तव मे भागवतपुराण माना गया है (यदिद कालिकाख्य च मूल भागवत स्मृतम्) । यह उल्लेख श्रीमद्भागवत की पूर्ण प्रतिष्ठा तथा प्रसिद्धि प्राप्त कर लेने के पश्चात् युग का सकेत करता है । श्रीमद्भागवत की रचना का काल[1] ईस्वी सन् से षष्ठ शतक निर्णीत है । रचना के बाद एक शताब्दी का समय भागवत को प्रतिष्ठित तथा प्रख्यात होने मे लगा होगा—ऐसा अनुमान किया जा सकता है । उसी युग मे मूल कालिकापुराण की रचना सम्भावित है । फलत कालिकापुराण को सप्तम शती मे मानना उचित होगा । वर्तमान कालिकापुराण के सर्वाधिक प्राचीन निर्देश बगाल के ग्रन्थकार शूलपाणि तथा मैथिल विद्यापति के द्वारा किये गये हैं । ये दोनो ग्रन्थकार १४ शती के लेखक है । शूलपाणि ने दुर्गोत्सव-विवेक मे तथा विद्यापति ने अपने दुर्गाभक्तितरगिणी मे पूजाविषयक श्लोको को उद्धृत किया है । कालिकापुराण कालिदास के कुमारसम्भव से तथा माघ के शिशुपालवध (७०० ई०) से परिचय रखता है । फलत अष्टमी शती से (७५० ई०) वह कथमपि प्राचीन नही हो सकता । ग्रन्थ की रचना के अनन्तर प्रसिद्धि तथा प्रतिष्ठा पाने के लिए शूलपाणि तथा विद्यापति से कम से कम दो तीन सौ वर्ष का काल-व्यवधान

---

१ द्रष्टव्य बलदेव उपाध्याय—भागवत सप्रदाय पृ० १५१–१५३, वाराणसी, सं० २०१०

मानना अनुचित न होगा। फलत प्रचलित कालिकापुराण का निर्माण सम्भवत दशम शती के उत्तरार्ध मे मानना चाहिये।[1]

कालिकापुराण का महत्त्व दार्शनिक दृष्टि

पुराण साहित्य के अन्तर्गत कालिकापुराण अपना एक स्पृहणीय महत्त्व तथा आदरणीय वैशिष्ट्य धारण करता है। इसके वैशिष्ट्य का सकेत जो ग्रन्थ के अन्त मे (अध्याय ९० श्लोक २९) दिया गया है वह सर्वथा यथार्थ है। यह शुद्ध मन्त्र-यन्त्रमय पुराण है जो ज्ञान और काम दोनो को देने वाला है (मन्त्र यन्त्र-मय शुद्ध ज्ञानद कामद तथा)। यह कथन सत्य है। महामाया तथा उसकी प्रतिनिधिभूता कामाख्या, त्रिपुरा, चण्डिका, देवी आदि के स्वरूप का प्रतिपादन कर उनकी उपासना की प्रक्रिया का विवरण सागोपाग रूप से यह पुराण प्रदान करता है। इतना ही नही, नारायण, गोविन्द, विष्णु, शकर, गणपति आदि देवो के अर्चाविधान का भी वर्णन मिलता है। यह पुराण उदारभाव से सम्पन्न है। यह विष्णु, शिव तथा ब्रह्मा को एक ही परमात्मा का स्वरूप मानकर उनमे किसी प्रकार का भेद नही स्वीकारता। विष्णु ने इस अभेदभावना को स्पष्ट शब्दो मे अभिव्यक्त किया है —

न ब्रह्मा भवतो भिन्नो न शम्भुर्ब्रह्मणस्तथा।
न चाह युवयोर्भिन्नोऽभिन्नत्व सदातनम् ॥ ५१ ॥
शिरोग्रीवादिभेदेन यथैकस्यैव धर्मिण ।
अङ्गानि मे तथैकस्य भागत्रयमिद हर ॥ ५५ ॥

—कालिकापुराण, अध्याय ११

सर्वप्रथम योगमाया के स्वरूप का तात्त्विक विवेचन है (अध्याय ५, श्लोक ५४–५९) अध्याय ८, श्लोक १२–२६, अध्याय ६, श्लोक ५९–७२) योगमाया स्निग्ध अजन के समान कान्ति वाली, सुन्दर रूप, ऊँची डील-डौल वाली, चार भुजाओ से सम्पन्न, तलवार और नील कमल हाथ मे लिए तथा खुले केशकलाप को धारण करने वाली बतलाई गई है। उनका वाहन सिंह है —

स्निग्धाञ्जनद्युतिश्चारुरूपोत्तुङ्गा चतुर्भुजा।
सिहस्था खड्ग-नीलाब्जहस्ता मुक्तकचोत्करा ॥—कालिका ५।५२

योगमाया जगत् की प्रवृत्ति एव निवृत्ति उभयरूपा है, चर और अचर जीवो की सनातनी शक्ति है तथा समस्त जगत् को मोहने वाली हैं (५।५४), योगियो के हृदय मे प्रमिति (ज्ञानरूपा) वे ही है तथा विविध विषयो का अवलम्बन करने वाली विद्या है (५।५६), सत्त्व, रज तथा तम इन तीनो गुणो की विकार–

---

१ विशेषरूप से द्रष्टव्य डॉ० राजेन्द्रचन्द्र हाजरा–स्टडीज इन उपपुराणज् (अग्रेजी) दूसरा खण्ड, पृष्ठ २०९–२४५ (सस्कृत कालेज, कलकत्ता, १९६३)

हीन समवस्थिति है, अशेष जगत् की बीजरूपा, ज्ञेय तथा ज्ञानरूपिणी ससार के हितार्थ अवतीर्ण होने वाली विष्णुमाया वे ही है (५।५९) मन्त्र के अन्तस् को बोधन करने वाली, परमानन्द स्वरूपा, योगियो के अन्तस्तल मे शुद्ध विद्यारूपिणी योगमाया जगन्मयी कहलाती है।[1] वह नित्या है तथा जगत् के गर्भ मे नित्यरूप से प्रकाशित होती है, इस जगत् के बाहर भी वे ज्योति स्वरूप से विराजमान है जो ज्योति, व्यक्त (कार्य जगत्) तथा अव्यक्त (कारण जगत्) दोनो को प्रकाशित करती है (६।६९)। योगमाया परा, परात्मिका, शुद्ध, मलरहित, लोक को मोहने वाली, वेदत्रयी, देवत्रयीरूपा, कीर्ति तथा ससार की वार्ता और गति दोनो है (८।१६)

इस अचिन्त्य शक्तिसम्पन्ना योगमाया की नाना अभिव्यक्तियाँ देवी के रूप मे जगत् के कल्याणार्थ विराजमान है। उनमे कामाख्या सर्वातिशायिनी है। कामाख्या का विशिष्ट पूजाविधान कालिकापुराण का प्रधान सुचिन्तित विषय है। कामाख्या ही महामाया है, वही मूलमूर्ति है।[2] भिन्न-भिन्न पीठो के साथ सम्बद्ध होने पर वही नाना नामो से प्रसिद्ध होती है। जिस प्रकार एक ही वि णु नित्य होने से 'सनातन' तथा दुष्टजनो के अर्दन करने से 'जनार्दन' नाम से अभिहित होते हैं, उसी प्रकार महामाया कामरूपगिरि पर कामसम्पादन के लिए उत्पन्न होने से 'कामाख्या' नाम से विश्रुत है। वही कामकाल मे रक्तकमलो से सम्पन्न प्रेतरूपी शिव पर रमण करती है। त्यक्तकामा होने पर वही कामाख्या श्वेत प्रेत पर रमण करती है। अन्य विवरण के अनन्तर उनके आसन का वर्णन है (५८।६९)। कामाख्या का ध्यानपरक यह श्लोक उनकी दिव्य सौन्दर्यमूर्ति का चित्रण करता है—

कामाख्यामक्षमालाभयवरदकरा सिद्धसूत्रैकहस्ता
श्वेतप्रेतोपरिस्थां मणिकनकयुता कुङ्कुमापीतवर्णाम्।
ज्ञानध्यानप्रतिष्ठाम् अतिशयविनया ब्रह्मशक्रादिवन्द्याम्।
अग्नौ विन्द्वन्तमन्त्रप्रियतमविषया नौमि सिद्ध्यै रतिस्थाम्।

—कालिकापुराण अध्याय ७२, श्लोक ६३

---

१ मन्त्रान्तर्भावनपरा परमानन्दरूपिणी।
योगिना सत्त्वविद्यान्त सा निगद्या जगन्मयी ॥—कालिका० ६।६१

२ मूलमूर्तिर्महामाया योगनिद्रा जगन्मयी ॥ ४८ ॥
एकैव तु महामाया कार्यार्थं भिन्नता गता।
कामाख्या तु महामाया मूलमूर्ति प्रगीयते ॥ ५१ ॥

—कालिकापुराण, अध्याय ५८

कालिकापुराण की भाषा-शैली

कालिकापुराण का साहित्यिक चमत्कार विशेष दर्शनीय है। भाषा मे अपाणिनीय प्रयोगो का उतना बाहुल्य नही जितना इतर पुराणो मे दृष्टिगोचर होता है। अनेक स्थलो पर यह काव्यसौष्ठव से सम्पन्न है। पार्वती तपस्या के प्रसग पर कालिदास के कुमारसम्भव की अविस्मरणीय छाया है। इस अवसर पर वसन्त के आगमन का स्निग्ध वर्णन है (अध्याय ४२, श्लोक १३६–१४३) पन्द्रहवे अध्याय मे वर्षा का बडा ही रसपेशल, मधुर तथा यथार्थ वर्णन है (अध्याय १५, श्लोक २–१८) इस वर्णन की चारुता निरखने के लिए दो पद्य उद्धृत किये जाते है —

स्निग्धनीलाञ्जनश्याममुदिरौघस्य पृष्ठत ।
बलाकाराजिर्भात्युच्चैर्यमुनाघुष्टफेनवत् ॥ ८ ॥

चिकने नीले-आँजन के तरह श्याम बादलो की पीठ पर बगुले की पाँत वैसे ही शोभा पाती है जैसे श्याम यमुना के ऊपर सफेद फेन के टुकडे। उपमा की चारुता स्पृहणीय है। हवा के थपेडे खाने से हिलते डुलते हुये बडे बडे पेड आकाश मे नाचते हुये प्रतीत होते हैं। ये कामीजनो को तो प्रीति पैदा करते है, परन्तु भीरुजनो को त्रास दे रहे है—

वाताहता महावृक्षा नृत्यन्त इव चाम्बरे।
दृश्यन्ते हर भीरूणा त्रासका कामुकेप्सिता ॥ ७ ॥

कालिकापुराण देवो की स्तुति के लिए स्मरणीय रहेगा। ये स्तुतियाँ दार्शनिक तथ्य तथा साहित्यिक सौन्दर्य दोनो से सर्वथा भूषित है। विष्णु की स्तुति (अध्याय २२) गोविन्द की रमणीय स्तुति (अध्याय ३०), शिव की स्तुति (अध्याय १८) तथा देवी की गीतिमयी स्तुति (अध्याय ७६) साहित्यिक सुषमा, कोमल पदविन्यास तथा गाढ भक्तिभावना के कारण कालिकापुराण को काव्यमय कोमल विग्रह प्रदान कर रही है। एक दो उदाहरण इस सुषमा के परिचायक होगे —

विष्णु की स्तुति—

नमो नम कारणकारणाय दिव्यामृतज्ञानविभूतिदाय।
समस्तलोकान्तरमोहनाय प्रकाशरूपाय परात्पराय ॥ (२२।६२)
त्व पद्मया पद्मकरो विभासि वरासि-चक्राब्जधनुर्धरस्त्वम्।
त्व तार्क्ष्ये प्रतिभासि नित्य स्वर्णाचले तोययुतो यथाब्द ॥ (३०।१६)

केशव की स्तुति—

अयोनिस्त्व जगद्योनि, अपादस्त्व सदागति ।
त्व तेज' स्पर्शहीनश्च सर्वेशस्त्वमनीश्वर ॥ (३३।२६)

शिव की स्तुति—

यदष्टशाखस्य तरो प्रसून चिदम्बुवृद्धस्य समीपजस्य।
तपश्छद सस्थगितस्य पीन सूक्ष्मोपग ते वशग सदैव ॥ (१८।७४)
सूक्ष्म जगद् व्याधि गुणौघपीन मृग्यम्बुवे साधनसाध्यरूपम्।
चौरैरक्षैर्नोज्झित नैव नीत वित्त तवास्त्यर्थहीन महेश ॥ (१८।७७)

देवी की स्तुति—

जय जय देवि सुरगणार्चित—पादपङ्कजे।
विश्वस्य भूतिभाविनि शशिमौलि-केलिभाविनि गिरिजे।
नेत्रत्रयनिर्जितविवस्वद्विधुवह्निकान्तितुलितकमलजे।
मध्यनेत्रगतभ्रूभङ्गभक्तरक्तमति चयज्वायकविमलजे ॥ (७६।९६)

देवी की यह कमनीय स्तुति तान्त्रिक सिद्ध की भक्तिमयी गीर्वाणवाणी का मधुमय प्रसाद है। यह मनोरम गीतिका है, जिसका मधुर गायन वीणा पर बडी सरसता से किया जा सकता है। यह गीतिका सचमुच भक्तिरसाप्लुत हृदय का अमृतमय उद्गार है। इस गीतिका के लिए भी यह कालिकापुराण साहित्य—ससार मे चिर—स्मरणीय रहेगा। अन्त मे भगवती के चरणारविन्द मे यह प्रस्तावना भक्तिभावना से सप्लुत हृदय से समर्पित की जा रही है, जिससे उनकी कृपाधारा के कतिपय कणो को पाकर लेखक धन्यमन्य बन जाय। तथास्तु—

सा पातु न सकलयोगिजनस्य चित्तेऽ-
विद्यातमिस्रतरणिर्यतिमुक्तिहेतु।
या चास्य जन्तुनिवहस्य विमोहिनीति
माया विभोर्जनुषि शुद्ध कुबुद्धि हन्त्री ॥ १।२

× × × ×

विश्वविख्यात चौखम्बा सस्कृत सीरीज तथा चौखम्बा विद्याभवन वाराणसी के प्रकाशक तथा पुराणो के विशुद्ध लोकप्रिय सस्करण के पुरस्कर्ता बन्धुद्वय श्री मोहनदास गुप्त तथा श्री बिट्ठलदास गुप्त को कालिकापुराण के इस लोकप्रिय मनोहर सस्करण के प्रकाशन के लिए मैं धन्यवाद देता हुं। वे इसी प्रकार अनुपलब्ध अन्य पुराणो का भी ऐसा ही सुन्दर सस्करण प्रकाशित कर धार्मिक जनता का कल्याणसाधन करे तथा श्रद्धालु जनो को भगवान् व्यास की वाणी का प्रसाद प्रदान करे।

चैत्रपूर्णिमा स० २०२९
२९—३—७२
वाराणसी

—बलदेव उपाध्याय

अध्याय-सूची

समाप्तम्



कालिकापुराणम्

प्रथमोऽध्यायः

यद्योगिभिर्भवभयार्तिविनाशयोग्य-
मासाद्य वन्दितमतीवविविक्तचित्तैः।
तद् व पुनातु हरिपादसरोजयुग्म-
माविर्भवत् क्रमविलङ्घितभूर्भुव स्व ॥ १ ॥

सा पातु व सकलयोगिजनस्य चित्ते-
ऽविद्यातमिस्रतरणिर्यतिमुक्ति-हेतु ।
या चास्य[1] जन्तुनिवहस्य विमोहिनीति
माया[2]विभोर्जनुषि शुद्ध-कुबुद्धिहन्त्री ॥ २ ॥

ईश्वर जगतामाद्यं प्रणम्य पुरुषोत्तमम्।
नित्यज्ञानमयं वक्ष्ये पुराणं कालिकाह्वयम ॥ ३ ॥

मार्कण्डेय मुनिश्रेष्ठ स्थितं हिमधरान्तिके[3]।
मुनय परिपप्रच्छुः प्रणम्य कमठादय. ॥ ४ ॥

भगवन् सम्यगाख्यात सर्वशास्त्राणि तत्त्वतः।
वेदान् सर्वांस्तथा सागान् सारभूतं प्रमथ्य च ॥ ५ ॥

सर्ववेदेषु शास्त्रेषु यो यो न संशयोऽभवत्।
स स च्छिन्नस्त्वया ब्रह्मन् सवित्रेव तमश्चय ॥ ६ ॥

जैवातृकाग्रय भवत प्रसादाद्द्विजसत्तम।
निःसंशया वयं जाता वेदे शास्त्रे च सर्वश ॥ ७ ॥

---

1 चान्य। 2 विधो। 3 हिमवर ।

कृतकृत्या वयं ब्रह्मंस्त्वत्तोऽधीत्य समन्तत ।
सरहस्यं धर्मशास्त्रं यदवादि स्वयम्भुवा ॥ ८ ॥

भूयस्तच्छ्रोतुमिच्छामो हरं काली पुरा कथम् ।
मोहयामास यतिनं सतीरूपेण चेश्वरम् ॥ ९ ॥

सर्वदा ध्याननिलयं यमिनं यतिना वरम् ।
संक्षोभयामास कथं संसारविमुख हरम् ॥ १० ॥

सती वा कथमुत्पन्ना दक्षदारासु[4] शोभना ।
कथं हरो मनश्चक्रे दारग्रहणकर्मणि ॥ ११ ॥

कथं वा दक्षकोपेन त्यक्तदेहा सती पुरा ।
हिमवत्तनया जाता भूयो वा कथमागता ॥ १२ ॥

कथमर्द्धशरीरं[5] साहरत् स्मररिपो पुन ।
एतत् सर्वं समाचक्ष्व विस्तरेण द्विजोत्तम ॥ १३ ॥

नान्योऽस्ति संशयच्छेत्ता त्वत्समो न भविष्यति ।
यथा जानीम विप्रेन्द्र तत् कुरुष्वैतदात्मवित् ॥ १४ ॥

मार्कण्डेय उवाच

शृणुध्वं[6] मुनय सर्वे गुह्याद् गुह्यतरं मम[7] ।
पुण्य शुभकरं सम्यग् ज्ञानदं कामदं परम् ॥ १५ ॥

एतद् ब्रह्मा पुरोवाच नारदाय महात्मने ।
पृष्टस्तेन तत सोऽपि बालखिल्येभ्य[8] उक्तवान् ॥ १६ ॥

बालखिल्या महात्मानस्तत आचक्षिरे पुन ।
यवक्रीताय मुनये स प्रोवाचासिताय च ॥ १७ ॥

---

4 दक्षदारेषु । 5 शरीरन्त्वहरत् । 6 शृण्वन्तु । 7 परम् ।
8 बालखिल्येषुचोक्तवान् ।

अशितो मे समाचष्ट एतद्विस्तरतो[9] द्विजा ।
अहं व कथयिष्यामि कथामेता पुरातनीम् ।
प्रणम्य परमात्मानं चक्रपाणि जगत्पतिम् ॥ १८ ॥

व्यक्ताव्यक्तस्वरूपाय सदसद्व्यक्तिरूपिणे ।
स्थूलाय सूक्ष्मरूपाय[10] विश्वरूपाय वेधसे ॥ १९ ॥

नित्याय नित्यज्ञानाय निर्विकाराय तेजसे ।
विद्याविद्यास्वरूपाय कालरूपाय वै नम ॥ २० ॥

निर्मलायोर्मिषट्कादिरहिताय विरागिणे ।
व्यापिने विश्वरूपाय सृष्टिस्थित्यन्तकारिणे ॥ २१ ॥

योगिभिश्चिन्त्यते योऽसौ वेदान्तान्तगचिन्तकै. ।
अन्तरन्त परं-ज्योति स्वरूप प्रणमामि तम् ॥ २२ ॥

तमेवाराध्य-भगवान् ब्रह्मा लोकपितामह ।
प्रजा ससर्ज सकला सुरासुरनरादिका ॥ २३ ॥

सृष्ट्वा प्रजापतीन् दक्षप्रमुखान् स यथाविधि ।
मरीचिमत्रिं पुलहं तथैवाङ्गिरस क्रतुम् ॥ २४ ॥

पुलस्त्यञ्च वशिष्ठञ्च नारदञ्च प्रचेतसम् ।
भृगुञ्च मानसान् पुत्रान् यदा दश ससर्ज स ।
तदा तन्मनसो जाता चारुरूपा वरागना ॥ २५ ॥

नाम्ना सन्ध्येतिविख्याता सायंसन्ध्या यजन्ति याम् ।
न तादृशी देवलोके न मर्त्ये न रसातले ।
कालत्रयेऽपि भविता सम्पूर्णगुणशालिनी ॥ २६ ॥

निसर्गचारुनीलेन[11] कचभारेण राजते ।
मयूरीव विचित्रेण वर्षासु द्विजसत्तमा ॥ २७ ॥

---

9 विस्तरशो । 10 स्थलरूपाय । 11 चारुरूपेण ।

आरक्तगौरमलिन[12]माकर्णान्तं तथालके ।
रेजे सुराधिपधनुश्चारुबालेन्दुसन्निभम् ॥ २८ ॥

प्रफुल्लनीलनलिनश्यामलं नयनद्वयम् ।
चकाशे चकितायास्तु कुरंग्या' सदृशं चलम् ॥ २६ ॥

निसर्ग-चंचलं चारु भ्रू युग्मं श्रवणायतम् ।
मीनाङ्ककोदण्डसमं नीलं तस्या द्विजोत्तमा ॥ ३० ॥

भ्रू मध्याधोनिम्नभागादायत-प्रांशु-नासिका ।
लावण्यानि द्रवन्तीव ललाटात्तिलपुष्पवत् ॥ ३१ ॥

तद्वक्त्रं शोणपद्माभ-पूर्णचन्द्रसमप्रभम् ।
बिम्बाधरारुणिम्नाभीरेजे रागि-मनोहरम् ॥ ३२ ॥

सौन्दर्यलावण्यगुणैरापूर्णं वदन पुन ।
अभितश्चिबुकं यातुमुद्यताविव तत्कुचौ ॥ ३३ ॥

राजीवकुट्मलाकारौ पीनोत्तुगौ निरन्तरौ ।
श्यामास्यौ तत्कुचौ विप्रा मुनीनामपि मोहनौ ॥ ३४ ॥

वलिभाजि क्षीणमध्यं मुष्टिग्राह्यमिवाशुकम्[13] ।
तन्मध्यं ददृशु सर्वे शक्तितुल्यं मनोभुव ॥ ३५ ॥

तश्याश्चोरुयुगं रेजे स्थूलोर्द्धं करभायतम् ।
आनमद्वारणकरप्रतिमं मृदुमन्थरम् ॥ ३६ ॥

स्थलाम्बुजारुणं पादयुग्मं सत्पार्ष्णिराजितम् ।
अंगुलीदलसंकीर्णं कुसुमायुधबाणवत् ॥ ३७ ॥

ता चारुदर्शना तन्वीं तनुरोमावलीवृताम् ।
सस्वेदवदना दीर्घनयना चारुहासिनीम् ॥ ३८ ॥

---

12 मणिक । 13 ..मिवाशुगम् ।

चारुकर्णयुग्मा कान्ता त्रिगम्भीरा षडुन्नताम् ।
दृष्ट्वा धाता समुत्थाय चिन्तयामास हृद्गतम् ॥ ३९ ॥

दक्षादयस्ते स्रष्टारो मरीच्याद्यास्तु मानसा ।
दध्यु समुत्सुका· सर्वे ता दृष्ट्वा वरवर्णिनीम् ॥ ४० ॥

कि कर्मास्या भवेत् सृष्टौ कस्य वा वरवर्णिनी ।
भविष्यतीति ते सर्वे चिन्तयामासुरुत्सुका ॥ ४१ ॥

एवं चिन्तयतस्तस्य ब्रह्मणो मुनिसत्तमा ।
मनस पुरुषो वल्गुराविर्भूतो विनिसृता ॥ ४२ ॥

काञ्चनीचूर्णपीताभ पीनोरस्क· सुनासिक ।
सुवृत्तोरुकटीजघो नीलवेष्टितकेशर[14] ।
लग्नभ्रूयुगलो लोल पूर्णचन्द्रनिभाननः ॥ ४३ ॥

कपाटविस्तीर्णहृदि रोमराजिविराजित ।
शुभ्रमातङ्गकरवत् पीननिस्तलबाहुक ।
आरक्तपाणिनयनमुखपादकरोद्भव ॥ ४४ ॥

क्षीणमध्यश्चारुदन्त प्रमत्तगजकन्धर[15] ।
प्रफुल्लपद्मपत्राक्ष केशरघ्राणतर्पण ।
कम्बुग्रीवो मीनकेतु[16] प्राशुर्मकरवाहन ॥ ४५ ।

पञ्चपुष्पायुधो वेगी पुष्पकोदण्डमण्डित ।
कान्तः कटाक्षपातेन भ्रामयन्नयनद्वयम् ॥ ४६ ॥

सुगन्धि-मरुता[17] भ्रान्तं शृंगाररससेवितम् ।
तं वीक्ष्य तादृशं दक्षप्रमुखा मानसाश्च ते ॥ ४७ ॥

मरीच्याद्या दश ततो विस्मयाविष्टचेतसः ।
औत्सुक्यं परमं जग्मुरापुर्वैकारिकं मन ॥ ४८ ॥

---

14 वेल्लितकधर । 15 बन्धन । 16 नीलकेतु । 17 मारुतप्रान्त ।

स चापि वेधसं वीक्ष्य स्रष्टारं जगता पतिम्।
प्रणम्य पुरुष प्राह विनयानतकन्धरः॥ ४६ ॥

पुरुष उवाच

कि करिष्याम्यहं कर्म ब्रह्मंस्तत्र नियोजय।
मा[18] न्याय्ये पुरुषो यस्मादुचिते शोभते विधे॥ ५० ॥

अभिधानं च यद्योग्यं स्थानं पत्नी च या मम।
तन्मे कुरुष्व लोकेश त्वं स्रष्टा जगता यत॥ ५१ ॥

मार्कण्डेय उवाच

एवं तस्य वच श्रुत्वा पुरुषस्य महात्मन।
क्षणं न किंचित् प्रोवाच स्वसृष्टावपि विस्मित॥ ५२ ॥

नतो मन सुसंयम्य सम्यगुत्सृज्य विस्मयम्।
उवाच पुरुषं ब्रह्मा तत्कर्मोद्देशमावहन्॥ ५३ ॥

ब्रह्मोवाच

अनेन चारुरूपेण पुष्पबाणैश्च पञ्चभिः।
मोहयन् पुरुषास्त्रीश्च कुरु सृष्टि सनातनीम्॥ ५४ ॥

न देवो न च गन्धर्वो न किन्नर-महोरगाः।
नासुरो न च दैत्यो वा न विद्याधर-राक्षसा॥ ५५ ॥

न यक्षा न पिशाचाश्च न भूता न विनायका।
न गुह्यका न वा सिद्धा न मनुष्या न पक्षिण॥ ५६ ॥

पशवो न मृगा कीट-पतङ्गाजलजाश्च ये।
न ते सर्वे भविष्यन्ति न लक्ष्या ये शरस्य ते॥ ५७ ॥

---

18 मा न्यस्येत् पुरुषो यस्मात् उचिते शोभिते विधौ।

अहं वा वासुदेवो वा स्थाणुर्वा पुरुषोत्तम ।
भविष्यामस्तव वशे किमन्यै प्राणधारिभि ॥ ५८ ॥

प्रच्छन्नरूपी जन्तूना प्रविशन् हृदयं सदा ।
सुखहेतु स्वयं भूत्वा कुरु सृष्टिं सनातनीम् ॥ ५९ ॥

त्वत् पुष्पबाणस्य सदा मुख्यं लक्ष्यं मनोऽस्तु तत् ।
सर्वेषा प्राणिना नित्य मदमोदकरो भवान् ॥ ६० ॥

इति ते कर्म कथितं सृष्टि प्रावर्तकं पुन ।
नामापि च गदिष्यामि यत्ते योग्य भविष्यति ॥ ६१ ॥

मार्कण्डेय उवाच

इत्युक्त्वाथ च सुरश्रेष्ठो मानसाना मुखानि च ।
आलोक्य स्वासने पद्मे सूपविष्टोऽभवत् क्षणात् ॥ ६२ ॥

इति श्रीकालिकापुराणे कामप्रादुर्भावो नाम प्रथमोऽध्याय ॥ १ ॥

द्वितीयोऽध्यायः

मार्कण्डेय उवाच

ततस्ते मुनय सर्वे तदभिप्रायवेदिनः ।
चक्रुस्तदुचितं नाम मरीच्यत्रिमुखास्तदा ॥ १ ॥

मुखावलोकनादेव ज्ञात्वा वृत्तान्तमन्यत· ।
दक्षादयस्तु स्रष्टार स्थानं पत्नीञ्च ते ददु· ॥ २ ॥

ततो निश्चित्य नामानि मरीचिप्रमुखाद्विजा ।
ऊचु संगतमेतस्मै पुरुषाय द्विजोत्तमा ॥ ३ ॥

ऋषय ऊचुः

यस्मात् प्रमथ्य चेतस्त्व जातोऽस्माकं तथा विधे ।
तस्मान्मन्मथनाम्ना त्व लोके ख्यातो[19] भविष्यसि ॥ ४ ॥

जगत्सु कामरूपस्त्वं त्वत्समो नहि विद्यते ।
अतस्त्वं काम नाम्नापि ख्यातो भव मनोभव ॥ ५ ॥

मदनान्मदनाख्यस्त्वं शम्भोर्दर्पाच्च दर्पक ।
तथा कन्दर्प नाम्नापि लोके ख्यातो भविष्यति ॥ ६ ॥

त्वदाशुगाना यद्वीर्यं तद्वीर्यं न भविष्यति ।
वैष्णवानाञ्च रौद्राणा ब्रह्मास्त्राणाञ्च[20] तादृशम् ॥ ७ ॥

स्वर्गे[21] मर्त्ये च पाताले ब्रह्मलोके सनातने ।
तव स्थानानि सर्वाणि सर्वव्यापि भवान् यत ।
किं वाचातिविशेषेण सामान्ये नास्ति ते सम ॥ ८ ॥

यत्र यत्र भवेत् प्राणी शाद्वलास्तरवोऽथवा[22] ।
तत्र तत्र तव स्थानमस्त्वाब्रह्मसदोदयम् ॥ ९ ॥

दक्षोऽयं भवत पत्नीं स्वयं दास्यति शोभनाम् ।
आद्य· प्रजापतिर्यो हि यथेष्टं पुरुषोत्तम ॥ १० ॥

एषा च कन्यका चारुरूपा ब्रह्ममनोभवा ।
सन्ध्यानामेति विख्याता सर्वे लोके भविष्यति ॥ ११ ॥

ब्रह्मणो ध्यायतो यस्मात् सम्यग्जाता वराङ्गना ।
अत सन्ध्येति लोकेऽस्मिन्नस्याः ख्यातिर्भविष्यति ॥ १२ ॥

---

19 ज्ञेयो । 20 यक्षाणां न च तादृशम् । 21 स्वर्गमर्त्यश्च पाताल ब्रह्मलोक सनातन । 22 शार्दुला

मार्कण्डेय उवाच

इत्युक्त्वा मुनय सर्वे तूष्णीं तस्थुर्द्विजोत्तमाः ।
अवेक्ष्य ब्रह्मवदनं विनयावनता पुर ॥ १३ ॥

तत कामोऽपि कोदंडमादाय कुसुमोद्भवम् ।
उन्मादनेति विख्यातं कान्ताभ्रू तुल्य-वेल्लितम् ॥ १४ ॥

कौसुमानि तथास्त्राणि पञ्चादाय द्विजोत्तमा ।
हर्षण रोचनाख्यञ्च मोहनं शोषणं तथा ॥ १५ ॥

मारणञ्चेति संज्ञाभिर्मुनिमोहकराण्यपि ।
प्रच्छन्नरूपी तत्रैव चिन्तयामास निश्चयम् ॥ १६ ॥

ब्रह्मणा मम यत्कार्यं समुद्दिष्टं सदातनम् ।
तदिहैव करिष्यामि मुनीना सन्निधौ विधे· ॥ १७ ॥

तिष्ठन्ति मुनयश्चात्र स्वयञ्चापि प्रजापति ।
एषा सन्ध्या वरस्त्री च दक्षोऽप्यत्र प्रजापति ॥ १८ ॥

एते शरव्यभूता मे भविष्यन्त्यद्य निश्चयम् ।
सन्ध्यापि ब्रह्मणा प्रोक्तमिदानीमेव यद्वच ॥ १९ ॥

अहं विष्णुर्हरश्चापि तवास्त्रवशर्तिनः ।
किमन्यैर्जन्तुभिरिति तत्साथं करवाण्यहम् ॥ २० ॥

मार्कण्डेय उवाच

इति सञ्चिन्त्यमनसा निश्चित्य च मनोभव ।
पुष्पज्या पुष्पचापस्य योजयामास मार्गणौ ॥ २१ ॥

आलीढस्थानमासाद्य धनुराकृष्य यत्नत ।
चकार वलयाकारं कामो धन्विवरस्तदा ॥ २२ ॥

संहिते तेन कोदण्डे मारुताश्च सुगन्धय ।
ववुस्तत्र मुनिश्रेष्ठाः सम्यगाह्लादकारिण ॥ २३ ॥

ततस्तानथ धात्रादीन् सर्वानेव च मानसान् ।
पृथक् पृथक् पुष्पशरैर्मोहयामास मोहन ॥ २४ ॥

ततस्ते मुनय सर्वे मोहिताश्चतुरानन ।
मोहितो मनसा किंचिद्विकारं प्रापुरादित· ॥ २५ ॥

सन्ध्या सर्वे निरीक्षन्त सविकारा मुहुर्मुहुः ।
आसन् प्रवृद्धमदना स्त्री यस्मान्मदवर्द्धिनी ॥ २६ ॥

तत सर्वान् स मदनो मोहयित्वा पुन पुन ।
यथेन्द्रियविकारास्ते[23] प्रापुस्तानकरोत्तथा[24] ॥ २७ ॥

उदीरितेन्द्रियो धाता वीक्षाञ्चक्रे यदाथ ताम् ।
तदैव ह्यूनपञ्चाशद्भावा जाता शरीरत ॥ २८ ॥

विब्बोकाद्यास्तथा हावाश्चतु षष्टिकलास्तथा ।
कन्दर्पशरविद्धाया सन्ध्याया अभवन् द्विजा ॥ २९ ॥

सापि तैर्वीक्ष्यमाणाथ कन्दर्पशरपातजान् ।
चक्रे मुहुर्मुहुर्भावान् कटाक्षावरणादिकान् ॥ ३० ॥

निसर्गसुन्दरी सन्ध्या तान् भावान् मदनोद्भवान् ।
कुर्वन्त्यतितरा रेजे स्वर्णदीव तनूर्मिभि ॥ ३१ ॥

अथ भावयुता सन्ध्या वीक्षमाण प्रजापति ।
घर्म्माम्भ पूरिततनुरभिलाषमथाकरोत् ॥ ३२ ॥

ततस्ते मुनय सर्वे मरीच्यत्रिमुखा अपि ।
दक्षाद्याश्च द्विजश्रेष्ठा प्रापुर्वैकारिकेन्द्रियम् ॥ ३३ ॥

दृष्ट्वा तथाविधान् दक्ष मरीचिप्रमुखान् विधिम् ।
सन्ध्याञ्च कर्मणि निजे श्रद्दधे मदनस्तदा ॥ ३४ ॥

---

23 यदेन्द्रियविकारास्ते । 24 तदा ।

यदिदं ब्रह्मणा कर्म ममोद्दिष्टं मयापि तत् ।
कर्तुं शक्यमिति श्रद्धाभावितात्माभवत्तदा ॥ ३५ ॥

ततो वियद्गत शम्भुर्विधिं दृष्ट्वा तथाविधम् ।
सदक्षान्मानसांश्चापि जहासोपजहास च ॥ ३६ ॥

ससाधुवादं तान् सर्वान् विहस्य च पुन पुन ।
उवाचेदं द्विजश्रेष्ठा लज्जयंस्तान् वृषध्वज ॥ ३७ ॥

ईश्वर उवाच

अहो ब्रह्मंस्तव कथं कामभाव समुद्गत ।
दृष्ट्वा स्वतनया नैतद्योग्यं वेदानुसारिणाम् ॥ ३८ ॥

यथा माता तथा जामिर्यथा जामिस्तथा सुता ।
एष वै वेदमार्गस्य निश्चयस्त्वन्मुखोत्थित ।
कथन्तु काममात्रेण तत्ते विस्मारितं विधे[25] ॥ ३९ ॥

धैर्यं जगदिदं ब्रह्मन् समस्तं चतुरानन ।
कथं क्षुद्रेण कामेन तत्ते विघटितं विधे ॥ ४० ॥

एकान्तयोगिन कस्मात् सर्वदा दिव्यदर्शना[26] ।
कथं दक्षमरीच्याद्या लोलुपा स्त्रीषु मानसा ॥ ४१ ॥

कथं कामोऽपि मन्दात्मा प्राप्तकर्माधुनैव तु ।
युष्मान् शरव्यान् कृतवानकालज्ञोऽल्पचेतन[27] ॥ ४२ ॥

धिगस्तु तं मुनिश्रेष्ठ यस्य कान्ताजनो हठाद् ।
धैर्यमाकृष्य लौल्येषु मज्जयत्यपि तन्मन. ॥ ४३ ॥

मार्कण्डेय उवाच

इति तस्य वच श्रुत्वा लोकेशो गिरिशस्य च ।
व्रीडया द्विगुणीभूतस्वेदार्द्रो ह्यभवत् क्षणात् ॥ ४४ ॥

---

25 मन । 26 दिग्दर्शिन । 27 अल्पचेतस ।

ततो निगृह्यैन्द्रियक विकारं चतुरानन ।
जिघृक्षुरपि तत्याज ता सन्ध्या कामरूपिणीम् ॥ ४५ ॥

तच्छरीरात्तु घर्माम्भो यत् पपात द्विजोत्तमा ।
अग्निष्वात्ता वर्हिषदो जाता पितृगणास्तत· ॥ ४६ ॥

भिन्नाञ्जननिभा सर्वे फुल्लराजीवलोचना ।
नितान्त-यतय· पुण्या. संसारविमुखा परा ॥ ४७ ॥

सहस्राणा चतु षष्टिरग्निष्वात्ता प्रकीर्तिता ।
षडशीतिसहस्राणि तथा वर्हिषदो द्विजा ॥ ४८ ॥

घर्माम्भ पतितं भूमौ यद्दक्षस्य शरीरत ।
समस्तगुणसम्पन्ना तस्माज्जाता वराङ्गना ॥ ४६ ॥

तन्वंगी तनुमध्या च तनुरोमावली शुभा ।
मृद्व ंगी चारुदशना तप्तकाञ्चनसुप्रभा ॥ ५० ॥

मरीचिप्रमुखै षड्भिर्निगृहीतेन्द्रियक्रिया ।
ऋते क्रतु वशिष्ठञ्च पुलस्त्याङ्गिरसौ तदा ॥ ५१ ॥

क्रत्वादोना चतुर्णाञ्च यो भूमौ निपपात ह ।
तत पितृगणा जाता अपरे द्विजसत्तमा ॥ ५२ ॥

सोमपा आज्यपा नाम्ना तथैवान्ये सुकालिन. ।
हविर्भुजस्तु ते सर्वे कव्यवाहा प्रकीर्तिता ॥ ५३ ॥

क्रतोस्तु सोमपाः पुत्रा वसिष्ठस्य सुकालिन· ।
आज्यपाख्या पुलस्त्यस्य हविष्मन्तोऽङ्गिर· सुताः ॥ ५४ ॥

जातेषु तेषु विप्रेन्द्रा अग्निष्वात्तादिकेष्वथ ।
लोकाना पितृवर्गेषु कव्यवाहा[28] समन्तत ॥ ५५ ॥

---

28 क्रव्यावात्सु ।

सर्वेषामेव भूताना ब्रह्मा भूत पितामह ।
सन्ध्या पितृप्रसूर्भूता तदुद्देशाद्यतोऽभवत् ॥ ५६ ॥

अथ शङ्करवाक्येन लज्जित स पितामह. ।
कन्दर्पाय चुकोपाशु भ्रूकुटीकुटिलानन ॥ ५७ ॥

पुरैव तदभिप्रायं विदित्वा सोऽपि मन्मथ ।
स्वबाणान् सञ्जहाराशु[29] भीत पशुपतेर्विधे ॥ ५८ ॥

तत क्रोधसमाविष्टो ब्रह्मा लोक-पितामह ।
यच्चकार द्विजेन्द्रास्तच्छृणुध्वं सुसमाहिता ॥ ५९ ॥

इति श्रीकालिकापुराणे ब्रह्ममोहनो नाम द्वितीयोऽध्याय ॥ २ ॥

तृतीयोऽध्यायः

मार्कण्डेय उवाच

तत कोपसमाविष्ट[30] पद्मयोनिर्जगत्पति ।
प्रजज्वालातिबलवद्दिधक्षुरिव पावक ॥ १ ॥

उवाच चेश्वरं कामो भवत पुरतो यतः ।
पुष्पेषुभिर्मामभजत् तत्फलस्याप्नुयाद्धर ॥ २ ॥

तव नेत्राग्निनिर्दग्ध कन्दर्पो दर्पमोहित ।
भविष्यति महादेव कृत्वा कर्मातिदुष्करम् ॥ ३ ॥

इति वेधा. स्वयं कामं शशाप द्विजसत्तमा ।
समक्षं व्योमकेशस्य मुनीनाञ्च यतात्मनाम्[31] ॥ ४ ॥

अथ भीतो रतिपतिस्तत्क्षणात् त्यक्तमार्गण· ।
प्रादुर्बभूव प्रत्यक्ष शापं श्रुत्वातिदारुणम् ॥ ५ ॥

---

29 शरासन जहाराशु । 30 कोपसमायुक्त । 31 महात्मना ।

उवाच चेद ब्रह्माणं सदक्ष समरीचिकम् ।
तथ्यश्च गद्गद भीत्या भीतिर्हि गुणहानिकृत् ॥ ६ ॥

मन्मथ उवाच

ब्रह्मन् किमर्थं भवता शप्तोऽहमतिदारुणम् ।
अनागस्तव[32] लोकेश न्यायमार्गानुसारिण ॥ ७ ॥

त्वयेवोक्तन्तु तत्[33] कर्म यत्तु कुर्यामहं विभो ।
तत्र योग्यो न शापो मे यतो नान्यन्मया कृतम् ॥ ८ ॥

अहं विष्णुस्तथा शम्भु सर्वे त्वच्छरगोचरा ।
इति यद्भवता प्रोक्तं तन्मयापि परीक्षितम् ॥ ९ ॥

नापराधो ममास्त्यत्र ब्रह्मन् मयि निरागसि ।
दारुण शमयस्वेनं शापं मम जगत्पते ॥ १० ॥

मार्कण्डेय उवाच

इति तस्य वच. श्रुत्वा विधाता जगता पतिः ।
प्रत्युवाच यतात्मानं मदनं सदयं मुहु. ॥ ११ ॥

ब्रह्मोवाच

आत्मजा मम सन्ध्येयं यस्मादेतत्सकाशत·[34] ।
लक्ष्यीकृतोऽहं भवता तत· शापो मया कृत· ॥ १२ ॥

अधुना शान्तरोपोऽहं त्वां वदामि मनोभव ।
भवत· शापशमनं भविष्यति यथा तथा ॥ १३ ॥

त्वं भस्म भूत्वा मदन भर्गलोचनवह्निना ।
तस्यैवानुग्रहात् पश्चाच्छरीरं समवाप्स्यसि ॥ १४ ॥

---

32 अनागस्तव सारतः । 33 यत् कर्म तत् तत् । 34 सकामतः ।

यदा हरो महादेव कुर्याद्दारपरिग्रहम् ।
तदा स एव भवत शरीरं प्रापयिष्यति ॥ १५ ॥

मार्कण्डेय उवाच

एवमुक्त्वाथ मदनं ब्रह्मा लोकपितामह ।
अन्तर्दधे मुनीन्द्राणा मानसानाञ्च पश्यताम् ॥ १६ ॥

तस्मिन्नन्तर्हिते शम्भु सर्वेपाञ्च विधातरि ।
यथेष्टदेशं गतवान् ब्रह्मा मारुतरंहसा ॥ १७ ॥

वेधस्यन्तर्हिते तस्मिन् गते शम्भौ निजास्पदम् ।
दक्ष प्राहाथ कन्दर्पं पत्नीं तस्य निदर्शयन् ॥ १८ ॥

दक्ष उवाच

मद्देहजेयं कन्दर्प मद्रूप-गुणसंयुता[35] ।
एनां गृह्णीष्व भार्यार्थं भवत सदृशीं गुणै ॥ १६ ॥

एषा तव महातेजा[36] सर्वदा सहचारिणी ।
भविष्यति यथाकामं धर्मतो वशवर्तिनी ॥ २० ॥

मार्कण्डेय उवाच

इत्युक्त्वा प्रददौ दक्षो देहस्वेदाम्बुसम्भवाम्[37] ।
कन्दर्पायाग्रत कृत्वा नाम कृत्वा रतीति[38] ताम् ॥ २१ ॥

तां वीक्ष्य मदनो रामा रत्याख्या सुमनोहराम् ।
आत्माशुगेन विद्धोऽसौ मुमोह रतिरञ्जित: ॥ २२ ॥

क्षणप्रभावदेकान्तगौरी मृगदृशी सदा ।
लोलापाग्यथ तस्यैव मृगीव सदृशी बभौ ॥ २३ ॥

---

35 मद्रूपगुणशालिनी । 36 महाभागा । 37 देहस्वेदात् समुद्भवा ।
38 रतिं तु ।

तस्या भ्रूयुगलं वीक्ष्य संशयं मदनोऽकरोत्।
उन्मादकृन्मे[39] कोदण्डं कि[40] धात्रा स्यान्निवेशितम्॥ २४॥

कटाक्षाणामाशुगतिं दृष्ट्वा तस्या द्विजोत्तमाः।
आशुगत्वं निजास्त्राणां श्रद्दधे न च चारुताम्॥ २५॥

तस्याः स्वभावसुरभि धीरं श्वासानिलं तथा।
आघ्राय मदनः श्रद्धां त्यक्तवान् मलयानिले॥ २६॥

पूर्णेन्दुसदृशं वक्त्रं दृष्ट्वा भ्रूलक्ष्मलक्षितम्[41]।
न निश्चिकाय मदनो भेदं तन्मुखचन्द्रयोः॥ २७॥

सुवर्णपद्मकलिकातुल्यं तस्याः कुचद्वयम्।
रेजे चुचुकयुग्मेन भ्रमरेणेव सेवितम्॥ २८॥

दृढपीनोन्नतघन-स्तनमध्याद्विलम्बिनीम्।
आ नाभितो रोमराजिं[42] तन्वीं चार्वायतां शुभाम्॥ २९॥

ज्यां पुष्पधनुषः कामः षट्पदावलिसम्भृताम्[43]।
विसस्मार च यस्मात्तां विगृह्यैनां[44] निरीक्षते॥ ३०॥

गम्भीरनाभिरन्ध्रान्तश्चतुष्पार्श्वत्वगावृताम्।
आननाब्जेक्षणद्वन्द्वमारक्तकमलं यथा॥ ३१॥

क्षीणमध्येन वपुषा निसर्गाष्टपदप्रभा।
रत्नवेदीव[45] ददृशे कामेन द्विजसत्तमाः॥ ३२॥

रम्भास्तम्भायतस्निग्धं तदूरुयुगलं मृदु।
निजशक्तिसमं कामो वीक्षाञ्चक्रे मनोहरम्॥ ३३॥

आरक्तपार्ष्णिपादाग्रप्रान्तभागं पदद्वयम्।
अनुरागमयं चित्रं स्थितं तस्यां मनोभवः॥ ३४॥

---

39 उन्मादनं मत्। 40 किं त्वस्त्वस्यां। 41 भ्रूयुगं।
42 आनाभितोरोमवीथिं। 43 रञ्जिता। 44 विसृज्यैनां। 45 रुक्म ।

तस्या करयुगं रक्तनखरै किंशुकोपमे ।
वृत्ताभिरङ्गुलिभिश्च सूक्ष्माग्राभिर्मनोहरम् ॥ ३५ ॥
इति दृष्ट्वा स्मरो मेने[46] ममास्त्रैर्द्विगुणीकृतै. ।
मा मोहयितुमुतिद्यक्ता किमेषा द्विजसत्तमा ॥ ३६ ॥
तद्बहुयुगलं कान्तं मृणालयुगलायतम् ।
मृदुस्निग्धं रराजातिकान्ति-तोयप्रवाहवत् ॥ ३७ ॥
नीलनीरदसङ्काश केशपाशो मनोहर ।
चमरीबालभारवद्विभाति स्म स्मरप्रिय ॥ ३८ ॥
ता वीक्ष्य मदनो देवीं रतिमतिमनोहराम् ।
कान्तितोयौघसम्पूर्णां कुचवक्त्राब्जकुड्मलाम्[47] ॥ ३९ ॥
वक्त्रपद्मा चारुबाहु-मृणालीशकलान्विताम् ।
भ्रूयुग्मविभ्रमद्व्रात-तनूर्मिपरिराजिताम्[48] ॥ ४० ॥
कटाक्षपातभृङ्गौघा[49] नेत्रनीलोत्पलान्विताम् ।
तनुलोमालिशैवाला मनोद्रुमविशातिनीम् ॥ ४१ ॥
निम्ननाभिह्रदा दक्षप्रालेयाद्रिसमुद्भवाम् ।
गङ्गामिव महादेवो जग्राहोत्फुल्ललोचन ॥ ४२ ॥
उवाच च तदा दक्षं कामो मोदभरान्वित[50] ।
विस्मृत्य शापञ्च तदा विधिदत्तं सुदारुणम् ॥ ४३ ॥

मदन उवाच

अनया सहचारिण्या सम्यक् सुन्दररूपया ।
समर्थोमोहितुं शम्भुं किमन्यैर्जन्तुभिर्विभो ॥ ४४ ॥
यत्र यत्र मया लक्ष्यं क्रियते धनुषोऽनघ ।
तत्रानयापि चेष्टव्यं[51] मायया रमणाह्वया ॥ ४५ ॥

---

46 रेमे । 47 कुचरक्ताब्ज । 48 परिवारिताम् । 49 तुङ्गौघां ।
50 मोदभरानन. । 51 द्रष्टव्यं ।

यदा देवालय यामि पृथिवीं वा रसातलत्।
तदैषाप्यस्तु सध्रीची सर्वदा चारुहसिनी ॥ ४६ ॥
यथा पद्मालया विष्णोर्जलदाना यथा तडित्।
तथा ममैषा भविता प्रजाध्यक्षसहायिनी ॥ ४७ ॥

मार्कण्डेय उवाच

इत्युक्त्वा मदनो देवीं रतिं जग्राह सोत्सुकः।
सागराद्दुत्थिता लक्ष्मी हृषीकेश इवोत्तमाम् ॥ ४८ ॥
रराज स तया सार्द्धं भिन्नपीतप्रभः स्मर।
जीमूत इव सन्ध्याया सौदामिन्या मनोज्ञया ॥ ४६ ॥

इति रतिपतिरुच्चैर्मोदयुक्तो रति ता
हृदि परिजगृहे या योगदर्शीव विद्याम।
रतिरपि पतिमग्र्यं प्राप्य तोपञ्च लेभे
हरिमिव कमलोत्था पूर्णचन्द्रोपमास्या ॥ ५० ॥

इति श्रीकालिकापुराणे रत्युत्पत्तौ तृतीयोऽध्यायः।

चतुर्थोऽध्यायः

मार्कण्डेय उवाच

ततः प्रभृति धातापि यदैवान्तर्हितः पुरा।
चिन्तयामास सततं शम्भुवाक्यविषार्दितः ॥ १ ॥
कान्ताभिलापामात्रं मे दृष्ट्वा शम्भुरगर्हयत्।
मुनीना पुरत कस्मात् स दारान् संग्रहीष्यति ॥ २ ॥
का वा भवित्री तज्जाया का[52] च तन्मनसि स्थिता।
योगमार्गमवष्टभ्य[53] तस्य मोहं करिष्यति ॥ ३ ॥

52 था। 53 अवज्ञाप्य।

मन्मथोऽपि समर्थो नो भविष्यत्यस्य मोहने।
नितान्तयोगी रामाणा नामापि सहते न सः ॥ ४ ॥
अगृहीतेषु दारेषु हरेण कथमादित ।
मध्येऽन्ते[54] च भवेत् सृष्टिस्तद्वधो[55] न न्यकारित. ॥ ५ ॥
केचिद्भविष्यन्ति भुवि मया बाध्या महाबला ।
केचिद्विष्णोर्वारणीया केचिच्छम्भोरुपायत ॥ ६ ॥
संसारविमुखे शम्भौ तथैकान्तविरागिणि।
अस्माद्दते न कर्मान्यत् करिष्यति न संशय ॥ ७ ॥
चिन्तयिन्निति लोकेशो ब्रह्मा लोकपितामह ।
पुनर्ददर्श भूमिष्ठान् दक्षादीन वियति स्थित ॥ ८ ॥
रतिद्वितीयं मदनं मोदयुक्तं निरीक्ष्य च।
पुनस्तत्र गत प्राह सान्त्वयन् पुष्पसायकम् ॥ ९ ॥

ब्रह्मोवाच

अनया सहचारिण्या राजसे त्वं मनोभव ।
एषा च भवता पत्या युक्ता संशोभते भृशम् ॥ १० ॥
यथा श्रिया हृषीकेशो यथा तेन हरिप्रिया ।
क्षणदा विधुना युक्ता तया युक्तो यथा विधु ॥ ११ ॥
तथैव युवयोः शोभा दाम्पत्यञ्च पुरस्कृतम् ।
अतस्त्वं जगत केतुर्विश्वकेतुर्भविष्यसि ॥ १२ ॥
जगद्धिताय वत्स त्वं मोहयस्व पिणाकिनम् ।
यथा सुखमना.[57] शम्भुः कुर्य्याद्दारपरिग्रहम् ॥ १३ ॥
विजने स्निग्धदेशे च पवतेषु सरित्सु च।
यत्र यत्र प्रयातीशस्तत्र तत्रानया सह ॥ १४ ॥
मोहयस्व यतात्मानं वनिताविमुखं हरम् ।
त्वदृते विद्यते नान्य कश्चिदस्य विमोहकः ॥ १५ ॥

---

54 मध्ये चैव। 55 सृष्टिस्तद्बाधानन्यवारिता। 56 बाधनीया।
57 सर्गमना'।

भूते हरे सानुरागे भवतोऽपि मनोभव।
शापोपशान्तिर्भविता तस्मादात्महितं कुरु॥ १६॥
सानुरागो वरारोहा यदीच्छति मनोभव[58]।
तदा तवोपभोगाय[59] स त्वा सम्भावयिष्यति॥ १७॥
तस्माज्जगद्धिताय त्वं यतस्व हरमोहने।
शिवस्य भव केतुस्त्वं मोहयित्वा महेश्वरम्॥ १८॥

मार्कण्डेय उवाच

इति श्रुत्वा वचस्तस्य ब्रह्मणः परमात्मनः।
उवाच मन्मथस्तथ्यं ब्रह्माणं जगतो हितम्॥ १९॥

मन्मथ उवाच

करिष्येऽहं तव विभो वचनाच्छम्भुमोहनम्[60]।
किन्तु योषिन्महास्त्रं मे तत्र[61] कान्ता प्रभो[62] सृज॥ २०॥
मया सन्मोहिते शम्भौ यया तस्यानुमोहनम्।
कार्यं मनोरमा रामां ता निदेशय लोकभृत्[63]॥ २१॥
तामहं नहि पश्यामि यया तस्यानुमोहनम्।
कर्तव्यमधुना धातस्तत्रोपायं तथा कुरु॥ २२॥

मार्कण्डेय उवाच

एवं वादिनि कन्दर्पे धाता लोकपितामहः।
कुर्यां सन्मोहनीं योषामिति चिन्तां जगाम ह॥ २३॥
चिन्ताविष्टस्य तस्याथ निःश्वासो यो विनिःसृतः।
तस्माद्वसन्तः संजातः पुष्पव्रातविभूषितः॥ २४॥
चूताङ्कुरान्[64] मुकुलितान् बिभ्रद्भ्रमरसंहतिम्।
किंशुकान् सारसान् रेजे प्रफुल्ल इव पादपः॥ २५॥

58 महेश्वरः। 59 भवोपयोगाय। 60 हरमोहनम्। 61 ततः। 62 मार्या। 63 लोकसृट्। 64 चुताङ्कराजकलिका।

शोणराजीवसंकाश फुल्लतामरसेक्षण ।
सन्ध्योदिताखण्डशशिप्रतिमास्य सुनासिक ॥ २६ ॥
शखवच्छ्रवणावर्त श्यामकुञ्चितमूर्द्धज ।
सन्ध्याशुमालिसदृश-कुडलद्वयमंडित ॥ २७ ॥
प्रमत्तमा[65]तङ्गगतिर्विस्तीर्णहृदयस्तल ।
पीनस्थूलायतभुज कठोरकरयुग्मक· ॥ २८ ॥
सुवृत्तोरुकटीजंघ कम्बुग्रीवोन्नतासक· ।
गूढजत्रु पीनवक्षा सम्पूर्ण सर्वलक्षणै ॥ २९ ॥
तादृशेऽथ समुत्पन्ने सम्पूर्णे कुसुमाकरे ।
ववौ वायुः स-सुरभि पादपा अपि पुष्पिता. ॥ ३० ॥
पिकाश्च नेदु शतश[66] पञ्चमं मधुरस्वरा ।
प्रफुल्लपद्मा अभवन् सरस्य पुष्टपुष्करा·[67] ॥ ३१ ॥
तमुत्पन्नमवेक्ष्याथ तथा तादृसमुत्तमम् ।
हिरण्यगर्भो मदनं जगाद मधुरं[68] वच ॥ ३२ ॥

ब्रह्मोवाच

एष मन्मथ ते मित्रं सदा सहचरो भवेत् ।
आनुकूल्यं तव कृते सर्वदैव करिष्यति ॥ ३३ ॥
यथाग्ने. श्वसनो मित्रं सर्वत्रोपकरोति च ।
तथायं भवतो मित्र सदा त्वामनुयास्यति ॥ ३४ ॥
वसतेरन्तहेतुत्वाद्वसन्ताख्यो भवत्वयम् ।
तवानुगमनं कर्म तथा लोकानुरञ्जनम् ॥ ३५ ॥
असौ वसन्त· शृंगारो वसन्ते मलयानिलः ।
भवन्तु सुहृदो भावा सदा त्वद्वशवर्तिनः ॥ ३६ ॥
विब्वोकाद्यास्तथा हावाश्चतु·षष्टिकलास्तथा ।
कुर्वन्तु रत्या सौहृद्यं सुहृदस्ते यथा तव ॥ ३७ ॥

65 प्रमत्तवारण 66 सतत । 67 स्वच्छपुष्करा । 68 मधुरस्वर ।

एभि: सहचरै: काम वसन्तप्रमुखैर्भवान्।
अनया सहचारिण्या त्वद्युक्तपरिवारया ॥ ३८ ॥
मोहयस्व महादेवं कुरु सृष्टिं सनातनीम्।
यथेष्टदेशं गच्छ त्वं सर्वैं सहचरैर्वृत:।
अहं ता भावयिष्यामि यो हरं मोहयिष्यति ॥ ३९ ॥
एवमुक्तोऽथ मदनः सुरज्येष्ठेन हर्षित ।
जगाम[69] सगणस्तत्र सपत्न्यनुचरस्तदा ॥ ४० ॥
दक्षं प्रणम्य तान् सर्वान् मानसानभिवाद्य च।
यत्रास्ति शम्भुर्गतवास्तत्स्थानं[70] मन्मथस्तदा ॥ ४१ ॥

तस्मिन् गते सानुचरेऽथ मन्मथे
शृंगारभावादियुते द्विजोत्तमा.।
प्रोवाच दक्षं मधुरं पितामह:
सार्द्धं मरीच्यत्रिमुखैर्मुनीश्वर: ॥ ४२ ॥

इति श्रीकालिकापुराणे वसन्तोत्पत्तौ चतुर्थोऽध्यायः ॥ ४ ॥

पञ्चमोऽध्यायः

मार्कण्डेय उवाच

अथ ब्रह्मा तदोवाच दक्षाय सुमहात्मने।
मरीचिप्रमुखेभ्यश्च वचनञ्चेदमञ्जसा ॥ १ ॥

ब्रह्मोवाच

भवित्री शम्भुपत्नी का का तं सन्मोहयिष्यति।
इति सञ्चिन्तयन् कान्तां न स्थिरीकर्तुमुत्सहे ॥ २ ॥

---

69 ननाम चरणौ तस्य। 70 शम्भुस्तत्स्थानं मन्मथोगतवान् तदा।

विष्णुमायामृते दक्ष महामाया जगन्मयीम् ।
नान्या तन्मोहकर्त्री स्यात् सन्ध्यासावित्र्युमामृते[71] ॥ ३ ॥
तस्मादहं विष्णुमाया योगनिद्रा जगत्प्रसूम् ।
स्तौमि सा चारुरूपेण शंकरं मोहयिष्यति ॥ ४ ॥
भवांस्तु दक्ष तामेव यजता विश्वरूपिणीम् ।
यथा तव सुता भूत्वा हरजाया भविष्यति ॥ ५ ॥

मार्कण्डेय उवाच

एवं वचनमाकर्ण्य ब्रह्मण परमात्मनः ।
उवाच दक्ष. स्रष्टारं मरीच्यादिभिरीरित ॥ ६ ॥

दक्ष उवाच

यथात्थ भगवंस्तथ्यं त्वं लोकेश जगद्धितम ।
तत् करिष्यामहे सम्यग् यथा स्यात्तन्मनोहरा ॥ ७ ॥
तथा तथा भविष्यामि यथा मम सुता स्वयम् ।
विष्णुमाया भवेत् पत्नी भूत्वा शम्भोर्महात्मन· ॥ ८ ॥

मार्कण्डेय उवाच

एपमेवेति तैरुक्तं मरीचिप्रमुखैस्तदा ।
यष्टु दक्षः समारेभे महामाया[72] जगन्मयीम् ॥ ९ ॥
क्षीरोदोत्तरतीरस्थस्ता कृत्वा हृदयस्थिताम् ।
तपस्तप्तुं समारेभे द्रष्टुं प्रत्यक्षतोऽम्बिकाम् ॥ १० ॥
दीव्यवर्षेण दक्षोऽपि सहस्राणा त्रय·[73] समा· ।
तपश्चचार नियत संयतात्मा दृढव्रतः ॥ ११ ॥
मारुताशी निराहारो जलाहारी च पर्णभुक् ।
एवं निनाय तत्कालं चिन्तयंस्ता जगन्मयीम् ॥ १२ ॥

---

71 सावित्र्युपासिता । 72 विष्णुमायां । 73 त्रयं ।

गते दक्षे तप कर्तु[74] ब्रह्मा सर्वजगत्पति ।
जगाम मन्दराभ्यासं पुण्यात्पुण्यतरं[75] वरम् । १३ ॥
तत्र गत्वा जगद्धात्रीं विष्णुमाया जगन्मयीम् ।
तुष्टाव वाग्भिरर्थ्याभिरेकतानं[76] शतं समा. ॥ १४ ॥

ब्रह्मोवाच

विद्याविद्यात्मिका शुद्धा निरालम्बा निराकुलाम्[77] ।
स्तौमि देवीं जगद्धात्रीं स्थूलाणीय स्वरूपिणीम् ॥ १५ ॥
यस्या[78] उदेति च जगत्प्रधानाख्यं जगत्परम्[79] ।
यस्यास्तदंशभूता[80] त्वा स्तौमि निद्रा सनातनीम् ॥ १६ ॥
त्वं चिति परमानन्दा परमात्मस्वरूपिणी ।
शक्तिस्त्व सर्वभूताना त्वं सर्वेषा च पावनी[81] ॥ १७ ॥
त्व सावित्री जगद्धात्री त्वं सन्ध्या त्वं रतिर्धृति. ।
त्वं हि ज्योति.स्वरूपेण ससारस्य प्रकाशिनी ॥ १८ ॥
तथा तम स्वरूपेण च्छादयन्ती सदा जगत् ।
त्वमेव सृष्टिरूपेण संसारपरिपूरणी ॥ १६ ॥
स्थितिरूपेण च हरेर्जगता च हितैषिणी ।
तथैवान्तस्वरूपेण जगतामन्तकारिणी ॥ २० ॥
त्वं मेधा त्वं महामाया त्वं स्वधा पितृमोदिनी ।
त्वं स्वाहा त्वं नमस्कार-वषट्कारौ तथा स्मृतिः ॥ २१ ॥
त्वं पुष्टिस्त्वं[82] धृतिर्मैत्री करुणा मुदिता तथा ।
त्वमेव लज्जा त्वं शान्तिस्त्वं कान्तिर्जगदीश्वरी ॥ २२ ॥
महामाया त्वंच स्वाहा स्वधा च पितृदेवता ।
या सृष्टिशक्तिरस्माकं स्थितिशक्तिश्च या हरेः ॥ २३ ॥

---

74 सर्तुं । 75 पुण्य पुण्यकर बहु । 76 वाग्भिरर्थ्याभिरेकर्ता स तन्मना. । 77 निरर्गलां । 78 यस्मात् । 79 जगद्भवम् । 80 तस्मात्तदङ्गभूतां । 81 भाविनी । 82 सृष्टिः ।

अन्तशक्तिस्तथैशानी[83] सा त्व शक्ति सनातनि ॥ २४ ॥
एका त्वं द्विविधा[84] भूत्वा मोक्षसंसारकारिणी।
विद्याविद्यास्वरूपेण स्वप्रकाशाप्रकाशत ॥ २५ ॥
त्व लक्ष्मी सर्वभूताना स्वं छाया त्वं सरस्वती।
त्रयीमयी त्रिमात्रा[85] त्वं[86] सर्वभूतस्वरूपिणी ॥ २६ ॥
उद्‌गीति सामवेदस्य या पितृगणरञ्जनी।
त्व वेदि· सर्वयज्ञाना सामिधेनी तथा हवि ॥ २७ ॥
यदव्यक्तमनिर्देश्यं निष्कलं परमात्मन.।
रूपं तथैव[87] तन्मात्रं सकलं च जगन्मयम् ॥ २८ ॥
या मूर्त्तिर्विंतता[88] सर्वधरित्री विभ्रती क्षितिम्।
सा त्वं विश्वम्भरे लोके शक्तिभूतिप्रदा सदा ॥ २९ ॥
त्वं लक्ष्मीश्चेतना कान्तिस्त्वं पुष्टिस्त्वं सनातनी।
त्वं कालरात्रिस्त्वंमुक्ति शान्ति प्रज्ञा तथा स्मृति[89] ॥ ३० ॥
संसारसागरोत्तार-तरणि सुखमोक्षदे[90]।
प्रसीद सर्वजगता त्वं गतिस्त्वं मति सदा[91] ॥ ३१ ॥
त्वं नित्या त्वमनित्या च त्वं चराचरमोहिनी।
त्वं सन्धिनी सर्वयोग-सागोपागविभाविनी ॥ ३२ ॥
चिन्ता कीर्तिर्यतीना त्वं त्वं[92] तदष्टागसंयुता।
त्वं खड्गिनी शूलिनी च चक्रिणी घोररूपिणी ॥ ३३ ॥
त्वमीश्वरी जनाना त्वं सर्वानुग्रहकारिणी।
विश्वादिस्त्वमनादिस्त्वं विश्वयोनिरयोनिजा।
अनन्ता सर्वजगतस्त्वमेवैकान्तकारिणी ॥ ३४ ॥
नितान्तनिर्मला त्वं हि तामसीति च गीयसे।
त्वं हिंसा त्वमहिंसा च त्वं काली चतुरानना ॥ ३५ ॥

---

83 तथशस्य 84 त्रिविधा 85 त्रिमूर्तिः। 86 चतुष्क।
87 तवैव तत् सूक्ष्म। 88 विस्तृता। 89 धृति। 90 भोग्यदे।
91 तथा। 92 दण्डदंष्टांशसंयुता।

त्वं परा सर्वजननी दमनी दामिनी[93] तथा ।
त्वय्येव लीयते विश्वं भाति तत्त्वं तद्विभर्त्ति च ॥ ३६ ॥
त्वं[94] सृष्टिहीना त्वं सृष्टिस्त्वमकर्णापि सश्रुतिः ।
तपस्विनी पाणिपादहीना त्वं[95] नितरा ग्रहा ॥ ३७ ॥
त्वं द्यौस्त्वमापस्त्वं ज्योतिर्वायुस्त्वं च नभो मनः ।
अहंकारोऽपि जगतामष्टधा प्रकृतिः कृति ॥ ३८ ॥
जगन्नाभिर्मेरुरूपधारिणी नालिकापरा ।
परापरात्मिका शुद्धा माया मोहातिकारिणी ॥ ३९ ॥
कारणं कार्यभूतञ्च सत्यं शान्तं शिवाशिवे ।
रूपाणि तव विश्वार्थे रागवृक्षफलानि च ॥ ४० ॥
नितान्त ह्रस्वा दीर्घा च नितान्ताणुबृहत्तनु ।
सूक्ष्माण्यखिललोकस्य व्यापिनी त्वं जगन्मयी ॥ ४१ ॥
मानहीना विमानाति विमानोन्मानसम्भवा ।
यदष्टिव्यष्टिसम्भोगरागादिगलिताशया[96] ।
तत्ते महिम्नि तद्रूपं तव भ्रान्त्यादिकं च यत् ॥ ४२ ॥
इष्टनिष्टाविपाकज्ञा[97] यथेष्टानिष्टकारणम् ।
सर्गादिमध्यान्तमयं निम्नं[98] रूपं तथैव च ॥ ४३ ॥
विचाराष्टाङ्गयोगेन सम्पाद्यैवं मुहुर्मुहु ।
यत् स्थिरीक्रियते तत्त्वं तत्ते रूपं सनातनम् ॥ ४४ ॥
वाह्यावाह्ये सुखं दुःखं ज्ञानाज्ञाने लयालयौ[99] ।
उपतापस्तथा शान्तिर्भूतिस्त्वं जगत पतेः ॥ ४५ ॥
यस्याः प्रभावं नो वक्तुं शक्नोति भुवनत्रये[100] ।
तस्यैव सन्मोहकरी सा त्वं किं स्तूयसे मया ॥ ४६ ॥
योगनिद्रा महानिद्रा मोहनिद्रा जगन्मयी ।
विष्णुमाया च प्रकृतिः कस्त्वा स्तुत्या विभावयेत् ॥ ४७ ॥

---

93 यामिनी । 94 त्व दृष्टिहीना सदृष्टिस्त्वमकर्णातिसद्गति । 95 निरताग्रहा । 96 समष्टिव्यष्टिसंयोग । 97 विकारज्ञा । 98 कृत्स्नं । 99 नयानयौ । 100 जगतः पतिः ।

मम विष्णो. शंकरस्य या[1] वपुर्वहनात्मिका।
तस्याः प्रभावं को वक्तु गुणान् वेत्तु च क· क्षम ॥ ४८ ॥
प्रकाश[2]करणज्योति स्वरूपान्तरगोचरा।
त्वमेव जंगमस्थेयरूपैका बाह्यगोचरा ॥ ४६ ॥
प्रसीद सर्वजगता जननी स्त्रीस्वरूपिणी।
विश्वरूपिणि विश्वेशे प्रसीद त्वं सनातनि ॥ ५० ॥

मार्कण्डेय उवाच

एवं संस्तूयमाना सा योगनिद्रा विरिञ्चिना।
आविर्बभूव प्रत्यक्षं ब्रह्मण परमात्मन. ॥५१ ॥
स्निग्धाञ्जनद्युतिश्चारुरूपोत्तुङ्गा चतुर्भुजा।
सिंहस्था खड्गनीलाब्जहस्ता मुक्तकचोत्करा ॥ ५२ ॥
समक्षमथ ता वीक्ष्य स्रष्टा सर्वजगद्गुरु।
भक्त्या विनम्रतुगास्तुष्टाव च ननाम च ॥ ५३ ॥

ब्रह्मोवाच

नमो नमस्ते जगत· प्रवृत्ति-
निवृत्तिरूपे स्थितिसर्गरूपे।
चराचराणा भवती च शक्ति
सनातनी सर्वविमोहनीति ॥ ५४ ॥
या श्री सदा केशवमूर्त्तिमाया[3]
विश्वम्भरा या सकलं विभर्त्ति।
ह्रीर्योगिनी[4] या महिता मनोज्ञा
सा त्वं नमस्ते परमात्मसारे[5] ॥ ५५ ॥
यामादिपूर्वे हृदि योगिनो या
विभावयन्ति प्रमितिप्रतीताम्।

---

1 यावत् प्रस्रवनान्तिके। 2 करुणा। 3 माला। 4 योगिनां।
5 परमार्थसारे।

प्रकाशशुद्धादियुता विरागा
सा[6] त्वं हि विद्या विविधावलम्बा ॥ ५६ ॥
कूटस्थमव्यक्तमचिन्त्य-रूपं[7]
त्व बिभ्रती कालमय जगन्ति ।
विकारबीजं प्रकरोषि नित्यं
प्रधानि न्यूनान्यथ मध्यमानि ॥ ५७ ॥
सत्त्व रजोऽथो तम इत्यभीपा
विकारहीना समवस्थितिर्या ।
सा त्वं गुणाना जगदेकहेतु-
र्बाह्यान्तरालं[8] भवतीव याति ॥ ५८ ॥
अशेषजगता बीजे ज्ञेयज्ञानस्वरूपिणि ।
जगद्धिताय[9] जगता विष्णुमाये नमोऽस्तुते ॥ ५९ ॥

मार्कण्डेय उवाच

इत्याकर्ण्य वचस्तस्य काली[10] लोकविमोहिनी ।
ब्रह्माणमूचे जगतां स्रष्टारं घनशब्दवत् ॥ ६० ॥

देव्युवाच

ब्रह्मन् किमर्थं भवता स्तुताहमवधारय ।
उच्यता यदभीष्टोऽस्ति तच्छीघ्रं पुरतो मम ॥ ६१ ॥
प्रत्यक्षं मयि जातायां सिद्धिः कार्यस्य निश्चिता ।
तस्मात्ते वाञ्छितं ब्रूहि यत् करिष्यामि भाविता ॥ ६२ ॥

ब्रह्मोवाच

एकश्चरति भूतेशो न द्वितीया समीहते ।
तं मोहय यथा दारान् स्वयं स च जिघृक्षति ॥ ६३ ॥

---

6 विशुद्धबुध्या सततं गृणन्ति । 7 त्व देवमव्यक्तमनन्तरूपं त्वं बिभ्रती कालमय जगन्ति । कूटस्थमव्यक्तमचिन्त्यरूपं त्वं बिभ्रतां कालमयं जगन्ति ॥ 8 बाह्यान्तरावस्तु निरस्य याति । 9 विष्णुमाये नमस्तुभ्यं प्रसीद परमेश्वरि । 10 नीलोत्पलासिनी ।

त्वदृते तस्य नो काचिद् भविष्यति मनोहरा।
तस्मात्त्वमेकरूपेण भवस्य भव मोहनी ॥ ६४ ॥
यथा धृतशरीरा त्वं लक्ष्मीरूपेण केशवम्।
आमोदयसि विश्वस्य हितायैतं तथा कुरु ॥ ६५ ॥
कान्ताभिलाषमात्रं मे निनिन्द वृषभध्वजः।
कथं पुनः स वनिता स्वेच्छया संग्रहीष्यति ॥ ६६ ॥
हरेऽगृहीतकान्ते तु कथं सृष्टिः प्रवर्तते।
आद्यन्तमध्यहेतौ च तस्मिञ्छम्भौविरागिणि ॥ ६७ ॥
इति चिन्तापरो नाहं त्वदन्यं शरणन्त्विह।
लब्धवास्तेन विश्वस्य हितायैतत् कुरुस्व मे ॥ ६८ ॥
न विष्णुरस्य[11] मोहाय न लक्ष्मीर्न मनोभव।
न चाप्यहं जगन्मातस्त्वस्तस्मात् त्वं मोहयेश्वरम् ॥ ६९ ॥
कीर्तिस्त्वं सर्वभूताना यथा त्वं ह्रीर्यतात्मनाम्।
यथा विष्णोः प्रियैका त्व तथा सन्मोहयेश्वरम् ॥ ७० ॥

मार्कण्डेय उवाच

अथ ब्रह्माणमाभाष्य काली योगमयी पुनः।
यदुवाच महाभागास्तच्छृण्वन्तु द्विजोत्तमाः ॥ ७१ ॥

इति श्री कालिकापुराणे कालीस्तुतौ पञ्चमोऽध्याय।

---

11 विष्णुस्तस्य।

षष्ठोऽध्यायः

देव्युवाच

यदुक्तं भवता ब्रह्मन् समस्तं सत्यमेव तत् ।
मद्दते मोहयित्रीह शंकरस्य न विद्यते ॥ १ ॥
हरेऽगृहीतदारे तु सृष्टिर्नैषा सनातनी ।
भविष्यतीति तत् सत्यं भवता प्रतिपादितम् ॥ २ ॥
मयापि[12] च महान् यत्नो विद्यतेऽस्य जगत्पते[13] ।
त्वद्वाक्याद्द्विगुणो मेऽद्य प्रयत्नोऽभूत्सुनिर्भर ॥ ३ ॥
अहं तथा यतिष्यामि यथा दारपरिग्रहम् ।
हर: करिष्यत्यवश स्वयमेव विमोहित ॥ ४ ॥
चार्व्वीं मूर्तिमहं कृत्वा तस्यैव वशवर्तिनी ।
भविष्यामि महाभाग यथा विष्णोर्हरिप्रिया ॥ ५ ॥
यथा सोऽपि ममैवेह वशवर्ती सदा भवेत् ।
तथा चाहं करिष्यामि यथेतरजनं हरम् ॥ ६ ॥
प्रतिसर्गादि मध्यं[14] तमहं शम्भु निराकुलम् ।
स्त्रीरूपेणानुयास्यामि विशेषेणान्यतोविधे ॥ ७ ॥
उत्पन्ना दक्षजायाया चारुरूपेण शंकरम् ।
अहं सभाजयिष्यामि प्रतिसर्गं[15] पितामह ॥ ८ ॥
ततस्तु योगनिद्रां मां विष्णुमायां जगन्मयीम् ।
शंकरीति वदिष्यन्ति रुद्राणीति दिवौकसः ॥ ९ ॥
उत्पन्नमात्रं सततं मोहये प्राणिनं यथा ।
तथा सम्मोहयिष्यामि शंकरं प्रमथाधिपम् ॥ १० ॥
यथान्यजन्तुरवनौ वर्तते वनितावशे ।
ततोऽप्यति हरो वामावशवर्ती भविष्यति ॥ ११ ॥

---

12 मोहने । 13 जगत्पते । 14 मध्यान्तेऽत्वहम् । 15 यथानान्या कथञ्चन ।

विभिद्य[16] भुवनाधीना लीना स्वहृदयान्तरे ।
या विद्याञ्च महादेवो मोहात् प्रतिग्रहीष्यति ॥ १२ ॥

मार्कण्डेय उवाच

इति तस्मै समाभाष्य ब्रह्मणे द्विजसत्तमाः ।
वीक्ष्यमाणा जगत्स्रष्ट्रा तत्रैवान्तर्दधे तत ॥ १३ ॥
तस्यामन्तर्हितायान्तु धाता[17] लोक-पितामह ।
जगाम तत्र भगवान् स्थितो यत्र मनोभव' ॥ १४ ॥
मुदितोऽत्यर्थमभवन्महामायावच[18] स्मरन् ।
कृतकृत्यं तदात्मानं मेने च मुनिपुगवा ॥ १५ ॥
अथ दृष्ट्वा महात्मानं विरञ्चि मदनस्तथा ।
गच्छन्तं हंसयानेन चाभ्युत्तस्थौ त्वरान्वित ॥ १६ ॥
आसन्नं तमथासाद्य हर्षोत्फुल्लविलोचन ।
ववन्दे सर्वलोकेशं मोदयुक्तं मनोभव ॥ १७ ॥
अथाह भगवान् धाता प्रीत्या मधुरगद्गदम् ।
मदनं मोदयन्[19] सूक्तं यद् देव्या विष्णुमायया[20] ॥ १८ ॥

ब्रह्मोवाच

यदाह वत्स शर्वस्य मोहने त्वं पुरा वचः ।
अनुमोहनकर्त्री या तां सृजेति मनोभव ॥ १९ ॥
तदर्थं संस्तुता देवी योगनिद्रा जगन्मयी ।
एकतानेन मनसा मया मन्दरकन्दरे ॥ २० ॥
स्वयमेव तया वत्स प्रत्यक्षीभूतया मम[21] ।
तुष्टयांगीकृतं शम्भुर्मोहनीयो मयेति वै ॥ २१ ॥
तया च दक्षभवने स समुत्पन्नया हर ।
मोहनीयस्तु न चिरादिति सत्यं मनोभव ॥ २२ ॥

---

16 विभिद्य मोहने प्रगहीष्यति । 17 ब्रह्मा । 18 वरं ।
19 मदयन् तूक्त । 20 योगमायया । 21 यया ।

मदन उवाच

ब्रह्मन् का योगनिद्रेति विख्याता या जगन्मयी ॥
कथं तस्या हरो वश्य. कार्यस्तपसि संस्थित ॥ २३ ॥
किम्प्रभावाथ सा देवी का वा सा कुत्र संस्थिता ।
तदहं श्रोतुमिच्छामि त्वत्तो लोकपितामह ॥ २४ ॥
यस्य त्यक्तसमाधेस्तु न क्षणं दृष्टिगोचरे ॥
शक्नुभोऽपि वयं स्थातुं तं कस्मात् सा विमोहयेत । २५ ॥
ज्वलदग्निप्रकाशाक्ष जटाराजिकरालितम ।
शूलिनं वीक्ष्य क स्थातुं ब्रह्मन् शक्नोति तत्पुर· ॥ २६ ॥
तस्य तादृक्स्वरूपस्य सम्यङ्मोहनवाञ्छया ।
मयाभ्युपेतं ता श्रोतुमहमिच्छामि तत्त्वतः ॥ २७ ॥

मार्कण्डेय उवाच

मनोभवस्य वचनं श्रुत्वाथ चतुराननः ।
विवक्षुरपि तद्वाक्यं श्रुत्वानुत्साहकारणम ॥ २८ ॥
शर्वस्य[22] मोहने ब्रह्मा चिन्ताविष्टो भवन्नहि ।
समर्थो मोहयितुमिनि निशश्वास मुहुर्मुहु ॥ २९ ॥
निःश्वासमारुतात्तस्य नानारूपाः महाबला. ।
जाता गणा लोलजिह्वा लोलाश्चाति भयंकराः ॥ ३० ॥
तुरंगवदनाः केचित् केचिद्गजमुखास्तथा ।
सिंहव्याघ्रमुखाश्चान्ये श्वबराहखराननाः ॥ ३१ ॥
ऋक्षमार्जारवदनाः शरभास्या शुकाननाः ।
प्लवगोमायु वक्त्राश्च सरीसृपमुखाः परे ॥ ३२ ॥
गोरूपा गोमुखाः केचित्तथा पक्षिमुखा. परे ।
महादीर्घा महाह्रस्वा महास्थूला महाकृशा· ॥ ३३ ॥

---

22 सर्वमोहने ।

पिगाक्षा विरालाक्षाश्च त्र्यक्षैकाक्षा महोदरा ।
एककर्णास्त्रिकर्णाश्च चतुष्कर्णास्तथा परे ॥ ३४ ॥
स्थूलकर्णा महाकर्णा बहुकर्णा विकर्णका ।
दीर्घाक्षा स्थूलनेत्राश्च सूक्ष्मनेत्रा विदृष्टयः ॥ ३५ ॥
चतुष्पादा पञ्चपादास्त्रिपादैकपदास्तथा ।
ह्रस्वपादा दीर्घपादा· स्थूलपादा महापदा· ॥ ३६ ॥
एकहस्ताश्चतुर्हस्ता द्विहस्तास्त्रिशयास्तथा ।
विहस्ताश्च विरूपाक्षा गोधिकाकृतय परे ॥ ३७ ॥
मनुष्याकृतय· केचिच्छुशुमारमुखास्तथा[23] ।
कौञ्चाकारा वकाकारा हंससारसरूपिण ।
तथैव मद्गुकुरर-कंककाकमुखास्तथा ॥ ३८ ॥
अर्द्धनीला[24] अर्द्धरक्ता कपिला. पिंगलास्तथा ।
नीला शुक्लास्तथा पीता हरिताश्चित्ररूपिण· ॥ ३९ ॥
अवादयन्त ते शंखान् पटहान् परिवादिन ।
मृदङ्गान् डिडिमाश्चैव गोमुखान् पणवास्तथा ॥ ४० ॥
सर्वे जटाभि पिंगाभिस्तुंगाभिश्च करालिता[25] ।
निरन्तराभिर्विप्रेन्द्रा गणाः स्यन्दनगामिन· ॥ ४१ ॥
शूलहस्ता पाशहस्ता खड्गहस्ता धनुर्द्धरा· ।
शक्त्यंकुशगदावाण-पट्टिशप्रासपाणयः ॥ ४२ ॥
नानायुधा महानादं कुर्वन्तस्ते महाबला ।
मारय च्छेदयेत्यूचुर्ब्रह्माण पुरतो गता[26] ॥ ४३ ॥
तेषान्तु वदता यत्र मारय छेदयेत्युत ।
योगनिद्रा प्रभावात् स विधिर्वक्तुं प्रचक्रमे ॥ ४४ ॥
अथ ब्रह्माणमाभाष्य[27] तान् दृष्ट्वा मदनो गणान् ।
उवाच वारयन् वक्तुं गणानामग्रतः स्मर· ॥ ४५ ॥

---

23 परे । 24 अर्द्धनीलार्द्धरक्ता· । 25 करालिन । 26 गणा· ।
27 ब्रह्माणमाभास्य ।

मदन उवाच

किं कर्म ते करिष्यन्ति कुत्र स्थास्यन्ति वा विधे।
किन्नामधेया एते वा तत्रैतान् विनियोजय॥ ४६ ॥
नियोज्यैतान्निजे कृत्ये स्थानं दत्त्वा नाम च।
कृत्वा पश्चात् महामायाप्रभावं कथयस्व मे॥ ४७ ॥

मार्कण्डेय उवाच

अथ तद्वाक्यमाकर्ण्य सर्वलोकपितामह।
गणान् समदनानाह तेषा कर्मादिकं दिशन्॥ ४८ ॥

ब्रह्मोवाच

एत उत्पन्नमात्रा हि मारयेत्यवदंस्तराम्।
मुहुर्मुहुरतोऽमीषा नाम मारेति जायताम्॥ ४९ ॥
मारात्मकत्वादप्येते मारा सन्तु च नामतः।
सदा विघ्नं करिष्यन्ति जन्तूनाञ्च विनार्चनम्॥ ५० ॥
तवानुगमनं कर्म मुख्यमेषा मनोभव।
यत्र यत्र भवान् याता स्वकर्मार्थं यदा यदा।
गन्तारस्तत्र तत्रैते साहाय्याय तदा तदा॥ ५१ ॥
चित्तोद्भ्रान्तिं करिष्यन्ति त्वदस्त्रवशवर्तिनाम्।
ज्ञानिनां ज्ञानमार्गञ्च विघ्नयिष्यन्ति सर्वदा॥ ५२ ॥
यथा सांसारिकं कर्म सर्वे कुर्वन्ति जन्तवः।
तथाचैते करिष्यन्ति सविघ्नमपि सर्वत॥ ५३ ॥
इमे स्थास्यन्ति सर्वत्र वेगिन. कामरूपिण।
त्वमेवैषां गणाध्यक्षः पंचयज्ञाशभोगिनः।
नित्यक्रियावतां तोय-भोगिनो वै भवन्त्वति[28] ॥ ५४ ॥

---

28 भवन्त्विमे।

मार्कण्डेय उवाच

इति श्रुत्वा तु ते सर्वे मदनं सविधिं तत ।
परिवार्य यथाकामं तस्थु श्रुत्वा[29] निजा गतिम् ॥ ५५ ॥
तेषा वर्णयितुं शक्यो भुवि किं मुनिसत्तमा ।
माहात्म्यञ्च प्रभावञ्च ते तप शालिनो यत ॥ ५६ ॥
नैषा जाया न तनया नि समीहा' सदव हि[30] ।
न्यासिनोऽपि महात्मान सर्वे त ऊर्द्ध्वरेतस' ॥ ५७ ॥
ततो ब्रह्मा प्रसन्न[31] स माहात्म्यं मदनाय च ।
गदितुं योगनिद्राया सम्यक् समुपचक्रमे । ५८ ।'

ब्रह्मोवाच

अव्यक्तव्यक्तरूपेण रज सत्त्वतमोगुणै ।
संविभज्य यार्थं कुरुते विष्णुमायेति सोच्यते ॥ ५९ ॥
या निम्नान्तस्थलाम्भस्था जगदण्डकपालत ।
विभज्य पुरुषं याति योगनिद्रेति सोच्यते ॥ ६० ॥
मन्त्रान्तर्भावनपरा परमानन्दरूपिणी ।
योगिना सत्त्वविद्यान्त[32] सा निगद्या जगन्मयी ॥ ६१ ॥
गर्भान्तर्ज्ञानसम्पन्नं प्रेरितं सूतिमारुतै ।
उत्पन्नं ज्ञानरहितं कुरुते या निरन्तरम् ॥ ६२ ॥
पूर्वातिपूर्वं[33] सन्धातु संस्कारेण नियोज्य च ।
आहारादौ ततो मोहं ममत्वं ज्ञानसंशयम् ॥ ६३ ॥
क्रोधोपरोधलोभेषु क्षिप्त्वा क्षिप्त्वा पुन. पुन ।
पश्चात् कामे नियोज्याशु चिन्तायुक्तमहर्निशम् ॥ ६४ ॥
आमोदयुक्तं व्यसनासक्तं जन्तुं करोति या ।
महामायेति सा प्रोक्ता तेन सा जगदीश्वरी ॥ ६५ ॥

---

29 कृत्वा निजां कृतिं । 30 ते । 31 पुनस्तस्मै । 32 विद्यायां ।
33 पूर्वातिपूर्व सबन्ध ।

अहंकारादि संसक्त[34]सृष्टिप्रभवभाविनी ।
उत्पत्तिरितिलोकै सा कथ्यतेऽनन्तरूपिणी ॥ ६६ ॥
उत्पन्नमंकुरं बीजाद् यथापो मेघसम्भवाः ।
प्ररोहयति सा जन्तूस्तथोत्पन्नान् प्ररोहयेत् ॥ ६७ ॥
सा शक्ति सृष्टिरूपा च सर्वेषा ख्यातिरीश्वरी ।
क्षमा क्षमावता नित्यं करुणा सा दयावताम् ॥ ६८ ॥
नित्या सा नित्यरूपेण जगद्गर्भे प्रकाशते ।
ज्योति स्वरूपेण परा व्यक्ताव्यक्तप्रकाशिनी ॥ ६९ ॥
सा योगिना मुक्तिहेतुर्विद्यारूपेण वैष्णवी ।
सासारिकाणा ससारबन्धहेतु-विपर्यया ॥ ७० ॥
लक्ष्मीरूपेण कृष्णस्य द्वितीया सुमनोहरा [35] ।
त्रयीरूपेण कण्ठस्था सदा मम मनोभव ॥ ७१ ॥

सर्वत्रस्था सर्वगा दिव्यमूर्ति-
र्नित्या देवी सर्वरूपा पराख्या ।
कृष्णादीनां सर्वदा मोहयित्री
सा स्त्रीरूपैः सर्वजन्तो समन्तात् ॥ ७२ ॥

इति श्री कालिकापुराणे योगनिद्रास्तुतौ षष्ठोऽध्यायः ॥

---

34 संसर्ग । 35 सा मनोहरा ।

सप्तमोऽध्यायः

मार्कण्डेय उवाच

अथ ब्रह्मा महामाया-स्वरूपं प्रतिपाद्य च ।
मदनाय पुनः प्राह युक्तासौ[36] हरमोहने ॥ १ ॥

ब्रह्मोवाच

विष्णुमाया महादेवो यथा दारपरिग्रहम् ।
करिष्यति तथा कर्तुमंगीकारं पुराकरोत् ॥ २ ॥
सावश्यं दक्षतनया भूत्वा शम्भोर्महात्मन ।
भविष्यति द्वितीयेति स्वयमेवावदत् स्मर ॥ ३ ॥
त्वमेभिः स्वगणै सार्द्धं रत्या च मधुना सह ।
यथेच्छति[37] तथा दारान् ग्रहीतु कुरु शंकर[38] ॥ ४ ॥
शम्भौ गृहीतदारे तु कृतकृत्या वयं स्मर ।
अविच्छिन्ना सृष्टिरियं भविष्यति न संशय ॥ ५ ॥

मार्कण्डेय उवाच

तथाब्रवीद्द्विजश्रेष्ठा लोकेशाय मनोभव ।
मधुरं यत् कृतं तेन महादेवस्य मोहने ॥ ६ ॥

मदन उवाच

शृणु ब्रह्मन् यथास्माभि क्रियते हरमोहने ।
प्रत्यक्षे वा परोक्षे वा तस्य तद्गदतो मम ॥ ७ ॥
यदा समाधिमाश्रित्य स्थितः शम्भुर्जितेन्द्रिय[39] ।
तदा सुगन्धिवातेन शीतलेन विवेगिना ।
तं वीजयामि लोकेश नित्यं मोहनकारिणा ॥ ८ ॥

---

36 यतोऽसौ । 37 यथेच्छसि । 38 सत्वरं । 39 नियन्त्रित. ।

स्वसायकास्तथा पञ्च समादाय शरासनम् ।
भ्रमामि तस्य सविधे मोहयंस्तद्गणानहम् ।। ६ ।।
सिद्धद्वन्द्वानहं तत्र रमयामि दिवानिशम् ।
भावा हावाश्च ते सर्वे प्रविशन्ति च तेषु वै ।। १० ।।
यदि प्रविष्टे सविधे शम्भो प्राणी पितामह ।
को वा न कुरुते द्वन्द्व भावं तत्र मुहुर्मुहु ।। ११ ।।
मम प्रवेशमात्रेण तथा[40] स्यु· सर्वजन्तव ।
न शम्भुर्न वृषस्तस्य मानसीं विक्रिया गतौ ।।१२ ।।
यदाहि भवत. प्रस्थं स याति प्रमथाधिप ।
तत्र गन्ता तदैवाहं सरति· समधुर्विधे ।। १३ ।।
यदा मेरुं प्रयात्येष यदा वा नाटकेश्वरम् ।
कैलासं वा यदा याति तत्र गच्छाम्यहं तदा ।। १४ ।।
यदा त्यक्तसमाधिस्तु हरस्तिष्ठति वै क्षणम् ।
ततस्तस्य पुरश्चक्रमिथुनं योजयाम्यहम् ।। १५ ।।
तच्चक्रयुगलं ब्रह्मन् हावभावयुतं मुहुः ।
नानाभावेन कुरुते दाम्पत्य-क्रममुत्तमम् ।। १६ ।।
नीलकण्ठानपि मुहु. सजायानपि तत्पुरः ।
सन्मोहयामि सविधे मृगानन्याश्च पक्षिणः ।। १७ ।।
विचित्रभावमासाद्य यदा प्रकुरुते रतिम् ।
मयूरमिथुनं वीक्ष्य तत्तदा को नचोत्सुकः ।। १८ ।।
मृगाश्च तत्पुरस्थाश्च स्वजायाभिस्तु सोत्सुका. ।
अकुर्वन् रुचिरं भावं तस्य पार्श्वे पुरस्तदा ।। १९ ।।
अपश्यन् विवरं नास्य कदाचिदपि मच्छर· ।
निपात्यः स यदा देहे यन्मया सर्वलोकधृत् ।। २० ।।
बहुधा निश्चितं ज्ञातं रामासंगादृते हरम् ।
अलं च सन्मोहयितुं ससहायोऽपि निष्कलम् ।। २१ ।।

40 सखा· ।

मधुश्च कुरुते कर्म यद्यत्तस्य विमोहने ।
तच्छृणुष्व महाभाग नित्यं तस्योचितं पुन ॥ २२ ॥
चम्पकान् केशरानाम्रान् करुणान् पाटलास्तथा ।
नागकेशर पुन्नागान् किंशुकान् केतकान् धवान् ॥ २३ ॥
माधवीर्मल्लिका पर्णधारान् कुरुवकास्तथा ।
उत्फुल्लयति तत्तस्य यत्र तिष्ठति वै हर ॥ २४ ॥
सरास्युत्फुल्लपद्मानि वीजयन् मलयानिलै ।
सुगन्धीकृतवान् यत्नादतीव शंकराश्रमम् ॥ २५ ॥
लता सर्वा सुमनस फुल्लपादपसंचयान् ।
वृक्षान् रुचिरभावेन वेष्टयन्ति स्म तत्र वै ॥ २६ ॥
तान् वृक्षाश्चारुपुष्पौघास्तै सुगन्धि समीरणै· ।
दृष्ट्वा कामवशं यातो न तत्र मुनिरप्युत ॥ २७ ॥
तद्गणा अपि लोकेश नानाभावै· सुशोभनै ।
वसन्ति स्म सुरा सिद्धा ये ये चातितपोधना. ॥ २८ ॥
न तस्य पुनरस्माभिर्दृष्टं मोहस्य कारणम् ।
भावमात्रं न कुरुते कामोत्थमपि शंकर. ॥ २६ ॥
इति सर्वमहं दृष्ट्वा ज्ञात्वा च हरभावनाम् ।
विमुखोऽहं शम्भुमोहान्नियत मायया विना ॥ ३० ॥
इदानीं त्वद्वचः श्रुत्वा योगनिद्रोदित पुन· ।
तस्या· प्रभावं श्रुत्वाथ गणान् दृष्ट्वा सहायकान् ॥ ३१ ॥
मया शम्भोर्विमोहाय क्रियते मुहुरुद्यम· ॥
भवानपि त्रिलोकेश योगनिद्रा द्रुतं पुन. ।
भवेद् यथा शम्भुजाया तथैव विदधात्वियम् ॥ ३२ ॥
यमाना नियमानाञ्च प्राणायामस्य नित्यशः ।
आसनस्य महेशस्य प्रत्याहारस्य गोचरे ॥ ३३ ॥
ध्यानस्य धारणायाश्च समाधेर्विघ्नसम्भवम् ।
मन्ये कर्तुं न शक्यं स्यादपि मारशतैरपि ॥ ३४ ॥

तथाप्ययं मारगण करोतु
हरस्य योगांगविकारविभ्रम ।
यदेव शक्यं किमु वा समर्थ
समक्षमन्यस्य न कर्तुमोज ॥ ३५ ॥

इति श्रीकालिकापुराणे मदनवाक्ये सप्तमोऽध्याय ॥ ७ ॥

अष्टमोऽध्यायः

मार्कण्डेय उवाच

ततो ब्रह्मापि मदनमुवाचेदं वच. पुनः ।
निश्चित्य योगनिद्राया स्मृत्वा वाक्यं तपोधना. ॥ १ ॥

ब्रह्मोवाच

अवश्यं शम्भुपत्नी सा योगनिद्रा भविष्यति ।
यथाशक्ति भवास्तत्र करोत्वस्या सहायताम् ॥ २ ॥
गच्छ त्वं स्वगणं सार्द्धं यत्र तिष्ठति शंकर ।
द्रुतं मनोभव त्वं च तत् स्थानं मधुना सह ॥ ३ ॥
रात्रिन्दिवस्य[41] तुर्यांशं जगन्मोहय नित्यश ।
भागत्रयं शम्भुपार्श्वे तिष्ठ सार्द्धं गणै· सदा ॥ ४ ॥

मार्कण्डेय उवाच

इत्युक्त्वा सर्वलोकेशस्तत्रैवान्तरधीयत ।
शम्भो सकाशं मदनो गतवान् सगणस्तदा ॥ ५ ॥
एतस्मिन्नन्तरे दक्षश्चिरं कालं तपोरतः ।
नियमैर्बहुभिर्देवीमाराधयत सुव्रतः ॥ ६ ॥

---

41 रात्रिन्दिवं चतुर्यामं ।

ततो नियमयुक्तस्य दक्षस्य मुनिसत्तमा ।
योगनिद्रा पूजयत प्रत्यक्षमभवच्छिवा ॥ ७ ॥
तत प्रत्यक्षतो दृष्ट्वा विष्णुमाया जगन्मयीम् ।
कृतकृत्यमथात्मानं मेने दक्ष प्रजापति ॥ ८ ॥
सिंहस्था कालिका कृष्णा पीनोत्तुंगपयोधराम्[42] ।
चतुर्भुजा चारुवक्त्रा नीलोत्पलधरा शुभाम् ॥ ९ ॥
वरदाभयदा खड्गहस्ता सर्वगुणान्विताम् ।
आरक्तनयना चारुमुक्तकेशीं मनोहराम् ॥ १० ॥
दृष्ट्वा दक्षोऽथ तुष्टाव महामाया प्रजापति ।
प्रीत्या परमया युक्तो विनयानतकन्धर ॥ ११ ॥

दक्ष उवाच

आनन्दरूपिणीं देवीं जगदानन्दकारिणीम् ।
सृष्टिस्थित्यन्तरूपा ता स्तौमि लक्ष्मीं हरे शुभाम् ॥ १२ ॥
सत्त्वोद्रेकप्रकाशेन यज्ज्योतिस्तत्त्वमुत्तमम् ।
स्वप्रकाशं जगद्धाम तत्तवाशं महेश्वरि ॥ १३ ॥
रजोगुणातिरेकेण यत् कामस्य प्रकाशनम् ।
रागस्वरूपं मध्यस्थं तत्तेऽशाशं[43] जगन्मयि ॥ १४ ॥
तमोगुणातिरेकेण यद्यन्मोहप्रकाशनम् ।
आच्छादनं चेतनाना तत्ते चाशाशगोचरम् ॥ १५ ॥
परा परात्मिका शुद्धा निर्मला लोकमोहिनी ।
त्वं त्रिरूपा त्रयी कीर्तिर्वार्त्तास्य जगतो गतिः ॥ १६ ॥
विभर्ति माधवो धात्रीं यया मूर्त्या निजोत्थया ।
सा मूर्त्तिस्तव सर्वेषां जगतामुपकारिणी ॥ १७ ॥
महानुभावा त्वं विश्वशक्तिः सूक्ष्मापराजिता ।
यदूर्द्ध्वाधोनिरोधेन व्यज्यते पवनैः परम् ॥ १८ ॥

---

42 पीनोन्नतपयोधराम् 43 तत्तवाश महेश्वरि ।

तज्ज्योतिस्तव मात्रार्थं सात्त्विकं भावसन्मतम् ।
यद्योगिनो निरालम्बं निष्कलं निर्मलं परम् ॥ १९ ॥
आलम्बयन्ति तत्तत्त्वं त्वदन्तर्गोचरन्तु तत् ।
या[44] प्रसिद्धा च कूटस्था सुप्रसिद्धाति निर्मला ॥ २० ॥
सा ज्ञप्तिस्त्वन्निष्प्रपञ्चा प्रपञ्चापि प्रकाशिका ।
त्वं विद्या त्वमविद्या च त्वमालम्बा निराश्रया ।
प्रपञ्चरूपा जगतामादिशक्तिस्त्वमीश्वरी ॥ २१ ॥
ब्रह्मकण्ठालया शुद्धा वाग्वाणी या प्रगीयते ।
वेदप्रकाशनपरा सा त्वं विश्व प्रकाशिनी ॥ २२ ॥
त्वमग्निस्त्वं तथा स्वाहा त्वं स्वधा पितृभि सह ।
त्वं नभस्त्वं कालरूपा[45] त्वं काष्ठा त्वं वहि स्थिता ॥ २३ ॥
त्वमचिन्त्या त्वमव्यक्ता तथानिर्देश्यरूपिणी ।
त्वं कालरात्रिस्त्वं शान्ता त्वमेव प्रकृतिः परा ॥ २४ ॥
यस्याः संसारलोकाना परित्राणाय यद्बहिः ।
रूपं जानन्ति धात्राद्यास्तत्त्वां ज्ञास्यन्ति के पराम् ॥ २५ ॥
प्रसीद भगवत्यम्बे प्रसीद योगरूपिणि[46] ।
प्रसीद घोररूपे त्वं जगन्मयि नमोऽस्तु ते ॥ २६ ॥

मार्कण्डेय उवाच

इति स्तुता महामाया दक्षेण प्रयतात्मना ।
उवाच दक्षं ज्ञात्वापि स्वयं तस्येप्सितं द्विजा. ॥ २७ ॥

भगवत्युवाच

तुष्टाहं दक्ष भवतो मद्भक्तया ह्यनया भृशम् ।
वरं वृणीष्व चाभीष्टं तत्ते दास्यामि तत् स्वयम् ॥ २८ ॥
नियमेन तपोभिश्च स्तुतिभिस्ते प्रजापते ।
अतीव तुष्टा दास्येऽहं वरं वरय वाञ्छितम् ॥ २९ ॥

---

44 चाप्रसिद्धा प्रसिद्धा च कूटस्था यातिनिर्मला । 45 कामरूपा ।
46 शिवरूपिणि ।

दक्ष उवाच

जगन्मयि महामाये यदि त्वं वरदा मम।
तदा मम सुता भूत्वा हरजाया भवाधुना॥ ३०॥
ममैष न वरो देवि केवलं जगतामपि।
लोकेशस्य तथा विष्णो शिवस्यापि प्रजेश्वरि॥ ३१॥

देव्युवाच

अहं तव सुता भूत्वा त्वज्जायाया समुद्भवा।
हरजाया भविष्यामि न चिरात्तु प्रजापते॥ ३२॥
यदा भवान्मयि पुनर्भवेन्मन्दादरस्तदा।
देहं त्यक्ष्यामि सपदि सुखिन्यप्यथ वेतरा॥ ३३॥
एष दत्तस्तव वरः प्रतिसर्गं प्रजापते।
अहं तव सुता भूत्वा भविष्यामि हरप्रिया॥ ३४॥
तथा सन्मोहयिष्यामि महादेवं प्रजापते।
प्रतिसर्गं यथा मोहं सम्प्राप्स्यति निराकुलम्॥ ३५॥

मार्कण्डेय उवाच

एवमुक्त्वा महामाया दक्षं मुख्यं प्रजापतिम्।
अन्तर्दधे[47] ततो देवी सम्यग् दक्षस्य पश्यत॥ ३६॥
अन्तर्हितायां मायायां दक्षोऽपि निजमाश्रमम्।
जगाम लेभे च मुदं भविष्यति सुतेति सा॥ ३७॥
अथ चक्रे प्रजोत्पादं विना स्त्रीसंगमेन च।
संकल्पाविर्भवाभ्यान्तु[48] मनसा चिन्तनेन च॥ ३८॥
तत्र ये तनया जाता बहुशो द्विजसत्तमा।
ते नारदोपदेशेन भ्रमन्ति पृथिवीमिमाम्॥ ३९॥

---

47 अन्तर्हितवती तत्र। 48 संकल्पायुर्भवाभ्याञ्च।

पुन पुन सुता ये ये तस्य जाता सहस्रश ।
ते सर्वे भ्रातृपदवीं ययुर्नारद वाक्यत. ॥ ४० ॥
पृथिव्या सृष्टिकर्तार सर्वे यूयं द्विजोत्तमा ।
पश्यध्वं पृथिवीं कृत्स्नामुपान्तप्रान्तमायताम् ॥ ४१ ॥
इति नारदवाक्येन नोदिता दक्षपुत्रका ।
अद्यापि न निवर्तन्ते भ्रमन्त पृथिवीमिमाम् ॥ ४२ ॥
तत. समुत्पादयितुं प्रजाः मैथुनसम्भवा. ।
उपयेमे वीरणस्य तनया दक्ष ईप्सिताम् ॥ ४३ ॥
वीरिणी नाम तस्यास्तु असक्नीत्यपि सत्तमाः ।
तस्या प्रथम संकल्पो यदा भूत' प्रजापते. ॥ ४४ ॥
सद्योजाता महामाया तदा तस्या द्विजोत्तमा. ।
तस्या तु जातमात्राया सुप्रीतोऽभूत् प्रजापतिः ।
सैवैषेति तदा मेने ता दृष्ट्वा तेजसोज्ज्वलाम् ॥ ४५ ॥
बभूव पुष्पवृष्टिश्च मेघाश्च वव्रुपुर्जलम् ।
दिश शान्तास्तदा तस्यां जातायाञ्च समुद्गताः ॥ ४६ ॥
अवादयन्तस्त्रिदशा' शुभवाद्यं वियद्गताः ।
जज्वलुश्चाग्नय' शान्तास्तस्यां सत्या नरोत्तमा ॥ ४७ ॥
वीरिण्या लक्षितो दक्षस्ता दृष्ट्वा जगदीश्वरीम् ।
विष्णुमायां महामायां तोषयामास भक्तितः ॥ ४८ ।

दक्ष उवाच

शिवा शान्ता महामाया योगनिद्रा जगन्मयी ।
या प्रोच्यते विष्णुमाया[49] तां नमामि सनातनीम् ॥ ४९ ।
यया धाता जगत्सृष्टौ नियुक्तस्तां पुराकरोत् ।
स्थितिञ्च विष्णुरकरोद्यन्नियोगाज्जगत्पतिः ॥ ५० ॥

49 विष्णुनैव ।

शम्भुरन्तं ततो देवीं त्वा नमामि महीयसीम्।
विकाररहिता शुद्धामप्रमेया प्रभावतीम्।
प्रमाणमानमेयाख्या प्रणमामि सुखात्मिकाम् ॥ ५१ ॥
यस्त्वा विचिन्तयेद्देवीं विद्याविद्यात्मिका पराम्।
तस्य भोग्यश्च मुक्तिश्च सदा करतले स्थिता ॥ ५२ ॥
यस्त्वा प्रत्यक्षतो देवीं सकृत् पश्यति पावनीम्।
तस्यावश्यं भवेन्मुक्तिर्विद्याविद्याप्रकाशिकाम्[50] ॥ ५३ ॥
योगनिद्रे महामाये विष्णुमाये जगन्मयि।
या प्रमाणार्थसम्पन्ना चेतना सा तवात्मिका ॥ ५४ ॥
ये स्तुवन्ति जगन्मातर्भवतीमम्बिकेति च।
जगन्मयीति मायेति सर्वं तेषा भविष्यति । ५५ ॥

मार्कण्डेय उवाच

इति स्तुता जगन्माता दक्षेण सुमहात्मना।
तथोवाच तदा दक्षं यथा माता शृणोति न ॥ ५६ ॥
सन्मोह्य सर्वं तत्रस्थं यथा दक्ष शृणोति तत्।
नान्य शृणोति च तथा माययाह तदाम्बिका ॥ ५७ ॥

देव्युवाच

अहमाराधिता पूर्वं यदर्थं मुनिसत्तम।
ईप्सितं तव सिद्धं तदवधारय साम्प्रतम् ॥ ५८ ॥

मार्कण्डेय उवाच

एवमुक्त्वा तदा देवी दक्षञ्च निजमायया।
अस्थाय शैशवं भावं जनन्यन्ते रुरोद सा ॥ ५९ ॥
ततस्ता वीरिणी यत्नात् सुसंस्कृत्य यथोचितम्।
शिशुपालेन विधिना तस्यै स्तन्यादिकं ददौ ॥ ६० ॥

50 ब्रह्मविद्याप्रकाशिका।

पालिता साथ वीरिण्या दक्षेण सुमहात्मना ।
ववृधे शुक्लपक्षस्य निशानाथो यथान्वहम् ॥ ६१ ॥
तस्यान्तु सद्गुणा सर्वे विविशुर्द्विजसत्तमा ।
शैशवेऽपि यथा चन्द्रे कला सर्वा मनोहरा ॥ ६२ ॥
रेमे सा निजभावेन सखीमध्यगता यदा ।
तदा लिखति भर्गस्य प्रतिमामन्वहं मुहु[51] ॥ ६३ ॥
यदा गायति गीतानि तदा वाल्योचितानि सा ।
उग्रं स्थाणुं हरं रुद्रं सस्मार स्मरमानसा[52] । ६४ ॥
तस्याश्चक्रे नाम दक्ष सतीति द्विजसत्तमा ।
प्रशस्तायाः सवगुणे सत्त्वादपि नयादपि ॥ ६५ ॥
ववृधे दक्षवीरिण्यो प्रत्यहं करुणातुला ।
तस्यां वाल्येऽपि भक्ताया तयोर्नित्यं मुहुमु हु । ६६ ॥
सर्वकान्त[53]-गुणाक्रान्ता सदा[54] सा नयशालिनी ।
तोषयामास पितरौ नित्यं नित्यं नरोत्तमा. ॥ ६७ ॥
अथैकदा पितु' पार्श्वे तिष्ठन्तीं तां सतीं विधिः ।
नारदश्च ददर्शाथ रत्नभूत्तां क्षितौ शुभाम् । ६८ ॥
सापि तौ वीक्ष्य मुदिता विनयावनता तदा ।
प्रणनाम सती देवं ब्रह्माणमथ नारदम् ॥ ६९ ॥
प्रणामान्ते सतीं वीक्ष्य विनयावनता विधि ।
नारदश्च तथैवाशीर्वादमेतमुवाच ह ॥ ७० ॥
त्वामेव य. कामयते यं त्वं कामयसे पतिम् ।
तमाप्नुहि पतिं देवं सर्वज्ञं जगदीश्वरम् ॥ ७१ ॥
यो न्नान्यां जगृहे नापि गृह्णाति न ग्रहीष्यति ।
जाया स ते पतिर्भूयादनन्यसदृश' शुभे ॥ ७२ ॥
इत्युक्त्वा सुचिरं तौ तु स्थित्वा दक्षाश्रये पुनः ।
विसृष्टौ तेन संयातौ स्वस्थानं द्विजसत्तमाः ॥ ७३ ॥

इति श्रीकालिकापुराणे सत्युत्पत्तौ अष्टमोध्यायः ॥

---

51 मुहु । 52 स्मरशासनं । 53 सर्वबालगुणा ...। 54 तदा ।

नवमोऽध्यायः

मार्कण्डेय उवाच

बाल्यं व्यतीत्य सा प्राप यौवनं शोभनं ततः।
अतीव रूपेणागेन सर्वाङ्गसुमनोहरा ॥ १ ॥
ता वीक्ष्य दक्षो लोकेश. प्रोद्भिन्नान्तर्वय. स्थिताम्।
चिन्तयामास भर्गाय कथं दास्य इमा सुताम् ॥ २ ॥
अथ सापि स्वयं भर्गं प्राप्तुमैच्छत्तदान्वहम्।
आराधयामास च तं गृहे मातुरनुज्ञया ॥ ३ ॥
आश्विने नन्दकाख्याया लवणै' सगुडोदनै.।
पूजयित्वा हरं पश्चाद्ववन्दे सा निनाय तत् ॥ ४ ॥
कार्तिकस्य चतुर्दश्यां सापूपै पायसैर्हरम्।
समाकीर्णै समाराध्य सस्मार[55] परमेश्वरम् ॥ ५ ॥
कृष्णाष्टम्या मार्गशीर्षे सतिलै' सयवोदनै ।
पूजयित्वा हर नीले[56] र्निनाय दिवसं पुन ॥ ६ ॥
पौषे तु कृष्णसप्तम्या कृत्वा जागरणं निशि।
अपूजयच्छिव प्रात कृसरान्नेन सा सती ॥ ७ ॥
माघस्य पौर्णमास्यान्तु कृत्वा जागरणं निशि ।
आर्द्रवस्त्रा नदीतीरे ह्यकरोद्धरपूजनम् ॥ ८ ॥
नानाविधै' फलैः पुष्पै सम्यक् तत्कालसम्भवैः।
चकार नियताहारं तं मासं हरमानसा ॥ ६ ॥
चतुर्दश्या कृष्णपक्षे तपस्यस्य विशेषत.।
कृत्वा जागरणं देवं विल्वपत्रैरपूजयत् ॥ १० ॥
चैत्रे शुक्लचतुर्दश्या पालाशै कुसुमैः[57] शिवम्।
अपूजयद्दिवारात्रौ तं स्मरन्ती निनाय तम् ॥ ११ ॥
वैशाखस्य तृतीयायां शुक्लाया सयवोदनै ।
पूजयित्वा हरं देव'[58] हव्यैर्मासं चरन्त्यनु ।

---

55 शङ्करं परमेश्वरी। 56 दीपै । 57 दमनै.। 58 गव्यै देवं मासं।

निनाय सा निराहारा स्मरन्ती वृषवाहनम् ॥ १२ ॥
ज्येष्ठस्य पूर्णिमारात्रौ सम्पूज्य वृषवाहनम् ।
वसनैर्बृहतीपुष्पैर्निराहारा निनाय ताम् ॥ १३ ॥
आषाढस्य चतुर्दश्यां शुक्लायां कृत्तिवाससः ।
बृहतीकुसुमैः पूजा देवस्याकारि वै तया ॥ १४ ॥
श्रावणस्य सिताष्टम्यां चतुर्दश्यां च सा शिवम् ।
यज्ञोपवीतैर्वासोभिः पवित्रैरप्यपूजयत् ॥ १५ ॥
भाद्रे कृष्णत्रयोदश्यां पुष्पैर्नानाविधैः फलैः ।
संपूज्याथ चतुर्दश्यां चकार जलभोजनम् ॥ १६ ॥
इति व्रतं यदारब्धं पुरा सत्या तदैव तु ।
सावित्रीसहितो ब्रह्मा जगामाथ हरान्तिकम् ॥ १७ ॥
वासुदेवोऽपि भगवान् सह लक्ष्म्या तदन्तिकम् ।
प्रस्थं हिमवतः शम्भुः स्थितो यत्र गणैः सह ॥ १८ ॥
तौ तु दृष्ट्वा ब्रह्मकृष्णौ सस्त्रीकौ संगतौ हरः ।
यथोचितं समाभाष्य पप्रच्छागमनं तयोः ॥ १९ ॥
तथाविधांस्तु तान् दृष्ट्वा दाम्पत्यभावसंयुतान् ।
काञ्चिदीहां च मनसा चक्रे दारपरिग्रहे ॥ २० ॥
अथागमनहेतुं नः कथयध्वं च तत्त्वतः ।
किमर्थमागता यूयं किं कार्यं वोऽत्र[59] विद्यते ॥ २१ ॥
इति पृष्टोऽन्यम्बकेण ब्रह्मा[60] लोकपितामहः ।
उवाच च महादेवं विष्णुना परिचोदितः[61] ॥ २२ ॥

ब्रह्मोवाच

यदर्थमागतावावां तच्छृणुष्व त्रिलोचन ।
विशेषतश्च देवार्थं विश्वार्थं च वृषध्वज ॥ २३ ॥

---

59 केह । 60 सर्वलोक । 61 परिणोदितः ।

अहं सृष्टिरत शम्भो स्थितिहेतुस्तथा हरि ।
अन्तहेतुर्भवानस्य जगत प्रतिसर्गकम् ॥ २४ ॥
तत्कर्मणि[62] सदैवाहं भवद्भ्या सहितो ह्यलम् ।
हरि. स्थितावपि तथा मयालं भवता सह ।
त्वमन्तकरणे शक्तो विना नावा भविष्यसि ॥ २५ ॥
तस्मादन्योन्यकृत्येषु सर्वेषा वृषभध्वज ।
साहाय्यं न सदा योग्यमन्यथा न जगद्भवेत् ॥ २६ ॥
केचिद्भविष्यन्त्यसुरा मम वध्या महेश्वर ।
अपरे तु हरेर्वध्या भवतोऽपि[63] तथापरे ॥ २७ ॥
केचित्तद्वीर्यजातस्य केचिन्मेऽशंभवस्य वै ।
मायायाः केचिदपरे वध्या स्युर्देववैरिण ॥ २८ ॥
योगयुक्ते त्वयि सदा रागद्वेषादिवर्जिते ।
दयामात्रैकनिरते न वध्या असुरास्तव ॥ २९ ॥
अबाधितेषु तेष्वीश कथं सृष्टिस्तथा स्थिति ।
अन्तश्च भविता युक्तं नित्य नित्य वृषध्वज ॥ ३० ॥
सृष्टिस्थित्यन्तकर्माणि न कार्याणि यदा हर ।
शरीरभेदमस्माकं मायायाश्च न युज्यते ॥ ३१ ॥
एकस्वरूपा हि वय भिन्ना कार्यस्य भेदत· ।
कार्यभेदो न सिद्धश्चेद्रूपभेदोऽप्रयोजन· ॥ ३२ ॥
एक एव त्रिधा भूत्वा वयं भिन्न स्वरूपिण ।
भूता महेश्वर इति तत्त्व विद्धि सनातनम् ॥ ३३ ॥
मायापि भिन्नरूपेण कमलाख्या[64] सरस्वती ।
सावित्री चाथ सन्ध्या च भूता कार्यस्य भेदतः ॥ ३४ ॥
प्रवृत्तेरनुरागस्य नारी मूलं महेश्वर ।
रामापरिग्रहात् पश्चात् कामक्रोधादिकोद्भवः ॥ ३५ ॥

62 मत्कर्मणि । 63 तववध्यास्तथापरे । 64 कमला च ।

अनुरागे तु सञ्जाते कामक्रोधादिकारणे ।
विरागहेतु यत्नेन सान्त्वयन्तीह[65] जन्तव ॥ ३६ ॥
संग प्रथम एव स्याद्रागवृक्षात् फलं महत् ।
तस्मात् संजायते कामः कामात् क्रोधस्ततो भवेत् ॥ ३७ ॥
वैराग्यश्च निवृत्तिश्च शोकात् स्वाभाविकादपि ।
संसारविमुखे हेतुरसंगश्च सदातनः ॥ ३८ ॥
दया तत्र भवेन्नित्यं शान्तिश्चापि महेश्वर ।
अहिंसा च तप· शान्तिर्ज्ञानमार्गानुसाधनम् ॥ ३६ ॥
त्वयि तावत्तपोनिष्ठे विसंगिनि दयायुते ।
अहिंसा च तथा शान्ति सदा तव भविष्यति ॥ ४० ॥
ततो सुखविधौ[66] यत्नस्तव कस्माद्भविष्यति ।
अकृते दूषणं यद्यत्तत् सर्वं कथितं तव ॥ ४२ ॥
तस्माद्विश्वहिताय त्वं देवानाञ्च जगत्पते ।
परिगृह्णीष्व भार्यार्थे वामामेकां सुशोभनाम् ॥ ४२ ॥
यथा पद्मालया विष्णो. सावित्री च यथा मम ।
तथा सहचरी शम्भोर्या स्यात्त्वं गृह्ण सम्प्रति ॥ ४३ ॥

मार्कण्डेय उवाच

इति श्रुत्वा वचस्तस्य ब्रह्मणः पुरतो हरे. ।
तदा जगाद लोकेशं स्मितार्द्दितमुखो[67] हरः ॥ ४४ ॥

ईश्वर उवाच

एवमेव यथात्थ त्वं ब्रह्मन् विश्वनिमित्ततः ।
न स्वार्थत प्रवृत्तिर्मे सम्यग् ब्रह्मविचिन्तनात् ॥ ४५ ॥
तथापि यत्करिष्यामि तत्ते वक्ष्ये जगद्धितम् ।
तच्छृणुष्व महाभाग युक्तमेव वचो मम ॥ ४५ ॥

---

65 स्रातयन्तीह । 66 ततोऽसुखधे । 67 स्मितप्रसुखो हरः ।

या मे तेज समर्था स्याद्ग्रहीतुमिह भागशः।
ता निदेशय भार्यार्थे योगिनीं कामरूपिणीम् ॥ ४७ ॥
योगयुक्ते मयि तथा[68] योगिन्येव भविष्यति।
कामासक्ते मयि पुनर्मोहिन्येव भविष्यति।
ता मे निदेशय ब्रह्मन् भार्यार्थे वरवर्णिनीम् ॥ ४८ ॥
यदक्षरं वेदविदो निगदन्ति मनीषिण ।
ज्योति·स्वरूपं परमं चिन्तयिष्ये सनातनम् ॥ ४६ ॥
तच्चिन्ताया सदा[69] शक्तो ब्रह्मन् गच्छामि भावनाम्।
तत्र या विघ्नजननी न भवित्रीह सास्तु मे ॥ ५० ॥
त्वं वा विष्णुरहं वापि परब्रह्मस्वरूपिण.।
अंगभूता महाभाग योग्यं तदनुचिन्तनम् ॥ ५१ ॥
तच्चिन्तया विना नाहं स्थास्यामि कमलासन।
तस्माज्जाया प्रादिशस्व मत्कर्मानुगता सदा। ५२ ॥

मार्कण्डेय उवाच

इति तस्य वच श्रुत्वा ब्रह्मा सर्वजगत्पति·।
सस्मितं मोदितमना इदं वचनमब्रवीत् ॥ ५३ ॥

ब्रह्मोवाच

अस्तीदृशी महादेव मार्गिता यादृशी त्वया ॥ ५४ ॥
दक्षस्य तनया याभूत् सतीनाम्नी सुशोभना।
सैवेदृशी भवद्भार्या भविष्यति सुधीमती ॥ ५५ ॥
ता त्वदर्थे तपस्यन्तीं तत्प्राप्ति प्रतिकामिनीम्।
विद्धि त्वं देवदेवेश[70] सर्वेष्वात्मसु वर्तसे ॥ ५६ ॥

मार्कण्डेय उवाच

अथ ब्रह्मवचः शेषे भगवान् मधुसूदनः।
यदुक्तं ब्रह्मणा सर्वं तत् कुरुष्वेत्युवाच स [71] ॥ ५७ ॥

---

68 च या। 69 यदा। 70 सर्वेष्वंगेष वर्तने। 71 ह।

करिष्य इति तेनोक्ते स्वेष्टं देशं प्रजग्मतुः ।
हरिर्ब्रह्मा च मुदितौ सावित्रीकमला-युतौ ॥ ५८ ॥

कामोऽपि वाक्यानि हरस्य[72] श्रुत्वा
चामोदयुक्तो रतिना समित्रः ।
शम्भुं समासाद्य विविक्तरूपी
तस्थौ वसन्तं विनियोज्य शश्वत् ॥ ५९ ॥

इति श्रीकालिकापुराणे हरानुनयने नवमोऽध्यायः ॥ ९ ॥

दशमोऽध्यायः

मार्कण्डेय उवाच

अथ सत्या पुनः शुक्लपक्षेऽष्टम्यामुपोषितम् ।
आश्विने मासि देवेशं पूजयामास भक्तितः ॥ १ ॥
इति नन्दाव्रते पूर्णे नवम्या दिनभागत ।
तस्यास्तु भक्तिनम्राया प्रत्यक्षमभवद्धरः ॥ २ ॥
प्रत्यक्षतो हरं वीक्ष्य सामोदहृदया सती ।
ववन्दे चरणौ तस्य लज्जयावनता नता ॥ ३ ॥
अथ प्राह महादेवः सतीं तद्[73]व्रतधारिणीम् ।
तामिच्छन्नपि भार्यार्थे तस्याश्चर्यफलप्रदः ॥ ४ ॥

ईश्वर उवाच

अनेन त्वद्व्रतेनाहं प्रीतोऽस्मि दक्षनन्दिनि ।
वरं वरय दास्यामि यस्तवाभिमतो भवेत् ॥ ५ ॥

---

72 श्चाथामोदयुक्तः । 73 व्रतचारिणीम् ।

मार्कण्डेय उवाच

जानन्नपीह तद्भावं महादेवो जगत्पति ।
ऊचेऽथ वरयस्वेति तद्वाक्यश्रवणेच्छया ॥ ६ ॥
सापि त्रपासमाविष्टा नो वक्तु हृदये स्थितम् ।
शशाक बालाभीष्टं यल्लज्जयाच्छादितं यत ॥ ७ ॥
एतस्मिन्नन्तरे काम साभिप्रयं हरं तदा ।
वामापरिग्रहे नेत्र-वक्त्रव्यापारलिंगितम् ॥ ८ ॥
सम्प्राप्य विवरश्चापं सन्दधे पुष्पहेतिना ।
हर्षणेनाथ बाणेन विव्याध हृदये हरम् ॥ ६ ॥
ततोऽसौ हर्षितः शम्भुर्वीक्षाञ्चक्रे सतीं मुहु ।
विस्मृत्य च परं ब्रह्मचिन्तनं परमेश्वर ॥ १० ॥
ततः पुनर्मोहनेन बाणेनैनं मनोभवः ।
विव्याध हर्षित शम्भुर्मोहितश्च तदा भृशम् ॥ ११ ॥
ततो यदासौ मोहस्य हर्षस्य च द्विजोत्तमा
भावं व्यक्तीचकारैष माययापि विमोहित ॥ १२ ॥
अथ त्रपा स्वा संस्तभ्य यदा प्राह हरं सती ।
ममेष्टं देहि वरद वरमित्यर्थकारकम् ॥ १३ ॥
तदा वाक्यस्यावसानमनपेक्ष्य वृषध्वजः ।
भवस्व मम भार्येति प्राह दाक्षायणीं मुहु ॥ १४ ॥
एतच्छ्रुत्वा वचस्तस्य साभीष्टफलभावनम् ।
तूष्णीं तस्थौ प्रमुदिता वरं प्राप्य मनोगतम् ॥ १५ ॥
सकामस्य हरस्याग्रे तत्र सा चारुहासिनी ।
अकरोन्निजभावाश्च हावानपि द्विजोत्तमा ॥ १६ ॥
स्वस्य भावान् समादाय श्रृंगाराख्यो रसस्तदा ।
तयोर्विवेश विप्रेन्द्राः कलहो वा यथोचितम् ॥ १७ ॥

---

74 यत् तवाभिमत । 75 विसृज्य ।

हरस्य पुरतो रेजे स्निग्धभिन्नाञ्जनप्रभा ।
चन्द्राभ्यासेऽङ्कलेखेव[76] स्फटिकोज्ज्वलवर्ष्मण. ॥१८॥
अथ सा तमुवाचेदं हरं दाक्षायणी मुहुः ।
पितुर्मे गोचरीकृत्य मा गृह्णीष्व जगत्पते ॥ १९ ॥
एवं स्मितं वचो देवी यदोवाच सती तदा ।
मम भार्या भवेत्यूचे पुन कामेन मोहित ॥ २० ॥
अथैतद्वीक्ष्य मदन सरतिः ससखो मुदा ।
युक्तो वभूव शश्वच्च आत्मानञ्चाभ्यनन्दयन् ॥ २१ ॥
अथ दाक्षायणी शम्भुं समाश्वास्य द्विजोत्तमा· ।
जगाम मातुरभ्यासं हर्षमोहसमन्विता ॥ २२ ॥
हरोऽपि हिमवत्प्रस्थं प्रविश्य च निजाश्रमम् ।
दाक्षायणी[77] विप्रलम्भदुःखाद् ध्यानपरोऽभवत् ॥ २३ ॥
विप्रलब्धोऽपि भूतेशो ब्रह्मवाक्यमथास्मरत् ।
जायापरिग्रहस्यार्थे यदुक्तं पद्मयोनिना ॥ २४ ॥
स्मृत्यैव ब्रह्मवाक्यस्य पुरा विश्वासतः परम् ।
चिन्तयामास मनसा ब्रह्माणं वृषभध्वजः ॥ २५ ॥
अथ संचिन्त्यमानोऽसौ परमेष्ठी त्रिशूलिन ।
पुरस्तात् प्राविशत्तूर्णमिष्टसिद्धिप्रचोदित. ॥ २६ ॥
यत्रायं हिमवत्प्रस्थे विप्रलब्धो हरः स्थित ।
सावित्री सहितो ब्रह्मा तत्रैव समुपस्थित. ॥ २७ ॥
अथ तं वीक्ष्य धातारं सावित्रीसहितं हरः ।
सोत्सुको विप्रलब्धश्च सत्यर्थं तमुवाच ह ॥ २८ ॥

ईश्वर उवाच

ब्रह्मन् विश्वार्थतो दारपरिग्रहकृतौ च यत् ।
त्वमात्थ तत्सार्थमिव प्रतिभाति ममाधुना ॥ २९ ॥

---

76 चन्द्राभ्यासेन्द्रलेखेव । 77 विप्रलब्ध ।

अहमाराधितो भक्त्या दाक्षायण्यातिभक्तित· ।
तस्या वरमहं दातुं यदायात प्रपूजित. ॥ ३० ॥
तत्सकाशे तदा कामो मा विव्याध महेषुभि· ।
मायया मोहितश्चाहं तत्प्रतीकारमञ्जसा ।
न शक्त कर्तुमभीत· पुराहं कमलासन ॥ ३१ ॥
तस्याश्च वाञ्छितं ब्रह्मन्नेतदेव मयेक्षितम् ।
यदहं स्या विभो[78] भर्ता व्रतभक्तिमुदायुतः ॥ ३२ ॥
तस्मात्त्वं कुरु विश्वार्थं मदर्थे च प्रजापते ।
दक्षो यथा मामामन्त्र्य[79] सुता दाता तथा द्रुतम् ॥ ३३ ॥
गच्छ त्वं दक्षभवनं कथयस्व वचो मम ।
यथा सतीवियोगस्य भंग स्यात् त्वं तथा कुरु ॥ ३४ ॥

मार्कण्डेय उवाच

इत्युदीर्य महादेवः सकाशेऽस्य प्रजापते ।
सावित्रीं वीक्ष्य सत्यास्तु विप्रयोगो व्यवर्द्धत ॥ ३५ ॥
तं समाभाष्य लोकेशः कृतकृत्यो मुदान्वित ।
इद जगाद जगता हितं पथ्यं च धूर्जटे ॥ ३६ ॥

ब्रह्मोवाच

यदात्थ भगवञ्छम्भो तद्विश्वार्थं सुनिश्चितम् ।
नास्त्येव भवत स्वार्थो ममापि वृषभध्वज ॥ ३७ ॥
सुताञ्च तुभ्यं दक्षस्तु स्वयमेव प्रदास्यति ।
अहञ्चापि वदिष्यामि त्वद्वाक्यं तत्समक्षतः[80] ॥ ३८ ॥

मार्कण्डेय उवाच

इत्युदीर्य महादेवं ब्रह्मा लोकपितामहः ।
जगाम दक्षनिलयं स्यन्दनेनातिवेगिना ॥ ३९ ॥

78 निभो । 79 समामन्त्र्य । 80 समीपत· ।

अथ दक्षोऽपि वृत्तान्तं सर्वं श्रुत्वा सतीमुखात् ।
चिन्तयामास देयेयं मत्सुता शम्भवे कथम् ॥ ४० ॥
आगतोऽपि महादेवः प्रसन्नः सञ्जगाम ह ।
पुनरेव कथं सोऽपि सुतार्थेऽत्यर्थमीप्सितः ॥ ४१ ॥
प्रस्थाप्यो वा मया तस्य दूतो निकटमञ्जसा ।
नैतद्योग्यं न गृह्णीयाद् यद्येनां विभुरात्मने[81] ॥ ४२ ॥
अथवा पूजयिष्यामि तमेव वृषभध्वजम् ।
मदीयतनयाभर्ता स्वयमेव यथा भवेत् ॥ ४३ ॥
तथैव पूजितः सोऽपि वाञ्छन्त्यातिप्रयत्नतः ।
शम्भुर्भवतु मद्भर्तेत्येवं दत्तश्च तेन तत् ॥ ४४ ॥
इति चिन्तयतस्तस्य दक्षस्य पुरतो विधिः ।
उपस्थितो हंसरथः सावित्रीसहितस्तदा ॥ ४५ ॥
तं दृष्ट्वा वेधसं दक्षः प्रणम्यावनतः स्थितः ।
आसनञ्च ददौ तस्मै समाभाष्य यथोचितम् ॥ ४६ ॥
ततस्तं सर्वलोकेशं तत्रागमनकारणम् ।
दक्षः पप्रच्छ विप्रेन्द्राश्चिन्ताविष्टोऽपि हर्षितः ॥ ४७ ॥

दक्ष उवाच

तवात्रागमने हेतुं कथयस्व जगद्गुरो ।
पुत्रस्नेहात् कार्यवशादथवाश्रममागतः ॥ ४८ ॥

मार्कण्डेय उवाच

इति पृष्टः सुरश्रेष्ठो दक्षेण सुमहात्मना ।
प्रहसन्नब्रवीद्वाक्यं मोदयंस्तं प्रजापतिम् ॥ ४९ ॥

ब्रह्मोवाच

शृणु दक्ष यदर्थं ते समीपमहमागतः ।
तल्लोकस्य हितं पथ्यं भवतोऽपि तदीप्सितम् ॥ ५० ॥

---

81 विफलार्थता ।

तव पुत्र्या समाराध्य महादेवं जगत्पतिम् ।
यो वर प्रार्थित सोऽद्य स्वयमेवागतो गृहम् ॥ ५१ ॥
शम्भुना तव पुत्र्यर्थे त्वत्सकाशमहं पुन ।
प्रस्थापितोऽस्मि यत् कृत्यं श्रेयस्तदवधारय ॥ ५२ ॥
वरं दातुं यदायातस्तावत्प्रभृति शंकरः ।
तत्सुताविप्रयोगेण न शर्म लभतेऽञ्जसा ॥ ५३ ॥
लब्धच्छिद्रोऽपि मदनो निचखान तदा भृशम् ।
सर्वैं पुष्पकरैर्बाणैरेकदैव जगत्प्रभुम् ॥ ५४ ॥
स बाणविद्ध कामेन परित्यज्यात्मचिन्तनम् ।
सतीं विचिन्तयन्नास्ते व्याकुल प्राकृतो यथा ॥ ५५ ॥
विस्मृत्य प्रस्तुता वाणीं गणाग्रे विप्रयोगत ।
क्व सतीत्येव गिरिशो भाषतेऽन्यकृतावपि ॥ ५६ ॥
मया यद्वाञ्छितं पूर्वं त्वया च मदनेन च ।
मरीच्याद्यैर्मुनिवरैस्तत् सिद्धमधुना सुत ॥ ५७ ॥
त्वत्पुत्र्याराधित शम्भु सोऽपि तस्या विचिन्तनात् ।
अनुमोदयितुं प्रेप्सुर्वर्तते हिमवद्गिरौ ॥ ५८ ॥
यथा नानाविधैर्भावै सत्या नन्दाव्रतेन च ।
शम्भुराराधितस्तेन तथैवाराध्यते सती ॥ ५९ ॥
तस्मात्त्वं दक्ष तनया शम्भ्वऽर्थे परिकल्पिताम् ।
तस्मै[82] देह्यविलम्बेन तेन ते कृतकृत्यता ॥ ६० ॥
अहं तमानयिष्यामि नारदेन त्वदालयम् ।
तस्मै त्वमेना संयच्छ तदर्थे परिकल्पिताम् ॥ ६१ ॥

मार्कण्डेय उवाच

एवमेवेति दक्षस्तमुवाच परमेष्ठिनम् ।
विधिश्च गतवांस्तत्र गिरिशो यत्र संस्थितः ॥ ६२ ॥

82 देहि विधानेन ।

गते ब्रह्मणि दक्षोऽपि सदारतनयो मुदा ।
अभवत् पूर्णदेहस्तु पीयूषैरिव पूरित ॥ ६३ ॥
अथ ब्रह्मापि मोदेन प्रसन्नः कमलासन. ।
आससाद महादेवं हिमवद्गिरिसंस्थितम् ॥ ६४ ॥
तं वीक्ष्य लोकस्रष्टारमायान्तं वृषभध्वज ।
मनसा संशयं चक्रे सतीप्राप्तौ मुहुर्मुहु ॥ ६५ ॥
अथ दूरान्महादेवो लोकेशं सामसंयुतम् ।
उवाच मदनोन्माथः[83] विधिं स स्मरमानस. ॥ ६६ ॥

ईश्वर उवाच

किमवोचत् सुरश्रेष्ठ सत्यर्थे त्वत्सुत. स्वयम् ।
कथयस्व यथास्वान्तं मन्मथेन न दीर्यते ॥ ६७ ॥
बाधमानो विप्रयोगो मामेव च सतीमृते ।
अभिहन्ति सुरश्रेष्ठ त्यक्त्वान्यान् प्राणधारिण· ॥ ६८ ॥
सतीति सततं वेद्मि ब्रह्मन् कार्यान्तरेऽप्यहम् ।
सा यथा हि मया प्राप्या तद्विधत्स्व तथा द्रुतम् ॥ ६९ ॥

ब्रह्मोवाच

सत्यर्थे यन्ममसुतो वदति स्म वृषध्वज ।
तच्छृणुष्व निजं साध्यं सिद्धमित्यवधारय ॥ ७० ॥
देया तस्मै मया पुत्री तदर्थं परिकल्पिता ।
ममापीष्टमिदं कर्म त्वद्वाक्यादधिकं पुनः ॥ ७१ ॥
मत्पुत्र्याराधित. शम्भुरेतदर्थं स्वय पुनः ।
सोऽप्यन्विच्छति ता यस्मात्तस्माद्देया मया हरे ॥ ७२ ॥
शुभे लग्ने मुहूर्ते च समागच्छतु मेऽन्तिकम्[84] ।
तदा दास्यामि तनयां भिक्षार्थे शम्भवे विधे ॥ ७३ ॥

83 विवशः स्मरशासन । 84 मे गृहम् ।

इत्यवोचन्मुदा दक्षस्तस्मात्त्वं वृषभध्वज ।
शुभे मुहूर्ते तद्वेश्म गच्छ तामनुयाचितुम् ॥ ७४ ॥

ईश्वर उवाच

गमिष्ये भवता सार्द्धं नारदेन महात्मना ।
द्रुतमेव जगत्पूज्य तस्मात्त्वन्नारदं स्मर ॥ ७५ ॥
मरीच्यादीन् दश तथा मानसानपि संस्मर ।
तै सार्द्धं दक्षनिलयं गमिष्येऽहं गणै सह ॥ ७६ ॥
तत स्मृतास्ते कमलासनेन
सनारदा ब्रह्मसुता मनोजवाः ।
समागता यत्र हरो विधिश्च
तत्रागताः काममवेत्य चिन्ताम् ॥ ७७ ॥

इति श्रीकालिकापुराणे सतीयाचने दशमोऽध्याय ॥ १० ॥

एकादशोऽध्यायः

मार्कण्डेय उवाच

तत· समागता सर्वे मानसाश्च सनारदा· ।
विधे· स्मरणमात्रेण वातेनेव विनोदिता· ॥ १ ॥
तैः सार्धं ब्रह्मणा शम्भु· सगणो दक्षमन्दिरम् ।
जगाम मोदयुक्तोऽथ काले तत्कर्मयोगिनि ॥ २ ॥
गणा· शंखांश्च पटहान् डिण्डिमांस्तूर्यवंशकान् ।
वादयन्तो मुदायुक्ता अनुगच्छन्ति शंकरम् ॥ ३ ॥
केचित्तालं करतलैः कुर्वन्तोऽघ्रितलस्वनम् ।
विमानैरतिवेगै· स्वैरनुयान्ति वृषध्वजम् ॥ ४ ॥

कोलाहलं प्रकुर्वन्तस्तथा नानाविधान् रवान्।
गणा अनेकाकृतय शब्दयोगेन निर्ययु ॥ ५ ॥
ततो देवा मुदा युक्ता गन्धर्वाप्सरसो गणा ।
वाद्यैर्मोदैस्तथा नृत्यैरन्वीयुर्वृषभध्वजम् ॥ ६ ॥
तेषा शब्देन विप्रेन्द्रा गन्धर्वाणा गरीयसाम् ।
गणानाञ्च दिश सर्वाः पूरिता च वसुन्धरा ॥ ७ ॥
कामोऽपि सगण· शम्भु सशृंगाररसादिभि ।
मोदयन् मोहयन् कायमन्वियात् स समक्षत· ॥ ८ ॥
हरे गच्छति भार्यार्थे तदानीं सकला. सुरा. ।
ब्रह्माद्या स्वयमेवाशु वाद्यं चक्रुर्मनोहरम् ॥ ९ ॥
दिश सर्वाः सुप्रसन्ना बभूवुर्द्विजसत्तमा· ।
जज्वलुश्चाग्नय· शान्ता पुष्पवृष्टिरजायत ॥ १० ॥
ववुर्वाता. सुरभयो वृक्षाश्चापि सुपुष्पिता ।
बभूवु. प्राणिन. स्वस्था अस्वस्था येऽपि केचन ॥ ११ ॥
हंससारसकादम्बा नीलकम्बुश्च चातकाः ।
चुकुशुर्मधुरान् शब्दान् प्रेरयन्त इवेश्वरम् ॥ १२ ॥
भुजगो व्याघ्रकृत्तिश्च जटा चन्द्रकला तथा ।
जगाम भूषणत्वञ्च तेनापि परिदीपित. ॥ १३ ॥
तत. क्षणेन बलिना बलीवर्देन वेगिना ।
सब्रह्मनारदाद्यैश्च प्राप दक्षालयं हरः ॥ १४ ॥
ततो दक्षो महातेजा अभ्युत्थाय स्वयं हरम् ।
ब्रह्मादींश्चाददौ तेषामासनानि यथोचितम् ॥ १५ ॥
कृत्वा यथोचिता तेषां पूजा पाद्यादिभिस्तथा ।
चकार संविदं दक्षो मुनिभिर्मानसैः पुनः ॥ १६ ॥
तत. शुभे मुहूर्ते तु लग्ने च द्विजसत्तमाः ।
सतीं निजसुतां दक्षो ददौ हर्षेण शम्भवे ॥ १७ ॥
उद्वाहविधिना सोऽपि पाणिं जग्राह हर्षितः ।

दाक्षायण्या वरतनोस्तदानीं वृषभध्वज ॥ १८ ॥
ब्रह्माय नारदाद्याश्च मुनय सामगीतिभि ।
ऋचा यजुर्भि सुश्राव्यैस्तोषयामासुरीश्वरम् ॥ १९ ॥
वाद्यं चक्रुर्गणा सर्वे ननृतुश्चाप्सरोगणा ।
पुष्पवृष्टिञ्च ससृजुर्मेघा गगनसंगता ॥ २० ॥
अथ शम्भुमुपागत्य गरुडेनातिवेगिना ।
सार्धं कमलया चेदमुवाच गरुडध्वज ॥ २१ ॥

श्रीभगवानुवाच

स्निग्धनीलाञ्जनश्याम-शोभया शोभसे हर ।
दाक्षायण्या यथा चाह प्रातिलोम्येन[85] पद्मया ॥ २२ ॥
कुरु त्वमनया सार्धं रक्षा देवस्य वा नृणाम् ॥ २३ ॥
अनया सह संसारसारिणा मगलं सदा ।
कुरु दस्यून् यथायोग्यं हनिष्यसि च शंकर ॥ २४ ॥
य एवैना साभिलाषो दृष्ट्वा श्रुत्वाथवा भवेत् ।
तं हनिष्यसि भूतेश नात्र कार्या विचारणा ॥ २५ ॥

मार्कण्डेय उवाच

एवमस्त्विति[86] सर्वज्ञ प्रोवाच परमेश्वरम् ।
प्रहृष्टमानसं प्रीत्या प्रसन्नवदनो द्विजाः ॥ २६ ॥
अथ ब्रह्मा तदा दृष्ट्वा दक्षजा चारुहासिनीम् ।
स्मराविष्टमना वक्त्रं वीक्षाचक्रे तदीयकम् ॥ २७ ॥
मुहुर्मुहुस्तदा ब्रह्मा पश्यति स्म सतीमुखम् ।
तदेन्द्रियविकारञ्च प्राप्तवानवशः पुनः ॥ २८ ॥
अथ तस्य पपाताशु तेजो भूमौ द्विजोत्तमाः ।
तज्जलदहनाभासं[87] मुनीनां पुरतस्तदा ॥ २९ ॥

---

85 प्रतिलोमेन । 86 त शर्व । 87 उज्ज्वलं ।

ततस्तस्मात् समभवंस्तोयदाः शब्दसंयुताः ।
सम्बर्तश्च तथावर्तः पुष्करो द्रोण एव च ।
गर्जन्तश्चाथ मुञ्चन्तस्तोयानि द्विजसत्तमाः ॥ ३० ॥
तैस्तु सञ्छादिते व्योम्नि तेषु गर्ज्जत्सु शंकरः ।
पश्यन् दाक्षायणीं देवीं भृशं कामेन मोहितः ॥ ३१ ॥
मोहितोऽप्यथ कामेन तदा विष्णुवचः स्मरन् ।
इयेष हन्तु ब्रह्माणं शूलमुद्यम्य शंकरः ॥ ३२ ॥
शम्भुनोद्यमिते शूले विधिं हन्तु द्विजोत्तमाः ।
मरीचिनारदाद्यास्ते चक्रुर्हाहाकृतिं तदा ॥ ३३ ॥
दक्षो मैवं मैवमिति पाणिमुद्यम्य शंकितः ।
वारयामास भूतेशं क्षिप्रमेत्य पुरोगतः ॥ ३४ ॥
अथाग्रे मीलितं वीक्ष्य तदा दक्षं महेश्वरः ।
प्रत्युवाचाप्रियमिदं स्मारयन् वैष्णवीं गिरम् ॥ ३५ ॥

ईश्वर उवाच

नारायणेन विप्रेन्द्र यदिदानीमुदीरितम् ।
मयाप्यंगीकृतं कर्तुं तदिहैव प्रजापते ॥ ३६ ॥
एना यः साभिलाषः सन् वीक्षते तं हनिष्यसि ।
इति वाचन्तु सफलमेनं हत्वा करोम्यहम् ॥ ३७ ॥
साभिलाषः कथं ब्रह्मा सतीं समवलोकयत् ।
अभवत्त्यक्ततेजास्तु ततो हन्मि कृतागसम् ॥ ३८ ॥

मार्कण्डेय उवाच

तमेवं वादिनं विष्णुः क्षिप्रं भूत्वा पुरःसरः ।
इदमूचे वारयंस्तं हन्तु सर्वजगत्प्रभुः ॥ ३९ ॥

---

88. परम् ।

श्रीभगवानुवाच

न हनिष्यसि भूतेश स्रष्टारं जगता वरम्[४४] ।
अनेनैव सती भार्या भवदर्थे प्रकल्पिता ॥ ४० ॥
प्रजाः स्रष्टुमयं शम्भो प्रादुर्भूतश्चतुर्मुख ।
अस्मिन् हते जगत्स्रष्टा नास्त्यन्य प्राकृतोऽधुना ॥ ४१ ॥
सृष्टिस्थित्यन्तकर्माणि करिष्याम कथं पुन ।
अनेनापि मया चैव भवता च समञ्जसम् ॥ ४२ ॥
एकस्मिन्निहतेऽमीषु कस्तत्कर्म करिष्यति ।
तस्मान्न वध्यो भवता विधाता वृषभध्वज ॥ ४३ ॥

ईश्वर उवाच

प्रतिज्ञा पूरयिष्यामि हत्वैनं चतुराननम् ।
अहमेव प्रजा. स्रक्ष्ये स्थावराणि चराणि च ॥ ४४ ॥
अन्यं स्रक्ष्ये विधातारमथवाहं स्वतेजसा ।
स एव सृष्टिकर्ता स्यात् सर्वदा मदनुज्ञया ॥ ४५ ॥
हत्वैनं विधिमेवाहं प्रतिज्ञा पालयन् विभो ।
स्रष्टारमेकं स्रक्ष्यामि न वारय चतुर्भुज ॥ ४६ ॥

मार्कण्डेय उवाच

इति तस्य वच श्रुत्वा गिरिशस्य चतुर्भुज ।
स्मितप्रसन्नवदन पुनर्मैवमितीरयन् ॥ ४७ ॥
प्रतिज्ञापूरणं कर्तुं योग्यमात्मनि नो भवेत् ।
इत्युवाचाभिवदनमीश्वरस्य द्विजोत्तमा. ॥ ४८ ॥
ततः पुन शम्भुरूपे कथमात्मा विधिर्मम ।
लक्ष्यते भिन्न एवायं प्रत्यक्षेणाग्रतः स्थित ॥ ४९ ॥
अथ प्रहस्य भगवान् मुनीनां पुरतस्तदा ।
इदमूचे महादेवं तोषयन् गरुडध्वजः ॥ ५० ॥

श्रीभगवानुवाच

न ब्रह्मा भवतो भिन्नो न शम्भुर्ब्रह्मणस्तथा।
न चाहं युवयोर्भिन्नोऽभिन्नत्वं सनातनम् ॥ ५१ ॥
प्रधानस्याप्रधानस्य भागाभागस्वरूपिणः।
ज्योतिर्मयस्य भागो मे युवामेकोऽहमंशकः ॥ ५२ ॥
कस्त्वं कोऽहञ्च को ब्रह्मा ममैव परमात्मनः।
अंशात्रयमिदं भिन्नं सृष्टिस्थित्यन्तकारणम् ॥ ५३ ॥
चिन्तयस्वात्मनात्मानं संस्तवं कुरु चात्मनि।
एकत्रं ब्रह्मवैकुण्टशम्भूना हृद्गतं कुरु ॥ ५४ ॥
शिरोग्रीवादिभेदेन यथैकस्यैव धर्मिणः।
अंगानि मे तथैकस्य भागत्रयमिदं हर ॥ ५५ ॥

यज्ज्योतिरग्र्यं स्वपरप्रकाश
कूटस्थमव्यक्तमनन्तरूपम्।
नित्यञ्च दीर्घादिविशेषणाद्यै-
र्हीनं परं तच्च वयं न भिन्नाः ॥ ५६ ॥

मार्कण्डेय उवाच

एतच्छ्रुत्वा वचस्तस्य महादेवो विमोहितः।
जानन् स चाप्यभिन्नत्वं[89] सद्भिस्मृत्यान्यचिन्तनात् ॥ ५७ ॥
पुनः प्रपच्छ गोविन्दमनन्यत्वं त्रिभेदिनाम्।
ब्रह्मविष्णुत्र्यम्बकानामेकस्य च विशेषकम् ॥ ५८ ॥
ततो नारायणः पृष्टः कथयामास शम्भवे।
अनन्यत्वं त्रिदेवानामेकत्वञ्च व्यदर्शयत् ॥ ५९ ॥

श्रुत्वा ततो विष्णुमुखाब्जकोशा-
दनन्यता विष्णुविधीशतत्त्वे।
दृष्ट्वा स्वरूपं च जघान नैनं
विधिं मृडः पुष्पमधुप्रकाशकम् ॥ ६० ॥

इति श्रीकालिकापुराणे त्रिदेवानामेकत्वप्रतिपादकः एकादशोऽध्यायः ॥ ११ ॥

---

89 तद्भिस्मृत्य।

द्वादशोऽध्यायः

ऋषय ऊचुः

अनन्यत्वं त्रिदेवाना यज्जगाद जनार्दनः ।
शम्भवे तद्वयं श्रोतुमिच्छामो द्विजसत्तम ॥ १ ॥
एकत्वं दर्शयामास कथं वा गरुडध्वज· ।
तत् समाचक्ष्व विप्रेन्द्र परं कौतूहलं हि न· ॥ २ ॥

मार्कण्डेय उवाच

शृणुध्वं मुनयो गुह्यं परमं प्रयतं परम् ।
त्रिदेवानामनन्यत्वं तथैवैकत्वदर्शनम् ॥ ३ ॥
हरेण पृष्टो गोविन्दस्तं समाभाष्य सादरम् ।
इदमाह मुनिश्रेष्ठा अभिन्नप्रतिपादकम् ॥ ४ ॥

श्रीभगवानुवाच

इदं तमोमयं सर्वमासीद्भुवनवर्जितम् ।
अप्रज्ञातमलक्ष्यञ्च प्रसुप्तमिव सर्वत ॥ ५ ॥
न दिवारात्रिभागोऽत्र नाकाशं न च काश्यपी ।
न ज्योतिर्न जलं वायुर्नान्यत् किंचन संस्थितम् ॥ ६ ॥
एकमासीत् परं ब्रह्म सूक्ष्मं नित्यमतीन्द्रियम् ।
अव्यक्तं ज्ञानरूपेण द्वैतहीनविशेषणम् ॥ ७ ॥
प्रकृतिः पुरुषश्चैव नित्यौ द्वौ सर्वसंहितौ ।
स्थित· कालोऽपि भूतेश जगत्कारणमेककम् ॥ ८ ॥
यदेकं परम ब्रह्म तत्स्वरूपात् परं हर ।
रूपत्रयमिदं नित्यं तस्यैव जगत· पते ॥ ९ ॥
कालो नामापरं रूपमनाद्यं[10] तत्तु कारणम् ।
सर्वेषामेव भूतानामवच्छेदेन संगतः ॥ १० ॥

---

10 रूपमनाद्यं ततु ।

ततस्तत् स्वप्रकाशेन भास्वद्रूपं प्रकाशते ।
पुरा सृष्ट्यर्थमतुलं क्षोभयन् प्रकृतिं स्वयम् ॥ ११ ॥
संक्षुब्धायान्तु प्रकृतौ महत्तत्त्वमजायत ।
महत्तत्त्वात्तत पश्चादहंकारस्त्रिधाभवत् ॥ १२ ॥
अहंकारे तु संजाते शब्दतन्मात्रतस्तत ।
आकाशमसृजद्विष्णुरनन्तं मूर्तिवर्जितम् ॥ १३ ॥
ततस्तु रसतन्मात्रादपः सृष्ट्वा महेश्वरः ।
निराधारः स्वयं दध्रे तास्तदा निजमायया ॥ १४ ॥
ततस्त्रिगुणसाम्येन संस्थिता प्रकृतिं प्रभुः ।
पुन संक्षोभयामास सृष्ट्यर्थं परमेश्वर ॥ १५ ॥
ततः सा प्रकृतिस्तासु बीजं त्रिगुणभागवत् ।
अप्सु संसर्जयामास जगद्बीज निराकुलम्[91] ॥ १६ ॥
तद्धि[92] वृद्धं क्रमेणैव हैममण्डमभून्महत् ।
जग्राहाप. समस्तास्ता गर्भ एव तदण्डकम् ॥ १७ ॥
अप्सु स्थितासु हैमाण्डगर्भे विष्णुस्तदण्डकम् ।
त्वयैव मायया दध्रे ब्रह्माण्डमतुलं पुनः ॥ १८ ॥
वारिणा वह्निभिश्चैव वायुभिर्नभसा तथा ।
बहिस्तदण्डकं छन्नं सर्वपार्श्वे समन्ततः ॥ १९ ॥
सप्तसागरमानेन तथा नद्यादि[93]मानतः ।
ब्रह्माण्डाभ्यन्तरे तोयं तदन्यत्तु बहिर्गतम् ॥ २० ॥
तदन्तः स्वयमेवासौ विष्णुर्ब्रह्मस्वरूपधृक् ।
दैवं वर्षमुषित्वैव प्रविभेद तदण्डकम् ॥ २१ ॥
तस्मात् समभवन्मेरुरुत्पन्नोऽस्मिन् महेश्वर ।
जरायुः[94] पर्वता जाता समुद्राः सप्त तज्जलात् ॥ २२ ॥
तन्मध्ये गन्धतन्मात्रात् पृथिवी समजायत ।
ईश्वरेण प्रकृत्या च योजिता त्रिगुणात्मिका ॥ २३ ॥

---

91 निरर्गलम् । 92 तद्विवृद्धं । 93 नद्यादिना ततः । 94 सर्वतो भागे ।

प्रागेव पर्वतादिभ्य· समुत्पन्ना वसुन्धरा ।
ब्रह्माण्डखण्डसंयोगाद्दृढा भूता तु सा भृशम् ॥ २४ ॥
तस्यामेव स्थितो ब्रह्मा सर्वलोकगुरुः स्वयम् ।
यदा ब्रह्माण्डमध्यस्थो ब्रह्मा व्यक्तो न चाभवत् ।
तदैव रूपतन्मत्रात्तेज. सम्यगजायत ॥ २५ ॥
वायुस्तु स्पर्शतन्मात्रात् प्रकृत्या विनियोजितात् ।
वभूव सर्वभूताना प्राणभूत. समन्तत ॥ २६ ॥
अद्भिस्तेजोभिरतुलैर्वायुभिर्नभसा तथा ।
अन्तर्बहिस्तदण्डस्य व्याप्तमन्यत्तु गर्भगम् ॥ २७ ॥
ततो ब्रह्मशरीरन्तु त्रिधा चक्रे महेश्वरः ।
प्रधानेच्छावशाच्छम्भो त्रिगुणत्रिगुणीकृतम् ॥ २८ ॥
तदूर्द्धभाग संजातश्चतुर्वक्त्रश्चतुर्भुज ।
पद्मकेशरगौराग-कायो ब्राह्मो महेश्वर ॥ २९ ॥
तन्मध्यभागो नीलाग एकवक्त्रश्चतुर्भुज ।
शंखचक्रगदापद्मपाणिः काय स वैष्णव ॥ ३० ॥
अभवत्तदधोभाग पंचवक्त्रश्चतुर्भुज ।
स्फटिकाभ्रसम शुक्ल स कायश्चन्द्रशेखर ॥ ३१ ॥
इतस्ततो ब्राह्मकाये सृष्टिशक्ति न्ययोजयत् ।
स्वयमेवाभवत् स्रष्टा ब्रह्मरूपेण लोकभृत् ॥ ३२ ॥
स्थितिशक्ति निजा माया प्रकृत्याख्या न्ययोजयत् ।
महेशो वैष्णवे काये ज्ञानशक्ति निजा तथा । ३३ ॥
स्थितिकर्ताभवद्विष्णुरहमेव महेश्वर ॥ ३४ ॥
सर्वशक्तिनियोगेन सदा तद्रूपता मम ।
अन्तशक्ति तथाकाये शाम्भवे च न्ययोजयत् ॥ ३५ ॥
अन्तकर्ताभवच्छम्भु· स एव परमेश्वरः ।
ततस्त्रिषु शरीरेषु स्वयमेव प्रकाशते ॥ ३६ ।
ज्ञानरूपं परं ज्योतिरनादिर्भगवान् प्रभु· ।

सृष्टिस्थित्यन्तकरणादेक एव महेश्वरः ॥ ३७ ॥
ब्रह्मा विष्णुःशिवश्चेति संज्ञामाप पृथक् पृथक् ।
अतस्त्वञ्च विधाता च तथाहमपि न पृथक् ।
एवं शरीरं रूपञ्च ज्ञानमस्माकमन्तरम् ॥ ३८ ॥

मार्कण्डेय उवाच

एतच्छ्रुत्वा वचस्तस्य विष्णोरमिततेजसः ।
हर्षोत्फुल्लमुख प्रोचे पुनरेव जनार्दनम् ॥ ३९ ॥

ईश्वर उवाच

एक एव महेशश्चेत् ज्योतीरूपो निरंजन ।
का वा मायाथ कः काल का वा प्रकृतिरुच्यते ॥ ४० ॥
के पुमांसस्ततोभिन्नाभिन्नाश्चेत् कथमेकता ।
तन्मे वदस्व गोविन्द[95] तत्प्रभावं यथागतम् ॥ ४१ ॥

श्रीभगवानुवाच

त्वमेव पश्यसि सदा ध्यानस्थः परमेश्वरम् ।
आत्मन्यात्मस्वरूपं तज्ज्योतीरूपं सदक्षरम्[96] ॥ ४२ ॥
मायाञ्च प्रकृतिं कालं पुरुषञ्च स्वय विभो ।
ज्ञाता त्व ध्यानयोगेन यस्माद्ध्यानपरो भव ॥ ४३ ॥
मायया मोहितो यस्मादधुना त्वस्मदीयया ।
ततो विस्मृत्य परम ज्योतिर्हि वनितारतः ॥ ४४ ॥
अधुना कोपयुक्तस्त्वं विस्मृत्यात्मानमात्मनि ।
या पृच्छसि प्रकृत्यादिरूपाणि प्रमथाधिप ॥ ४५ ॥

मार्कण्डेय उवाच

ततस्तत्र महादेवः श्रुत्वा वाक्यं सुनिश्चितम् ।
मुनीना पश्यतां योगयुक्तो ध्यानपरोऽभवत् ॥ ४६ ॥

---

95 तन्माहात्म्य । 96 सनातनम् ।

आसाद्य बन्धं पर्यक निर्निमीलितलोचन ।
आत्मानश्चिन्तयामास तदात्मनि महेश्वर ॥ ४७ ॥
परं चिन्तयतस्तस्य शरीर विवभौ शुभम् ।
तेजोभिरुज्वलं द्रष्टु नशेकुर्मुनयस्तदा ॥ ४८ ।
तत्क्षणात् ध्यानयुक्तश्च शम्भु स विष्णुमायया ।
परित्यक्तोऽति विवभौ तपस्तेजोभिरुज्ज्वल ॥ ४९ ॥
ये ये गणास्तदा तस्थु सेवया शंकरान्तिके ।
न तेऽपि वीक्षितुं शेकु शंकर वा दिवाकरम् ॥ ५० ।
स्वयमेव तदा विष्णुः समाधिमनसो भृशम् ।
प्रविवेश शरीरान्तर्ज्योतीरूपेण धूर्जटेः ॥ ५१ ॥
प्रविश्य तस्य जठरे यथा सृष्टिक्रमः पुरा ।
तथैव दर्शयामास स्वय नारायणोऽव्ययः ॥ ५२ ॥
न स्थूलं न च सूक्ष्मञ्च न विशेषणगोचरम् ।
नित्यानन्दं निरानन्दमेक शुद्धमतीन्द्रियम् ॥ ५३ ॥
अदृश्यं सर्वद्रष्टारं निर्गुणं परमं पदम् ।
परमात्मगमानन्दं जगत्कारणकारणम् ॥ ५४ ।
प्रथमं ददृशे शम्भुरात्मानं तत्स्वरूपिणम् ।
तत्र प्रविष्टमनसा बहिर्ज्ञानविवर्जितः ॥ ५५ ॥
तस्यैव रूपं प्रकृतिं सृष्ट्यर्थे भिन्नतां गताम् ।
ददर्श तस्यैवाभ्यासे पृथग्भूतामिवैकिकाम् ॥ ५६ ॥
पुरुषाश्च ददर्शासौ यथैव [97]वसतस्ततः ।
अग्नेरिव कणात् स्थूलादजस्रं द्विजसत्तमाः ॥ ५७ ।
तदेव कालरूपेण भासते च मुहुर्मुहुः ।
सृष्टिस्थित्यन्तयोगानामवच्छेदेन[98] कारणम् ॥ ५८ ॥
प्रकृतिः पुरुषश्चैव कालोऽपि च मुहुर्मुहुः ।
अभिन्नान् भाषमानाश्च सर्गार्थे भिन्नतां गताम् ॥ ५९ ।

97 स्मत । 98 भवच्छेदन-कारणम् ।

पृथग्भूतानभिन्नांश्च ददृशे चन्द्रशेखरः ।
एकमेवाद्वयं ब्रह्म नेह नानास्ति किञ्चन ॥ ६० ॥
सप्रधानस्वरूपेण कालरूपेण भासते ।
तथापुरुषरूपेण ससारार्थं प्रवर्तते ॥ ६१ ॥
भोगार्थं प्राणिनां शश्वच्छरीरे च प्रवर्तते ।
सैव माया या प्रकृतिः सा मोहयति शंकरम् ॥ ६२ ॥
हरिं तथा विरिञ्चिञ्च तथैवान्यजन्तुर्भवान् ।
मायाख्या प्रकृतिर्जाता जन्तुं सन्मोहयत्यपि ॥ ६३ ॥
सा स्त्रीरूपेण च सदा लक्ष्मीभूता हरेः प्रिया ।
सा सावित्री रतिः सन्ध्या सा सती सैव वीरिणी ॥ ६४ ॥
बुद्धिरूपा स्वयं देवी चण्डिकेति च गीयते ।
इति स्वयं ददर्शाशु ध्यानमार्गगतो हरः ॥ ६५ ॥
महदादि प्रभेदेन तथा सृष्टिक्रमं स्वयम् ॥ ६६ ॥
दर्शयित्वा हरिं कालं प्रकृतिं पुरुषास्तथा ।
तथान्यद्दर्शयामास [99]तच्छरीरं द्विजोत्तमाः ॥ ६७ ॥

इति श्रीकालिकापुराणे त्रिदेवानामनन्यत्व-प्रतिपादने द्वादशोऽध्यायः ॥ १२ ॥

त्रयोदशोऽध्यायः

मार्कण्डेय उवाच

ततो ब्रह्माण्डसंस्थानं दर्शयामास शम्भवे ।
ववृधे तोयराशिस्थं ब्रह्माण्डञ्च यथापुरा ॥ १ ॥
तन्मध्ये पद्मगर्भाभं ब्रह्माणञ्च जगत्पतिम् ।
ज्योती रूपं प्रकाशार्थं सृष्ट्यर्थंच पृथग्गतम्[100] ॥ २ ॥
शरीरिणञ्च ददृशे ब्रह्माण्डान्तर्गतं मुहुः ।
चतुर्भुजं प्रकाशान्तं ज्योतिभिः कमलासनम् ॥ ३ ॥

99 तच्छ्णुर्ष्व । 100 पृथक् पृथक् ।

तत्रैव च त्रिधाभूतं वपुर्ब्राह्मयं ददर्श सः।
ऊर्द्धमध्यान्तभागैश्च ब्रह्मविष्णुशिवात्मकम् ॥ ४ ॥
यथोर्धभागो वपुषो ब्रह्मत्वमगमत्तदा।
मध्यं यथा विष्णुभूत ददर्शान्तस्य शम्भुताम् ॥ ५ ॥
एकमेव शरीरन्तु त्रिधाभूत मुहुर्मुहुः।
हरो ददर्श स्वे गर्भे तथा सर्वमिदं जगत् ॥ ६ ॥
कदाचिद्वैष्णवं कायं ब्राह्मे काये लयं व्रजेत्।
ब्राह्मं तथा वैष्णवे च शाम्भवे वैष्णवं तथा ॥ ७ ॥
शाम्भव वैष्णवे काये ब्राह्मं वाप्यथ शाम्भवे।
गच्छन्तं लीनता शम्भुरेकताञ्च मुहुर्मुहु ॥ ८ ॥
ददर्श वामदेवोऽपि भिन्नञ्चाप्यपृथग्गतम्।
परमात्मनिगच्छन्तं लीनता तद्वपु स्वयम् ॥ ६ ॥
तन्मध्ये पृथिवीं शम्भुर्ददर्श वितता जले।
महापर्वतसंघातैर्विरलं स्थगितन्तत ॥ १० ॥
पुनर्ददर्श ब्रह्माणं कुर्वन्तं स्वर्गमादितः।
आत्मानञ्च पृथग्भूतं विष्णुञ्च गरुडासनम् ॥ ११ ॥
दक्षं प्रजापतिं तत्र तथैव च निजान् गणान्।
मरीच्यादीन् दश तथा वीरिणीञ्च तथा सतीम् ॥ १२ ॥
सन्ध्या रतिं च कन्दर्पं शृंगारं सवसन्तकम्।
हावान् भावास्तथा मारान् ऋषीन् देवान् मरुद्गणान् ॥ १३ ॥
मेघाश्च चन्द्रं सूर्यञ्च वृक्षान् वल्लीस्तृणानि च।
सिद्धान् विद्याधरान् यक्षान् राक्षसान् किन्नरास्तथा ॥ १४ ॥
मानुषाश्च भुजंगाश्च ग्राहान्मत्स्याश्च कच्छपान्।
उल्कानिर्घातकेतूश्च कृमिकीटपतंगकान् ॥ १५ ॥
काञ्चिद्ददर्श वनितां द्वन्द्वभावं प्रकुर्वतीम्।
उत्पन्नमुत्पद्यन्तंच विपद्यन्तञ्च कञ्चन ॥ १६ ॥

हसतो रमत: काश्चित् काश्चिद्विलपतस्तथा।
धावतश्चापराञ्छम्भोर्ददर्श परमेश्वर ॥ १७ ॥
दिव्यालंकारसंछन्ना माला चन्दनचर्च्चिता।
वीक्षाञ्च चक्रिरे केचिच्छम्भुना क्रीडिता मुहु ॥ १८ ॥
स्तुवन्तः प्रस्तुवन्तश्च शम्भु विष्णु तथा विधिम्।
केचिद्ददृशिरे तेन मुनयश्च तपोधना ॥ १९ ॥
तपांसि चरत. केचिन्नदीतीरे तपोवने।
स्वाध्यायवेदनिरताः पाठयन्तश्चैव केचन ॥ २० ॥
तथैव सागरा सप्त नद्यो देवसरांसि च।
तथैव पर्वतश्चासौ ददृशे शम्भुना स्वयम् ॥ २१ ॥
मायालक्ष्मीस्वरूपेण हरिं सन्मोहयत्यलम्।
सतीरूपा तथात्मानं मोहयन्तीति शंकर: ॥ २२ ॥
सत्या सार्धं स्वयं रेमे कैलासे मेरुपर्वते।
मन्दरे देवविपिने शृंगाररससेविते ॥ २३ ॥
सतीदेहं तथा त्यक्त्वा जाता हिमवतः सुता।
यथा प्राप पुनस्तान्तु यथा चैवान्धको हतः ॥ २४ ॥
कार्तिकेयः समुत्पन्नो यथाहंस्तारकाह्वयम्।
तत्सर्वं विस्तरात् सम्यग् ददर्श वृषभध्वजः ॥ २५ ॥
हिरण्यकशिपुर्जघ्ने नरसिंहस्वरूपिणा।
यथा हत: कालनेमिर्हिरण्याक्षो यथा हतः ॥ २६ ॥
विष्णुना यादृशं युद्धं [1]दानवौघैः पुराकृतम्।
यथा ये ये च निहतास्तत्सर्वं दृष्टवान् हर: ॥ २७ ॥
जगत्प्रपञ्चवान् [2]ब्रह्मादीन्नक्षत्रग्रहमानुषान्।
सिद्धविद्याधरादींश्च दृष्ट्वा दृष्ट्वा पृथक् पृथक् ॥ २८ ॥
आत्मानं तान् संहरन्तं ददृशे शम्भुरीश्वरः।
संहारान्ते ददर्शासौ ब्रह्मविष्णुमहेश्वरान् ॥ २९ ॥

1 दानवेन्द्रैः। 2 दक्षादीन्।

शून्यं समभवत्सर्वं जगदेतच्चराचरम् ॥ ३० ॥
शून्ये जगति सर्वस्मिन् ब्रह्मा विष्णुशरीरग ।
लीन शम्भुश्च तस्यैव शरीरं प्रविवेश ह ॥ ३१ ॥
एकमेव ददर्शासौ विष्णुमव्यक्तरूपिणम् ।
नान्यत्किञ्चिद्ददर्शासौ तदा विष्णुमृते हर. ॥ ३२ ॥
अथ विष्णुश्च ददृशे लय त्वं परमात्मनि ।
भासमानं परं तत्त्वे ज्योतीरूपे सनातने ॥ ३३ ॥
ततो ज्ञानमयं नित्यमानन्दं ब्रह्मण परम् ।
केवलं ज्ञानगम्यञ्च ददर्शान्यन्न किंचन ॥ ३४ ॥
एकत्वञ्च पृथक्त्वञ्च जगत परमात्मनि ।
ददर्श स्वशरीरान्तः सर्वास्थित्यन्तसंयमान् ॥ ३५ ॥
प्रकाशं परमात्मानं शान्तं नित्यमतीन्द्रियम् ।
एकमेवाद्वयं ब्रह्म ददर्शान्यन्न किञ्चन ॥ ३६ ॥
को वा विष्णुर्हर को वा को ब्रह्मा किमिदं जगत् ।
इति भेदो न जगृहे शम्भुना परमात्मन. ॥ ३७ ॥
एवं सम्पश्यतस्तस्य शरीराभ्यन्तराद्बहिः ।
नि ससाराथ मायादि प्रविवेश वृषध्वजम् ॥ ३८ ॥
अनन्यत्वं पृथक्त्वञ्च दर्शयित्वा जनार्दनः ।
शम्भवे तच्छरीरात्तु बहिर्भूतस्ततो द्रुतम् ॥ ३९ ॥
अथ त्यक्तसमाधेस्तु हरस्य चलितात्मन ।
सतीं मनो जगामाशु मोहितस्य च मायया ॥ ४० ॥
ततो मुहुर्हरो वक्त्रं दाक्षायण्या मनोहरम् ।
प्रबुद्धकमलाकारं वीक्षांचक्रे द्विजोत्तमा· ॥ ४१ ॥
ततो दक्षमरीच्यादीन् स्वगणान् कमलासनम् ।
विष्णुञ्च तत्र सवीक्ष्य शंकरो विस्मितोऽभवत् ॥ ४२ ॥
अथ तं विस्मयाविष्टं महादेवं वृषध्वजम् ।
स्मितप्रफुल्लवदनं हरमाह जनार्दन ॥ ४३ ॥

श्रीभगवानुवाच

यद्यत् पृष्टं त्वयैकत्वे भिन्नतायाञ्च शंकर ।
त्रयाणामथ देवाना तज्ज्ञातमधुना त्वया ॥ ४४ ॥
प्रकृति पुरुषश्चैव कालो माया निजान्तरे ।
त्वया ज्ञाता महादेव कीदृशास्ते च के पुन ॥ ४५ ॥
एकं ब्रह्म सदा शान्तं नित्यञ्च परमं महत् ।
तत् कथ भिन्नता जातं दृष्टं तत् कीदृशं त्वया ॥ ४६ ॥

मार्कण्डेय उवाच

इति पृष्टो भगवता भगवान् वृषभध्वज· ।
जगाद हरये तथ्यमेतद्वाक्यं द्विजोत्तमाः । ४७ ॥

ईश्वर उवाच

एकं शिवं शान्तमनन्तमच्युतं
ब्रह्मास्ति तस्मान्नहि किंचिदीदृशम् ।
तस्मादभिन्नं सकलं जगद्धरेः
कालादिरूपाणि च सृष्टिहेतु ॥ ४८ ॥
समस्तभूतप्रभवं निरञ्जनं
वयञ्च तस्यैव [3]सदाशरूपिणः ।
सृष्टिस्थिति संयमनं तदीरितं
रूपत्रय तस्य विभाति भेदतः ॥ ४९ ॥
नाह न च त्वं न हिरण्यगर्भो
न कालरूपं प्रकृति न चान्यत् ।
तत् प्रेरणां कर्तुमलं च किञ्चि-
द्विनापि रूपं सदपीह तस्य ॥ ५० ॥

3 सदात्मरूपिणः ।

श्रीभगवानुवाच

इतितत्त्व त्वया प्रोक्तं ज्ञातञ्च वृषभध्वज ।
तदंशभूतास्तु वय ब्रह्मविष्णुपिनाकिनः ॥ ५१ ॥
तस्मात् त्वया न वध्योऽयं विरिञ्चिस्तव चेद्भवेत् ।
एकता विदिता शम्भो ब्रह्मविष्णुपिनाकिनाम् ॥ ५२ ॥

मार्कण्डेय उवाच

इति तस्य वचः श्रुत्वा विष्णोरमिततेजस ।
न जघान महादेवो विधिं दृष्ट्वाथ चैकताम् ॥ ५३ ॥
इति व कथितं [4]विष्णुर्यथानन्यत्वमादिशत् ।
शम्भवे प्रस्तुतं तद्व कथयामि पुनर्द्विजा ॥ ५४ ॥

इति श्रीकालिकापुराणे हरकोपोपशमने त्रयोदशोऽध्याय ॥ १३ ॥

चतुर्दशोऽध्यायः

मार्कण्डेय उवाच

जलदेष्वथ गर्जतसु मदादेव सतीपतिः ।
विसृज्य[5] विष्णुप्रभृति जगाम हिमवद्गिरिम् ॥ १ ॥
आरोप्य वृषभे तुगे सतीमामोदशालिनीम् ।
जगाम हिमवत्प्रस्थं रम्यं कुञ्जसमन्वितम् ॥ २ ॥
अथ सा शङ्कराभ्यासे सुदती चारुहासिनी ।
विरेजे वृषभस्थाति चन्द्रान्ते कालिकोपमा ॥ ३ ॥
ब्रह्मादयश्च ते सर्वे मरीच्याद्याश्च मानसाः ।
दक्षोऽपि सर्वे मुदिता अभवन् ससुरासुराः ॥ ४ ॥

---

4 विष्णोर्मायां नान्यत्वमादिशत् । 5 विष्णुप्रमुखान् ।

केचिच्छंखान् वादयन्त केचित्तालान् सुमंगला ।
केचिद्धास्य प्रकुर्वन्तो अनुजग्मुर्वृपध्वजम् ॥ ५ ॥
विसृष्टा अपि ब्रह्माद्या शम्भुना पुनरेव ते ।
अनुजग्मु कियद्दूरं मुदा परमया युता ॥ ६ ॥
ततः शम्भुं समाभाष्य ब्रह्माद्या मानसाश्च ते ।
स्व स्व स्थानं तदा जग्मु स्यन्दनैराशुगामिभि ॥ ७ ॥
देवाश्च सर्वे सिद्धाश्च तथैवाप्सरसा गणा ।
यक्षविद्याधराद्याश्च ये ये तत्र समागता. ॥ ८ ॥
ते हरेण विसृष्टास्तु गतवन्तो निजास्पदम् ।
वभूवुरामोदयुताः कृतदारे वृषध्वजे ॥ ९ ॥
ततो हर सस्वगणः संस्थान प्राप्य मोदनम् ।
कैलासं तत्र वृपभाद्वतारयति प्रियाम् ॥ १० ॥
ततो विरुपाक्ष इमां प्राप्य दाक्षायणीं गणान् ।
स्वीयान् विसर्जयामास नन्द्यादीन् गिरिकन्दरात् ॥ ११ ॥
उवाच शम्भुस्तान् सर्वान् नन्द्यादीनतिसुनृतम् ।
यदाहं वः स्मराम्यत्र स्मरणाच्चलमानसा ।
समागमिष्यथ तदा मत्पार्श्वं भोस्तदा तदा ॥ १२ ॥
इत्युक्ते वामदेवेन ते नन्दिभैरवादय ।
महाकौपी-प्रपाताय जग्मुस्ते हिमवद्गिरौ ॥ १३ ॥
ईश्वरोऽपि तया सार्धं तेषु यातेषु मोहितः ।
दाक्षायण्या चिर रेमे रहस्यनुदिनं भृशम् ॥ १४ ॥
कदाचिद् वन्यपुष्पाणि समाहृत्य मनोहराम् ।
मालां विधाय सत्यास्तु हारस्थाने न्ययोजयत् ॥ १५ ॥
कदाचिद्दर्पणे वक्त्रं वीक्षन्तीमात्मनः सतीम् ।
अनुगम्य हरो वक्त्रं स्वीयमप्यवलोकयत् ॥ १६ ॥
कदाचित् कुन्तलांस्तस्या उल्लास्योल्लासमागतः ।
बध्नाति मोचयत्येवं शश्वत्सम्मार्जयत्यपि ॥ १७ ॥

सरागौ चरणावस्या यावकेनोज्ज्वलेन च।
निसर्गरक्तौ कुरुते सरागो वृषभध्वज ॥ १८ ॥
उच्चैरपि यदाख्येयमन्येषा पुरतो मुहुः।
तत् कर्णे कथयत्यस्या हरो स्प्रष्टु तदाननम् ॥ १९ ॥
न दूरमपि गत्वासौ समागम्य प्रयत्नत ।
अनुबध्नाति तामक्षिण पृष्ठदेशेऽन्यमानसाम् ॥ २० ॥
अन्तर्हितस्तु तत्रैव मायया वृषभध्वज ।
तामालिलिग भीत्या सा चकिता व्याकुलाभवत् ॥ २१ ॥
सौवर्णपद्मकलिकातुल्ये तस्या कुचद्वये।
चकार भ्रमराकारं मृगनाभिविशेषकम् ॥ २२ ॥
हारमस्या कुचयुगाद्वियोज्य सहसा हर ।
नियोजयति तत्रैव सकरस्पर्शन मुहुः। २३ ॥
अङ्गदान् वलयान्[6] वर्मी विश्लेष्य च पुन पुनः।
तत्स्थानात् पुनरेवासौ तत्स्थाने प्रयुयोज च। २४ ॥
कालिकेयं समायाति सवर्णा ते सखीति ताम्।
पश्येत् यस्यास्तथेच्छन्त्याः प्रोक्त्वा जग्राह तत्कुचौ ॥ २५ ॥
कदाचिन्मदनोन्मादचेतनः प्रमथाधिप ।
चकार नर्मकर्माणि तया हृत्प्रियया मुदा ॥ २६ ॥
आहृत्य पद्मपुष्पाणि वन्यपुष्पाणि शकर।
पुष्पाभरणसर्वांगीं कुरुते स्म कदाचन ॥ २७ ॥
गिरिकुञ्जेषु रम्येषु तया सह सतीपति ।
विजहार समस्तेषु वनेषु मुदितो हर ॥ २८ ॥
न याने नोपवेशे च न स्थितौ नापि चेष्टिते।
तया विना क्षणमपि शर्म लेभे वृषध्वजः ॥ २९ ॥
विहृत्य सुचिरं कालं कैलासगिरिकन्दरे।
महाकौपीप्रपाताय जगाम हिमवद्गिरौ ॥ ३० ॥

---

6 वलयानुर्मा ।

तस्मिन् प्रविष्टे हिमवत्पर्वते वृषभध्वजे।
कामोऽपि सह मित्रेण रत्या च प्रजगाम ह ॥ ३१ ॥
तस्मिन् प्रविष्टे कामे तु वसन्तः शंकरान्तिके।
विततान निजाः श्रीश्च वृक्षे तोये तथा भुवि ॥ ३२ ॥
सर्वे सुपुष्पिता वृक्षा लताश्चान्याः सुपुष्पिताः।
अम्भांसि फुल्लपद्मानि पद्मेषु भ्रमरास्तथा ॥ ३३ ॥
प्रविष्टे तत्र सुरतौ प्रववुर्मलयानिलाः।
सुगन्धिपुष्पगन्धेन मोहितश्च पुरन्ध्रयः ॥ ३४ ॥
मुनीनामपि चेतांसि प्रमथ्य सुरभिस्तदा।
स्मरः सारं समुद्धृत्य तक्रौघादाज्यवत्कृती ॥ ३५ ॥
सन्ध्यार्द्धचन्द्रसंकाशाः पलाशाश्च विरेजिरे।
कामास्त्रवत्सुमनसः प्रमोदायाभवत् सदा ॥ ३६ ॥
बभुः पंकजपुष्पाणि सरःसु सकलं जनान्।
[7]सम्मोहयितुमुद्युक्ता सुमुखीवाम्बुदेवता ॥ ३७ ॥
नागकेशरवृक्षाश्च स्वर्णवर्णप्रसूनकैः।
बभुर्मदनकेत्वाभा मनोज्ञाः शंकरान्तिके ॥ ३८ ॥
चम्पकास्तरवो हैमपुष्पत्वं प्रकटं मुहुः।
कुर्वन्तः प्रचुरैः पुष्पैः सम्यग्भ्रेजुस्तथास्फुटैः ॥ ३९ ॥
प्रफुल्लपाटलापुष्पैर्दिशः स्युः पाटलांशवः।
यथा तथा पुष्पितास्ते पाटलाख्या महीरुहाः ॥ ४० ॥
लवंगवल्लीसुरभिर्गन्धेनोद्वास्य मारुतम्।
सम्मोहयति चेतांसि भृशं कामिजने पुरा ॥ ४१ ॥
वासन्तीवासितास्तत्र [8]वल्वजाः किल रेजिरे।
तद्गन्धलुब्धभ्रमरा रतिमिश्रा मनोहराः ॥ ४२ ॥
चारु [9]पावकवर्च्चस्वि शिखराश्चूतशाखिनः।
बभुर्मदनबाणौघ-पर्यंकवदनावृता. ॥ ४३ ॥

---

7 संमोहयितं। 8 वनान्ताः। 9 ज्वालक ।

अम्भासि मलहीनानि रेजुः फुल्लकुशेशयैः ।
मुनीनामिव चेतासि प्रव्यक्तज्योतिरुद्गमात् ॥ ४४ ॥
तुषाराः सूर्यरश्मीना संगमाद्गमन् क्षयम् ।
ममत्वानीव विज्ञानशालिना हृदयात्तदा ॥ ४५ ॥
निःशंकाः कोकिला शब्दं तन्वते स्म तदान्वहम् ।
प्राणिव्यधनपुष्पेषु पुष्पज्याशब्दवत् भृशम् ॥ ४६ ॥
चुकूजुर्भ्रमरास्तत्र वनान्तर्गतपुष्पगाः ।
कान्तालीलाबुभुक्षोस्तु स्मरव्याघ्रस्य शब्दवत् ॥ ४७ ॥
चन्द्रस्तुषारवद्भानुर्नचैता सकलाः कला ।
क्रमाद्बभार मोहाय जनाना कुशलं भुवि ॥ ४८ ॥
प्रसन्नाः सह चन्द्रेण निस्तुषारास्तदाभवन् ।
विभावर्यः प्रियेणेव कामिन्य सुमनोहराः ॥ ४९ ॥
तस्मिन् काले महादेवः सह सत्या धरोत्तमे ।
रेमे च सुचिरं छन्नो निकुञ्जेषु दरीषु च ॥ ५० ॥
सापि तेन समं रेमे तथा दाक्षायणी शुभा ।
यथा हरः क्षणमपि शान्ति नाप तया विना ॥ ५१ ॥
संभोगविषये देवी सती तस्य मनःप्रिया ।
विशतीव हरस्यांगे पाययन्तीव तद्रसम् ॥ ५२ ॥
तस्याः कुसुममालाभिर्भूषयन् सकला तनुम् ।
स्वहस्तरचिताभिश्च वर नर्म चकार सः ॥ ५ ३॥
आलापैर्वीक्षणैर्हासैस्तथा सम्भाषणैर्हरः ।
तस्या विवेश गिरिशः संयमीवात्मसंविदम् ॥ ५४ ॥
तद्वक्त्रचन्द्रपीयूषपानस्थिरतनुर्हरः ।
नावाप शैषिकीं तन्वीमवस्था स कदाचन ॥ ५५ ॥
तद्वक्त्राम्बुजवासेन तत्सौन्दर्यस्य नर्मभि. ।
गुणैरिव महादन्ती बद्धो नान्यद्विचेष्टते ॥ ५६ ॥

इति हिमगिरिकुञ्जे प्रस्थभागे दरीषु
प्रतिदिनमधिरेमे दक्षपुत्र्या महेश ।
ऋतुभुज-परिमाणैः क्रीडतस्तस्य जाता
नव दश च मुनीन्द्रा वत्सरा. पञ्च चान्ये ॥ ८७ ॥

इति श्रीकालिकापुराणे शिव-सती-विहार वर्णने चतुर्दशोऽध्याय ॥ १४ ॥

पञ्चदशोऽध्यायः

मार्कण्डेय उवाच

कदाचिदथ दक्षस्य तनया जलदागमे ।
जगदाद्रेः शिखरिण. प्रस्थस्थ वृषभध्वजम् ॥ १ ॥

सत्युवाच

घनागमोऽयं सम्प्राप्त. काल परमदु सह· ।
अनेकवर्णमेघौघस्थगिताम्बरदिक्चयः ॥ २ ॥
विवान्ति वाता हृदयं दारयन्तोऽतिवेगिनः ।
कदम्बरजसाधौतगाथोलेशाद्विवर्षिणः ॥ ३ ॥
मेघाना गर्जितैरुच्चैर्धारासार विमुञ्चताम् ।
विद्युत्पताकिनान्तीव्रै· क्षुब्धं कस्य न मानसम् ॥ ४ ॥
न सूर्यो दृश्यते नापि मेघाच्छन्नो निशापतिः ।
दिवापि रात्रिवद्भाति [10]विरहिव्यत्ययाकरम ॥ ५ ॥
मेघा नैकत्र तिष्ठन्तो ध्वनन्त· पवनेरिताः ।
पतन्त इव लोकानां दृश्यन्ते मूर्ध्नि शंकर ॥ ६ ॥
वाताहता महावृक्षा [11]नृत्यन्त इव चाम्बरे ।
दृश्यन्ते हर भीरुणा त्रासकाः कामुकेप्सिताः ॥ ७ ॥
स्निग्धनीलाञ्जनश्याममुदिरौघस्य पृष्ठतः ।
बलाकाराजि र्भात्युच्चैर्यमुनापृष्टफेनवत् ॥ ८ ॥

---

10 विरहव्यत्ययाकुलम् । 11 नर्तन्त ।

क्षणं क्षणं चंचलेयं दृश्यते कालिका गता।
अम्बुधाविव[12] सन्दीप्त पावको वडवामुखः ॥ ९ ॥
प्ररोहन्ति हि शस्पानि[13] मन्दिरप्राङ्गणेष्वपि।
किमन्यत्र विरुपाक्ष शस्पोद्भूति वदाम्यहम् ॥ १० ॥
श्यामलै राजतै. कक्षैर्विशदोऽयं हिमाचलः।
मन्दराश्रमवृक्षौघपत्रैर्दुग्धाम्बुधिर्यथा ॥ ११ ॥
कुसुमश्रीश्च कुटजं भेजे सास्याथ किंशुकान्।
उच्चावचा कलौ लक्ष्मीर्यथा सन्त्यज्य सज्जनान् ॥ १२ ॥
मयूरा स्तनयित्नूना शब्देन हर्षिता मुहु।
केकायन्ते प्रतिवनं सततं वृष्टिसूचका ॥ १३ ॥
मेघोन्मुखाना मधुरश्चातकाना[14] स्वनो[15] हर।
श्रूयतामतिमत्ताना वृष्टिसन्निधिसूचक[16] ॥ १४ ॥
गगने शक्रचापेन कृत साम्प्रतमास्पदम्।
धारासार-शरैस्ताप भेत्तु प्रति यथोद्गतः ॥ १५ ॥
मेघाना पश्य भार्गेह दुर्नय करकोत्करः।
यत्तारयन्त्यनुगत मयूर चातक तथा ॥ १६ ॥
शिखिसारंगयोर्दृष्ट्वा मित्रादपि पराभवम्।
हसा गच्छन्ति गिरिश विदूरमपि मानसम् ॥ १७ ॥
एतस्मिन् विषमे काले नीड काकाश्च कोरकाः।
कुर्वन्ति त्व विना गेहात् कथ शान्तिमवाप्स्यसि ॥ १८ ॥
महती बाधते भीतिर्मा मेघोत्था पिनाकधृक्।
यतस्व तस्माद्वासाय मा चिर वचनान्मम ॥ १९ ॥
कैलासे वा हिमाद्रौ वा महाकौष्यामथ क्षितौ।
तवोपयोग्य[17] त्व वास कुरुष्व वृषभध्वज ॥ २० ॥

12 अम्बुचारीव। 13 शस्यानि। 14 मधुरं। 15 मनोहरं।
16 सूचक। 17 तत्रोपयोग।

एवमुक्तस्तदा शम्भुर्दाक्षायण्या तया सकृत् ।
इषज्जहास शीर्षस्थचन्द्ररश्मिसिताननः ॥ २१ ॥
अथोवाच सतीं देवीं स्मितभिन्नोष्ठसम्पूटः ।
महात्मा सर्वतत्त्वज्ञस्तोषयन् परमेश्वरीम् ॥ २२ ॥

ईश्वर उवाच

यत्र प्रीत्यै मया कार्यो वासस्तव मनोहरे ।
मेघास्तत्र न गन्तारः कदाचिदपि मत्प्रिये ॥ २३ ॥
मेघा नितम्बपर्यन्त सचरन्ति महीभृतः ।
सदा प्रालेयधाम्नस्तु वर्षास्वपि मनोहरे ॥ २४ ॥
कैलासस्य तथा देवी यावदामेखल घनाः ।
सचरन्ति न गच्छन्ति तस्मादूर्ध्वं कदाचन ॥ २५ ॥
सुमेरोर्वारिधेरूर्ध्वं न गच्छन्ति वलाहकाः ।
जानुमूल[18] समासाद्य पुष्करावर्तकादयः ॥ २६ ॥
एतेषु च गिरीन्द्रेषु यस्योपरि तवेहते ।
मनः प्रिये निवासाय तमाचक्ष्व द्रुतं मयि ॥ २७ ॥
स्वेच्छाविहारैस्तव कौतुकानि
सुवर्णपक्षानिलवृन्दवृन्दैः ।
शकुन्तवर्गैर्मधुरस्वनैस्ते
सदोपदेयानि गिरौ हिमोत्थे ॥ २८ ॥
सिद्धांगनास्ते सखितां सनातनी-
मिच्छन्त्य एवोपकृतिं सकौतुकाम् ।
स्वेच्छाविहारैर्मणिकुट्टिमे गिरौ
कुर्वन्त्य[19] एष्यन्ति फलादिदानकैः ॥ २९ ॥
या देवकन्या गिरिकन्यकाश्च
या नागकन्याश्च तुरंगमुख्यः ।

---

18 जम्बूमुलं । 19 कुर्वन्ति त्रस्यन्ति ।

सर्वास्तु तास्ते सतत सहायता
समाचरिष्यन्त्यनुमोदविभ्रमैः ॥ ३० ॥
रूप तवेदमतुल वदन सुचारु
दृष्ट्वागना निजवपुर्निजकान्तिसघम् ।
हेला निजे वपुषि रूपगुणेषु नित्य
कर्तार इत्यनिमिषेक्षणचारुरूपाः ॥ ३१ ॥
या मेनका पर्वतराजजाया
रूपैर्गुणैः ख्यातवती त्रिलोके ।
सा चापि ते तत्र मनोनुमोद
नित्य करिष्यत्यथ सूचनाद्यैः ॥ ३२ ॥
पुरन्ध्रिवर्गैर्गिरिराजवन्द्यैः
प्रीतिं वितन्वद्भिरुदाररूपाम् ।
शिक्षा सदा ते स्वकुलोचितापि
कार्यान्वह प्रीतियुता गुणौघैः ॥ ३३ ॥

विचित्रकोकिलालापमोदकुञ्जगणावृतम् ।
सदा वसन्तप्रभव गन्तुमिच्छसि किं प्रिये ॥ ३४ ॥
सर्वकाम[21]प्रदैर्वृक्षै शाद्वलैः कल्प[22]सज्ञकैः ।
सञ्छन्न यस्य कुसुमान्युपयोक्ष्यसि तत्र वै ॥ ३५ ॥
प्रशान्तश्वापदगण मुनिभिर्यतिभिर्वृतम् ।
देवालय महाभागे नानामृगगणैर्वृतम् ॥ ३६ ॥
स्फटिकस्वर्णवप्राद्यै[23] राजतैश्च विराजितम् ।
मानसादिसरोवर्गैरभितः परिशोभितम् ॥ ३७ ॥
हिरन्मयै रत्ननालैः पकजैर्मुकुलैर्वृतम् ।
शिशुमारैस्तथा शखैः कच्छपैर्मकरैर्झषैः ।
निषेवितैर्मंजुलैश्च तथानीलोत्पलादिभिः ॥ ३८ ॥

---

20 कर्ता वहत्यनिमिषे । 21 नाना स्वच्छजलापूर्ण सरःशतसमावृतम् ।
पद्मिनीशतसयुक्तमचलेन्द्रं हिमालयम् ॥ इत्यधिक पाठ ।
22 कल्पसभवै । 23 वप्राद्यै

देवीशतस्नानसक्तसर्वगन्धैश्च कुङ्कुमैः ।
विचित्रस्रग्गन्धजलैरापूर्णैः स्वच्छकान्तिभिः ॥ ३९ ॥
शाद्वलैस्तरुभिस्तुङ्गैस्तीरस्थैरुपशोभितैः ।
नृत्यद्भिरिव शाखौघैर्व्यंजयन्त स्वसम्भवम् ॥ ४० ॥
कादम्बैः सारसैर्मत्त[24]चक्राङ्गग्रामशोभितः ।
मधु[25]राराविभिर्मादकारिभिर्भ्रमरादिभिः ॥ ४१ ॥
वासवस्य कुवेरस्य यमस्य वरुणस्य च ।
अग्नेः कौणपराजस्य मारुतस्य हरस्य च ॥ ४२ ॥
पुरीभिः शोभिशिखरं मेरुमुच्चैः सुरालयम् ।
रम्भाशचीमेनकादिरम्भोरुगणसेवितम् ॥
किंत्वमिच्छसि सर्वेषां सारभूतं महागिरिम् ॥ ४३ ॥
तत्र देवीशतयुता साप्सरोगण[26]सेविता ।
नित्यं चरिष्यति शची तव योग्या सहायताम् ॥ ४४ ॥
अथवा मम कैलासमचलेन्द्रं सदाश्रयम् ।
स्थानमिच्छसि वित्तेशपुरीपरिविराजितम् ॥ ४५ ॥
गङ्गाजलौघप्रयतं पूर्णचन्द्रसमप्रभम् ।
दरीषु सानुषु सदा यक्षकन्याभिरीहितम् ॥ ४६ ॥
नानामृगगणैर्जुष्टं पद्माकरशतावृतम् ।
सर्वैर्गुणैश्च सदृशं सुमेरोरिव सुन्दरि ॥ ४७ ॥
स्थानेष्वेतेषु यत्रास्ति तवान्तःकरणस्पृहा ।
तद्द्रुत[27] मे समाचक्ष्व वासं कर्तास्मि तत्र ते ॥ ४८ ॥

मार्कण्डेय उवाच

इतीरिते शङ्करेण तदा दाक्षायणी शनैः ।
इदमाह महादेवं श्लक्ष्णं स्वेच्छाप्रकाशकम् ॥ ४९ ॥

---

24 मद्गुचक्राङ्कग्राम-शोभितं । 25 मधुधारादिभि ।
26 साप्सरोगणमण्डिता । 27 हृद्गतं ।

सत्युवाच

हिमाद्रावेव वसतिमहमिच्छे त्वया सह ।
न चिरान् कुरुवास त्व तस्मिन्नेव महागिरौ ॥ ५० ॥

मार्कण्डेय उवाच

अथ तद्वाक्यमाकर्ण्य हरः परममोदितः ।
हिमाद्रिशिखर तुङ्ग दाक्षायण्या सम ययौ ॥ ५१ ॥
सिद्धाङ्गनागणयुक्तमगम्य मेघपक्षिभिः ।
जगाम शिखर तुङ्ग मरीच[28]वनराजितम् ॥ ५२ ॥

इति श्रीकालिकापुराणे हिमाद्रिनिवास-गमन पञ्चदशोऽध्याय ॥ २५ ॥

षोडशोऽध्यायः

मार्कण्डेय उवाच

विचित्र कनकै रूप्यैः शिखर रत्नकर्बुरम् ।
बालार्कसदृश तुङ्ग[29]मासमाद सतीसखः ॥ १ ॥
स्फटिकाश्मलये तस्मिन् शाद्वलद्रुमराजिते ।
विचित्रपुष्पवल्लीभिः सरसीभिश्च सयुते ।
प्रफुल्लतरुशाखाग्रगुञ्जद्भ्रमरभूषिते ॥ २ ॥
पकेरुहैः प्रफुल्लैश्च नीलोत्पलचयैस्तथा ।
शोभिते चक्रवाकौघैः कादम्बैर्हंसमद्गुभिः ॥ ३ ॥
प्रमत्तसारसैः क्रौञ्चैर्नीलकण्ठैश्च शब्दिते ।
पुस्कोकिलकलस्वानैर्मधुरैर्मृगसेविते ॥ ४ ॥
तुरगवदनैः सिद्धैरप्सरोभिः सगुह्यकैः ।
विद्याधरीभिर्देवीभिः किन्नरीभिर्विहारिते ।
पुरन्ध्रीभिः पार्वतीभिः कन्याभिश्च समन्विते ॥ ५ ॥

---

28 सरसीवन । 29 शभुरासमाद ।

विपञ्चीतन्त्रिकामन्द्र °मृदगपटहस्वनेः ।
नृत्यद्भिरप्सरोभिश्च कौतुकोत्थैः सशोभिते ॥ ६ ॥
दैवीलताभिर्दिव्याभिर्गन्धिनीभिः समावृते ।
ऊर्द्धप्रफुल्लकुसुमैर्निकुञ्जैरुपशोभिते ॥ ७ ॥
शैलराजपुराभ्यासे शिखरे वृषभध्वजः ।
सह सत्या चिर रेमे एवम्भूते शुशोभने ॥ ८ ॥
तस्मिन् स्वर्गसमे स्थाने दिव्यमानेन शकरः ।
दश वर्षसहस्राणि रेमे सत्या सम मुदा ॥ ६ ॥
स कदाचित्तु तत्स्थानात् कैलास याति शकरः ।
कदाचिन्मेरुशिखर देवदेवीवृत पुरा ॥ १० ॥
दिक्पालाना तथोद्यान वनानि वसुधातलम् ।
गत्वा गत्वा पुनस्तत्र रेमे तेभ्यः सतीसख॰ ॥ ११ ॥
न जज्ञे स दिवारात्र न ब्रह्म न तपः शमम् ।
सत्याहितमनाः शम्भुः प्रीतिमेव चकार ह ॥ १२ ॥
एक महादेवमुख सती पश्यति सर्वशः ।
महादेवोऽपि सर्वत्र सदाद्राक्षीत् सतीमुखम् ॥ १३ ॥
एवमन्योन्यससर्गादनुरागमहीरुहम् ।
वर्धयामासतुः शम्भुसत्यौ भावाम्बुसेचनैः ॥ १४ ॥
एतस्मिन्नन्तरे दक्षो जगता हितकारकः ।
महायज्ञं समारेभे यष्टु वै[31] सर्वजीवनम् ॥ १५ ॥
अष्टाशीति-सहस्राणि यत्र जुह्वति ऋत्विजः ।
उद्गातारश्चतुःषष्टिसहस्राणि सुरर्षयः ।
अध्वर्यवोऽथ होतारस्तावन्तो नारदादयः ॥ १६ ॥
अधिष्ठाता स्वय विष्णुः सह सर्वमरुद्गणैः ।
स्वय तत्राभवद् ब्रह्मा त्रयीविधिनिदर्शकः ॥ १७ ॥

30 मञ्जुमृदंग । 31 सर्वजनान्वितं ।

तथैव सर्वदिक्पाला द्वारपालाश्च रक्षकाः ।
उपतस्थे स्वय यज्ञः स्वय वेदी धराभवन् ॥ १८ ॥
तनूनपादपि निज चक्रे रूप सहस्रशः ।
हविषा ग्रहणायाशु[32] तस्मिन् यज्ञमहोत्सवे ॥ १९ ॥
आमन्त्र्याशु मरीच्याद्याः पवित्रैकैकधारिणः ।
सर्वत्र सामिधेन्या ते ज्वालयामासुरर्च्चिषम् ॥ २० ॥
सप्तर्षयः सामगाथा कुर्वन्ति स्म पृथक् पृथक् ।
गान्दिशो विदिशः खञ्च पूरयन्तः श्रुतिस्वरैः ॥ २१ ॥
न वृतास्तत्र यागेषु दक्षेण सुमहात्मना ॥
न केचिद्दषयो देवा न मनुष्या न पक्षिणः ।
नोद्भिदो न तृण वापि पशवो न मृगास्तथा ॥ २२ ॥

गन्धर्वविद्याधरसिद्धसघा-
नादित्यसाध्यर्षिगणान् सयक्षान् ।
सस्थावरान्नागवरान् समस्तान्
वव्रे स दक्षः सुमहाध्वरेषु ॥ २३ ॥

कल्प-मन्वन्तरयुग-वर्ष-मास-दिवा-निशाः ।
कला-काष्ठानिमेषाद्या वृताः सर्वे समागताः[33] ॥ २४ ॥

महर्षिराजर्षिसुरर्षिसङ्घा
नृपाः सपुत्राः सचिवैः ससैन्यैः ।
वसुप्रमुख्या गणदेवता याः
सर्वा वृतास्तेन गता मख तम् ॥ २५ ॥

कीटाः पतगा जलजाश्च सर्वे
सवानराः श्वापदविप्रघोराः ।
मेघाः सशैलाः सनदीसमुद्राः
सरासि वाप्यश्च गता वृतास्ते ॥ २७ ॥

32 ग्रहणार्थाय । 33 दिवौकसा ।

सर्वे स्वभाग हविषा जिघृक्षवः
क्रतु प्रजग्मुर्द्दयज्विनस्ते ।
पातालवासा असुराः[34] समागता
नागस्त्रियो देवसभाः[35] समस्ताः ॥ २८ ॥

जगद्वर्त्यस्ति यत्किञ्चिच्चेतनाचेतन पुनः ।
सर्वं वृत्वा समारेभे यज्ञ सर्वस्वदक्षिणम ॥ २९ ॥
तस्मिन् यज्ञे वृतः शम्भुर्नदक्षेण महात्मना ।
कपालीति विनिश्चित्य तस्य यज्ञार्हता न हि ॥ ३० ॥
कपालिभार्येति सती दयितापि सुता निजा ।
नाहूता यज्ञविषये दक्षेण दोषदर्शिना ॥ ३१ ॥
श्रुत्वा सती तथा यज्ञ तातेनारब्धमुत्तमम ।
कपालिभार्येति वृता नाहमित्यपि तत्त्वतः ॥ ३२ ॥
उच्चैश्चुकोप दक्षाय रक्तनेत्रानना तदा ।
शापेन दक्ष दग्धु च मनश्चक्रे तदा सती ॥ ३३ ॥
कोपाविष्टापि सा पूर्वसमय[36] स्मृतवत्यमुम् ।
मनसेति विनिश्चित्य न शशाप तदा सती ॥ ३४ ॥
अल शापेन मे पूर्वं सुदृढः समयः कृतः ।
अस्तीति मय्यवज्ञाया प्राणान् मोक्ष्ये ध्रुव पुनः ॥ ३५ ॥
यदा स्तुताह दक्षेण सुचिर तनयार्थिना ।
तदैव समयो मेऽयं शापेनालकरोमि तम् ॥ ३६ ॥
इति सञ्चिन्त्य सा देवी नित्यरूपमथात्मनः ।
सस्मारातुलमत्युग्र निष्कल तु जगन्मयम् ॥ ३७ ॥
पूर्वरूप स्मरन्ती सा योगनिद्राह्वय हरेः ।
एवं सचिन्तयामास मनसा दक्षजा तदा ॥ ३८ ॥
ब्रह्मणोदितदक्षेण यदर्थमहमीडिता ।
तत्किञ्चिदपि नोज्ञात शकरोऽपि न पुत्रवान् ॥ ३९ ॥

34 वसुधापदो नरा । 35 देवरामा । 36 देवी ।

इदानीमेकमेवाभूत् कार्यं देवगणस्य च ।
यच्छकरः सानुरागो मत्कृतेऽभूच्च योषिति ।। ४० ।।
मत्तो नान्या पुनः शम्भो राग वर्धयितुं पुनः ।
शक्ता न कापि भविता स नान्या सग्रहीष्यति ।। ४१ ।।
तथाप्यह तनु त्यक्षे समयात् पूर्वयोजितात् ।
हिताय जगता कुर्या प्रादुर्भाव पुनर्गिरौ ।। ४२ ।।
पुरा हिमवतः प्रस्थे रम्ये देवगृहोपमे ।
शम्भुः सार्धं मया रन्तु सुचिर प्रीतिसयुतः ।। ४३ ।।
तत्र या मेनका देवी चार्वंगी चरितव्रता ।
सुशीला सा पुरस्त्रीणामुत्तमा[37] पार्वतीगणे ।। ४४ ।।
सा मा मातृवदाचष्ट सर्वकर्मसु नर्मकम् ।
तस्या मेऽप्यनुरागोऽभूत् सा मे माता भविष्यति ।। ४५ ।।
कन्याभिश्च पार्वतीभिश्च वाल्यक्रीडामह चिरम् ।
कृत्वा कृत्वा मेनकायाः करिस्ये मोदमुत्तमम् ।। ४६ ।।
पुनश्चाह भविष्यामि शम्भोर्जायातिवल्लभा ।
करिष्ये देवकार्याणि तदुपायादसशयम् ।। ४७ ।।
इति सचिन्तयन्ती सा पुनः कोपसमावृता ।
जज्वाल दक्षतनया दक्षदारुणकर्मणा ।। ४८ ।।
क्रोधरक्तेक्षणा तत्र तनुयष्टिस्तदा सती ।
स्फोटश्चकार द्वाराणि सर्वाण्यावृत्य योगतः ।। ४९ ।।
तेन स्फोटेन महता तस्यास्तु प्राणवायवः ।
निर्भिद्य दशमद्वारमात्मनस्ते वहिर्ययुः ।। ५० ।।
त्यक्तप्राणान्तु ता दृष्ट्वा देवाः सर्वेऽन्तरिक्षगाः ।
हाहाकार तदा चक्रुः शोकव्याकुलितेक्षणाः ।। ५१ ।।
ततस्तु सत्या भगिनीसुता ता द्रष्टुमागता ।
चुक्रोश शोकाद्विजया मृता दृष्ट्वा सतीं मुहुः ।। ५२ ।।

---

37 पुरन्ध्रीणामुत्तमा ।

हा सती क्व गतासीति हा सती तव किन्विदम् ।
हा मातृष्वसरित्युच्चैस्तदा शब्दो महानभूत् ॥ ५३ ॥
विप्रियश्रवणादेव प्राणास्त्यक्तास्त्वया सति ।
अहं कथन्तु जीवामि दृष्ट्वेदृग्विप्रियं दृढम् ॥ ५४ ॥
पाणिना वदनं सत्या मार्जयन्ती मुहुर्मुहुः ।
करुणं विलपन्ती स्म मुखं जिघ्रति सा तदा ॥ ५५ ॥
सिञ्चन्ती नेत्रजैस्तोयैः सत्याः सा हृदयं मुखम् ।
केशानुल्लास्य पाणिभ्यां वीक्षन्ती वदनं मुहुः ॥ ५६ ॥
ऊर्ध्वाधःकम्पितशिराः शोकव्याकुलितेन्द्रिया ।
हृदयं पञ्चशाखाभ्यां विनिहन्ती तथा शिरः ॥ ५७ ॥
इदं च वचनं साश्रुकण्ठा सा विजयाब्रवीत् ।
श्रुत्वा ते मरणं माता वीरिणी शोककर्षिता ॥ ५८ ॥
धारयन्ती कथं प्राणान् सद्यस्त्यक्ष्यति जीवितम् ।
स तथा निरनुक्रोशः क्रूरकर्मा पिता तव ॥ ५९ ॥
प्रमीतां भवतीं श्रुत्वा कथं धास्यति जीवितम् ।
विचिन्त्य नूनं कर्माणि स्वीयानि भवतीं प्रति ।
कृतानि स नृशंसानि दक्षः शोकाकुलस्तदा ॥ ६० ॥
यज्वा स च ज्ञानहीनः कथं यज्ञे प्रवर्तते ।
निःश्रद्धस्त्यक्तबुद्धिश्च कथं वा स भवेत् क्रतौ ॥ ६१ ॥
हा मातर्देहि वचनं रुदन्त्या बालवन्मम ।
भवत्या निर्दया शोकाद्भ्रिये शल्यसमानसून् ॥ ६२ ॥
त्वं किं स्मरसि मे शम्भोर्विहितस्य कदाचन ।
तेनामर्ष[38]वशं प्राप्ता मातर्मां किन्न भाषसे ॥ ६३ ॥
तदेव वचनं चक्षुर्मुखं सा नासिका तव ।
एतेषां क्व गताः सर्वे विभ्रमा हसितं क्व च ॥ ६४ ॥

38 तेनामर्षरसं ।

ननु ते विभ्रमैर्हीनं नेत्रयुग्मं सुनासिकम् ।
स्मितहीनं च वदनं दृष्ट्वा सोढा कथं हरः ॥ ६५ ॥
कां सुधासम्मितं वाक्यं हराश्रमसमागतान् ।
सुनृतं त्वामृते मातर्वदिष्यति मुहुर्मुहुः ॥ ६६ ॥
श्रद्धावती बान्धवेषु पत्युर्भाववशानुगा ।
सर्वलक्षणसम्पूर्णा तत्समा का भविष्यति ॥ ६७ ॥
त्वदृते देवि देवेशः शोकोपहतचेतनः ।
दुःखितात्मा निरुत्साहो निश्चेष्टश्च भविष्यति ॥ ६८ ॥

एवं लपन्ती भृशदुःखिता सतीं
मृतां समीक्ष्यातिशयं शुचाहता ।
पपात भूमौ विजया विरावं
वितन्वती चोर्ध्वभुजा प्रवेपती ॥ ६९ ॥

इति श्रीकालिका पुराणे सती-देह-त्यागो नाम
षोडशोऽध्याय ॥ १६ ॥

सप्तदशोऽध्यायः

मार्कण्डेय उवाच

एतस्मिन्नन्तरे शम्भुः शोभने मानसे ह्रदे ।
समाप्य सन्ध्यामायातः स्वमाश्रमपदं प्रति ॥ १ ॥
आगच्छन्नेव सरावं विजयाया वृषध्वजः ।
शुश्राव दारुणं तीव्रं चकितश्च ततोऽभवत् ॥ २ ॥
तत उक्त्वा बलवता मनोमारुतरंहसा ।
स्वमाश्रमपदं शर्व आससाद त्वरान्वितः ॥ ३ ॥
आसाद्य देवीं दयितां तदा दाक्षायणीं हरः ।
मृतां दृष्ट्वापि न जहौ मृतेऽतिप्रियभावतः ॥ ४ ॥

ततो निरीक्ष्य वदनमामृज्य च पुनः पुनः ।
पप्रच्छ कस्मात् सुप्तासीत्येव द्राक्षायणीं मुहुः ॥ ५ ॥
ततो भर्गवचः श्रुत्वा तदा तद्भगिनी सुता ।
विजया प्राह निधनं दाक्षायण्या यथा तथा ॥ ३ ॥

विजयोवाच

दक्षः कर्तुं क्रतुं शम्भो देवान् सर्वान् सवासवान्[39] ।
आजुहाव तथा दैत्यान् राक्षसान सिद्धगुह्यकान् ॥ ७ ॥
ब्राह्मणानथ गोविन्दमिन्द्रादीनपि दिक्पतीन् ।
देवयोनिस्तथा सर्वान् साध्यविद्याधरादिकान ॥ ८ ॥
नाहूतानि क्रतौ तेन यानि सत्त्वानि शंकर ।
तानि दक्षेण नो सन्ति समस्तभुवनेष्वपि ॥ ६ ॥
एव प्रविततं[40] यज्ञं श्रुत्वैषा वचनान्मम ।
विमृष्यवत्यनाह्वाने हेतुं शम्भोरथात्मनः ॥ १० ॥
चिन्तयानां[41] तथाह तां सतीं ज्ञात्वा यथाश्रुतम् ।
उक्तवत्यस्मि भूतेश यज्ञानाह्वानकारणम् ॥ ११ ॥
शम्भुः कपाली तद्जाया तनूसंसर्गाद्विगर्हिता ।
अतः शम्भुः सती चापि नाध्वरे मे मिलिष्यतः ॥ १२ ॥
इत्यनाह्वानहेतुर्मे श्रुतपूर्वः पुरा मुखात् ।
दक्षस्य वीरिणीं श्लक्ष्णां गदतस्तस्य मन्दिरे ॥ २३ ॥
एतच्छ्रुत्वा मम वचः सा विवर्णमुखी क्षितौ ।
उपविष्टा न सा किञ्चिदुक्त्वा कोपपरायणा ॥ १४ ॥
बभूव वदनं तस्यास्तत्क्षणात् सरुष हर ।
भ्रुकुटीकुटिलं श्यामं यथा खं धूमकेतुना ॥ १५ ॥
सा मुहूर्तमिव ध्यात्वा स्फोटेन महता ततः ।
प्राणानुदसृजच्चैषा भित्त्वा मूर्द्धानमात्मनः ॥ १६ ॥

---

39 सबान्धवान् । 40 प्रवृत्तं तं । 41 चिन्तयामासाह तां ।

मार्कण्डेय उवाच

इति श्रुत्वा वचस्तस्या विजयाया वृषध्वजः ।
अतीव कोपादुत्तस्थौ दिधक्षरिव पावकः ॥ १७ ॥
तस्य कोपपरीतस्य कर्णनासाक्षिवक्त्रतः ।
घोरा जलन्त्यः कणिकाः सृजन्त्योऽग्नेर्महारवम् ।
उल्का विनिःसृता बह्व्यः कल्पान्तादित्यवर्चसः ॥ १८ ॥
अथ तत्र जगामाशु दक्षो यत्र महातपाः ।
यज्ञञ्चक्रे हरो गत्वा यज्ञवाटाद्बहिःस्थितः ॥ १९ ॥
त यज्ञ ददृशे भर्गः कोपेन महतावृतः ।
महाधनसमापन्न पात्रयूपादिभिर्वृतम् ॥ २० ॥
हुताज्याहुतिसवृद्ध दीप्तवह्निविराजितम् ।
यथास्थानस्थितान् सर्वान् दिक्पालान् सायुधध्वजान् ॥२१॥
विधातार तथा विष्णु यज्ञमध्ये व्यवस्थितम् ।
ददर्श कुपितः शम्भुस्तान् दृष्ट्वातीव कोपतः ॥ २२ ॥
भग सूर्य तथा सोम भार्याभिः सह सवृतम् ।
सहस्राक्ष गौतम च पूर्वे भागे व्यवस्थितम ॥ २३ ॥
सनत्कुमारमात्रेय भार्गव विनतासुतम् ।
मरुद्गणास्तथा साध्यानाग्नेय जातवेदसम् ॥ २४ ॥
काल च चित्रगुप्तञ्च कुम्भयोनिं सगालवम् ।
विश्वेदेवास्तथा सर्वान् कव्यवाहादिकान् पितॄन् ॥ २५ ॥
अग्निष्वात्तादिकान् सर्वान् भूतग्राम चतुर्विधम् ।
भौम प्रेतगणान् सिद्धान् दक्षिणाशा व्यवस्थितान् ॥ २६ ॥
रक्षासि च पिशाचाश्च भूतानि मृगपक्षिणः ।
क्रव्यादान् क्षुद्रजन्तूश्च तथा पुण्यजनेश्वरम् ॥ २७ ॥
महर्षि मौद्गल राहु नैर्ऋत्या किन्नरास्तथा ।
महोरगास्तथा नक्रान् मत्स्यान् ग्राहाश्च कच्छपान् ।
समुद्रान्सप्तसिन्धश्च नदींस्तीर्थानि गुह्यकान् ॥ २८ ॥

मानसादि ह्रदान सर्वान् गगाजम्बूनदीं तथा।
काम मधु वसन्त च वरुणञ्च सहानुगम् ।। २९ ।।
शनेश्चर गिरीन् सर्वान् पश्चिमाशाव्यवस्थितान ।
प्राणादिपचवायूश्च सगणञ्च समीरणम् ।
कल्पद्रुमान् हिमाद्रिञ्च कश्यपञ्च महामुनिम् ।। ३० ।।
वायव्या कमलाव्रात फलानि च कलानिधिम् ।
नानारत्नानि हैमानि मनुष्यान् पर्वतास्तथा ।। ३१ ।।
हिमाद्रिमुख्या यक्षाश्च स्थूणकर्णादयो बुधाः ।
नलकुवेरेण सहितो यक्षरान्नरवाहनः ।। ३२ ।।
ध्रुवो धरश्च सोमश्च विष्णुश्चैवानिलोऽनलः ।
प्रत्यूपश्च प्रभासश्च कौवेरीं मस्थितानिमान ।। ३३ ।।
वृषध्वज विना सर्वान् रुद्रान् जीव मनूस्तथा ।
विविधान् बाहुजान् वैश्यान्शूद्रानपि समन्ततः ।। ३४ ।।
ऐशान्या विविधान्नानि व्रीहिनपि तिलानपि ।
गेशानीपूर्वयोर्मध्ये ब्रह्मर्षीन् सशितव्रतान् ।। ३५ ।।
महर्षींश्चतुरो वेदान्वेदांगानि तथैव षट् ।
नेर्ऋत्यपश्चिमान्तस्थमनन्त श्वेतपर्वतम् ।। ३६ ।।
काद्रवेयसहस्रेण सहिता सप्तभोगिनः ।
केतु तत्रैव कुष्माण्डं डाकिनीगणसयुक्तम् ।। ३७ ।।
तथा जलधरानन्यान्नानावर्णान् सविद्युतान् ।
दिग्गजानपि तत्रस्थानैरावतमुखान् हरः ।। ३८ ।।
यथास्थानस्थितान् सर्वान्दिक्करिण्या च सयुतान् ।
तमेव दूरतो दृष्ट्वा यज्ञवाट महाधनम् ।
वीरभद्राह्वयं तूर्णं प्रेषयामास त प्रति ।। ३९ ।।
वीरभद्रोऽपि बहुभिः संवृतो विविधैर्गणैः ।
व्यध्वसयत्ततो यज्ञं दक्षस्य सुमहात्मनः ।। ४० ।।

विकुर्वन्त महायज्ञ वीरभद्र समीक्ष्य वै।
वारयामास वैकुण्ठः सर्वदेवगणावृतः ॥ ४१ ॥
त वार्यमाण दृष्ट्वैव क्रोधसरक्तलोचनः।
स्वय विवेश त यज्ञ ध्वसयामास चेश्वरः ॥ ४२ ॥
विशन्तमेव त यज्ञे प्रथम पुरतो भगः।
बाहू वितत्य भूतेशमाससाद त्वरान्वितः ॥ ४३ ॥
तमागतमभिप्रेक्ष्य भर्गोऽपि भृशरोषितः।
अगुल्यग्रप्रहारेण तस्य नेत्रे जघान ह ॥ ४४ ॥
हीननेत्र भग दृष्ट्वा विरूपाक्ष दिवाकरः।
स्पर्द्धमानस्ततः सर्वमाससाद त्वरान्वितः ॥ ४४ ॥
ततः सूर्य महादेवः पाणौ धृत्वा करेण च।
दूरीकृत्यातिकुपितो यज्ञमेवाभ्यधावत ॥ ४६ ॥
मार्तण्डश्च हसन् वेगाद्वितत्य विपुलौ भुजौ।
एहि योत्स्ये त्वयेत्युक्त्वा तमग्रे प्रत्यवारयन्[42] ॥ ४७ ॥
हसतस्तस्य सूर्यस्य क्रोधेन वृषभध्वजः।
दन्तान् करप्रहारेण शातयामास[43] वक्त्रतः ॥ ४८ ॥
विदन्त मिहिरं दृष्ट्वा हीननेत्रं भग तथा।
सर्वे देवाश्च ऋषयो ये चान्ये तत्र दुद्रुवुः ॥ ४९ ॥
विद्राव्य सर्वान् देवादीन् हरः परमकोपनः।
मृगरूपेणापयान्त यज्ञमेवान्वपद्यत ॥ ५० ॥
यज्ञोऽप्याकाशमार्गेण ब्रह्मस्थान विवेश ह।
वृषध्वजोऽपि कुपितो ब्रह्मस्थान जगाम ह ॥ ५१ ॥
ब्रह्मणः सदनाद् यज्ञो भीतो भर्गादवातरन्।
अवतीर्य सतीदेहं प्रविवेश स्वमायया ॥ ५२ ॥
भर्गोऽपि दक्षदुहितुर्मृताया निकट गतः।
अन्वगच्छत्तदा यज्ञ ददर्श च सतीशवम् ॥ ५३ ॥

---

42 प्रत्यधावत। 43 पातयामास।

मृता दृष्ट्वा तदा देवीं हरो दाक्षायणीं सतीम् ।
विस्मृत्य यज्ञ तत्प्रान्ते स्थितो बाढ शुशोच ताम् ॥ ५४ ॥
बहुविधगुणवृन्द चिन्तयञ्छूलपाणि-
र्ललितदशनपङ्क्ति वक्त्रमब्जप्रकाशम् ।
अरुणदशनवस्त्र भ्रूयुग वीक्ष्य तस्याः
खरतरपृथुशोकव्याकुलोऽसौ रुरोद ॥ ५५ ॥

इति श्रीकालिकापुराणे दक्षयज्ञभङ्गे सप्तदशोऽध्याय ॥ १७ ॥

अष्टादशोऽध्यायः

मार्कण्डेय उवाच

दाक्षायणीगुणगणान् गणयन् गौरङ्गस्तदा ।
विललापातिदुःखार्तो मनुजः प्राकृतो यथा ॥ १ ॥
विलपन्त तदा भर्गं विज्ञाय मकरध्वजः ।
रतीवसन्तसहित आससाद महेश्वरम् ॥ २ ॥
त शुचातिपरिभ्रष्ट युगपत् स रतिपतिः ।
जघान पञ्चभिर्बाणै रुदन्त भ्रष्टचेतनम् ॥ ३ ॥
शोकाभिहतचित्तोऽपि स्मरबाण-समाकुलः ।
सकीर्णभावमापन्नः शुशोच च मुमोह च ॥ ४ ॥
क्षण भूमौ निपतति क्षणमुत्थाय धावति ।
क्षण भ्रमति तत्रैव निमीलति विभुः पुनः ॥ ५ ॥
ध्यायन् दाक्षायणीं देवीं हसमानः कदाचन ।
परिष्वजति भूमिष्ठा रसभावैरिव स्थिताम् ॥ ६ ॥
सती सतीति सतत नाम व्याहृत्य शकरः ।
मान त्यज वृथेत्येवमुक्त्वा स्पृशति पाणिना ॥ ७ ॥
पाणिनापरिमार्ज्यैनामलकारान् यथास्थितान् ।
तस्या विश्लिष्य च पुनस्तत्रैवानुयुयोज च ॥ ८ ॥

एव कुर्वति भूतेशे मृता नोवाच किञ्चन ।
यदा सती तदा भर्गः शोकाद्गाढ रुरोद ह ।। ९ ।।
रुदतस्तस्य पततो वाष्पान् वीक्ष्य तदा सुराः ।
ब्रह्मादयः परा चिन्ता जग्मुश्चिन्तापरायणाः ॥ १० ॥
वाष्पाः पतन्तो भूमौ चेद्दहेयुः पृथिवीमिमाम् ।
उपायस्तत्र कः कार्य इति हाहेति चुक्रुशुः ॥ ११ ॥
ततो विमृष्यते देवा ब्रह्माद्यास्तु शनैश्चरम् ।
तुष्टुवुर्मूढभर्गस्य वाष्पधारणकारणात् ॥ १२ ॥

देवा ऊचुः

शनैश्चर महाभाग लोकानुग्रहकारक ।
मूलशक्तिसमुद्भूत नमस्ते सूर्यसम्भव ॥ १३ ॥
नमस्ते शूलहस्ताय पाशहस्ताय धन्विने ।
तथा वरदहस्ताय तमश्छायात्मजाय ते ॥ १४ ॥
नीलमेध-प्रतीकाश भिन्नाञ्जनचयोपम ।
नमस्ते सर्व[44]लोकाना प्राणधारणहेतवे ॥ १५ ॥
गृध्रध्वज नमस्तेऽस्तु प्रसीद भगवन् द्रुतम् ।
वाष्पेभ्यः शोकजेभ्यश्च पाहि भर्गस्य नः क्षितिम् ॥ १६ ॥
यथा पुरा शत वर्षानवजग्राह वर्षणम् ।
भवानेव तु मेघेभ्यस्तथा कुरु हराम्बुनि ॥ १७ ॥
तव[45] चापा ग्रह दृष्ट्वा मेघास्ते पुष्करादयः ।
मुमुचुः सतत वर्ष महेन्द्रस्य किलाज्ञया ॥ १८ ॥
आकाश एव वर्षाम्भस्तत्सर्वं भवता पुरा ।
विनाशित यथा वाष्प तथा नाशय शूलिनः ॥ १९ ॥
न त्वामृतेऽन्यः शक्तोऽस्ति हरवाष्पनिवारणे ।
दहेत् सदेवगन्धर्वब्रह्मलोकान् सपर्वतान् ।
पृथिवीं पतितो वाष्पस्तस्माद्धारय मायया ।। २० ।।

44 सर्वभूतानां । 45 तवापो ग्रहणम् ।

मार्कण्डेय उवाच

इत्येवम्भाषणमाणेषु देवेषु मिहिरात्मजः ।
प्रत्युवाच स तान् देवान्नातिहृष्टमना इव ॥ २१ ॥

शनैश्चर उवाच

करिष्ये भवतां कर्म यथाशक्ति सुरोत्तमाः ।
तथा किन्तु विदग्ध हि न मां वेत्ति यथा हरः ॥ २२ ॥
दुःखशोकाकुलस्यास्य समीपे वाष्पधारिणः ।
कोपान्नश्येच्छरीर मे नियत नात्र सशयः ॥ २३ ॥
तस्माद् यथा मा भूतेशो न जानाति सतीपतिः ।
तथा कुरुध्व नेत्रेभ्यो हरलोतकधारिणम् ॥ २४ ॥

मार्कण्डेय उवाच

ततो ब्रह्मादयो देवास्ते सर्वे शकरान्तिकम् ।
गत्वा हर सन्मुमुहुः सासार्या योगमायया ॥ २५ ॥
शनैश्चरोऽपि भूतेशमासाद्यान्तर्हितस्तदा ।
वाष्पवृष्टिं दुराधर्षामवजग्राह मायया ॥ २६ ॥
यदा स नाशकद्वाष्पान् सन्धारयितुमर्कजः ।
तदा महागिरौ क्षिप्ता वाष्पास्ते जलधारके ॥ २७ ॥
लोकालोकस्य निकटे जलधाराह्वयो गिरिः ।
पुष्करद्वीपपृष्ठस्थस्तोयसागर पश्चिमे ॥ २८ ॥
स तु सर्वप्रमाणेन मेरुपर्वतसन्निभः ।
तस्मिन् विन्यस्तवान् वाष्पांस्तदाशक्तः शनैश्चरः ॥ २९ ॥
स पर्वतोऽपि तान् वाष्पान्न धर्तुं क्षम ईशितुः ।
विदीर्णस्तैस्तु वाष्पौघैर्भग्नमभ्योऽभवदद्भुतम् ॥ ३० ॥
ते वाष्पाः पर्वत भित्वा विविशुस्तोयसागरम् ।
सागरोऽपि ग्रहीतुं तन्न शशाक खरानति ॥ ३१ ॥

ततस्तु सागर मध्ये भित्वा वाष्पाः समागताः ।
तोयधेः प्राग्भवा वेला स्पर्शमात्राद्बिभेद ताम् ॥ ३२ ॥
विभिद्य वेला ते वाष्पाः पुष्करद्वीपमध्यगाः ।
नदी भूत्वा वैतरणी पूर्वसागरगाभवत् ॥ ३३ ॥
जलधारस्य भेदेन ससर्गात् सागरस्य च ।
अवाप्य सौम्यता किंचिद्वाष्पास्ते नाभिन्दन् क्षितिम् ॥३४॥
वैवस्वतपुरद्वारे योजनद्वयविस्तृता ।
अद्यापि तिष्ठत्यपगा हरलोतकसम्भवा ॥ ३५ ॥
अथ शोकविमूढात्मा[47] विलपन् वृषभध्वजः ।
जगाम प्राच्यदेशास्तु स्कन्धे कृत्वा सतीशवम् ॥ ३६ ॥
उन्मत्तवद्गच्छतोऽस्य दृष्ट्वा भावं दिवौकसः ।
ब्रह्माद्याश्चिन्तयामासुः शवभ्रशनकर्मणि ॥ ३७ ॥
हरगात्रस्य सस्पर्शाच्छवो नाय विशीर्णताम् ।
गमिष्यति कथ तस्मादस्य भ्रशो भविष्यति ॥ ३८ ॥
इति सञ्चिन्तयन्तस्ते ब्रह्मविष्णुशनैश्चराः ।
सतीशवान्तर्विविशुरदृश्या योगमायया ॥ ३६ ॥
प्रविश्याथ शव देवाः खण्डशस्ते सतीशवम् ।
भूतले पातयामासुः स्थाने स्थाने विशेषतः ॥ ४० ॥
देवीकूटे पादयुग्म प्रथमं न्यपतत् क्षितौ ।
उड्डीयाने चोरुयुग्म हिताय जगता ततः ॥ ४१ ॥
कामरूपे कामगिरौ न्यपतत्योनिमण्डलम् ।
तत्रैव न्यपतद्भूमौ पर्वते नाभिमण्डलम् ॥ ४२ ॥
जालन्धरे स्तनयुग स्वर्णहारविभूषितम् ।
अशग्रीव पूर्णगिरौ कामरूपा[47]त्ततः शिरः ॥ ४३ ॥
यावद्भुव गतो भर्गः समादाय सतीशवम् ।
प्राच्येषु याज्ञिको देशस्तावदेव प्रकीर्तितः ॥ ४४ ॥

46 शोकपरितात्मा । 47 कामरूपान्ततः । 48 यावद्दूरं ।

अन्ये शरीरावयवा लवशः खण्डिताः सुरैः ।
आकाशगगामगमन् पवनेन समीरिताः ॥ ४५ ॥
यत्र यत्रापतन् सत्यास्तदापादादयो द्विजाः ।
तत्र तत्र महादेवः स्वय लिंगस्वरूपधृक् ।
तस्थौ मोहसमायुक्तः सतीस्नेहवशानुगः ॥ ४६ ॥
ब्रह्मविष्णुशनिश्चापि सर्वे देवगणास्तथा ।
पूजया चक्रुरीशस्य प्रीत्या सत्याः पदादिकम् ॥ ४७ ॥
देवीकूटे महादेवी महाभागेति गीयते ।
सतीपादयुगे लीना योगनिद्रा जगन्प्रभुः'" ॥ ४८ ॥
कात्यायनी चोड्डीयाने कामाख्या कामरूपिणी ।
पूर्णेश्वरी पूर्णगिरौ चण्डी जालन्धरे गिरौ" ॥ ४९ ॥
पूर्वान्ते कामरूपस्य देवी दिक्करवासिनी ।
तथा ललितकान्तेति योगनिद्रा प्रगीयते ॥ ५० ॥
यत्रैव पतितं सत्याः शिरस्तत्र वृषध्वजः ।
उपविष्टः शिरो वीक्ष्य श्वसञ्छोकपरायणः ॥ ५१ ॥
उपविष्टे हरे तत्र ब्रह्माद्यास्ते दिवौकसः ।
समीपमगमस्तस्य दूरतः सान्त्वयन् हरम् ॥ ५२ ॥
देवानागच्छतो दृष्ट्वा शोक-लज्जासमन्वितः ।
गत्वा शिलात्व तत्रैव लिंगत्व गतवान् हरः ॥ ५३ ॥
हरे लिंगत्वमापन्ने ब्रह्माद्यास्तु दिवौकसः ।
तुष्टुवुस्त्र्यम्बक तत्र लिंगरूप जगद्गुरुम् ॥ ५४ ॥

देवा ऊचुः

महादेव शिव स्थाणुमुग्रं रुद्र वृषध्वजम् ।
श्मशानवासिनं भर्गं सर्वान्तकरणं परम् ॥ ५५ ॥
त्वां नमामो वयं भक्त्या शकर नीललोहितम् ।
गिरीश वरद देव भूतभावनमव्ययम् ॥ ५६ ॥

---

49 प्रभु । 50 स्मृता ।

अनादिमध्यससारयोगविद्याय शम्भवे ।
नमः शिवाय शान्ताय ब्रह्मणे लिंगमूर्तये ॥ ५७ ॥
जटिलाय[51] गिरिशाय विद्याशक्तिधराय ते ।
नमः शिवाय शान्ताय ब्रह्मणे लिगमूर्तये ॥ ५८ ॥
ज्ञानामृतान्तसम्पूर्णशुद्धदेहान्तराय च ।
नमः शिवाय शान्ताय ब्रह्मणे लिंगमूर्तये ॥ ५६ ॥
आदिमध्यान्तभूताय[52] स्वभावानलदीप्तये ।
नमः शिवार्य शान्ताय ब्रह्मणे लिगमूर्तये ॥ ६० ॥
प्रलयार्णवसस्थाय प्रलयस्थितिहेतवे ।
नमः शिवाय शान्ताय ब्रह्मणे लिंगमूर्तये ॥ ६१ ॥
यः परेभ्यः परस्तस्मात् पराय परमात्मने ।
नमः शिवाय शान्ताय ब्रह्मणे लिगमूर्तये ॥ ६२ ॥
ज्वालामालावृतागाय नमस्ते विश्वरूपिणे[53] ।
नमः शिवाय शन्ताय ब्रह्मणे लिगमूर्तये ॥ ५३ ॥
ॐ नमः परमार्थाय ज्ञानदीपाय वेधसे ।
नमः शिवाय शान्ताय ब्रह्मणे लिगमूर्तये ॥ ६४ ॥
नमो दाक्षायणीकान्त मृड शर्व महेश्वर ।
नमस्ते सर्वभूतेशा प्रसीद भगवञ्छिव ॥ ६५ ॥
सशोके त्वयि लोकेशे चेष्टमाने महेश्वर ।
सुराः समाकुलाः सर्वे तस्माच्छोक परित्यज ॥ ६६ ॥
नमो नमस्ते भूतेश सर्वकारणकारण ।
प्रसीद[54] रक्ष नः सर्वांस्त्यज शोक नमोऽस्तुते ॥ ६७ ॥

51 ॐ नम परमात्मने ज्ञानरूपाय वेधसे। नम शिवाय शान्ताय ब्रह्मणे लिंगमूर्तये ॥ नमो दाक्षायणीकान्त सूतसर्व महेश्वर। नमस्ते सर्वभूतेश प्रसीद भगवन् शिव ॥ सशोके त्वयि लोकेश चेष्टमाने महेश्वर। सुरा समाकुला सर्वे तस्मात् शोक परित्यज ॥ 52 रूपाय। 53 शास्त्ररूपिणे। 54 परेभ्यश्च परस्मात् च पराय परमात्मने।

मार्कण्डेय उवाच

इति सस्तूयमानस्तु महादेवो जगत्पतिः।
निज रूप समास्थाय प्रादुर्भूतः शुचाहतः ॥ ६८ ॥
त शुचा विह्वल दृष्ट्वा प्रादुर्भूत विचेतसम्।
शोकापह विधि साम्ना तुष्टाव वृषभध्वजम् ॥ ६९ ॥

ब्रह्मोवाच

हिरण्यबाहो ब्रह्मा त्व विष्णुस्त्व जगतः पतिः।
सृष्टिस्थितिविनाशाना हेतुस्त्व केवल हर ॥ ७० ॥
त्वमष्टमूर्तिभिः सर्वं जगद्व्याप्य चराचरम्।
उत्पादकः स्थापकश्च नाशकश्चापि विश्वकृत् ॥ ७१ ॥
त्वा[55]माराध्य महादेव मुक्ति याता मुमुक्षवः।
रागद्वेषादिभिस्त्यक्ताः ससारविमुखा बुधाः ॥ ७२ ॥

विभिन्नवाय्वग्निजलौघवर्जित
न दूरसस्थ रविचन्द्रसयुतम्।
त्रिमार्गमध्यस्थमनुप्रकाशक
तत्त्व पर शुद्धमय महेश्वर ॥ ७३ ॥
यदष्ट[56]शाखस्य तरोः प्रसून
चिदम्बुवृद्धस्य समीपजस्य।
तपश्छदःसस्थगितस्य पीन
सूक्ष्मोपग ते वशगं सदैव ॥ ७४ ॥
अधः समाधाय समीरण[57]स्वन
निरुद्ध्य चोर्द्धं निशि[58] हसमध्यतः।
हृत्पद्ममध्ये सुमुखीकृत रजः
परन्तु तेजस्तव सर्वदेक्ष्यताम्[59] ॥ ७५ ॥

---

55 तृतीयं यद्भवेन्नेत्रं ललाटस्थं महेश्वर। सततं भ्राजमानं तत् चिन्त्यं तेजो मुमुक्षुभिः ॥ 56 यदष्टशाखस्य। 57 समीरणं बलात्। 58 विरुद्धमध्यतः। 59 सर्वदेक्ष्यताम्।

प्राणायामैः पूरकैः स्तम्भकैर्वा
रिक्तै[60]श्चित्रैश्चोदन यत्पराख्यम् ।
दृश्यादृश्य योगिभिस्ते प्रपञ्चाः
शुद्ध वृद्ध[61] तत्त्वतस्तेऽस्ति लब्धम् ॥ ७६ ॥
सूक्ष्मं जगद्व्यापि गुणौघपीन[62]
मृग्यम्बुधैः साधनसाध्यरूपम् ।
चौरैरक्षैर्नोज्झित नैव नीतं
वित्त तवास्त्यर्थहीन महेश ॥ ७७ ॥
न कोपेन न शोकेन न मानेन न दम्भत ।
उपयोज्य तु तद्वित्तमन्यथेव विवर्धते ॥ ७८ ॥
मायया मोहितः शम्भो विस्मृत ते हृदि स्थितम् ।
माया भिन्न परिज्ञाय धारयात्मानमात्मना ॥ ७९ ॥
मायास्माभिः स्तुता पूर्वं जगदर्थे महेश्वर ।
तया ध्यानगत चित्त बहुयत्नैः प्रसाधितम् ॥ ८० ॥
शोकः क्रोधश्च लोभश्च कामो मोहः परात्मता[63] ।
ईर्ष्यामानौ[64] विचिकित्सा कृपासूया जुगुप्सता ॥ ८१ ॥
द्वादशैते बुद्धिनाशहेतवो मनसो मलाः ।
न त्वादृशैर्निषेव्यन्ते शोक त्यज ततो हर ॥ ८२ ॥

मार्कण्डेय उवाच

इति शाम्ना स्तुतः शम्भुः सस्मृत्यापि स्ववाञ्छितिम् ।
नावदध्रे तदात्मान शोकात् सत्या विनाकृतः ८३ ॥
अधोमुखः स्थित वीक्ष्य ब्रह्माण स शनैरिदम् ।
प्राह ब्रह्मन्नायतिग वद किं करवाण्यहम् ॥ ८४ ॥

---

60 स्वल्पतस्तेऽस्ति । 62 जलौघहीन 63 परीप्सया
64 विजीगिषा ।

मार्कण्डेय उवाच

इत्युक्तो वामदेवेन विधाता सर्वदैवतैः।
इदमाह तदेशस्य शोकविध्वंसकं वचः ॥ ८५ ॥

ब्रह्मोवाच

त्यज शोकं महादेव संस्मृत्यात्मानमात्मना।
न त्वं शोकस्य सदनं परं शोकात्तवान्तरम् ॥ ८६ ॥
सशोके त्वयि भूतेश देवा भूताः ससाध्वसाः।
भ्रंशयेज्जगतीं कोपः शोकः सर्वांश्च शोषयेत् ॥ ८७ ॥
त्वद्बाष्पव्याकुला पृथ्वी विदीर्णा स्यान्नचेन्द्वनिः।
अवजग्राह ते बाष्पं सोऽपि कृष्णोऽभवद् हठात् ॥ ८८ ॥
यत्र देवाः सगन्धर्वाः सदा क्रीडन्ति सोत्सुकाः।
सुमेरुसदृशो योऽसौ मानतः पर्वतोत्तमः ॥ ८९ ॥
यस्मिन् प्रविश्य शिशिरे[65] पद्मनालनिभे घनाः।
उत्पिबन्ति स्म तोयानि पुष्करावर्तकादयः ॥ ९० ॥
मन्दरात् सततं यत्र कुम्भयोनिर्महामुनिः।
गत्वा गत्वा तपस्तेपे हिताय जगतो हरः ॥ ९१ ॥
यस्मिन् स्थित्वा गिरौ पूर्वमगस्त्यस्तोयसागरम्।
पपौ तपोबलात् कृत्वा करमध्यगतं किल ॥ ९२ ॥
शनैश्चरेण ते वोढुमसमर्थेन लोतकैः।
क्षिप्तैर्विदारितस्तेऽसौ जलधाराह्वयो गिरिः ॥ ९३ ॥
विभिद्य पर्वतं शम्भो वाष्पास्ते सागरं ययुः।
भित्त्वा तु सागरं शीघ्रं[66] प्रभीताण्डजसंकुलम् ॥ ९४ ॥
जग्मुस्ते पूर्वपुलिनं तस्य तद्विभिदुश्च ते।
भित्त्वा वेलां ततः पृथ्वीं यिभिद्याशु तरंगिणीम् ॥ ९५ ॥

---

65 सुगिरौ। 66 शीर्णं।

चक्रुर्वैतरणीं नाम्ना पूर्वसागरगामिनीम् ।
न नावा न विमानेन द्रोण्या स्यन्दनेन च ॥ ९६ ॥
ततुं शक्या सा तु नदी तप्ततोयातिभीषणा ।
दुःखेन तान्तु पृथिवी बिभर्ति महताधुना ॥ ९७ ॥
सदा चोर्द्धगतैर्वाष्पैर्विक्षिपन्ती नभश्चरान् ।
तस्यास्तूपरि नो यान्ति देवा अपि भयातुराः[67] ॥ ९८ ॥
यमद्वार परावृत्य योजनद्वयविस्तृता ।
निम्ना वहति सम्पूर्णा भीषयन्ती जगत्त्रयम् ॥ ९९ ॥
त्वन्निःश्वासमरुज्जातैर्व्यस्ताः पर्वतकाननाः ।
समाकुलद्वीपिनागा नाद्यापि प्रतिशेरते ॥ १०० ॥
तव निःश्वासजो वायुः पीडयन् जगतः सुखम्[68] ।
नाद्यापि प्रशम याति बाधाहीनः सनातनः ॥ १०१ ॥
सतीशव ते वहतः शीर्यमाणा पदे पदे ।
नाद्यापि व्याकुला पृथ्वी व्याकुलत्व विमुञ्चति ॥ १०२ ॥
न स्वर्गे न च पाताले तत्सत्त्व विद्यतेऽधुना ।
यत्ते क्रोधेन शोकेन नाकुल वृषभध्वज ॥ १०३ ॥
तस्माच्छोकममर्षंच त्यक्त्वा शान्ति प्रयच्छ नः ।
आत्मानञ्चात्मना वेत्थ धारयात्मानमात्मना ॥ १०४ ॥
सती च दिव्यमानेन व्यतीते शरदा शते ।
सा च त्रेतायुगस्यादौ भार्या तव भविष्यति ॥ १०५ ॥

मार्कण्डेय उवाच

इत्युक्तो वेधसा शम्भुस्तूष्णीं ध्यानपरायणः[69] ।
अधोमुखस्तदा प्राह ब्रह्माणममितौजसम् ॥ १०६ ॥

---

67 भयाद्धर । 68 त्रयम् । 69 ध्यानपर॰ क्षणम् ।

ईश्वर उवाच

यावद् ब्रह्मन्नह शोकादुत्तरामि सतीकृतान् ।
तावन्मम सखा भूत्वा कुरु शोकापनोदनम् ॥ १०७ ॥
तस्मिन्नवसरे यत्र यत्र गच्छाम्यह विधे ।
तत्र तत्र भवान् गत्वा शोकहानिं करोतु मे ॥ १०८ ॥

मार्कण्डेय उवाच

एवमस्त्विति लोकेश प्रोक्त्वा वृषभवाहनम् ।
हरेण सार्धं कैलास गन्तु चक्रे मनस्ततः ॥ १०९ ॥
ब्रह्मणा सहित शम्भु कैलासगमनोत्सुकम् ।
समासेदुर्गणा दृष्ट्वा नन्दिभृ‌ङ्गिमुखाश्च ये ॥ ११० ॥
ततः पर्वतसकाशो वृषभः पुरतो विधेः ।
उपतस्थे सिताभ्रस्य सदृशो गैरिको यथा ॥ १११ ॥
वासुक्याद्याश्च ये सर्पा यथास्थानञ्च ते हरम् ।
भूषयाञ्चक्रुरुद्गम्य शिरोबाह्वादिषु द्रुतम् ॥ ११२ ॥
ततो ब्रह्मा च विष्णुश्च महादेवः सतीपतिः ।
सर्वैः सुरगणैः सार्धं जग्मुः प्रालेयपर्वतम ॥ ११३ ॥
ततस्तानौषधिप्रस्थान् निःसृत्य नगराद्गिरिः ।
सर्वैरमात्यैः सहित उपतस्थे सुरोत्तमान् ॥ ११४ ॥
ततः सम्पूजितास्तेन सुरौघा गिरिणा सह ।
सचिवैः पौरवर्गैश्च मुमुदुस्ते सुरर्षभाः ॥ ११५ ॥
ततो ददर्श तत्रैव गिरीन्द्रस्य पुरे हरः ।
विजयामौषधिप्रस्थे सखीभिर्गौतमात्मजाम् ॥ ११६ ॥
सापि सर्वान् सुरवरान् प्रणम्य हरमुक्तवान् ।
चुक्रोश मातृभगिनीं पृच्छन्ती गिरिशं सतीम् ॥ ११७ ॥
क्व सती ते महादेव शोभसे न तया विना ।
विस्मृतापि त्वया तात मद्धृदो नापसर्पति ॥ ११८ ॥

ममाग्रे सा पुरा प्राणान् यदा त्यजति कोपतः ।
तदैवाहं शोकशल्यविद्धा नाप्नोमि वै सुखम् ।। ११९ ।।
इत्युक्त्वा वदन वस्त्रप्रान्तेनाच्छाद्य सा भृशाम् ।
रुदन्ती प्रापतद्भूमौ[70] कश्मलञ्चाविशत्तदा ।। १२० ।।

इति श्रीकालिका पुराणे विजयाशोके अष्टादशोऽध्याय ।। १८ ।।

एकोनविंशोऽध्यायः

मार्कण्डेय उवाच

ततस्ता पतिता दृष्ट्वा तदा दाक्षायणीं स्मरन् ।
न शशाक ह सोढु शोकमुद्वेगसम्भवम् ।। १ ।।
भ्रष्टधैर्यस्ततः शम्भुर्बाष्पव्याकुललोचनः ।
पश्यता सर्वदेवाना चिन्ताध्यानपरोऽभवत् ।। २ ।।
अथाश्वास्य तदा धाता विजया शोककर्षिताम् ।
हरमाश्वासयन् सान्त्वपूर्वमेतदुवाच ह ।। ३ ।।

ब्रह्मोवाच

पुराणयोगिन् भगवन्न शोकस्तव युज्यते ।
परधाम्नि तव ध्यानमासीत् कस्मात् स्त्रियामिह ।। ४ ।।
प्रभविष्णुः परः शान्तः सूक्ष्मः स्थूलतरः सदा ।
तव स्वभावश्च कथ शोकेन बहुधाकृतः ।। ५ ।।
निरञ्जन ध्यानगम्य यतीना
परात्पर निर्मलं सर्वगामि ।
मलैर्हीन रागलोमादिभिर्यत्
तत् ते रूप त्वद्भूतं गृह्य बुद्ध्या ।। ६ ।।

70 सापततद्भुमौ ।

शोको लोभः क्रोधमोहौ च हिंसा
मानो दम्भो मदमोहप्रमोदाः ।
ईर्ष्यासूयाक्षान्तिरसत्यता च
चतुर्दश ज्ञाननाशा हि दोषाः ॥ ७ ॥

ध्यानेन त्वां योगिनश्चिन्तयन्ति
त्वं विष्णुरूपी[71] जगतां विधाता ।
या ते महामोहकरी सतीति
तवैव सा लोकमोहाय माया ॥ ८ ॥

या सर्वलोकाञ्जननेऽथ गर्भं
विमोहयन्ती पूर्वदेहस्य बुद्धिम् ।
विनाश्य बाल्यं कुरुते हि जन्तो-
र्विमोहयत्यद्य सा त्वं सशोकम् ॥ ९ ॥

सतीसहस्राणि पुरोज्झितानि
त्वया मृतानि प्रतिकल्पमेवम् ।
हिताय लोकस्य चराचरस्य
पुनर्गृहीता च तथा त्वयेयम् ॥ १० ॥

भवान्तरे ध्यानयोगेन पश्य
सतीसहस्राणि मृतानि यानि ।
यथा तथा त्वं परिवर्जितश्च
यथास्ति सा वा वृषराजकेतो ॥ ११ ॥

यतः समुत्पद्य मुहुर्भवन्त
सा प्राप्स्यतीश त्रिदशैदुरापम् ।
पुनश्च जाया यादृशी ते भवित्री
तत्तत् सर्वं ध्यानयोगेन पश्य ॥ १२ ॥

---

71 विश्वरूपी ।

मार्कण्डेयउवाच

एव बहुविध ब्रह्मा व्याहरत् साम शकरम् ।
गिरिराजपुरात्तस्माद्गमयामास निर्जनम् ॥ १३ ॥
ततो हिमवतः प्रस्थे प्रतीच्या तत्पुरस्य च ।
शिप्र नाम सरः पूर्णं ददृशुर्द्रुहिणादयः ॥ १४ ॥
तद्रहस्थानमासाद्य ब्रह्मशक्रादयः सुराः ।
उपविष्टा यथान्याय पुरस्कृत्य महेश्वरम् ॥ १५ ॥
त शिप्रसज्ञ कासार मनोज्ञ सर्वदेहिनाम् ।
शीतामलजल सर्वैर्गुणैर्मानससम्मितम् ॥ १६ ॥
दृष्ट्वा क्षण हरस्तस्मिन् सोत्सुकोऽभूदवेक्षणे ।
शिप्रा नाम नदीं तस्मान्निःसृता दक्षिणोदधिम् ।
गच्छन्तीञ्च ददर्शासौ पावयन्तीं जगज्जनान् ॥ १७ ॥
तत्सरः पूर्णमासाद्य चरतः शकुनान् बहून् ।
नानादेशागताञ्छम्भुर्वीक्षाञ्चक्रे मनोरमान् ॥ १८ ॥
गम्भीरपवनोद्धुतिसम्पन्नेषु[72] विराजितः ।
कोकद्वन्द्वास्तरगेषु ददर्श नृत्यतो यथा ॥ १६ ॥
मद्गुचञ्चुषू सम्पृक्तास्तरगान् स पृथक् पृथक् ।
वीक्षाञ्चक्रे यथा तोयादुत्पतत्पतगान् मुहुः ॥ २० ॥
कादम्बैः सारसैर्हसैः श्रेणीभूतैस्तटेतटे ।
भगीकृतैर्यथा शखैः सागरस्तादृश सरः ॥ २१ ॥
महामीनाहतिक्षुब्धैस्तोयशव्दोत्थसाध्वसैः[73] ।
पक्षिभिर्विहितैः शव्दस्तत्र तत्र मनोहरम् ॥ २२ ॥
प्रफुल्लैः पकजैश्चैव क्वचिज्जालैर्मनोहरैः ।
सरोरेजे यथा स्वर्गो नक्षत्रैः स्थूलसूक्ष्मकैः ॥ २३ ॥
महोत्पलाना मध्येषु विरल नीलमुत्पलम् ।
रेजे नक्षत्रमध्येषु नीलनीरदखण्डवत् ॥ २४ ॥

---

72 वृत्रिसम्पन्नेष । 73 महामीनैरतीक्ष्णैश्च तोय ।

पद्मसघात-मध्यस्था हसाः कैश्चिन्न सस्तुताः ।
प्रफुल्लपकजभ्रान्त्या निश्चलाः स्वर्गवासिभिः ॥ २५ ॥
द्विधा दृष्ट्वा शोणशुक्ले पद्मे फुल्ले विधिः स्वके ।
कायेऽरुणत्व फुल्लत्व स्वासनाब्जे निनिन्द च ॥ २६ ॥
फुल्ल महोत्पल वीक्ष्य सरसस्तस्य शकरः ।
मौलीन्दुकान्तिमलिन हस्तस्थ नोत्पलं ममे ॥ २७ ॥
हरेः स्वचक्रमूर्या शुफुल्ल हस्तगताम्बुजम् ।
सरः पद्मञ्च सदृश मेने वीक्ष्य समन्ततः ॥ २८ ॥
तत्सरो वीक्ष्य सम्पूर्णं नानापक्षिसमाकुलम् ।
पद्मिनीशतसञ्छन्न नीलोत्पलचयैर्वृतम् ॥ २९ ॥
देवदारुतरूणाञ्च तटस्थाना प्रसूनजैः ।
परागैर्वासितजल हृदयानन्दकारकम् ॥ ३० ॥
तीरे तीरे महावृक्षैः शाद्वलैः परिवारितम् ।
दृष्ट्वा शम्भुः क्षणं तत्र सोत्सुकः शोकवर्जितः ॥ ३१ ॥
शिप्रामालोकयामास निःसृतां सरसस्ततः ।
यथेन्दुमण्डलाद् गगा मेरोर्जाम्बुनदी यथा ।
तथा दृष्ट्वा महेशेन शिप्रा शिप्राद्विनिःसृता ॥ ३२ ॥

ऋषय ऊचुः

शिप्राह्वयः कः कासारः कथं शिप्रा ततः सृता ।
कीदृशोऽस्य प्रभावश्च तत् समाचक्ष्व विस्तरात् ॥ ३३ ॥

मार्कण्डेय उवाच

शृण्वन्तु मुनयः सर्वे यथा शिप्रा नदी सृता ।
शिप्रस्य च महाभागाः प्रभाव गदतो मम ॥ ३४ ॥
वसिष्ठेन यदा देवी परिणीता त्वरुन्धती ।
तदा वैवाहिकैस्तोयैः शिप्रासिन्धुरभूद्द्विजाः ॥ ३५ ॥

सा समागत्य पतिता शिप्रे सरसि शासनात् ।
यथा मन्दाकिनी विष्णुपादादब्धौ शिवोदका ॥ ३६ ॥
ब्रह्मविष्णुमहादेवैस्तोय सिक्त तयोः पुरा ।
विवाहे शान्तिविहित गायत्रीद्रुपदादिभिः ॥ ३७ ॥
एकीभूतन्तु तत्तोय मानसाचलकन्दरात् ।
तत् सर्वं पतित शिप्रे कासारे सागरोपमे ॥ ३८ ॥
देवानामुपभोगार्थं पुरा धात्रा विनिर्मितम् ।
सरः शिप्राह्वय सानौ प्रालेयस्य गिरेर्महत् ॥ ३९ ॥
तत्राद्यापि सुनासीरः सहितश्चाप्सरोगणैः ।
शचीसहायो रमते प्रसन्ने सालिले शुभे ॥ ४० ॥
तद्देवैः सर्वदा यत्नाद्रक्ष्यतेऽद्यापि रत्नवत् ।
न तत्र मानुषः कश्चिद् यातु शक्नोति योऽमुनिः ॥ ४१ ॥
तपः प्रभावान्मुनयः प्रयान्ति सरसी शुभाम् ।
शिप्राख्यान्तु महायत्नात् स्नातु पातुञ्च तज्जलम् ॥ ४२ ॥
तत्र स्नात्वा च पीत्वा च मनुष्याः दैवयोगतः ।
अवश्यममरत्वाय गच्छन्त्यविकलेन्द्रियाः ॥ ४३ ॥
वृद्धिं गच्छति वर्षासु सरो नैतद्द्विजोत्तमाः ।
न ग्रीष्मे शोषता[74] याति सर्वदा तद्यथा तथा ॥ ४४ ॥
तत्र तत् पतित तोयं वसिष्ठोद्वाहसम्भवम् ।
ब्रह्मविष्णुमहादेवकरपद्मै रुदीरितम् ॥ ४५ ॥
ववृधे शिप्रगर्भस्थमन्वह द्विजसत्तमाः ।
तत्र वृद्धन्तु तत्तोयञ्चक्रेण च हरिः पुरा ॥ ४६ ॥
गिरेः शृग विनिर्भिद्य लोकाना हितकाम्यया ।
पृथिवीं प्रेरयामास कृत्वा पुण्यतमा नदीम् ॥ ४७ ॥
परिवृत्य महेन्द्र सा पुनाना स्नानकारिणः ।
दक्षिण सागर याता फलदा जाह्नवी समा ॥ ४८ ॥

---

74 शोषमायाति ।

शिप्राख्यात् सरसो यस्मान्निःसृता सा महानदी ।
अतः शिप्रेति तन्नाम पुरव ब्रह्मणा कृतम् ॥ ४६ ॥
कातिक्या पौर्णमास्या तु तस्या यः स्नाति मानवः ।
स याति विष्णुसदन विमानेनातिदीप्यता ॥ ५० ॥
कातिक सकल मास स्नात्वा शिप्राजले नरः ।
प्रयाति ब्रह्मसदन पश्चान्मोक्षमवाप्नुयात् ॥ ५१ ॥

ऋषय ऊचुः

वसिष्ठेन कथ देवी परिणीता त्वरुन्धती ।
कस्य सा तनया ब्रह्मन्नुत्पन्ना वा वदस्व नः ॥ ५२ ॥
पतिव्रतासु प्रथिता त्रिषुलोकेषु या वरा ।
भर्त्तृपादौ विनान्यत्र या न चक्षुः प्रदास्यति ॥ ५३ ॥
यस्याः स्मृत्वा कथामात्र माहात्म्यसहित स्त्रियः ।
प्रेत्येह च सतीत्व वै प्राप्नुवन्त्यन्यजन्मनि ॥ ५४ ॥
आसन्नकालधर्मौ यां न पश्यति तथा शुचिः ।
पुरुषः पापकारी च तस्या जन्म वदस्व नः ॥ ५५ ॥

मार्कण्डेय उवाच

शृणुध्वं सा यथा जाता यस्य वा तनया शुभा ।
यथावाप वसिष्ठ सा यथाभूता पतिव्रता ॥ ५६ ॥
या सा सन्ध्या ब्रह्मसुता मनोजाता पुराभवत् ।
तपस्तप्त्वा तनु त्यक्त्वा सैव भूता त्वरुन्धती ॥ ५७ ॥
मेधातिथेः सुता भूत्वा मुनिश्रेष्ठस्य सा सती ।
ब्रह्मविष्णुमहेशानां वचनाच्चरितव्रता ।
वव्रे पतिं महात्मानं वसिष्ठं संशितव्रतम् ॥ ५८ ॥

---

75 थाबका ।

ऋषय ऊचुः

कथं तया तपस्तप्तं किमर्थं कुत्र सन्ध्यया ।
कथं शरीरं सा त्यक्त्वा भूता मेधातिथेः सुता ॥ ५९ ॥
कथं वा गदितं देवैर्ब्रह्मविष्णुशिवैः पतिम् ।
वसिष्ठं सुमहात्मानं सा वव्रे[76] सशितव्रतम् ॥ ६० ॥
तन्नः सर्वं समाचक्ष्व विस्तरेण द्विजोत्तम ।
एतन्नः श्रोष्यमाणानां चरितं द्विजसत्तम ।
अरुन्धत्या महासत्याः परं कौतुहलं महत् ॥ ६१ ॥

मार्कण्डेय उवाच

ब्रह्मापि तनयां सन्ध्यां दृष्ट्वा पूर्वमथात्मनः ।
कामाय मानसञ्चक्रे[77] त्यक्ता सा च सुतेति वै ॥ ६२ ॥
तस्याश्च चलितं चित्तं कामबाणविलोडितम् ।
ऋषीणां प्रेक्षतां तेषां मानसानां महात्मनाम् ॥ ६३ ॥
भर्गस्य वचनं श्रुत्वा सोपहासविधिं प्रति ।
आत्मनश्चलचित्तत्वममर्यादमृषीन् प्रति ॥ ६४ ॥
कामस्य तादृशं भावं मुनिमोहकरं मुहुः ।
दृष्ट्वा सन्ध्या स्वयं तत्र त्रपामायाति दुःखिता ॥ ६५ ॥
ततस्तु ब्रह्मणा शप्ते मदने तदनन्तरम् ।
अन्तर्भूते विधौ शम्भौ गते चापि निजास्पदम् ॥ ६६ ॥
अमर्षवशमापन्ना सन्ध्या ध्यानपराभवत् ।
ध्यायन्ती क्षणमेवाशु पूर्ववृत्तं मनस्विनी ॥ ६७ ॥
इदं विममृशे सन्ध्या तस्मिन् काले यथोचितम् ।
उत्पन्नमात्रां मां दृष्ट्वा युवतीं मदनेरितः ॥ ६८ ॥
अकार्षीन् सानुरागोऽयमभिलाषं पितामहः ।
सर्वेषां मानसानाञ्च मुनीनां भावितात्मनाम् ॥ ६९ ॥

---

76 चरितं । 77 स्वमनश्चक्रे ।

दृष्ट्वैव मामममर्याद सकाममभवन् मनः ।
ममापि मथितं चित्तं मदनेन दुरात्मना ॥ ७० ॥
येन दृष्ट्वा मुनीन् सर्वान् चलितं मे मनोभृशम् ।
फलमेतस्य पापस्य मदनः स्वयमाप्तवान् ॥ ७१ ॥
स्वयं शशाप कुपितः शम्भोरग्रे पितामहः ।
ममोचितं फलं सर्वं प्राप्तुमिच्छामि साम्प्रतम् ॥ ७२ ॥
यन्मां पिता भ्रातरश्च सकामामपरोक्षतः ।
दृष्ट्वा चक्रुः स्पृहां तस्मान्न मत्तः काऽपि पापकृत् ॥ ७३ ॥
ममापि कामभावोऽभूदमर्याद समीक्ष्य तान् ।
पत्याविव स्वके ताते सर्वेषु सहजेष्वपि ॥ ७४ ॥
करिष्याम्यस्य पापस्य प्रायश्चित्तमहं स्वयम् ।
आत्मानमग्नौ होष्यामि वेदमार्गानुसारतः ॥ ७५ ॥
किन्त्वेकां स्थापयिष्यामि मर्यादामिह भूतले ।
उत्पन्नमात्रा न यथा सकामाः स्युः शरीरिणः ॥ ७६ ॥
एतदर्थमहं कृत्वा तपः परमदारुणम् ।
मर्यादां स्थापयित्वैव पश्चात्त्यक्ष्यामि जीवितम् ॥ ७७ ॥
यस्मिञ्छरीरे पित्रा मे ह्यभिलाषः स्वयं कृतः ।
भ्रातृभिस्तेन कायेन किंचिन्नास्ति प्रयोजनम् ॥ ७८ ॥
येन स्वेन शरीरेण ताते च सहजे स्वके ।
उद्भावितः कामभावो न तत्सुकृतसाधकम् ॥ ७९ ॥
इति सञ्चिन्त्य मनसा सन्ध्या शैलवरं ततः ।
जगाम चन्द्रभागाख्यं चन्द्रभागा यतः सृता ॥ ८० ॥

तया स शैलः समधिष्ठितः तदा
सुवर्णगौर्या सुसमप्रभाभृता ।
सोमेन सन्ध्यासमयोदितेन
यथोदयाद्रिर्विरराज शश्वत् ॥ ८१ ॥

इति श्रीकालिकापुराणे सन्ध्यातपश्चरणे एकोनविंशोऽध्यायः ॥ १९ ॥

विंशोऽध्यायः

मार्कण्डेय उवाच

अथ तत्र गता दृष्ट्वा सन्ध्या गिरिवर प्रति ।
तपसे नियतात्मान ब्रह्मा प्राह स्वक सुतम् ॥ १ ॥
वसिष्ठ सशितात्मान[78] सर्वज्ञ ज्ञानियोगिनम् ।
समीपे सुसमासीन[79] वेदवेदागपारगम् ॥ २ ॥

ब्रह्मोवाच

वसिष्ठ गच्छ यत्रैषा सन्ध्या याता मनस्विनी ।
तपसे धृतकामा सा दीक्षस्वैना यथाविधि ॥ ३ ॥
मन्दाक्षमभवत् तस्याः पुरा दृष्ट्वेह कामुकान् ।
युष्मान् माञ्च तथात्मान सकामान् मुनिसत्तम ॥ ४ ॥
अयुक्तरूप तत्कर्म पूर्ववृत्त विमृश्य[80] सा ।
अस्माकमात्मनश्चापि प्राणान् सन्त्यक्तुमिच्छति ॥ ५ ॥
अमर्यादेषु मर्यादा तपसा स्थापयिष्यति ।
तपः कर्तु गता साध्वी चन्द्रभागाय साम्प्रतम् ॥ ६ ॥
न भाव तपसस्तात सा तु जानाति कञ्चन ।
तस्माद्यथोपदेश सा प्राप्नोति त्व तथा कुरु ॥ ७ ॥
इद रूप परित्यज्य रूपान्तर पर भवान् ।
परिगृह्यान्तिके तस्यास्तपश्चर्यान्निदेशतु[81] ॥ ८ ॥
इद स्वरूप भवतो दृष्ट्वा पूर्व यथा त्रपाम् ।
तथा प्राप्य न किंचिन् सा त्वदग्रे व्याहरिष्यति ॥ ९ ॥
परित्यज्य स्वकं रूप रूपान्तरधरो भवान् ।
तस्मान् सन्ध्या महाभागामुपदेष्टु प्रगच्छतु ॥ १० ॥

---

78 सयतात्मान । 79 स्वे समासीन । 80 विचिन्त्य सा ।
81 निदेशय ।

मार्कण्डेय उवाच

तथेत्युक्त्वा वसिष्ठोऽपि वर्णी भूत्वा जटाधरः ।
तरुणश्चन्द्रभागाय ययौ सन्ध्यान्तिकं मुनिः ॥ ११ ॥
तत्र देवसरः पूर्णं गुणैर्मानससम्मितम् ।
ददर्श स वसिष्ठोऽथ सन्ध्यां तत्तीरगामिनीम्[82] ॥ १२ ॥
तीरस्थया तया रेजे तत्सरः कमलोज्ज्वलम् ।
उद्यदिन्दुसनक्षत्रं प्रदोषे गगनं यथा ॥ १३ ॥
तां तत्र दृष्ट्वाथ मुनिः समाभाष्य सकौतुकः ।
वीक्षाञ्चक्रे सरस्तत्र बृहल्लोहितसंज्ञकम् ॥ १४ ॥
चन्द्रभागा नदी तस्मात् कासाराद्दक्षिणाम्बुधिम् ।
यान्ती निर्भिद्य ददृशे तेन सानुगिरेर्महत् ॥ १५ ॥
निर्भिद्य पश्चिमं सानुं चन्द्रभागस्य सा नदी ।
यथा हिमवतो गंगा तथा गच्छति सागरम् ॥ १६ ॥

ऋषय ऊचुः

चन्द्रभागा कथं सिन्धुस्तत्रोत्पन्ना महागिरौ ।
कीदृक् सरस्तद्द्विजेन्द्र बृहल्लोहितसंज्ञकम् ॥ १७ ॥
कथं स पर्वतश्रेष्ठश्चन्द्रभागाह्वयोऽभवत् ।
चन्द्रभागाह्वया कस्मान्नदी जाता वृषोदका ॥ १८ ॥
एतन्नः श्रोष्यमाणानां जायते कौतुकं महत् ।
माहात्म्यं चन्द्रभागायाः कासारस्य गिरेस्तथा ॥ १९ ॥

मार्कण्डेय उवाच

श्रूयताञ्चन्द्रभागाया उत्पत्तिर्मुनिसत्तमाः[83] ।
युष्माभिश्चन्द्रभागस्य माहात्म्यं नामकारणम् ॥ २० ॥
हिमवद्गिरिसंसक्तः शतयोजनविस्तृतः ।
योजनत्रिंशदायामः कुन्देन्दुधवलो गिरिः ॥ २१ ॥

---

82 तत्तीरगामपि । 83 द्विजसत्तमाः ।

तस्मिन् गिरौ पुरा वेधाश्चन्द्र शुद्ध सुधानिधिम् ।
विभज्य कल्पयामास देवान्न स पितामहः ॥ २२ ॥
पित्रर्थञ्च[84] तथा तस्य तिथिवृद्धिक्षयात्मकम् ।
कल्पयामास जगता हिताय कमलासनः ॥ २३ ॥
विभक्तश्चन्द्रमास्तस्मिन्[85] जीमूते द्विजसत्तमाः ।
अतो देवाश्चन्द्रभाग नाम्ना चक्रुः पुरा गिरिम् ॥ २४ ॥

ऋषय ऊचुः

यज्ञभागेषु तिष्ठत्सु तथा क्षीरोदजेऽमृते ।
किमर्थमकरोच्चन्द्र देवान्न कमलासनः ॥ २५ ॥
तथा कव्ये स्थिते कस्मात् पित्रर्थं समकल्पयत् ।
तिथिक्षये तथा वृद्धौ कथमिन्दुरभूद्गुरो ॥ २६ ॥
एतन्नः सशय ब्रह्मञ्छिन्धि सूर्यो यथा तमः ।
नान्योऽस्ति सशयस्यास्य छेत्ता त्वत्तो द्विजोत्तम ॥ २७ ॥

मार्कण्डेय उवाच

पुरा दक्षः स्वतनया अश्विन्याद्या मनोरमाः ।
षड्विंशति तथैकाञ्च सोमायादात् प्रजापतिः ॥ २८ ॥
समस्तास्तास्ततः सोम उपयेमे यथाविधि ।
निनाय च स्वक स्थान दक्षस्यानुमते तदा ॥ २९ ॥
अथ चन्द्रः समस्तासु तासु कन्यासु रागतः ।
रोहिण्या सार्धमवसद्रतोत्सवकलादिभिः ॥ ३० ॥
रोहिणीमेव भजते रोहिण्या सह मोदते ।
विनेन्दू[86] रोहिणीं शान्ति न काञ्चिल्लभते पुरा ॥ ३१ ॥
रोहिणीतत्पर चन्द्र वीक्ष्य ताः सर्वकन्यकाः ।
उपचारैर्बहुविधैर्भेजुश्चन्द्रमस प्रति[87] ॥ ३२ ॥

---

84 पित्रर्थत्व । 85 यस्मात् तस्मिन् जीमूतसत्तमे ।
86 विनेन्दु रोहिणी । 87 पतिं ।

निषेव्यमाणोऽनुदिन यदा नैवाकरोद्विधुः ।
तासु भाव तदा सर्वा अमर्षवशमागताः ॥ ३३ ॥
अथोत्तराफाल्गुनीति नाम्ना या भरणी तथा ।
कृत्तिकार्द्रा मघा चैव विशाखोत्तरभाद्रपत् ॥ ३४ ॥
तथा ज्येष्ठोत्तराषाढे नवैताः कुपिताः भृशम् ।
हिमांशुमुपसंगम्य परिवव्रुः समन्ततः ॥ ३५ ॥
परिवार्य निशानाथ ददृशू रोहिणीं ततः ।
वामाकस्था[88] तस्य तेन रममाणा[89] स्वमण्डले ॥ ३६ ॥
ता वीक्ष्य तादृशीं सर्वा रोहिणीं वरवर्णिनीम ।
जज्वलुश्चातिकोपेन हविषेव हुताशनः ॥ ३७ ॥
ततो मघात्रिपूर्वाश्च भरणी कृत्तिका तथा ।
चन्द्राकस्था महाभागा रोहिणीं जगृहुर्हठात् ॥ ३८ ॥
ऊचुश्चातीव कुपिताः परुष रोहिणीं प्रति ।
जीवन्त्या त्वयि दुष्प्राज्ञे नास्मानिन्दुस्तु[90] भावभाक ॥३९॥
समुपैष्यति कस्मिंश्चित्समये सुरतोत्सुकः ।
बह्वीनां क्षेमवृद्ध्यर्थं तां हनिष्याम दुर्मतिम् ॥ ४० ॥
न त्वां हत्वा भवेत् पापमस्माकमपि किंचन ।
प्रजनघ्नीं बहुस्त्रीणामनृतौ पापकारिणीम ॥ ४१ ॥
यस्मिन्नर्थे पुरा ब्रह्मा व्याजहार सुत[91] प्रति ।
नीतिशास्त्रोपदेशाय तन्नः सश्रुतमस्ति वै ॥ ४२ ॥
एकस्य यत्र निधने प्रवृत्ते दुष्टकारिणः ।
बहूनां भवति क्षेमं तस्य पुण्यप्रदो वधः ॥ ४३ ॥
रुक्मस्तेयी सुरापश्च ब्रह्महा गुरुतल्पगः ।
आत्मान घातयेद्यस्तु तस्य पुण्यप्रदो वधः ॥ ४४ ॥

88 वामांगस्थां। 89 भुज्यमानां। 90 नास्मास्विन्दुः सरागवान्।
91 अधिकः पाठ ।

मार्कण्डेय उवाच

तासा तादृगभिप्राय बुद्धा दृष्ट्वा च कर्म च ।
भीता च रोहिणीं दृष्ट्वा प्रियामतिमनोरमाम् ॥ ४५ ॥
आत्मान चापराध च तदसम्भोगज मुहुः ।
विचिन्त्य रोहिणीं भीता तासा हस्तादमोचयत् ॥ ४६ ॥
मोचयित्वा च बाहुभ्या सम्परिष्वज्य रोहिणीम् ।
वारयामास ताः सर्वाः कृत्तिकाद्याः स[93] भामिनीः ॥४७॥
तदेन्दु वारयन्त्यस्ताः कृत्तिकाद्या मघान्तकाः ।
साम्यमूचुर्मनस्विन्यस्ता वीक्ष्यन्त्योऽथ रोहिणीम् ॥ ४८ ॥
न ते त्रपा वा भीतिर्वा पापतोऽस्मान्निरस्यतः ।
सजायते निशानाथ प्राकृतस्येव वर्ततः ॥ ४९ ॥
कथमस्मान्निराकृत्य चारित्रव्रतधारिणीः ।
सदा भक्तिमतीरेका मूढवत्त्व निषेवसे ॥ ५० ॥
किं ते नावगतो धर्मो वेदमूलः श्रुतः पुरा ।
यद्धर्महीन कुरुषे कर्म सद्भिर्विगर्हितम् ॥ ५१ ॥
धर्मशास्त्रार्थग[94] कर्म चरन्तीना यथोचितम् ।
कथमुद्वाहिताना त्व मुखमात्र न[95] वीक्षसे ॥ ५२ ॥
गदतो यच्छ्रुत पूर्वं नारदाय पितुर्मुखात् ।
दक्षस्य धर्मशास्त्रार्थं तच्छृणुष्व निशापते ॥ ५३ ॥
बहुदारः पुमान् यस्तु रागादेका भजेत् स्त्रियम् ।
स पापभाक्स्त्रीजितश्च तस्याशौच सनातनम् ॥ ५४ ॥
यद्दुःख जायते स्त्रीणा स्वाम्यसम्योगज विधो ।
न तस्य सदृश दुःख किञ्चिदन्यत्र[96] विद्यते ॥ ५५ ॥
सतीमृतुमतीं जाया[97] यो नेयात्पुरुषाधमः[98] ।
ऋतुधस्रेषु शुद्धेषु भ्रूणहा स च जायते ॥ ५६ ॥

---

93 गुरुं प्रति । 93 समघान्तका । 94 धर्मशास्त्रानुगं धर्मं ।
95 निरीक्षसे । 96 किंचिदन्यद् विविच्यते । 97 योषां ।

भार्या स्याद्‌यावन्नक्षत्रेयी तावत्‌काल विबोधनम्‌ ।
तस्यास्तु सगमे किंचिद्विहितञ्चापि नाचरेत्‌ ॥ ५७ ॥
बहुभार्यस्य भार्याणामृतुमंथुननाशनम ।
न किंचिद्विद्यते कर्म शास्त्रेणापि यदीरितम ॥ ५८ ॥
तोपयेत्‌ सतत भार्याविधिवत्‌पाणिपीडिताः ।
तासा तुष्ट्या तु कल्याणम्‌ कल्याणमतोऽन्यथा ॥ ५९ ॥
सन्तुष्टो भार्यया भर्ता भर्त्रा भार्या तथैव च ।
यस्मिन्नेतत्‌कुले नित्य कल्याण तत्र वै ध्रुवम्‌ ॥ ६० ॥
यया विरुध्यते स्वामी सौभाग्यमदद्रप्तया ।
सपत्नीसगमम कर्तु सा स्याद्वेश्या भवान्तरे ॥ ६१ ॥
इहापि लोके वाच्यत्वमधर्मञ्चापि विन्दति ।
न पितुश्च कुल स्वामिकुल तस्याः प्रमोदते ॥ ६२ ॥
विरुध्यमाने पत्यौ यत्सपत्न्या वा प्रवर्तते ।
अतीव दुःख भवति तदकल्याणकृत्तयो. ॥ ६३ ॥

मार्कण्डेय उवाच

इत्येव भाषभाणासु तासु चातीव निष्ठुरम्‌ ।
चुकोप चन्द्रमा दृष्ट्वा मलिन रोहिणीमुखम्‌ ॥ ६४ ॥
रोहिणी च तदा तासामवलोक्योग्रतां मुहुः ।
न[99] किंचित्‌ सापि प्रोवाच भयशोकत्रपाकुला ॥ ६५ ॥
अथापि कुपितश्चन्द्रस्ताः शशाप तदा स्त्रियः ।
यस्मान्मम पुरश्चोग्रास्तीक्ष्णा वाचः समीरिताः ॥ ६६ ॥
भवतीभिश्चतिसृभिर्लोकेऽस्मिन्[100] कृत्तिकादिभिः ।
ऊग्रास्तीक्ष्णा इति ख्यातिः प्राप्तव्या त्रिदशेष्वपि ॥ ६७ ॥
तस्मादेवविधानेन नवैताः कृत्तिकादयः ।
यात्रायां नोपयुक्ता हि भविष्यथ्व दिने दिने ॥ ६८ ॥

98 नैच्छेत्‌। 99 न किंचनापि। 100 भवतीभिश्चतसृभि ।

युष्मान् पश्यन्ति देवाद्या मनुष्याद्या च ये क्षितौ ।
यात्राया तेन दोषेण तेषा यात्रा न चेष्टदा ॥ ६९ ॥
अथ सर्वास्तदा शाप तस्य श्रुत्वातिदारुणम् ।
चन्द्रस्य हृदय ज्ञात्वा शापाच्चातीव निष्ठुरम् ॥ ७० ॥
जग्मुः सर्वास्तदा दक्षभवन प्रत्यमर्षिताः ।
ऊचुश्च दक्ष पितरमश्विन्याद्याः सगद्गदम् ॥ ७१ ॥
सोमो वसति नास्मासु रोहिणीं भजते सदा ।
सेवमाना न भजते सोऽस्मान् परवधूरिव ॥ ७२ ॥
नावस्थाने नावसाने[1] भोजने श्रवणे तथा ।
विनेन्दू[2] रोहिणीं शान्ति लभते नहि काचन ॥ ७३ ॥
रोहिण्या वसतस्तस्य समीप वीक्ष्य ते सुताः ।
यान्तीः सोऽन्यत्र नयनमाधाय नहि वीक्षते ॥ ७४ ॥
मास्त्वन्यः स्वामिसद्भावो मुखमात्र न वीक्षते ।
अस्मिन् वस्तुनि यत्कार्यं तदस्माभिर्निगद्यताम् ॥ ७५ ॥
अस्माभिरेतत्समयेऽनुरुद्धश्च चन्द्रमाः ।
स तत्कृते ततश्चास्मच्छाप तीव्र तदाकरोत् ॥ ७६ ॥
दारुणाश्चातितीक्ष्णाश्च लोके वाच्यत्वमाप्य च ।
अयात्रिका भविष्यध्व यूयमित्युक्तवान् विधुः ७७ ॥

मार्कण्डेय उवाच

श्रुत्वा वाक्य स पुत्रीणा ताभिः सार्धं प्रजापतिः ।
जगाम यत्र सोमोऽभूद्रोहिण्या सहितस्तदा ॥ ७८ ॥
दूरादेव विधुर्दृष्ट्वा दक्षमायान्तमासनात् ।
उत्तस्थावन्तिके प्राप्य ववन्दे च महामुनिम् ॥ ७९ ॥
अथ दक्षस्तदोवाच कृतासनपरिग्रहः ।
सामपूर्वं चन्द्रमस कृत-सवन्दन तथा ॥ ८० ॥

1 नावमाने । 2 विनेन्दु रोहिणी ।

दक्ष उवाच

मम वर्तस्व भार्यासु वैषम्य त्व परित्यज।
वैषम्ये बहवो दोषा ब्रह्मणा परिकीर्तिताः ॥ ८१ ॥
रतिपुत्रफला दारास्तासु कामानुबन्धनात्।
कामानुबन्धः ससर्गात् ससर्गः सगमाद्भवेत् ॥ ८२ ॥
सगमश्चाप्यभिध्यानाद्वीक्षणादभिजायते।
तस्माद् भार्यास्वभिध्यान कुरु त्व वीक्षणादिकम ॥ ८३ ॥
यद्येव नैव कुरुषे मद्वचो धर्मयन्त्रितम।
तदा लोकवचोदुष्टः पापवास्त्व' भविष्यसि ॥ ८४ ॥

मार्कण्डेय उवाच

एतच्छ्रुत्वा वचस्तस्य दक्षस्य सुमहात्मनः।
एवमस्त्विति चन्द्रोऽपि न्यगदद्दक्षशकया ॥ ८५ ॥
अथानुमन्त्र्य तनयाश्चन्द्र जामातार तथा।
ययो दक्षो निज स्थान कृतकृत्यस्तदा मुनिः ॥ ८६ ॥
गते दक्षे ततश्चन्द्रस्तां समासाद्य रोहिणीम्।
जग्राह पूर्ववद्भाव तासु तस्या च रागतः ॥ ८७ ॥
तत्रैव' रोहिणीं प्राप्य न काश्चिदपि वीक्षते।
रोहिण्यामेव वसते[5] ततस्ताः कुपिताः पुनः ॥ ८८ ॥
गत्वा ताः पितरं प्राहुर्दौर्भाग्योद्विग्नमानसाः।
सोमो वसति नास्मासु रोहिणीं भजते सदा ॥ ८९ ॥
तवापि नाकरोद्वाक्य तस्मान्नः शरणं भव ॥ ९० ॥
उद्वेग[6]कोपसयुक्त उत्तस्थौ तत्क्षणान्मुनिः।
जगाम मनसा ध्यायन् कर्तव्य निकट विधोः ॥ ९१ ॥
उपगम्य तदा प्राह वचश्चन्द्रं प्रजापतिः।
सम वर्तस्व भार्यासु वैषम्य त्व परित्यज ॥ ९२ ॥

3 पापभाक। 4 तथैव। 5 रमते। 6 तत ईषत् कोपयुक्तः।

न चेदिद् वचोऽस्माक मौर्ख्यात् त्व मावबुध्यसे[7] ।
धर्मशास्त्रातिगायाह शप्स्ये तुभ्य निशापते ॥ ९३ ॥

मार्कण्डेय उवाच

ततो दक्षभयाच्चन्द्रस्तत्कर्तु प्रति तत्पुरः ।
अगीचकारातिभयात् कार्यमेव मुहुस्त्विति ॥ ९४ ॥
सम प्रवर्तन कर्तु भार्यास्वगीकृते तत ।
विधुना प्रययौ दक्षः स्वस्थान चन्द्रसम्मतः ॥ ९५ ॥
गते दक्षे निशानाथो रोहिण्यासहितो भृशम् ।
रममाणो विसस्मार दक्षस्य वचनन्तु सः ॥ ९६ ॥
सेवमानाश्च ताः सर्वा अश्विनाद्या मनोरमाः ।
नाभजच्चन्द्रमास्तासु अवज्ञामेव चाकरोत् ॥ ९७ ॥
अवज्ञातास्तु ताः सर्वाश्चन्द्रेण पितुरन्तिकम् ।
गत्वैवार्तस्वराश्चार्ता रुदन्त्यश्चेदमब्रुवन् ॥ ९८ ॥
नाकरोद्वचन सोमस्तवापि मुनिसत्तम ।
अवज्ञा कुरुतेऽस्मासु पूर्वतोऽप्यधिक स च ॥ ९९ ॥
तस्मात् सोमेन नः कार्यं न किंचिदपि विद्यते ।
तपस्विन्यो भविष्यामस्तपश्चर्या निदेशय ॥ १०० ॥
तपसा शोधितात्मानः परित्यक्ष्याम जीवितम् ।
किमस्माक जीवितेन दुर्भगाना द्विजोत्तम ॥ १०१ ॥

मार्कण्डेय उवाच

इत्युक्त्वा तास्ततः सर्वा दक्षजाः कृत्तिकादयः ।
कपोलमालम्ब्य करैरूरुदुर्विविशुः[7A] क्षितौ ॥ १०२ ॥
तास्तु दृष्ट्वा तथाभूता दुःखव्याकुलितेन्द्रियाः ।
अतिदीनमुखो दक्षः कोपाज्जज्वाल वह्निवत् ॥ १०३ ॥

---

7 नावधार्यसे । 7A करैरुपोपविविशु

अथ कोपपरीतस्य दक्षस्य सुमहात्मनः ।
निश्चक्राम तदा यक्ष्मा नासिकाग्राद्विभीषणः ॥ १०४ ॥
दंष्ट्राकरालवदनः कृष्णागारसमप्रभः ।
अतिदीर्घः स्वल्पकेशः कृशो धमनिसन्ततः ॥ १०५ ॥
अधोमुखो दण्डहस्तः काम विश्रम्य सन्ततम् ।
कुर्वाणो निम्ननेत्रश्च योपासम्भोगलोलुपः ॥ १०६ ॥
स चोवाच तदा दक्ष कस्मिस्थास्याम्यह मुने ।
किंवा चाह करिष्यामि तन्मे वद महामते ॥ १०७ ॥
ततो दक्षस्तु त प्राह सोम यातु द्रुत भवान ।
सोममत्तु भवान्नित्य सोमे त्व तिष्ठ स्वेच्छया ॥ १०८ ॥

मार्कण्डेय उवाच

इति श्रुत्वा वचस्तस्य दक्षस्याथ महामुनेः ।
शनैः शनैस्ततः सोममाससाद गदः स च ॥ १०९ ॥
आसाद्य स तदा सोम वल्मीक पन्नगो यथा ।
प्रविवेशेन्दुहृदय छिद्र प्राप्य महागदः ॥ ११० ॥
तस्मिन् प्रविष्टे हृदये दारुणे राजयक्ष्मणि ।
मुमोह चन्द्रस्तन्द्रां च विषमा प्राप्तवांश्च' सः ॥ १११ ॥
उत्पद्य प्रथम यस्माल्लीनो राजन्यसौ गदः ।
राजयक्ष्मेति लोकेऽस्मिन्नस्य ख्यातिरभूद्द्विजाः ॥ ११२ ॥
ततस्तेनाभिभूतः स यक्ष्मणा रोहिणीपतिः ।
क्षय जगामानुदिन ग्रीष्मे क्षुद्रा नदी यथा ॥ ११३ ॥
अथ चन्द्रे क्षीयमाणे सर्वौषध्यो गताः क्षयम् ।
क्षय यातास्वौषधिषु न यज्ञः समवर्तत ॥ ११४ ॥
यज्ञाभावात्तु देवानामन्न सर्व क्षयं गतम् ।
पर्जन्याश्च ततो नष्टास्ततो वृष्टिर्नचाभवत् ॥ ११५ ॥

---

8 सर्वत॰। ९ प्राप्तवांस्तत॰।

वृष्ट्यभावे तु लोकानामाहाराः क्षीणता गताः ।
दुर्भिक्षव्यसनोपेते सर्वलोके द्विजोत्तमाः ॥ ११६ ॥
दानधर्मादिक किंचिन्न लोकस्य प्रवर्तते ॥
सत्त्वहीनाः प्रजाः सर्वा लोभेनोपहतेन्द्रियाः ।
पापमेव तदा चक्रुः कुकर्मरतयश्च[10] ताः ॥ ११७ ॥
एतान् दृष्ट्वा तदा भावान् दिक्पालाः सपुरन्दराः ।
जग्मुः क्षोभ पर देवाः सागराश्च ग्रहास्तथा ॥ ११८ ॥
ततो दृष्ट्वा जगत्सर्वं व्याकुल दस्युपीडितम् ।
ब्रह्माणमगमन् देवाः सर्वे शक्रपुरोगमाः ॥ ११९ ॥
उपसगम्य देवेश स्रष्टार जगता पतिम् ।
प्रणम्याथ यथायोग्यमुपविष्टास्तदा सुराः ॥ १२० ॥
तान् म्लानवदनान् सर्वान् ीवक्ष्य लोकपितामहः ।
अभिभूतान् परेणेव हृतस्वविषयानिव ।
पप्रच्छ सम्मुखीकृत्य[11] गुरुमिन्द्र हुताशनम् ॥ १२१ ॥

ब्रह्मोवाच

स्वागत भो सुरगणाः किमर्थं यूयमागताः ।
दुःखोपहतदेहाश्च युष्मान् म्लानाश्च लक्षये ॥ १२२ ॥
निराबाधान्निरातकान् युष्मान्[12] सर्वाश्च कामगान् ।
कृत्वा स्वविषये न्यस्तान् कथ पश्यामि दुःखितान् ॥१२३॥
यद्वोऽभवद्दुःखवीज युष्मान् वा यस्तु बाधते ।
तत्कथ्यतामशेषेण सिद्धश्चाप्यवधार्यताम् ॥ १२४ ॥

मार्कण्डेय उवाच

ततो वृद्धश्रवा जीवः कृष्णवर्त्मा च लोकभृत् ।
उवाचात्मभुवे तस्मै सुराणा दुःखकारणम् ॥ १२५ ॥

10 न धर्मरुचयस्तदा । 11 प्रमुखीकृता । 12 सुरान् सर्वास्तु कामदान् ।

देवा ऊचुः

श्रृणु सर्वं जगत्कर्तस्त्वा येन वयमागताः ।
यद्वास्माकं दुःखबीजं यतो म्लानश्रियो वयम् ॥ १२६ ॥
न क्वचित् सम्प्रवर्तन्ते यज्ञा लोके पितामह ।
निराधारा निरातङ्काः प्रजाः सर्वा क्षयं गताः ॥ १२७ ॥
न च दानादिधर्मश्च न तपांसि क्षितौ क्वचित् ।
नैव वर्षति पर्जन्यः क्षीणतोयाभवन् क्षितिः ॥ १२८ ॥
क्षीणाः सर्वास्तथौषध्यः शस्या लोकाः समाकुलाः ।
दस्युभिः पीडिता विप्रा वेदवादं न कुर्वते ॥ १२९ ॥
अन्नवैकल्यमासाद्य म्रियन्ते बहवः प्रजाः ।
क्षीणेषु यज्ञभागेषु भोग्यहीनास्तथा वयम् ॥ १३० ॥
दुर्बलास्तु श्रियाहीना नैव शान्ति लभामहे ॥ १३१ ॥
रोहिण्या मन्दिरे चन्द्रो वक्रगत्या चिरं स्थितः ।
वृषराशौ स च क्षीणो ज्योत्स्नाहीनश्च वर्तते[1] ॥ १३२ ॥
यदैवान्विष्यते देवैश्चन्द्रो नैषां पुरःसरः ।
कदाचिदपि देवानां समाजे वा भवद्विधे ॥ १३३ ॥
कदाचिद्रोहिणीं त्यक्त्वा नैव क्वचन गच्छति ।
यद्यन्यः कोऽपि न भवेत्तदा चन्द्रो बहिर्भवेत् ॥ १३४ ॥
दृश्यते स कलाहीनः कलामात्रावशेषकः ।
इति सर्वत्र लोकेश दृष्टः कर्मविपर्ययः ॥ २३५ ॥
तं दृष्ट्वा कान्दिशीकास्तु वयं त्वां शरणं गताः ।
पातालाद्यावदुत्थाय कालकञ्जादयोऽसुराः ॥ १३६ ॥
नास्मान् लोकेश बाधन्ते तावदस्त्राहि साध्वसात् ।
अयं प्रवर्तते कस्माज्जगतां वा व्यतिक्रमः ।
न जानीमस्तु तत्सर्वं विप्लवे वापि कारणम् ॥ १३७ ॥

1[1] जायते ।

मार्कण्डेय उवाच

एतत् सुराणा वचन दिव्यदर्शी पितामहः।
श्रुत्वा क्षणमभिध्यायन् निजगाद सुरोत्तमान् ॥ १३८ ॥

ब्रह्मोवाच

शृण्वन्तु देवताः सर्वा यदर्थं लोकविप्लवः।
प्रवर्ततेऽधुना येन शान्तिस्तस्य भविष्यति ॥ १३६ ॥
सोमो दाक्षायणीः कन्याः सप्तविशतिसख्यकाः।
अश्विन्याद्या वरबधूर्भार्यार्थे परिणीतवान् ॥ १४० ॥
परिणीय स ताः सर्वा रोहिण्या सतत विधुः।
प्रावर्ततानुरागेण न समस्तासु वर्तते ॥ १४१ ॥
अश्विन्याद्यास्तु ताः सर्वा दौर्भाग्यज्वरपीडिताः।
षड्विशतिर्वरारोहाः पितर प्रस्थिताः स्वकम् ॥ १४२ ॥
प्रवर्तते निशानाथो रोहिण्या रागतो यथा।
तथा न तासु भजते तद्दक्षाय न्यवेदयन् ॥ १४३ ॥
ततो दक्षो महाबुद्धिः साम्ना सस्तूय विट्पतिम्।
बहुसुनृतमाभाष्य पुत्र्यर्थे चान्वरोधत ॥ १४४ ॥
अनुरुद्धो यथाकाम दक्षेण सुमहात्मना।
सम प्रवर्तितु तासु समय कृतवान् विधुः ॥ १४५ ॥
सममगीकृते भाव तासु कर्तु हिमाशुना।
स्व जगाम ततः स्थान दक्षोऽपि मुनिसत्तमः ॥ १४६ ॥
गते दक्षे मुनिश्रेष्ठे वैषम्य तासु चन्द्रमाः।
जहौ न भाव ताः शश्वत् कुपिताः पितर गताः ॥ १४७ ॥
ततो दक्षः पुनश्चन्द्रमनुरुध्य सुतान्तरे।
समा वृत्ति प्रतिश्राव्य वचन चेदमब्रवीत् ॥ १४८ ॥
न सम वर्तते चन्द्र सर्वास्वासु भवान् यदि।
तदा शप्स्ये त्वह तुभ्य तस्मात् कुरु समजसम् ॥ १४६ ॥

ततो गते पुनर्दक्षे न समं वर्तते यदा ।
तासु चन्द्रस्तदा दक्षं पुनर्गत्वाब्रुवन् रुषा ॥ १५० ॥
न ते वचः सत्कुरुते नवास्मासु प्रवर्तते ।
वयं तपश्चरिष्यामः स्थास्यामश्च तवान्तिके ॥ १५१ ॥
तासामिति वचः श्रुत्वा कुपितः स महामुनिः ।
क्षयाय चन्द्रस्य पुनः शापायोत्सुकतां गतः ॥ १५२ ॥
शापायोद्युक्तमनसः कुपितस्य महामुनेः ।
क्षयो नाम महारोगो नासिकाग्राद्विनिर्गतः ॥ १५३ ॥
प्रेषितः स च चन्द्राय दक्षेण मुनिना ततः ।
प्रविष्टश्च ततो देहे क्षयितस्तेन चन्द्रमाः ॥ १५४ ॥
क्षीणे चन्द्रे क्षयं याता ज्योत्स्नास्तस्य महात्मनः ।
क्षीणासु सर्वज्योत्स्नासु सर्वौषध्यः क्षयं गताः ॥ १५५ ॥
औषध्यभावाल्लोकेऽस्मिन न यज्ञः सम्प्रवर्तते ।
यज्ञाभावादनावृष्टिस्ततः सर्वप्रजाक्षयः ॥ १५६ ॥
यज्ञभागोपभोगेन हीनानां भवतां तथा ।
दुर्बलत्वं समुत्पन्नं विकारश्च स्वगोचरे ॥ १५७ ॥
इति वः कथितं सर्वं यथाभूल्लोकविप्लवः ।
येनोपायेन तच्छान्तिस्तच्छृण्वन्तु सुरोत्तमाः ॥ १५८ ॥
इति श्रीकालिकापुराणे चन्द्रस्यशाप मोक्षे विंशोध्यायः ॥ २० ॥

एकविंशोऽध्यायः

ब्रह्मोवाच

गच्छन्तु भोः सुरगणा दक्षस्य सदनं प्रति ।
प्रसादयत चन्द्रार्थे स च पूर्णो भवेद्यथा ॥ १ ॥
पूर्णे चन्द्रे जगत्सर्वं प्रकृतिस्थं भविष्यति ।
युष्माकञ्च भवेच्छान्तिरोषधीनाञ्चसम्भवः ॥ २ ॥

मार्कण्डेय उवाच

इति ब्रह्मवचः श्रुत्वा देवाः शक्रपुरोगमाः ।
प्रययुर्हृष्ट[14] मनसस्तदा दक्षनिवेशनम् ॥ ३ ॥
यथान्यायमुपस्थाय सर्वे मुनिवर सुराः ।
प्रोचुः प्रजापति दक्ष प्रणम्य श्लक्ष्णया गिरा ॥ ४ ॥

देवा ऊचु

प्रसीद सीदता ब्रह्मन्नस्माक बहुदुःखिनाम् ।
उद्धरस्व महाबुद्धे त्राहि नः शोकसागरान् ॥ ५ ॥
यद्रूप ब्रह्मसंज्ञन्तु सृष्टिकृत् परमात्मनः ।
तदशस्त्व पर ज्योतिर्विप्ररूप[15] नमोऽस्तुते ॥ ६ ॥
रक्षणात् सर्वजगता प्रजापालनकारणात् ।
दक्षः प्रजापतिश्चेति योगेशस्त नुमो वयम् ॥ ७ ॥
दक्षाय सर्वजगता दक्षाय कुशलात्मनाम् ।
दक्षायात्महितायाशु नमस्तुभ्य महात्मने ॥ ८ ॥
सतत चिन्त्यमानस्य योगिभिर्नियतेन्द्रियैः[16] ।
सारस्य सारभूतस्त्व दक्षाय[17] परमात्मने ॥ ९ ॥
योगिवृत्तिरनाधृष्य पारगाणा परायणः ।
आद्यन्तमुक्तः[18] सहसा तस्मै नित्य नमो नमः ॥ १० ॥
इति तेषा वचः श्रुत्वा दक्षो यज्ञभुजा तथा ।
प्राह प्रसन्नवदनः शक्रमाभाष्य मुख्यतः ॥ ११ ॥

दक्ष उवाच

कुतः शक्र महाबाहो भवता दुःखमागतम् ।
दुःखहेतु वद विभो श्रोतुमिच्छाम्यहन्तु[19] तम ॥ १२ ॥

---

14 प्रजग्मुर्हृष्ट० । 15 विश्वरूप नतोऽस्मि ते । 16 नियतात्मभि ।
17 दक्षोयत् परमात्मन । 18 अत्यन्तयुक्त 19 अहं तत० ।

ममास्ति वा कि कर्तव्य भवता दुःखहानये ।
तदहं यदि शक्नोमि करिष्यामि हितं समम् ॥ १३ ॥

मार्कण्डेय उवाच

तच्छ्रुत्वा वचनं तस्य ब्रह्मसूनोर्महात्मनः ।
जगाद वाक्पतिः[20] शक्रो वीतिहोत्रोऽथ तं मुनिम् ॥१४॥

त[21] ऊचुः

क्षयी[22] जातो निशानाथस्तस्मिन क्षीणे क्षयं गताः ।
सर्वापध्यो द्विजश्रेष्ठ तद्धानिर्यज्ञहानिकृत् ॥ १५ ॥
यज्ञे विनष्टे सकलाः प्रजाः क्षुद्भयकातराः ।
वृष्ट्यभावान्महद्दुःख प्राप्य नष्टाश्च काश्चन ॥ १६ ॥
क्षयोऽयं रात्रिनाथस्य यस्ते कोपात् प्रवर्तते ।
स सर्वजगतो ब्रह्मन्नभावार्थमुपस्थितः ॥ १७ ॥
नाधुना तत् त्रिभुवनं यत्र क्षुब्धं न किंचन ।
विप्लुतं वास्ति विप्रेन्द्र स्थावराः[23] पतगाश्च वा ॥ १८ ॥
न यज्ञाः सप्रवर्तन्ते न तपस्यन्ति तापसाः ।
आहारदुःखान्निश्रीकाः प्रजाः क्षीणा भयातुराः ॥ १९ ॥
एवं प्रवृत्ते विप्रेन्द्र विद्रवेऽस्मान् रसातलान् ।
हत्वा न यावदुत्थाय बाधन्ते तावदुद्धर ॥ २० ॥
प्रसीद दक्ष चन्द्रस्य त पूरय तपोबलात् ।
पूर्णे चन्द्रे जगत्सर्वं प्रकृतिस्थं भविष्यति ॥ २१ ॥

मार्कण्डेय उवाच

इति तेषां वचः श्रुत्वा प्रजापतिसुतस्तदा ।
उवाच तान् सुरगणान् हृदयाच्छल्यमुद्धरन् ॥ २२ ॥

20 गीष्पति । 21 गीष्पति शक्र वीतिहोत्रा, ऊचुः । 22 क्षयं जातो ।
23 सागरा पतगाश्चरा ।

दक्ष उवाच

यन्मे वचो निशानाथे प्रवृत्त शापकारणम् ।
न केनापि निदानेन मिथ्या कर्तु तदुत्सहे ॥ २३ ॥
किन्तु मद्वचन यस्मान्नैकान्तेन मृषा भवेत् ।
चन्द्रोऽपि वर्धते यस्मात्तदुपायमुदेक्षत ॥ २४ ॥
तत्राप्ययमुपायोऽस्ति मासार्धं यातु चन्द्रमा ।
क्षय वृद्धिश्च मासार्धं सम भार्यासु वर्तताम् ॥ २५ ॥
तस्य तद्वचन श्रुत्वा त प्रसाद्य प्रजापतिम् ।
सर्वे सुरगणास्तत्र गता यत्रास्ति चन्द्रमाः ॥ २६ ॥
एवमुक्ते तु वचने दक्षेण मुनिना द्विजाः ।
अथ चन्द्र समादाय भार्याभिः सहित तदा ।
जग्मुस्ते ब्रह्मभवन[24] मुदिताः सुरसत्तमाः ॥ २७ ॥
तत्र गत्वा महाभागा यथा[25] दक्षेण भाषितम् ।
तत्सर्वं कथयामासुर्ब्रह्मणे परमात्मने ॥ २८ ॥
ब्रह्मा दक्षवचः श्रुत्वा देवाना वचनात्तदा ।
चन्द्रभाग महाशैल जगाम सहितः सुरैः ॥ २९ ॥
तत्र गत्वा सुरश्रेष्ठः प्रजाना हितकाम्यया ।
स्नापयामास शुभ्राशु बृहल्लोहितपुष्करे ॥ ३० ॥
भूतभव्यभवज्ज्ञानः पूर्वमेव पितामहः ।
एतदर्थञ्चकारात्र सरःपूर्णं जगद्गुरुः[26] ॥ ३१ ॥
तत्र स्नातस्य जन्तोस्तु नीरोगत्व प्रजायते ।
चिरायुश्च सतत बृहल्लोहितसञ्ज्ञके ॥ ३२ ॥
तत्र स्नातस्य चन्द्रस्य शरीरात्ततक्षण गदः ।
राजयक्ष्मा निःससार पूर्वरूपो यथोदितः ॥ ३३ ॥
निःसृत्य राजयक्ष्मापि ब्रह्माणञ्च जगत्पतिम् ।
प्रणम्याह किं करिष्ये क्व गच्छामीत्युवाच तम्[27] ॥३४॥

---

24 ब्रह्मसदन। 25 दक्षेण भाषितञ्च यत्। 26 जगत् प्रभु । 27 ह।

स्थानं प्रतीक्ष लोकेश कृत्यं मम सनातनम् ।
निर्देशयानुरूपं मे स्रष्टा त्वं जगतां यतः ॥ ३५ ॥

मार्कण्डेय उवाच

ततो ब्रह्मापि तं पुष्टं निरीक्ष्येन्दुं शरीरगः ।
अमृतैस्तेनानियुक्तः क्षीणञ्चापि निशापतिम् ॥ ३६ ॥
दोर्भिः स्वयं च गृहीत्वा गिरौ निष्पीड्य च मुहुः ।
अमृतं गालयामास[28] शरीराद्राजयक्ष्मणः ॥ ३७ ॥
अमृतानि च यान्याशु गालितानि तदा जले ।
क्षीरोदस्य स चिक्षेप मध्ये तस्मिन् लोकभृत् ॥ ३८ ॥
तस्मादस्यामृतादिन्दोः कलाः क्षीणास्तु याः पुरा ।
तासां जग्राह लवशश्चूर्णान् क्षीरोदसागरात् ॥ ३९ ॥
कलामात्रावशेषस्य स्वशरीराद्राजयक्ष्मणः ।
क्षीणाः कलाः पञ्चदश याः पूर्वममृतात्मिकाः ॥ ४० ॥
ता राजयक्ष्मगर्भस्थाश्चूर्णीभूतास्तु पीडया ।
तेजोज्योत्स्ना[29] सुधाभिस्तु नियद्धं यत् कलापतेः ॥ ४१ ॥
शरीरं तत् त्रिधा भूतं गर्भस्थं राजयक्ष्मणः ॥ ४२ ॥
ज्योतिश्चूर्णमभूत्[30] ज्योत्स्ना लीना राजादियक्ष्मणि ।
द्रवीभूताः सुधाः सर्वाः गर्भे रोगस्य च स्थिताः ॥ ४३ ॥
यदा निर्गालयामास सुधा ब्रह्मा यक्ष्मान्तरात् ।
तदा ज्योत्स्नासुधाज्योतिः सर्वं तस्माद्बहिर्गतम् ॥ ४४ ॥
क्षीरोदसागरे क्षिप्तं तत् सर्वं विधिना तदा ।
देवान् गिरौ परित्यज्य स्वयं गत्वा द्रुतं ततः ॥ ४५ ॥
ततोऽमृतानि प्रक्षाल्य कलाचूर्णानि वारिभिः ।
ज्योत्स्नाश्चाप्याजगामाशु गृहीत्वा तत्त्रयं गिरिम् ॥ ४६ ॥
क्षीरोदाद्गिरिमासाद्य चन्द्रभागं तदा विधिः ।
देवमध्ये कलाचूर्णं सुधाज्योत्स्ना न्यवीविशत् ॥ ४७ ॥

---

28 कामयामास । 29 रजो ज्योत्स्ना । 30 क्षीणश्चूर्णमभूत् ।

संस्थाप्य तत्त्रयं ब्रह्मा देवानां मध्यतः स्थितः ।
जगाद राजयक्ष्माणं तत् स्थानादि निदेशयन् ॥ ४८ ॥

ब्रह्मोवाच

सर्वदा यो दिवारात्रं सन्ध्यायां वनितारतः ।
सेवते सुरतं तस्मिन् राजयक्ष्मन् वसिष्यसि ॥ ४९ ॥
प्रतिश्याय-श्वासकास-संयुक्तो मैथुनं चरेत् ।
स ते प्रवेश्यः सततं श्लेष्मणश्च तथाविधः ॥ ५० ॥
कृष्णाख्या मृत्युपुत्री या भवतः सदृशी गुणैः ।
सा तेऽस्तु भार्या सततं भवन्तमनुयास्यति ॥ ५१ ॥
क्षीणत्वं भवतः कृत्यं ततस्त्वं विषयं[31] कुरु ।
द्रुतं गच्छ यथाकामं चन्द्रात् त्वं विमुखो भव ॥ ५२ ॥

मार्कण्डेय उवाच

एवं विसृष्टो विधिना राजयक्ष्मा महागदः ।
पश्यतां सर्वदेवानामन्तर्धानं जगाम ह ॥ ५३ ॥
अन्तर्हिते महारोगे ब्रह्मा लोकपितामहः ।
चन्द्रं समग्रयामास कलापञ्चदशैर्धितम् ॥ ५४ ॥
तेन क्षीरोदधौतेन सुधापूतेन चात्मभूः ।
सज्योत्स्नैस्तु कलाचूर्णैः पूर्ववच्चाकरोद्विधुम् ॥ ५५ ॥
स षोडशकलापूर्णः पूर्ववद्विबभौ यदा ।
चन्द्रस्तदा सर्वदेवा मुमुदुस्तस्य दर्शनात् ॥ ५६ ॥
अथ चन्द्रस्तदा पूर्णः प्रणिपत्य पितामहम् ।
उवाचेदं सुरसदोमध्यगो नाति हर्षितः ॥ ५७ ॥

सोम उवाच

न श्यामं[32] पूर्ववद् ब्रह्मञ्छरीरे मम वर्तते ।
न वीर्यं वा तथोत्साहो निषीदन्त्यगसन्धयः ॥ ५८ ॥

---

31 विषये । 32 न सुखं

नोत्सहे पूर्ववच्चेष्टां विधातुं सुतरामहम् ।
चेष्टाहीनस्त्वनुदिनं वर्तेय केन लोककृत् ॥ ५९ ॥

ब्रह्मोवाच

ग्रस्तस्य यक्ष्मणा सोम यदभूदङ्गसन्धयः ।
पूर्वं विशीर्णा भवतस्तत्पूर्णमभवन्नहि ॥ ६० ॥
अधुना भवतो देहचूर्णं निःसारितं मया ।
शरीरात् सामृतज्योत्स्नमञ्जसा राजयक्ष्मणः ॥ ६१ ॥
तेषां प्रक्षालनविधौ लवशो यत्स्थितं जले ।
ज्योत्स्नायाश्च सुधायाश्च तेन हीनो भवान् यतः ॥ ६२ ॥
ततोऽङ्गसन्धयो राजस्तव सीदन्ति साम्प्रतम् ।
तस्योपायं विधास्यामि यथा नार्तिं लभेद्भवान् ॥ ६३ ॥
प्राजापत्यः पुरोडाशो हवनीयः पुरोऽध्वरे ।
ऐन्द्रस्ततोऽनु चाग्नेयः प्रदेयः सर्वतः क्रतौ ॥ ६४ ॥
ततो नु भवतो भागः पुरोडाशो मया कृतः ।
तेन भागेन भुक्तेन नित्यं यज्ञकृतेन हि ।
पूर्ववत् ते समुत्साहः श्याम वीर्यं भविष्यति ॥ ६५ ॥
ये[33] चामृतकणास्तोये क्षीरोदस्य स्थितास्तव ।
शरीरचूर्णं वा यत्ते[34] ज्योत्स्नाश्चापि ये लवाः ॥ ६६ ॥
तत् सर्वं भवतो ज्योत्स्नायोगादनुदिनं विधो ।
वृद्धिं यास्यति सततं क्षीरसागरगर्भगम्[35] ॥ ६७ ॥
स्वारोचिषेऽन्तरे प्राप्ते द्वितीये शकराशज ।
दुर्वासा भविता विप्रः प्रचण्डश्चण्ड[36]भानुवत् ॥ ६८ ॥
स देवेन्द्रस्याविनयाच्छापं दत्वा सुदारुणम् ।
करिष्यति त्रिभुवनं निःश्रीकं ससुरासुरम् ॥ ६९ ॥
श्रिया हीने ततो लोके भविता लोकविप्लवः ।
यथा तव क्षयात् सोम प्रवृत्तः सर्वविप्लवः ॥ ७० ॥

---

33 चामृतकणाः । 34 यावत्ते । 35 मध्य । 36 प्रचण्डचण्डभास्कर. ।

तन्मानुपप्रमाणेन तृतीये तु कृते युगे ।
भविष्यति स्थास्यति च यावद् युगचतुष्टयम ॥ ७१ ॥
ततश्चतुर्थे सम्प्राप्ते सह देवैः कृते युगे ।
क्षीरोद निर्मथिष्यामः शम्भुर्विष्णुरह तथा ॥ ७२ ॥
मन्थान मन्दर कृत्वा नेत्र कृत्वा तु वासुकीम[37] ।
यज्ञभागेषु लीनेषु देवान्नार्थं वय ततः ।
मथिष्यामः सम देवैः क्षीरोद सह दानवैः ॥ ७३ ॥
त्वच्छरीरामृतमिद यत्स्थित क्षीरसागरे ।
तत् प्रमथ्य ग्रहीष्यामो राशीभूत तथा क्षयम ॥ ७४ ॥
सर्वौषध्यन्तरे कृत्वा त्वच्छरीर तदा वयम ।
क्षेप्स्यामः सागरजले शरीरार्थं विधो तव ॥ ७५ ॥
निर्मथ्य सागर पश्चात् समुद्धार्य[38] यदामृतम् ।
तदा तव वपुस्तस्मिन् पूर्ववत् सम्भविष्यति ॥ ७६ ॥
ओजोवीर्याद्भुत कान्तमक्षयच सुधात्मकम ।
दृढागसन्धिक चारु भविष्यति वपुस्तव ॥ ७७ ॥

मार्कण्डेय उवाच

सुधाशुमेवमाभाष्य ब्रह्मा लोकपितामहः ।
विधोः क्षयाय मासार्धं वृद्धये यत्नवानभूत् । ७८ ॥
यथा दक्षेण गदित मासार्ध यातु चन्द्रमाः ।
क्षय वृद्धिं च मासार्ध यत्न तत्राकरोद्विधिः ॥ ७९ ॥
ततः षोडशधा चन्द्र सुरज्येष्ठो विभक्तवान ।
विभज्य च सुरान् सर्वान् समुवाचेदमुत्तमम ॥ ८० ॥
कलाः षोडश चन्द्रस्य तत्रैका शम्भुमूर्धनि ।
तिष्ठत्वद्यावधि परा क्षय यान्तु क्षय विना ॥ ८१ ॥

---

37 सर्पराज तथासुकम् 38 समुद्धार्यं ।

क्षयेण यदि रोगेण मासार्धं दक्षवाक्यतः ।
क्षयाय पीडयते चन्द्रो नोपशान्तिस्तदा भवेत् ॥ ८२
कित्वस्य या कला शम्भौ ज्योत्स्ना गच्छतु ता प्रति ।
चतुर्दशकलासस्थाः प्रतिमास सुरोत्तमाः ॥ ८३ ॥
चतुर्दशकलासस्थान्यमृतानि पिवन्तु वै ।
प्रतिपत्तिथिमारभ्य भवन्तस्ता चतुर्दशीम् ॥ ८४ ॥
तेजोभोगाः सूर्य्यविम्ब चतुर्दशतिथौ क्रमात् ।
प्रविशन्तु क्षय त्वेव कृष्णपक्षे विधोर्भवेत् ॥ ८५ ।
यातु शेषा कला दर्शे हरिनूपत्रे पलायिता ।
तिष्ठतु प्रथमे भागे तिथौ तस्या निशापते ॥ ८६ ।
द्वितीये दर्शभागे तु रोहिण्या यातु मन्दिरम् ।
तृतीये तु सरस्वत्या स्नात्वा समुत्थितो विधुः ॥ ८७
चतुर्थं वलसम्पूर्णस्तिथिभागे विभावसोः ।
मण्डल यातु चन्द्रोऽय सविम्बस्थघोटकः ॥ ८८ ॥
यावत् कालेन हि कला प्रथमा क्षयमाप्नुयात् ।
एवमेव कृष्णपक्षे तावन् सा प्रतिपद् भवेत् ॥ ८९ ॥
द्वितीयादौ कृष्णपक्षे वृद्धि-ह्रासस्तथाविधः ।
तिथीना वृद्धिहेतुश्च शुक्ले कृष्णे तथा भवेत् ॥ ९० ॥
ततः पुनः शुक्लपक्षे यावत् पूर्वकलोदिता ।
वृद्धिं नैति भवेत्तावत् प्रतिपत्तितिथिरादितः ॥ ९१ ॥
ततो द्वितीयभागस्य या ज्योत्स्ना हरमूर्धनि ।
स्थिता[३९] या वै कला यातु गता सापुनरेष्यति ।
युष्माभिस्तु भवेत् पेयममृत यद्दिने दिने ॥ ९२ ॥
तद्द्वितीयादितिथिभिः पूर्णान्ताभिः सदैव हि ।
स्वयमुत्पत्स्यते चन्द्रो ज्योत्स्नायोगात् सुरोत्तमाः ॥९३॥

---

३९ स्थितायां वै कलायां तु ।

यथा दिने दिने भागाः क्षय यान्ति तथा विधोः ।
वृद्धि गच्छन्त्यनुदिन शुक्लपक्षेऽन्वह सुराः ॥ ९४ ॥
तेजोभागः सूर्यविम्बात् पुनरेव समेष्यति ।
प्रयास्यति कृष्णपक्षे यथा भागक्रम तथा ॥ ९५ ॥
ज्योत्स्ना हरशिरश्चन्द्रात् प्रत्यह पुनरेष्यति ।
तेजोभागः सूर्यविम्बादमृत वर्षति[40] स्वयम् ॥ ९६ ॥
एव वृद्धिः शुक्लपक्षे सुधाशोः सम्भविष्यति ।
पक्षयोः शुक्लकृष्णत्व चन्द्रवृद्धिक्षयाद्भवेत् ॥ ९७ ॥
यावत् कालेन यो भागः क्षय वृद्धिंच यास्यति ।
तावत् कालमभिव्याप्य तिथिः स्थास्यति सा पुनः ॥ ९८ ॥

चिरेण वृद्धिर्यदि वा क्षयो वा
द्रुतेन[41] वृद्धिर्यदिवा क्षयो वा ।
द्रुतात्तिथीनान्तु सदा क्षयः स्या-
च्चिरातु वृद्धिस्तिथिषु प्रवेशे ॥ ९९ ॥

हव्य कव्यञ्च चन्द्रेण विना न सम्भविष्यति ।
तस्मात्तयोः प्रवृद्ध्यर्थं चन्द्र रक्षन्तु देवताः ॥ १०० ॥
आस्वादनीयः शुभ्रांशुः कलाशेषोऽनुमासतः ।
अभावास्यापरार्धे[42] तु पितृभी रोहिणीगृहे ॥ १०१ ॥
तस्यैवास्वादनात् कव्य वृद्धि यास्यति चान्वहम् ।
तेन कव्येन पितरस्तृप्ति यास्यान्ति वै पराम् ॥ १०२ ॥

मार्कण्डेय उवाच

ततः सुरगणाः सर्वे यथोक्त विधिना तथा ।
चक्रुर्लोकहितार्थाय चन्द्रस्य क्षय-वृद्धये ॥ १०३ ॥
महादेवोऽपि चन्द्रार्थं स्वरूप परमात्मनः ।
जग्राह देवैर्विधिना शिरसा क्षुधितो भृशम् ॥ १०४ ॥

---

40 वर्तते   41 श्रमेण ।   42 अमावस्यापराह्णे ।

यत्तेजः परम नित्यमजमव्ययमक्षयम् ।
तत्स्वरूपा चन्द्रकला शापतस्तु क्षय गता ॥ १०५ ।
प्रविशति यदा ज्योतिरानन्दमजर परम् ।
योगिनस्तु तदा तेषा चिन्तन लीनमेष्यति ॥ १०६ ॥
महादेवशिरःसस्थे लीने चित्ते सुधानिधौ ।
चन्द्रद्वारा भवेन्मुक्तिरित्येव वैदिकी श्रुति' ॥ १०७ ॥
एतज् ज्ञात्वा महादेवः क्षयवृद्ध्यविनाकृतम् ।
हिताय सर्वलोकाना जग्राह शिरसा विधुम् ॥ १०८ ॥
चन्द्रज्योत्स्नासमायोगादौषध्यो यान्ति वृद्धये ।
सर्वौषधिषु वृद्धासु प्रवर्तन्ते ततोऽध्वराः ॥ १०६ ॥
अध्वरेषु प्रवृत्तेषु स्वान् स्वान् भागास्तु देवता' ।
परिगृह्णन्ति पितरस्तथा कव्यानि भूरिशः ॥ ११० ॥
अमृत ब्रह्मणा सृष्ट यद् देवेभ्यः पुरातनम् ।
तेन तृप्यन्ति हीना ये हव्यभागेन देवताः ॥ १११ ॥
यज्ञेनाप्यायित तच्च ज्योत्स्नाभिर्वृद्धिमेति वै ।
यज्ञज्योत्स्ना विनाभूतं तच्च स्यात् क्षीणमन्यथा ॥ ११२ ॥
अतोऽमृतस्य यज्ञस्य चन्द्रमाः कारण स्वयम् ।
अतो दक्षस्य शापात्तु रक्षायै तच्चिकीर्षितम् ॥ ११३ ॥
अद्यापि कृष्णपक्षे तु सुधांशुः पीयते सुरैः ।
तेजः सूर्यं याति शम्भु चन्द्रार्धं ज्योत्स्निका तथा ॥११४॥
पुनश्च शुक्लपक्षे तु शेषोदेति कला ततः ।
ज्योत्स्नाद्वितीयो भागस्तु तेजोभागो द्वितीयकः ॥ ११५ ॥
अन्येऽप्युग्रशिरश्चन्द्रात् सूर्यबिम्बाद् यथाक्रमम् ।
कलाः षोडश चन्द्रस्य तत्रैका शम्भुशेखरे ॥ ११६ ॥
सितासितावुभौ पक्षौ शेषाणामुदयक्षयौ ।
इति वः सर्वमाख्यात विभक्तश्चन्द्रमा यथा ।
ब्रह्मणा पर्वतश्रेष्ठे यथा तच्चन्द्रभागतः ॥ ११७ ॥

यज्ञभागे स्थिते यस्माद्देवान्नमकरोद्विधुम् ।
कव्ये स्थितेऽपि पित्रन्न तिथिवृद्धि-क्षयो यथा ॥ ११८ ॥
इद पुण्यतमाख्यान यः शृणोति सकृन्नरः ।
राजयक्ष्मा तस्य कुले न कदाचिद् भविष्यति ॥ ११६ ॥
यक्ष्मणा परिभूतो यः शृणोति वचन विधेः ।।१२० ॥
इद स्वस्त्ययन पुण्य गुह्याद्गुह्यतम[43] शुभम् ।
यः शृणोत्येकचित्तः सन् स महापुण्यभाग्भवेत् ॥ १२१ ॥

इति श्रीकालिकापुराणे चन्द्रशाप मोक्षणे एकविंशोऽयाय ॥ २१ ॥

द्वाविंशोऽध्यायः

मार्कण्डेय उवाच

यत्र देवसभा भूता सानौ तस्य महागिरेः ।
तत्र जाता देवनदी सीताख्या वचनाद्विधेः ॥ १ ॥
स्नापयित्वा यदा चन्द्र सीतातोयैर्मनोहरैः ।
चन्द्र पपुर्ब्रह्मवाक्यात् सर्वे ते त्रिदिवौकसः ॥ २ ॥
तदा सीताजल चन्द्रस्नानयोगाच्च सामृतम् ।
भूत्वा निपतित तस्मिन् बृहल्लोहितसञ्ज्ञके ॥ ३ ॥
तद्विवृद्ध तदा तोय तस्मिन् सरसि नो ममौ[44] ।
तद्ददर्श स्वय ब्रह्मा विवृद्ध सामृत जलम् ॥ ४ ॥
तद्दर्शनाज्जलात् तस्मादुत्थिता कन्यकोत्तमा ।
चन्द्रभागेति तन्नाम विधिश्चक्रे स्वय ततः ॥ ५ ॥
भार्यार्थे सागरस्ता तु जग्राह ब्रह्मसन्मते ॥ ६ ॥
तयैवाधिष्ठित तोय गदाग्रेण निशापतिः ।
निर्भिद्य पश्चिमे पार्श्वे गिरिं त[45] समवाहयन् ॥ ७ ॥
तस्यामृतजल भित्त्वा बृहल्लोहितनामकम् ।
कासार सागर याता चन्द्रभागा नदी तु सा ॥ ८ ॥

43 गुह्यतरं परम् । 44 चन्द्रस्तम् । 45 तोय तु प्रवाह्यत् ।

सागरोऽपि तदा भार्या चन्द्रभागा महानदीम् ।
तेन तोयप्रवाहेण निनाय भवन स्वकम् ॥ ६ ॥
एव तस्मिन् समुत्पन्ना चन्द्रभागाह्वया नदी ।
चन्द्रभागे महाशैले गुणैर्गंगासमा सदा ॥ १० ॥
नद्यश्च पर्वताः सर्वे द्विरूपाश्च स्वभावतः ।
तोय नदीना रूपन्तु शरीरमपर तथा ॥ ११ ॥
स्थावरः पर्वतानातु रूप कायः तथापरः ।
शुक्तीनामथ कम्बूना यथैवान्तर्गता तनुः ॥ १२ ॥
बहिरस्ति स्वरूपन्तु सर्वदैव प्रवर्तते ।
एव जल स्थावरस्तु नदीपर्वतयोस्तदा ॥ १३ ॥
अन्तर्वसति कायस्तु सतत नोपपद्यते ॥ १४ ॥
आप्याय्यते स्थावरेण शरीर पर्वतस्य तु ।
तथा नदीना कायस्तु तोयेनाप्याय्यते सदा ॥ १५ ॥
नदीना कामरूपित्व पर्वताना तथैव च ।
जगत्स्थित्यै पुरा विष्णुः कल्पयामास यत्नतः ॥ १६ ॥
तोयहानौ नदीदुःख जायते सतत सुराः[46] ।
विशीर्णे स्थावरे दुःख जायते गिरिकायजम् ॥ १७ ॥
तस्मिन गिरौ चन्द्रभागे वृहल्लोहिततीरगाम् ।
सन्ध्या दृष्ट्वाथ पप्रच्छ वसिष्ठः सादर तदा ॥ १८ ॥

वसिष्ठ उवाच

किमर्थमागता भद्रे निर्जन तु महीधरम् ।
कस्य वा तनया गौरि किं वा तव चिकीर्षितम् ॥ १६ ॥
एतदिच्छाम्यह श्रोतु यदि गुह्य न ते भवेत् ।
वदन पूर्णचन्द्राभ निःश्रीक वा कथ तव ॥ २० ॥

46 द्विजा ।

एतच्छ्रुत्वा वचस्तस्य वसिष्ठस्य महात्मनः ।
दृष्ट्वा च तं महात्मानं ज्वलन्तमिव पावकम् ॥ २१ ॥
शरीरधृग्ब्रह्मचर्य-सदृशं तं जटाधरम् ।
सादरं प्रणिपत्याथ सन्ध्योवाच तपोधनम् ॥ २२ ॥

सन्ध्योवाच

यदर्थमागता शैलं सिद्धं तन्मे द्विजोत्तम ।
तव दर्शनमात्रेण तन्मे सेत्स्यति वा विभो ॥ २३ ॥
तपः कर्तुमहं ब्रह्मन्निर्जनं शैलमागता ।
ब्रह्मणोऽहं मनोजाता सन्ध्या नाम्नाच विश्रुता ॥ २४ ॥
नोपदेशमहं जाने तपसो मुनिसत्तम ।
यदि ते युज्यते गुह्यं मां त्वं समुपदेशय ॥
एतच्चिकीर्षितं गुह्यं नान्यत्किञ्चन विद्यते ॥ २५ ॥
अज्ञात्वा तपसो भावं तपोवनमुपाश्रिता[47] ।
चिन्तया परिशुष्येऽहं वेपते च मनः सदा ॥ २६ ॥

मार्कण्डेय उवाच

आकर्ण्य तस्या वचनं वसिष्ठो ब्रह्मणः सुतः ।
स्वयं स सर्वतत्त्वज्ञो नान्यत्किंचन पृष्टवान् ॥ २७ ॥
अथ तां नियतात्मानं तपसेऽतिधृतोद्यमाम् ।
वसिष्ठो मन्त्रयाञ्चक्रे गुरुवच्छिष्यवत्तदा ॥ २८ ॥

वसिष्ठ उवाच

परमं यो महत्तेजः परमं यो महत्तपः ।
परमो यः समाराध्यो[48] विष्णुर्मनसि धीयताम् ॥ २९ ॥
धर्मार्थकाममोक्षाणां य एकस्त्वादिकारणम् ।
तमेकं जगतामाद्यं भजस्व पुरुषोत्तमम् ॥ ३० ॥

---

47 स्थिता । 48 परमाराध्या ।

शखचक्रगदापद्मधर कमललोचनम् ।
शुद्धस्फटिकसकाश क्वचिन्नीलाम्बुदच्छविम् ॥ ३१ ॥
गरुडोपरि शुक्लाब्जे पद्मासनगत हरिम् ।
श्रीवत्सवक्षस शान्त वनमालाधर परम् ॥ ३२ ॥
केयूरकुण्डलधर किरीटमुकुटोज्वलम् ।
निराकार ज्ञानगम्य साकार देहधारिणम ॥ ३३ ॥
नित्यानन्द निरालम्ब सूर्यमण्डलमध्यगम् ।
मन्त्रेणानेन देवेश विष्णु भज शुभानने ॥ ३४ ॥
ओॅ नमो वासुदेवाय ओमित्यन्तेन सन्ततम् ।
तपस्यामारभेन्मौनी[49] तत्रैतान्नियमान् शृणु ॥ ३५ ॥
स्नान मौनेन कर्तव्य मौनेनैव तु पूजनम् ।
द्वयोः पर्णजलाहार प्रथम षष्ठकालयोः ।
तृतीये षष्ठकाले तु उपवास परो भवेत् ॥ ३६ ॥
एव तपः समाप्तौ तु षष्ठे काले क्रिया भवेत् ।
वृक्षवल्कलवासाश्च काले भूमिशयस्तथा ।
एव मौनी तपस्याख्या व्रतचर्या फलप्रदा ॥ ३७ ॥
एव तपः समुद्दिश्य काम चिन्तय माधवम् ।
स ते प्रसन्न इष्टार्थं न चिरादेव दास्यति ॥ ३८ ॥

मार्कण्डेय उवाच

उपदिश्य वसिष्ठोऽथ सन्ध्ययायै तपसः क्रियाम् ।
तामाभाष्य यथान्याय तत्रैवान्तर्दधे मुनिः ॥ ३९ ॥
सन्ध्यापि तपसो भाव ज्ञात्वा मोदमवाप्य च ।
तपः कर्तु समारेभे बृहल्लोहिततीरगा ॥ ४० ॥
यथोक्तन्तु वसिष्ठेन मन्त्र तपसि साधनम् ।
व्रतेन तेन गोविन्दं पूजयामास भक्तितः ॥ ४१ ॥

49 मौनीं तपस्यामारभ्य तां मे निगदत शृणु ।

एकान्तमनसस्तस्या कुर्वन्त्याः सुमहत्तपः ।
विष्णौ विन्यस्तमनसो गतमेक चतुर्युगम् ।। ४२ ।।
न कोऽपि विस्मय नाप तस्या दृष्ट्वा तपोऽद्भुतम् ।
न तादृशी तपश्चर्या भविष्यति च कस्यचित् ।। ४३ ।।
मानुषेणाथ मानेन गते त्वेकचतुर्युगे ।
अन्तर्बहिस्तथाकाशे दर्शयित्वा निज वपुः ।। ४४ ।।
प्रसन्नस्तेन रूपेण यद्रूप चिन्तित तया ।
पुरः प्रत्यक्षता यातस्तस्या विष्णुर्जगत्पतिः ।। ४५ ।।
अथ सा पुरतो दृष्ट्वा मनसा चिन्तित हरिम् ।
शखचक्रगदापद्मधारिण पद्मलोचनम् ।। ४६ ।।
केयूरकुण्डलधर किरीटमुकुटोज्ज्वलम् ।
तार्क्ष्यस्थं पुण्डरीकाक्ष नीलोत्पलदलच्छविम् ।। ४७ ।।
ससाध्वसमह वक्ष्ये कि कथ स्तौमि वा हरिम् ।
इति चिन्तापरा भूत्वा न्यमीलयत चक्षुषी ।। ४८ ।।
निमीलिताक्ष्यास्तस्यास्तु प्रविश्य हृदय हरिः ।
दिव्य ज्ञान[50] ददौ तस्यै वाच दिव्ये[51] च चक्षुषी ।।४९।।
दिव्य ज्ञान दिव्यचक्षुर्दिव्या वाचमवाप सा ।
प्रत्यक्ष वीक्ष्य गोविन्दं तुष्टाव जगता पतिम् ।। ५० ।।

सन्ध्योवाच

निराकार ज्ञानगम्य पर य-
न्नैव स्थूल नापि सूक्ष्म न चोच्चैः ।
अन्तश्चिन्त्य योगिभिर्यस्य रूप
तस्मै तुभ्य हरये मे नमोऽस्तु ।। ५१ ।।
शिव शान्त निर्मल निर्विकार
ज्ञानात्पर सुप्रकाश[52] विसारि ।

50 दिव्यगति । 51 दिव्येन चक्षषा । 52 स्वप्रकाश ।

रविप्रख्य ध्वान्तभागात् परस्ताद्
रूप यस्य त्वा नमामि प्रसन्नम ॥ ५२ ॥
एक शुद्ध दीप्यमान विनोद
चित्तानन्द सत्वज[53] पापहारि ।
नित्यानन्द सत्य [54]भूरिप्रसन्न
यस्य श्रीद रूपमस्मै नमोऽस्तु ॥ ५३ ॥
विद्याकारोद्भावनीय प्रभिन्न
सत्वच्छन्न ध्येयमात्मस्वरूपम ।
सार पार पावनाना पवित्र
तस्मै रूप यस्य चेय नमस्ते ॥ ५४ ॥
नित्यार्जव व्ययहीन गुणौघ-
रष्टागैर्यश्चिन्त्यते योगयुक्तै[55] ।
तत्त्व व्यापि प्राप्य यज्ज्ञानयोगे
पर याता योगिनस्त नमस्ते ॥ ५५ ॥
यत्साकार शुद्धरूप मनोज्ञ
गरुत्मस्थ नीलमेघप्रकाशम् ।
शख चक्र पद्मगदे दधान
तस्मै नमो योगयुक्ताय तुभ्यम ॥ ५६ ॥
गगन भूर्दिशश्चैव सलिल ज्योतिरेव च ।
वायुः कालश्च रूपाणि यस्य तस्मै[56] नमोऽस्तु ते ॥ ५७ ॥
प्रधानपुरुषौ यस्य कार्याङ्गत्वे निवतृस्यतः ।
तस्मादव्य[57]क्तरूपाय गोविन्दाय नमोऽस्तु ते ॥ ५८ ॥
यः स्वय यश्च[58] भूतानि यः स्वय तद्गुणः परः ।
यः स्वय जगदाधारस्तस्मै तुभ्य नमोनमः ॥ ५९ ॥

53 सहजश्चाविकारि । 54 नित्यभूरिप्रसन्न । 55 तत्तद्व्यापि ।
56 तुभ्य । 57 तस्मादच्युतरूपाय । 58 पञ्च ।

परः[59] पुराणः पुरुषः परमात्मा जगन्मयः ।
अक्षयो योऽव्ययो देवस्तस्मै तुभ्य नमो नमः ॥ ६० ॥
यो ब्रह्मा कुरुते सृष्टि यो विष्णुः कुरुते स्थितिम् ।
सहरिष्यति यो रुद्रस्तस्मै तुभ्य नमो नमः ॥ ६१ ॥
नमो नमः कारणकारणाय
दिव्यामृतज्ञानविभूतिदाय ।
समस्त[60]लोकान्तर-मोहदाय
प्रकाशरूपाय परात्पराय ॥ ६२ ॥
यस्य प्रपञ्चो जगदुच्यते महान्[61]
क्षितिर्दिशः सूर्य इन्दुर्मनोजवः ।
वह्निर्मुखान्नाभितश्चान्तरीक्ष
तस्मै तुभ्य हरये ते[62] नमोऽस्तु ॥ ६३ ॥
त्व परः परमात्मा च त्व विद्या विविधा हरे ।
शब्दब्रह्म परब्रह्म विचारणप रात्परः[63] ॥ ६४ ॥
यस्य नादिर्नमध्यश्च नान्तमस्ति जगत्पतेः ।
कथ स्तोष्यामि त देव वामनोगोचराद्बहिः ॥ ६५ ॥
यस्य ब्रह्मादयो देवा मुनयश्च तपोधनाः ।
न विवृण्वन्ति रूपाणि वर्णनीयः कथ स मे ॥ ६६ ॥
स्त्रिया मया ते कि ज्ञेया निर्गुणस्य गुणाः प्रभोः ।
नैव जानन्ति यद्रूप सेन्द्रा अपि सुरासुरा' ॥ ६७ ॥
नमस्तुभ्य जगन्नाथ नमस्तुभ्य तपोमय ।
प्रसीद भगवस्तुभ्य भूयोभूयो नमोनमः ॥ ६८ ॥

मार्कण्डेय उवाच

अथ तस्याः शरीरन्तु वल्कलाजिनसवृतम् ।
परिक्षीण जटाव्रातैः पवित्रैर्मूर्ध्नि राजितम ॥ ६९ ॥

---

59 यज्ञ । 63 नमोऽस्तु । 61 सदा । 62 मे । 63 विचारणपरंपरा ।

हिमाणी[64]तर्जिताम्भोजसदृशवदनं तथा ।
निरीक्ष्य कृपयाविष्टो हरिः प्रोवाच तामिदम् ॥ ७० ॥

श्रीभगवानुवाच

प्रीतोऽस्मि तपसा भद्रे भवत्याः परमेण वै ।
स्तवेन च शुभप्रज्ञे वरं वरय साम्प्रतम् ॥ ७१ ॥
येन ते विद्यते कार्यं वरेणास्ति मनोगतम् ।
तत् करिष्यामि भद्रन्ते प्रसन्नोऽहं तव व्रतैः ॥ ७२ ॥

सन्ध्योवाच

यदि देव प्रसन्नोऽसि तपसा मम साम्प्रतम् ।
वृतस्तदाय प्रथमो वरो मम विधीयताम् ॥ ७३ ॥
उत्पन्नमात्रा देवेश प्राणिनोऽस्मिन्नभस्तले ।
न भवन्तु क्रमेणैव सकामाः सम्भवन्तु वै ॥ ७४ ॥
पतिव्रताहं लोकेषु त्रिष्वपि प्रथिता यथा ।
भविष्यामि तथा नान्या[65] वर एको वृतो मम ॥ ७५ ॥
सकामा मम दृष्टिस्तु कुत्रचिन्नपतिष्यति ।
ऋते पतिं जगन्नाथ सोऽपि मेऽति सुहृत्तरः ॥ ७६ ॥
यो द्रक्ष्यति सकामो मां पुरुषस्तस्य पौरुषम् ।
नाशं गमिष्यति तदा स तु क्लीवो भविष्यति ॥ ७७ ॥

श्री भगवानुवाच

प्रथमः शैशवो भावः कौमाराख्यो द्वितीयकः ।
तृतीयो यौवनो भावश्चतुर्थो वार्द्धकस्तथा ॥ ७८ ॥
तृतीये त्वथ सम्प्राप्ते वयोभागे शरीरिणः ।
सकामाः स्युर्द्वितीयान्ते भविष्यन्ति क्वचित् क्वचित् ॥ ७९ ॥
तपसा तव मर्यादा जगति स्थापिता मया ।
उत्पन्नमात्रा न यथा सकामाः स्युः शरीरिणः ॥ ८० ॥

64 हिमाणीसर्जिताम्भोज । 65 चान्यो ।

त्वञ्च लोके सतीभाव तादृश समवाप्स्यसि[66] ।
त्रिषु लोकेषु नान्यस्या यादृश सम्भविष्यति । ८१ ॥
यः पश्यति सकामस्त्वा पाणिग्रहमृते तव ।
स सद्यः क्लीवता प्राप्य दुर्बलत्व गमिष्यति ॥ ८२ ॥
पतिस्तव महाभागस्तपोरूपसमन्वितः ।
सप्तकल्पान्तजीवी च भविष्यति सह त्वया ॥ ८३ ॥
इति ये ते वरा मत्तः प्रार्थितास्ते कृता मया ।
अन्यच्च ते वदिष्यामि पूर्वं यन्मनसि स्थितम् ॥ ८४ ॥
अग्नौ शरीरत्यागस्ते पूर्वमेव प्रतिश्रुतः ।
स च मेधातिथेर्यज्ञे मुनेर्द्वादशवार्षिके ॥ ८५ ॥
हुत[67]प्रज्वलिते वह्नौ न चिरान् क्रियता त्वया ।
एतच्छैलोपत्यकाया चन्द्रभागानदीतटे ॥ ८६ ॥
मेधातिथिर्महायज्ञ कुरुते तापसाश्रमे ॥ ८७ ॥
तत्र गत्वा स्वय छन्ना मुनिभिर्नोपलक्षिता ।
मत्प्रसादाद्वह्निजाता तस्य पुत्री भविष्यसि ॥ ८८ ॥
यस्त्वया वाञ्छनीयोऽस्ति स्वामी मनसि कश्चन ।
त निधाय निजस्वान्ते त्यज वह्नौ वपुः स्वकम् ॥ ८९ ॥
यदा त्व दारुणे सन्ध्ये तपश्चरसि पर्वते ।
यावच्चतुर्युगं तस्य व्यतीते तु कृते युगे ॥ ९० ॥
त्रेतायाः प्रथमे भागे जाता दक्षस्य कन्यकाः ।
स ददौ कन्यका सप्तविंशतिञ्च सुधाशवे ॥ ९१ ॥
तासा हेतोर्यदा शप्तश्चन्द्रो दक्षेण कोपिना ।
तदा भवत्या निकटे[68] सर्वे देवाः समागताः ॥ ९२ ॥
न दृष्टाश्च तया सन्ध्ये देवाश्च ब्रह्मणा सह ।
मयि विन्यस्तमनसा त्वञ्च दृष्टा न तैः पुनः ॥ ९३ ॥

---

66 समवाप्नुहि । 67 कृत । 68 निकटं ।

चन्द्रस्य शापमोक्षार्थं चन्द्रभागा नदी यथा ।
सृष्टा धात्रा तदैवात्र मेधातिथिरुपस्थितः ॥ ९४ ॥
तपसा तत्समो नास्ति न भूतो न भविष्यति ।
तेन यज्ञः समारब्धो ज्योतिष्टोमो महाविधिः ॥ ९५ ॥
तत्र प्रज्वलितो वह्निस्तस्मिंस्त्यज वपुः स्वकम् ॥ ९६ ॥
एतन्मया स्थापित ते कार्यार्थं भोस्तपस्विनि ।
तत् कुरुष्व महाभागे याहि यज्ञ महामुनेः ॥ ९७ ॥

मार्कण्डेय उवाच

नारायणः स्वथ सन्ध्या पस्पर्शाथाग्रपाणिना ।
ततः पुरोडाशमय तच्छरीरमभूत् क्षणात् ॥ ९८ ॥
महामुनेर्महायज्ञे तस्मिन् विश्वोपकारिणि ।
नाग्निः कव्यादता याति त्वेतदर्थं तथा कृतम् ॥ ९९ ॥
एव कृत्वा जगन्नाथस्तत्रैवान्तरधीयत ।
सन्ध्याप्यगच्छत्ततसत्रे यत्र मेधातिथिर्मुनिः ॥ १०० ॥
अथ विष्णोः प्रसादेन केनाप्यनुपलक्षिता ।
प्रविवेश यदा यज्ञ सन्ध्या मेधातिथेर्मुनेः ॥ १०१ ॥
वसिष्ठेन पुरा सा तु वर्णीभूत्वा तपस्विनी ।
उपदिष्टा तपश्चर्तु वचनात् परमेष्ठिनः ॥ १०२ ॥
तमेव कृत्वा मनसि तपश्चर्योपदेशकम् ।
पतित्वेन तदा सन्ध्या ब्राह्मण ब्रह्मचारिणम् ॥ १०३ ॥
समिद्धेऽग्नौ महायज्ञे मुनिभिर्नोपलक्षिता ।
तदा विष्णोः प्रसादेन साविवेश विधेः सुता ॥ १०४ ॥
तस्याः पुरोडाशमय शरीर तत्क्षणात्ततः ।
दग्ध पुरोडाशगन्ध व्यस्तारयदलक्षितम् ॥ १०५ ॥
वह्निस्तस्याः शरीरन्तु दग्ध्वा सूर्यस्य मण्डले ।
शुद्ध प्रवेशयामास विष्णोरेवाज्ञया पुनः ॥ १०६ ॥

सूर्यो द्विधा विभज्याथ तच्छरीर तदा रथे ।
स्वके सस्थापयामास प्रीतये पितृदेवयोः ॥ १०७ ॥
यदूर्ध्वभागस्तस्यास्तु शरीरस्य द्विजोत्तमाः ।
प्रातःसन्ध्याभवत् सा तु अहोरात्रादिमध्यगा ॥ १०८ ॥
यच्छेषभागस्तस्यास्तु अहोरात्रान्तमध्यगा ।
सा सायमभवत् सन्ध्या पितृप्रीतिप्रदा सदा ॥ १०६ ॥
सूर्योदयात्तु प्रथम यदा स्यादरुणोदयः ।
प्रातःसन्ध्या तदोदेति देवाना प्रीतिकारिणी ॥ ११० ॥
अस्तं गते ततः सूर्ये शोणपद्मनिभा सदा ।
उदेति सायसन्ध्यापि पितृणा मोदकारिणी ॥ १११ ॥
तस्याः प्राणास्तु मनसा विष्णुणा प्रभविष्णुणा ।
दिव्येन तु शरीरेण चक्रिरेऽथ शरीरिणः ॥ ११२ ॥
मुनेर्यज्ञावसाने तु सम्प्राप्ते मुनिना तु सा[69] ।
प्राप्ता पुत्री वह्निमध्ये तप्तकाञ्चन[70]सप्रभा ॥ ११३ ॥
ता जग्राह तदा पुत्रीं मुनिरामोदसयुतः ।
यज्ञार्थतोयैः सस्नाप्य निजक्रोडे कृपायुतः ॥ ११४ ॥
अरुन्धतीति तस्यास्तु नाम चक्रे महामुनिः ।
शिष्यैः परिवृतस्तत्र महामोदमवाप च ॥ ११५ ॥
न रुणद्धि यतो धर्मं सा केनापि च कारणात् ।
अतस्त्रिलोकविदित नाम सा प्राप सान्वयम् ॥ ११६ ॥

यज्ञ समाप्य स मुनिः कृतकृत्यभाव-
मासाद्य सम्मदयुतस्तनयाप्रलम्भात् ।
तस्मिन् निजाश्रमपदे सहशिष्यवर्गै-
स्तामेव सन्ततमसौ दयते महर्षिः ॥ ११७ ॥

इति श्रीकालिकापुराणे अरुन्धती-जन्मकथने द्वाविशोऽध्याय ॥ २२ ॥

---

69 मुनिसत्तमा• । 70 तप्तकाञ्चनसन्निभा ।

त्रयोविंशोऽध्यायः

मार्कण्डेय उवाच

अथ सा ववृधे देवी तस्मिन् मुनिवराश्रमे ।
चन्द्रभागानदीतीरे तापसारण्यसञ्ज्ञके ॥ १ ॥
यथा चन्द्रकला शुक्लपक्षे नित्य विवर्धते ।
यथा ज्योत्स्ना तथा सापि प्राप वृद्धिमरुन्धती ॥ २ ॥
संप्राप्ते पञ्चमे वर्षे चन्द्रभागा तदा गुणैः ।
तापसारण्यमपि सा पवित्रमकरोत् सती ॥ ३ ॥
तत्र तीर्थं महापुण्य मेधातिथिनिषेवितम् ।
क्रीडास्थानमरुन्धत्याः पूत बाल्योचित कृतम् ॥ ४ ॥
अद्यापि तापसारण्ये चन्द्रभागानदीजले ।
अरुन्धतीतीर्थतोये स्नात्वा याति हरि नरः ॥ ५ ॥
कार्तिक सकल मास चन्द्रभागानदीजले ।
स्नात्वा विष्णुगृह गत्वा ह्यन्ते मोक्षमवाप्नुयात् ॥ ६ ॥
माघे मासि पौर्णमास्याममाया वा तथैव च ।
चन्द्रभागाजले स्नान यस्तु कुर्यात् सकृत् सकृत् ॥ ७ ॥
तस्य वशे राजयक्ष्मा न कदाचिद् भविष्यति ।
देहान्ते चन्द्रभवन गत्वा याति हरेर्गृहम् ॥ ८ ॥
पुण्यक्षयादिहागत्य वेदज्ञो ब्राह्मणो भवेत् ।
चन्द्रभागाजल पीत्वा चन्द्रलोकमवाप्नुयात् ॥ ९ ॥
सकृत् स्नात्वा तु विधिवद्वाजिमेधायुतं[71] लभेत् ॥ १० ॥
चन्द्रभागाजले स्नात्वा क्रीडन्तीं बाल्यलीलया ।
पितुः समीपे तत्तीरे कदाचित्तामरुन्धतीम् ।
गच्छन्नाकाशमार्गेण ददर्श कमलासनः ॥ ११ ॥
अथावतीर्य भगवान् ब्रह्मा लोकपितामहः ।
अरुन्धत्यास्तदा कालमुपदेशे ददर्श ह ॥ १२ ॥

---

71 वाजिमेधफलं ।

अथोवाच तदा ब्रह्मा मुनिभिः परिपूजितः ।
मेधातिथिप्रभृतिभिरुचित त महामुनिम् ॥ १३ ॥

ब्रह्मोवाच

उपदेशस्य कालोऽयमरुन्धत्या महामुने ।
तस्मादेना सतीनान्तु स्त्रीणां त्व कुरु सन्निधिम ॥ १४ ॥
स्त्रिभिस्त्रियश्चोपदेश्याः काचिदन्यत्र[72] विद्यते ।
बहुलायाश्च सावित्र्याः पुत्री त्व स्थापयान्तिके ॥ १५ ॥
तयोः ससर्गमासाद्य पुत्री तव महामुने ।
महागुणैश्चर्ययुता मा चिरात् तु भविष्यति ॥ १६ ॥
मेधातिथिर्वचः श्रुत्वा ब्रह्मणः परमात्मनः ।
एवमेषेति प्रोवाच त तदा मुनिसत्तमः ॥ १७ ॥
ततो गते सुरश्रेष्ठे पुत्रीं मेधातिथिर्मुनिः ।
समादाय ययौ सूर्यभवन प्रति तत्क्षणात् ॥ १८ ॥
ददर्श तत्र सावित्रीं सूर्यमण्डलमध्यगाम् ।
पद्मासनगता देवीमक्षमालाधरा सिताम् ॥ १९ ॥
दृष्टा सा तेन मुनिना निःसृत्य रविमण्डलात् ।
बहुला सा गता तूर्णं[73] प्रस्थ मानसभूभृतः ॥ २० ॥
प्रत्यह तत्र सावित्री गायत्री बहुला तथा ।
सरस्वती च द्रुपदा पञ्चैता मानसाचले ॥ २१ ॥
धर्माख्यानैस्तथा साध्वीः कथाः कृत्वा परस्परम् ।
स्व स्व स्थान पुनर्याति लोकाना हितकाम्यया ॥२२॥
मेधातिथिस्तु ताः सर्वा दृष्ट्वैकत्र तपोधनः ।
मातॄः सर्वस्य लोकस्य प्रणनाम पृथक् पृथक् ॥२३॥
उवाच च स ताः सर्वा ऋषिः श्लक्ष्ण तपोधनः ।
ससाध्वसो विस्मितश्च तासामेकत्र दर्शनात् ॥२४॥

---

72 कदाचिदत्र । 73 बहुलायां गताया तु ।

मेधातिथिरुवाच

मातः सावित्रि बहुले मनुपुत्रीय महायशाः।[74]
कालोऽयमुपदेशोऽस्यास्तदर्थमहमागतः ॥२५॥
जगत्स्रष्ट्रा समादिष्टा प्रयातु[75] तव शिष्यताम्।
एषा तेन भवत्पार्श्वमानीता पुत्रिका मम ॥ २६॥
सौचारित्र्य[76] यथास्याः स्यात्तथैना बालिका मम।
युवा विनयत देव्यौ मातर्मातर्नमोऽस्तु वाम् ॥२७॥
अथोवाच तदा देवी सावित्री मुनिसत्तमम्।
स्मितपूर्वं बहुलया सहिता ताञ्च बालिकाम् ॥२८॥

ते ऊचतुः

ब्रह्मन् विष्णोः प्रसादेन सुचरित्रा भवत्सुता।
पूर्वमेव मुने भूता तदुद्देशेन कि पुनः ॥२९॥
कि त्वह ब्रह्मवाक्येण बहुला च महासती।
विनेष्यावस्तव सुता धीरा स्यान्नचिराद् यथा ॥३०॥
ब्रह्मणः पूर्वदुहिता भवतस्तु तपोबलान्।
तथा विष्णोः प्रसादेन सुता तेऽभूदरुन्धती ॥३१॥
कुल पुनाति भवतः सत्यसौ[77] वर्धयिष्यति।
लोकानामथ देवाना शिवमेषा करिष्यति ॥३२॥

मार्कण्डेय उवाच

अथ ताभिर्विसृष्टः स मुनिर्मेधातिथिः सुताम्।
आश्वास्यारुन्धतीं नत्वा ताः स्वस्थान जगाम ह ॥३३॥
गते तस्मिन् मुनिवरे सह ताभ्यामरुन्धती।
मातृभ्यामिव निर्भीता पालिता मोदमाप सा ॥३४॥

---

74 शुभाशया। 75 यात्वीर्यं। 76 सुचरित्रा यथा सा स्यात् तथैषा बालिका मम। 77 सद्यश।

कदाचित् सह सावित्र्या रात्रौ याति रवेर्गृहम् ।
तथा बहुलया याति शक्रगेह कदाचन ।३४॥
एव ताभ्या सम देवी विहरन्ती सुरालये ।
निनाय दिव्यमानेन सा सप्त परिवत्सरान् ॥३६॥
ताभ्या तथोपविष्टा सा स्त्रीधर्ममचिरात् सती ।
सर्वं ज्ञातवती भूता सावित्री-बहुलाधिका ॥३७॥
अथ तस्यास्तदा काले सम्प्राप्ते उचितेऽभवत् ।
शोभनो यौवनोद्भेदः पद्मिनीनाा रुचिर्यथा ॥३८॥
उद्भूतयौवना सा तु वसिष्ठ मानसाचले ।
विहरन्ती ददर्शैका चारुतेजस्विन मुनिम् ॥३९॥
दृष्ट्वा तमिच्छयाश्चक्रे कामभावेन सा सती ।
बालसूर्यप्रभ चारुरूप ब्रह्मश्रिया युतम् ॥४०॥
अथ सोऽपि महातेजा वसिष्ठो वरवर्णिनीम् ।
दृष्टैवोद्भूतमदनो वीक्षाञ्चक्रे त्वरुन्धतीम् ॥४१॥
तयोः परस्पर दृष्ट्वा ववृधे हृच्छयो महान् ।
अमर्याद द्विजश्रेष्ठा प्राकृते मदनो यथा ॥४२॥
अथ धैर्यं समालम्ब्य तथा मेधातिथेः सुता ।
आत्मानं धारयामास मनश्च मदनेरितम् ॥४३॥
वसिष्ठोऽपि महातेजा धैर्यमालम्ब्य चात्मनः ।
मनः सस्तम्भयामास मदनोन्मथित ततः ॥४४॥
अरुन्धती ततो देवी विहाय मुनिसन्निधिम् ।
जगाम यत्र सावित्री निन्दन्ती स्व मनोथरम् ॥४५।
बाध्यमानातिदुःखेन मानसेन महासती ।
सतीभावः परित्यक्तश्चिन्तयन्ती मयेति वै ॥४६॥
तस्या मनोजदुःखेन विवर्णमभवन्मुखम् ।
शरीर सकल म्लान गतिश्च वलिताभवत्[78] ॥४७॥

78 मतिश्चस्खलिताभवत् ।

इद विमम्रृपे साच गर्हयन्ती स्वक मन ।
मृणालतन्तुवत् सूक्ष्मा छिन्ना च तत्क्षणादपि ॥४८॥
स्थितिः सतीनामल्पेन चापल्येनैव नश्यति ।
इति स्त्रीधर्ममध्याप्य मामाह चरितव्रता ॥४६॥
सावित्री सारमेतद् हि सतीधर्मस्य चोद्धृतम् ।
तदद्य नाशित पुसि परकीये मनोरथम् ॥ ५०॥
वर्द्धयन्त्या तदा[79] कि मे परत्रेह भविष्यति ।
इति सञ्चिन्तयन्ती सा पुत्री मेधातिथेस्तदा ॥५१॥
दुःखार्ता बहुला देवी सावित्रीं चाससाद ह ।
तथाविधान्तु ता दृष्ट्वा विवर्णवदना सतीम् ॥५२॥
ध्यानचिन्तापरा भूत्वा[80] सावित्री विममर्ष ह ।
विमृष्य दिव्यज्ञानेन सर्वं ज्ञातवती सती ॥५३॥
वसिष्ठेन त्वरुन्धत्या यथाभूद्दर्शन तथा ।
यथा तयोः सम्प्रवृद्धो मनोजश्चातिदुःसहः ।५४॥
मुखवैवर्ण्यहेतुश्च[81] सावित्री दिव्यदर्शिनी ।
अथ मेधातिथेः पुत्र्या मूर्ध्नि हस्त निवेश्य सा ॥५५॥
इदमाह महादेवी सावित्री चरितव्रता ।
वत्से तव मुख कस्माद्भिन्नवर्णमभूदिदम् ॥५६॥
छिन्ननाल यथापद्म सूर्यांशुपरितापितम् ।
कथ शरीरमभवत् म्लान ते गुणवत्तमे ॥५७॥
यथा निशापतेर्बिम्ब तनुकृष्णाभ्रसवृतम् ।
अन्तर्मनश्च ते भद्रे सचिन्तमिव लक्ष्यते ।
तन्मे कथय ते गुह्य नैतच्चेद्दुःखकारणम ॥५८॥

मार्कण्डेय उवाच

अथ साधोमुखी भूत्वा किंचिन्नोवाच लज्जया ।
सावित्रीं मातर गुर्वी तथा पृष्टाप्यरुन्धती ॥५६॥

---

79 मया । 80 परामन्त॰ । 81 अथ वैचित्र्यहेतुश्च ।

यदा नोक्तवती किंचित्तदा मेधातिथेः सुता ।
स्वय प्रकाश्य सावित्री तामुवाच तपस्विनी ॥६०॥
वत्से योऽसौ त्वया दृष्टो मुनिर्भास्करसन्निभः ।
स वसिष्ठो ब्रह्मसुतस्तव स्वामी भविष्यति ।
तव तस्य च दाम्पत्य पुरा धात्रैव निर्मितम् ॥ ६१ ॥
अतस्तव सतीभावो न हीनस्तस्य दर्शनात् ।
यद्वा तवाभूद्धृदयं सकाम तस्य दर्शनात् ॥ ६२ ॥
न तद्दोषकर पुत्रि मनोदुःख ततस्त्यज ।
त्वया पर तपः कृत्वा पूर्वजन्मनि शोभने ॥ ६३ ॥
वृतः स एव दयितः सकामस्तेन स त्वयि ।
शृणु पूर्व त्वया वत्से वसिष्ठोऽय वृतः पतिः ।
यथा तपः कृत तत्र येन भावेन सन्ततम् ॥ ६४ ॥

मार्कण्डेय उवाच

इत्युक्त्वा सा च सावित्री यथा सन्ध्याभवत् पुरा ॥ ६५ ॥
कृत तपो यदर्थन्तु चन्द्रभागाह्वये गिरौ ।
बसिष्ठेन यथा पूर्वं वर्णिरूपेण वेधसः ॥ ६६ ॥
बचनादुपदिष्टा सा तपश्चर्या दुरत्ययाम् ।
यथा प्रसन्नो भगवान् विष्णुः प्रत्यक्षता गत. ॥ ६७ ॥
वर यथा ददौ तस्यै मर्यादा स्थापिता यथा ।
यथा वा वाञ्छितः स्वामी वसिष्ठः स तया मुनिः ॥ ६८ ॥
मेधातिथेर्यथा यज्ञे वह्नौ त्यक्त त्वया वपुः ।
यथा तत्तनया जाता तस्यैतद्विस्तरात् तदा ॥ ६९ ॥
सावित्री कथयामास क्रमाद् बहुलया सह ॥ ७० ॥
अथ तस्याः वचः श्रुत्वा यद्भूत् पूर्वजन्मनि ।
तच्छ्रुत्वा[82] वै तदा ज्ञात मम सर्वं मनोगतम् ॥ ७१ ॥

---

82 चैतया ।

इत्यतीवत्रपा प्राप्य सातीवाभूदधोमुखी ।
सावित्रीवचनाद्भूता पूर्वजन्मस्मरा च सा ॥ ७२ ॥
तथैवाधोमुखी भूत्वा यद्वृत्त पूर्वजन्मनि ।
तस्य सर्वस्य सस्मार दिव्यज्ञारुन्धती तदा ॥ ७३ ॥
पूर्व विष्णुप्रसादेन सा भूत्वा दिव्यदर्शिनी ।
अधुना बाल्यभावेन प्रच्छन्ना दिव्यदर्शना ॥ ७४ ॥
सावित्रीवचनाच्छ्रुत्वा वृत्तान्त पूर्वजन्मनः ।
प्रत्यक्षमिव तत् सर्वं पूर्वज्ञानमवाप सा ॥ ७५ ॥
अवाप्य पूर्वं ज्ञान तद्यद्दत विष्णुना पुरा ।
वसिष्ठोऽय वृतः स्वामी मया वै पूर्वजन्मनि ॥ ७६ ॥
इति ज्ञातवती देवी सामोदारुन्धती स्वयम् ।
वसिष्ठदर्शनद्भूते पूर्वं तस्यास्तु हृच्छये ॥ ७७ ॥
यथातकः समुत्पन्नः सतीत्वस्य निवारणे ।
तञ्च स्वय सा तत्याज तदा मेधातिथेः सुता ॥ ७८ ॥
त्यक्तचिन्ता ततस्तान्तु विज्ञायारुन्धतीं सतीम् ।
सावित्री सूर्यभवन तया सार्धं जगाम ह ॥ ७९ ॥
अरुन्धतीं निवेश्याथ सावित्री सूर्यमन्दिरे ।
जगाम ब्रह्मभवन सर्वज्ञा सा सतीवरा ॥ ८० ॥
अथ प्रणम्य ब्रह्माण पृष्टा तेनैव तत्क्षणात् ।
इद जगाद सावित्री ब्रह्माणममितौजसम् ॥ ८१ ॥
भगवन् जगता नाथ वसिष्ठ भवतः सुतम् ।
मानसस्य गिरेः सानौ ददर्शारुन्धती सती ॥ ८२ ॥
तयोर्दर्शनमात्रेण ववृधे हृच्छयो महान् ।
परस्पर तौ स्पृहयाञ्चक्रतुश्च प्रजापते ॥ ८३ ॥
ततो धैर्यात्तु सस्तभ्य मनोज तौ सुदुःखितौ ।
विमनस्कौ गतौ स्थान लज्जितौ तौ स्वक स्वकम् ॥ ८४ ॥

एवम्प्रवृत्ते यद्‌योग्य तदा त्वेतद्विधीयताम् ।
आयत्याञ्च सुरश्रेष्ठ लोकाना हितकाम्यया ॥ ८५ ॥
इति श्रुत्वा वचस्तस्या ब्रह्मा सर्वजगद्‌गुरुः ।
ददर्श दिव्यज्ञानेन प्रवृत्ति भाविकर्मणः ॥ ८६ ॥
इदञ्च स्वागत प्रोचे तदा लोकपितामहः ।
तयोर्दाम्पत्यभावस्य कालोऽय समुपस्थितः ॥ ८७ ॥
अतो लोकहितार्थाय यास्येऽह तत्प्रवृत्तये ।
इति निश्चत्य मनसा सावित्रीसहितो विधिः ।
जगाम मानसप्रस्थ यत्राभूद्‌दर्शन तयोः ॥ ८८ ॥
पितामहे तत्र याते शर्वः सुरगणैर्युतः ।
नन्दिभृ गिप्रभृतिभिः समायातो वृषध्वजः ॥ ८९ ॥
भगवान् वासुदेवोऽपि ब्रह्मणा परिचिन्तितः ।
भक्त्या सोऽपि जगन्नाथः शखचक्रगदाधरः ।
स्थितौ ब्रह्महरौ यत्र तत्रैव स्वयमागतः ॥ ९० ॥
अथ ते जगता नाथा ब्रह्मविष्णुमहेश्वराः ।
नारद प्रेपयामासुर्द्‌त मेधातिथि प्रति ॥ ९१ ॥
याहि द्रुत नारद त्व चन्द्रभागाह्वय गिरिम् ।
मुनिस्तस्योपत्यकायामास्ते मेधातिथिः पर ॥ ९२ ॥
तमानय यथाकाममस्माक[83] वचनात् स्वयम् ।
मेधातिथिं समादाय भवानागच्छतु द्रुतम् ॥ ९३ ॥
ब्रह्मादीना वचः श्रुत्वा नारदोऽपि द्रुत ययौ ।
मेधातिथि समानेतु महाकार्यस्य सिद्धये ॥ ९४ ॥
मेधातिथिं समाभाष्य देवाना वचनैस्ततः ।
मेधातिथिं समादाय ययौ मानसपर्वतम् ॥ ९५ ॥
सेन्द्रा देवगणाः सर्वं मुनयश्च तपोधनाः ।
साध्या विद्याधरा यक्षा गन्धर्वाश्च समागताः ॥ ९६ ॥

83 यथाकाल ।

देवाश्च सर्वे दैत्यश्च ये देवानुचरास्तथा ।
ते सर्वे मानसप्रस्थ याताश्चान्ये च जन्तवः ।। ९७ ॥
अथ भूते समाजे तु देवाना कमलासनः ।
मेधातिथि मुनि वाक्यमिदमाहातिदेशयन् ॥ ९८ ॥

ब्रह्मोवाच

मेधातिथे वसिष्ठाय पुत्रीं ते चरितव्रताम् ।
देहि ब्राह्मेण विधिना समाजे त्रिदिवौकसाम् ॥९९॥
बधूवरत्वमनयोः पूर्वं सृष्ट मयैव हि ।
हरिणा चाप्यनुज्ञात कर्म चैतत् समञ्जसम् ॥१००॥
एव कृते तव कुले भविष्यति महद्यशः ।
हित च सर्वभूताना देहि त्वा मा चिर कृथाः ॥१०१॥
ततो ब्रह्मवचः श्रुत्वा ह्यतिप्रमोदितो मुनिः ।
एवमस्त्विति चोवाच नत्वा तान् सुरपुगवान् ॥१०२॥
एषा तु वचनात् पुत्रीमादायारुन्धतीं मुनिः ।
ध्यानस्थस्य वसिष्ठस्य देवै सह जगाम ह ॥१०३॥
गत्वा वसिष्ठनिकटं देवैः परिवृतो मुनिः ।
ब्राह्मश्रिया दीप्यमान ज्वलन्तमिव पावकम् ॥१०४॥
धर्मार्थकाममोक्षेषु धृतबुद्धि पृथक् पृथक् ।
ददर्श मुनिमासीनं मानसाचलकन्दरे ॥ १०५ ॥
वसिष्ठमोजस्विवर बालसूर्यमिवोदितम् ।
अथ पुत्रीमग्रगता कृत्वा मेधातिथिर्मुनिः ।
वसिष्ठ नियतात्मानमुवाचारुन्धतीपिता ॥ १०६ ॥

ऋषिरुवाच

भगवन् ब्रह्मणः पुत्र पुत्रीं मे चरितव्रताम् ।
दत्ता प्रतिगृह्णाणैनां[84] मया ब्राह्मेण धर्मतः । १०७ ॥

---

84 प्रतिगृह्णाणेमां

यत्र यत्राश्रमे ब्रह्मन् स्वेच्छया निवसिष्यसि ।
त्वद्भक्त्येषा भवित्री च च्छायेवानुगता तव ॥ १०८ ॥
तत्र तत्रैव मे पुत्री समानव्रतधारिणी ।[85]
पतिव्रता वरारोहा शुश्रूषा ते करिष्यति ।। १०६ ॥

मार्कण्डेय उवाच

इति श्रुत्वा वसिष्ठस्तु मुनेर्मेधातिथेर्वचः ।
दृष्ट्वा समागतान् देवान् ब्रह्मविष्णुशिवादिकान् ॥ ११० ॥
अवश्यमेतद्भावीति निश्चित्य दिव्यचक्षुषा ।
ब्रह्मणः सम्मते पुत्रीं तदा मेधातिथेर्मुनेः ।
वसिष्ठः प्रतिजग्राह वाढमित्युक्तवाश्च ह ॥ १११ ॥
गृहीतपाणिः सा देवी वसिष्ठेन महात्मना ।
पत्युः पादयुगे चक्षुर्युग न्यस्तवती सती । ११२ ॥
ततो ब्रह्मा च विष्णुश्च रुद्रश्चान्ये तथामराः ।
विवाहविधिना तौ तु मोदयाञ्चक्रुरुत्सवै ॥ ११३ ॥
सावित्री प्रमुखा देव्यो देवाश्चेन्द्रादयस्तथा ।
दक्षाद्याकश्यपाद्यास्तु मुनयोऽतितपोधनाः ॥ ११४ ॥
उन्मुच्य ब्रह्मवचनाद्वल्कलश्चाजिन जटा ।
मन्दाकिनीजलेनाशु स्नापयित्वा सुत विधेः ॥ ११५ ॥
जाम्बुनदैस्तथा दिव्यैर्भूषणैश्च मनोहरै. ।
वसिष्ठ भूषयाचक्रुस्तथैवारुन्धती सतीम् ॥ ११६ ॥
भूषयित्वाथ तौ तत्र समाप्य मुनिभिर्विधिम् ।
विवाहावभृथचक्रुस्तयोर्विधि-हरीश्वराः ॥ ११७ ॥
निधाय सर्वतीर्थाना तोय जाम्बुनदे घटे ।
आशीर्वादकरैर्मन्त्रैर्गायत्र्या द्रुपदादिभिः ॥ ११८ ॥

---

85 व्रतचारिणी ।

स्वय तौ स्नापयाञ्चक्रुर्ब्रह्माविष्णुमहेश्वराः ।
ततो महर्षयश्चान्ये तथा देवर्षयश्च ये ॥ ११६ ॥
ते सर्वे ऋग्यजुःसामवेदभागैर्महास्वरैः ।
गगादि सरिता तोयैश्चक्रुः शान्ति तयोर्मुहुः ॥ १२० ॥
भुवनत्रयसञ्चारि विमान सूर्यवर्चसम् ।
अव्याहतगति ब्रह्मा सतोयञ्च कमण्डलुम् ॥ १२१ ॥
ताभ्या दाय ददौ विष्णुर्दुष्प्रापं स्थानमुत्तमम् ।
यदूर्द्धं सर्वदेवाना मरीच्यादे समीपत ॥ १२२ ॥
सप्तकल्पान्तजीवित्व रुद्रः प्रादात्तयोर्वरम् ।
अदितिः कुण्डलयुग ब्रह्मणा निर्मित स्वकम् ।
ददौ स्वकर्णादाकृष्य पुत्र्यै मेधातिथेस्तदा ॥ १२३ ॥
पतिव्रतात्व सावित्री बहुला वहुपुत्रताम् ।
देवेन्द्रो वहुरत्नागि धनेशेन सम ददौ ॥ १२४ ॥
एव देवाश्च मुनयो देव्यश्चान्ये च ये स्थिताः ।
ददुस्तत्र यथायोग्य दाय ताभ्या पृथक् पृथक् ॥ १२५ ॥
एव विवाह्य विधिवत् सौवर्णे मानसाचले ।
अरुन्धतीं वसिष्ठस्तु मोदमाप तया सह ॥ १२६ ॥
तत्र यत् पतित तोय मानसाचलकन्दरे ।
विवाहावभृथार्थाय शान्त्यै च सुराहृतम् ॥ १२७ ॥
ब्रह्मविष्णुमहादेवपाणिभिः समुदीरितम् ।
तत्तोय सप्तधा भूत्वा पतित मानसाचलात् ॥ १२८ ॥
हिमाद्रेः कन्दरे सानौ सरस्याञ्च पृथक् पृथक् ।
तत्तोय पतित शिप्रे देवभोग्ये सरोवरे ॥ १२६ ॥
तेन शिप्रानदीजाता विष्णुना प्रेरिता क्षितौ ।
महाकौषी प्रपाते तु यद्वारि पतितं तु वै[86] ॥ १३० ॥

---

86 तै०।

कौषिकी नाम सा जाता विश्वामित्रावतारिता ।
उमा क्षेत्रे यत् पतित तोय तेन महानदी ॥ १३१ ॥
कावेरी नाम सा जाता महा[87]कालसरस. सृता ।
महाकाले सर'श्रेष्ठे पतित तज्जल गिरेः ॥ १३२ ॥
हिमाद्रे' पार्श्वभागे तु दक्षिणे शभुसन्निधौ ।
गोमती नाम तैर्जाता नदी गोमदुदीरिता ॥ १३३ ॥
मैनाको नाम य' पुत्रः शैलराजस्य तत्समः ।
तस्मिन् सानौ समुत्पन्नो मेनकोदरतः पुरा ॥ १३४ ॥
यत्तत्र पतित तोय तेन जाता महानदी ।
देविकाख्या महादेवप्रेरिता सागर प्रति ॥ १३५ ॥
यत्तोय सगत दर्या हसावतारसन्निधौ ।
तेनाभूत् सरयूर्नाम्ना नदी पुण्यतमा स्मृता ॥ १३६ ॥
यान्यम्भासि महापार्श्वे[87a] खाण्डवारण्यसन्निधौ ।
हिमवत्कन्दरे याम्ये इराया ह्रदमध्यतः ॥ १३७ ॥
इरावती नाम नदी तैर्जाता च सरिद्वरा ।
एताः सर्वाः स्नानपानसेवनैर्जाह्नवी यथा ॥ १३८ ॥
फल ददति मर्त्याना दक्षिणोदधिगाः सदा ।
धर्मार्थकाममोक्षाणा वीजभूताः सनातनाः ॥ १३९ ॥
महानद्यस्तु सप्तैताः सर्वदा देवभोगदाः ।
एव नद्यः सप्तजाताः सदापुण्यतमोदकाः ॥ १४० ॥
अरुन्धत्या वसिष्ठस्य विवाहे देवसन्निधौ ॥ १४१ ॥
एव विवाह्य स तदा वसिष्ठस्तामरुन्धतीम् ॥
देवैर्दत्त तदा स्थान विमानेन जगाम ह ॥ १४२ ॥
ब्रह्म-विष्णु-महेशाना वचना·मुनिसत्तमः ॥ १४३ ॥
हिताय सर्वजगता त्रिपु लोकुषु सर्वदा ।
यस्मिन् यस्मिन् युगे यादृक[88] स्त्रीणा भवति तादृशम् ।१४४।

87 कावेरसरस स्मृता । 87a महातोयखाण्डव । 88 नणा ।

वेश भाव शरीर च कृत्वा धर्मे नियोजनम् ।
विचरत्येष लोकाल्लीनप्रमत्त प्रस नत्रीः ॥ १४५ ॥
एव पुरा वसिष्ठेन परिणीतात्वरुन्धती ।
सा हितार्थाय जगता देवाना वचनात् पुरा ॥ १४६ ॥
य इद शृणुयान्नित्यमाख्यान धर्मसाधनम् ।
सर्वकल्याणसयुक्त चिरायुर्वित्तवान् भवेत् ॥ १४७ ॥
या स्त्री शृणोति सततमरुन्धत्या' कथा[४५]मिमाम् ।
पतिव्रता सा भूत्वेह परत्र स्वर्गमाप्नुयात् ॥ १४८ ॥
इद पर स्वस्त्ययनमिद धर्मप्रद परम् ।
आख्यान सर्वदा कीर्तिर्यश'पुण्यविवर्धनम् ॥ १४९ ॥
विवाहे पुसि यात्राया यः श्राद्धे श्रावयेत्तथा ।
स्थैर्यं पुसवन सिद्धिः पितृप्रीतिश्चजायते ॥ १५० ॥
इति वः कथित सर्वं वसिष्ठस्य महात्मनः ।
अरुन्धती यथाभूता भार्या वापि पतिव्रता ॥ १५१ ॥
यस्य वा तनया जाता यथोत्पन्ना च यत्र च ।
यथा ब्रह्महरीशाना वचनात् स वृतः पतिः ॥ १५२ ॥
एतत् वः सर्वमाख्यात गुह्याद्गुह्यतर परम् ।
पुण्यद पापहरणमायुरारोग्यवर्धनम् ॥ १५३ ॥

इति विपुलवृषौधक्षेमकारीतिहास
सदसि सकृदपीह श्रावयेद्यो द्विजानाम् ।
स भवति कलुषौघैर्हीनदेहः समेतो
मुनिवरसहचर्या प्रेत्य गीर्वाण एव ॥ १५४ ॥

इति श्री कालिकापुराणे वसिष्ठारुन्धतीविवाहे त्रयोविंशोऽध्याय. ॥ २३ ॥

---

४५ कथां शुभां ।

चतुर्विंशोऽध्यायः

मार्कण्डेय उवाच

ततो[10] हिमवतः प्रस्थे गिरेः शिप्रसर[11]स्तीरे ।
उपविष्टो महादेवस्तनूसरोऽपश्यदन्तिके ॥ १ ॥
पुनः पुनः प्रेष्यमाणो ब्रह्मणा हरिगा च सः ।
ध्यान कर्तु तत्र मनः स्थिर कृत्वा दृढात्मवान् ॥ २ ॥
आत्मानमात्मना द्रष्टुमात्मन्येव विशेषतः ।
परम यत्नमकरोद्ध्यानेन स्मरशासनः ॥ ३ ॥
ध्याने प्रविष्टचित्तन्तु त दृष्ट्वा द्रुहिणादयः ।
हरे प्रविष्टा मायाख्या तुष्टुवुर्यतमानसा ॥ ४ ॥
मायया मोहितो भर्गः सतीशोकाकुलो भृशम् ।
विलपत्येव ता तस्मिन् मोहहेतु जगत्प्रसूम् ॥ ५ ॥
स्तुत्वा शम्भुशरीरात्तु निःसार्यैना निराकुलाम् ।
शम्भुचित्त करिष्यामो ध्यानासक्त निरञ्जनम् ॥ ६ ॥
यावत् सती पुनर्देह गृहीत्वा हरभामिनी ।
भवित्री तावदेवैष विशोको ध्यातु निष्कलम् ॥ ७ ॥
इति सचिन्त्य मनसा ब्रह्माद्यास्त्रिदिवौकसः ।
योगनिद्रा महामाया स्तोतुमेव समारभन् ॥ ८ ॥

देवा ऊचुः

श्रीशक्ति पावनीं तान्नु[12] पुष्टि परमनिष्कलाम् ।
वय[13] स्तुमो महाभक्त्या महदव्यक्तरूपिणीम् ॥ ९ ॥
शिवा शिवकरीं[14] शुद्रा स्थूला सूक्ष्मा परावराम् ।
अन्तर्विद्यामविद्याख्या प्रीतिमेकाग्रयोगिणीम ॥ १० ॥
त्व मेधा त्व धृतिस्त्व ह्रीस्त्वमेका सर्वगोचरा ।
त्वं दीधितिः सूर्यगता सुप्रपचप्रकाशिनी ॥ ११ ॥

---

10 मघवत । 11 स्तटे । 12 शांति । 13 ध्यामो महाभागां । 14 शुक्लां ।

या तु ब्रह्माण्डसस्थान जगद्बीजेषु या जगत्।
आप्यायति ब्रह्मादीस्तम्बान्तान् या त्वमापगा ॥ १२ ॥
य एक सर्वजगता प्राणभूत सदागति ।
देवानाञ्च य आधार. स[95] नभस्त्वास्तनाशक ॥ १३ ॥
एत्र[96] त्रिसारि यत्तेज सर्वत्रैव समिध्यते।
तत्ते रूप जगद्बीज बहुधा यच्च दृश्यते ॥ १४ ॥
या ब्रह्मलोकपातालसान्तरालगता सदा ।
सा त्व वियन्मध्यबहिर्ब्रह्माण्डस्य च सर्वत ॥ १५ ॥
अचलाचलचक्रेण यन्त्रिता या प्रपञ्चस् ।
जगद्धात्री लोकमाता सा च त्व माधवी क्षितिः ॥ १६ ॥
त्व बुद्धिस्त्व तद्विषया त्व माता च्छन्दसा गतिः ।
गायत्री त्व वेदमाता त्व सावित्री सरस्वती ॥ १७ ॥
त्व[97] वार्ता सर्वजगता त्व त्रयी कामरूपिणी ।
त्व हि निद्रास्वरूपेण प्राणिनो निर्जरादयः ।
ये स्वर्गाद्योकसः सर्वान् सुखयन्ती प्रमोहसि ॥ १८ ॥
त्व लक्ष्मीः पुण्यकर्त्रीणा पापिना त्व हि यातना ।
तथा नीतिभृता श्रीश्च सुखदानैशिकी धृतिः ॥ १९ ॥
त्व शान्तिः सर्वजगता त्व कान्तिश्चन्द्रगोचरा ।
त्वं धात्री सर्वभूताना लक्ष्मीस्त्व विष्णुमोहिनी ॥ २० ॥
त्वं तत्त्वरूपा भूताना पचानामपि सारकृत्।
त्व त्रिलोकी महामाया त्व नीतिर्मोहकारिणी ॥ २१ ॥
ससारचक्रेष्वारोप्य सर्वभूत महेश्वरः ।
भ्रामयन्नस्ति च यथा सा त्व माया महेश्वरि ॥ २२ ॥
जयन्ती जययुक्ताना ह्रीर्विद्या नीतिरुत्तमा ।
गीतिस्त्व सामवेदस्य ग्रन्थिस्त्व यजुषा[98] हुतिः ॥ २३ ॥

95 नभस्वान् विभावसु. । 96 एकं । 97 माता । 98 कृतिः ।

समस्तगीर्वाणगणस्य शक्ति-
स्तमोमयी सत्त्वगुणैक दृश्या ।
रजः प्रपचानुभवैककारिणी
या न स्तुता भव्यकरीह सास्तु ॥ २४ ॥
ससारसागरकरालतरगदुःख-
निस्तारकारितरणिश्चितिरीतिहीना ।
याष्टागरूपपरपावनकेलिगीत-
[११] विक्षेपकारिणी गिरौ प्रणनाम ता वै ॥ २५ ॥
नासाक्षिवक्त्रभुजवक्षसि मानसे च
धृत्वा सुखानि विदधाति सदैव जन्तोः ।
निद्रेति यातिसुभगा जगतीभवाना
सा नः प्रसीदतु धृतिस्मृतिवृत्तिरूपा ॥ २६ ॥
सृष्टिस्थित्यन्तरूपा या सृष्टिस्थित्यन्तकारिणी ।
सृष्टिस्थित्यन्तशक्तिर्या सा माया नः प्रसीदतु ॥ २७ ॥

मार्कण्डेय उवाच

योगनिद्रा महामाया सस्तुतेय तदा सुरैः ।
हरस्य हृदयात् क्षिप्र निःससार तदाञ्जसा ॥ २८ ॥
विनिःसृताया तु तस्या विवेश मधुसूदनः ।
शम्भोरन्तः स्वय तस्य शान्त्यर्थं विश्वरूपधृक् ॥ २९ ॥
प्रविश्य हृदय तस्य कल्पे कल्पे यथाभवन् ।
सृष्टिः स्थितिस्तथैवान्तस्तथादर्शयदच्युतः ॥ ३० ॥
यथा सती तस्य जाया भूता सा या च यत्सुता ।
तत् सर्वं दर्शयामास मुक्तदेहा च सा यथा ॥ ३१ ॥
बहिर्व्यक्त तु निःसार प्रपंच रजस बहु ।
दर्शयित्वा पर ज्योतिर्गतचित्त तदाकरोत् ॥ ३२ ॥

---

११ विक्षेपवेगिनी ।

ततो हरोऽपि तान् सर्वान् प्रपञ्चान् वीक्ष्य चासकृत् ।
निःसाराश्च तदा मत्वा सारे चित्त न्यवेशयत् ॥ ३३ ॥
ब्रह्मादीना तदा माया देवाना तैः परिष्टुता ।
प्रतिश्रुत्य च कर्तव्य तत्रैवान्तर्दधे द्रुतम् ॥ ३४ ॥
भगवानपि वैकुण्ठः शम्भोश्चित्त पदे पदे ।
सयम्य निःसृतः कायाद्राजेव रविमण्डलात् ॥ ३५ ॥
कृतकृत्यास्तदा देवा ब्रह्मनारायणादयः ।
स्व स्व स्थान ययुः प्रीतियुतास्त्यक्त्वा हर गिरौ ॥ ३६ ॥
ध्यानासक्त महादेव प्रणम्येन्द्रादयः सुराः ।
विज्ञाप्य मौनिन देव जग्मुः स्थान स्वक स्वकम् ॥ ३७ ॥
यातेषु तेषु देवेषु कपर्दी वृषवाहणः ।
सहस्र दिव्यमानेन दध्यौ ज्योतिः पर समाः ॥ ३८ ॥

ऋषय ऊचुः

कथ मधुरिपुः शम्भोः प्रविश्य हृदयेऽञ्जसा ।
कल्पे कल्पे स्थिति सृष्टि सयमञ्चाप्यदर्शयत् ॥ ३९ ॥
यथा जगत्प्रपचाय रजसा जगतीं गताः ।
निःसारता कथ तेषा दर्शिता कैटभारिणा ॥ ४० ॥
किन्तु सारतर गुह्य पर ज्योतिः सनातनम् ।
दर्शित तेन तत् सत्यमाचक्ष्व द्विजसत्तम ॥ ४१ ॥
श्रोतुमिच्छाम इति ते मुनीन्द्राद्भुतमुत्तमम् ।
विस्तरादिदमाख्याहि धर्म निःश्रेयस परम् ॥ ४२ ॥

मार्कण्डेय उवाच

आदिसर्गमह वक्ष्ये वाराह द्विजसत्तमाः ।
कल्पे कल्पे यथा सृष्टिर्वाराहे यादृशी भवेत् ॥ ४३ ॥
आदिसृष्टि दर्शयित्वा प्रतिसर्ग तथा हरिः ।
शम्भवे दर्शयामास प्रलयादीन् निबोधत ॥ ४४ ॥

प्रलय प्रथम वक्ष्ये सर्गमादि ततः परम् ।
प्रतिसर्ग ततो विप्रा वाराह् विनिबोधत ॥ ४५ ॥
निमेपो नाम कालाशो नेत्रोन्मेषविलक्षितः ।
तैरष्टादशभिः काष्ठा काष्ठाना त्रिशता कला ॥ ४६ ॥
कलाभिस्तावतीभिस्तु क्षणाख्य परिकीतितः ।
क्षणेर्द्वादशभिः प्रोक्तो मुहूर्तस्तैस्तु त्रिशता ॥ ४७ ॥
मानुषः स्यादहोरात्रः पक्षस्ते दश पञ्च च ।
पक्षाभ्या मानुषो समाः पितृणा तदहर्निशम् ॥ ४८ ॥
मासैर्द्वादशभिर्वर्षो देवाना तदहर्निशम् ।
कृष्णपक्षः पितृणा तु कर्मार्थं दिवसो मतः ॥ ४९ ॥
स्वप्नार्थं शुक्लपक्षस्तु रजनी परिकीर्तिता ।
देवाना तु दिन प्रोक्त पण्मासा उत्तरायणम् ॥ ५० ॥
रात्रिः स्वप्नाय देवाना षण्मासा दक्षिणायनम् ।
द्वाभ्या द्वाभ्यान्तु मासाभ्यामर्कजाभ्यामृतुः स्मृतः ॥ ५१ ।
ऋतुभिश्चायन प्रोक्त त्रिभिस्तन्मानुप मतम् ।
ऋतुभिर्वत्सरः षड्भिस्ताश्च शृणु पृथक् पृथक् ॥ ५२ ॥
चैत्रादि-मासयुगलैः सञ्ज्ञाभेदाद् द्विजोत्तमाः ।
वसन्तश्चैत्रवैशाखौ ग्रीष्मो ज्येष्ठः शुचिस्तथा ॥ ५३ ॥
प्रावृट् नभोनभस्यौ तु शरत् स्यादिष-कार्तिके ।
सहः पौषौ च हेमन्तः शिशिरो माधफाल्गुनौ ॥ ५४ ॥
षडिमे ऋतवः प्रोक्ता यज्ञादौ विहिताः पृथक् ।
नृणा मानेन दशभिर्लक्षैः सप्तभिरुत्तरै ः ।
अष्टाविंशतिसाहस्रैर्मान कृतयुगस्य तु ॥ ५५ ॥
सन्ध्या चतुःशतानीह वर्षाणामन्तरालतः ।
सन्ध्याशस्तावता प्रोक्तस्तदन्तर्गत ईप्सितः ॥ ५६ ॥
त्रेता द्वादशभिर्लक्षैर्मानुषैर्वत्सरैर्भवेत् ।
षण्णवत्या सहस्रैश्च सन्ध्या चास्य शतत्रयम् ॥ ५७ ॥

शतत्रय तु सन्ध्याशस्तदन्तः परिकीर्तितः ।
चतु'पष्टिसहस्राणि लक्ष्याण्यष्टौ प्रमाणतः ॥ ५८ ॥
भवेद्युग द्वापराख्य तेषु सन्ध्या शतद्वयम ।
शतद्वय तु सन्ध्याशस्तदन्तर्गत इष्यते ॥ ५६ ॥
द्वात्रिशत्तु सहस्राणि चतुर्लक्षाणि वै कलेः ॥ ६० ॥
सवत्सरैर्भवेन्मान सन्ध्यैक प्रोच्यते शतम् ।
वत्सराणामेकशत सध्याशश्च तदन्तरे । ६१ ॥
एव कृतश्च त्रेता च द्वापरश्च तथा कलिः ।
मानुषेण प्रमाणेन भवेद् युगचतुष्टयम ॥ ६२ ॥
त्रिचत्वारिंशता लक्षैर्मान श्चातुर्युग भवेत् ।
सहस्रैरपि विंशत्या सध्या सध्याशसयुतम् ॥ ६३ ॥
दैव दिन वत्सरेण मानुषेण सरात्रकम् ।
एव क्रम गणि'त्वा तु मानुषीयैश्चतुर्युगैः ।
दैव द्वादशसाहस्त्र वत्सराणा प्रकीर्तिम् ॥ ६४ ॥
दैवैर्द्वादशसाहस्त्रैर्वत्सरैर्दैविक युगम् ।
तद्वै चतुर्युग नृणां सध्या सध्याशसयुतम् ॥ ६५ ॥
देवाना तु[100] कृते त्रेताद्वापरदिव्यवस्थया ।
न युगव्यवहारोऽस्ति न च धर्मादिभिन्नता ॥ ६६ ॥
किन्तु चातुर्युग नार भवेद्दवयुग सदा ।
दैविकैरेकसप्तत्या युगैर्मन्वन्तर भवेत् ॥ ६७ ॥
दैवयुगसहस्रे द्वे ब्रह्मणः स्यादहर्निशम् ।
चतुर्युगसहस्रे द्वे नृणा मानेन तद्भवेत् ॥ ६८ ॥
एकस्मिन् ब्राह्मदिवसे मनवः स्युश्चतुर्दश ।
एव ब्राह्मेण मानेन दिवसैस्तु त्रिभिः शतैः ।
स-षष्टिभिर्वत्सरः स्याद् ब्राह्मो वर्षो नृणा यथा ॥ ६९ ॥
ब्राह्मैः पञ्चशता वर्षै परार्धः परिकीर्तितः ।

---

100 कृत । 1 मानं ।

तदीश्वरस्य दिवसस्तावती रात्रीरीड्यते ॥ ७० ॥
शतेन ब्रह्मणो वर्षो कालः स्याद्द्विपरार्धक ।
परार्धद्वितयेऽतीते ब्रह्मणः प्रलयोभवेत् ॥ ७१ ॥
प्रलीने ब्रह्मणि परे जगता प्राकृतो लयः ।
समस्तजगदाधारमव्यय यत् परात्परम् ॥ ॥ ७२ ॥
तस्य ब्रह्मस्वरूपस्य दिवारात्रस्य यद् भवेत् ।
तत्परं नाम तस्यार्धं परार्धमभिधीयते ॥ ७३ ॥
जगत्स्वरूपी भगवान् परमात्माक्षयोऽव्ययः ।
स्थूलात् स्थूलतमः सूक्ष्माद् यस्तु सूक्ष्मतमो मतः ।
न तस्यास्ति दिवारात्रिव्यवहारो न वत्सरः ॥ ७४ ॥
किन्तु पौराणिकैः पूर्वैरस्माभिरपि तादृशैः ।
सृष्टिप्रलयबोधार्थं कल्प्यते तदहर्निशम् ॥ ७५ ॥

स एव रात्रिः स दिवा स वर्षः
स वै क्षितिः सृष्टिकरो हरश्च ।
स विष्णुरूपी पुरुषः पुराण-
स्तस्मिन् समस्तञ्च विभाति तद्वत् ॥ ७६ ॥

ततो ब्रह्मणि लीने तु परमात्मनि शाश्वते ।
जगत् सर्वं क्रमेणैव तद्रूपत्वाय गच्छति[2] ॥ ७७ ॥
ब्रह्मणः शतवर्षान्ते रुद्ररूपी जनार्दनः ।
जगदन्त स्वय कृत्वा परमे लीनमेति वै ॥ ७८ ॥
प्रथम सविता सर्वं स्थावर जगम तथा ।
तीव्रैः करैः शोषयित्वा जल सर्वं ग्रहीष्यति ॥ ७९ ॥
शुष्का वृक्षास्तृणगणाः प्राणिनः पर्वतास्तथा ।
चूर्णीकृत्वा विशीर्णाः स्युर्दिव्यवर्षशतेन तु ॥ ८० ॥
ततो द्वादशसूर्यस्य रश्मयः प्रवला भृशम् ।
अभवन् द्वादशादित्या जगद्भोग्योपबृंहिताः ॥ ८१ ॥

---

2 कल्पते ।

रश्मिद्वारेण सकलाम्सूर्यास्ते भुवनानि च ।
अदहन् पृथिवी द्यौश्च मेदिनी चोष्णता गता ॥ ८२ ॥
ततो विनष्टे सकले स्थावरे जगमे तथा ।
आदित्यरश्मितो देवो रुद्ररूपी जनार्दनः ॥ ८३ ॥
निःसृत्य प्रथम यातः पातालतलमुन्नतः ॥ ८४ ॥
सप्तपातालसस्थाम्तु नागगन्धर्वराक्षसान ।
देवानृषींश्च शेषञ्च जघान वरशूलधृक् ॥ ८५ ॥
एव स्वर्गे च पाताले पृथिव्या सागरेषु च ।
ये प्राणिनस्तान समस्तान् जघान स जनार्दनः ॥ ८६ ॥
ततो मुखान्महावायु रुद्रश्च सृष्टवान स्वयम् ।
सोऽव्याहतगतिर्गाढ सस्मार भुवनत्रये ॥ ८७ ॥
यावद्वर्षशत वायुर्भ्रमन भुवनगर्भगः ।
सर्वमुत्सारयामास यत् किञ्चित्तुलाराशिवत ॥ ८८ ॥
समस्त तत् समुत्सार्य जगद्वर्ति समन्ततः ।
विवेश द्वादशादित्यान स वायुर्जवनाधिकः[4] ॥ ८९ ॥
प्रविश्य मण्डल तेषां तेजोभिः सह मारुतः ।
महामेघान समारेभे रुद्रेण प्रतियोजितः ॥ ९० ॥
ततस्ते प्रेरिता मेघास्तेन वातेन वेगिना ।
रुद्रेणाप्यतिरौद्रेण पर्यावव्रुर्नभस्तलम् ॥ ९१ ॥
सवर्ताख्या महामेघा भिन्नाञ्जनचयोपमाः ।
[5]केचिद्धूम्राःशोणवर्णाःशुक्लाश्चित्राश्च भीषणाः॥९२॥
केचिच्च पर्वताकाराः केचिन्नागसमप्रभाः ।
प्रासादसदृशाः केचित् क्रौञ्चवर्णाविभीषणाः ॥ ९३ ॥
गर्जन्तस्ते महामेघा वर्षाणामधिक शतम् ।
ववृषुर्नीनथो लोकान् प्लावयन्तो महास्वनाः ॥ ९४ ॥

---

3 सकलं । 4 ज्वलनाधिक• । 5 केचिदभ्रा• ।

अथ[6] स्तम्भप्रमाणेन धारापातेन वै दृढम् ।
धारासारेण महता पूरित भुवनत्रयम् ॥ ९५ ॥
आब्रह्मस्थानमासाद्य तोयराशौ स्थिते ततः ।
स मुखादसृजद्वायु रुद्ररूपी जनार्दनः ॥ ९६ ॥
तेनौघवायुनाक्षिप्ता मेघाः सवत्सराञ्छतम् ।
अव्याहतगतेनाशु विध्वस्ता अभवस्ततः ॥ ९७ ॥
नष्टेषु तेषु मेघेषु जनलोकादिक पुनः ।
रुद्रस्त्वाब्रह्मभुवन ध्वसयामास निर्दयः ॥ ९८ ॥
विध्वस्तेषु समस्तेषु भुवनेषु विशेषतः ।
विनष्टे ब्रह्मलोके च रुद्रोऽगाद्द्वादशारुणान् ॥ ९९ ॥
स गत्वा द्वादशादित्यान् वेगेन महता हरिः ।
अग्रसच्चातिजज्वाल[7] तैर्गर्भस्थैर्दिवाकरैः ॥ १०० ॥
ततो ब्रह्माण्डमासाद्य रुद्रः कालान्तकोपमः ।
चूर्णीचकार सकल मुष्टिपेष महाबलः ॥ १०१ ॥
चूर्णीकुर्वन्तु ब्रह्माण्ड पृथिव्यपि विचूर्णिता ।
तोयानि च समस्तानि स दध्रे योगतो हरिः ॥ १०२ ॥
यद् ब्रह्माण्डाद्बहिस्तोय स्थित पूर्व समन्ततः ।
यद्वाभ्यन्तर्गत तोय तत् सर्वञ्चैकता गतम् ॥ १०३ ॥
एकीभूतेषु तोयेषु सर्वव्यापिषु सर्वतः ।
ब्रह्माण्डखण्डपूर्णौघः[8] प्लवन्नासीत् स नौरिव[9] ॥ १०४ ॥
ततः पृथिव्याः सारन्तु गन्ध तन्मात्रक क्रमात् ।
अम्भो जग्राह सकल विनष्टा पृथिवी ततः ॥ १०५ ॥
पुनः स रुद्रस्तेजांसि गर्भस्थानि स्वकायतः ।
निःसारयामास पुनः पुञ्जीभूतानि भीषणः ॥ १०६ ॥
तानि तेजासि सकल जगृहुः सर्वतः स्थितम् ।
अन्तर्बहिश्च ब्रह्माण्डात्तेजो यच्चान्यतो गतम् ॥ १०७ ॥

---

6 रथचक्रप्रमाणेन । 7 ज्वलितगर्भस्थैस्तैर्दिवाकरैः । 8 चूर्णौघ । 9 पार्थिव. ।

जगद्गत सर्वतेजो गृहीत्वा चैकतो ज्वलन्।
रौद्रब्रह्माण्डखण्डानि तेजोऽथ न्यदहज्जले ॥ १०८ ॥
दग्ध्वा ब्रह्माण्डचूर्णानि तेजास्युज्ज्वलितानि च।
जलेभ्यो रसतन्मात्र सारभूत ततोऽग्रहीत्।
गृहीतसारास्ता आपः प्रनष्टास्तेजसा ततः ॥ १०६ ॥
अप्सु नष्टासु तत्तेजः प्रविश्याथ सदागतिः।
एकीभूतो महाभागो रूप तन्मात्रमग्रहीत् ॥ ११० ॥
गृहीते रूपतन्मात्रे तेजासि सकलान्यथ।
विनष्टानि ततो वायुः प्रबलोऽभूदवारितः ॥ १११ ॥
महास्वन ततो वायुमासाद्याग्निरिवज्वलन्।
रुद्रः सक्षोभयामास तदाकाश स्वय ततः ॥ ११२ ॥
तेन सक्षुब्धमाकाशमग्रहीन्मरुतस्ततः।
तद्गत स्पर्शतन्मात्र ततो नष्ट' प्रभञ्जनः ॥ ११३ ॥
नष्टे वायौ ततो रुद्र आकाशात् रासमग्रहीत्।
शब्दतन्मात्रक तस्मिन् गृहीते विगत वियत् ॥ ११४ ॥
नष्टे नभसि रुद्रोऽसौ काये ब्राह्मे तदाविशत्।
ब्राह्म तदाकुल काय निराधार निरा[10]कुलम्।
विवेश वैष्णवे काये शखचक्रगदाधरे ॥ ११५ ॥
ततः शौरिर्महातेजाः काय तत् पाचभौतिकम्।
शखचक्रगदाशार्ङ्गवरासिधरमच्युतम।
स्वशक्त्या सजाहाराशु सारमादाय सर्वतः ॥ ११६ ॥
निराधार निराकार निःसत्त्व निरवग्रहम्।
आनन्दमयमद्वैत द्वैतहीनाविशेषणम् ॥ ११७ ॥
न स्थूल न च सूक्ष्म यज्ज्ञान नित्य निरजनम्।
एकमासीत् पर ब्रह्म स्वप्रकाश समन्ततः ॥ ११८ ॥

10 निरर्गलम्।

नाहो न रात्रिर्न[11] वियन्न पृथ्वी
नासीत्तमो ज्योतिरभून्नचान्यत् ।
श्रोत्रादिबुद्ध्याद्युपलभ्यमेकं
प्राधानिकं ब्रह्म पुमांस्तदासीत् ॥ ११९ ॥
एवं यावत्स्थिता सृष्टिस्तावन् कालमसृष्टिकम् ।
आसीदेकं परं तत्त्वं ततः सृष्टिः प्रवर्तते ॥ १२० ॥
प्रकृतौ संस्थितो यस्मात् सर्वतन्मात्रसंचयः ।
अहंकारं महत्तत्वं गतो यत् प्राकृतो लयः ॥ १२१ ॥
प्रकृतौ संस्थितं व्यक्तमतीतप्रलयन्तु तत् ।
तस्मात् प्राकृतसंज्ञोऽयमुच्यते प्रतिसञ्चरः ॥ १२२ ॥
अयं वः कथितो विप्राः प्राकृताख्यो महालयः ।
आदिसृष्टिं शृणुष्वेमां कथ्यमानां मया पुनः ॥ १२३ ॥

इति श्रीकालिकापुराणे संहारकथनं नाम चतुर्विंशोऽध्यायः ॥ २४ ॥

पंचविंशोऽध्यायः

मार्कण्डेय उवाच

कालो नाम स्वयं देवः सृष्टिस्थित्यन्तकारकः ।
अविच्छिन्नः स प्रलय[12] स्तेन भागेन केनचित् ॥ १ ॥
लयभागे व्यतीते तु सिसृक्षा समजायत ।
ज्ञानरूपस्य च तदा परमब्रह्मणो विभोः ॥ २ ॥
ततोऽस्य प्रकृतिस्तेन सम्यक्संक्षोभिता धिया[13] ।
संक्षुब्धा सर्वकार्यार्थमभूत् सा त्रिगुणात्मिका ॥ ३ ॥

---

11 नभो न भूमि०। 12 अविछिन्न स्वप्रलय । 13 भिया।

यथा सन्निधिमात्रेण गन्धः क्षोभाय जायते ।
मनसो लोककर्तृत्वात्तथासौ परमेश्वरः ॥ ४ ॥
स एव क्षोभको ब्रह्मन् क्षोभ्यश्च परमेश्वरः ।
स सकोचविकाशाभ्या प्रधानत्वेऽपि च स्थितः ॥ ५ ॥
इच्छामात्रेण पुरुषः सृष्ट्यर्थ परमेश्वर ।
ततः सक्षोभयामास पुनरेव जगत्पतिः ॥ ६ ॥
गुणसाम्यात्ततस्तस्मात् क्षेत्रज्ञाधिष्ठितात् ततः ।
गुणव्यजनसभूतिः सर्गकाले बभूव ह । ७ ॥
प्रधानतत्त्वादुद्भूतमीश्वरेच्छासमीरितान् ।
महत्तत्व प्रथमतस्तत् प्रधान समावृणोत् । ८ ॥
प्रधानेनावृतात्तस्मादहकारो व्यजायत ।
वैकारिकस्तैजसश्च भूतादिश्चैव तामसः ॥ ९ ॥
त्रिविधोऽयमहकारो यो जातो महतोऽग्रत. ।
भूतानामिन्द्रियाणाञ्च स व हेतुः सनातनः ॥ १० ॥
स महास्तमहकार जातमात्र समावृणोत् ।
तन्मात्राणि ततः पच जज्ञिरेऽस्मात् समावृतात् ॥ ११ ॥
प्रथम शब्दतन्मात्र स्पर्शतन्मात्रमन्तरम् ।
तृतीय रूपतन्मात्र रसतन्मात्रमेव च ॥ १२ ॥
पञ्चम गन्धतन्मात्रमेतानि क्रमशोऽभवन् ।
प्रत्येक सर्वतन्मात्रमहकारः समावृणोत् ॥ १३ ॥
ससर्ज शब्दतन्मात्रादाकाश शब्दलक्षणम् ।
शब्दमात्र तथाकाश भूतादिः स समावृणोत् ॥ १४ ॥
शब्दतन्मात्रसहितात् स्पर्शतन्मात्रतस्ततः ।
वायुः समभवत् स्पर्शगुणः शब्दसमन्वितः ॥ १५ ॥
आकाशवायुसयु[14]क्ताद्रूपतन्मात्रतस्ततः ।
तेज समभवद्दीप्त सर्वतस्तदवर्धत ॥ १६ ॥

14 आकाशवायु संसक्तात् ।

तच्छब्दवत् स्पर्शवच्च रूपवच्च व्यजायत ।
ततो वियद्वायुतेजोयुक्तात्तोय ससर्ज ह ।
रसतन्मात्रतः सम्यक् तेन व्याप्त समन्तः ॥ १७ ॥
तोयान्याधारशक्तिर्या विष्णोरमिततेजसः ।
सा दध्रेऽथ निराधाराण्यनिलान्दोलितानि वै ॥ १८ ॥
तेषु बीज प्रथमतः ससर्ज परमेश्वरः ।
तदण्डमभद्धैम सहस्रांशुसमप्रभम् ॥ १६ ॥
महदादिविशेषान्तैरारब्ध सर्वतो वृतम् ।
वारिवह्न्यनिलाकाशैस्तमोभूतादिना बहिः ।
वृत दशगुणैरण्ड भूतादिर्महता तथा ॥ २० ॥
बीज यथा बाह्यदलैर्व्याप्तमण्ड तथा पुनः ।
तोयादिभिस्तथा व्याप्त[15] ब्रह्माण्डमतुल द्विजाः ॥ २१ ॥
तदण्डमध्ये स्वयमेव विष्णु-
र्ब्रह्मस्वरूप विनिधाय कायम् ।
दिव्येन मानेन स वर्षमेक
स्थितोऽग्रहीद्बीजगण स्वबुद्ध्या ॥ २२ ॥
ध्यानेन चाण्ड स्वयमेव कृत्वा
द्विधा स तस्थौ क्षणमात्रमस्मिन् ।
तदैव तन्मात्रगणैः समस्तै-
र्गन्धोत्तरैर्भूरमुनैव सृष्टा ॥ २३ ॥
स्पर्शस्य शब्दस्य समस्तरूप-
गुणस्य गन्धस्य रसस्य[16] चैषा ।
आधारभूता सकलैः कृता य-
त्तन्मात्रवर्गैरखिला धरित्री ॥ २४ ॥
जातस्तदुत्थैः कनकाचलोऽसौ
जरायुभिः पर्वतसचयोऽभूत् ।

15 ब्रह्माण्डमण्डल । 16 यैषा ।

[17]गर्भादिकैः सप्तपयोधयस्तु
स्कन्धद्वयेन त्रिदशालयोऽभूत् ॥ २५ ॥
स्क धद्वयेनापरदेशजेन
सप्ताभवन्नागगृहाणि तानि ।
पातालमज्ञानि महासुखानि
यत्र स्वय स्यात् परतो महेशः ॥ २६ ॥
तेजोगणात्तस्य वभूव लोको
योऽसौ महर्लोक इति श्रुतोऽभूत् ।
जनाह्वयोऽभून्मरुतोऽथ गर्भाद्
ध्यानात्तपोलोकवरो वभूव ॥ २७ ॥
अण्डोर्धगत्यामभवत्तु सत्य
ब्रह्माण्डखण्डोपरि विष्णुरच्युतः ।
पर पद यन्निगदन्ति धीरा
यज्ज्ञानगम्य परिनिष्ठरूपम् ॥ २८ ॥
एव विधाय प्रथम वभूव
विष्णुस्वरूपी स्थितये स एव ।
स्वय समुद्भूततनुर्यतोऽय
स्वभूरिति ख्यातिरवाप विष्णुः ॥ २९ ॥
ततोऽभवत्[18] यज्ञवराहरूपी
विष्णुर्भुवः प्रोद्धरणाय पीनः ।
निमज्जमाना पृथिवीं स मध्ये
भित्वा गतो धर्तमधोतिऽवेगात् ॥ ३० ॥
दष्ट्राग्रदेशे विनिधाय पृथ्वीं
[19]स उद्गतः सर्वमतीत्य तोयम् ।
ततोऽभवन् सप्तफणाण्वितोऽय-
मनन्तमूर्तिः पृथिवीं विधर्तुम् ॥ ३१ ॥

17 गर्भोदकैः । 18 यज्ञवराहमूर्ति । 19 समुद्गत ।

प्रसार्य शेषोऽपि फणाः स वैष
मध्ये निधायैकफणा धरित्रीम् ।
दधार तोयोपरि तोयसस्थित-
स्ततोऽत्यजद् यज्ञवराह उर्व्वीम् ॥ ३२ ॥

प्रसारिताः फणाः[13] स वास्तासामेका तु पूर्वतः ।
अपरा पश्चिमाया तु दक्षिणोत्तरयोः परे ॥ ३३ ॥
एका गता फणैशान्यामाग्नेय्यामपरा दिशि ।
पृथ्वीमध्ये स्थिता चैका नैऋत्या तस्य वै तनुः ।
शून्या दिग्वायवी तत्र ततो नम्रा स्थिता क्षितिः ॥ ३४ ॥
स तु दीर्घतनुस्तोये यदानन्तो न चाशकत् ।
कूर्मरूपी तदा भूत्वानन्त कायमधाद्धरिः ॥ ३५ ॥
अधो ब्रह्माण्डखण्ड स पद्भिराक्रम्य कच्छपः ।
ग्रीवान्वितस्य वायव्या पृष्ठेऽनन्तमधारयत् ॥ ३६ ॥
अनन्तः कूर्मपृष्ठे तु नवभिर्वेष्टनैस्तनुम् ।
निधाय पृथ्वीं दध्रे सुखेनैव महातनुः ॥ ३७ ॥
ततः फणास्वनन्तस्य चलन्ती पृथिवी स्थिता ।
वराहः कर्तुमचलामचलामकरोद्दृढाम् ॥ ३८ ॥
मेरु खुरप्रहारेण प्रहृत्य पृथिवीतलम् ।
न्यखनत् स विवेशाथ पृथ्वीं भित्वान्तर ततः ॥ ३९ ॥
योजनाना सहस्राणि षोडशैव रसातलम् ।
प्रविवेश महाशैलो वराहाङ्घ्रिप्रहारतः ॥ ४० ॥
द्वात्रिंशत्तु सहस्राणि योजनाना तु विस्तृतम् ।
मेरोः शिरोऽभवत्तेन प्रहारेण दिजोत्तमाः ॥ ४१ ॥
मर्यादा पर्वतनाथस्य पार्श्वे पोत्री तदाकरोत् ।
यदा चलति नैवैष पर्वतः वृथिवीधरः ॥ ४२ ॥

13 सप्त ।

हिमवत्प्रभृतीनाञ्च भाग भाग सपञ्चकम् ।
पदा क्षित्यन्तर चक्रे तदुच्छ्रायप्रमाणतः ॥ ४३ ॥
ततो ब्रह्मा वराहाय नमस्कृत्य महौजसे ।
अर्धनारीश्वर कयाद् देवदेव व्यजायत ॥ ४४ ॥
प्रथम जातमात्र· स प्ररुरोद महास्वनः ।
किं रोदिषीति त ब्रह्मा रुदन्त प्रत्युवाच ह ॥ ४५ ॥
नाम देहीति त सोऽथ प्रत्युवाच महेश्वरः ।
रुद्रनामा रोदनात्त्व मा रोदीस्त्व महाशय ॥ ४६ ॥
एवमुक्त· पुनः सोऽथ सप्तवारान् रुरोद सः ।
ततोऽपराणि नामानि सप्त ब्रह्माकरोत् पुनः ॥ ४७ ।
शर्वं भव च भीमञ्च महादेव चतुर्थकम् ।
पञ्चम चोग्रमीशान षष्ठ पशुपति परम् ॥ ४८ ॥
मया यथा विभक्तस्त्व तथात्मा स्वो विभज्यताम् ।
त्वयापि भूरिसृष्ट्यर्थं भवाश्चापि प्रजापतिः ॥ ४९ ॥
ततो ब्रह्मा द्विधा भूत्वा पुरुषोऽर्धेन सोऽभवत् ।
अर्धेन नारी तस्या तु विराजमसृजत् प्रभुः ॥ ५० ॥
[14]तमाह भगवान् ब्रह्मा कुरु सृष्टिं प्रजापते ।
तपस्तप्त्वा विराट् सोऽपि मनु स्वायम्भुव तत· ॥ ५१ ॥
ससर्ज सोऽपि[15] तपसा ब्रह्माण पर्यतोषयत् ।
तोषितस्तेन मनसा दक्षं सृष्ट्यै ससर्ज सः ॥ ५२ ॥
सृष्टे दक्षेऽथ दशधा प्रणतो मनुना विधिः ।
पुनरेव सुतानन्यान् ससर्ज दश मानसान् ॥ ५३ ॥
मरीचिमत्र्यंगिरसौ पुलस्त्य पुलहं क्रतुम् ।
प्रचेतस वसिष्ठञ्च भृगु नारदमेव च ॥ ५४ ॥
एतानुत्पाद्य मनसा मनुं स्वायम्भुव पुनः ।
यूय सृजध्वमित्युक्त्वा लोकेशोऽन्तर्दधे पुनः ॥ ५५ ॥

14 तदाह । 15 मनसा ।

वराहोऽप्यथ पोत्रेण खनित्वा सप्तसागरान्।
पृथिव्या वलयाकारान् ससर्ज परमेश्वरः॥ ५६॥
सप्तधा भ्रमणेनासौ सृष्ट्वा सप्ताथ सागरान्।
सप्तद्वीपानवच्छिद्य पृथिव्यन्त ततो गतः॥ ५७॥
लोकालोकाह्वय शैल कृत्वा पृथ्व्यास्तु वेष्टनम्।
लक्षद्वयोच्छ्रित मानाद् योजनाना समन्ततः।
सुदृढ स्थापयामास भित्तिप्रान्ते यथा गृहम्॥ ५८॥
आदिसृष्टिरिय विप्राः कथिता भवता[16] मया।
प्रतिसर्गमह वक्ष्ये तच्छृण्वन्तु महर्षयः॥ ५९॥

इति श्रीकालिकापुराणे[17] वाराह सर्गो नाम पचविंशोऽध्याय।

षड्‌विंशोऽध्यायः

मार्कण्डेय उवाच

वाराहोय श्रुतः सर्गो वराहाधिष्ठितो यतः।
प्रतिसर्गः श्रुतः सर्वैर्दक्षाद्यैर्यः कृतः पृथक्॥ १॥
रुद्रो विराण्मनुर्दक्षो मरीच्याद्यास्तु मानसाः।
य य सर्ग पृथक् चक्रुः प्रतिसर्गश्च स स्मृतः॥ २॥
विराट् सुतोऽसृजद्वश्यान्मनून् यैर्वितत जगत्।
मनुः सप्त मनून् सृष्ट्वा चकार बहुशः प्रजाः॥ ३॥
प्रजाः सिसृक्षुः स मनुर्योऽसौ स्वायम्भुवाह्वयः।
असृजत् प्रथम षड् वै मनून् सोऽथ परान् सुतान्॥ ४॥
स्वारोचिषश्चौत्तमिश्च तामसो रैवतस्तथा।
चाक्षुषश्च महातेजा विवस्वानपरस्तथा॥ ५॥

---

16 यथा। 17 सृष्टिकथनं नाम।

यक्षरक्षःपिशाचाश्च नागगन्धर्वकिन्नरान् ।
विद्याधरानप्सरसः सिद्धान् भूतगणान्[18] बहून् ॥ ६ ॥
मेघान सविद्युतो वृक्षान् लतागुल्मतृणादिकान् ।
मनुस्यान् पशूश्च कीटाश्च जलजान् स्थलजास्तथा[19] ॥ ७ ॥
एतादृशानि सर्वाणि मनुः स्वायम्भुवः सुतैः ।
सहितः ससृजे सोऽन्यः[20] प्रतिसर्गः प्रकीर्तितः ॥ ८ ॥
अन्ये षण्मनवो ये वै तेऽपि स्वे स्वेऽन्तरेऽन्तरे ।
प्रतिसर्गं स्वय कृत्वा प्राप्नुवन्ति चराचरम्[21] ॥ ६ ॥
यज्ञस्य सम्भूत यज्ञ यूप प्राग्वशमेव च ।
धर्माधर्मौ गुणान् सर्वान वराह इव सृष्टवान् ॥ १० ॥
सुतान् बहून् समुत्पाद्य दक्षो देवर्षिसत्तमान् ।
महर्षीन् सोमपादींश्च बहून् पितृगणास्तथा ॥ ११ ॥
सृष्टिं प्रवर्त्तयामास प्रतिसर्गोऽस्य स स्मृतः ।
अजायन्त मुखाद्विप्राः क्षत्रिया बाहुयुग्मतः ॥ १२ ॥
ऊर्वोर्वैश्याः पदोः[22] शूद्राश्चतुर्वेदाश्चतुर्मुखात् ।
ब्रह्मणः प्रतिसर्गोऽय ब्राह्मः सर्गः स्मृतस्ततः ॥ १३ ॥
मरीचेः कश्यपो जातः कश्यपात् सकल जगत् ।
देवा दैत्या दानवाश्च तस्य सर्गः प्रकीर्तितः ॥ १४ ॥
अत्रेर्नेत्रादभूच्चन्द्रश्चन्द्रवशस्ततोऽभवत् ।
तेन व्याप्त जगत् सर्वं सोऽस्य[23] सर्गः प्रकीर्तितः ॥ १५ ॥
अथर्वांगिरसाः पुत्राः पौत्राश्च बहुशोऽपरे[24] ।
मन्त्रयन्त्रादयो ये वै ते सर्वेऽङ्गिरसः स्मृताः ॥ १६ ॥
आज्यपाख्याः पुलस्त्यस्य पुत्राश्चान्ये च राक्षसाः ।
प्रतिसर्गः पुलस्त्यस्य बलवेगसमन्विताः ॥ १७ ॥
काद्रवेया गजा अश्वाः प्रजा बहुतरास्तथा ।
ससृजे पुलहेनैष सर्गस्तस्य प्रकीर्तितः ॥ १८ ॥

---

18 तथा । 19 तदा । 20 सोऽथ । 21 यथायथम् । 22 पदात् ।
23 सौम्य. । 24 यथा ।

क्रतोः पुत्राः बालखिल्याः सर्वज्ञा भूरितेजसः ।
अष्टाशीति सहस्राणि ज्वलद्भास्करसन्निभाः ॥ १९ ॥
प्रचेतसः सुताः सर्वे[25] ये वै प्राचेतसाः स्मृताः ।
षडशीतिसहस्राणि पावकोपमतेजसः ॥ २० ॥
सुकालिनो वसिष्ठस्य पुत्राश्चान्ये च योगिनः ।
आरुन्धतेयाः पचाशद्वासिष्ठः सर्ग उच्यते ॥ २१ ॥
भृगोश्च भार्गवा जाता ये वै दैत्यपुरोधसः ।
कवयस्ते महाप्राज्ञास्तैर्व्याप्तमखिलं जगत् ॥ २२ ॥
नारदात्तारका जाता विमानानि तथैव च ।
प्रश्नोत्तरास्तथैवान्ये नृत्यगीत च कौतुकम् ॥ २३ ॥
एते दक्षमरीच्याद्याः कृतदारान् बहून् सुतान् ।
उत्पाद्योत्पाद्य पृथिवीं दिव च समपूरयन् ॥ २४ ॥
तेषा सुतेभ्यश्च सुतास्तत्पुत्रेभ्यः परे सुताः ।
समुत्पन्नाः प्रवर्तन्ते ह्यद्यापि भुवनेषु वै ॥ २५ ॥
विष्णोस्तु चक्षुषोः सूर्यो मनसश्चन्द्रमाः स्मृतः ।
श्रोत्राद्वायुः समुद्भूतो मुखादग्निरजायत ॥ २६ ॥
प्रतिसर्गोह्यय विष्णुस्तथा चापि दिशो दश ।
सृष्ट्यर्थं चन्द्रमाः पश्चादत्रिनेत्रादवातरत् ।
भास्करः कश्यपाज्जातो भार्यया च समन्वितः ॥ २७ ॥
रुद्राश्च बहवो जाता भूतग्रामाश्चतुर्विधाः ।
श्ववराहोष्ट्ररूपाश्च प्लवगोमायूगोमुखाः ॥ २८ ॥
ऋक्षमार्जारवदनाः सिंहव्याघ्रमुखाः परे ।
नाना शस्त्रधराः सर्वे नानारूपाः महाबलाः ॥ २९ ॥
एष वः प्रतिसर्गोऽपि कथितो द्विजसत्तमाः ।
दैनन्दिन च प्रलय शृणुध्व कल्पशेषतः ॥ ३० ॥

इति श्रीकालिकापुराणे सृष्टिकथने षड्विंशोऽध्याय ॥ २६ ॥

---

25 ते ।

सप्तविंशोऽध्यायः

मार्कण्डेय उवाच

मन्वन्तर मनोः कालो यावन् पालयते प्रजाः ।
एको मनुः स कालस्तु मन्वन्तरमितिश्रुतम् ।। १ ।।
तदेकसप्ततियुगैर्देवानामिह जायते ।
तैश्चतुर्दशभिः कल्पो दिनमेक तु वेधसः ।। २ ।।
दिनान्ते ब्रह्मणो जाते सुपुप्सा तस्य जायते ।
योगनिद्रा महामाया समायाति पितामहम् ।। ३ ।।
नाभिपद्म प्रविश्याथ विष्णोरमिततेजसः ।
सुख शेते स भगवान् ब्रह्मा लोकपितामहः ।। ४ ।।
ततो विष्णुः स्वय भूत्वा रुद्ररूपी जनार्दनः ।
पूर्ववन्नाशयामास स सर्वं भुवनत्रयम् ।। ५ ।।
वायुना वह्निना सार्धं दाहयामास वै यथा ।
महाप्रलयकालेषु तथा सर्वं जगत् त्रयम् ।। ६ ।।
जन यान्ति प्रतापार्ता महर्लोकनिवासिनः ।
त्रैलोक्यदाहसमये पीडिता दारुणाग्निना ।। ७ ।।
ततः कालान्तकैर्मेघैर्नानावर्णैर्महास्वनैः ।
समुत्पाद्य महावृष्टिमापूर्य भुवनत्रयम् ।। ८ ।।
चलत्तरंगैस्तोयौघैराध्र्‌ुवस्थानसगतैः ।
निधाय जठरे लोकानिमास्त्रीन् स जनार्दनः ।
नागपर्यंकशयने शेते स परमेश्वरः ।। ९ ।।
शायान नाभिकमले ब्रह्माणं स जगद्गुरुः ।
सस्थाप्य त्रीनिमाँल्लोकान् दग्ध्वा जग्ध्वा श्रिया सह ।।१०।।
शेते स भोगिशय्यायां ब्रह्मा नारायणात्मकः ।
योगनिद्रावशं जातस्त्रैलोक्यग्रासबृंहितः ।। ११ ।।

त्रैलोक्यमखिलं दग्धं यदा कालाग्निना तदा ।
अनन्तः पृथिवीं त्यक्त्वा विष्णोरन्तिकमागतः ॥ १२ ॥
तेन त्यक्ता तु पृथिवी क्षणमात्रादधोगता ।
पतिता कूर्मपृष्ठे च विशीर्णेव तदाभवत् ॥ १३ ॥
कूर्मोऽपि महतो यत्नाच्चलन्तीं पृथिवीं जले[26] ।
ब्रह्माण्डं पद्भिराक्रम्य पृष्ठे दध्रे धरां तदा ॥ १४ ॥
ब्रह्माण्डखण्डसंयोगाच्चूर्णिता पृथिवी भवेत् ।
इति तां परिजग्राह कूर्मरूपी जनार्दनः ॥ १५ ॥
चलज्जलौघसंसर्गाच्चलन्त्या धरया तदा ।
कूर्मपृष्ठं बहुतरैर्वरण्डैर्विततीकृतम् ॥ १६ ॥
अनन्तस्तत्र गत्वा तु यत्र क्षीरोदसागरः ।
तत्र स्वयं श्रिया युक्तं सुषुप्सन्तं जनार्दनम् ॥ १७ ॥
फणया मध्यया दध्रे त्रैलोक्यग्रासबृंहितम् ।
पूर्वं फणाः वितत्योर्ध्वं पद्मं कृत्वा महाबलः ।
विष्णुमाच्छादयामास शेषाख्यः परमेश्वरम् ॥ १८ ॥
तस्योपधानमकरोदनन्तो दक्षिणां फणाम् ।
उत्तरां पादयोश्चक्रे उपधानं महाबलः ॥ १९ ॥
तालवृन्तं तदा चक्रे सशेषः पश्चिमां फणाम् ।
स्वपन्तं वीजयामास शेषरूपी जनार्दनम् ॥ २० ॥
शंखं चक्रं नन्दकासिमिषुधी द्वे महाबलः ।
ऐशान्ययाथ फणया स दध्रे गरुडं तथा ॥ २१ ॥
गदां पद्मं च शार्ङ्गं च तथैव विविधायुधम् ।
यानि चान्यानि तस्यासन्नाग्नेय्या फणया दधौ ॥ २२ ॥
एवं कृत्वा स्वकं कायं शयनीयं तदा हरेः ।
पृथ्वीमधरकायेन मग्नामाक्रम्य चाम्भसि ॥ २३ ॥

---

26 तले तदा ।

त्रैलोक्य ब्रह्मसहित सलक्ष्मीक जनार्दनम् ।
सोपासग जगद्बीज जगत्कारणकारणम्[27] ॥ २४ ॥
नित्यानन्द वेदमय ब्रह्मण्य परमेश्वरम ।
जगत्कारणकर्तार जगत्कारणकारणम् ॥ २५ ॥
भूतभव्यभवन्नाथ परावरगति हरिम् ।
दधार शिरसा तन्तु[28] स्वयमेव स्वका तनुम् ॥ २६ ॥
एव ब्रह्मदिनस्यैव प्रमाणेन निशा हरिः ।
सन्ध्या च समभिव्याप्य शेते नारायणोऽव्ययः ॥ २७ ॥
यस्मादयन्तु प्रलयो ब्रह्मणः स्याद् दिने दिने ।
तस्माद् दैनन्दिनमिति ख्यापयन्ति पुराविदः ॥ २८ ॥
व्यतीताया निशाया तु ब्रह्मा लोकपितामहः ।
त्यक्त्वा निद्रा समुत्तस्थौ स पुनः सृष्टये हितः ॥ २९ ॥
त्रैलोक्य तोयसम्पूर्ण शयान पुरुषोत्तमम ।
निरीक्ष्य वैष्णवीं माया महामाया जगन्मयीम् ।
योगनिद्रा स तुष्टाव हरेरगेच[29] सस्थिताम् ॥ ३० ॥

ब्रह्मोवाच

चितिशक्ति निर्विकारा परब्रह्मस्वरूपिणीम् ।
प्रणमामि महामाया योगनिद्रा सनातनीम् ॥ ३१ ॥
त्व विद्या योगिना देवि त्व गतिस्त्व मतिः स्तुतिः ।
त्व सृष्टिस्त्व स्थितिः स्वाहा स्वधा त्वमिह गीतिका ॥ ३२ ॥
त्व सामगीतिस्त्व नीतिस्त्व ह्रीः श्रीस्त्व सरस्वती ।
योगनिद्रा महामाया मोहनिद्रा त्वमीश्वरी ॥ ३३ ॥
त्व कान्तिः सर्वशक्तिस्त्व त्व तनुर्वैष्णवी शिवा ।
त्व धात्री[30] सर्वलोकानामविद्या त्व शरीरिणाम् ॥ ३४ ॥
आधारशक्तिस्त्व देवी त्व हि ब्रह्माण्डधारिणी ।
त्वमेव सर्वजगता प्रकृतिस्त्रिगुणात्मिका ॥ ३५ ॥

---

28 दधार शिरसानम्र । 29 हरेरगेषु । 30 सर्वविद्यानां ।

त्वं सावित्री च गायत्री सौम्यासौम्यातिशोभना ।
[31]त्वं सिसृक्षा हरेर्नित्या सुषुप्सा त्वं सुषुप्तिका ॥ ३६ ॥
पुष्टिर्लज्जा क्षमा शान्तिस्त्वं धृतिः परमेश्वरी ।
त्वमेव क्षितिरूपेण ध्रियसे सचराचरम् ॥ ३७ ॥
त्वमापस्त्वमपां माता सर्वान्तर्गतचारिणी ।
स्तुतिः स्तुत्या च स्तोत्री च स्तुतिशक्तिस्त्वमेव च ॥ ३८ ॥
त्वामहं किन्तु स्तोष्यामि प्रसीद परमेश्वरि ।
नमस्तुभ्यं जगन्मातः प्रबोधय जनार्दनम् ॥ ३९ ॥
एवं स्तुता महामाया ब्रह्मणा लोककारिणा ।
नेत्रास्यनासिका-बाहु-हृदयान्निर्गता हरेः ।
राजसीं [32]मूर्तिमाश्रित्य सा तस्थौ ब्रह्मदर्शने ॥ ४० ॥
ततो जनार्दनो भोगिशयनान्निद्राया क्षणात् ।
परित्यक्तः समुत्तस्थौ सृष्टये चाकरोन्मतिम् ॥ ४१ ॥
ततो वराहरूपेण निमग्ना पृथिवीं जले ।
मग्ना समुद्धाराशु न्यधाच्च सलिलोपरि ॥ ४२ ॥
तस्योपरि जलौघस्य महती नौरिव स्थिता ।
विततत्वाच्च देहस्य न मही याति सप्लवम् । ४३ ॥
ततो हरिः क्षितिं गत्वा तोयराशिं स्वमायया ।
संहृत्य जन्तुस्थितये प्रवृत्तः स्वयमेव हि ॥ ४४ ॥
अनन्तोऽपि यथापूर्वं तथा गत्वा क्षितेस्तलम् ।
पृथिवीं धारयामास कूर्मस्योपरि संस्थितः ॥ ४५ ॥
ततो ब्रह्मा समुत्पाद्य सर्वानेव प्रजापतीन् ।
जगदुत्पादयामास सर्वलोकपितामहः ॥ ४६ ॥
ब्रह्मा वा कुरुते सृष्टिं यदान्ये वापि कुर्वते ।
दक्षाद्यास्तु प्रजापालाः स्वयमेव तदिच्छया ॥ ४७ ॥

---

31 त्वं हि सूक्ष्मा हरेर्नित्या सुषम्ना त्वं सुषुप्तिका । 32 राजसीं वृत्तिमास्थाय ।

परब्रह्मस्वरूपी यः सोऽनुगृह्णाति सन्ततम् ।
प्रकृतिश्चानुगृह्णाति महाभूतानि पञ्च वै ॥ ४८ ॥
पुरुषश्चानुगृह्णाति तथैव महदादयः ।
ईश्वरेच्छान्वधिष्ठानात् पुरुषादृष्टसचयात् ॥ ४६ ॥
पुरुषाणामधिष्ठानान्महाभूतगणस्य च ।
तथैव महदादीना कालस्य च महात्मनः ।
अधिष्ठानात् प्रधानस्य यच्च किंचन जायते ॥ ५० ॥
स्थावर जङ्गम वापि स्थिर वाप्यथवाद्भूतम्[33] ।
सर्वमेतदधिष्ठानाज्जायते द्विजसत्तमाः ॥ ५१ ॥
इति वः कथित सर्वं यथैवादर्शयत् पुरा ।
हराय सृष्टिसहार-कल्पास्तान् भगवान् हरिः ॥ ५२ ॥
यथा जगत् प्रपञ्चस्यासारता दर्शिता परा ।
यच्च सार दर्शित तन्मत्तः शृण्वन्तु वै द्विजाः ॥ ५३ ॥
इति श्रीकालिकापुराणे सृष्टिकथने सप्तविंशोऽध्याय ॥ २७ ॥

अष्टाविंशोऽध्यायः

मार्कण्डेय उवाच

जगत् सर्वं तु निःसारमनित्य दुःखभाजनम्[34] ।
उत्पद्यते क्षणादेतत् क्षणादेतद्विपद्यते ॥ १ ॥
तथैवोत्पद्यते सारान्निःसार जगदञ्जसा ।
पुनस्तस्मिन् विलीयन्ते महाप्रलयसङ्गमे ॥ २ ॥
उत्पत्तिप्रलयाभ्या तु जगन्निःसारतां हरिः ।
शम्भवे दर्शयामास भावेन जगता पतिः ॥ ३ ॥

---

33 द्रुतम् । 34 कारणम् ।

एकं शिवं शान्तमनन्तमच्युतं
परात्परं ज्ञानमयं विशेषम् ।
अद्वैतमव्यक्तमचिन्त्यरूपं
सारं त्वेकं नास्ति सारं तदन्यत् ॥ ४ ॥
यस्मादेतज्जायते विश्वमग्र्यं
यस्माल्लीनं स्यात्तु पश्चात् स्थितश्च ।
आकाशवन्मेघजालस्य वृत्त्या
यद्विश्वं वै ध्रियते तत्त्वसारम् ॥ ५ ॥
अष्टांगयोगैर्यदवाप्तुमिच्छन्
योगी पुनात्यात्मरूपं [35] सदैव ।
निवर्तते प्राप्य यं नेह लोके
तद्वै सारं सारमन्यन्न चास्ति ॥ ६ ॥
सारो द्वितीयो धर्मस्तु यो नित्यप्राप्तये भवेत् ।
यो वै निवर्तको नाम तत्रासारः प्रवर्तकः ॥ ७ ॥
धर्मं शनैः सञ्चिनुयाद्वल्मीको मृत्तिका यथा ।
सहायार्थं परे लोके पूर्वपापविमुक्तये ॥ ८ ॥
एको धर्मः परं श्रेयः सर्वसंसारकर्मसु ।
इतरे तु त्रयो धर्माज्जायन्तेऽर्थादयोऽपरे ॥ ९ ॥
वरं प्राणपरित्यागः शिरसो वाथ कर्तनम् ।
न तु धर्मपरित्यागो लोके वेदे च गर्हितः ॥ १० ॥
धर्मेण ध्रियते लोको धर्मेण ध्रियते जगत् ।
धर्मेणैव सुराः सर्वे सुरत्वमगमन् पुरा ॥ ११ ॥
धर्मश्चतुष्पाद्भगवान् जगत् पालयतेऽनिशम् ।
स एव मूलं पुरुषो धर्म इत्यभिधीयते ॥ १२ ॥
सर्वं क्षरति लोकेऽस्मिन् धर्मो नैव च्युतो भवेत् ।
धर्माद् यो न विचलति स एवाक्षर उच्यते ॥ १३ ॥

35 युनक्त्यात्मरूपं ।

एतद्वः कथित सार निःसार सकल जगत् ।
यथा स्वय ददर्शासौ शम्भुर्ज्ञानेन स्वेऽन्तरे ॥ १४ ॥
एतद्वै दर्शयामास स विष्णुर्जगता पतिः ।
स्वय जग्राह मनसा ध्यानेनात्मनि शकरः ॥ १५ ॥
सार तत्त्व परम निष्कल य —
न्मूर्त्या हीन मूर्तिमान् धर्म एषः ।
सारोऽन्योऽसौ सारहीन तदन्यज्-
ज्ञात्वैवेत्थ याति नित्य महाधीः ॥ १६ ॥

इति श्रीकालिकापुराणे सारासारनिरूपण नाम अष्टाविशोऽध्याय• ॥ २८ ॥

एकोनत्रिंशोऽध्यायः

ऋषयः ऊचुः

ये सृष्टाः शम्भुना पूर्वं भूतग्रामाश्चतुर्विधाः ।
किमर्थ ते समुत्पन्नाः कथ[36]वानेकरूपता ॥ १ ॥
शरीरमर्द्धं वाराहमर्द्धं दन्तावल तथा ।
सिंहव्याघ्रशरीराच्च केचिद्केचिद्गणाधिपाः ॥ २ ॥
कथ ते वा [37]गणाः क्रूराः किं भोगास्ते महौजसः ।
एतत् सर्वं [38]वय श्रोतुमिच्छामो द्विजसत्तम ॥ ३ ॥

मार्कण्डेय उवाच

श्रृण्वन्तु मुनयः सर्वे यथा शम्भुगणाभवन् ।[†]
यदर्थं ते समुत्पन्ना यस्मात्ते नैकरूपिणः ॥ ४ ॥
[39]एतद्वः परम गुह्यमिद धर्मार्थकामदम् ।
[40]एतद् हि परम तेजः सतत परमं तपः ॥ ५ ॥

36 वाकेनरूपता । 37 सदा । 38 स्वयं । 39 एतत्तु । 40 एतद्वै ।
† गणा जाता ।

इद श्रुत्वा महाख्यान परत्रेह न सीदति ।
यशस्य [41]धर्म्यमायुष्य तुष्टिपुष्टिप्रद परम् ॥ ६ ॥
आदिसर्गेऽथ वाराहे सम्पूर्णे मुनिसत्तमाः ।
शकरः प्राह सर्वेश वाराह जगता पतिम् ॥ ७ ॥

ईश्वर उवाच

यदर्थं भवता रूप वाराह कल्पित विभो ।
तत्ते पूर्णं कृत पृथ्वी यथावत् स्थापिता त्वया ॥ ८ ॥
सागराणा च सस्थान [42]नदीना च तथा क्षितेः ।
सृष्टिर्ब्रह्मकृता चापि सजाता त्वत्प्रसादतः ॥ ६ ॥
त्व हि सर्वमयो यज्ञमयस्तेजोमयस्तथा ।
गुरूणामथ सर्वेषा त्व गुरुस्त्व परात्परः ॥ १० ॥
त्वा वोढु न क्षमा पृथ्वी विशीर्णेव जगत्पते ।
यन्त्रिता शैलसघातैर्भवता स्थापितैः पुरा ॥ ११ ॥
तस्मात्त्व त्यज वाराह शरीर जगता पतेः ।
जगन्मय जगद्रूप जगत्कारणकारणम् ॥ १२ ॥
कस्त्वा चान्यः क्षमो वोढु वाराह ते वपुर्विभो ।
विशेषतस्त्वया पृथ्वी सकामा धार्षिता जले ।
स्त्रीधर्मिणी त्वत्तेजोभिः साधाद्गर्भं च दारुणम् ॥ २३ ॥
रजस्वला क्षमा गर्भं यमाधत्त जगत्पते ।
तस्माद्यस्तनयो भावी [43]सोऽप्यादास्यति दुर्यशः ॥ २४ ॥
एष [44]प्राप्यासुर भाव देवगन्धर्वहिंसकः ।
भविष्यतीति लोकेशः प्राह मा दक्षसन्निधौ ॥ २५ ॥
मलिनीरतिसजात दुष्टन्तेऽनिष्टकारकम् ।
कामुक त्यज लोकेश वाराह [45]कायमीदृशम् ॥ २६ ॥

---

41 धन्यम् । 42 आदान । 43 यास्यति, दुर्जय· ।
44 चास्यासुरो भावो । 45 कायमिरीतम् ।

त्वमेव श्रृष्टिस्थित्यन्तकारको लोकभावनः ।
काले प्राप्ते स्थितिं सृष्टिं सहारं च करिष्यसि ॥ १७ ॥
तस्माल्लोकहितार्थाय त्यक्त्वा कायं महाबल ।
काले प्राप्ते [46]पुनस्त्वन्य काय पोत्रं करिष्यसि ॥ १८ ॥

मार्कण्डेय उवाच

इति तस्य वचः श्रुत्वा शकरस्य महात्मनः ।
वाराहमूर्तिर्भगवान् महादेवमुवाच ह ॥ १६ ॥

श्रीभगवानुवाच

करिष्येऽहं तव वचस्त्व यथात्थमहेश्वर।
इम तु यज्ञवाराह काय त्यक्ष्ये न सशयः ॥ २० ॥
काले प्राप्ते पुनस्त्वन्यं काय वाराहमद्भुतम् ।
करिष्येऽह दुराधर्षं लोकाना भावनाय वै ॥ २१ ॥
इत्युक्त्वा स महाकायस्तत्रैवान्तरधीयत ।
जगत्गुरुर्जगत्स्रष्टा जगद्धाता जगत्पतिः ॥ २२ ॥
तस्मिन्नन्तर्हिते [47]देवे देवदेवो महेश्वरः ।
निज स्थान देवगणैः [48]स्वगणैश्च जगाम ह ॥ २३ ॥
वाराहोऽपि स्वय गत्वा लोकालोकाह्वयं गिरिम् ।
वाराह्या सह रेमे स पृथिव्या चारुरूपया ॥ २४ ॥
स [49]तया रममाणस्तु सुचिरं पर्वतोत्तमे ।
नावाप तोष लोकेशः पोत्री परमकामुकः ॥ २५ ॥
पृथिव्याः पोत्रीरूपाया रमयन्त्यास्ततः सुताः ।
त्रयो जाता द्विजश्रेष्ठास्तेषां नामानि मे श्रृणु ॥ २६ ॥
सुवृत्तः कनको घोरः सर्व एव महाबलाः ॥ २७ ॥
शिशवस्ते मेरुपृष्ठे काचने [50]वप्रसस्तरे ।
रेमिरेऽन्योन्यससक्ता गह्वरेषु सरस्सुः च ॥ २८ ॥

---

46 पुन॰ पोत्रं कायं त्वन्यं । 47 देवमहादेवोऽपि जातवान् । 48 जगाम स महेस्वर॰ । 49 तदा । 50 वप्रसंभवे ।

स तैः पुत्रैः परिवृतो वाराहो भार्यया स्वया ।
रममाणस्तदा कायत्याग [51]नैवागणद्विजाः ॥ २९ ॥
कदाचिच्चिच्शुभिस्तैस्तु सश्लिष्टः कर्दमान्तरे ।
चकार कर्दमक्रीडा भार्यया च महाबलः ॥ ३० ॥
सपंकलेपः शुशुभे वराहो मधुपिंगलः ।
सन्ध्याघनो यथातोय क्षरस्तोय तथाविधः ॥ ३१ ॥
स पुत्रैः परमप्रीतो भार्यया च पृथिव्यया ।
विरुज घरणीं रेमे [52]मध्यनिम्नाथ साभवत् ॥ ३२ ॥
अनन्तोऽपि समाक्रम्य कूर्मं स पृथिवीतले ।
[53]हरिं वहन् [54]भुग्नशिराः सातकोऽभूत्प्रपीडया ॥३३॥
सुवृत्तेन स्वर्णवप्र घोरेण कनकेन च ।
विदारित पोत्रघातैः [55]स्वर्ण-भग्नात्कृत समम् ॥ ३४ ॥
मेरुपृष्ठे यानि यानि सौवर्णानि द्विजोत्तमाः ।
रचितानि सुरैर्यत्नात्तानि भग्नानि तत्सुतैः ॥ ३५ ॥
मानसादीनि देवाना सरासि शिशवोऽथ ते ।
आविलानि तदा चक्रुः पोत्रघातैः समन्ततः ॥ ३६ ॥
पृथिवीवनितारूपा रमयामास पोत्रिणम् ।
स्थावरेण तु रूपेण दुःखमाप्नोति वै दृढम् ॥ ३७ ॥
सागराश्च सुवृत्ताद्यैरवगाह्य समन्ततः ।
[56]विकीर्णरत्नः पोत्रौघैः सर्व एवाकुलीकृताः ॥ ३८ ॥
इतस्ततश्च शिशुभिः क्रीडद्भिः पोत्रिभिस्तदा ।
जगन्ति तत्र भग्नानि नद्यः कल्पद्रुमास्तथा ॥ ३९ ॥
जानन्नपि जगद्भर्ता वराहः स्वयमेव[57] हि ।
जगत्पीडा सुतस्नेहाद्वारयामास नैव तान् ॥ ४० ॥

---

51 . धिया । 52 मध्यनिम्ना यथाभवत् । 53 भारं ।
54 भग्न । 55 तन्तुरपहृत समम् । 56 शीर्णवत्सा पोत्राघातै ।
57 न ।

सुवृत्तः कनको घोरो यदागच्छति वै दिवम् ।
तदा देवगणा भीताः प्राद्रवन्ति दिशो दश ॥ ४१ ॥

एव सुतैर्भार्यया यज्ञपोत्री
क्रीडस्तुष्टिं नाप काञ्चित् कदाचित् ।
नित्य नित्यं वर्धते तस्य कामः
काय त्यक्तु नैच्छदेप[58] प्रदिष्टः ॥ ४२ ॥

इति श्रीकालिकापुराणे वाराहशंकर सवादे ऊनत्रिंशोऽध्याय ॥ २९ ॥

त्रिंशोऽध्यायः

मार्कण्डेय उवाच

ततो देवगणाः सर्वे सहिता देवयोनिभिः ।
शक्रेण सहिता मन्त्र चक्रुः सम्यग्जगद्धितम् ॥ १ ॥
ततो निश्चित्य ते सर्वे शक्राद्या मुनिभिः सह ।
शरण्य शरण जग्मुर्नारायणमज विभुम् ॥ २ ॥
तं समासाद्य गोविन्द वासुदेव जगत्पतिम् ।
प्रणम्य सर्वे त्रिदशास्तुस्टुवुर्गरुडध्वजम् ॥ ३ ॥

देवा ऊचुः

नमस्ते देव देवेश जगत्कारण[59]कारक ।
[60]कालस्वरूपिन् भगवन् प्रधानपुरुषात्मक ॥ ४ ॥
स्थूल सूक्ष्म जगद्व्यापिन् परेश पुरुषोत्तम ।
त्व कर्ता सर्व[61]भूताना त्व पाता त्व विनाशकृत् ॥ ५ ॥
त्व हि मायास्वरूपेण सन्मोहयसि वै जगत् ।
यद्भूत यच्च वै भाव्यं यदिदानीं प्रवर्तते ॥ ६ ॥

---

58 प्रतीष्ट । 59 कारण । 60 कालस्वरूपिभगवान् प्रधान-पुरुषात्मकः ।
61 जगतां ।

तत् सर्वं परमेश त्व स्थावर जगम तथा ।
अर्थार्थिना त्वमर्थस्तु कामः कामार्थिना तथा ॥ ७ ॥
त्व हि धर्मार्थिना धर्मोमोक्षो निर्वाणमिच्छताम् ।
त्व कामुकस्त्व[62]मेवार्थो धार्मिकस्त्व सदागतिः ॥ ८ ॥
त्वद्वक्त्राद् ब्राह्मणा जाता बाहुजाः क्षत्रियास्तव ।
ऊर्वो वैश्यास्तथा शूद्राः [63]पादाभ्या तव निर्गताः ॥ ९ ॥
सूर्यो नेत्रात्तव विभो मनोजश्चन्द्रमास्तव ।
श्रवणात् पवनो जातो दश प्राणास्तथापरे ॥ १० ॥
ऊर्ध्व [64]स्वर्गादिभुवन तव शीर्षादजायत ।
तव नाभेस्तथाकाश क्षितिः पादतलादभूत् ॥ ११ ॥
[65]कर्णाभ्या ते दिशो जाता जठरात् सकल जगत् ।
त्व हि मायास्वरूपेण सम्मोहयसि वै जगत् ॥ १२ ॥
निर्गुणो गुणवास्त्व हि शुद्ध एकः परात्परः ।
उत्पत्तिस्थितिहीनस्त्व त्वमच्युतगुणाधिकः ॥ १३ ॥
आदित्यैर्वसुभिर्देवैः साध्यैर्यक्षैर्मरुद्गणैः ।
त्व चिन्त्यसे जगन्नाथ मुनिभिश्चमुमुक्षुभिः ॥ १४ ॥

त्वां वै चिदानन्दमय विदन्ति
विशेषविज्ञा मुनयो विभोगाः ।
त्वमेव ससार महीरुहस्य
वीज [66]जल स्थानमथो फल च ॥ १५ ॥
त्वं पद्मया पद्माकरो विभासि
वरासिचक्राब्जधनुर्धरस्त्वम् ।
त्वमेव तार्क्ष्ये प्रतिभासि नित्य
स्वर्णाचले तोययुतो [67]यथाब्दः ॥ १६ ॥

62 अर्थो । 63 पद्भ्यां । 64 कर्णाग्रात् । 65 भवन ।
66 दलं । 67 यत्राभ्र० ।

त्वमेव पीताम्बरशंकराब्जजा-

स्त्व सर्वमेतन्न च किंचिदन्यत् ।

न ते गुणा[68] नः परिचिन्तनीया

विधेर्हरस्यापि दिशा पतीनाम् ।

भीतेन भक्त्या शरण प्रपन्ना

गता वय नः परिरक्ष विष्णो ॥ १७ ॥

मार्कण्डेय उवाच

इति स्तुतो देवदेवो भूतभावनभावनः ।

सेन्द्रैर्देवगणैरूचे तान् सर्वान्मेघनिस्वन । १८ ॥

श्रीभगवानुवाच

यदर्थमागता यूय यद्वा भयमुपस्थितम् ।

[69]तत्र यद्वा मया कार्यं तद् देवास्तूर्णमुच्यताम् ॥ १९ ॥

देवा ऊचुः

शीर्यते वसुधा नित्य क्रीडया यज्ञपोत्रिणः ॥

लोकाश्च सर्वे सक्षुब्धा नाप्नुवन्त्युपशान्त्वनम् ॥ २० ॥

शुष्क तुम्बीफल घातैर्यथा जर्जरता गतम् ।

वराहक्षुरघातेन तथा जर्जरिता क्षितिः ॥ २१ ॥

तस्य ये वा त्रयः पुत्राः कालाग्निसमतेजसः ।

सुवृत्तः कनको घोरस्तैश्चाप्याधाशितं जगत् ॥ २२ ॥

तेषा कर्दमलीलाभिः सरांसि जगतां पते ।

मानसादीनि भग्नानि प्रकृतिं यान्ति नाधुना ॥ २३ ॥

भग्नास्तैर्देवतरवो मन्दाराद्या महाबलैः ।

देव नाद्यापि रोहन्ति [70]फल पुष्प दल च वा ॥ २४ ॥

यदा त्रिकूटमारुह्य ते [71]सुवृत्तादयस्त्रयः ।

---

68 नोपविचिन्तनीया । 69 यत्र । 70 पत्र पुष्प फल च वा ।

71 · दया परा. ।

प्लुत कृत्वा महाबाहो पतन्ति लवणार्णवे ।
तदा तत् क्षुब्धतोयौघैः प्लाव्यते सकला मही ॥ २५ ॥
उत्प्लवन्ति जनाः सर्वे प्रयान्ति च दिशो दश ।
जीवित रक्षमाणास्ते प्रयान्ति च दिशो दश ॥ २६ ॥
यदा त्रिविष्टप यान्ति यज्ञवाराह-पुत्रकाः ।
इतस्ततस्तदा भग्ना देवाः शान्ति न लेभिरे ॥ २७ ॥
सर्वे तैः पर्वताः पुत्रैर्वराहस्य जगत्पते ।
क्रीडद्भिः शिखरे नीता भूरिभागमधोगतिम् ॥ २८ ॥
एव विक्रीडता तेषा क्रीडाभिः सकल जगत् ।
नाशमायाति वैकुण्ठ तस्माद्रक्ष जगत्प्रभो ॥ २९ ॥

मार्कण्डेय उवाच

इति तेषा निगदता श्रुत्वा वाक्य जनार्दनः ।
उवाच शकर देव ब्रह्माण च विशेषतः ॥ ३० ॥
यत्कृते देवताः सर्वाः प्रजाश्च सकला इमाः ।
प्राप्नुवन्ति महद्दुःख शीर्यते सकल जगत् ॥ ३१ ॥
वाराह तदह काय त्यक्तुमिच्छामि शकर ।
निर्वशशक्त त त्यक्तु स्वेच्छया न हि शक्यते ।
त्व त्याजयस्व त काय यत्नाद्वा शकराधुना ॥ ३२ ॥
त्वमाप्यायस्व तेजोभिर्ब्रह्मन् स्मरहर मुहुः ।
[72]आप्यायन्तु तथा देवाः शकरो हन्तु पोत्रिणम् ॥ ३३ ॥
रजस्वलायाः ससर्गाद्विप्राणा मारणात्तथा ।
कायः पापकरो भूतस्त त्यक्तु युज्यतेऽधुना ॥ ३४ ॥
प्रायश्चित्तैरपैत्येनः प्रायश्चित्तमह ततः ।
चरिष्यामि तदर्थ मे तनुर्यत्नेन शाम्यताम् ॥ ३५ ॥

---

72 यात्मान् मा । 73 आप्यायाय ।

प्रजा पाल्या मम सदा सा हि सीदति नित्यशः ।
मत्कृते प्रत्यहं तस्मात् त्यक्ष्ये कायं प्रजाकृते ।। ३६ ।।

मार्कण्डेय उवाच

इत्युक्तौ वासुदेवेन तदा तौ ब्रह्मशङ्करौ ।
त्वया यथोक्तं तत्कार्यमिति गोविन्दमूचतुः ।। ३७ ।।
वासुदेवोऽपि तान् सर्वान् विसृज्य[74] त्रिदशास्तथा ।
वाराहं तेज आहर्तुं स्वयं ध्यानपरोऽभवत् ।। ३८ ।।
शनैः शनैर्यदा तेज आहरत्येष माधवः ।
तदा देहं तु वाराहं सत्त्व[75] हीनमजायत ।। ३९ ।।
तेजोहीनं यदा देहं ज्ञातं सर्वै[76]स्तदामरैः ।
आससाद तदा देवो यज्ञवाराहमद्भुतम् ।। ४० ।।
ब्रह्माद्यास्त्रिदशाः सर्वं महादेवमुमापतिम् ।
अनुजग्मुस्तदा तेज आधातुं स्मरशासने ।। ४१ ।।
ततः सर्वैर्देवगणैः स्वं स्वं तेजो वृषध्वजे ।
आदधे तेन बलवान् सोऽतीव समजायत ।। ४२ ।।
ततः शरभरूपी स तत्क्षणात् गिरिशोऽभवत् ।
ऊर्ध्वाधोभागतश्चाष्टपादयुक्तः सु[77]भैरवः ।। ४३ ।।
द्विलक्षयोजनोच्छ्रायः सार्धलक्षैकविस्तृतः ।
ऊर्ध्वं वाराहकायस्तु लक्षयोजनं विस्तृतः ।। ४४ ।।
लक्षार्धविस्तृतः पार्श्वे वर्धमानस्तदाभवत् ।
ततः शरभरूपं तं महादेवमुमापतिम् ।। ४५ ।।
ददर्श यज्ञपोत्री स स्पृशन्तं शिरसा विधुम् ।
सुदीर्घनासानखरकृष्णागारसमप्रभम् ।। ४६ ।।
दीर्घवक्त्रं महाकायमष्टदंष्ट्रासमन्वितम् ।
बिभ्रतं स-सटं पुच्छं दीर्घकर्णं भयानकम् ।। ४७ ।।

---

74 त्रिदिवस्तथा, त्रिदशास्तदा । 75 शक्तिहीनम् । 76 सर्वैस्तदामरैः ।
77 स भैरवः ।

चतुरः पृष्ठतः पादानधरे चतुरस्तथा ।
कुर्वन्त घोरमारावमुत्पतन्त पुनःपुनः ॥ ४८ ॥
तमायान्त ततो दृष्ट्वा क्रोधाद्धावन्तमञ्जसा ।
सुवृत्तः कनको घोर आसेदुः क्रोधमूर्च्छिताः ॥ ४९ ॥
तमासाद्य महाकाय शरभ भ्रातरस्त्रयः ।
उच्चिक्षिपुस्ते[78] युगपत् पोत्रघातैर्महाबलाः ॥ ५० ॥
यावत् प्रमाणः शरभस्तत्प्रमाणास्तदाभवन् ।
शरभोत्क्षेपसमये मायया पोत्रिणस्त्रयः ॥ ५१ ॥
तेषा पोत्रप्रहारेण प्रोत्क्षिप्तः शरभस्तदा ।
पपात पृथिवीप्रान्ते गम्भीरे तोयसागरे ॥ ५२ ॥
तस्मिन् निपतिते तत्र सागरे मकरालये ।
उत्पत्य ते त्रयः पेतुः क्रोधात्तस्मिन् महोदधौ ॥ ५३ ॥
सुवृत्ते कनके घोरे पतिते सागराम्भसि ।
वराहोऽपि सुतस्नेहात् क्रोधाच्च द्विजसत्तमाः ।
उत्पत्य सहसा तस्मिंस्तोयराशौ पपात ह ॥ ५४ ॥
उत्पतन्तस्तदा ते वै वाराहाः शरभस्तथा[79] ।
वभञ्जुर्दिवि देवास्तु नक्षत्राणि ग्रहास्तथा ॥ ५५ ॥
केचित्तु निहता देवा भूमौ पेतुश्च केचन ।
केचिच्च ज्ञानिनो देवा महर्लोकमुपाश्रिताः ॥ ५६ ॥
नक्षत्राणि विमानात्तु पतितानि महीतले ।
अदृश्यन्त द्विजश्रेष्ठा ज्वालामालाकुलाणि वै ॥ ५७ ॥
तेषामुत्पतने वेगो योऽभूत् परमदारुणः ।
तेनातिवेगो जनितो वायुः परमदारुणः ॥ ५८ ॥
वायुना तेन नुन्नास्तु पर्वताः पृथिवीतले ।
केचिच्छैलाः पर्वतेषु पतिताः पुनरेव[80] ते ॥ ५९ ॥

---

78 उच्चिक्षिपुर्वै । 79 शरभस्तदा । 80 हि ।

[81]विमृद्य वृक्षान् जन्तूंश्च निपेतुश्च पुनःपुनः ।
केचित्तु पर्वताघातैर्नृत्यमाना [82]महीतले ॥ ६० ॥
बभञ्जुरचलाश्चापि व्रजन्तो बहुशः प्रजाः ।
पर्वता समदृश्यन्त वातवेगेन भूतले ॥ ६१ ॥
संघट्टमानास्तेभ्योऽन्ये[83] व्रजन्त इव तेऽचलाः ।
अम्भोनिधौ पतद्भिस्तैर्वाराहैः शरभेण च ॥ ६२ ।
पर्वतैश्च महातुगैरुत्क्षिप्तास्तोयराशयः ।
तेषा प्रपातवेगेन क्षिप्तेषु जलराशिषु ॥ ६३ ॥
निस्तोया इव सजाताः [84]क्षण वै सर्वसागराः ।
तैः सर्वैरुदकैः क्षिप्तैः पृथिवीतलमागतैः ॥ ६४ ॥
उत्प्लाविताः प्रजाः सर्वाः क्षणाज्जग्मुः क्षय ततः ।
प्लवमानाः प्रजास्तोये म्रियमाणाः समन्ततः ॥ ६५ ॥
हा पितस्त्वथ हा तात[85] हा मातर्हा सुतेति च ।
विलपन्ति स्म करुण भीताश्चार्तामुमूर्षवः ॥ ६६ ॥
यस्मिन् देशे निपतितो वराहैः शरभः सह ।
तत्रवाधोगता भूमिः पादवेगेन दारिता ॥ ६७ ॥
अपरः पृथिवीप्रान्त उत्थितः पर्वतैः सह ।
ससर्ज जनलोकेषु चला तेषा प्रभञ्जनैः[86] ॥ ६८ ॥
जनलोकेषु[87] सयुक्ता पृथिवीं शरभस्तदा ।
निःश्रेणीमिव[88] सम्बद्धामचलामपि पोत्रिभिः ।
ददर्श विस्मयाविष्टः स भीतः श्रान्तपीडितः ॥ ६९ ॥
ततस्ते युयुधुः सर्वे पोत्राघातेन पोत्रिणः ।
खुरप्रहारैर्दंष्ट्राभिर्गात्रक्षेपैश्च दारुणैः ॥ ७० ॥

---

81 निपेतुश्च प्रपेतुश्च पेतर्भेजुस्तथापरे ।
सागरे पतिता केचित् गिरयो द्विजसत्तमा' ॥
82 क्षितितले । 83 स्येऽन्येऽन्ये । 84 तदा । 85 भ्रात ।
86 पराक्रमैः । 87 जलालोकेषु । 88 निष्प्राणामिवच ।

शरभोऽप्यथ [89] दृष्ट्राग्रैर्नखैस्तीक्ष्णैः खुरैस्तथा ।
लांगुलस्य प्रहारैस्तु तुण्डघातैर्महास्वनैः ॥ ७१ ॥
चतुर्भिः पोत्रिभिस्तैस्तु स एकः शरभो महान् ।
एकान्त योधयामास सहस्र परिवत्सरान् ॥ ७२ ॥
तेषा प्रहारैर्वेगैश्च भ्रमणैश्च[90] गतागतैः ।
[91]आस्फोटितैस्तथारावैर्देहपातैः पृथक् पृथक् ।
पाताले पन्नगाः सर्वे विनेशुः कद्रुजैः सह ॥ ७३ ॥
ततस्ते सागर त्यक्त्वा पृथिवीमध्यमागता. ।
परस्पर युध्यमाना ततोऽभूत् पृथिवी समा ॥ ७४ ॥
शेषोऽपि महता यत्नाद्बलेनाष्टभ्यकच्छपम् ।
दधार पृथिवीं दुःखैर्भग्नशीर्षः प्रतापिताः ॥ ७५ ॥
अनन्ते वामनीभूते समत्व पृथिवीतले । /
गतेऽम्भोभिश्चलद्भिश्च पर्वतैः सर्वजन्तुषु ॥ ७६ ॥
नष्टेषु युध्यमानेषु त्रिपोत्रिशरभेषु च ।
सागरैराप्लुते सर्वजगत्यापोमये हरिम् ॥ ७७ ॥
चिन्ताविष्टः सुरज्येष्ठः उवाचाथ पितामहः ।
भगवन् भुवन सर्वं ससुरासुरमानुषम् ॥ ७८ ॥
विध्वस्त पृथिवी शीर्णा नष्टाः स्थावरजगमाः ।
देवदानवगन्धर्वा दैत्याश्चापि सरीसृपाः ।
विध्वस्ता जगता नाथ मुनयश्च तपोधनाः ॥ ७९ ॥
त्व पालकोऽसि सर्वेषा त्वमेव जगतः प्रभुः ।
तस्मात् पालय नः सर्वान् पृथिवीं च जगत्पते ॥ ८० ॥
त्वमेव काय वाराह स्वयमेवोपसहर ।
सस्थापय महाबाहो पृथिवीं च चराचरैः ॥ ८१ ॥

मार्कण्डेय उवाच

इति तस्य वचः श्रुत्वा ब्रह्मणोऽथ जनार्दनः ।
यत्न चक्रे तदा सर्वं सस्थापयितुमच्युतः ॥ ८२ ॥

---

89 शरभस्तदा । 90 दन्ताघातै । 91 आस्फालनै. ।

ततो हरी रोहितमत्स्यरूपी
भूत्वा मुनीन् सप्त तदा सवेदान्।
अधाच्छ्रुते रक्षणतत्परो जगद्-
हिताय सर्वश्रुतिकोविदावरान् ॥ ८३ ॥
वसिष्ठमत्रिं त्वथ कश्यपं च
विश्वादिमित्रं च सगौतमं मुनिम्।
महातपस्थं जमदग्निमुख्य[1]-
तथा भरद्वाजमुनिं तपोनिधिम् ॥ ८४ ॥
निधाय पृष्ठे स हि तोयमध्ये
स्थितो महानौप्रवरे मुनीन्द्रान्।
ततः शिवं सान्त्वयितुं जनार्दनो
जगाम यस्मिन् युयुधे स पोत्रिभिः ॥ ८५ ॥
श्रान्तं वराहैरतिपोत्रघट्टनै-
र्निपिडीतं व्यात्तमुखं श्वशान्तम्।
अथागतं वीक्ष्य हरिं वराहः
सस्मार पूर्वां नरसिंहमूर्तिम् ॥ ८६ ॥
स्मृतस्तदा तेन समाजगाम
सखा वराहस्य हिते नृसिंहः।
तमागतं वीक्ष्य तदा नृसिंहं
तदीयकायान् निजतेज आदात् ॥ ८७ ॥
दृष्टं वराहैः शरभेण तेजो
यत् सूर्यतुल्यं प्रविवेश विष्णौ।
विज्ञाय तेजोरहितं नृसिंहं
ससर्ज निश्वासचयं वराहः ॥ ८८ ॥
ततस्तु जाता बहवो वराहा
बहुप्रमाणाद्भुततीक्ष्णदंष्ट्राः।

---

92 . मुख्यम्।

ते वै वराहा' शरभं[93]गिरिशं
मायाविनो वीतभयास्तुदन्तः ॥ ८६ ॥
सम नसिंहेन तदापि युद्ध[94]
चक्रुर्ममर्दुश्च भृश गिरीशम् ।
क्षण महापक्षिसमानरूपाः
क्षण तु गावस्तुरगा नराश्च ॥ ६० ॥
क्षण नृसिंहाश्च वराहरूपा
गोमायवो वैकृतिका क्षण ते ।
अनेकरूपाणि भयकराणि
वितन्यमानाति रणे वराहैः ॥ ६१ ॥
निरीक्ष्य भर्गं च निपीडित तै-
रथासदन्माधवस्त गिरीशम् ।
परपर्श विष्णुर्गिरिश करेण
तेजो न्यधात्तत्र निज पुनः स ॥ ६२ ॥

अथ सस्पृष्टमात्रः स विष्णुना प्रभविष्णुना ।
अतीव मुदितो हृष्टो बलवान् समजायत ॥ ६३ ॥
अथोच्चैः शरभो नाद ननाद बलवद्दृढम् ।
आपूरितानि येनैतद्भुवनानि चतुर्दश ॥ ६४ ॥
नदतस्तस्य वदनाच्छीकरा ये विनिःसृताः ।
ततो गणाः समभवन् महाकाया महौजसः ॥ ६५ ॥
यथा वराहनिश्वासान्नानारूपधरा गणाः ।
वराहास्तादृशा एते ततोऽप्यतिबलाः पुनः ॥ ६६ ॥
श्ववराहोष्ट्ररूपाश्च प्लवगोमायुगोमुखाः ।
ऋक्षमार्जारमातगशिशुमारस्वरूपिणः ॥ ६७ ॥
सिंहव्याघ्रमुखाः केचित् केचित् सर्पाखुमूर्तयः ।
हयग्रीवा हयमुखा महिषाकृतयः परे ॥ ६८ ॥

---

93 सततं । 94 तदातियुक्त ।

अन्ये तु मनुजाकारा मृगमेषमुखाः पुनः[95] ।
कबन्धा हीनपादाश्च विहस्ता बहुपाणयः ॥ ९९ ॥
केचित्तु शरभाकाराः कृकलासमुखाः परे ।
मनुष्यवक्त्रा ग्राहवक्त्रा ह्रस्वा दीर्घाबलाः कृशाः ॥ १०० ॥
चतुःपादाष्टपादाश्च त्रिपादा द्विपदाः [96]परे ।
एकपादा भूरिहस्ता यक्षकिंपुरुषोपमाः ॥ १०१ ॥
पश्वाकाराः पक्षयुक्ताः लम्बोदरमहोदराः ।
दीर्घोदराः स्थूलकेशा बहुकर्णा विकर्णकाः ॥ १०२ ॥
स्थूलाधरा दीर्घदन्ता दीर्घश्मश्रुधराः परे ।
ये सन्ति प्राणिनो विप्रा भुवनेषु समन्ततः ॥ १०३ ॥
चतुर्दशसु [97]ते तेषां रूपेण समता [98]गताः ।
नेहास्ति भुवने जन्तुः स्थावरो वा जगत् पुनः ॥ १०४ ॥
यत्तुल्यरूपेण गणो न जातः शंकरस्य च ।
ते भिन्दिपालैः खड्गैश्च परिघैस्तोमरैस्तथा ॥ १०५ ॥
शकुलासिगदाभिश्च पाशैः शकुभिरेव च ।
खट्वाङ्गैश्च त्रिशूलैश्च कपालैः शक्तिभिस्तथा ॥ १०६ ॥
दात्रैः सृणिभिरीषाग्रैर्यष्टिभिश्चत्रिकण्टकैः ।
प्रासैः परशुभिर्बाणैः कोदण्डैरतिभीषणाः[99] ॥ १०७ ॥
जटाचन्द्रकलायुक्ताः सर्व एव महाबलाः ।
केचिद्भर्गस्य रूपेण वाहनेनाथ भूषणैः ॥ १०८ ॥
तुल्या जटार्धशुभ्राशुशुभ्रशीर्षा महाबलाः ।
अर्धनारीश्वराः केचिद् यथारुद्रस्तथैव ते ॥ १०९ ॥
केचित्तु चारुरूपेण मोहनेन[100] मनोभुवः ।
तुल्येन वनितासधैः सम जाता रतोत्सुकाः ॥ ११० ॥

95 मृगमेषमुखा परे । 96 तथा । 97 तत् । 98 गत
99 भीषणैः । 100 शोभनेन ।

आकाशचारिणः सर्वे सर्वे स्वच्छन्दगामिनः ।
नीलोत्पलदलश्यामाः शुक्लाः केचन लोहिताः ॥ १११ ॥
रक्ताः पीतास्तथा चित्रा हरिताः कपिलाः परे ।
अर्धपीता ह्यर्धरक्ता नीलार्धा धवलाः परे ॥ ११२ ॥
सकृष्णपीताः[1] शुक्लेन कृष्णेनार्धेन रञ्जिताः ।
एकवर्णा द्विवर्णाश्च त्रिवर्णाश्च तथापरे ॥ ११३ ॥
चतुःषट्पचवर्णाश्च केचिद् दशगुणाः[2] द्विजाः ।
डिण्डिमान् पटहान् शखान् भेर्यानकसकाहलान् ॥ ११४ ॥
मण्डूकान् झर्झराश्चैव झर्झरीश्च समर्दलाः ।
वीणास्तन्त्रीः पंचतन्त्री शकटान् दर्दरास्तथा ॥ ११५ ॥
गोमुखानानकान् कुण्डान् सतालकरतालिकान् ।
वादयन्तो गणाः सर्वे हसन्तश्च मुहुर्मुहुः ॥ ११६ ॥
वराहाभिमुखा भूत्वा तस्थुस्ते हृष्टमानसाः ।
तान् सर्वानाह शरभो भगवान् वृषभध्वजः ॥ ११७ ॥
निघ्नतैतान् वराहस्य गणान् वै क्रूरकर्मभिः ।
क्रूरदृष्ट्या क्रूरयुद्धैः क्रूरा भूत्वा महाबलाः ॥ ११८ ॥
ततस्ते वै गणाः सर्वे नानाकार-वरायुधाः ।
सार्धं वराहस्य गणैर्युयुधुः क्रूरदर्शनाः ॥ ११९ ॥
आकाशचारिणः सर्वे जलपूर्णं जगत्त्रयम् ।
ते परित्यज्य युयुधुर्वियत्येवोभये गणाः ॥ १२० ॥
ततः क्षणाद् वराहास्य गणान् सर्वान् महाबलान् ।
हरस्य प्रमथा जघ्नुर्महावाता इवाम्बुदान् ॥ १२१ ॥
हतेषु तेषु वीरेषु[3] वाराहेषु गणेष्वथ ।
दध्यौ वराहः किमिति प्राक् पश्चाद्वृत्तमास्थितम् ॥ १२२ ॥
अथ चिन्तयतस्तस्य स्वान्त गत्वा जनार्दनः ।
तत् सर्वं ज्ञापयामास वराहवपुषो हितम् ॥ १२३ ॥

---

1 सचित्रकृष्ण. । 2 बहुगणा । 3 जन्तष ।

ततो देह-परित्याग कर्तुं समयतस्तदा ।
ततो दंष्ट्राग्रघातेन नरसिंह महाबलः ॥ १२४ ।
शरभो भगवान् भर्गो द्विधा मध्ये चकार ह ।
नरसिंहे द्विधाभूते नरभागेण तस्य च ॥ १२५ ॥
नर एव समुत्पन्नो दिव्यरूपी महान्ऋषिः ।
तस्य पञ्चास्यभागेन नारायण इतिश्रुतः ॥ १२६ ।
अभवत् सुमहातेजा मुनिरूपी जनार्दन ।
नरो नारायणश्चोभौ सृष्टिहेतू महामती ॥ १२७ ॥
द्वयोः प्रभावो दुर्धर्षः शास्त्रे वेदे तपःसु च ।
तौ नावि विनिधायाथ मत्स्यमूर्त्यवितात्मनि ॥ १२८ ॥
आससाद पुनर्देवो वाराहः शरभ हरिः ।
वपुस्त्यागो मयावश्य कर्तव्यो जगता हिते[4] ॥ १२९ ॥
इति पूर्वं प्रतिज्ञात तदर्थोऽय समुद्यमः ।
क्रियते हरिणा साध शम्भुना ब्रह्मणापि च ॥ १३० ॥
इति सञ्चिन्त्य स तदा शूकरः परमेश्वरः ।
जगाद शरभं देव महादेव महाबल । १३१ ॥
जहि मा त्व महादेव त्यक्ष्ये कायमसशयम् ।
हिताय सर्वजगता देवानामपि ऋत्विजाम् ॥ १३२ ॥
मम देहप्रनीकौधैर्यज्ञ यूप प्रकल्प्य च[5] ।
पृथक् पृथक् महाभागा सशामित्र श्रुवादिकम् ॥ १३३ ॥
ततस्ते तान् त्रिभिः पुत्रैर्विधध्व जगता हिते ।
कनकेन सुवृत्तेन घोरेण च जगन्मयीम् ॥ १३४ ॥
यज्ञाद् देवाः प्रजाश्चैव यज्ञादन्नान् नियोगिनः ।
सर्वं यज्ञान् सदा भावि सर्वं यज्ञमय जगत् ॥ १३५ ॥
यमिम पृथिवीगर्भमाधत्त मलिनी पुनः ।
तमुत्पन्नं स्वय देवीं चिरं सगोपयिष्यति ॥ १३६ ॥

4 मया कार्यं सर्व्वेषा जगता हित । 5 प्रतिकोषे यज्ञ यूप प्रकल्प्यत ।

प्राप्ते काले यदा देवी तदायुष्मान् सुभाषते ।
वधस्तस्यातिमारार्ता तदैवैन हनिष्यथ ॥ १३७ ॥
भारतीं पृथिवीं मग्ना यदाधः शतयोजनम् ।
शृ गिवराहरूपेण प्रोद्धरिष्ये तदा त्विमाम् ॥ १३८ ॥
कृतकृत्य तु त काय त्याजयिष्यति ते सुतः ।
यो भावी देवसेनानी रुद्रात् षाण्मातुराह्वयः ॥ १३६ ॥
एव यज्ञवराहे तु भाषमाणे महाबले ।
निःसृत्य सुमहत्तेजो ज्वालामालातिदीपितम्[6] ॥ १४० ॥
सूर्यकोटिप्रतीकाश वराहवपुषस्तदा ।
हरेर्भगवतो देहे विवेश महदद्भुतम् ॥ १४१ ॥
तस्मिन् विष्णौ प्रविष्टे तु वाराहे तेजसि द्विजाः ।
सुवृत्तात् कनकाद्घोरात्तेज आदात् स्वय हरिः ॥ १४२ ॥
तेषामपि शरीरेभ्यस्तेजोभागः पृथक् पृथक् ।
विनिःसृत्य विनिःसृत्य ज्वालामालातिदीपितः । १४३ ॥
प्रविवेश हरेः काये यथा तेषा पितुस्तथा ।
ततो हरिश्च ब्रह्मा च महादेवश्च तद्वचः ॥ १४४ ॥
वराहस्य प्रतिश्रुत्य ओमित्युक्त्वा पुनः पुनः ।
तेषा कायपरित्यागे अकार्षुर्यत्नमुत्तमम् ॥ १४५ ॥
ततस्तुण्डप्रहारेण शरभः कण्ठमध्यतः ।
भित्वा वपुर्वराहस्य पातयामास तज्जले ॥ १४६ ॥
त पातयित्वा प्रथम सुवृत्त कनक तथा ।
घोर च कण्ठदेशेषु भित्वा भित्वा जघान ह ॥ १४७ ॥
त्यक्तप्राणास्तु ते सर्वे पेतुस्तोये महार्णवे ।
जले शब्द वितन्वानाः कालानलसमत्विषः ॥ १४८ ॥
पतितेषु वराहेषु ब्रह्माविष्णुर्हरस्तथा ।
सृष्ट्यर्थं चिन्तयामासुः पुनरेव समागताः ॥ १४९ ॥

6 विभीषणम् ।

हरस्य तु गणाः सर्वे तदा भर्गं समागताः ।
उपतस्थर्महाभागाश्चतुर्भागेन भाजिताः ॥ १५० ॥

षट्त्रिंशत्तु सहस्राणि प्रमथा द्विजसत्तमाः ।
तत्रैकत्र सहस्राणि भागे षोडश संस्थिताः ॥ १५१ ॥

नानारूपधरा ये वै जटाचन्द्रार्धमण्डिताः ।
ते सर्वे सकलैश्वर्ययुक्ता ध्यानपरायणाः ॥ १५२ ॥

योगिनो मदमात्सर्यदम्भाहङ्कार-वर्जिताः ।
क्षीणपापा महाभागाः शम्भोः प्रीतिकराः पराः ॥ १५३ ॥

न ते परिग्रहं रागं काङ्क्षन्ति स्म कदाचन ।
संसार-विमुखाः सर्वे यतयो 'योगतत्पराः ॥ १५४ ॥

ध्यानावस्थं महादेवं परिवार्य धृतव्रताः ।
कृत्वा परिषदं रुच्या तिष्ठन्ति विगतक्लमाः ॥ १५५ ॥

यदैव[7] परमं ज्योतिश्चिन्तयत्यम्बिकापतिः ।
तदैव ते पारिषदाः सर्वे संवेष्टयन्ति तम् ॥ १५६ ॥

ते षोडश समाख्याताः कोटयो ये यतव्रताः[8] ।
सिंहव्याघ्रादि-सारूप्या अणिमादिसमायुताः ॥ १५७ ॥

अपरे कामिनः शम्भोः सुनर्मसचिवाः स्मृताः ।
विचित्ररूपाभरणा जटाचन्द्रार्धमण्डिताः ॥ १५८ ॥

हरस्य तुल्यरूपेण विशदा वृषभध्वजाः ।
उमासदृशरूपाभिः प्रमदाभिः समागताः ॥ १५९ ॥

विचित्रमाल्याभरणा दिव्यस्रग्गन्धभूषिताः ।
उमासहायं क्रीडन्तमनुगच्छन्ति भूषिताः ॥ १६० ॥

शृङ्गारवेषाभरणा अष्टौ ते कोटयो गणाः ।
अर्धनारीश्वराश्चान्ये ह्यर्धनारीश्वरं हरम् ॥ १६१ ॥

---

7 सदैव । 8 धृतव्रता ।

ध्यानस्थ प्रविविशुस्ते तुल्यरूपा हरस्य ये ।
उमासहायो हि यदा रमते ससुख हरः ॥ १६२ ॥
अर्धनारीशरीरास्तु द्वारपाला भवन्ति ते ।
आकाशमार्गे गच्छन्तमनुगच्छन्ति नित्यशः ॥ १६३ ॥
ध्यानस्थ परिचर्यन्ति सलिलादिभिरीश्वरम् ।
नानाशस्त्रधराः शम्भोर्गणास्ते प्रमथाः स्मृताः ॥ १६४ ॥
प्रमथ्नन्ति च युद्धेषु युध्यमानान् महाबलान् ।
ते वै महाबलाः शूराः सख्यया नव कोटयः ॥ १६५ ॥
अपरे गायनास्तालमृदगपणवादिभिः ।
नृत्यन्ति वाद्य कुर्वन्ति गायन्ति मधुरस्वरम् ॥ १६६ ॥
नानारूपधरास्ते वै सख्यया कोटयस्त्रयः ।
सततं चानुगच्छन्ति विचरन्त महेश्वरम् ॥ १६७ ॥
सर्वे मायाविनः सूराः सर्वे शास्त्रार्थपारगाः ।
सर्वे सर्वत्र सर्वज्ञाः सर्वे सर्वत्रगाः सदा ॥ १६८ ॥
मुहूर्तात् सर्वभुवन गत्वा यान्ति पुनर्भवम्[9] ।
अणिमाद्यष्टकैश्वर्ययुक्तास्ते वै महाबलाः ॥ १६९ ॥
अपरे रुद्रनामानो जटाचन्द्रार्धमण्डिताः ।
देवेन्द्रस्य नियोगेन वर्तन्ते त्रिदिवे सदा ॥ १७० ॥
तेषा सख्या चैककोटिस्ते सर्वे बलवत्तराः ।
कुर्वन्ति हि सदा सेवा हरस्य सतत गणाः ॥ १७१ ॥
विस्मयन्ति च पापिष्ठान् धर्मिष्ठान् पालयन्ति च ।
अनुगृह्णन्ति सतत धृतपाशुपतव्रतान् ॥ १७२ ॥
विघ्नाश्च सतत घ्नन्ति योगिना प्रयतात्मनाम् ।
षट्त्रिंशत् कोटयश्चैते हरस्य सकला गणाः ॥ १७३ ॥
वराहगणनाशार्थं हिताय जगता तथा ।
शकरस्याथ सेवायै समुत्पन्ना इमे गणाः ॥ १७४ ॥

---

9 पुन पुनः ।

वराहस्य गणान् दृष्ट्वा नरसिंह तथा हरिम् ।
स्वयं शरभरूपः सन् ध्यायन्नाद तदाकरोत् ॥ १७५ ॥
तच्छीत्करादुद्यतो जातास्तत्तेषा बहुरूपता ॥
क्रूरदृष्ट्या क्रूरयुद्धैः क्रूरकृत्यैरिमान् गणान् ।
वराहस्य घ्नतेत्येव यतः प्रोक्त कपर्दिना ॥ १७६ ॥
अतस्ते क्रूरकर्माणः प्रजाताश्च भयकराः ।
न सदा क्रूरकर्माणि ते कुर्वन्ति महौजसः ॥ १७७ ॥
दृष्टिमात्रस्य ते क्रूराः क्रूरास्ते न तु कार्यतः ।
फल जल तथा पुष्प पत्र मूल तथैव च ॥ १७८ ॥
निवेदितानि भुञ्जन्ति वनपर्वतसानुषु ।
आहृत्यापि च भुञ्जन्ति पत्र पुष्पादिक च यत् ॥ १७९ ॥
भवेद्भर्गस्य यद्भोग्य तद्भोगास्ते महौजसः ।
आमिषाणि च नाश्नन्ति[10] हित्वा चैत्रचतुर्दशीम् । १८० ॥
तत्रामिष हरो भुङ्क्ते चतुर्दश्या मधौ सदा ।
ततः सर्वे गणास्तत्र भुजते पललान्यपि ॥१८१ ॥
हते वराहस्य गणे भर्गमासाद्य ते गणा. ॥
चतुर्भागाः स्वय भूत्वा भूतकर्मेति वै जगुः ।
भूतत्वमभवत्तेषा चतुर्भागवता तदा ॥ १८२ ॥
वचनात् पद्मयोनेस्तु भूतग्रामस्ततो मतः ।
यो लोकोविदितः पूर्वं भूतग्रामश्चतुर्विधः ।
यतस्तेभ्योऽधिको यत्तद्भूतग्रामः स उच्यते ।। १८३ ॥
इति वः कथित सर्वं भूताः शम्भुगणाः यथा ।
यदाहारा यदाकारा यत्कृत्यास्ते महौजसः ॥ १८४ ॥
य इदं शृणुयान्नित्यमाख्यान महदद्भुतम् ।
स दीर्घायुः सदोत्साही योगयुक्तश्च जायते ॥ १८५ ॥

इति श्रीकालिकापुराणे शरभवाराह युद्धो नाम त्रिंशोऽध्याय. ॥ ३० ॥

---

10 आमिषं क्वापि नाश्नन्ति ।

एकत्रिंशोऽध्यायः

ऋषय ऊचुः

कथं यज्ञवराहस्य देहो यज्ञत्वमाप्तवान् ।
त्रेतात्वमगमन् पुत्रा वराहस्य कथ त्रयः ॥ १ ॥
आकालिकोऽय प्रलयः कस्माद् भगवता कृतः ।
जनक्षयो महाघोरो वराहेण महात्मना ॥ २ ॥
कथ वा मत्स्यरूपेण वेदाम्नाताश्च शार्ङ्गिणा ।
कथं पुनरभूत् सृष्टिः केन चोर्वी समुद्धृता ॥ ३ ॥
ईश्वरः शारभ काय त्यक्तवान् वा कथ गुरो ।
कीदृक् प्रवृत्त तद्देह तन्नो वद महामते ॥ ४ ॥
एतेषा द्विजशार्दूल भवान् प्रत्यक्षदर्शिवान् ।
तन्नोऽद्य श्रोष्यमाणाना कथयस्व महामते ॥ ५ ॥

मार्कण्डेय उवाच

शृणुध्व द्विजशार्दूला यत्पृष्टोऽहमिहाद्भुतम् ।
शृण्वन्त्ववहिताः सर्वे सर्ववेदफलप्रदम् ॥ ६ ॥
यज्ञेषु देवास्तुष्यन्ति यज्ञे सर्वं प्रतिष्ठितम् ।
यज्ञेन ध्रियते पृथ्वी यज्ञस्तारयति प्रजाः ॥ ७ ॥
अन्नेन भूता जीवन्ति पर्यन्यादन्नसम्भवः ।
पर्जन्यो जायते यज्ञात् सर्वं यज्ञमय ततः ॥ ८ ॥
स यज्ञोऽभूद्वराहस्य कायाच्छम्भुविदारितात् ।
यथाह कथये तद्वः शृण्वन्त्ववहिता द्विजाः ॥ ९ ॥
विदारिते वराहस्य काये भर्गेण तत्क्षणात् ।
ब्रह्मविष्णुशिवा देवाः सर्वैश्च प्रमथैः सह ॥ १० ॥

निन्युर्जलान् समुद्‌वृत्य तच्छरीर नभः प्रति ।
तद्‌भिदुः शरीर तत् विष्णोश्चक्रेण खण्डशः ॥ ११ ॥

तस्याग्‌सन्धयो यज्ञा जाताश्च वै पृथक् पृथक् ।
यस्मादगाच्च ये जातास्तच्छृण्वन्तु महर्षयः ॥ १२ ॥

भ्रूनासासन्धितो जातो ज्योतिष्टोमो महाध्वरः ।
हनुश्रवणसन्ध्योस्तु वह्निष्टोमो व्यजायत ॥ १३ ॥

चक्षूभ्रुवोः सन्धिना तु व्रात्यष्टोमो[79] व्यजायत ।
जातः पौनर्भवष्टोमस्तस्य पोत्रौष्ठसन्धितः ॥ १४ ॥

वृद्धष्टोमवृहत्ष्टोमौ जिह्वामूलादजायताम् ।
अतिरात्र सवैराजमधोजिह्वान्तरादभूत् ॥ १५ ॥

अध्यापन ब्रह्मयज्ञः पितृयज्ञस्तु तर्पणम् ।
होमो दैवोबलिर्भौतो नृयज्ञोऽतिथिपूजनम् ॥ १६ ॥

स्नान तर्पणपर्यत नित्ययज्ञाश्च सर्वशः ।
कण्ठसन्धेः समुत्पन्नाः जिह्वातो विधयस्तथा ॥ १७ ॥

वाजिमेध-महामेधौ नरमेधस्तथैव च ।
प्राणिहिंसाकरा येऽन्ये ते जाताः पादसन्धितः ॥ १८ ॥

राजसूयोऽर्थकारी च वाजपेयस्तथैव च ।
पृष्टसन्धौ समुत्पन्ना ग्रहयज्ञास्तथैव च ॥ १९ ॥

प्रतिष्ठोत्सर्गयज्ञाश्च दानश्राद्धादयस्तथा ।
हृत्सन्धितः समुत्पन्नाः सावित्रीयज्ञ एव च ॥ २० ॥

सर्वे सास्कारिका यज्ञाः प्रायश्चित्तकराश्च ये ।
ते मेढ्रसन्धितो जाता यज्ञास्तस्य महात्मनः ॥ २१ ॥

रक्षःसत्र सर्पसत्र[80] सर्वंचैवाभिचारिकम् ।
गोमेधो वृक्षयागश्च खुरेभ्यो ह्यभवन्निमे ॥ २२ ॥

---

79 त्वक्‌चक्षूभ्रूवोसन्धिर्व्रात्यस्तोमे । 80 रक्षामन्त्रं सर्पसन्त्र ।

मायेष्टिः परमेष्टिश्च गीष्पतिर्भोगसम्भवः ।
लागुलसन्धौ सजाता[81] अग्निष्टोमस्तथैव च ॥ २३ ॥
नैमित्तिकाश्च ये यज्ञाः सक्रान्त्यादौ प्रकीर्तिताः ।
लागुलसन्धौ ते जातास्तथा द्वादशवार्षिकम् ॥ २४ ॥
तीर्थप्रयोगसामौजः यज्ञः सकर्षणस्तथा ।
आर्कमाथर्वणश्चैव नाडीसन्धेः समुद्गताः ॥ २५ ॥
ऋचोनूकर्षः क्षेत्रयज्ञाः[82] पचसर्गातियोजनः ।
लिंगसस्थानहेरम्बयज्ञा जाताश्च जानूनि ॥ २६ ॥
एवमष्टाधिक जात सहस्र द्विजसत्तमाः ।
यज्ञाना सतत लोका यैर्भाव्यन्तेऽधुनापि च ॥ २७ ॥
स्रुगस्य पोत्रात् सजाता नासिकायाः स्रुवोऽभवत् ।
अन्ये स्रुक्स्रुवभेदा ये ते जाता पोत्रनासयोः ॥२८॥
ग्रीवाभागेण तस्याभूत् प्राग्वशो मुनिसत्तमाः ।
इष्टापूर्तिर्यजुर्धर्मो जाताः श्रवणरन्ध्रतः ॥ २९ ॥
दष्ट्राभ्यो ह्यभवन् यूपा कुशा रोमाणि चाभवन् ।
उद्गाता च तथाध्वर्युर्होता शामित्रमेव च ॥ ३० ॥
अग्रदक्षिणवामाग-पश्चात्-पादेषु सगताः ।
पुरोडाशाः सचरवो जाता मस्तिष्कसंचयात् ॥ ३१ ॥
कर्सूर्नेत्रद्वयाज्जाता यज्ञकेतुस्तथा खुरात् ।
मध्यभागोऽभवद्वेदी मेढ्रात् कुण्डमजायत ॥ ३२ ॥
रेतोभागात्तथैवाज्य स्वधामन्त्राः[83] समुद्गताः ।
यज्ञालयः पृष्ठभागाद्हृत्पद्माद्यज्ञ एव च ।
तदात्मा यज्ञपुरुषो मुजाः कक्षात्समुद्गताः ॥ ३३ ॥
एव यावन्ति यज्ञाना भाण्डानि च हवींषि च ।
तानि यज्ञवराहस्य शरीरादेव चाभवन् ॥ ३४ ॥

---

81 अग्नीषोम 82 पञ्चमार्गा 83 स्वरान् मन्त्रा

एव यज्ञवराहस्य शरीरं यज्ञतामगात् ।
यज्ञरूपेण सकलमाप्यायितुमिद जगत् ॥ ३५ ॥
एव विधाय यज्ञ तु ब्रह्मविष्णुमहेश्वराः ।
सुवृत्त कनक घोरमासेदुर्यज्ञतत्पराः[84] ॥ ३६ ॥
ततस्तेषा शरीराणि पिण्डीकृत्य पृथक् पृथक् ।
त्रिदेवास्त्रिशरीराणि व्यधमन्मुखवायुभि ॥ ३७ ॥
सुवृत्तस्य शरीर तु[85] व्यधमन्मुखवायुना ।
स्वयमेव जगत् स्त्रष्टा दक्षिणाग्निस्ततोऽभवत् ॥ ३८ ॥
कनकस्य शरीर तु ध्मापयामास केशवः ।
ततोऽभूद्गार्हपत्याग्निः पचवैतानभोजनः ॥ ३९ ॥
घोरस्य तु वपुः शम्भुर्ध्मापयामास वै स्वयम् ।
तत आहवनीयोऽग्निस्तत्क्षणात् समजायत ॥ ४० ॥
एतैस्त्रिभिर्जगद्व्याप्त त्रिमूल सकल जगत् ।
एतद् यत्र त्रय नित्य तिष्ठति द्विजसत्तमाः ॥ ४१ ॥
समस्ता देवतास्तत्र वसन्त्यनुचरैः[86] सह ।
एतद्भद्रपद नित्यमेतदेव त्रयात्मकम् ॥ ४२ ॥
एतत्त्रयीविधिस्थानमेतत् पुण्यकर परम् ।
यस्मिन् जनपदे चैते हूयन्ते वह्नयस्त्रयः ॥ ४३ ॥
तस्मिन् जनपदे नित्य चतुर्वर्गो विवर्धते ।
एतद्वः कथित सर्वं यत् पृष्टोऽह द्विजोत्तमाः ॥ ४४ ॥
यथा यज्ञवराहस्य देहो यज्ञत्वमाप्तवान् ।
यथा च तस्य पुत्राणा[87] देहतो वह्नयोऽभवन् ॥ ४५ ॥

इति श्रीकालिकापुराणे वराहतनौ यज्ञोत्पत्तिर्नाम एकत्रिंशोऽध्यायः ।

---

84 यज्ञतत्परा । 85 ध्मापयामास वै तदा । 86 रमन्त्यनुचरैः ।
87 देहास्त्रेतात्वमगमन् ।

द्वात्रिंशोऽध्यायः

मार्कण्डेय उवाच

आकालिकोऽय प्रलयो यतो भगवता कृतः ।
तच्छृण्वन्तु महाभागा वाराह लोकसक्षयम् ॥ १ ॥
यथा वा मत्स्यरूपेण वेदास्त्राताश्च शार्ङ्गिणा ।
तदह सम्प्रवक्ष्यामि सर्वपाप[88] प्रणाशनम् ॥ २ ॥
पुरा महामुनिः सिद्धः कपिलो विष्णुरीश्वरः[89] ।
साक्षात् स्वय हरिर्योऽसौ सिद्धानामुत्तमो मुनिः ॥ ३ ॥
ध्यायतः सिद्धमित्येव सर्वं जगदिदं स्वतः[90] ।
[91]यतो जातो हरेः कायात् कपिलस्तेन[92] स स्मृतः ॥ ४ ॥
स एकदा पुरा भूत्वा मनोः स्वायम्भुवेऽन्तरे ।
स्वायम्भुव मनु वाक्य मुनिवर्योऽब्रवीदिदम् ॥ ५ ॥

कपिल उवाच

स्वायम्भुव मुनिश्रेष्ठ ब्रह्मरूप महामते ।
[93]ममैवमीप्सितार्थं त्व देहि प्रार्थयतोऽधुना ॥ ६ ॥
जगत्सर्वं तवैवेद त्वया च परिपालितम् ।
त्वया सर्वं [94]जगत् सृष्ट त्वमेव जगता पतिः ॥ ७ ॥
स्वर्गे पृथिव्या पाताले देवमानुषजन्तुषु ।
त्व प्रभुर्वरदो गोप्ता त्वमेवैकः सनातनः ॥ ८ ॥
त्व वै धाता विधाता च त्व हि सर्वेश्वरेश्वरः ।
त्वयि प्रतिष्ठित सर्वं सतत भुवनत्रयम् ॥ ९ ॥
तपस्यतो[95] तवसम प्रतिभास्यति[96] सोऽनुगम् ।
कार्यकारणतत्त्वौघ-सहितानि जगन्ति वै ॥ १० ॥

---

88 हग शुभम् 89 विष्णुरूपिण । 90 जगदि'त श्रुतम् । 91 ततो।
92 सन्मत । 93 ममैक्मीप्सितार्थं । 94 जगद्व्याप्तं । 95 तव सम ।
96 प्रतियास्यन्ति ।

तन्मे देहि रहः स्थानं त्रिषु लोकेषु दुर्लभम् ।
पुण्यं पापहर रम्य ज्ञानप्रभवमुत्तमम् ॥ ११ ॥
अह हि सर्वभूताना भूत्वा प्रत्यक्षदर्शिवान् ।
उद्धरिष्ये जगज्जात निर्माय ज्ञानदीपिकाम् ॥ १२ ॥
अज्ञानसागरे मग्नमधुना सकल जगत् ।
[97]ज्ञानप्लव प्रदायाह तारयिष्ये जगत्त्रयम् ॥ १३ ॥
एतस्मिन्मा भवान् सम्यगुपपन्नमिहेच्छति[98] ।
त्वन्नो नाथश्च पूज्यश्च[99] पालकश्च[100] जगत्प्रभो ॥ १४ ॥
इत्येवमुक्तः स मनुः कपिलेन महात्मना ।
प्रत्युवाच[1] महात्मान कपिल सशितव्रतम् ॥ १५ ॥

मनुरुवाच

यदि त्वयाखिलजगद्धितार्थं ज्ञानदीपिकाम् ।
चिकीर्षुणा [2]यतः कार्यं कि स्थानार्थनया [3]तव ॥ १६ ॥
हिरण्यगर्भः सुमहत् तपस्तेपे पुराद्भुतम् ।
स मे ययाचे तपसे स्थान कस्मै न च द्विज[4] ॥ १७ ॥
शम्भुः सम्भोगरहितो देवमानेन वत्सरान् ।
[5]अयुतानि तपस्तेपे सोऽपि स्थान न चैक्षत ॥ १८ ॥
देवेन्द्रो वीतिहोत्रश्च शमनो रक्षसा पतिः ।
यादःपतिर्मातरिश्वा धनाध्यक्षस्तथैव च ॥ १९ ॥
[6]एते तेपुस्तपस्तीव्र दिक्पालत्वमभीप्सव[7] ।
स्थान न मार्गयामासुः किचनापि महामुने[8] ॥ २० ॥
देवागाराणि तीर्थानि क्षेत्राणि सरितस्तथा ।
बहूनि पुण्यभाञ्ज्यत्र तिष्ठन्ति कपिल क्षितौ ॥ २१ ॥

---

97 ज्ञानदीप्त । 98 एतस्मिन् स भवान् मय्यभ्युपत्तुमिहार्हसि । 99 पृथुश्च । 100 पालयच 1 यतात्मान । 2 तप 3 मम । 4 समाययाच तपसे स्थान कस्मैचन द्विज । 5 अक्षतानि । 6 एतत् । 7 दिक्पालत्वमभीप्सया । 8 स्थाने समादयामासुः गुरून् चापि महात्मने ।

तेषामेकतम त्व चेदासाद्य कुरुषे तपः[9] ।
स्थान ब्रह्म स्तपःसिद्धिर्न भविष्यति तत्र किम् ॥ २२ ॥
मत्तः स्थानार्थना[10] तावत् केवल[11] ते विकत्थनम् ।
अय विकत्थनो धर्मो युज्यते न तपस्विनाम् ॥ २३ ॥

मार्कण्डेय उवाच

एतच्छ्रुत्वा वचस्तस्य मनोः स्वायम्भुवस्य तु ।
चुकोप कपिलः सिद्धः प्रोवाच च तदा मनुम् ॥ २४ ॥

कपिल उवाच

त्वयि विश्रम्भमाधाय तपसः सिद्धयेऽचिरात्[12] ।
स्थान मया प्रार्थित ते तन्मा क्षिपसि हेतुभिः ॥ २५ ॥
अनेनात्युग्रवचसा तवैवाह न चक्षमे ।
स्वय[13] त्रिभुवनाध्यक्ष इति ते गर्व ईदृशः ॥ २६ ॥
अक्षम्य ते वचो मेऽद्य प्रार्थनाया विकत्थनम् ।
यत् त्व वदसि तस्य त्व फलमेतदवाप्नुहि ॥ २७ ॥
इद त्रिभुवन सर्व सदेवासुरमानुषम् ।
हतप्रहतविध्वस्तमचिरेण भविष्यति ॥ २८ ॥
येनेयमुद्धृता पृथ्वी येन वा स्थापिता पुनः ।
यो वास्या अन्नकर्ता स्याद्यो वास्याः परिरक्षकः ॥ २९ ॥
त एव सर्वे हिंसन्तु सकल सचराचरम् ।
नचिराद्द्रक्ष्यसि मनोजलपूर्ण जगत्त्रयम् ।
हतप्रहतविध्वस्त तव गर्वविशातनम् ॥ ३० ॥
एवमुक्त्वा मुनीन्द्रोऽसौ कपिलस्तपसा निधिः ।
अन्तर्दधे जगामापि तदा ब्रह्मसदो मुनिः ॥ ३१ ॥

---

9 तेषामेकतम तस्मात् आसाद्य कुरुता तप• । 10 स्थानार्थिन ।
11 करण । 12 त्व सिद्धस्तम्भयामास तपस• । 13 अयं ।

कपिलस्य वचः श्रुत्वा विषण्णवदनोमनुः ।
भावीति प्रतिपद्याशु मनुर्नोवाच किंचन ॥ ३२ ॥
ततः स्वायम्भुवो धीमास्तपसे धृतमानसः ।
हिताय सर्वजगता दिदृक्षुर्गरुडध्वजम् ॥ ३३ ॥
विशाला बदरीं यातो गगाद्वारान्तिक खलु ।
तत्र गत्वा जगद्धर्ता मनुः स्वायम्भुवः स्वयम् ।
ददर्श बदरीं तत्र पुण्या पापप्रणाशिनीम् ॥ ३४ ॥
सदा फलवतीं नित्य मृदुशाद्वलमजरीम् ।
सुच्छाया[14] मसृणा शीर्णशुष्कपत्रविवर्जिताम् ॥ ३५ ॥
गगातोयौघससिक्त-शिखामूलान्तराखिलाम् ।
उपास्यमाना सततं नानामुनितपोधनैः ॥ ३६ ॥
तत्स्थान सर्वतो भद्र नानाभृ गगणान्वितम्[15] ।
फुल्लारविन्दसलिल रमणीय वृषप्रदम् ॥ ३७ ॥
प्रविश्य तपसे यत्नमकरोल्लोकभावनः ।
स भूत्वा नियताहारः परमेण समाधिना ॥ ३८ ॥
आराधयामास हरिं जगत्कारणकारणम् ।
सर्वेषा जगतां नाथ नीलमेधाजनप्रभम् ॥ ३९ ॥
शखचक्रगदापद्मधरं कमललोचनम् ।
पीताम्बरधरं देव गरुडोपरिसस्थितम् ॥ ४० ॥
जगन्मय लोकनाथ व्यक्ताव्यक्तस्वरूपिणम् ।
जगद्बीज सहस्राक्ष सहस्रशिरस प्रभुम्[16] ॥ ४१ ॥
सर्वव्यापिनमाधार[17] नारायणमजं विभुम् ।
जपन्नेतत्पर मन्त्र सर्ववेदमय मनुः ॥ ४२ ॥
हिरण्यगर्भपुरुषप्रधानाव्यक्तरूपिणे ।
ॐ नमो वासुदेवाय शुद्धज्ञानस्वरूपिणे[18] ॥ ४३ ॥

---

14 अभयां । 15 नानामुनिगणार्चितम् । 16 परम् । 17 समाधारं ।
18 भगवते ज्ञानस्वभाविने ।

इति जप्यं प्रजपतो मनोः स्वायम्भुवस्य तु ।
प्रससाद जगन्नाथः केशवो[19] नचिरादथ ॥ ४४ ॥
ततः क्षुद्रझषो भूत्वा दुर्वादलसमप्रभः ।
कर्पूरकलिकायुग्म-तुल्यनेत्रयुगोज्ज्वलः ॥ ४५ ॥
तपस्यन्त महात्मान मनु स्वायम्भुव मुनिम् ।
आससाद तदा क्षुद्रमत्स्यरूपी जनार्दनः ॥ ४६ ॥
उवाच त महात्मान मनु स्वायम्भुव तदा[20] ।
सुसन्त्रस्त[21] स कारुण्ययुक्तं भीतिसगद्गदम् ॥ ४७ ॥
तपोनिधे महाभाग भीत मा त्रातुमर्हसि ।
नित्यमुद्वेजित मत्स्यैर्विशालैर्भक्षितु प्रति ॥ ४८ ॥
प्रत्यह मा महाभाग मीना धावन्ति भक्षितुम् ।
समन्ततोऽधिकाहन्तु त्व नाथ गोपितु क्षमः ॥ ४९ ॥
अद्य प्रभूतैर्विपुलैर्दारितः पृथुरोमभिः ।
विश्रान्तोऽह क्षुद्रतरो न च शक्तः पलायने[22] ॥ ५० ॥
प्राणाकाङ्क्षी महात्मान भवन्त शरण मुनिम् ।
प्राप्तोऽहञ्चेदनुक्रोशस्तेऽस्ति मा प्रतिपालय ॥ ५१ ॥
[23]भयोद्भ्रान्तमनाश्चाह वृक्षच्छाया च चञ्चलाम् ।
दृष्ट्वा चलतरगाश्च मत्स्यादिव विभेम्यहम् ॥ ५२ ॥

मार्कण्डेय उवाच

इति तस्य वचः श्रुत्वा मनुः स्वायम्भुवस्ततः ।
कृपया परया युक्तः प्रोचेऽह रक्षिता तव ॥ ५३ ॥
ततः करोदरे तोयमादायाधाय तत्र तम् ।
समक्षं क्षुद्रमत्स्यस्य विहार समलोकयत् ॥ ५४ ॥
ततो दयालुः स मनुस्त[24] मत्स्य चारुरूपिणम् ।
अलिञ्जरे तोयपूर्णे न्यधाद्विपुलभोगिनि ॥ ५५ ॥

19 प्रसन्नो । 20 तथा । 21 सन्त्रस्तं तञ्च 22 परायणे ।
23 ततो । 24 मुनिस्तं

स तस्मिन् मणिके मत्स्यो वर्धमानो दिने दिने ।
सामान्यरोहितप्राय देहोऽभून्नचिरादथ ॥ ५६ ॥
दशघटजलपूर्ण प्रत्यह स महात्मा
मणिकमतिकुर्वन वर्धयामासमत्स्यम् ।
स च सुविशदनेत्रो मत्स्यबालोऽचिरेण
मणिकसलिलमध्ये लोमशः पीनदेहः ॥ ५७ ॥

इति श्रीकालिकापुराणे मत्स्यरूप-कथने द्वात्रिंशोऽध्याय ॥

त्रयस्त्रिंशोऽध्यायः

मार्कण्डेय उवाच

[25]त तथा पीवरतनु दृष्टा मत्स्य मनुः स्वयम ।
गृहीत्वा पाणिना फुल्लनलिनी सरसीं ययौ ॥ १ ॥
तत्सरस्तत्र विपुल पुण्ये नारायणाश्रमे ।
एकयोजनविस्तीर्णं सार्धयोजनमायतम् ॥ २ ॥
नानामीनगणोपेत शीतामलजलोत्करम् ।
तदासाद्य सरो मत्स्य विनिधाय मनुस्तदा ॥ ३ ॥
पालयामास सुतवत् कृपया परया युतः ।
सोऽचिरेणैव कालेन पीनो वैसारिणोऽभवत् ॥ ४ ॥
न ममौ तत्र सरसि वृहत्त्वात् द्विजसत्तमाः ।
स एकदा महामत्स्य' पूर्वापरतटद्वये ॥ ५ ॥
शिरः पुच्छे निधायाशु तु गदेहः समुच्छ्रितः ।
स्वायम्भुव महात्मान चुक्रोश त्राहि मामिति ॥ ६ ॥
त तथा च मनुर्ज्ञात्वा क्रोशन्त स्थूलपुच्छकम् ।
आससाद तदा मत्स्य जग्राह च करेण तम् ॥ ७ ॥

---

25 ततस्तथा पीनतनु

न शक्नोम्यहमद्धर्तुं पृथरोमाणमङ्ग तम् ।
इति सचिन्तयन्नेव प्रोद्दधार करेण तम् ॥ ८ ॥
भगवानपि विश्वात्मा मत्स्यरूपी जनार्दनः
स्वायम्भुवकर प्राप्य लघिमानमुपाश्रयत् ॥ ६ ॥
तत कराभ्यामुद्धृत्य स्कन्धे[26] कृत्वा द्रुत मनु ।
निनाय सागर तत्र तोये च निदधे ततः ॥ १० ॥
यथेच्छमत्र वर्धस्व न कोऽपि त्वा वधिष्यति ।
अचिरेणैव सम्पूर्णदेह त्व समवाप्नुहि ॥ ११ ॥
इत्युक्त्वा स महाभागः सर्वप्राणभृता वर ।
लघुत्व चिन्तयस्तस्य विस्मय परम गत ॥ १२ ॥
मत्स्योऽपि नचिरादेव पूर्णकायस्तदा महान् ।
सर्वतः पूरयामास देहाभोगेन सागरम् ॥ १३ ॥
त पूर्णकायमालोक्य व्यतीत्याम्भः समच्छ्रितम् ।
[27]शिलाभिर्निचित स्फीत मानसाचलसनिभम् ॥ १४ ॥
रुन्धन्त सागर सर्वं देहाभोगाचलीकृतम् ।
स्वायम्भुवो मनुर्धीमान् मेने मत्स्यं न त तदा ॥ १५ ॥
ततः पप्रच्छ त साम्ना मत्स्यं स्वायम्भुवो मनुः ।
विचिन्त्य लघिमान च पश्यन् मूर्तिं तदाद्भुतम् ॥ १६ ॥

मनुरुवाच

न त्वा मत्स्यमह मन्ये कस्त्व मे वद सत्तम ।
महत्व लघिमान ते चिन्तयन् सुमहत्तर ॥ १७ ॥
त्व ब्रह्माह्यथवा विष्णुः शम्भुर्वा मीनरूपधृक् ।
न चेद्गुह्य महाभाग तन्मे वद महामते ॥ १८ ॥

---

26 कृत्वाण्डजं मनु । 27 शल्कै शिलाभि रचितं ।

मत्स्य उवाच

आराध्योऽहं त्वयानित्य यो हरिः स सनातनः ।
तवेष्टकामसिद्ध्यर्थं प्रादुर्भूतः समाहितः ॥ १६ ॥
यत् त्वमिच्छसि भूतेश मत्तस्त्व[28]मीनमूर्तितः ।
तत् करिष्येऽद्य ता मूर्तिमिमा विद्धि मनो मम ॥ २० ॥

मार्कण्डेय उवाच

इति तस्य वचः श्रुत्वा विष्णोरमिततेजसः ।
ज्ञात्वा प्रत्यक्षतो विष्णु मनुस्तुष्टाव केशवम् ॥ २१ ॥

मनुरुवाच

नमस्ते जगदव्यक्तपरापरपते हरे ।
पावकादित्यशीतांशु नेत्रत्रयधराव्यय ॥ २२ ॥
जगत्कारण सर्वज्ञ जगद्धाम हरे पर ।
परापरात्मरूपात्मन् पारिणा पारकारण ॥ २३ ॥
आत्मानमात्मना धृत्वा धरारूपधरो हरे ।
विभर्षि सकलान् लोकानाधारात्मस्त्रिविक्रम ॥ २४ ॥
सर्ववेदमयश्रेष्ठ धामधारणकारण ।
सुरौघपरमेशान नारायण सुरेश्वर ॥ २५ ॥
अयोनिस्त्व जगद्योनिरपादस्त्व सदागति ।
त्व तेज स्पर्शहीनश्च सर्वेशस्त्वमनीश्वर ॥ २६ ॥
त्वमनादिः समस्तादिस्त्व नित्यानन्तरोऽन्तरः ।
यद्धैममण्डं जगता वीज ब्रह्माण्डसंज्ञितम् ॥ २७ ॥
तद्बीजं[29] भवतस्तेजस्त्वयोक्तं सलिलेषु च ।
सर्वाधारो निराधारो निर्हेतुः सर्वकारणम् ॥ २८ ॥
नमो नमस्ते विश्वेश लोकाना प्रभव प्रभो ।
सृष्टिस्थित्यन्तहेतुस्त्व विधिविष्णुहरात्मधृक् ॥ २६ ॥

---

28 मत्त शान्तेन मूर्त्तिना । 29 तव तत् तेजस्व प्राणिनां तरु ।

यस्य ते दशधा मूर्तिरूर्मिषट्कादिवर्जिता ।
ज्योतिः पतिस्त्वमम्भोधिस्तस्मै तुभ्य नमो नमः ॥ ३० ॥

कस्ते भाव वक्तुमीशः परेश
स्थूलात्स्थूलो योऽणुरूपोर्थवर्गात् ।
तस्मै नित्य मे नमोऽस्त्वद्य योऽभू-
दादित्यवर्णं तमसः परस्तात् ॥ ३१ ॥
सहस्रशीर्षा पुरुषः सहस्रपात्
सहस्रचक्षुः पृथिवीं समन्ततः ।
दशागुल यो हि समत्यतिष्ठत्
स मे प्रसीदविह विष्णुरुग्रः ॥ ३२ ॥

नमस्ते मीनमूर्ते हे नमस्ते भगवन् हरे ।
नमस्ते जगदानन्द नमस्ते भक्तवत्सल ॥ ३३ ॥

मार्कण्डेय उवाच

स्वायम्भुवेन मनुना सस्तुतो मत्स्यरूपधृक् ।
वासुदेवस्तदा प्राह मेघगम्भीरनिःस्वनः ॥ ३४ ॥

श्रीभगवानुवाच

तुष्टोऽस्मि तपसा तेऽद्य भक्त्या चापि स्तुतो मुहुः ।
सपर्यया च दानेन वर वरय सुव्रत ॥ ३५ ॥
इष्टार्थं सम्प्रदास्यामि तुभ्य नात्र विचारणा ।
वरयस्वेप्सितान् कामान् लोकाना वा हितं च यत् ॥ ३६ ॥

मनुरुवाच

यदि देयो वरोमेऽद्य लोकाना यो हितो भवेत् ।
तन्मे देहि वर विष्णो त वक्ष्यामि शृणुष्व मे ॥ ३७ ॥
शशाप कपिलः पूर्वं मदर्थे भुवनत्रयम् ।
हतप्रहतविध्वस्त सकल ते भवेदिति ॥ ३८ ॥

येनेयमुद्धृता पृथ्वी येनेय प्रतिपालिता ।
सहरिष्यति यस्त्वेना तेऽधुना प्लावयन्त्विमाम् ॥ ३६ ॥
ततोऽह दीनहृदय[30]स्त्वामेव शरण गतः ।
न यथेद त्रिभुवन भविष्यति जलप्लुतम् ।
हतप्रहतविध्वस्ते तथा त्व देहि मे वरम् ॥ ४० ॥

श्रीभगवानुवाच

न मत्तः कपिलो भिन्नस्तथा न कपिलादहम् ।
यदुक्त तेन मुनिना मयोक्त विद्धि तन्मनो ॥ ४१ ॥
तस्माद् यदुदित तेन तत्सत्य नान्यथा भवेत् ।
करिष्ये तत्र साहाय्य स्वायम्भुव निबोध तत् ॥ ४२ ॥
हतप्रहतविध्वस्ते तोयमग्ने जगत्त्रये ।
श्यामलेनाथ शृगेण त्व मा ज्ञास्यसि वै तदा ॥ ५० ॥
यावज्जलप्लवस्तावद्यथा कार्य त्वया मनो ।
तन्मे निगदतः पथ्य शृणुष्वावहितोऽधुना ॥ ४४ ॥
सर्वयज्ञियकाष्ठौघैरेका नौका विधीयताम् ।
तामह द्रढयिष्यामि यथा नो भिद्यते जलैः ॥ ४५ ॥
दशयोजनविस्तीर्णा त्रिशद्योजनमायताम् ।
धारिणीं सर्ववीजाना भुवनत्रयवर्धिनीम् ॥ ४६ ॥
सर्वयज्ञियवृक्षाणा भूरिवल्वलतन्तुभिः ।
नवयोजनदीर्घा तु व्यामत्रयसुविस्तृताम् ॥ ४७ ॥
कुरुष्व त्व मनो तूर्णं बृहतीमीरिका वटीम् ।
जगद्धात्री जगन्माया लोकमाता जगन्मयी ।
द्रढयिष्यति ता रज्जु न त्रुत्यति यथातथा ॥ ४८ ॥
सर्वाणि वीजान्यादाय सवेदान् सप्त वै ऋषीन् ।
तस्या नावि निषण्णस्त्व वर्तमाने जलप्लवे ॥ ४६ ॥
दक्षेण सह सगम्य स्मरिष्यसि मनो मम ।

30 दीनवदन ...

स्मृतोऽहं तूर्णमायास्ये भवतो निकटं प्रति ।
श्यामलेनाथ शृंगेण त्वं मां ज्ञास्यसि वै तदा ॥ ५० ॥
यावत् प्रहतविध्वस्त-हतं स्याद्भुवनत्रयम् ।
तावत् पृष्ठेन तां नावं वोढाहं नात्र संशयः ॥ ५१ ॥
जहप्लुते तु सम्पूर्णे शृंगे मम च तां तरीम् ।
त्वं तदा वटीरिकया सन्धानिष्यसि वै दृढम् ॥ ५२ ॥
बद्धाया नावि मे शृंगे देवमानेन वत्सरान् ।
सहस्रं प्रेरयिष्यामि तां नावं शोषयन् जलम् ॥ ५३ ॥
ततः शुष्केषु तोयेषु प्रोत्तुंगे शिखरे गिरेः ।
हिमाचलस्य बद्धाहं तस्मिन्नावमहं मनो ॥ ५४ ॥
अहमाराधितो येन जप्येन भवता मनो ।
सर्वसिद्धिर्भवेत्तस्य यस्तोषयति तेन माम् । ५५॥

मार्कण्डेय उवाच

इति दत्वा वरं तस्मै मत्स्यस्तेन नमस्कृतः ।
अन्तर्दधे जगन्नाथो लोकानुग्रहकारकः ॥ ५६ ॥
स्वायम्भुवोऽपि भगवानन्तर्धानं गते हरौ ।
यथोक्तं हरिणा पूर्वं नावं रज्जुं तथाकरोत् ॥ ५७ ॥
सर्वयज्ञियवृक्षौघां छित्वा स्वायम्भुवस्तदा ।
उद्धृत्य कारयामास [32]वास्यादिभिरसौ तरिम् ॥ ५८ ॥
तेषां [33]वल्कसमुद्धृतसूत्रसघैर्वटीरिकाम् ।
पूर्वोक्तेन प्रमाणेन कारयामास वै मनुः ॥ ५९ ॥

---

31 तां वै गोपयिता नित्यां यावद्भू. शोषयेज्जलम् ।
चिन्तितोऽहं त्वया प्राप्स्ये यदाहि निकटं तत्र ।
शृंगेण श्यामलेनैव त्वं मां ज्ञास्यसि पुष्करे ॥
पुनः सृष्टिं ततः कृत्वा मत्प्रसादान्महामते
त्रैलोक्यदुर्लभामृद्धिमवाप्स्यसि सनातनीम् ॥

32 नावं दृढतरां ततः । 33 शल्कसमुद्धृत वटीमणिम् ।

ततः कालेन महता वृत्त युद्ध महाद्भुतम् ।
विष्णोर्यज्ञवराहस्य शरभस्य हरस्य च ॥ ६० ॥

ततो जलप्लवे जाते विध्वस्ते भुवनत्रये ।
तथा रज्ज्वा तरिं बध्वा वीजान्यादाय सर्वशः ॥ ६१ ॥

वेदानृषींस्तदा[34] सप्तदशश्चादाय वै मनुः ।
तस्या नावि समाधाय तोयमग्रे चराचरे ॥ ६२ ॥

स्वायम्भुवस्तदा मत्स्य हरिं सस्मार नौगतः ।
ततो जलानामुपरि सश्रृग इव पर्वतः ॥ ६३ ॥

[35]उदितश्चैकश्रृगेण विष्णुर्मत्स्यस्वरूपधृक् ।
आगतस्तत्र नचिराद्यत्रास्ते तरिणा मनुः ॥ ६४ ॥

तरिमारुह्य विपुले तोयराशौ भयंकरे ।
यावच्चलाचल तोय तावत् पृष्ठे तरिं न्यधात् ॥ ६५ ॥

जले प्रकृतिमापन्ने श्रृगे बध्वा वटीरिकाम् ।
ता नाव नोदयामास सहस्र दैववत्सरान् ॥ ६६ ॥

[36]स्व नावमवष्टभ्य दधार परमेश्वरः ।
योगनिद्रा जगद्धात्री समासीदद्वटीरिकाम् ॥ ६७ ॥

ततः शनैः शनैस्तोये शोष गच्छति वै चिरात् ।
पश्चिमं हिमवच्छृग सुमग्न तोयमध्यतः ॥ ६८ ॥

द्वे सहस्रे योजनानामुच्छ्रितस्य हिमप्रभोः ।
पञ्चाशत्तु सहस्राणि श्रृगं तत्तस्य चोच्छ्रितम् ॥ ६९ ॥

तस्मिन् श्रृगे ततो नाव बध्वा मत्स्यात्मधृग् हरिः ।
जगाम शोषणायाशु जलाना जगता पतिः ।
एव हि मत्स्यरूपेण वेदाम्नाताश्च शार्ङ्गिणा ॥ ७० ॥

---

34 सप्तदर्श । 35 उद्दीप्त । 36 स्वयं ।

मार्कण्डेय उवाच

कपिलस्य तु शापेन कृत आकालिको लय ।
आकालिकोऽय प्रलयो यतो भगवता कृत ।
इति व कथित सर्व यथावद् द्विजसत्तमा ॥ ७३ ॥

इति श्रीकालिकापुराणे अकालप्रलयकथने त्रयस्त्रिंशोऽध्याय ।

चतुस्त्रिंशोऽध्यायः

मार्कण्डेय उवाच

यथा पुनरभूत् सृष्टिरकालप्रलये गते ।
येन चैवोद्धृता पृथ्वी तच्छृण्वन्तु द्विजोत्तमा ॥ १ ॥
व्यतीते प्रलये विष्णु कूर्मरूपी महाबल ।
पृष्ठे निधाय पृथ्वीमुद्धृत्याथ सपर्वताम् ।
समा चकार सकला पूर्ववत् परमेश्वर ॥ २ ॥
शरभस्य वराहस्य तत्पुत्राणा पदक्रमै ।
यत्र भूमिर्विशीर्णाभूता ता समां कमठोऽकरोत् ॥ ३ ॥
कृत्वा समा ततो भूमि पूर्ववत् परमेश्वर ।
अनन्त धारयामास पृथिवीतलसंश्रितम् ॥ ४ ॥
ततो ब्रह्मा च विष्णुश्च हरश्च परमेश्वर ।
नावोदरस्थान् सप्तमुनीन् मनु स्वायम्भुव तदा ।
नरनारायणौ चोभौ दक्षश्चोचु समागता ॥ ५ ॥
शृण्वन्तु मुनय सर्वे नरनारायणौ तथा ।
दक्षस्वायम्भुवमनू वय ब्रूमोऽधुना च यत्[37] ॥ ६ ॥
सृष्टिर्नष्टा वराहस्य शरभस्य च सगरात् ।
अतोऽस्माक यथा कार्या सृष्टिराकर्णयन्तु तत् ॥ ७ ॥

---

37 तु यत् ।

नरनारायणवेतौ सृष्ट्यर्थं समुपस्थितौ ।
संस्थापनाय देवाना परम तप्यतां तप ॥ ८ ॥
आप्याय्य तपसा चोभौ जनलोकगतान् सुरान् ।
आनयन्त्वपराञ्छश्वत् सस्रजन्तु गणान् बहून् ॥ ९ ॥
नक्षत्राणि ग्रहाश्चैव तेषा स्थानानि वै मुने ।
एतयोस्तपसा यान्तु स्थिरता पूर्ववन्मनो ॥ १० ॥
सूर्यस्य रथसस्थान तथा चन्द्ररथस्थितिम् ।
करोत्वय महाभाग. स्वयमेव जनार्दन' ॥ ११ ॥
पृथिव्या सर्वबीजानि स्वायम्भुवमनो त्वया ।
उप्यन्ता सर्वत' शस्यपूर्णा भवतु मेदिनी ॥ १२ ॥
प्ररोहयौषधीर्वृक्षान् लतावल्लीश्च सर्वत [38] ।
स्वायम्भुव महान्त्येतत प्राप्तान्यृतुफलानि च ॥ १३ ॥
दक्षः सप्तमुनीन्द्रैस्तु यज्ञेन यजता हरिम् ।
वराहपुत्रदेहोत्थमग्नित्रयमिद यजन् ॥ १४ ॥
असौ यज्ञो वराहस्य देहाज्जातस्तु सृष्टये ।
अनेनैव तु यज्ञेन दक्षः सृष्टि तनोत्विमाम् ॥ १५ ॥
नरनारायणाभ्यां तु मुनिभि' सप्तभिस्तथा ।
दक्षेण भवता चापि यज्ञैर्नैभिस्तथाग्निभि. ॥
सम्पूर्यतामिय सृष्टि. स्वर्गे भुवि रसातले ॥ १६ ॥
वय च सृष्टिमाप्याय्य यथा सम्पद्यते त्वियम् ।
यतिष्यामस्तथा नित्य यूय कुरुत सर्जनम् ॥ १७ ॥
ततः सम्पद्यता सृष्टिर्यथा पूर्वं तथैव च ।
प्रथम त्वन्तु बीजानि प्ररोहय मनोऽधुना ॥ १८ ॥

मार्कण्डेय उवाच

इत्यादिश्य महाभागा विधिविष्णुवृषध्वजा. ।
यथास्थान स्थापयितु पर्वतान् प्रययुस्ततः ॥ १९ ॥

38 सर्वशः ।

मेरुमन्दरकैलासहिमवत्प्रभृतिष्वथ[39] ।
पुराणि सर्वदेवाना ते वै चक्रु पृथक् पृथक् ॥ २० ॥
[40]परित्यज्य ततो नावमवधृत्य वसुन्धराम् ।
स्वायम्भुव क्षितौ बीजान्यवपत् सर्वसम्पदे[41] ॥ २१ ॥
तत' वृक्षलतावल्लीगुल्मानि च वनानि च ।
बालशस्यानि धान्यानि तथैवौषधय समा ॥ २२ ॥
बीजकाण्डप्ररोहाश्च प्रताना जलजानि च ।
प्रफुल्लानि [42]विकोशानि फलकन्ददलानि च ॥ २३ ॥
बभूवु शाद्वलान्येव सर्वेषां प्राणवृद्धये ।
पृथिवी शस्यसम्पन्ना[43]वृक्षास्ते शाद्वला शुभा ।
दृष्टा पूर्व यथा तस्मान्मनुना चित्तहर्षिणा ॥ २४ ॥
ततो नरो महायोगी तपस्तेपे महत्तमम्[44] ।
नारायणश्च देवाना भावनाय महामति ॥ २५ ॥
नारायणो नरश्चोभौ परमावृषिसत्तमौ ।
तपसाराध्य परम तेजोमयमनामयम् ॥ २६ ॥
आनिन्याते जनगणान् देवान् देवर्षिसत्तमान् ।
ये मृता अमरा' पूर्व गणशस्तान् पृथक् पृथक् ।
तपोबलेन महता सर्जयामासतुर्मुनी [45] ॥ २७ ॥
सूर्याचन्द्रमसौ देवौ दिक्पालाश्च तथा दश ।
जनार्दन स्वय चक्रे पातालतलवासिन ॥ २८ ॥
सूर्याचन्द्रमसोश्चक्रे [46]यथासंस्थानमच्युत ।
पूर्ववद् योजयामास दिवारात्रस्थितौ च तौ ॥ २९ ॥
ओषधिषु च जातासु[47] यज्ञवृक्षेषु सत्तमा ।
शस्यबीजेषु जातेषु देवेषु च पृथक् पृथक् ॥ ३० ॥

---

39 प्रभृतीनथ । 40 परिमृज्य । 41 सर्वसम्पदम् । 42 विशोकानि दलस्कन्दवनानि च । 43 सम्पूर्णा । 44 महत्तरम् । 45 सर्जयामास तान् मुनीन् । 46 रथसस्थाना । 47 सर्वासु ।

दक्ष' कर्तु समारेभे ज्योतिष्टोम महाध्वरम् ।
कश्यपोऽत्रिर्वसिष्ठश्च विश्वामित्रोऽथ गौतम ।
जमदग्निर्भरद्वाज एते सप्तर्षयोऽमला ॥ ३१ ॥
एतै सप्तमुनीन्द्रैस्तु दक्षो ब्रह्मसुत स्वयम् ।
महायज्ञ ततश्चक्रे यावद् द्वादशवत्सरान् ॥ ३२ ॥
हूयमानेषु तत्रैव त्रिष्वग्निषु पुन पुन ।
इज्यमाने वराहे तु यज्ञरूपे तदा द्विजै ।
चतुर्विधा' प्रजा जाता यज्ञादेव द्विजोत्तमा ॥ ३३ ॥
ततो दक्षस्य सजाता. पुत्र्य पुण्यास्त्रयोदश[48] ।
स्वरूपगुणसम्पन्ना' सृष्ट्यर्थममितप्रजा ॥ ३४ ॥
ता पुत्री प्रददौ दक्ष कश्यपाय महात्मने ।
ताभ्यो जाताश्च बहवस्तैर्व्याप्त सकल जगत् ॥ ३५ ॥
स सर्वासां प्रजानां तु कश्यपो जनको ह्यभूत् ।
निश्चित द्विजशार्दूला कश्यपात् सकल जगत् ॥ ३६ ॥
तासां नामानि तज्जाता. प्रजा सर्वा. पृथक् पृथक् ।
शृण्वन्तु मुनय' सर्वे सम्यक कथयतो मम ॥ ३७ ॥
अदितिर्दितिर्दनु' काला दनायू' सिंहिका मुनि' ।
क्रोधा प्रधा वरिष्ठा च विनता कपिला तथा ॥
कद्रूस्त्रयोदशसुता एता दक्षस्य कीर्तिता ॥ ३८ ॥
सजातो दक्षिणाङ्गुष्ठान्मनसा ध्यायतो विधे ।
तेन देवमनुष्येषु दक्ष इत्येव कथ्यते ॥ ३९ ॥
ब्रह्मणो मानसा' पुत्रा दश पूर्वं प्रकीर्तिता ।
तेषा षट्सृष्टिकर्तारो व्यतीतेऽस्मिन् जनक्षये[49] ॥ ४० ॥
मरीचिरत्र्यंगिरसौ पुलस्त्य पुलह. क्रतु' ।
मरीचेस्तनयो जातः कश्यपो लोकभावन' ॥ ४१ ॥

48 चतुर्दश । 49 जगत्त्रये ।

अस्यैव दक्षकन्याभ्यः प्रजा जज्ञेऽथ भूरिशः ।
अस्य जायाप्रजाताना नामतो विनिबोधत ॥ ४२ ॥
धाता मित्रोऽर्यमा शक्रो वरुण· सोम एव च ।
भर्गो विवस्वान् पूषा च सवितृत्वष्टृविष्णव ॥ ४३ ॥
अदितेर्द्वादशसुता आदित्यास्ते प्रकीतिता ।
एषा कनीयान् गुणवान् सदा यस्तपति प्रजाः ॥ ४४ ॥
स वै वशकरो मुख्यो गद्यते वो दिवाकर ।
एक एव दिते पुत्रो हिरण्यकशिपुर्बली ॥ ४५ ॥
चत्वारस्तस्य तनया हृष्टा मदबलान्विता· ।
प्रह्लादो ह्यथ सह्लादो वाष्कल शिबिरेव च ॥ ४६ ॥
प्रह्लादस्य त्रय पुत्रास्तेषामाद्यो विरोचन ।
कुम्भो निकुम्भो बलवास्त्रय प्राह्लादय[50] स्मृता ॥ ४७ ॥
विरोचनसुतो जातो दानशौण्डो बलिर्महान् ।
बलेश्च पुत्रो विदितो बाणो नाम महाबली ॥ ४८ ॥
शम्भोरनुचर श्रीमान् महाकालाह्वयश्च स ।
बाणस्य च शत पुत्रा कुसुम्भमकरादय· ॥ ४९ ॥
चत्वारिंशद् दनो· पुत्रा विप्रचित्तिपुर सरा ।
शम्बरो नमुचिश्चैव पुलोमा च तथैव च ॥ ५० ॥
असिलोमा तथा केशी दुर्जयोऽय शिरास्तथा ।
अश्वशीर्षो ह्यय· शकुवियन्मूर्धा महाबल· ॥ ५१ ॥
वेगवान् केतुमाश्चैव स्वय स्वर्भानुरेव च ।
अश्वो ह्यश्वपति कुण्डो वृषपर्वोजकस्तथा ॥ ५२ ॥
अश्वग्रीवश्च सूक्ष्मश्च [51]तुरुण्डुर्मोण्डलस्तथा ।
[52]ऊर्ध्वबाहुश्चैकचक्रो विरूपाक्षो हराहरौ ॥ ५३ ॥
नियन्त्रश्च निकुम्भश्च कूपटश्च पट्टुस्तथा ।
सरभ सुलभश्चैव सूर्याचन्द्रमसौ तथा ॥ ५४ ॥

50 प्रह्लादजा । 51 भुजङ्गतुभणस्तथा । 52 ईश्वराद्रश्चैक ।

अन्यावेतौ दनो॰ पुत्रौ सूर्याचन्द्रमसौ तथा ।
दिवाकर-निशानाथौ तावन्यौ देवपुगवौ ॥ ५५ ॥
एषा पुत्रैश्च पौत्रैश्च तत्पुत्रैश्चैव भूरिभि ।
जगद् व्याप्तमिद सर्व बलवीर्यसमन्वितै॰ ॥ ५६ ॥
दनायुषोऽभवन् पुत्राश्चत्वारो बलवत्तरा ।
वीरभद्रो विक्षरश्च वत्सो वृत्तस्तथैव च ॥ ५७ ॥
एषा चतुर्णां बहव पुत्रा जाता द्विजोत्तमा ।
रूपसत्त्वबलोपेता एकैकस्य शत शतम् ॥ ५८ ॥
कालायास्तनया जाता कालेया इति विश्रुता ।
विख्यातास्ते महावीर्याश्चत्वारो दानावाधिपा ॥ ५९ ॥
विनाशनश्च क्रोधश्च क्रोधहन्ता तथैव च ।
क्रोधशत्रुस्तथा चैते कालापुत्रा प्रकीर्तिता ॥ ६० ॥
सिंहिकाया सुतो जातो राहुश्चन्द्रार्कमर्दन॰ ।
सुचन्द्रश्चन्द्रहन्ता च तथा चन्द्रविमर्दन ॥ ६१ ॥
* वेगवान् केतुमान् चैव अय सुभानुरेव च ।
अश्वोद्यपतिः कृष्टुरष्टपर्वाजुरुस्तथा ॥ ६२ ॥
क्रोधायास्तनया जाताः क्रूरकर्मकरास्तथा ।
सिंहिका चैव क्रोधा च द्वे सुते क्रूरिके सदा ॥
ताभ्या च प्रभवो वशो ह्यत॰ क्रूरतर स्मृत॰ ॥ ६३ ॥
एक एव मुनेः पुत्रो जात शुक्र॰ कविर्महान् ।
दैत्यदानवकालेयप्रभृतीना सदा गुरुः ॥ ६४ ॥
चत्वारस्तस्य तनया जाता असुरयाजका॰ ।
त्वष्टावरस्तथात्रिश्च सौकलश्चेति वाग्मिनः ॥ ६५ ॥
तेजसा सूर्यसदृशा ब्रह्मलोक-प्रभावनाः ।
[53]असुराणा सदैत्याना कालेयाना तथैव च ॥ ६६ ॥

---

* अधिकः पाठः । 53 शम्बराणा ।

क्रोधात्मजानाञ्च तथा सिंहिकातनयस्य च ।
सूतप्रसूतिभि सर्वं जगद् व्याप्त चराचरम् ॥ ३७ ॥
तेषा तु यान्यपत्यानि वर्धितानि क्रमाद् द्विजाः ।
तेषा बहुत्वात् सख्यात चिरेणापि न शक्यते ॥ ६८ ॥
तार्क्ष्यश्चारिष्टनेमिश्च अनूरुर्गरुडस्तथा ।
आरुणिर्वारुणिश्चैव विनतातनया स्मृता ॥ ६६ ॥
शेषो वासुकिराजश्च तक्षक कुलिकस्तथा ।
कूर्मश्च सुमनाश्चेति काद्रवेया' प्रकीर्तिता ॥ ७० ॥
भीमसेनोग्रसेनश्च सुपर्णो गरुडस्तथा ।
गोपतिर्धृतराष्ट्रश्च सूर्यवर्चाश्च वीर्यवान् ॥ ७१ ॥
अर्कहृष्ट प्रयुक्तश्च विश्रुतः सुश्रुतस्तथा ।
भीमश्चित्ररथश्चैव विख्यात सर्वविद्वली ॥ ७२ ॥
शालिशीर्षश्च पर्जन्य कलिर्नारद एव च ।
इत्येते देव-गन्धर्वा मुनिपुत्राः प्रकीर्तिता ॥ ७३ ॥
अनवद्यां सानुरागा सवरा मार्गणा प्रियाम् ।
असूया सुभगा भीमामिति कन्यामसूयत ॥ ७४ ॥
प्राधा सर्वगुणोत्थानात् कश्यपात्तु तपोधनात् ।
विश्वावसु सुचन्द्रश्च सुपर्ण· सिद्ध एव च ॥ ७५ ॥
बर्हि· पूर्णश्च पूर्णांगो ब्रह्मचारी रतिप्रिय ।
भानुश्च दशमश्चैते प्राधापुत्रा प्रकीर्तिता· ॥ ७६ ॥
इत्येते देवगन्धर्वा सन्तत पुण्यलक्षणा· ।
प्राधासूत महाभागा देवीं देवर्षिसत्तमात् ॥ ७७ ॥
अलम्बुषा मिश्रकेशी गामिनी च मनोरमा ।
विद्युत्पर्णानधारम्भा ह्यरुणा रक्षितातुला ॥ ७८ ॥
[54]सुबाहु सुरता चैव सुरजा सुप्रिया तथा ।

54 सुराद्धे ।

वपुस्तिलोत्तमा चेति मुख्या अप्सरस स्मृताः ।। ७९ ।।
अतिबाहुस्तुम्बुरुश्च हाहा हूहूस्तथैव च ।
गन्धर्वाणामिमे मुख्या देवतुल्या प्रकीर्तिता ।। ८० ।।
अमृत ब्राह्मणा गावो मुनयोऽप्सरसस्तथा ।
कपिलातनया[55] प्रोक्ता महाभागा महोत्सवा. ।। ८१ ।।
इति दक्षसुताना ये कश्यपात्तनया स्मृता' ।
तैरिद सकल व्याप्त जगत् स्थावरजगमम् ।। ८२ ।।
एवं यज्ञवराहस्य यज्ञरूपस्य पातनात् ।
त्रिभ्योऽग्निभ्यो मनोस्तस्मात् स्वायम्भुवमहात्मन ।। ८३ ।।
मुनिभ्यश्चैव सप्तम्य कश्यपादिभ्य एव च ।
नरनारायणाभ्या तु व्यतीतेऽकालिके लये ।
पुन प्रजा पुरा सृष्टा हरिणाऽनेकरूपिणा ।। ८४ ।।
एव पुनरभूत् सृष्टि सृष्टिस्थित्यन्तकारिणः ।
हरेस्तस्य प्रसादेन नरनारायणात्मन. ।। ८५ ।।
इति श्रीकालिकापुराणे सृष्टिकथने चतुस्त्रिंशोऽध्याय. ॥ ४ ॥

पंचत्रिंशोऽध्यायः

मार्कण्डेय उवाच

ईश्वर. शारभ काय यथा तत्याज यत्नत ।
तन्मे निगदतो भूय शृणुध्व द्विजसत्तमा ।। १ ।।
हते यज्ञवराहे तु ब्रह्मा लोकपितामह' ।
उवाच शरभ गत्वा सामयुक्त जगद्धितम् ।। २ ।।
देहाभोगेन भवतः पूरितं भूरियोजनम् ।
उपसहर तस्मात् त्वं काय लोकभयङ्करम् ।। ३ ।।
तव युद्धेन सकलं प्रणष्ट भुवनत्रयम् ।

---

55 कपिला च तथा ' ।

आकाश गन्तु त्वा दृष्ट्वा बिभेत्यद्य जनार्दन. ।
तस्मात् त्वमूर्ध्वलोकाना हिताय त्यज वै तनुम् ॥ ४ ॥

मार्कण्डेय उवाच

ततस्तस्य वच. श्रुत्वा सुरज्येष्ठस्य शकर ।
तत्याज शारभ काय तोयोपर्येव तत्क्षणात् ॥ ५ ॥
त्यक्तस्य तस्य देहस्य शंकरेण महात्मना ।
अष्टौ पादा अष्टमूर्तेस्तेषु चाष्टसु भेजिरे ॥ ६ ॥
आद्यन्तु दक्षिण पादमाकाशमगमद् द्रुतम् ।
तद्वाम मिहिर भेजे पश्चाद् दक्षिणज विधौ ॥ ७ ॥
वामन्तु ज्वलन भेजे पृष्ठाग्र पद्गत क्षितिम् ।
पृष्ठाग्रवाम सलिल तत्पश्चाद् दक्षिण तथा ॥ ८ ॥
ययौ वामपद भेजे होतार सर्वतोमुखम् ।
एव तस्याष्टमूर्तेस्तु अष्टमूर्तिषु तत्क्षणात् ।
अष्टौ पादास्तथा भेजु स्व स्व तेजो ययु पदम् ॥ ९ ॥
मध्य तु शारभ काय शकरस्य महात्मन ।
कपाली भैरवो भूतश्चण्डरूपी दुरासद ॥ १० ॥
मस्तिष्कमेदसा युक्त मास जुह्वति ते शुचौ ।
ब्रह्मकपालपात्रस्थ सुराभिर्देवपूजनम् ॥ ११ ॥
बलिर्मनुष्यमासेन पान तु रुधिर सदा ।
सुरया पारण यज्ञे कपालोद्भटधारणम् ॥ १२ ॥
व्याघ्रचर्मपरीधान समल त्रिवलीवृतम् ।
एवं कुर्वन्ति सतत कपालव्रतधारिण' ॥ १३ ॥
कपाली भैरवस्तेषां देव' पूज्यस्तु नित्यश. ।
श्मशानभैरवो योऽसौ यो महाभैरवाह्वय' ॥ १४ ॥
बालसूर्यसमोद्योत. सदाष्टादशबाहुभि ।
विभ्राजमानो रक्ताक्ष. सर्वदा नायिकाव्रजै' ॥ १५ ॥

कालीप्रचण्डाप्रमुखै क्रीडमानस्तु नित्यश ।
सद्योदग्धनृमासाशी गलल्लोललसद्भुज ॥ १६ ॥
लोहिताहारविघस प्रेताशनगत सदा ।
स्थूलवक्त्रोऽथ लम्बोष्ठो ह्रस्वस्थूलपदालय ।
विनोदी वादनो लोके साट्टहासस्तु भैरव ॥ १७ ॥
एव स च महादेवो महाभैरवरूपधृक् ।
मध्यशारभकायेन काय दध्रे महाभुज ॥ १८ ॥
स जगाम ततो देवा हरस्य प्रमथान् प्रति ।
गणै सार्ध तथाकाशे विक्रीडति स भैरव ॥ १९ ॥
स महाभैरवो देव' पूज्यमानो जगज्जनै ।
अद्यापि कुरुते नित्यमिष्टकामस्य साधनम् ॥ २० ॥
चैत्र-शुक्लचतुर्दश्या मध्वासवपय फलै· ।
मासैर्मत्स्यै सरुधिरै सकृद्यो भैरव यजेत् ॥ २१ ॥
स सर्वकामान् ससाध्य भोगान् भुक्त्वा यथेष्टत ।
प्रयाति शम्भुभवनमारुह्य वृषभ वरम् ॥ २२ ॥
एतद्व: कथित सर्वं यत् पृष्टोऽह द्विजोत्तमै· ।
भवद्भिर्यच्च वोऽन्यद् वा रोचते पृच्छ मां तु तत् ॥ २३ ॥

इति श्रीकालिकापुराणे शरभकायत्यागे पंचत्रिंशोऽध्याय ।

षट्त्रिंशोऽध्यायः

ऋषय ऊचुः

कथं वराहपुत्रोऽसौ नरको नाम वीर्यवान् ।
संजातोऽसुरसत्त्व स देवदेवीसुतोऽपि सन् ॥ १ ॥
चिरजीवी कथ सोऽभूत् किमर्थमुदरे चिरम् ।
पृथिव्यां न्यवसज्जातः कुत्र वा स महाबल· ॥ २ ॥

सोऽसुराणां कथ राजा पुरं तस्य किमाह्वयम् ।
मलिनीरतिसजात स क्षितौ पोत्रिणस्तथा ॥ ३ ॥
श्रूयते मुनिशार्दूल कथ भूतस्तथाविध· ।
एतत्सर्वमशेषेण पृच्छता त्व वदस्व न ॥ ४ ॥
त्व नो गुरुश्च शास्ता च सर्व प्रत्यक्षदर्शिवान् ।
कथ लब्धवरो भूतो ब्रह्मणा प्रभविष्णुना ॥ ५ ॥

मार्कण्डेय उवाच

शृण्वन्तु मुनय· सर्वे यत् पृष्टोऽहं द्विजोत्तमा ।
यथा स नरको जातो [56]धरासुतो महासुर ॥ ६ ॥
रजस्वलाया गोत्राया गर्भे वीर्येण पोत्रिण ।
यतो यातस्ततो भूतो देवपुत्रोऽपि सोऽसुर ॥ ७ ॥
गर्भसस्थ महावीर ज्ञात्वा ब्रह्मादय सुरा ।
वराहपुत्र दुर्धर्ष महाबलपराक्रमम् ॥ ८ ॥
गर्भ एव तदा देवा शक्त्या दध्रुश्चिर दृढम् ।
यथा कालेऽपि सप्राप्ते नो गर्भोऽजायते स च ॥ ९ ॥
ततस्त्यक्तशरीरस्तु वराहस्तनयै सह ।
अतीव शोकसन्तप्ता जगद्धात्र्यभवत् क्षिति ॥ १० ॥
शोकाकुला सा व्यलपच्चिरकाल मुहुर्मुहु ।
प्रकृतिस्था क्षितिर्भूता माधवेन प्रबोधिता ॥ ११ ॥
तत कालेऽपि सप्राप्ते दैवशक्त्या यदा धृत ।
न गर्भ प्रसव याति तदाऽभूत् पीडिता क्षिति ॥ १२ ॥
कठोरगर्भा सा देवी गर्भभार न चाशकत् ।
यदा वोढु तदा देव माधव शरण गता[57] ॥ १३ ॥
शरण्य शरण गत्वा माधव जगता पतिम् ।
प्रणम्य शिरसा देवी वाक्यमेतदुवाच ह ॥ १४ ॥

---

56 धरागर्भो । 57 ययौ ।

पृथिव्युवाच

नमस्ते जगदव्यक्तरूप कारणकारण ।
प्रधान पुरुषातीत स्थित्युत्पत्तिलयात्मक ॥ १५ ॥

जगन्नियोजनपर स्वाहाभोगधरोत्तम ।
जगदानन्दनन्दात्मन् भगवन् जगदीश्वर ॥ १६ ॥

नियोजको नियोज्यश्च विभ्राजन् विष्णुरव्यय ।
नमस्तुभ्य जगद्धातस्त्रिलोकालय विश्वकृत् ॥ १७ ॥

य पालयति नित्यानि स्थापयत्येव तत्पर ।
त्व त्वा नियमरूपेण नमामि जगदीश्वर[58] ॥ १८ ॥

त्व माधव. प्रवेकश्च काम कामालयो लय ।
प्रसूतिच्युतिहेत्वर्थ-त्रापकारणमीश्वर ॥ १९ ॥

न यस्य ते क्लेदाय स्युरापो नोष्मा तथोष्मणे ।
न शीताय भवेच्छीत तस्मै तुभ्य नमो नमः ॥ २० ॥

न समुद्र. प्लवकरो न शोषाय दहात्मक. ।
न मृत्यवे यस्य यमस्तस्मै तुभ्यं नमो नम. ॥ २१ ॥

यच्चिद्धार्थं योगिभि शान्तदेहै-
रुन्मार्गाणा यात्यरिध्येयकृत्यम् ।
नित्य यद्रूपमार्गावसक्त
स त्व त्राहि त्राणमिच्छन् धरित्रीम् ॥ २२ ॥

मार्कण्डेय उवाच

इति स्तुतो हृषीकेशो जगद्धात्र्या तदा हरि ।
प्रादुर्भूतस्तदा प्राह धरित्रीं दीनमानसाम्[59] ॥ २३ ॥

---

58 परमेश्वरम् । 59 दु खकातराम् ।

श्रीभगवानुवाच

कथं दीनमना[60] देवि धरित्रि परिदेवसे ।
तव वा किं कृता पीडा वेत्तुमिच्छामि तामहम् ॥ २४ ॥
मुखं ते परिशुष्कं तु शरीरं कान्तिवर्जितम् ।
आकुलं नयनद्वन्द्वं भ्रूविभ्रमविवर्जितम् ॥ २५ ॥
ईदृशं तव रूपं तु दृष्टपूर्वं कदापि न ।
रूपस्य तु विपर्यासे दुःखबीजं च भाषये ॥ २६ ॥
एतच्छ्रुत्वा वचस्तस्य माधवस्य जगत्पते ।
विनयावनता देवी पृथ्वी प्राह सगद्गदम् ॥ २७ ॥

पृथिव्युवाच

न गर्भभारं संवोढुं माधवाहं क्षमाधुना ।
भृशं नित्यं विषीदामि तस्मात् त्वं त्रातुमर्हसि ॥ २८ ॥
त्वया वराहरूपेण मलिनी कामिता पुरा ।
तेन कामेन कुक्षौ मे यो गर्भोऽयं त्वयाहितः ॥ २९ ॥
काले प्राप्तेऽपि गर्भोऽयं न प्रच्यवति माधव ।
कठोरगर्भा तेनाहं पीडितास्मि दिने दिने ॥ ३० ॥
यदि न त्राहि मां देव गर्भदुःखाज्जगत्पते ।
न चिरादेव यास्यामि मृत्योर्वशमसंशयम् ॥ ३१ ॥
कयापि नेदृशो गर्भः पूर्वं माधव वै धृतः ।
योऽचलां चालयति मां सरसीमिव कुञ्जरः ॥ ३२ ॥
एतच्छ्रुत्वा वचस्तस्याः पृथिव्याः पृथिवीपतिः[61] ।
आह्लादयन् प्रत्युवाच हरिस्तप्तां लतामिव ॥ ३३ ॥

श्रीभगवानुवाच

न धरे ते महद् दुःखं चिरस्थायि भविष्यति ।
शृणु येन प्रकारेण चानुभूतमिदं त्वया ॥ ३४ ॥

---

60 दुःखमना ।　　61 पृथिवीधर ।

मलिन्या सह्सगेन यो गर्भ सन्धृतस्त्वया ।
सोऽभूदसुरसत्त्वस्तु घृष्टे पुत्रोऽपि दारुण ॥ ३५ ॥
ज्ञात्वा तस्य च वृत्तान्त गर्भस्य द्रुहिणादय ।
दैवीभि शक्तिभिर्बद्धस्तव कुक्षौ तु तन्पुर ॥ ३६ ॥
सर्गादौ यदि जायेत भवत्यास्तादृश सुत ।
भ्रशयेत् सकलान् लोकास्त्रीनिमान् ससुरासुरान् ॥ ३७ ॥
अतस्तस्य बल वीर्य ज्ञात्वा ब्रह्मादय सुरा ।
प्राक्सृष्टिकाले ते गर्भं तथा धूर्जगता कृते ॥ ३८ ॥
अष्टाविंशतितमे प्राप्ते आदिसर्गाच्चतुर्युगे ।
त्रेतायुगस्य मध्ये तु सुत त्व जनयिष्यति ॥ ३९ ॥
यावत् सत्ययुग याति त्रेतार्धं च वरानने ।
तावद् वह महागर्भं दत्त' कालो मया तव ॥ ४० ॥
न यावज्जायते धात्रि गर्भस्ते ह्यतिदारुण ।
तावद् गर्भवती दु ख न त्व प्राप्स्यसि भामिनी ॥ ४१ ॥

मार्कण्डेय उवाच

इत्युक्त्वा भगवान् विष्णुः पृथिवीं गर्भिणीं तदा ।
नाभौ पस्पर्श दयिता शङ्खाग्रेणातिपीडिताम् ॥ ४२ ॥
सा स्पृष्टा विष्णुना पृथ्वी शरीर लघु चासदत् ।
गर्भेऽपि लघिमान सा प्रापातीव सुखप्रदम् ॥ ४३ ॥
अगर्भा यादृशी नारी तादृशी साप्यजायत ।
धृतगर्भापि मुदिता सा बभूव जगत्प्रसूः ॥ ४४ ॥
तत पुनरिदं वाक्यमुक्त्वा स भगवान् क्षितिम् ।
पुन प्रसादयामास सामभिर्बहुभिश्च ताम् ॥ ४५ ॥
जगद्धात्रि महासत्त्वे त्व धृतिर्धारणात्मिका ।
सर्वेषा धारणाद् देवि त्व धात्रीति प्रगीयसे ॥ ४६ ॥
क्षमा यस्माज्जगद्धर्तुं शक्ता क्षान्तियुतात्र यत् ।
सर्वं वसु त्वयि न्यस्त यस्माद्वसुमतो तत. ॥ ४७ ॥

तद्दु'ख त्यज पुत्रस्ते यदा सजायते तदा ।
मां स्मरिष्यसि देवि त्व पुत्रं ते पालयाम्यहम् ॥ ४८ ॥
इद रहस्य कुत्रापि न प्रकाश्य त्वया धरे ।
यन्मया कथित देवि रहस्य परम परम् ॥ ४९ ॥
गर्भस्तव महाभागे त्रेताया मध्यभागत' ।
उत्पत्स्यते हते वीरे रावणे रामसञ्ज्ञिना ॥ ५० ॥

मार्कण्डेय उवाच

इत्युक्त्वा भगवान् विष्णुस्तत्रैवान्तरधीयत ।
आज्ञाप्य पृथिवीं देवी गर्भभारप्रपीडिताम् ॥ ५१ ॥
धरापि कुशला क्षामा लघुकाया बलैर्युता ।
अगर्भेव ययौ देवी मुदा परमया युता ॥ ५२ ॥

इति श्रीकालिकापुराणे धरादु खविमोचने षट्त्रिंशोऽध्याय ॥ ३६ ॥

सप्तत्रिंशोऽध्यायः

मार्कण्डेय उवाच

अथ काले बहुतिथे व्यतीते द्विजसत्तमाः ।
विदेहविषये राजा जनको नाम वीर्यवान् ॥ १ ॥
सर्वराजगुणैर्युक्तो राजनीतिविवर्धितः ।
सत्यवाक् शीलवान् दक्षो ब्रह्मण्य' प्रयत' शुचि ॥ २ ॥
देवद्विजगुरूणा च पूजासु निरतः सदा ।
बभूव सर्वलोकाना पितेव परिपालकः ॥ ३ ॥
तस्य राज्ञः सुतो नाभूत् प्राप्ते कालेऽपि वै सदा ।
तदा स विमना भूत्वा चिन्ताध्यानपरोऽभवत् ॥ ४ ॥
एकदा सोऽथ शुश्राव नारदस्य मुखान्नृपः ।
अपुत्रो नृपतिर्वृद्धो नाम्ना दशरथो महान् ॥ ५ ॥

पुत्राॅल्लेभे महासत्त्वानध्वरेण महामति ।
अयोध्यायां नगर्यां तु ऋष्यशृङ्गपुरोगमै ॥ ६ ॥
मुनिभिर्विहितैर्यज्ञैर्लब्धवान् स भूप सुतान् ।
राम च भरत चैव शत्रुघ्न लक्ष्मण तथा ॥ ७ ॥
महासत्त्वान् महावीरान् देवगर्भोपमाञ्छुभान् ।
तच्छ्रुत्वा जनको राजा प्रविश्यान्त पुरं स्वकम् ।
भार्याभिर्मन्त्रयामास यज्ञार्थ पुत्रजन्मने ॥ ८ ॥
मन्त्रयित्वा तदा राजा महिषीप्रमुखै स्वयम् ।
चतसृभिरतु भार्याभिर्यज्ञार्थं दीक्षितोऽभवत् ॥ ९ ॥
तत' पुरोधसं राजा गौतमं मुनिसत्तमम् ।
तत्पुत्र च शतानन्द पुरोधायाकरोन्मखम् ॥ १० ॥
द्वौ पुत्रौ तस्य सजातौ यज्ञभूमौ मनोहरौ ।
एका च दुहिता साध्वी भूम्यन्तरगता शुभा ॥ ११ ॥
नारदस्योपदेशेन यज्ञभूमि ततो नृप ।
हलेन दारयामास यज्ञबाटावधि स्वयम् ॥ १२ ॥
तद्भूमिजातसीताया शुभां कन्या समुत्थिताम् ।
लेभे राजा मुदा युक्त॰ सर्वलक्षणसयुताम् ॥ १३ ॥
तस्या तु जातमात्राया पृथिव्यन्तर्हिता स्वयम् ।
जगाद वचन चेद गौतम नारद नृपम् ॥ १४ ॥

पृथिव्युवाच

एषा सुता मया दत्ता तव राजन् मनोहरा ।
एना गृहाण सुभगां कुलद्वयशुभावहाम् ॥ १५ ॥
अनया मे महाभारस्तत्त्वतो हेतुभूतया ।
क्षय यास्यति भारार्तिं मोचयिष्यामि दारुणाम् ॥ १६ ॥
रावणाद्या महावीरा कुम्भकर्णादयोऽपरे ।
नाश यास्यन्ति दुर्धर्षा कृतेऽस्या राक्षसाः परे ॥ १७ ॥

त्वंच मोद दुराधर्ष दुहितृकृतिज नृपः ।
अवाप्स्यसि सुराणा च पितॄणामृणशोधनम् ॥ १८ ॥
किन्त्वेकः समयः कार्यस्त्वया मम नरोत्तम ।
तमहं ते प्रवक्ष्यामि पुरो नारदगौतमौ ॥ १९ ॥
निहते रावणे वीरे भारार्ति-रहिता सुखम् ।
सुपुत्र जनयिष्यामि यज्ञभूमावहं तव ॥ २० ॥
तं पुत्रवत् पालयिता भवान् नृपतिसत्तम ।
यावद्व्यतीतबाल्यः सन् भविता तनयो मम ॥ २१ ॥
व्यतीतबाल्य तमहं पालयिष्ये स्वय नृप ।
तस्य स्यान्मानुषो भावो यथा त्व तत्करिष्यसि ॥ २२ ॥

मार्कण्डेयउवाच

इति पृथिव्या वचन श्रुत्वा राजा तदा मुदा ।
प्रणम्य पृथिवीं प्राह साम्ना स जनकाह्वय· ॥ २३ ॥

राजोवाच

यत् त्व ब्रूषे जगद्धात्रि करिष्ये तद्वचस्तव ।
ममापीष्टं प्रयच्छस्व प्रसीद परमेश्वरि ॥ २४ ॥
देवि प्रत्यक्षतो रूप द्रष्टुमिच्छाम्यहं तव ।
शक्तिस्त्व लोकजननी त्वा नमामि प्रसीद मे ॥ २५ ॥
इति तस्य वचः श्रुत्वा जनकस्य तदा क्षितिः ।
मुनीना सन्निधौ रूपं दर्शयामास भूभृते ॥ २६ ॥
नीलोत्पलदलश्यामामक्षमालाब्जधारिणीम् ।
बाहुयुग्मेन शुभ्रेण मृणालायतशोभिना ।
सुन्दरीं लोकधात्रीं ता दृष्ट्वा शश्वत् नृपोऽनमत् ॥ २७ ॥
ततः सा पृथिवी देवी सीता जाता नृपात्मजाम् ।
करेण शश्वत् सस्पृश्य वचन चेदमब्रवीत् ॥ २८ ॥
इयं ते मानुष भावमवाप्स्यति जगत्प्रभूः ।
तव पुत्री नृपश्रेष्ठ समय प्रतिपालय ॥ २९ ॥

मार्कण्डेय उवाच

न्युक्त्वा पृथिवी देवी राजान जनकाह्वयम् ।
सम्भाष्य नारदादींस्तास्तत्रैवान्तरधीयत ॥ ३० ॥
जनकोऽपि सुता लब्धा सर्वलक्षणशालिनीम् ।
सुतद्वय तथा प्राप्य मुदितः स्वगृह ययौ ॥ ३१ ॥
ततः काले तु सम्प्राप्ते रावणे राक्षसे हते ।
मानुषेण स्वरूपेण विष्णुना प्रभविष्णुना ॥ ३२ ॥
गत्वा विदेहराजस्य यज्ञभूमिं तदा क्षितिः ।
सुषुवे तनय वीरं यत्र सीता पुराभवत् ॥ ३३ ॥
जाते पुत्रे तदा देवी जगद्धात्री जगत्प्रभुम् ।
सस्मार समये विष्णु स्मरन्ती समय पुरा ॥ ३४ ॥
स्मृतमात्रस्तदा देवः समय प्रत्यपालयत् ।
क्षितेर्यत्र सुतो जातस्तत्र प्रादुर्बभूव ह ॥ ३५ ॥
प्रादुर्भूत तदा देवी प्रणम्य परमेश्वरम् ।
सस्तूय सुन्नत शश्वदिदमाह जगत्प्रभुम् ॥ ३६ ॥

पृथिव्युवाच

एष ते तनयोजातः सुकुमारो महाप्रभः ।
सस्मरन् समय पूर्व त्वमेन प्रतिपालय ॥ ३७ ॥

श्रीभगवानुवाच

अयं ते तनयो देवी महाबलपराक्रमः ।
भविता मानुष भाव तन्वानः सुचिर बुधः ॥ ३८ ॥
यावन्मानुषभाव ते तनयो भावयिष्यति ।
तावत् कल्याणभाग्भूत्वा चिर राज्य करिष्यति ॥ ३९ ॥
त्यक्तमानुषभावस्तु यदा चाय विचेष्टते ।
तदा तु नास्य सुचिर जीवित सम्भविष्यति ॥ ४० ॥

सम्प्राप्ते षोडशे वर्षे राज्यमासादयिष्यति ।
धनरत्नगजैश्वर्ययुक्तोऽय रथसञ्चयैः ।
आसाद्य महतीं नित्यं श्रिय भोक्ष्यति वीर्यवान् ॥ ४१ ॥
यस्मिन् यस्मिन् युगे भावो यो वा भवति वै नृणाम् ।
त भाव तथैवाय करिष्यति तथा कुरु ॥ ४२ ॥
एतस्य निभृत राज्य यत् प्राग्ज्योतिषसञ्ज्ञकम् ।
पुर तत्र चिर शास्ता राज्यमेष सुतस्तव ॥ ४३ ॥
इत्युक्त्वा पृथिवीं विष्णुः समाभाष्य जगत्पतिः ।
दृश्यमानस्तया क्षिप्र तत्रैवान्तर्दधे प्रभुः ॥ ४४ ॥
प्रसूय पृथिवी पुत्र मध्यरात्रे महाद्युतिम् ।
जनकं ज्ञापयामास रहस्य पूर्वमीरितम् ॥ ४५ ॥
विदेहराजो ज्ञात्वैव पृथिवीजनितं सुतम् ।
तत्रैव यज्ञवाट स रात्रावागात् कृतक्रियः ॥ ४६ ॥
गच्छन्त यज्ञवाट त दृष्ट्वा सर्वंसहा तदा ।
नोक्त्वा किंचन त शश्वदन्तर्धान गता नृपम्[62] ॥ ४७ ॥
अथ गत्वा तदा तत्र विदेहाधिपतिः सुतम् ।
धराया ददृशे कान्त्या चन्द्रार्कज्वलनोपमम् ॥ ४८ ॥
रुदन्त बहुशः स्निग्ध चलद्धस्तपदद्वयम् ।
वपुष्मन्त श्रियादीप्त कार्तिकेयमिवापरम् ॥ ४९ ॥
उद्गच्छन् स रुदन् बालो यज्ञभूमिं व्यतीत्य च ।
कियद्दूर जगामाशूत्तानशायी महाद्युतिः ॥ ५० ॥
मनुष्यस्य शिरस्तत्र मृतस्य प्राप्य बालकः ।
स्वशिरस्तत्र विन्यस्य रुदस्तस्थौ क्षण तदा ॥ ५१ ॥
ततो विदेहराजोऽपि मार्गमाणः क्षितेःसुतम् ।
व्यतीत्य यज्ञभूमिं तमाससादाञ्जसा बहिः ॥ ५२ ॥

---

62 द्रुतम् ।

आसाद्य बालक दीप्त प्रदीप्तमिव पावकम् ।
[63]कान्त्या चन्द्रमसस्तुल्य तेजोभिर्भास्करोपमम् ॥ ५३ ॥
शरमध्यगत पूर्वं पावकि पावको यथा ।
स्वय जग्राह त राजा पृथिव्याः समय स्मरन् ॥ ५४ ॥
उद्गृह्णन् तच्छिरोदेशे ददर्शे मानुष शिरः ।
शशासचाचिर शीर्ष मानुष गौतमाय सः ॥ ५५ ॥
अथ बाल समादाय प्रविश्यान्तःपुर स्वकम् ।
महिष्यै कथयामास प्राप्त पुत्र गुहोपमम् ॥ ५६ ॥
सा त दृष्ट्वा विशालाक्ष सिहस्कन्ध महाभुजम् ।
विस्तीर्णहृदय कान्त नीलोत्पलदलच्छविम् ।
मुमोद पालनीयोऽय मयेति न्यवदत् नृपम् ॥ ५७ ॥
ता राजापि ततः प्राह पुत्रोऽय मम सुन्दरि ।
यज्ञभूमौ समुत्पन्नः स्वच्छन्द पाल्यतामयम् ॥ ५८ ॥
यत् पृथिव्या रहः प्रोक्त न तद्देव्यै न्यवेदयत् ।
सत्यसन्धो नृपश्रेष्ठः प्रियाया अपि भाषितम् ॥ ५९ ॥

मम सुतसुतवशान् पालयित्री धरेय-
मिति नरपतिवर्यो मोदवास्तद्दिने च ।
सुरतनयसमान पुत्रमासाद्य देवी ।
जितरिपुरतिधीमान् स्यादयञ्चेत्यमोदत् ॥ ६० ॥

इति श्रीकालिकापुराणे नरकजन्म-कथने सप्तत्रिंशोऽध्यायः ॥ ३७ ॥

63 कान्त्या चन्द्र विनिन्दन्त ।

अष्टत्रिंशोऽध्यायः

मार्कण्डेय उवाच

अथ तस्य नृपश्रेष्ठो गौतमेन महर्षिणा ।
संस्कार कारयामास विधिना मानुषेण तु ॥ १ ॥
नरस्य शीर्षे स्वशिरो निधाय स्थितवान् यतः ।
तस्मात्तस्य मुनिश्रेष्ठो नरक नाम वै व्यधात् ॥ २ ॥
अपरान् बालसंस्कारान् क्षात्रेण विधिना मुनिः ।
केशान्तावधि सचक्रे ऋग्यजुः-साममन्त्रकैः ॥ ३ ॥
ववृधे तस्य सदने नरको नाम भूसुतः ।
दिनदिन धृतान्यश्रीः शरदीव निशाकरः ॥ ४ ॥
स राजा त सदा भावैर्मानुषैर्योजयन् स्वयम् ।
गौतमस्य सुतेनाथ शतानन्देन धीमता ।
ग्राहयामास तन्नित्य क्षात्र भावं च मानुषम् ॥ ५ ॥
तथैव पृथिवी देवी धात्रीवेषेण त सुतम् ।
नियत ग्राहयामास मानुष चरित शुभम् ॥ ६ ॥
यदैव पुत्र उत्पन्नस्तदैव पृथिवीस्वयम् ।
मायामानुषरूपेण नृपान्तःपुरमाविशत् ॥ ७ ॥
प्रविश्य तत्र सा देवी नृपस्यानुमतेऽभवत् ।
धात्री तस्य द्विजश्रेष्ठाः कात्यायन्या ह्यवस्थया ॥ ८ ॥
यावत् षोडशवर्षाणि तस्य बालस्य भावीनि ।
तावत् स्वय पालयन्ती ग्राहयामास सनयम्[64] ॥ ९ ॥
स वर्धमानोऽनुदिनं नरकः पृथिवीसुतः ।
अत्यक्रामन् सुतान् सर्वान् जनकस्य महात्मनः ॥ १० ॥
शरीरेणाथ वीर्येण रूपेण बलवत्तया ।
धनुषा गदया वीरो ह्यत्यक्रामन् नृपात्मजान् ॥ ११ ॥

---

64 विनयम् ।

स शास्त्रवादकुशलो धनुर्वेदे च कोविदः ।
वर्षैः षोडशभिर्भूतो वीरैरन्यैर्दुरासदः ॥ १२ ॥
विदेहाधिपतिर्दृष्ट्वा महाबलपराक्रमम् ।
ततो न्यूनान् स्वपुत्रांश्च नातिहृष्टमनाभवत् ॥ १३ ॥
निरस्यासौ च मत्पुत्रान् मम राज्य ग्रहीष्यति ।
काले प्राप्ते महावीरो मतिस्तस्याभवत् पुरा ॥ १४ ॥
अन्तःपुरे यदा पुत्रान् सर्वान् रमयते नृपः ।
तदा तु नरक वीक्ष्य हर्षं प्राप्नोति[65] नाधिकम् ॥ १५ ।
तस्य तद्बुबुधे देवी नृपस्याथ वसुन्धरा ।
महिषी विस्मय चक्रे तस्मिन् भावे तु भूभृतः ॥ १६ ॥
अथैकदा महादेवी जनकस्य महात्मनः ।
पप्रच्छ नृपतिश्रेष्ठ विदेहाधिपति पतिम् ॥ १७ ॥
नाथ पृच्छामि ते किञ्चिद्रहस्य यदि नो तव ।
तदा मा तद्वदस्व त्वं कृपा चेद्विद्यते मयि ॥ ८ ॥
यदैव तनयाः सर्वे विहरन्ति पुरस्तव ।
तदैव नरक दृष्ट्वा विशीर्ण[12] इव लक्ष्यसे ॥ १९ ॥
तन्मे रात्रिन्दिवं बाढं विस्मयः प्रतिवर्धते ।
सशयश्च भय चैव न जहाति च मा सदा ॥ २० ॥
रूपवान् वीर्यवानेष नये च विनये तथा ।
कुशलः प्रतिबुद्धश्च पुत्रस्तव महाबलः ॥ २१ ॥
न सभाजयसे कस्मात् पुत्रमन्यैर्दुरासदम् ।
तदह ज्ञातुमिच्छामि यदि तथ्य वदस्व मे ॥ २२ ॥

मार्कण्डेय उवाच

इति तस्य वचः श्रुत्वा प्रियायाः पृथिवीपतिः ।
तूष्णीं भूत्वा क्षणं देवीमिद वचनमब्रवीत् ॥ २३ ॥

---

65 नाप्नोति चाधिकम् । 12 विमना ।

राजोवाच

कथयिष्ये प्रिये तत्त्व यत् पृष्टोऽहं त्वयाधुना ।
मासत्रये व्यतीते तु समय प्रतिपालय ॥ २४ ॥
निगूढ कश्चिदत्रास्ति देवस्य समयो मम ।
तेनाधुना न किंचित्ते कथयिष्यामि तद्रहः ॥ २५ ॥

मार्कण्डेय उवाच

राज्ञो ह्यय सभार्यस्य सवादोऽभवदन्तिके ।
मानुषी पृथिवी धात्री त शुश्राव यदा तदा ॥ २६ ॥
श्रुत्वा तयोस्तु सवाद महिषीभूपयोः क्षिति ।
मासत्रयेण समय दत्त देव्यै धराभृता ॥ २७ ॥
तत्काले विमनस्क च भूप नरकसज्ञया ।
त्रिभिर्मासैर्व्यतीतैः स्यादस्य षोड़शवत्सरः ॥ २८ ॥
ततो नृपो महिष्यास्तु कथयिष्यति तद्रहः ।
ततो मम रहस्य तु विदित सम्भविष्यति ॥ २९ ॥
चिन्तयित्वेति सा देवी जगद्धात्री सुत प्रति ।
निश्चित्येद तदा कृत्य प्राप्तकालमचेष्टत ॥ ३० ॥
ततो रहसि भूप त समासाद्य सगौतमम् ।
इदमाह जगद्धात्री स्वपुत्रार्थे यशस्विनी ॥ ३१ ॥
यो मया समयो दत्तः पालितः स त्वयानघ ।
पुत्रश्च पालितो मेऽय नरको विनयैर्युतः ॥ ३२ ॥
सम्प्राप्तयौवनः पुत्रो योजितश्च त्वया नयैः ।
तव प्रसादात् पुत्रो मे सुखी वृद्धो गृहे तव ॥ ३३ ॥
तमह पूर्वसमयान्नयिष्यामि स्वमात्मजम् ।
अनुजानीहि भद्र ते नरकस्य गतिं प्रति ॥ ३४ ॥
रक्षितव्यश्च भवता समयः सपुरोधसा ।
छन्नमेव[66] नयिष्यामि भूपते मा कृथा व्यथाम्[67] ॥३५॥

---

66 गुप्तमेव । 67 कथाम् ।

मार्कण्डेय उवाच

इत्युक्त्वा जगता धात्री विदेहाधिपति नृपम् ।
तत्रैव पश्यता तेषामन्तर्धानमुपागमत्[68] ॥ ३६ ॥
नृपोऽपि तस्यास्तद्वाक्यमगींकृत्य क्षिति प्रति ।
तस्याः प्रत्यक्षतः स्थान जगाम सपुरोहितः ॥ ३७ ॥
अथैकदा धरा देवी मायामानुषरूपिणी ।
उपाशु नरक प्राह धात्री तस्य महात्मनः ॥ ३८ ॥
त्वया सम महाबाहो गगा यातु मनो मम ।
यदि त्व यासि यास्यामि रथेनाद्यैव पुत्रक ॥ ३९ ॥

नरक उवाच

न पितुर्वचन यास्ये विना मातस्त्वया समम् ।
अनुज्ञाप्य रथेनाह यास्ये गगा त्वया समम् ॥ ४१ ॥

धात्र्युवाच

न ते पिताय जनको यः सर्वजगता प्रभुः ।
स ते पिता त गगाया पश्य गत्वा मया सह ॥ ४२ ॥
अयं पिता पालकस्ते न राज्य सम्प्रदास्यति ।
यस्ते वर्धयिता तात तमासादय पुत्रक ॥ ४३ ॥
अत्र यद्मद्रहस्य तद् गगायामेव पुत्रक ।
कथयिष्याम्यह सर्वं रहोभगस्ततोऽन्यथा ॥ ४४ ॥

मार्कण्डेय उवाच

जातसम्प्रत्ययो धात्र्या वचसा नरकस्तथा ।
विहाय यान छन्देन पद्भ्या गगा ययौ तदा ॥ ४५ ॥
अथ गंगा समासाद्य सस्नाप्य विधिवत् सुतम् ।
आत्मान दर्शयामास पृथिवी स्वसुताय व ॥ ४६ ॥

---

68 पागतम् ।

मायामानुषमूर्तिं तां विहाय जगतां प्रसूः ।
नीलोत्पलदलश्यामं सर्वलक्षणसंयुतम् ॥ ४७ ॥
सर्वांगसुन्दरं चारु नानालंकारभूषितम् ।
पुत्राय दर्शयामास नरकाय[69] वसुन्धरा ॥ ४८ ॥
कथामेतां च पूर्वस्मिन्नुद्धृता पृथिवी तदा ।
कथयामास पुत्राय प्रतीतिर्जायते यथा ॥ ४६ ॥

पृथिव्युवाच

मम गर्भे यथा पुत्र वर्धसे त्वं दिने दिने ।
ब्रह्मादयस्तदा देवा आलोक्य स्वयमेव ते ॥ ५० ॥
मलिनीक्षितिसंजातः पुत्रो विष्णोर्महात्मनः ।
आसुरं भावमास्थाय सर्वानस्मान् हनिष्यति ॥ ५१ ॥
इति चिन्तापरा देवाः कुमन्त्रं चक्रिरे तदा ।
अयं नोत्पद्यतां गर्भाद्गर्भे तिष्ठत्वयं सदा ॥ ५२ ॥
ततो मम भवान् गर्भे सुबहूनि युगान्यथ ।
अवसद्दुःखवान् पुत्र देवानां च कुमन्त्रतः ॥ ५३ ॥
मृतकल्पाभवमहं भवतो धारणात् सुत ।
ततोऽहं शरणं याता भगवन्तं सनातनम् ॥ ५४ ॥
नारायणस्य वाक्यात् तु भवानुत्पन्नवास्ततः ।
इति सत्यं मम वचः पुत्र जानीहि निश्चितम् ॥

मार्कण्डेय उवाच

अथ यावन्नपुत्रस्य विस्मयः समपद्यत ।
तावदेव स्वयं देवी प्रोचे पुत्रमिदं वचः ॥ ५६ ॥
यथा विदेहराजस्य यज्ञभूमावसूयत ।
विदेहराजेन समं यादृशः समयोऽभवत् ॥ ५७ ॥
यथा मानुषरूपेण धात्री सा समपद्यत ।
तत् सर्वं कथयामास नरकाय महात्मने ॥ ५८ ॥

69 वपुस्तदा ।

अथ ता पृथिवीं प्राह नरकः पुनरेव हि ।
पृथिव्याः वचन श्रुत्वा स्वल्पसशयसयुतः ॥ ५९ ॥

नरक उवाच

यद्येव मे पिता विष्णुर्माता त्व पृथिवी शुभे ।
आगच्छतु जगन्नाथो ममैवाभ्युपपत्तये ॥ ६० ॥
स एव सर्व लोकेशो यदि मा भाषतेऽच्युतः ।
पिताह ते त्विय माता श्रद्धघे तदह शुभे ॥ ६१ ॥
त्वया मानुषरूपेण धात्र्याह प्रतिपालितः ।
तद्र प द्रष्टुमिच्छामि यदि तेरू पमीदृशम् ॥ ६२ ॥

पृथिव्युवाच

अह ते जननी तात मया ज्ञातोऽसि पुत्रक ।
पृथिव्यह जगद्धात्री मद्र प मृन्मयन्त्विदम् ॥ ६३ ॥
पिता तव महाबाहो प्रभुर्नारायणोऽव्ययः ।
अच्युतो जगता धाता महात्मा शूकरात्मधृक् ॥ ६४ ॥
तेनाहितस्त्व मद्गर्भे सुचिर त्व पुरावसः ।।
सम्प्राप्ते समये जातः पालितश्चेह भूभृता ६५ ॥

मार्कण्डय उवाच

इति तस्य वचः श्रुत्वा हर्षशोकाकुलस्तदा ।
नरकः पृथिवीं देवीमिदमाह धनुर्धरः ॥ ६६ ॥

नरक उवाच

न माता विदिता पूर्वं माताहमिति भाससे ।
विष्णुः पितेति च वचो न पिता विदितो मम ॥ ६७ ॥
जानामि पितर चाह विदेहाधिपतिं नृपम् ।
तस्य भार्य्या सुमत्याख्यामह जानामि मातरम् ॥ ६८ ॥
भ्रातरस्तत्सुताः सर्वे सीता मे भगिनी शुभा ।
सुमतिर्मम मातेति लोको जानाति सन्ततम् ॥ ६९ ॥

कात्यायनी च धात्री मे याधुनैव कृता त्वया ।
एतत् सर्वं त्वया मिथ्या शशित मम साम्प्रतम् ।
यथा तत्वाह तनयः सत्यमाख्याहि तन्मम ।। ७० ।।

मार्कण्डेय उवाच

पुत्रस्य वचन चेति श्रुत्वा सर्वंसहा तदा ।
सव तत् पूर्ववृत्तान्तं तनयाय न्यवेदयत् ।। ७१ ।।
यथा मलिन्या सम्भोगो वराहस्याभवत् पुरा ।
यथा गर्भे धृतो देवैर्येन वा कारणेन सः ।। ७२ ।।
यथा च गर्भदुःखार्ता माधव शरण गता ।
यथा तेन प्रदत्तश्च समयो जनक प्रति ।। ७३ ।।

ऋषयः ऊचुः

किमर्थं समयो दत्तो विष्णुणा प्रभविष्णुना ।
निहते रावणे वीरे रामेण सुमहात्मना ।। ७४ ।।
भविष्यति सुतस्ते वै तत्र नः सशयो महान् ।
एतान् त्व सशयान् छिन्धि गुरो शास्तासि नः सदा ।।७५

मार्कण्डेय उवाच

भारार्ता रावणादीना पृथिवी मासभोगिनाम् ।
अधोगता योजनानि पच वै द्विजसत्तमाः ।। ७६ ।।
अयं वराहवीर्येण जातो गर्भे क्षितेः पुनः ।
असावपि महाराजो दशग्रीवो यथाभवत् ।। ७७ ।।
अघो यास्यति भारार्ता सातीव पृथिवी त्विति ।
समयो दत्तवात् विष्णू रावणे निहते सति ।
धरायै भारविहतिव्याजेन द्विजसत्तमाः ।। ७८ ।।
त्वत्पूर्वरूप दृष्ट्वा वै वचनाच्च जगद्गुरोः ।
जातश्रद्धो महाभागे स्थास्यामि समये तव ।। ७९ ।।

पुत्रस्य वचनं श्रुत्वा पृथिवी प्रथमं तदा ।
मायामानुषरूपं तत् प्रतिजग्राह तत्पुरः ॥ ८० ॥
यथा कात्यायनीरूपं येन रूपेण पालितः ।
नरकः सा तु तद्गृह्य तत्याज पृथिवी तनुम् ॥ ८१ ॥
अथ दृष्ट्वैव नरको धात्रीं कात्यायनीं तदा ।
पप्रच्छ पूर्वं वृत्तान्तं यद्वृत्तं नृपमन्दिरे ॥ ८२ ॥
सा तथा कथयामास यथा सम्प्रति पालितः ।
यद्वृत्तं पूर्वतो गेहे नृपस्य जनकस्य तु ॥ ८३ ॥
जातसम्प्रत्ययस्तत्र नरकः समपद्यत ।
पृथिवी च पुनर्देवीरूपं स्वं जगृहे तदा ॥ ८४ ॥
अथ सस्मार पृथिवी जगन्नाथं हरिं प्रभुम् ।
समये पूर्वविहिते प्रणम्य शिरसा मुहुः ॥ ८५ ॥
स्मृतमात्रस्तदा क्षित्या माधवो गरुडध्वजः ।
प्रसन्नो जगतां नाथः प्रत्यक्षत्वं गतस्तदा ॥ ८६ ॥
तं दृष्ट्वा पृथिवी देवी देवं गरुडवाहनम् ।
नीलोत्पलदलश्यामं शङ्खचक्रगदाधरम् ॥ ८७ ॥
पीताम्बरं जगन्नाथं श्रीवत्सोरस्कमव्ययम् ।
प्रणनाम महाभक्त्या पस्पर्श शिरसा महीम् ॥ ८८ ॥
परमेश जगन्नाथ जगत्कारणकारण ।
प्रसीदेति वचश्चापि तदा प्रोचे जगत्प्रसूः ॥ ८९ ॥
नरकस्तु हरिं दृष्ट्वा निमील्य नयनद्वयम् ।
तत्तेजसा चाभिभूतस्तदा भूमावुपाविशत् ॥ ९० ॥
उपविष्टे तदा देवी तनये नरकाह्वये ।
प्रसादयामास तदा पुत्रार्थे वरवर्णिनी ॥ ९१ ॥
प्रसाद्यमानो धरया हरिर्नारायणोऽव्ययः ।
शङ्खाग्रेण तदा पुत्रं पस्पर्श नरकाह्वयम् ॥ ९२ ॥

स्पृष्टमात्रोऽथ हरिणा नरकोऽभूत् सुदर्शनः ।
हृष्टश्चोत्साहवांश्चैव बलवान् समपद्यत ॥ ९३ ॥
तत उत्थाय नरको हरिं नारायणं प्रभुम् ।
भक्त्या प्रणम्य गोविन्दं साष्टाङ्गं च मुहुर्मुहुः ॥ ९४ ॥
ननाम पृथिवीं वीरो जातसम्प्रत्ययस्तदा ।
प्रणम्य च महाभागा भक्त्या परमया युतः ॥ ९५ ॥
प्राञ्जलिः पुरतस्तस्थौ नोक्त्वा किंचन वै भिया ।
ततस्तदर्थे पृथिवी माधवं समयाचत ॥
प्रसीद देवदेवेश समयं प्रतिपालय ।
त्वयाह तनयो दत्तो मम सर्वं जगत्पते ।
एतदर्थे प्रतिज्ञातं यद्दत्तं प्रतिपालय ॥ ९७ ॥

भगवानुवाच

भवती यत्सुपुत्रार्थे मामयाचत पुरा मया ।
तत् सर्वं तव दत्तं वै राज्यं दत्तं च त्वत्सुते ॥ ९८ ॥
इत्युक्त्वा भगवान् विष्णुरादाय नरकाह्वयम् ।
सार्द्धं पृथिव्या गङ्गायां ममज्ज जगतां प्रभुः ॥ ९९ ॥
निमज्य क्षणमात्रेण प्राग्ज्योतिषपुरं गतः ।
मध्यगं कामरूपस्य कामाख्या यत्र नायिका ॥ १०० ॥
स च देशः स्वराज्यार्थे पूर्वं गुप्तश्च शम्भुना ।
किरातैर्बलिभिः क्रूरैरज्ञैरपि च वासितः ॥ १०१ ॥
रुक्मस्तम्भनिभास्तत्र किरातान् ज्ञानवर्जितान् ।
अनर्थमुण्डितान् मद्यमांसाशनैकतत्परान् ॥ १०२ ॥
ददर्श विष्णुः कुपितान् [70]विष्णुं दृष्ट्वा द्विजर्षभाः
तेषामधिपतिस्तत्र[71] घटको नाम वीर्यवान् ।
रुक्मस्तम्भनिभस्तत्रः प्रदीप्त इव पावकः ॥ १०३ ॥

70 दृष्ट्वा विष्णुं तदा तत्र । 71 स्तूर्णं ।

स क्रोधाच्चतुरंगेन बलेन महता युतः ।
आससाद जगन्नाथं नरकं च महाबलम्[72] ॥ १०४ ॥
आसाद्य शरवर्षेण ववर्ष प्रभुमव्ययम् ।
किरातैः सहितो राजा घटकाख्यः किरातराट् ॥ १०५ ॥
माधवोपि तदा पुत्रं नरकं वीर्यवत्तरम् ।
प्रेरयामास युद्धाय किरातनृपतेस्तदा ॥ १०६ ॥
नरको धनुरादाय सह तैर्बलवत्तरैः ।
युयुधे सुचिरं तत्र शस्त्रास्त्रैर्बहुधेरितैः ॥ १०७ ॥
ततोऽसौ भल्लमादाय योजयित्वा धनुर्गुणेः ।
शिरः किरातराजस्य चिच्छेद नरको बली ॥ १०८ ॥
मुख्यान् मुख्यान् किरातांश्च बहून् सेनाधिपास्तथा ।
जघान कुपितो वीरः केशरीव मतंगजान् ॥ १०९ ॥
हतेऽथ नृपतौ केचित् पलायनपरायणाः ।
किराताः केचन पुनर्नरकं शरणं गताः ॥ ११० ॥
निहत्य युध्यमानांस्तु संरक्ष्य शरणं गतान् ।
नरकः पितरं गत्वा प्रणम्याथ न्यवेदयत् ॥ १११ ॥

नरक उवाच

हतस्तात किरातानामधिपो घटको मया ।
सेनाधिपाश्च तस्यान्ये किमन्यत् करवाण्यहम् ॥ ११२ ॥

भगवानुवाच

किरातान् जहि यावत्त्वं देवीं दिक्करवासिनीम् ।
पलायमानान् विद्राव्य पालय शरणं गतान् ॥ ११३ ॥

मार्कण्डेय उवाच

ततः स नरको वीरः समारुह्य सितं गजम् ।
चतुर्दन्तं महाकायं किराताधिपवाहनम् ॥ ११४ ॥

---

72 महाबल ।

ऐरावतसम वीर्ये वेगेन गरुडोपमम् ।
किरातान् द्रावयामास यावद्दिक्करवासिनीम् ॥ ५१५ ॥
पितर पुनरागत्य वचन चेदमब्रवीत् ।

नरक उवाच

विद्राविताः किरातास्ते सागरान्त समाश्रिताः ॥ ११६ ॥
हतश्च घटकाख्यो हि किराताधिपतिर्महान्
वेगिनं गजमारुह्य ऐरावतसम गुणैः ।
यदन्यत् करणीयं मे तदाज्ञापय सम्प्रति ॥ ११७ ॥

भगवानुवाच

करतोया सदा गगा पूर्वभागावधिश्रया ।
यावल्ललितकान्तास्ति तावदेव पुर तव ॥ ११८ ॥
अत्र देवी महाभागा योगनिद्रा जगत्प्रसूः ।
कामाख्यारूपमास्थाय सदा तिष्ठति शोभना ॥ ११९ ॥
अत्रास्ति नदराजोऽय लौहित्यो ब्रह्मणः सुतः ।
अत्रैव दशदिकपालाः स्वे स्वे पीठे व्यवस्थिताः ॥ १२० ॥
अत्र स्वय महादेवो ब्रह्मा चाह व्यवस्थितः ।
चन्द्रः सूर्यश्च सतत वसतोऽत्र च पुत्रक ॥ १२१ ॥
सर्वे क्रीडार्थमायाता रहस्य देशमुत्तमम् ।
अत्र श्रीर्वसते भद्रा भोग्यमत्र तथा बहु ॥ १२२ ॥
अस्य मध्ये स्थितो ब्रह्मा प्राङ्नक्षत्र ससर्ज ह ।
ततः प्राग्ज्योतिषाख्येय पुरी शक्रपुरीसमा ॥ १२३ ॥
अत्र त्व वस भद्र ते ह्यभिषिक्तो मया स्वयम् ।
कृतदारः सहामात्यै राजा भूत्वा महाबलः ॥ १२४ ॥

मार्कण्डेय उवाच

एवमुक्त्वा स्वय विष्णुः शम्भोरनुमते तदा ।
सर्वान् किरातान् पूर्वस्या सागरान्ते न्यवेशयत् ॥ १२५ ॥

पूर्वं ललितकान्तायाः समादायावधिं पुनः ।
यावत् सागरपर्यन्त किरातास्तावदावसन् ॥ १२६ ॥
पश्चाल्ललितकान्तायाः देश कृत्वावधि पुनः ।
करतोया नदीं यावत् कामाख्यानिलयं तु तत् ॥ १२७ ॥
तस्मात् किरातानुत्सार्यवेदशास्त्रातिगान् बहून् ।
द्विजातीन् वासयामास तत्र वर्णान् सनातनान् ॥ १२८ ॥
वेदाध्ययनदानानि सतत वर्तते यथा ।
तथा चकार भगवान् मुनिभिर्वासयन् विभुः ॥ १२९ ॥
वेदवादरताः सर्वे दानधर्मपरायणाः ।
नचिरादभवद्देशः कामरूपाह्वयस्तदा ॥ १३० ॥
ततो विदर्भराजस्य पुत्रीं मायाह्वया हरिः ।
पुत्रार्थे वरयामाम [7] नरकस्य समा गुणै ॥ १३१ ॥
तामुद्वाह्य हृषीकेशस्तस्मिन् पुरवरे स्वयम् ।
तया सम स्वतनय राजत्वेनाभ्यषेचयत् ॥ १३२ ॥
सुगुप्ता च पुरीं चक्रे गिरिदुर्गेण माधवः ।
जलदुर्गं सर्वतो भद्र देवैरपि दुरासदम् ॥ १३३ ॥
ततः किरातराजस्य चतुर्दन्ताः सुदन्तिनः ।
पञ्चविंशतिसाहस्रा महामात्रकुथैर्युताः ॥ १३४ ॥
यानि रत्नान्यनेकानि सैन्यानि विविधानि च ।
अश्वाश्चाभरणाश्चैव तत्सर्वं नरकोऽग्रहीत् ॥ १३५ ॥
यद्यत् सुभूषणं राज्ञो ध्वजाश्चाभरणानि च ।
तानि तानि स्वय विष्णुस्तनयस्य ददौ तदा ॥ १३६ ॥
रथ च प्रददौ तस्मै त्रिषु लोकेषु दुर्लभम् ।
लोहाष्टचक्रसञ्छन्नमर्धयोजनविस्तृतम् ॥ १३७ ॥
युक्तमश्वसहस्रैश्च तथाष्टाभिर्मनोजवैः
रत्नकाञ्चनचित्राढ्य वेदिकाभागविस्तरम् ॥ १३८ ॥

---

73 रूप-गुणान्वितां तदा ।

वज्रध्वजेन महता काचनेन विराजितम् ।
हेमदण्डपताकाढ्य वैदूर्यमणिकूवरम् ॥ १३९ ॥
सिहव्याघ्रसमुद्भूतैश्चर्मभिश्छादित सदा ।
लोहजालैश्च सञ्छन्नं किंकिणीजालमालिनम् ।
सर्वप्रहरणैर्युक्त बहुमायासमन्वितम् ॥ १४० ॥
शक्ति च प्रददौ तस्मै सर्वशत्रुविशातनीम् ।
ज्वालामालाभिदीप्ताग्री रिपुकक्षाग्निरूपिणीम् ॥ १४१ ॥
इमं च समय प्रोचे नरकाय महात्मने ।
नरकस्य हितायेशो वसुधाया समक्षत. ॥ १४२ ॥

भगवानुवाच

इमा शक्ति न हि भवान् प्राणस्य[21] सशय विना ।
प्रयोक्ष्यति कदाचित्तु मानुषेषु विशेषत. ॥ १४३ ॥
एषा भार्या च वैदर्भी भवत सदृशी गुणै ।
भवतो जीवन यावत्तावत् स्थास्यति शोभना ॥ १४४ ॥
त्व तु प्रजार्थै त्रेताया यत्नवान् वै भविष्यसि ।
द्वापरान्ते तु सम्प्राप्ते प्रजा तत्र भविष्यति ॥ १४५ ॥
विरोधो मुनिभि. सार्ध ब्राह्मणैरपि पुत्रक ।
न कदाचित्त्वया कार्यश्चिरञ्जीवितुमिच्छता ॥ १४६ ॥
न राजभिर्न देवैश्च विरोधो युज्यते तव ।
महादुर्गस्य वै मध्ये वसतो ह्यपराजिते ॥ १४७ ॥
दिव्ययोषिद्गणै सार्ध वसमानोऽतिभोगवान् ।
स्वपर्वते कामरूपे चिर त्व तिष्ठ पुत्रक ॥ १४८ ॥
महादेवी महामाया जगन्मातरमम्बिकाम् ।
कामाख्या त्व विना पुत्र नान्यदेव यजिष्यसि ॥ १४९ ॥
इतोऽन्यथा त्व विहरन् गतप्राणो भविष्यसि ।
तस्मान्नरक यत्नेन समय प्रतिपालय ॥ १५० ॥

---

21 प्राणानां ।

मार्कण्डेय उवाच

इत्युक्त्वा भगवान् विष्णुर्नरक तनय स्वकम् ।
तमपास्य रहस्येना पृथिवी वाक्यमब्रवीत् ।। १५१ ।।
यद् यत् पूर्व मया प्रोक्त कर्तव्य तव सुन्दरि ।
तत् सर्व नरकायाशु भूत्यै समुपदेशय ।। १५२ ।।
यदैन त्व स्वय हन्तु मा जगद्धात्रि भाषसे ।
तदा तु मानुष कश्चिन्नरक निहनिष्यति ।। १५३ ।।

पृथिव्युवाच

प्रजार्थमेष यत्नो मे निन्द्य स्यात् सन्तति विना ।
तस्मान्नाथ प्रयत्नान्मे सन्तति पालयिष्यसि ।। १५४ ।।
एवमस्त्विति ता विष्णु पृथिवीं प्रति पावन ।
नरकं च समाभाष्य तत्रान्तर्धिमगात् क्षणात् ।। १५५ ।।
गते हरौ निजस्थानं पृथिवी तनय स्वकम् ।
यत् पूर्वं हरिणा प्रोक्त तत्र त व्यनयत् स्वयम् ।। १५६ ।।
नरकोऽपि तदा धीमान् वेदशास्त्रार्थपारग.[22] ।
ब्रह्मण्यनीतिकुशलो वदान्यो दानतत्पर' ।। १५७ ।।
कामाख्यापूजनरतो नीलकूटे महागिरौ ।
[23]महाभोगी महाश्रीमान् हीनबाधश्च शत्रुभि ।
सुचिरं राज्यमकरोच्छक्रवत्त्रिदशालये ।। १५८ ।।
ततो विदेहराजोऽपि श्रुत्वैव नरकश्रियम्[24] ।
सपुत्रभार्य. सगणो[25] नरक द्रष्टुमभ्यगात् ।। १५९ ।।
प्रागूज्योतिष पुर गत्वा कामरूपान्तरस्थितम् ।
ददर्श नरक राजा शरच्चन्द्रसमं श्रिया ।। १६० ।।
प्रागूज्योतिष पुर मेने स राजा त्वमरावतीम् ।
देवेन्द्र नरकं मेने सतूपरिच्छदभूषणम्[26] ।। १६१ ।।
ततो महिष्यै तत् सर्व जनको वाक्यमब्रवीत् ।

---

22 तत्परः । 23 महायोगि । 24. नरकप्रियम् ।
25 शरणो । 26. सपरिषद्भूषितम् ।

जनक उवाच

एष ते पालितसुत· श्रीमान् नरकसञ्ज्ञक ॥ १६२ ॥
पृथिव्या दयित पुत्र सजातो घृष्टिरूपिणा ।
विष्णुना जगदीशेन त्वमेन पश्य सगतम्[27] ॥ १६३ ॥

मार्कण्डेय उवाच

इत्युक्त्वा जनको राजा यथा वृत्त तथा पुरा ।
वृत्तान्तं कथयामास नरको जातवान् यथा ॥ १६४ ॥
ततस्तत्र चिर स्थित्वा प्राग्ज्योतिषपुरे मुदा ।
विदेहाधिपती राजा नरकेण प्रपूजित ॥ १६५ ॥
स्वस्थान गतवास्तस्मात्[28] स्वगणै परिवारित ॥ १६६ ॥
एव स नरको जात पृथिव्यास्तनयरतदा ।
हीनासुरस्वभाव सविजहार चिर क्षितौ ॥ १६७ ॥

इति श्रीकालिकापुराणे नरकाभिषेचनेऽष्टत्रिंशोऽध्याय ॥ ३८ ॥

---

27 संगता । 28. गतवांस्तत्र ।

एकोनचत्वारिंशोऽध्यायः

मार्कण्डेय उवाच ।

स राजा नरक श्रीमाश्चिरञ्जीवी महाभुज ।
मानुषेणैव भावेन चिर राज्यमथाकरोत्[२९] ॥ १ ॥
त्रेताया च व्यतीताया द्वापरस्य तु शेषत ।
अभवच्छोणितपुरे बाणो नाम महासुर ॥ २ ॥
तस्याग्निदुर्गं नगर स च शम्भुसखो बली ।
सहस्रबाहुर्दुर्धर्ष प्रिय पुत्र स वै बले ॥ ३ ॥
नरकेण सम तस्य महामैत्री व्यजायत ।
[३०]गमनागमनान्नित्यमन्योन्यानुग्रहैस्तथा ।
तयोरभूद् महाप्रीति पवनानलयोर्यथा ॥ ४ ॥
स च बाण समाराध्य महादेव जगत्प्रभुम् ।
आसुरेणाथ भावेन व्यचरच्चाकुतोभय ॥ ५ ॥
तत्ससर्गात् स नरको दृष्ट्वा तस्याद्भुता कृतिम् ।
तेनैव सह भावेन विहर्तुमुपचक्रमे ॥ ६ ॥
न ब्राह्मणान् पूजयति यथा पूर्व तथा द्विजा ।
न च यज्ञेषु दानेषु पूर्ववन्मुदित स च ॥ ७ ॥
न तथा विष्णुमभ्येति पृथिवीं वापि नार्चति ।
कामाख्याया तथा भक्तिस्तदा तस्याथ नाभवत् ॥ ८ ॥
एतस्मिन्नन्तरे धातुस्तनयो मुनिसत्तम ।
वसिष्ठो नाम कामाख्या द्रष्टु प्राग्ज्योतिप गत ॥ ९ ॥
तां दुर्गाभ्यन्तरे नीलकूटदेवीं व्यवस्थिताम् ।
द्रष्टुं गन्तु वसिष्ठस्य न द्वारं नरको ह्यदात् ॥ १० ॥
ततो वसिष्ठ कुपितो वचन परुष मुनि ।
जगाद नरकं वीरं गर्हयन्मुनिसत्तम ॥ ११ ॥

वसिष्ठ उवाच

कथ पृथिव्यास्तनयो वराहस्य सुतोऽञ्जसा[३१] ।

---

२९ राज्य तदाकरोत् ।
३०. गमनागमनादारभ्य 'विहर्तुमुपचक्रमे' पर्यन्तम् मुद्रितपुस्तके अधिको दृश्यते । ३१. वराहस्य सतेजसा ।

देवी द्रष्टु ब्राह्मणस्य न ददासि तथागत ॥ १२ ॥
कि ते कुलोचित कर्म त्व करोषि धरात्मज ।
देवी प्राग्ज्योतिष गत्वा पूजयिष्ये जगन्मयीम् ॥ १३ ॥

मार्कण्डेय उवाच

तत स नरको राजा प्राप्तकाल क्षिते सुत. ।
परुषेणाथ वाक्येन तमाक्षिप्य निरस्तवान् ॥ १४ ॥
ततो मुनि. स कुपित शशाप नरक नृपम् ।

वसिष्ठ उवाच

नचिराद् येन जातोऽसि तेन मानुषरूपिणा ।
मरण भविता पाप वराहकुलपासन[32] ॥ १५ ॥
मृते त्वयि महादेवी कामाख्या जगता प्रभुम् ।
पूजयिष्याम्यह पाप तिष्ठ यास्ये स्वमालयम् ॥ १६ ॥
त्व यावज्जीविता पाप कामाख्यापि जगत्प्रभु.[33] ।
सर्वै परिकरै सार्धमन्तर्धानाय गच्छतु[34] ॥ १७ ॥

मार्कण्डेय उवाच

इत्युक्त्वा ब्रह्मपुत्र स स्वस्थान गतवान् मुनि ।
वसिष्ठस्तेन भौमेन निरस्त कुपितो भृशम् ॥ १८ ॥
गते वसिष्ठे नरक शीघ्र विस्मयसयुत ।
जगाम देवीभवन नीलकूट महागिरिम् ॥ १९ ॥
तत्र गत्वा न चापश्यत्[35] कामाख्यां कामरूपिणीम् ।
न योनिमण्डल तस्या[36] सर्वान् परिकरांस्तथा ॥ २० ॥
तत स विमना[37] भूत्वा क्षिति सस्मार मातरम् ।
पितर च जगन्नाथ नरक प्रभुमव्ययम् ॥ २१ ॥
न तावपि तदा यातौ तस्य प्रत्यक्षता द्विजा ।
व्युत्क्रान्तसमयस्येति नीतिहीनस्य शम्भवे ॥ २२ ॥
चिरं प्रतीक्ष्य तौ तत्र भौमो वज्रध्वजस्तदा ।
अप्राप्तक्षितिविष्णु. स सशोक स्व निवेशनम् ॥ २३ ॥
स गच्छन् स्वगृह भौम पुरीं स्वां दृष्टवास्तु स ।
पूर्वश्रिया परित्यक्ता मलिना वनितामिव ॥ २४ ॥

---

३२ वराहसुतपांसुल । ३३. जगत्प्रसू. ।
३४. परिसरैः सार्धं अन्तर्धानं सागच्छतु ।
३५ वापश्यत् । ३६ चास्याः । ३७. विनयो ।

देव्यामन्तर्हितायां तु वेदवादविवर्जितम् ।
पुण्यस्वल्पदारजन[38] तत् पुर समपद्यत ॥ २५ ॥
न देवास्तत्र गच्छन्ति न विप्रा न महर्षय ।
बभूव नगर तस्य स्वल्पयज्ञक्रियोत्सवम् ॥ २६ ॥
ईतयो बह्वो जाता मृताश्च बह्वो जना ।
लौहित्यनदराजोऽपि हीनतोयस्तदाऽभवत् ॥ २७ ॥
बहूनि विपरीतानि दृष्ट्वा स नरकस्तदा ।
मेने मरणमासन्नमात्मनो ब्रह्मशापत ॥ २८ ॥
तत· प्राग्ज्योतिषाध्यक्ष शोकविह्वलचेतन[39] ।
चिन्तयन् मनसा मित्र बाण बलिसुत ययौ ॥ २९ ॥
सखा प्राणसम सोऽस्य सततान्योन्यरक्षणे ।
तत्परौ बाणनरकौ स्ववैद्याविवश्विनाविव ॥ ३० ॥
एतस्मिन्नन्तरे बाणो मित्र शम्भुसखो बली[40] ।
अनुकूलयिता मन्त्रप्रदानेन महाबुध ॥ ३१ ॥
इति चासीन्मतिस्तस्य वज्रकेतोस्तदाचला ।
दूत च प्राहिणोद् दीप्त बाणस्य नगर प्रति ॥ ३२ ॥
स शोणितपुर गत्वा स्यन्दनेनाशुगामिना ।
ततो[41] भौमस्य वृत्तान्त वाणायाशु न्यवेदयत् ॥ ३३ ॥
यथा शप्तो वसिष्ठेन यथा चान्तर्हिताम्बिका ।
यथा विघ्न पुरवरे जात प्राग्ज्योतिषाह्वये ॥ ३४ ॥
समयस्य व्यतिक्रान्तिर्भूमिमाधवयोर्यथा ।
तथा स दूतो भौमस्य शशास बलिसूनवे ॥ ३५ ॥
स समाकारमित्रस्य[42] सम्यग् दैवपराभवम् ।
स्वयं जगाम नरकं सभाजयितुमीश्वर ॥ ३६ ॥
स काचनविचित्रागं युक्तमश्वशतैस्त्रिभि ।
लोहचक्र च वैयाघ्रं मयूरध्वजभूषितम् ॥ ३७ ॥
हेमदण्डसितच्छत्रच्छादितं किंकिणीगणै ।
नानारत्नौघरचितमारुरोह महारथम् ॥ ३८ ॥
स सहस्रभुज श्रीमाश्चतुरगबलैर्युत· ।
प्राग्ज्योतिष भौमपुरमचिरादाजगाम[43] ह ॥ ३९ ॥

---

३८. पुण्ये स्वल्पदेवजनम् । ३९ मानस ।
४०. मित्रः बाणो शम्भुसखो मम । ४१. दूतो । ४२ तदाकर्ण्य · ··· ।
४३. प्राग्ज्योतिषाख्यं स पुरीं नचिरादाससाद ।

तमासाद्य महाबाहुर्बाण प्राग्ज्योतिषेश्वरम् ।
हीन पूर्वश्रिया मित्रमपश्यन्नगर च तत् ॥ ४० ॥
स तेच पूजितो बाणो यथायोग्य सुतेन को ।
पप्रच्छ किं निमित्त ते हीनश्रीकमभूत् पुरम् ॥ ४१ ॥

बाण उवाच

शरीर च यथापूर्व तथा न तव राजते ।
मनश्च ते नाति हृष्ट तत्र हेतु वदस्व मे ॥ ४२ ॥

मार्कण्डेय उवाच

एवमादीनि पृष्ट स नरक क्षितिनन्दन ।
यथा वसिष्ठशापोऽभूत् तत् सर्व तस्य चाब्रवीत् ॥ ४३ ॥
यच्छ्रुत भौमवदनात्तद्दूतावेदित पुरा ।
ज्ञात्वा तथा त प्रोवाच बाणो वज्रध्वज पुन ॥ ४४ ॥

बाण उवाच

नहि मन्युस्त्वया कार्यं सुखे दुःखे शरीरिणाम् ।
चक्रवत् परिवर्तेते नैताभ्या कोऽपि हीयते ॥ ४५ ॥
पर तत्र प्रतीकार कार्यो धीरैर्विभूतये ।
भवानपि प्रतीकार कर्तुमर्हति सम्प्रति ॥ ४६ ॥
य एष मानुष पृथ्व्यामसाधारणभूतिभि ।
वर्धते दानवो वापि दैत्यो वाप्यथवासुर ॥ ४७ ॥
राक्षस किन्नरो वापि शक्रस्तान् सहते नहि ।
स कौटिल्य देवगणै सार्ध कुर्वन्नितस्तत ।
यथा तथा प्रकारेण भ्रंशयत्येव त श्रिय ॥ ४८ ॥
तस्य चेष्टतमो देवो विष्णुर्नित्य सनातन ।
स न शक्तस्य[४४] कुरुते मनोऽनिष्ट मनागपि ॥ ४९ ॥
य समाराधयेद् विष्णु शक्रस्यानिष्टकारक. ।
तस्मै वर तु सच्छिद्र दत्त्वा त शातयत्यित ॥ ५० ॥
चिरमाराधितो विष्णुरिष्टान् कामान् प्रयच्छति ।
महता कायदुःखेन पूजित' सम्प्रसीदति[४५] ॥ ५१ ॥
विनेष्टदेवतापूजा विभूतिमतुला पुमान् ।
क प्राप्नोति[४६] श्रुतः पूर्वं न वा पूर्वतरे[४७] क्वचित् ॥ ५२ ॥

---

४४. शक्रस्य । ४५. स प्रसीदति । ४६. कोऽप्याप्नोति ।
४७. पूर्वतर ।

त्वया नाराधित पूर्वं ब्रह्मा वा विष्णुरीश्वर ।
तेन तेऽद्य महाविघ्ना उत्पन्ना विषये तव ॥ ५३ ॥
यो वा विष्णु पालकस्ते न निसर्गानुकम्पक ।
किन्तु ते स क्षितेर्वाक्यात्तया चाराधितो मुहु ॥ ५४ ॥
दत्त छिद्र च ते विष्णुर्नापराध्यास्त्वया द्विजा ।
इतोऽन्यथा त्व भविता हतश्रीरिति न श्रुतम् ॥ ५५ ॥
अपराध्यस्त्वया भूप वसिष्ठ परमो मुनि ।
तेन स्मरणमात्रेण[४८] नायातौ क्षितिमाधवौ ॥ ५६ ॥
तस्मात्त्व मित्र बुध्यस्व कौटिल्यं हरिमेधस ।
नाधुना युज्यते भौम तवोदासीनताकृति· ॥ ५७ ॥
यत्ते मनसि तातोऽयमिति सम्प्रत्यय स ते ।
वराह एव ते तात· स च लोकान्तर गत ॥ ५८ ॥
वराहोऽपि हरेरश इति यच्छ्रूयते त्वया ।
तस्याश इत्यनुक्रोश· केन वा क्रियते वद ॥ ५९ ॥
तस्मात्त्व कुरु शम्भोर्वा ब्रह्मणो वाधुनार्चनम् ।
स ते प्रसन्न परममिष्टकाम प्रदास्यति ॥ ६० ॥
विघ्नो वा मुनिशापो वा महेतिर्वातिपीडक[४९] ।
विधौ प्रसन्ने शम्भौ वा नचिरात्क्षयमेष्यति ॥ ६१ ॥

मार्कण्डेय उवाच

जातसम्प्रत्ययो भौमो बाणस्य वचनात् तदा ।
सुप्रीत· समुवाचेद धीरघर्घरनि स्वन· ॥ ६२ ॥

भौम उवाच

यत् त्वया गदितं बाण हित मे मित्रवत्सल ।
तत् कार्यमचिरादेव तपश्चरणमुत्तमम् ॥ ६३ ॥
विष्णुर्नाराधनीयो मे तत्र हेतुस्त्वयोदितः ।
नैवाराध्यस्तथा शम्भुरन्तर्गुप्त· स मे पुरे ॥ ६४ ॥
तस्माद् ब्रह्मा समाराध्यो वचनात् तव मित्रक ।
तत्पुत्रस्य महाबाहो लौहित्यस्याम्बुसन्निधौ ॥ ६५ ॥
भवताध्यापितश्चाहं शिष्योऽथ गुरुणा यथा ।
मित्र मित्र यथा धीर साम्ना परमवल्गुना ॥ ६६ ॥

---

४८. मात्राते । ४९. पातकः ।

मार्कण्डेय उवाच

इत्युक्त्वा स महाबाहुर्बाण वज्रध्वजस्तदा ।
यथावत् पूजयामास तन्मित्र मित्रवत्सल ॥ ६७ ॥
अर्चयित्वा यथायोग्य प्रस्थाप्य च बले सुतम् ।
ब्रह्माराधनमत्युग्र कर्तुमिच्छन् क्षिते सुत. ॥ ६८ ॥
स तीरे नदराजस्य लौहित्यस्य महात्मन ।
ब्रह्माचल समारुह्य तपस्तप्तुमुपस्थित ॥ ६९ ॥
स मानुषेण मानेन क्षितिपुत्र शत समा. ।
जलाहारव्रतेनैव समानर्च पितामहम् ॥ ७० ॥
सन्तुष्ट शतवर्षान्ते ब्रह्मा लोकपितामह ।
प्रत्यक्षीभूय नरकस्याग्रत समुपस्थित ॥ ७१ ॥
प्रीतोऽस्मि ते वर दास्ये वर वरय सुव्रत ।
इति चोवाच नरक स तदा[५०] कमलासन ॥ ७२ ॥
स दृष्ट्वा सर्वलोकेश प्रत्यक्ष कमलासनम् ।
प्रणम्य प्राञ्जलि प्रोचे विनयानतकन्धर ॥ ७३ ॥
देवासुरेभ्यो रक्षोभ्य. सर्वेभ्यो देवयोनित ।
अवध्यत्वं सुरश्रेष्ठ वरमेक प्रयच्छ मे ॥ ७४ ॥
अविच्छिन्ना सन्ततिर्मे यावच्चन्द्रो रविस्तपेत् ।
तावद्भवतु लोकेश द्वितीयोऽय वरो मम ॥ ७५ ॥
तिलोत्तमाद्या या देव्य सद्रूपगुणसयुता ।
तास्ता मे दयिता सन्तु सहस्राणि तु षोडश ॥ ७६ ॥
अजेयत्वं [सदा श्रीर्मां न जहातु कदाचन[५१] ।
इति पच वरा मेऽद्य वृतास्त्वत्तः पितामह ॥ ७७ ॥

मार्कण्डेय उवाच

मायया मोहितो भौमो मुनिशाप विस्मृत्य च ।
अन्यद्वरान्तर वव्रे मुनिशापस्तथा स्थित ॥ ७८ ॥
एवमस्त्विति तान् सर्वान् वरान् दत्त्वा पितामह. ।
उवाचेद द्वापरान्ते सन्ध्याया सुरकन्यका ॥ ७९ ॥
तिलोत्तमाद्यास्ते जाया सम्भविष्यन्ति भूतले ।
न यावन्नारदो याति वज्रध्वज पुर तव ।
तावन्न मैथुने योज्या भवता ता क्षिते. सुत ॥ ८० ॥

५०. तदा स । ५१ कदा श्रीर्मां न जहातु विभूतिभि ।

इत्युक्त्वा सर्वलोकेश' क्षणादन्तर्हितोऽभवत् ।
मुदमासाद्य परमा स्वस्थान नरकोऽभ्यगात्[५२] ॥ ८१ ॥
ततो मुदितलोक त नगर श्रीनिषेवितम् ।
सदा सोत्साहसम्पूर्णमीतिविघ्नविवर्जितम्[५३] ॥ ८२ ॥
अभवत् पशुसघैश्च वाजिवारणकुम्भकै ।
सम्पूर्ण देवराजस्य दयितेवामरावती ॥ ८३ ॥
उत्तीर्णतपस श्रुत्वा वाणो दत्तवर[५४] तथा ।
स्वय पुनरुपातिष्ठद् भौम वज्रध्वज तदा ॥ ८४ ॥
स गत्वा भौमनगर बाण प्राग्ज्योतिषाह्वयम् ।
पप्रच्छ नरक मित्र तपस सन्निवेशनम् ॥ ८५ ॥
कुत्र त्वया तपस्तप्त कि वा चीर्णं त्वया व्रतम् ।
कीदृशो वा वरो लब्धस्त्व ममाख्यातुमर्हसि ॥ ८६ ॥
दृष्ट[५५] तव पुर सर्व प्रहृष्टजनसकुलम् ।
वाजिवारणरत्नौघै पूरित मगलस्वनै[५६] ॥ ८७ ॥
दृश्यतेऽद्य त्वया पाल्य शस्यपूर्णमनामयम् ।
कथ्यता वा कथ ब्रह्मा वर तुभ्य प्रदत्तवान् ॥ ८८ ॥

भौम उवाच

ब्रह्मा स्वय पर्वतरूपधारी
कामेश्वरीं धर्तुमिहावतीर्ण ।
तत्र स्वय सम्प्रति घस्रमेति
पुरा न यावच्छपते वसिष्ठ ॥ ८९ ॥
सोऽय पुरे मे बलिपुत्र राजते
देवौघसेव्योऽप्यमरोत्तमाश[५७] ।
तत्राहमेको वरतोयभोजनो
वर्षाण्यकार्षं च तप शतानि वै ॥ ९० ॥
लौहित्यतीरे घनवायुसेविते
मनोहरे प्राणभृता सुखप्रदे ।
तप प्रवृत्तस्य सुख समागम-
च्छरद् यथैका शरदां शतानि मे ॥ ९१ ॥

---

५२. भ्ययात् । ५३ सोत्साहपतनं नीति ।
५४. दत्तवरं । ५५. कृत्स्नं ।
५६. ·· ·ध्वनिम् । ५७. अवराधरोत्तम· ।

तत स तुष्टश्चतुराननोऽभवत्
प्रत्यक्षतो मा न्यगदच्च मद्धितम् ।
तव प्रसन्नोऽस्मि वर यथेप्सित
दास्ये गृहाणेति पुरोऽथ भूत्वा[५८] ॥ ६२ ॥
अवध्यता मे सुरयोनित सुरा-
दच्छिन्नसन्तानमजेयता तथा ।
सदा विभूतिर्न जहातु मामिति
वराश्च नार्यो नवयौवनान्विता ॥ ६३ ॥
एते वरा पच मया ततो वृता
सोऽपि प्रतिश्रुत्य गतो निजास्पदम्[५९] ।
ततोऽहमभ्येत्य पुर निज मुदा
मन्त्रिप्रवीरै सहित पुनस्तान्[६०] ॥ ६४ ॥
पौरान् सबन्धून् सगणानमोदयम्
दानेन मानेन च भोजनेन ॥ ६५ ॥

मार्कण्डेय उवाच

इतीरित तस्य बले सुतस्तदा
भौमस्य श्रुत्वा मुमुदे न तत्क्षणात् ।
इद तदोचे वचन क्षिते सुत
तत्कालयुक्त न च सूनृतोद्भवम् ॥ ६६ ॥

बाण उवाच

न ते मुने शापमतीत्य गन्तु
भूता मतिर्मित्र तदा विधे पुर ।
कथ तु[६१] भद्रं भविता तवेह
भावीत्यवश्य क्षितिपुत्र नित्यम् ॥ ६७ ॥
कृतस्य करण नास्ति दैवाधिष्ठितकर्मण ।
भावीत्यवश्य यद्भाव्यं तत्र ब्रह्माप्यबाधक ॥ ६८ ॥
तस्मात् त्व सुमहावीरानसुरान् पावकोपमान् ।
सन्ध्याय च पुरस्कृत्य साचिव्ये विनियोजय ॥ ६९ ॥
द्वारि सस्थाप्य वै वीरान् देवैरपि दुरासदान् ।
अतिक्रमस्व देवेशं यदि लब्धवरो भवान् ॥ १०० ॥

---

५८. पुरोबद्राह । ५९. " निजं पदम् । ६०. समन्तात् ।
६१. न ।

विधिना यो वरो दत्तो भवते तत्-परीक्षणम् ।
कर्तुमर्हसि जायायामपुत्रो जनयात्मजम् ॥ १०१ ॥
इत्युक्त्वा प्रययौ बाणो यथावत् तेन पूजित. ।
नरको मित्रवचन कर्तु समुपचक्रमे ॥ १०२ ॥

इति श्रीकालिकापुराणे भौमतपस्यायां
एकोनचत्वारिंशोऽध्याय. ॥ ४१ ॥

चत्वारिंशोऽध्यायः

मार्कण्डेय उवाच

ऋतुमत्या तु जायाया काले स नरक क्रमात् ।
भगदत्त महाशीर्ष मदवन्त सुमालिनम् ॥ १ ॥
चतुरो जनयामास पुत्रानेतान् क्षिते सुत' ।
महासत्त्वान् महावीर्यान् वीरैरन्यैर्दुरासदान् ॥ २ ॥
ततो बाणस्य वचनाद् हयग्रीव तथा मुरुम् ।
सन्धायाथ समानीय सैनापत्येऽभ्यषेचयत् ॥ ३ ॥
मुरु सन्निहित श्रुत्वा हयग्रीव च भौमिना ।
ये ये क्षितौ तदा ह्यासन्नसुरास्तेऽपि सगता ॥ ४ ॥
हयग्रीव मुरु श्रुत्वा नरकेण समागतम् ।
निसुन्दसुन्दनामानावसुरौ सैनिकै सह ॥ ५ ॥
विरूपाक्षस्तदा दैत्य सर्वे तेन समागमन् ।
तत स पश्चिमद्वारि नरक सेनया सह ॥ ६ ॥
मुरु द्वाराधिप चक्रे हयग्रीव तथोत्तरे ।
पूर्वद्वारि निसुन्दन्तु विरूपाक्ष तु दक्षिणे ॥ ७ ॥
मध्ये पचजन सुन्द सैनापत्येऽभ्यषेचयत् ।
मुरु क्षुरान्तान् पाशाश्च षट्सहस्राण्ययोजयत् ॥ ८ ॥
द्वारि तत् पुररक्षार्थ सत्कृत क्षितिसूनुना ।
एव पूर्वान् पूर्वतरानवमत्य सुमन्त्रिण ॥ ९ ॥
असुरैरेव सतत सोऽसुरो मुदितोऽभवत् ।
पूर्व गृहीत भाव स परित्यज्य क्षिते' सुत ॥ १० ॥
आसुर भावमासाद्य बाधते त्रिदिवौकस ।
न देवान् न मुनीन् सर्वान्[६२] न च जानाति काश्चन ॥ ११ ॥
सुरेश्वर जिगायाशु हयग्रीवसहायवान् ।
एव स चासुर भाव तन्वानो विचरन् क्षितौ ॥ १२ ॥
बाणस्य वचनाच्छक्र बाधयत्येव वै मुनीन् ।
देवेश्वर त्रिधा जित्वा हयग्रीवसहायवान् ॥ १३ ॥
अदित्या' कुण्डलयुग त्रिषु लोकेषु विश्रुतम्[६३] ।

---

६२ विप्रान् नावजानाति । ६३ दुर्लभम् ।

सर्वरत्नामृतस्राविं दु खविघ्नहरं परम् ॥ १४ ॥
जहार नरको भौमो निर्भीतो मुनिशापत[६४] ।
एवं देवान् बाधमानो मुनीन् विप्रान् क्षिते सुत ।
पञ्चवर्षसहस्राणि राज्य प्राग्ज्योतिषेऽकरोत् ॥ १५ ॥
एतस्मिन्नन्तरे देवी महाभारार्दिता क्षिति ।
ब्रह्मविष्णुमुखान् देवान् रक्षार्थं शरण गता ।
इद चोवाच धातार प्रणम्योर्वी समाधवम् ॥ १६ ॥

पृथिव्युवाच

दानवा राक्षसा[६५] दैत्या हरिणा ये च सूदिता ।
ते राज्ञा मन्दिरे जाता अधुना बलगर्विता ॥ १७ ॥
तेषां भारमहं सोढुं न शक्नोमि महत्तरम् ।
असख्याताश्च ते सर्वे तान् सख्यातु न चोत्सहे ॥ १८ ॥
अष्टौ शतसहस्राणि तेषा मुख्या महाबला ।
तेष्वप्यतिबलान् वोढु[६६] न ताञ्छक्नोमि चाधुना ॥ १९ ॥
बाण बले सुत वीर कस धेनुकमेव च ।
अरिष्ट च प्रलम्ब च सुनामान मुरं शलम् ॥ २० ॥
चाणमुष्टिकौ मल्लौ जरासन्ध महाबलम् ।
नरक च हयग्रीव निसुन्द सुन्दमेव च ॥ २१ ॥
विरूपाक्ष पचजन हिडिम्ब च बक बलम् ।
जटासुर च किर्मीरमनायुधमलम्बुषम् ॥ २२ ॥
सौभाख्य च जरासन्ध द्विविदं चापि वानरम् ।
श्रुतायुध महादैत्य शतायुधमथापरम् ॥ २३ ॥
ऋष्यशृगसुत चैव सुबाहुमतिबाहुकम् ।
कालकजास्तथा दैत्यान् हिरण्यपुरवासिन· ॥ २४ ॥
एतेषा तु पदक्षोभैर्विशीर्णाह दिने दिने ।
लोकान् वोढु न शक्नोमि तान्निघ्नन्तु सुरोत्तमा' ॥ २५ ॥
नचेद्रक्षां प्रकुर्वन्ति भवन्त सुरसत्तमा· ।
तदा विशीर्णा यास्यामि पातालमवशाऽधुना ॥ २६ ॥

मार्कण्डेय उवाच

ततस्तस्या वच श्रुत्वा ब्रह्मविष्णुमहेश्वरा ।
इत्यूचुस्ते करिष्याम' क्षिते भारविमोक्षणम् ॥ २७ ॥
विसृज्य पृथिवीं देवीं सर्वे देवा सनातनम् ।

---

६४ देवशापतः । ६५. असुरा । ६६. ह्येतान् ।

माधव तोषयामासुर्भारावतरण प्रति ॥ २८ ॥
स तु तुष्ट सुरान् सर्वान् स्वांशैरवतरन्तु वै ।
क्षितौ भारावतारायेत्युक्त्वा स्वयमिह प्रभु ॥ २९ ॥
अवतीर्णोऽथ[६७] देवक्या गर्भे भारावतारणे ।
विष्णु चावतरिष्यन्त ज्ञात्वा देवा सनातनम् ॥ ३० ॥
रम्भातिलोत्तमाद्याश्च देव्यो रूपगुणान्विता ।
क्षितावुत्पादयामासु सहस्राणि तु षोडश ॥ ३१ ॥
ता सर्वा हिमवत्पृष्ठे क्रीडमाना वरस्त्रिय ।
अपश्यन्नरको भौमस्ता जहार तदा हठात् ॥ ३२ ॥
तेन ता धर्षिता देव्यो नीता प्राग्ज्योतिष प्रति ।
नरक प्रार्थयामासु समय मैथुन प्रति ॥ ३३ ॥
नारदो यावदायाति नगर प्रति भौम ते ।
अस्माक कुरु रक्षा च तावन्नो मुच मैथुने ॥ ३४ ॥
स समेष्यति वीर त्वा न चिरान्नो ह्यनुग्रहात् ।
तेन दृष्टा वय सार्धमेष्याम सगम त्वया ॥ ३५ ॥
इति सम्प्रार्थितस्ताभिर्नरको भूमिनन्दन ।
ब्रह्मवाक्य तदा स्मृत्वा एवमस्तूचिवान्[६८] मुहु ॥ ३६ ॥
एतस्मिन्नन्तरे देवो भगवान् लोकभावन[६९] ।
देवक्या जठराज्जातो वृद्धो नन्दगृहेऽभवत् ॥ ३७ ॥
कसकेशिप्रलबादीन् हत्वा दैत्याननेकश ।
अकरोद् द्वारकावास सागरे सलिलान्तरे[७०] ॥ ३८ ॥
तत्राष्टौ कन्यकास्तेन स्वधर्मेण च स्वीकृता ।
कालिन्दी मानुषीरूपा रुक्मिणी रमणी तत' ॥ ३९ ॥
नग्नजित्तनया सत्या लक्ष्मणा चारुहासिनी ।
सुशीला शीलसम्पन्ना तथा जाम्बवती सती ॥ ४० ॥
एतासु स्त्रीषु च ततो ह्यनुरक्तस्य तस्य वै ।
षट्त्रिंशद्वत्सरा जाता बलदेवसहायिन ॥ ४१ ॥
प्रद्युम्नसाम्बप्रमुखा पुत्रास्तस्य महाबला ।
जातास्तत्र द्विजश्रेष्ठा शास्त्रे शस्त्रे च कोविदा[७१] ॥ ४२ ॥
अनेके निहता दैत्या भारभूतास्तदा क्षिते ।
प्रहृष्ट क्रीडमानश्च द्वारकायामुवास स ॥ ४३ ॥

---

६७ अवतीर्याथ । ६८ बाढमित्यूचिवान् ।
६९ विष्णुरवतीर्णो धरातले । ७० अम्बुप्रस्थानिनान्तरे ।
७१. निश्चिता' ।

अथ शक्रस्तदायातो नरकेणार्दितो भृशम् ।
द्वारका प्रति कृष्णस्य दर्शनाय गणै. सह ॥ ४४ ॥
तत्र गत्वा परिष्वज्य कृष्ण लोकनमस्कृतम् ।
पूजितस्तेन बहुश आसने काचने स्थित ॥ ४५ ॥
कथयामास हरये नरकस्य विचेष्टितम् ।
शक्रो यथा पूर्ववृत्त यथा वा वर्ततेऽधुना ॥ ४६ ॥

शक्र उवाच

शृणु कृष्ण महाबाहो यदर्थमहमागत ।
कथयिष्यामि तत् सर्व तत्र शका न सकुरु ॥ ४७ ॥
भूमिपुत्रोऽसुरो नाम्ना नरक सुरमर्दनः ।
चिरजीवी पुरा विष्णुक्षितिभ्या परिपालित. ॥ ४८ ॥
अधुना स क्षिति विष्णुमवज्ञाय दुरासद ।
बाणस्य वचनाद् भौमो ब्रह्माण पर्यतोषयत् ॥ ४९ ॥
ब्रह्मत[72] स वरान् लब्ध्वा ह्यतीवाभूत् प्रदर्पित ।
माधव पृथिवी वापि सस्मार न कदाचन ॥ ५० ॥
पूर्वमासीत् स धर्मात्मा ह्याराधितसुरो व्रती ।
अधुना बाधते सर्वानासुर भावमाश्रित ॥ ५१ ॥
अदिते. कुण्डले मोहाज्जहारामृतसम्भवे ।
देवानृषीन् बाधमानो[73] विप्राणामप्रिये रत. ॥ ५२ ॥
मा चापि बाधते नित्य कामगामी दुरासदः ।
जेता तु सुरदैत्यानामवध्य सर्वदेहिनाम्[74] ॥ ५३ ॥
तव चाप्यन्तरप्रेक्षी त पाप जहि भूतये ।
त्वदर्थ सर्वदेवैर्या देवगन्धर्वकन्यका ॥ ५४ ॥
पुरा पर्वतमुख्ये तु हिमवत्यवतारिताः ।
चतुर्दश सहस्राणि सहस्रे द्वे शताधिके ॥ ५५ ॥
ता. सर्वा कन्यका पापः प्रसह्य वरदर्पित ।
जहार स दुराधर्षो हयग्रीवसहायवान् ॥ ५६ ॥
सागरे यानि रत्नानि पृथिभ्या च त्रिविष्टपे[75] ।
तानि सर्वाणि सहृत्य प्रमथ्य सुरमानुषान् ॥ ५७ ॥
तीरे लौहित्यतीर्थस्य[76] सोऽकरोन्मणिपर्वतम् ।

---

७२. ब्रह्माण. लब्धो बभूवातीव दर्पित. ।
७३. मानवानां । ७४ जैत्रस्तु सुरदेवानां माधव सर्वदेहिनाम् ।
७५. त्रिपिष्टपे । ७६ गङ्गस्य ।

तस्मिन् गिरौ पुरीं रम्या कारयित्वाऽलकाह्वयाम् ॥ ५८ ॥
ता सर्वा वासयामास देवगन्धर्वयोषित. ।
एकवेणीधरा सर्वा सम्भोगपरिवर्जिता ॥ ५९ ॥
त्वामेव ता. प्रतीक्षन्ते सनाथा कुरु कृष्ण ता ।
यावदागच्छति पुर भवतो नारदो मुनि ॥ ६० ॥
तावन्न मैथुने यत्न भौम त्व सकरिष्यसि ।
इति ता समय चक्रुर्नरकस्य दुरात्मन ॥ ६१ ॥
नारदश्च तदायात प्राग्ज्योतिषपुर प्रति ।
यदा त्व नरक हन्तु गन्ता तत्पुरमुत्तमम् ॥ ६२ ॥
तस्मात् त्व पापकर्माण नरक नरकोपमम् ।
जहि देवमनुष्याणा कण्टक त दुरासदम् ॥ ६३ ॥
वधात् तस्य क्षितिर्देवी पुत्रशोक न चाप्स्यति ।
स्वयमेव वध तस्य देवेभ्यो यदयाचत ॥ ६४ ॥
तस्मात् त जहि पापिष्ठ नरक पापपूरुषम् ।
स्त्रीरत्नान्यपि रत्नानि त निहत्य समुद्धर ॥ ६५ ॥
इत्युक्तो जगता नाथ शक्रेण सुमहात्मना ।
प्रतिजज्ञे क्षितिसुतं हन्तु प्रति तदैव हि ॥ ६६ ॥
प्रतिज्ञाय वध तस्य शक्रेण सह केशव ।
तदैव यात्रामकरोत् प्राग्ज्योतिषपुर प्रति ॥ ६७ ॥
आरुह्य गरुड कृष्ण सत्यभामाद्वितीयक ।
प्राग्ज्योतिषमुखोऽगच्छद्वासवस्त्रिदिव ययौ ॥ ६८ ॥
दिवमाक्रम्य गच्छन्तौ कृष्णशक्रौ महाद्युती ।
यादवा ददृशुस्तत्र सूर्याचन्द्रमसौ यथा ॥ ६९ ॥
संस्तूयमानौ गन्धर्वैर्देवैरप्सरसा गणै ।
कृष्ण शक्र क्षणादेव गतौ खे तावदृश्यताम् ॥ ७० ॥
तत क्षणेन गरुडेनाससाद जगत्पति. ।
पुर प्राग्ज्योतिष रम्यं नरकेण वशीकृतम् ॥ ७१ ॥
स दुर्गं मौरवै पाशै षट्सहस्रैर्भयकरैः ।
क्षुरान्तैर्वेष्टित पार्श्वे मृत्युपाशैरिवोच्छ्रितम् ॥ ७२ ॥
निर्गच्छन्तं पुरात् तस्मात् नारद च ददर्श स. ।
स तु देवमुनि श्रीमान् यदागान्नरक प्रति ॥ ७३ ॥
तदा प्राग्ज्योतिष गत्वा सत्कृतस्तेन नारद ।
सगमे समय प्रोचे नरकाय स योषिताम् ॥ ७४ ॥
प्रवर्ततेऽद्य चैत्रस्य शुक्लपक्षस्य पचमी ।

नवम्यां तु धरापुत्र प्राप्नोति[७७] महदापदम् ॥ ७५ ॥
तदा यदि चतुर्दश्या सुस्नाता योषितस्त्विमा ।
सुरतेषु त्वया तत्र प्रयोक्तव्या यथासुखम् ॥ ७६ ॥
नारदस्य वच श्रुत्वा नरको भयमोहित[७८] ।
आसार च प्रसार च नगरे सन्न्यवेदयत्[७९] ॥ ७७ ॥
रक्षिभी रक्षित राज्य रक्षित च समन्ततः ।
भयहर्षयुतो भौम समय समवैक्षत ॥ ७८ ॥
तस्मिन्नवसरे प्राप कृष्ण प्राग्ज्योतिष पुरम् ।
प्रथम पश्चिम द्वारमासाद्य गरुडध्वज ॥ ७९ ॥
पाशाना षट्सहस्राणि क्षुरान् सञ्छिद्य नैकधा ।
जघान स मुरु दैत्य सानुग च सबान्धवम् ॥ ८० ॥
षट्सहस्रा महावीरा दानवा द्वारि सस्थिता ।
हताश्चक्रेण हरिणा तदैव गुरुणा सह ॥ ८१ ॥
मुरु हत्वा[८०] सहस्राणि पुत्रास्तस्यापराश्च षट् ।
जघान चक्रेण तदा खण्डशोऽन्याश्च दानवान् ॥ ८२ ॥
ततोऽनेकशिलासघानतिक्रम्य जनार्दन ।
सगण सानुग चैव निसुन्द समपोथयत् ॥ ८३ ॥
एको यो योधयेद्देवान् सहस्र वत्सरान् पुरा ।
शक्र च समतिक्रम्य महावीरपराक्रम. ॥ ८४ ॥
त जघान हयग्रीव समतिक्रम्य केशव ।
मध्ये लौहित्यसज्ञस्य[८१] भगवान् देवकीसुत ॥ ८५ ॥
औदकाया विरूपाक्ष सुन्द हत्वा महाबल ।
तत. पचजन वीर जघान परमेश्वर ॥ ८६ ॥
एतान् हत्वा महाकायान् महावीर्यान्[८२] दुरासदान् ।
आससाद जगन्नाथ. पुर प्राग्ज्योतिषाह्वयम् ॥ ८७ ॥
वियत्स्थैर्दैवतै सर्वैर्नारदेन महात्मना ।
जयशब्दै स्तूयमान. प्रविवेश यथेश्वर ॥ ८८ ॥
श्रिया युक्ता दीप्यमाना प्राकाशाट्टालभूषिताम् ।
स मेने नगरीं विष्णु. किमिन्द्रस्यामरावती ॥ ८९ ॥
तत्र युद्ध महदूभूतं नानाप्रहरणोद्यतम् ।
भीरूणा त्रासजनन[८३] शूराणा हर्षवर्धनम् ।
यथा देवासुर युद्धं तथैव समपद्यत ॥ ९० ॥

७७. प्राप्नोसि । ७८ मायामोहितः । ७९. ·· ·न्यवेशयत् ।
८०. महासुरं । ८१. ·· ·सज्ञस्य । ८२. महावीरान् ।
८३. भीतिजननं ।

तत शार्ङ्गविनिर्मुक्तैर्बाणैस्तान् दानवान् बहून् ।
निजघान महाबाहुर्गरुडस्थो जनार्दन ॥ ९१ ॥
अष्टौ शतसहस्राणि अष्टौ शतशतानि च ।
हत्वासुरान् महाबाहुर्नरक त[84] समासदत् ॥ ९२ ॥
तत श्रुत्वा स नरक पतितानसुरान् बहून् ।
दृष्ट्वा कृष्ण महाबाहु गरुडस्थ महाबलम् ॥ ९३ ॥
वसिष्ठशाप सस्मार समय माधवस्य च ।
नारदस्य वचश्चापि वरच्छिद्र तथा विधे ॥ ९४ ॥
स प्राप्तकालश्च तदा केशवेन समागत ।
युद्धमेव पर मेने स्मरन् बाणवचस्तदा ॥ ९५ ॥
स काचन समारुह्य रथ वज्रध्वज वरम् ।
लोहचक्राष्टसयुक्त त्रिनल्वप्रमित[85] रथम् ॥ ९६ ॥
युक्तमश्वसहस्रैस्तु वज्रध्वजविराजितम् ।
नानाप्रहरणोपेत बहुतूणीरसयुतम् ।
अगच्छत् समारायाशु नरक पृथिवीसुत ॥ ९७ ॥
स गच्छन् समरायाशु मानुष भावमर्चितम् ।
निन्द्य तथासुर मेने स्मरन् पूर्ववचो हरे ॥ ९८ ॥
क्षणात् कृष्ण स ददर्श गरुडोपरि सस्थितम् ।
शखचक्रगदाशार्ङ्गवरासिधरमच्युतम् ॥ ९९ ॥
किरीटकुण्डलयुत श्रीवत्सवक्षस हरिम् ।
कौस्तुभोद्भासितोरस्क पीताम्बरधर परम् ॥ १०० ॥
स तेन युयुधे वीरो विष्णुना प्रभविष्णुना ।
प्राग्ज्योतिषाधिपो भौमो[86] नरक पृथिवीसुत ॥ १०१ ॥
स युध्यत् कृष्णनिकटे कालिका कालिकोपमाम् ।
रक्तास्यनयना दीर्घा खड्गशक्तिधरा[87] तदा ॥ १०२ ॥
अपश्यज्जगता धात्री कामाख्यामपि मोहिनीम्[88] ॥ १०३ ॥
स विस्मितस्तदा भीतस्ता दृष्ट्वा जगता प्रसूम् ।
योद्धव्यमित्येव तदा युयुधे नरकोऽसुर ॥ १०४ ॥
तेन सार्ध तदा कृष्ण कृत्वा सुमहदद्भुतम् ।
युद्ध यादृक् पुरा भूत न देवे न च मानुषे ॥ १०५ ॥
ततस्तेनाथ भौमेन युद्धकेलि स माधव ।

---

८४ च । ८५. त्रिपुरप्रतिमं । ८६ वीरो । ८७. पाशकरां तथा ।
८८ कामाख्या कामरूपिणीम् ।

चिरं कृत्वा जघानाथ देवेन्द्र प्रतिहर्षयन् ॥ १०६ ॥
सुदर्शनेन चक्रेण मध्यदेशे तदा हरि ।
द्विधा चिच्छेद नरक खण्डितोऽभ्यपतद् भुवि ॥ १०७ ॥
विभक्ततच्छरीर तु भूमौ निपतित तदा ।
विराजन्ते वज्रभिन्नो यथा गैरिकपर्वत ॥ १०८ ॥
पतिते तनये देवी पृथ्वी दृष्ट्वा शरीरकम् ।
शोकवेग तदा सेहे ज्ञात्वा काल तदागतम् ॥ १०९ ॥
अदिते· कुण्डलयुग स्वयमादाय काश्यपी ।
उपातिष्ठत गोविन्द वचन चेदमब्रवीत् ॥ ११० ॥

पृथिव्युवाच

त्वया वराहरूपेण यदाह चोद्धृता पुरा ।
तदा त्वद्गात्रसस्पर्शात् पुत्रो मे नरक स्थित ।
सोऽय त्वया पालितश्च पातितश्चाधुना सुत ॥ १११ ॥
गृहाण कुण्डले चेमे अदिते सर्वकामदे ।
सन्तति चास्य गोविन्द प्रतिपालय नित्यदा ॥ ११२ ॥

श्रीभगवानुवाच

भारावतरणे देवि नरकस्य वध पुरा ।
त्वयैव प्रार्थितो यस्मात् तेनासौ निहतो मया ॥ ११३ ॥
पालयिष्येऽस्य सन्तान देवि त्वद्वचनादहम् ।
प्राग्ज्योतिषेऽभिषेक्ष्यामि नप्तारं भगदत्तकम् ॥ ११४ ॥
एवमुक्त्वा महाबाहुर्भगवान् मधुसूदन ।
अन्त पुर विवेशाथ नरकस्य धनालयम् ॥ ११५ ॥
स तत्र ददृशे वीरो रत्नानि विविधानि च ।
राशीभूतानि[89] शुद्धानि पर्वतानिव राजत ॥ ११६ ॥
मुक्तामणिप्रवालाना वैदूर्यस्य च पर्वतम् ।
तथा रजतकूटानि वज्रकूटानि माधव· ॥ ११७ ॥
सुवर्णसचयान् रुक्मदडान् रत्नमयध्वजान् ।
वाहनानि विचित्राणि यानानि शयनानि च ॥ ११८ ॥
खचितानि स्वर्णरत्नैर्महार्हाणि महान्ति च ।
यद् यद् दृष्टं च यावच्च धन रत्नं मणिस्तथा ॥ ११९ ॥
भुवि[90] तादृक् च नो दृष्टमन्यत्र नरकालयात् ।

---

८९. राशीकृतानि । ९०. तावत् ।

न कुबेरस्य नेन्द्रस्य न यमस्याप्यपा पते ॥ १२० ॥
तावन्ति धनरत्नानि यावन्ति नरकालये ।
केशवोऽप्यथ तत्रैव नारदेन च सगत ॥ १२१ ॥
अवेक्ष्यान्त पुरधन सार सारतर तत ।
तेषा समाददे ग्राह्य प्रभूत परवीरहा ॥ १२२ ॥
या दत्ता वैष्णवीशक्तिर्विष्णुना प्रभविष्णुना ।
हत्वा भौम तु ता शक्ति जगृहे देवकीसुत. ॥ १२३ ॥
पृथिव्या नारदेनैव सहित केशवस्तदा ।
भगदत्त भौमसुत प्राग्ज्योतिषपुरोत्तमे ॥ १२४ ॥
अभिषिच्य तदा भूत पुरमध्ये न्यवेशयत् ।
अभिषिक्त तु त दृष्ट्वा भगदत्त तदा क्षिति ॥ १२५ ॥
नप्तुरर्थेऽथ ता शक्ति केशव समयाचत ।
केशवोऽपि क्षितेर्वाक्यान्नारदानुमतेन च ।
ता शक्ति भगदत्ताय सुप्रीतमनसा ददौ ॥ १२६ ॥
यच्छत्र वरुण जित्वा काचनस्राविसज्ञकम् ।
समानयत् पुरा भौमस्तच्छत्र हरिराददे ॥ १२७ ॥
अष्टभारसुवर्णानि यत्सस्रवति चान्वहम् ।
यत् क्रोशमात्रविस्तीर्णमर्धयोजनमुच्छ्रितम्[९१] ॥ १२८ ॥
रत्नोत्तमानि सर्वाणि चतुर्दन्तास्तथा गजान् ।
चतुर्दशसहस्राणि पूजिता प्रमदास्तथा ॥ १२९ ॥
द्वारका प्रति दैत्यौघैर्वाहयामास केशव ॥ १३० ॥
या देवकन्यका पूर्व नरकेण हृता बलात् ।
तासा कृत्वा हृषीकेशो वेणीबन्धविमोक्षणम् ॥ १३१ ॥
वासोभिर्भूषणैर्दिव्यैस्ता सत्कृत्य मुहुर्मुहु ।
आरोप्य च विमाने तु रक्षिभिर्बलिभिर्दृढै ॥ १३२ ॥
नारदाधिष्ठिता सर्वा द्वारका प्रत्यवाहयत् ।
य कृत सुरकन्यार्थे भौमेन मणिपर्वत ॥ १३३ ॥
मणिरत्नौघसम्पूर्णो दिवाकरसमप्रभ ।
उत्पाट्य त जगन्नाथस्तार्क्ष्यपृष्ठे न्यधापयत् ॥ १३४ ॥
तथैव वारुण छत्र गरुडोपरि माधव ।
आरोप्य सत्यया सार्धमासीन' सुमना हरि ॥ १३५ ॥
भगदत्त समाभाष्य पृथिवीं च जगत्पति. ।

---

९१. मायतम् ।

प्रतस्थे द्वारका वीरो वियन्मार्गेण वै द्रुतम् ॥ १३६ ॥
सुपर्ण [१२] काचनस्त्राविच्छत्र समणिपर्वतम् ।
केशव सत्यया सार्ध हेलया खे वहन् ययौ ॥ १३७ ॥
क्षणेन द्वारका प्राप्य केशव परवीरहा ।
मुद च लेभे सकलैर्बान्धवैश्च तथा गणै ॥ १३८ ॥
एव काली महामाया कालिकाख्या जगन्मयी ।
विष्णु च जगता नाथ परापरपति हरिम् ॥ १३९ ॥
जगत्कारणकर्तार ज्ञानगम्य जगन्मयम् ।
सन्मोहयत्येव तथा ह्यनुरागविरागवान् ॥ १४० ॥
अनुगृह्णाति मित्राणि ह्यमित्राणि निहन्ति च ।
नारीषु मूढो रमते द्वन्द्वेनापि च मुह्यते ॥ १४१ ॥
इति व कथित विप्रा यथाभून्नरकोऽसुर ।
यथा च वरलाभोऽभूद् यथा चास्य विचेष्टितम् ॥ १४२ ॥
आराधितो यथा ब्रह्मा बाणबुद्ध्याथ भौमिना ।
किमन्यदुचित वास्ति तद्ब्रुवन्तु [१३] द्विजोत्तमा ॥ १४३ ॥

इति श्रीकालिकापुराणे नरकोपाख्याने चत्वारिंशोऽध्याय ॥ ४० ॥

---

१२. सुवर्णं । १३ वोऽस्ति तत्पृच्छन्तु ।

एकचत्वारिंशोऽध्यायः

ऋषय ऊचुः

कथं गिरिसुता काली बभूव जगतां प्रसूः ।
दाक्षायणी त्यक्ततनुः कथमाप हरं पतिम्[14] ॥ १ ॥
कथमर्धशरीरं सा जहार च पिनाकिनः ।
एतन्नः पृच्छतां सम्यक् कथयस्व महामते ॥ २ ॥

मार्कण्डेय उवाच

शृणुध्वं मुनिशार्दूला यथा दाक्षायणी सती ।
भूता गिरिसुता पूर्वं यथार्धमहरत्तनुम् ॥ ३ ॥
यदाऽत्यजत्तनुं देवी पूर्वं दाक्षायणी सती ।
तदैव मनसागच्छन् मेनका हिमवद्गिरिम् ॥ ४ ॥
यदा हरेण सहिता दक्षकन्या हिमाचले ।
चिक्रीड च तदा तस्या मेनकाऽभूद् हितैषिणी ॥ ५ ॥
[15]तस्याः सुता स्यामिति च आधाय मनसि द्विजाः ।
त्यक्तप्राणा तदा देवी भूता हिमवतः सुता ॥ ६ ॥
यदा दाक्षायणी प्राणान् दक्षकोपाज्जहौ पुरा ।
तदैव मेनका देवी आरिराधयिषुः[16] शिवाम् ॥ ७ ॥
महामायां जगद्धात्रीं योगनिद्रां सनातनीम् ।
मोहिनीं सर्वभूतानां शरणं सर्वनाकिनाम् ॥ ८ ॥
अष्टम्यामुपवासं तु कृत्वा सा नवमीतिथौ ।
मोदकैर्बलिभिः पिष्टैः पायसैर्गन्धपुष्पकैः ॥ ९ ॥
चैत्रे मासि समारभ्य सप्तविंशतिवासरान् ।
यावत् सम्पूजयामास पुत्रार्थिन्यन्वहं शुचिः[17] ॥ १० ॥
गंगायामोषधिप्रस्थे कृत्वा मूर्तिं महीमयीम् ।
कदाचित् सा निराहारा कदाचित् सा धृतव्रता ॥ ११ ॥
शिवाविन्यस्तमनसा सप्तविंशतिवत्सरान् ।
निनाय मेनका देवी परमां भूतिमिच्छती ॥ १२ ॥
सप्तविंशतिवर्षान्ते[18] जगन्माता जगन्मयी ।
सुप्रीताऽभवदत्यर्थं प्राह प्रत्यक्षतां गता ॥ १३ ॥

---

१४. कथमपि हरं प्रति । १५. तस्याहं सुतास्यामित्याधाय ।
१६. प्राविराधयिषुः. १७. शुभा । १८. वर्षान्तै ।

देव्युवाच

यत् प्रार्थित त्वया देवि मत्तस्तत्प्रार्थयाधुना ।
दास्ये तवाह तत्सर्व वाञ्छित यद् हृदा भवेत् ।। १४ ।।
तत सा मेनका देवी प्रत्यक्ष कालिका गताम्[९९] ।
दृष्ट्वैव प्रणनामाथ वचन चेदमब्रवीत् ।। १५ ।।
देवी प्रत्यक्षतो रूप तव दृष्ट मयाऽधुना ।
त्वामह स्तोतुमिच्छामि प्रसन्ना यदि मे शिवे ।। १६ ।।
तत सा मातरित्युक्त्वा कालिका सर्वमोहिनी ।
बाहुभ्या चारुवृत्ताभ्या मेनका परिषस्वजे ।। १७ ।।
तत. सा मेनका देवी कालिका परमेश्वरीम् ।
तुष्टाव वाग्भिरिष्टाभि शिवा प्रत्यक्षत स्थिताम् ।। १८ ।।

मेनकोवाच

प्रेरयन्तीं जगद्धाम चण्डिका लोकधारिणीम् ।
प्रणमामि जगद्धात्री सर्वकामार्थसाधिनीम्[१००] ।। १९ ।।
[१]नित्यानन्दा ज्ञानमयी योगनिद्रा जगत्प्रसूम् ।
प्रणमामि शिवा शुद्धा विधिशौरिशिवात्मिकाम्[२] ।। २० ।।
मायामयीं महामाया भक्तशोकविनाशिनीम् ।
कामस्य वनिता भद्रा नमामि त्वा चिति शिवाम् ।। २१ ।।

सत्त्वोद्रेकाद् या भवित्रीह नित्या
नित्या चापि[३] प्राणिना बुद्धिरूपा ।
सा त्व बन्धच्छेदहेतुर्यतीना
कस्ते गद्यो मादृशीभि प्रभाव ।। २२ ।।
या त्व साम्ना सिद्धिरुक्तिस्तथार्चा
या वृत्तिर्या यजुषा दीर्घरूपा ।
हिंसा या वाऽथवेदस्य सा त्वं
नित्य काम त्व ममेष्टं विधेहि ।। २३ ।।
नित्यानित्यैर्भोगहीनै पुरस्थै[४]-
स्तन्मात्रैर्यैर्यत्यते भूतवर्ग ।
तेषा शक्तिस्त्व सदा नित्यरूपा
का ते योषा योग्य वक्तु समर्था ।। २४ ।।

---

९९. तदा । १००. दायिनीम् ।
१. कुलद्वयानन्दकरीं भुवनत्रयदुर्लभाम् । इत्यधिक. ।
२. विधिगौरीश्वराम्बिकाम् । ३. वाणी ।
४. परस्थैस्तन्मन्त्रैर्यैर्याति भूभृद्वर्गः ।

क्षितिर्धरित्री जगता त्वमेव
त्वमेव नित्या प्रकृतिस्वरूपा[6] ।
यया वश क्रियते ब्रह्मरूप
सा त्व नित्या मे प्रसीदास्तु[7] मात ॥ २५ ॥
त्व जातवेदोगतशक्तिरूपा[8]
त्व दाहिका सूर्यकरस्य शक्ति ।
आह्लादिका त्व बहु चन्द्रिकाया-
स्ता'तामह स्तौमि नमामि चाम्बिकाम् ॥ २६ ॥
योषा योषित्प्रियाणा त्व विद्या त्व चोर्ध्वरेतसाम् ।
वाञ्छा त्व सर्वजगता माया च त्व तथा हरे ॥ २७ ॥
याऽनेकरूपाणि विधाय नित्य
सृष्टि स्थिति हानिमपीह कर्त्री ।
ब्रह्माच्युतस्थाणुशरीरहेतु
सा त्व प्रसीदाद्य पुनर्नमस्ते ॥ २८ ॥

मार्कण्डेय उवाच

तत सा जगता माता कालिका पुनरेव हि ।
उवाच मेनका देवी वाञ्छित वरयेत्युत ॥ २९ ॥
तत सा प्रथम पुत्रशत वव्रे यशस्विनी ।
वीर्यवच्चायुषा युक्तमृद्धिसिद्धिसमन्वितम् ॥ ३० ॥
पश्चात् तथैका तनया सुरूपा गुणशालिनीम् ।
कुलद्वयानन्दकरी भुवनत्रयदुर्लभाम् ॥ ३१ ॥
ततो भगवती प्राह मेनका मुनिसन्निभाम् ।
स्मितपूर्व तदा तस्या पूरयन्ती मनोरथम् ॥ ३२ ॥

देव्युवाच

शत पुत्रा सम्भवन्तु भवत्या वीर्यसयुता ।
तत्रैको बलवान्मुख्य प्रथम सम्भविष्यति ॥ ३३ ॥
सुता च तव देवाना मानुषाणा च रक्षसाम् ।
हिताय सर्वजगता भविष्याम्यहमेव ते ॥ ३४ ॥
त्व[9] सुखप्रसवा नित्यं तथा नित्य पतिव्रता ।
अम्लाना रूपसम्पन्ना सुभगा च भविष्यसि ॥ ३५ ॥
एवमुक्त्वा जगद्धात्री तत्रैवान्तरधीयत ।

---

६ परस्तात् ।　७ प्रसीदाद्य ।　८ रूपा ।
९ त्वमसुरे देवी देवेन्द्रस्पर्द्धयागतं मम ॥ इत्यधिक ।

मेनका च मुद लब्धा स्वस्थान प्रविवेश ह ॥ ३६ ॥
तत काले तु सम्प्राप्ते मैनाकमचलोत्तमम् ।
पक्षेण[10] सह योऽद्यापि सिन्धुमध्ये प्रवर्तते ॥ ३७ ॥
मेनका सुषुवे देवी देवेन्द्र स्पर्धयागतम् ।
अन्यानूनशत पुत्रान् क्रमात् सा सुषुवे सती ॥ ३८ ॥
महावीर्यान् महासत्त्वान् सम्पन्नान् सर्वतो गुणै ।
तत सा कालिका देवी योगनिद्रा जगन्मयी ॥ ३९ ॥
पूर्वत्यक्तसतीरूपा जन्मार्थं मेनका ययौ ।
समयस्यानुरूपेण मेनका जठरे शिवा ॥ ४० ॥
समुद्भूय समुत्पन्ना सा लक्ष्मीरिव सागरात् ।
वसन्तसमये देवी नवम्यामृक्षयोगत ॥ ४१ ॥
अर्धरात्रे समुत्पन्ना गगेव शशिमण्डलात् ।
ततस्तस्या तु जाताया प्रसन्ना अभवन् दिश ॥ ४२ ॥
अनुकूलो ववौ वायुर्गम्भीरो गन्धवान् शुभ ।
बभूव पुष्पवृष्टिश्च तोयवृष्टिस्तथापरा ॥ ४३ ॥
जज्वलुश्चाग्नय शान्ता जगर्जुश्च[11] घनाघनम् ।
तस्या तु जातमात्राया सर्व स्वास्थ्यमपद्यत ॥ ४४ ॥
ता तु दृष्ट्वा तथा जाता नीलोत्पलदलानुगाम् ।
श्यामां सा मेनका देवी मुदमापातिहर्षिता ॥ ४५ ॥
देवाश्च हर्षमतुल प्रापुस्तत्र मुहुर्मुहु ।
तुष्टुवुश्चान्तरिक्षस्था गन्धर्वाप्सरसा गणा ॥ ४६ ॥
ता तु नीलोत्पलदलश्यामा हिमवत सुताम् ।
कालीति नाम्ना हिमवानाजुहाव कृतोदने[12] ॥ ४७ ॥
बान्धवैस्तु समस्तैस्तन्नाम्ना सा पार्वतीति च[13] ।
कालीति च तथा नाम्ना कीर्तिता[14] गिरिनन्दिनी ॥ ४८ ॥
तत सा ववृधे देवी गिरिराजगृहे शुभा ।
गगेव वर्षासमये शरदीवाथ चन्द्रिका ॥ ४९ ॥
[15]एधमानानुदिवस चार्वंगी चारुता मुहु ।
[16]दध्रे सानुदिन काली चन्द्रबिम्ब कलामिव ॥ ५० ॥
सा बालभावमापन्ना क्रीडन्ती कालिका मुदम् ।

---

१०. पक्षेण । ११ जगर्जु खे । १२ कृते दिने ।
१३. बान्धवास्तु सुसन्ताना सुजातां पार्वतीति च ।
१४ केचित्ता गिरिनन्दिनीम् ।
१५ एव नाम्नाऽनुदिवस । १६. प्राप मेनागृहे ।

सखीभि प्राप विपुला कालिन्दीव सरिद्व्रजै ॥ ५१ ॥
षड्गुणास्तां स्वय देवी पूर्वजन्मवशीकृता [17] ।
स्वयमीयुर्द्विजश्रेष्ठा प्रावृष कालिका यथा ॥ ५२ ॥
अतिचक्राम स्वगुणै सा देवी देवकन्यका ।
रूपैरप्सरस सर्वा गीतैर्गन्धर्वकन्यका ॥ ५३ ॥
सा बाल्य एव सतत बन्धुवर्गप्रिया शुभा ।
गुणै स्वबन्धून् पितर मातर चाप्यतोषयत् ॥ ५४ ॥
मातु स्तुतिकरी [18] नित्य पितृपूजनतत्परा ।
सर्वदा भ्रातृसहिता जगन्माताऽभवत्तदा ॥ ५५ ॥
सर्वदा सा जगन्माता कन्या सा समुपस्थिता [19] ।
पितु समीपे वसति कालिन्दीव विभावसो ॥ ५६ ॥
अथैकदा ता निकटे निधाय हिमवद्गिरि ।
तनयै सह सगम्य स्थित परमकौतुकात् ॥ ५७ ॥
अथागतस्तत्र मुनिर्नारदो देवलोकत ।
हिमवन्त सुखासीन [20] सुतै सार्ध ददर्श स ॥ ५८ ॥
अपश्यन्निकटे काली [21] कालिकामिव सूर्यत ।
ज्योत्स्नामिव सुधाशोस्तु सम्यग्वृद्धा शरन्निशि ॥ ५९ ॥
पूजितस्तेन गिरिणा कृतासन-परिग्रह ।
नारद प्रथम शैल वृत्तान्त पर्यपृच्छत ॥ ६० ॥
ततो विदितवृत्तान्तो नारदो मेनका प्रति [22] ।
उवाच हर्षयन् वाक्य मुनिर्वाक्यविशारद ॥ ६१ ॥
एषा ते तनया रुच्या शुद्धाशोरिव वर्धिता ।
आद्या कला शैलराज सर्वलक्षणशालिनी ॥ ६२ ॥
शम्भोर्भवित्री दयिता सानुकूला सदा हरे [23] ।
तस्य चित्त वशे चैषा करिष्यति तपस्विनी ॥ ६३ ॥
स चाप्येनामृते जाया नान्यामुद्वाहयिष्यति ।
एतयोर्यादृश प्रेमा कयोश्चिन्नैव तादृश ॥ ६४ ॥
भूतो वा भविता वापि नाधुना च प्रवर्तते ।
अनया सुरकार्याणि कर्तव्यानि बहूनि च ॥ ६५ ॥
अनयैव गिरिश्रेष्ठ अर्धनारीश्वरो हर ।

---

१७. षड्गुणास्तान् स्वय देवी ' वशीकृतान् ।
१८ प्रियकरी । देवकन्या उपस्थिता' ।
२० समासीन । २१. नारदो मुनिसत्तम ।
२२ मेनकापतिम् । २३ हरे' ।

भविष्यति च सौहार्दाज्योत्स्नयैवामृतात्मन ॥ ६६ ॥
शरीरार्धं हरस्यैषा करिष्यति निजास्पदे ।
स्वर्णगौरी सुवर्णाभा तपसा तोषिते हरे ॥ ६७ ॥
विद्युद्गौरी त्विय काली तव पुत्री भविष्यति ।
गौरीति नाम्ना पश्चात्तु ख्यातिमेषा गमिष्यति ॥ ६८ ॥
नान्यस्मै त्वमिमा दातु मन कर्तुमिहार्हसि ।
इद चोपाशु देवाना न प्रकाश करिष्यसि ॥ ६९ ॥

मार्कण्डेय उवाच

इति तस्य वच श्रुत्वा देवर्षेर्नारदस्य च ।
उवाच हिमवान् वाक्य मुनि प्रति विशारद ॥ ७० ॥
श्रूयते त्यक्तसग स महादेवो यतात्मवान् ।
तपश्चोपाशु तपति देवानामप्यगोचर ॥ ७१ ॥
स कथ ध्यानमार्गस्थ. परब्रह्मार्पित मन ।
भ्रशयिष्यति देवर्षे तत्र मे सशयो महान् ॥ ७२ ॥
अक्षरं परम ब्रह्म प्रदीपकलिकोपमम् ।
सोऽन्त पश्यति सर्वत्र न तु बाह्य निरीक्षते ॥ ७३ ॥
इति स्म[२४] श्रूयते नित्य किन्नराणा मुखाद् द्विज ।
स कथ तादृश स्वान्त शक्तो भ्रशयितु हर ॥ ७४ ॥
विशेषत श्रूयते स्म दाक्षायण्या सम हर ।
समय ज्ञातवान् पूर्व तन्मे निगदत शृणु ॥ ७५ ॥
त्वामृतेऽन्या न वनिता[२५] दाक्षायणि सति प्रिये ।
भार्यार्थे सग्रहीष्यामि सत्यमेतद् ब्रवीमि ते ॥ ७६ ॥
इति सत्या सम तेन पुरैव समय कृत ।
तस्या मृताया स कथ स्त्रियमन्या ग्रहीष्यति ॥ ७७ ॥

नारद उवाच

नात्र कार्या[२६] त्वया चिन्ता गिरिराज भवत्सुता ।
एषा सती समुत्पन्ना हरायैव न सशय. ॥ ७८ ॥

मार्कण्डेय उवाच

इत्युक्त्वा स तु देवर्षिर्नारदस्तु यथा सती ।
मेनकाया समुत्पन्ना सर्वं तत् प्रोक्तवान् गिरौ ॥ ७९ ॥

२४ सश्रूयते । २५ न त्वामृतेऽन्या दयिता ।
२६ एकैवैषा ।

तत्सर्वं पूर्ववृत्तान्तं नारदस्य मुखाद् गिरि· ।
श्रुत्वा सपुत्रदारं स तदा निःसंशयोऽभवत् ॥ ८० ॥
तत कालीं कथां श्रुत्वा नारदस्य मुखात् तदा ।
लज्जयाऽधोमुखी भूत्वा स्मितविस्तारिताननां ॥ ८१ ॥
करेण तां तु संगृह्य प्रोन्नमय्य मुखं गिरिं ।
मूर्ध्नि सम्यगुपाघ्राय स्वासने सन्यवेशयत् ॥ ८२ ॥
ततस्तां पुनरेवाह नारद शैलपुत्रिकाम् ।
हर्षयन् गिरिराजं तु मेनकां तनयै सह ॥ ८३ ॥
सिंहासनेन किं स्वस्या· शैलराज भवेत् तव ।
शम्भोरूरु सदैवास्या आसनं तु भविष्यति ॥ ८४ ॥
हरोरुमासनं प्राप्य तनया तव सततम् ।
नान्यत्र कुत्रचित्तुष्टिमासने प्राप्यते गिरे ॥ ८५ ॥
इति वचनमुदारं नारद शैलराजं
त्रिदिवमगमदुक्त्वा तत्क्षणाद् देवयानै ।
गिरिपतिरपि चिन्ताहर्षसन्मोहयुक्त
प्रविशदचलयासौ स्वान्तरं पद्मगर्भम् ॥ ८६ ॥

इति श्रीकालिकापुराणे नारदागमने एकचत्वारिंशोऽध्याय· ॥ ४१ ॥

द्विचत्वारिंशोऽध्यायः

मार्कण्डेय उवाच

एतस्मिन्नन्तरे शम्भु क्षिप्र त्यक्त्वा तदा सर ।
गगावतारमगमद् हिमवत्-प्रस्थमुत्तमम् ॥ १ ॥
यत्र गगा निपतिता पुरा ब्रह्मपुरात् सृता ।
औषधीप्रस्थनगरस्यादूरे सानुरुत्तम ॥ २ ॥
तत्र भर्ग स्वमात्मानमक्षर परमात्परम् ।
चेतो ज्ञानमय नित्य ज्योतीरूप निराकुलम् ॥ ३ ॥
जगन्मय प्रदीपाभ द्वैतहीनाविशेषकम् ।
एकाग्र चिन्तयामास भगवान् वृषभध्वज ॥ ४ ॥
हरे ध्यानपरे तस्मिन् प्रमथा ध्यानतत्परा ।
अभवन् केचिदपरे नन्दिभृग्यादयो गणा ॥ ५ ॥
द्वा स्था भूता महाभागा ये पूर्वद्वारि योजिता ।
तावन्तोऽपि गणास्तत्र नैव किचन कूजितम् ॥ ६ ॥
तेषा सश्रूयते सर्वे नि शब्दा सस्थितास्तत ।
अन्ये तु तत्र क्रीडन्ति गणा दूरान्तरस्थिता [२७] ॥ ७ ॥
कुसुमैश्च दलैर्भक्तैर्गिरिप्रस्रवणोदकै ।
रत्नानि च विचिन्वन्तो भूषिता गैरिकैस्तथा ॥ ८ ॥
सगण तु तथा दृष्ट्वा गिरिराजो [२८] गत हरम् ।
स्वस्थानमोषधिप्रस्थान्नि सृत्य सहितो गणै ॥ ९ ॥
पूजार्थमुपतस्थे स यथायोग्य तथार्च्चयत् ।
स चापि शम्भुस्तस्यार्चा परया श्रद्धया युत ।
प्रतिजग्राह कूटस्थो गगाशीर्षे यथा पुरा ॥ १० ॥
पूजितस्तेन सहसा गिरिराज वृषध्वज. ।
उवाच ध्यानयोगस्थ स्मयन्निव जगत्पति ॥ ११ ॥

ईश्वर उवाच

तव प्रस्थे तपस्तप्तु रहस्यमहमागत ।
न यथा कोऽपि निकट समायाति तथा कुरु ॥ १२ ॥

---

२७. दूरादवाञ्छिता' । २८. गिरिराजाद् गतम् ।

त्व महात्मा जगद्धाम मुनीना च सदाश्रय ।
देवाना राक्षसाना च यक्षाणा किन्नरस्य च ॥ १३ ॥
सदावासो द्विजातीना गगापूतश्च नित्यदा ।
त्वत्पुरस्यास्य निकटे प्रस्थ गगावतारणम् ॥ १४ ॥
आश्रितोऽह गिरिश्रेष्ठ तद्‌योग्य कुरु साम्प्रतम् ॥ १५ ॥
इत्युक्त्वा जगता नाथस्तूष्णीमास वृषध्वज ।
गिरिराजस्तदा शम्भु प्रणयादिदमब्रवीत् ॥ १६ ॥
पूतोऽस्मि जगता नाथ त्वयाऽह परमेश्वर ।
आगतेनाद्य विषयमित कृत्य किमस्ति मे ॥ १७ ॥
तपसा महता त्व हि देवैर्यत्नपरस्थितै.[२९] ।
न प्राप्यसे जगन्नाथ स त्व स्वयमुपस्थित ॥ १८ ॥
मत्तो धन्यतरो नास्ति न मत्तोऽन्योऽस्ति पुण्यवान् ।
यद्भवान् हिमवत्-प्रस्थे तपसे समुपस्थित ॥ १९ ॥
देवेन्द्रादधिक मन्ये आत्मान परमेश्वर ।
सगणेन त्वया प्राप्तो यदाऽह कामचारत ॥ २० ॥
इत्युक्त्वा गिरिराजोऽथ स्ववेश्म पुनरागमत् ।
नियमाय परिवारान् गणानप्यवदत् स्वकान्[३०] ॥ २१ ॥
अद्य प्रभृति नो गन्ता कोऽपि गगावतारणम् ।
मच्छासन न हि विना यो गन्ता दण्डये ह्यहम् ॥ २२ ॥
इति स्वान् स नियम्याशु तिलपुष्पकुशान् फलम् ।
समादायाशु तनयासहितोऽगाद् हरान्तिकम् ॥ २३ ॥
अथ गत्वा जगन्नाथ हर ध्यानपर तदा ।
नमयामास तनया काली सर्वगुणान्विताम् ॥ २४ ॥
तिलपुष्पादिक यद् यत्तत्तदग्रे निधाय सः ।
अग्रे कृत्वा सुता शम्भुमिदमाह स शैलराट् ॥ २५ ॥
भगवस्तनयेय मे त्वमाराधयितु प्रति ।
समादिष्टा समानीता त्वदाराधनकाङ्क्षिणी ॥ २६ ॥
सखिभ्या सह नित्य त्वा सेवतामीश शकर ।
अनुजानीहि सेवायै मयि ते यद्यनुग्रह ॥ २७ ॥
अथ ता शकरोऽपश्यत् प्रथमारूढयौवनाम् ।
फुल्लेन्दीवरपत्राभा पूर्णचन्द्रनिभाननाम् ॥ २८ ॥

---

२९ महता तपसा त्व हि देवयानपरस्थितै ।
३० गणानपि तदा सुरान् ।

समग्रनीचकेशौघ-प्राप्तवेश-विजृम्भिकाम् ।
कम्बुग्रीवा विशालाक्षी चारुकर्णयुगोज्ज्वलाम् ॥ २९ ॥
मृणालायतपर्यन्त-बाहुयुग्ममनोरमाम् ।
राजीवकुण्डलप्रख्य-घनपीनोन्नतस्तनौ ॥ ३० ॥
बिभ्रती क्षीणसन्मध्या[31] रक्तपाणितलद्वयाम्[32] ।
स्थलपद्मप्रतीकाश-पादयुग्ममनोरमाम् ॥ ३१ ॥
मध्यक्षीणा महासत्त्वा वृत्तस्थूलघनोज्ज्वलाम् ।
सुजघा नागनासोरु[33] निम्ननाभिविभूषिताम् ॥ ३२ ॥
सुवृत्तचारुजघाग्रा त्रिगम्भीरा षडुन्नताम् ।
सर्वलक्षणसम्पूर्णा त्रिषु लोकेषु दुर्लभाम् ॥ ३३ ॥
ध्यानपजरनिर्बन्ध-मुनिमानसमप्यरम् ।
दर्शनाद् भ्रशितु शक्ता योषिद्-गणशिरोमणिम् ॥ ३४ ॥
ता दृष्ट्वा तपसे नित्य ध्यानिना च मनोहराम् ।
विघ्नहेतु चानुरागवर्धिनी कामरूपिणीम् ॥ ३५ ॥
गिरिराजस्य वचनात्तनया तस्य शकर ।
पर्येषणायै जगृहे गौरवादपि गोरथ ॥ ३६ ॥
उवाचेद तव सुता सखिभ्या सह शैलराट् ।
नित्य मे सेवयाऽयत्ता[34] निर्भीता ह्यत्र तिष्ठतु ॥ ३७ ॥
एवमुक्त्वा तु ता देवी सेवायै जगृहे हर ।
इदमेव महद् धैर्य यद् विघ्नो न हि विघ्नयेत् ।
निर्विघ्न स्थानमासाद्य यत्तप. क्रियते द्विजै ॥ ३८ ॥
सविघ्नो विघ्नहेतु य परिभूय प्रवर्तते ।
त्वन्महत्त्व च तपसा धीरता च तपस्विनाम् ॥ ३९ ॥
तत स्वपुरमायातो गिरिराट् परिचारकै ।
हरश्च ध्यानयोगेन पर चिन्तयितु स्थित. ॥ ४० ॥
काली सखिभ्या सहिता प्रत्यह चन्द्रशेखरम् ।
सेवमाना महादेव गमनागमनै स्थिता ॥ ४१ ॥
कदाचित् सहिता काली सखिभ्या शकराग्रत ।
वितन्वती शुभ गीतं पचमञ्चातनोत्तदा[35] ॥ ४२ ॥
कदाचित् कुशपुष्पादिसमिद्वारि हराय सा ।
सखिभ्यां स्नानसत्कार कुर्वन्ती न्यवसत्तदा ॥ ४३ ॥

---

३१ मध्या तु । ३२ द्वयम् ।
३३. जघनान्नागनासास्क । ३४. सेवता यत्नाद् ।
३५. पचपंचातनोत् तदा ।

कदाचिदग्रे नियता स्थिता चन्द्रभृतो मुखम् ।
वीक्षन्ती चिन्तयामास सकामा चन्द्रशेखरम् ॥ ४४ ॥
यदा कार्येषु सा व्यग्रा तदा तत्कर्म चेष्टते ।
कृत्यहीना यदा सा तु तदैवाचिन्तयद्धरम्* ॥ ४५ ॥
कदा मामेष भूतेश कर्ता पाणिगृहीतिकाम् ।
कदा मया सम रन्ता नानासद्भावभावनै* ॥ ४६ ॥
इति चिन्तापरा काली स्वप्नेऽपि परमेश्वरम् ।
अर्चयत्येव परम सदाचिन्तनतत्परा* ॥ ४७ ॥
अग्र गता यदा काली प्रध्यायति महेश्वरम्* ।
तदा तद् वेदभूतेशस्ता निसर्गपरिस्थिताम् ॥ ४८ ॥
किन्तु गर्भगतैर्बीजैर्धृतदेहेति ता तदा ।
नाग्रहीद्गिरिश काली भार्यार्थे ह्यधृतव्रताम् ॥ ४९ ॥
महादेवोऽपि ता दृष्ट्वा तदैवेदमचिन्तयत् ।
कथमेषा तपश्चर्याव्रत कुर्याद् गिरे सुता ॥ ५० ॥
कृतव्रता ग्रहीष्यामि गर्भबीजविवर्जिताम् ।
काली भार्या स्वदयिता योनिजामतिदूषिताम् ॥ ५१ ॥
व्रतेन चाथ सस्कारैर्गर्भबीज विमुच्यते ।
तस्माद् व्रत यथा काली कुर्यात् तद् युज्यते कथम् ॥ ५२ ॥

मार्कण्डेय उवाच

इति सचिन्त्य भूतेशस्तदा ध्यानमना स्थित ।
ध्यानासक्तस्य तस्याथ नान्यचिन्ता व्यजायत ॥ ५३ ॥
काली त्वनुदिन शम्भु भक्त्या भृशमसेवत ।
विचिन्तयन्ती सतत तस्य रूप महात्मन ॥ ५४ ॥
हरो ध्यानपर काली नित्य प्रत्यक्षत स्थिताम् ।
विस्मृत्य पूर्ववृत्तान्त पश्यन्नपि न पश्यति ॥ ५५ ॥
एतस्मिन्नन्तरे देवास्तारको नाम दैत्यराट् ।
बबाधे सर्वलोकाश्च ब्रह्मणो वरदर्पित ॥ ५६ ॥
वशीकृत्य स लोकास्त्रीन् स्वर्यामिन्द्रो बभूव ह ।
विद्राव्य सकलान् देवान् दैत्यान् स्वास्तत्-पदेषु च ।
स्वय नियोजयामास देवयोनिषु चाप्यसौ ॥ ५७ ॥
न यम स्वेच्छया लोकास्तस्मिन् राज्ञि नियच्छति ।
न स्वेच्छया तथा सूर्यो लोकास्तपति तद्भयात् ॥ ५८ ॥

---

* मुद्रितपुस्तके अधिक ।

चन्द्रस्तु नर्मसाचिव्य तस्य कुर्वन् स रश्मिभि ।
वायुना सह सगम्य तत्-सेवा विदधेऽनिशम् ॥ ५६ ॥
सदा सौगन्ध्यगाम्भीर्य-शैत्यस्निग्धत्वसयुत ।
त वीजयन् ववौ वायु शासनात्तस्य भूभृत ॥ ६० ॥
धनदोऽपि यथासार धनमादाय यत्नत ।
सावधानस्तस्य सेवामकरोत्तारकेच्छया ॥ ६१ ॥
अग्निस्तस्याभवत् सूद शासनात्तारकस्य तु ।
व्यजनान्यथ भोज्यानि चक्रे तस्येच्छया तदा[२७] ॥ ६२ ॥
निर्ऋतिस्तस्य सतत सहित सर्वराक्षसै ।
अश्वान् गजान् वाहनानि कारयामास साध्वसात् ॥ ६३ ॥
नृत्यद्भिरप्सरोभिश्च स्तुवद्भि सूतमागधै ।
गायमानैश्च गन्धर्वै सचिक्रीड सुरान् द्विषन् ॥ ६४ ॥
एव स सर्वलोकास्तु त्रिष्वप्यथ विलोडयन् ।
लोकेषु सारान् साराश्च देवानामप्यथाग्रहीत् ॥ ६५ ॥
तेनाभिबाधिता सर्वे देवा शक्रपुरोगमा ।
ब्रह्माण शरण जग्मुरनाथा नाथमुत्तमम् ॥ ६६ ॥
ते प्रणम्य सुरा सर्वे पुरुहूतपुरोगमा ।
इदमूचुर्महात्मान सर्वलोक-पितामहम् ॥ ६७ ॥

देवा ऊचुः

लोकेश तारको दैत्यो वरेण तव दर्पित ।
निरस्यास्मान् हठादस्मद्विषयान् स्वयमग्रहीत् ॥ ६८ ॥
रात्रिंदिव बाधतेऽस्मान् यत्र तत्र स्थिता वयम् ।
पलायिताश्च पश्याम सर्वकाष्ठासु तारकम् ॥ ६६ ॥
अग्निर्यमोऽथ वरुणो निर्ऋतिर्वायुरेव च ।
तथा मनुष्यधर्मो च सर्वै. परिकरैर्युत ॥ ७० ॥
एते तेनार्दिता ब्रह्मन् देवास्तस्यैव शासनात् ।
अनिच्छाकार्यनिरता सर्वे तस्यानुजीविन ॥ ७१ ॥
या देववनिता स्वर्गे ये चाप्यप्सरसा गणा ।
तान् सर्वानग्रहीद् दैत्य सार लोकेषु यच्च यत् ॥ ७२ ॥
न यज्ञा सम्प्रवर्तन्ते न तपस्यन्ति तापसा. ।
दानधर्मादिकं किंचिद् न लोकेषु प्रवर्तते ॥ ७३ ॥
तस्य सेनापति पाप. क्रौंचो नामास्ति दानव ।

२७. पुरा ।

स पातालतल गत्वा बाधतेऽहर्निशं प्रजा ॥ ७४ ॥
तस्मात् तु तारकेणेद सकलं भुवनत्रयम् ।
हृत सर्व जगत् त्राहि पापात्तस्मात् पितामह ॥ ७५ ॥
वय च यत्र स्थास्यामस्तत्स्थान विनिर्दिशय ।
स्वस्थानाच्च्यावितास्तेन लोकनाथ जगद्गुरो [३७] ॥ ७६ ॥
त्व नो गतिश्च शास्ता च त्व नस्त्राता पिता प्रसू ।
त्वमेव भुवनाना च स्थापक पालक कृती ॥ ७७ ॥
तस्माद् यावत्तारकाख्ये वह्नौ दग्धा प्रजापते ।
न भवामस्तथा कर्तुं भवता युज्यतेऽधुना ॥ ७८ ॥

मार्कण्डेय उवाच

सुराणा वचन श्रुत्वा ब्रह्मलोके पितामह. ।
प्रत्युवाच सुरान् सर्वास्तत्कालसदृश वच ॥ ७९ ॥

ब्रह्मोवाच

ममैव वरदानेन तारकाख्य समेधित ।
न मत्तस्तस्य मरण युज्यते त्रिदिवौकस. ॥ ८० ॥
युष्माकञ्च प्रतीकार कर्तव्य प्रतिकर्मणि ।
किन्तु सम्यक् न शक्नोमि प्रतिकर्तुं प्रचोदित [३८] ॥ ८१ ॥
तस्माद् यथा तारकाख्य स्वयमेष्यति सक्षयम् ।
तथा यूय सविदध्वमुपदेशकरस्त्वहम् ॥ ८२ ॥
न मया तारको वध्यो न तथा वनमालिना ।
न हरेण तथा वध्यो नान्यैरपि सुरैर्नरै ॥ ८३ ॥
एष एव वरो दत्तो मया तस्मै तपस्यते ।
उपायश्चिन्तितश्चास्ति तत्कुर्वन्तु सुरोत्तमा ॥ ८४ ॥
सती दाक्षायणी पूर्वं त्यक्तदेहा स्वजन्मने ।
अगच्छन्मेनका देवी शैलराजस्य योषितम् ॥ ८५ ॥
ता समुत्पादयामास मेनकाजठरे गिरिः ।
लक्ष्मीमिव पुरा ख्याता भृगु. स्वतनयो मम ॥ ८६ ॥
तामवश्य महादेव. कुर्यात् पाणिगृहीतिकाम् ।
यथा स नचिरात्तस्यामनुरक्तो भवेत् सुरा. ॥ ८७ ॥
तथा विदध्व सुतरा तत्तेजः प्रतिकर्तृ व [३९] ।
तमूर्ध्वरेतस शम्भु सैव प्रच्युतरेतसम् ॥ ८८ ॥
कर्तुं समर्था नान्यास्ति काचिदप्यबलापरा ।

---

३७. गुरो । ३८. प्रवेजितः । ३९. प्रतिकर्तृकः ।

तस्य तेजश्च्युतं यच्च तस्माद् यो जायते सुत. ॥ ८९ ॥
स एव तारकाख्यस्य हन्ता नान्यस्तु विद्यते ।
सा सुता गिरिराजस्य साम्प्रत रूढयौवना ॥ ९० ॥
तपस्यन्त गिरिप्रस्थे नित्य पर्येषते हरम् ।
वाक्याद् हिमवत सा तु काली नाम्ना निषेवते ।
सखिभ्या सह सर्वज्ञ ध्यानस्थं परमेश्वरम् ॥ ९१ ॥
तामग्रतो वर्तमाना त्रिलोकवरवर्णिनीम् ।
ध्यानासक्तो महादेवो मनसापि न चेच्छति[40] ॥ ९२ ॥
यथा समीहते भार्या काली च चन्द्रशेखर ।
तथा कुरुध्व त्रिदशा नचिरादेव यत्नत ॥ ९३ ॥
स्वस्थान भवता स्वर्गस्तस्मात् तारकमप्यहम् ।
निवर्तयिष्ये सगम्य गच्छध्व विगतज्वरा. ॥ ९४ ॥
इत्युक्त्वा सर्वलोकेशस्तारकाख्यमुपस्थित ।
उपसगम्य वचन समाभाष्येदमब्रवीत् ॥ ९५ ॥
भो भो तारक मा स्वर्गराज्य त्व परिशाधि भो ।
तदर्थ न तपस्तप्त समये भवता पुरा ॥ ९६ ॥
वरो नापि मया दत्तो[41] न मया स्वर्गराजता ।
तस्मात् स्वर्ग परित्यज्य क्षितौ राज्य समाचर ॥ ९७ ॥
देवभोग्यानि तत्रैव सम्भविष्यन्ति तेऽसुर ।
इत्युक्त्वा सर्वलोकेशस्तत्रैवान्तरधीयत ॥ ९८ ॥
स तारक परित्यज्य स्वर्गं क्षितिमथाभ्ययात् ।
तत्रैव संस्थितो देवान् बाधते स्म स नित्यश. ।
इन्द्र करप्रद चक्रे निदेशस्थ महाबलम्[42] ॥ ९९ ॥
तमिन्द्र सतत देवभोग्यानि वितरन् मुहु ।
सेवमान. क्षमो नाभूत् सन्तोषयितुमीश्वरम् ॥ १०० ॥
एव तेनार्दिता देवा मन्युना परिपीडिता ।
विधातुरुपदेशेन यत्न चक्रुर्हरान्वये ॥ १०१ ॥
तत इन्द्रोऽथ गुरुणा सगम्य कृतनिश्चय ।
कुसुमेषुं समाहूय वचन चेदमब्रवीत् ॥ १०२ ॥

इन्द्र उवाच

त्वयेद पाल्यते विश्व त्वया विश्व प्रसूयते ।
त्व ब्रह्मविष्णुरुद्राणा प्रीतिहेतु. पुरा भव ॥ १०३ ॥

४०. चेहते । ४१. वृतो मत्त. । ४२. महाबलः ।

ब्रह्मा प्रीत्या यथा पूर्वमगृह्णाच्चरितव्रताम् ।
सावित्री माधवो लक्ष्मी सती दाक्षायणी हर ॥ १०४ ॥
ता प्रीतये पुरा तेषा देवेशाना यथा कृता ।
तथैव कुरु मे प्रीति काम प्राणभृता सदा ॥ १०५ ॥
न त्व न कस्यचित् स्वर्गे पाताले वाथ भूतले ।
प्रिय. प्राणभृता काम सततं जगता मत ॥ १०६ ॥
देवदानवयक्षाणा रक्षसा मानुषस्य च ।
त्व पालकश्च कर्ता च हृदये च प्रवर्तसे ॥ १०७ ॥
तस्मात् त्व सर्वजगता हिताय कुरु चेष्टितम्[४३] ।
देवदानवयक्षाणा मानुषाणा महात्मनाम् ॥ १०८ ॥

मार्कण्डेय उवाच

एतच्छ्रुत्वा वचस्तस्य शक्रस्य मकरध्वज ।
देवराजमुवाचेद सुप्रीतस्तद्वचोऽमृतै ॥ १०६ ॥
यत्राहमीशिता शक्र तत्कर्म विदित त्वया ।
तस्मान्ममोचितं शक्य करिष्ये तन्निदेशय ॥ १०० ॥
पचैव बाणा मृदवस्ते च पुष्पमया मम ।
चापस्तथा पुष्पमय शिञ्जिनी भ्रमरात्मिका[४४] ॥ १११ ॥
रतिर्मे दयिता जाया वसन्त सचिवो मम ।
यन्ता मलयजो वायुर्मित्र मम सुधानिधि ॥ ११२ ॥
सेनाधिपो मे शृगारो हावा भावाश्च सैनिका ।
सर्वे मे मृदवोऽक्रूरा अह चापि तथाविध ॥ ११३ ॥
यद् येन युज्यते कार्यं धीमास्तत्तेन योजयेत् ।
मम योग्यं तु यत् कर्म तस्मात्तस्मिन् नियोजय ॥ ११४ ॥

इन्द्र उवाच

यत् कारयितुमिच्छामि भवता तन्मनोभव ।
तत्ते समुचित कर्म तस्मिन् परिवृतो भवान् ॥ ११५ ॥
कृतकर्मापि तत्र त्व कृती चापि मनोभव ।
त्वदन्यैः किन्तु दु साध्य तत्त्वा तत्र नियोजये ॥ ११६ ॥
श्रूयते हि तपस्यन्त ध्यानस्थ वृषभध्वजम् ।
गिरेर्हिमवत प्रस्थे निराकाक्ष वधूकृतौ ॥ ११६ ॥
त पितुर्वचनात् काली तपस्यन्त निषेवते ।
सखिभ्या सहिता नित्य हरस्यानुमतेऽधुना ॥ ११७ ॥

---

४३. चेष्टनं । ४४. वरा निजा ।

आरूढयौवना ता तु स्त्रीरत्नमपि सुन्दरीम्।
ध्यानासक्तो महादेवो नेहते मनसापि च ॥ ११८ ॥
सानुरागो यथा तस्या जायते वृषभध्वज।
तथा विधत्स्व देवाना हिताय जगतामपि ॥ ११६ ॥*
सह सत्या यथा रेमे सानुरागो वृषध्वज.।*
तथैतया गिरिजया रमता तत्कृतेन वै ॥ १२० ॥
तस्या कृते तु यत्तेज प्रच्युत यद् हरस्य वै।
ततो यो जायते सोऽस्मास्तारकादुद्धरिष्यति ॥ १२१ ॥

मार्कण्डेय उवाच

तत स देवराजस्य वच श्रुत्वा मनोभवः।
प्राप्तकाल च सस्मार शाप ब्रह्मकृत पुरा ॥ १२२ ॥
सन्ध्या प्रतिविधातार यदा शस्त्र परीक्षितम्।
कामोऽहनत् पुष्पबाणैस्तदा तमशपद्विधि ॥ १२३ ॥
शम्भुनेत्राग्निदग्धस्त्व भविष्यसि द्विजोत्तमा.।
यदा कुर्याद् गिरिसुता हर पाणिगृहीतिकाम् ॥ १२४ ॥
तदा भवान् शरीरेणागमिष्यति समग्रताम्।
इति स्मृत्वा विधे शाप भीतोऽपि मकरध्वज ॥ १२५ ॥
अगीचक्रे शक्रवाक्यात् काल्या योजयितु हरम्।
इद च वचन प्रोचे तत्कालसदृश पुन ॥ १२६ ॥

मदन उवाच

करिष्ये तद्वच शक्र हर सगमयाम्यहम्।
काल्या गिरिजया सार्ध दाक्षायण्या यथा पुरा ॥ १२७ ॥
किन्त्वेक मम साहाय्य कर्ता त्व हरमोहने।
यदा सन्मोहनेनाह हर सन्मोहयामि च ॥ १२८ ॥
तदा कुरु सहाय त्व स्व स्थमाप्याययस्व माम्।
प्रविश्याह सुरभिणा न चिराच्छकराश्रमम् ॥ १२६ ॥
विधाय पूर्वं मनसो विकार हर्षणेन तु।
समोहनेन सुदृढ मोहयिष्ये वृषध्वजम् ॥ १३० ॥
स्मरिष्यसि त्वं सम्प्राप्ते काले मां मम पालने।
अहं गच्छामि सहित तत्कर्तुं बलसूदन ॥ १३१ ॥

मार्कण्डेय उवाच

इत्युक्त्वा स जगामाथ मदन शंकराश्रमम्।

---

* मुद्रितपुस्तके अधिक.।

शक्रोऽपि त्रिदशान् सर्वानिदमाह वचस्तदा ॥ १३२ ॥
यूय कुरुध्व साहाय्य यत्र याति मनोभव. ।
तत्र तत्रानुगम्यैव समये मा च बोधत[४५] ॥ १३३ ॥
यदा समोहनेनाय समोहयति शकरम् ।
तदाहमपि यास्यामि तत्र बोधत[४६] मा सुरा ॥ १३४ ॥
इत्युक्तास्तेन शक्रेण देवा जग्मुर्मनोभवम् ।
सोऽपि गत्वा यत्र हरो गगावतरणे गिरे ।
हिमभारभृत[४७] सानौ सुरभि च न्ययोजयत् ॥ १३५ ॥
ततस्तत्र गते सम्यकुसुरभौ तस्य लक्षणम् ।
अभवन्नचिरादेव[४८] तरुगुल्मलतासु च ॥ १३६ ॥
पुष्पिता किंशुकास्तत्र मजुला केतकास्तथा[४९] ।
सरासि च सपद्मानि सविकाराश्च जन्तव ॥ १३७ ॥
ववौ वायुश्च गम्भीरो गधिल[५०] पुष्परेणुभि ।
शनै शनै सुखकर कर्षयन् स हि मानसम्[५१] ॥ १३८ ॥
पक्षिणश्च मृगाश्चैव ये चान्ये प्राणधारिण ।
सिद्धाश्च किन्नराश्चैव द्वन्द्वभाव वितेनिरे ॥ १३९ ॥
चूता कुसुमितास्तत्र नवस्तवकभूषिता ।
अशोका पाटलाश्चैव नागकेशरकारुणा ॥ १४० ॥
सविकारा गणाश्चासन् शकरस्य तदा द्विजा. ।
प्रत्यक्षतो ययुस्तेऽपि[५२] विकार शम्भुसाध्वसात् ॥ १४१ ॥
भ्रमन्ति स्म तदा तत्र भ्रमरा कुसुमोद्भवम् ।
पिबन्तो बहुशश्च्युत गुञ्जन्त[५३] सह जायया ॥ १४२ ॥
एव प्रवृत्ते सुरभौ शृगारोऽपि गणै सह ।
हावभावयुतस्तत्र प्रविवेश हरान्तिकम् ॥ १४३ ॥
मदन सगणस्तत्र निवसश्चिरमेव हि ।
न दृष्टवास्तदा शम्भोश्छिद्र येन प्रवेद्यति ॥ १४४ ॥
यदा च प्राप्तविवरस्तदा[५४] भयविमोहित: ।
नाग्रेसरोऽभवत् तस्य मदनो रतिवारित ॥ १४५ ॥
एव यातस्तस्य काल प्रभूतो द्विजसत्तमा. ।
निरूपयन् न वा चाप[५५] छिद्र तस्य यतेस्तदा ॥ १४६ ॥

---

४५ बोधय । ४६ तदा प्रबोधय । ४७. हेमस्थानगते ।
४८ अवसन्नचिरादेव । ४९ केसरास्तथा । ५०. गंधिन । ५१. काननम् । ५२. नचेशस्ते । ५३ स्व स्व ।
५४. यदा नावाप्तविवर ।

ज्वलत्कालाग्निसकाशं भानुलक्षसमप्रभम् ।
ध्यानस्थं शंकरं को वा समासादयितुं क्षमः ॥ १४७ ॥
अथैकदा गिरिसुता काली तस्याभवत्पुरः ।
कृत्वा परीष्टिं कर्तव्यां सखिभ्यां प्रणता स्थिता ॥ १४८ ॥
शंकरोऽपि तदा ध्यानं त्यक्त्वा तत्क्षणमास्थितः ।
योजयन् स्वगणान् कृत्ये ज्योतिश्चिन्ताविवर्जितः ॥ १४९ ॥
तच्छिद्रं प्राप्य मदनः प्रथमं हर्षणेन तु ।
बाणेन हर्षयामास पार्श्वस्थं चन्द्रशेखरम् ॥ १५० ॥
शृङ्गारश्च तदा भावैर्हावैश्च सहितो हरम्[56] ।
जगाम कामसाहाय्यं कुर्वन् सुरभिणा सह[57] ॥ १५१ ॥
हर्षणेनातिहृषितः शृङ्गाराद्यैर्निषेवितः ।
शंकरो वदनं काल्या साकूतं[58] सव्यलोकयत् ॥ १५२ ॥
तत् प्राप्य विवरं कामः पुष्पं चापे न्ययोजयत् ।
संमोहनं पुष्पवृतं पुष्पमालाविवर्धितम्[59] ॥ १५३ ॥
तदाभूद् दक्षिणे[60] पार्श्वे रतिः प्रीतिस्तु वामतः ।
पृष्ठे वसन्ततूणीरः [61]पौष्पमादाय सुन्दरः[62] ॥ १५४ ॥
आकर्णपूरितं[63] पुष्पं चापमाकृष्य संयतः ।
यदा मनोभवो वायुस्तदा तं समुपेयिवान् ॥ १५५ ॥
सहिते पुष्पबाणे तु गिरिजां चन्द्रशेखरः ।
जातेन्द्रियविकारः सन् जिघृक्षुः संगमेऽभवत् ॥ १५६ ॥
अमराः शक्रसहितास्तदा सर्वे वियद्गताः ।
सभ्यं मनोभवं मेने सुरकृत्ये निवेशितम् ॥ १५७ ॥
अथ संस्मृत्य संयम्य निगृह्य विकृतिं तदा ।
इन्द्रियस्य महादेवः सहसेदं व्यचिन्तयत् ॥ १५८ ॥
योनिजां गिरिजां कालीं तपोव्रतविवर्जिताम् ।
कथं संगमकामोऽहं[64] धर्तुमिच्छामि वै हठात् ॥ १५९ ॥
तपोव्रतपवित्राङ्गीं तपश्चरणसत्कृताम् ।
स्वयमेव ग्रहीष्यामि सतीं दाक्षायणीमिव ॥ १६० ॥
कथं विकृतकामोऽहमनिच्छन्निव साम्प्रतम् ।

---

५५. निरूपणं तदावाप ।
५६ रणम् । ५७. पुष्पमालाविभूषितम् । ५८ साकुटं ।
५९. पुष्पमालाविभूषितम् । ६०. तस्याभूद् ।
६१. पुष्पमादाय । ६२. सुन्दरं ।
६३. पूर्णं तत् । ६४. कर्तुम् ।

केनापि चाकृष्ट इव चिकीर्षु सगमोद्भवम्[65] ॥ १६१ ॥
एव विकारहेतु स निश्चिन्वन्निन्द्रियस्य तु ।
पुरोवलोकयामास सहितेषु मनोभवम् ॥ १६२ ॥
एतस्मिन्नन्तरे ब्रह्मा विज्ञातसमय सुरान् ।
दृष्ट्वा स्थानादाजगाम तत्समाजमनुग्रहात् ॥ १६३ ॥
तत स कुपितो दृष्ट्वा[66] सन्धितेषु मनोभवम् ।
जज्वाल ज्वलनप्रख्यस्त दिधक्षु प्रसह्य तु ॥ १६४ ॥
कामोऽय समय ज्ञात्वा मा मोहयितुमिच्छति ।
मनो मे स्ववश कर्तुं तन्नयामि यमक्षयम् ॥ १६५ ॥
एव विचिन्तमानस्य नेत्रोद्भाविततेजसा[67] ।
वर्धतो ज्वलनो भूत्वा क्रोध नेत्रात् ससर्ज[68] ह ॥ १६६ ॥
त क्रोधाग्नि सरिष्यन्त जातवेद स्वरूपिणम् ।
ज्ञात्वा कामस्य तान् बाणान् पौष्पचापनिषण्णकान्[69] ॥१६७॥
शक्तिं प्राणास्तथात्मानमाकृष्यापालयद्विधि ।
उत्सारयामास तदा वसन्त स पितामह ॥ १६८ ॥
निजशक्त्या तदा शम्भुक्रोधाद्रक्षन्मनोभवम् ।
अथाकाशगता देवा क्रुद्ध दृष्ट्वा महेश्वरम् ॥ १६९ ॥
प्रसीद जगता नाथ कामे क्रोध परित्यज ।
त्वया यथा पुरा सृष्ट शम्भुरूपेण कर्मणा ॥ १७० ॥
येन चायोजित कर्म तत्करोति मनोभव ।
तस्मात् त्व मदने शम्भो क्रोधाग्निमुपसहर ॥ १७१ ॥
प्रसीद सर्वभूतेश भक्त्या त्वा प्रणता वयम् ।
इति स्म वदता तेषाममराणा तदानल ॥ १७२ ॥
ललाटचक्षु सम्भूतो भस्माकार्षीन्मनोभवम् ।
दग्ध्वा काम तदा वह्निर्ज्वालामालातिदीपित ॥ १७३ ॥
सस्तम्भितोऽथ विधिना हर गन्तु शशाक न ।
महादेवोऽपि तद्भस्म मनोभवशरीरजम् ॥ १७४ ॥
आदाय सर्वगात्रेषु भूतिलेप तदाकरोत् ।
लेपशेषाणि भस्मानि समादाय तदा हरः ॥ १७५ ॥
सगणोऽन्तर्दधे काली विहाय विधिसम्मते ।
ब्रह्मा क्रोधानल शम्भोर्दहन्त सकलान् सुरान् ॥ १७६ ॥
वडवारूपिण चक्रे देवाना[70] पुरतस्तदा ।

---

६५ सगमेऽभवत् । ६६ भूत्वा । ६७ नेत्रोद्भासित ।
६८. समाहरत् । ६९ निसंगकान् । ७० प्रभवः ।

वडवा ता तदा देवा सौम्या ज्वालामुखी शुभाम् ।। १७७ ।।
दृष्ट्वा निर्विघ्नमनसो बभूवु पूर्वपीडिता ।
वडवा ता समादाय तदा ज्वालामुखी विधि ।। १७८ ।।
सागर प्रययौ लोक-हिताय जगतापति ।[७१]
गत्वाथ सागर ब्रह्मा प्रोवाच परिपूजित ।। १७९ ।।
यथावत्तेन विप्रेन्द्रा समय च निवेदयन् ।
अय क्रोधो महेशस्य वडवारूपधृक् त्वया ।। १८० ।।
ज्वालामुख सदा धार्यो यावन्न विनयाम्यहम् ।
यदा त्वामहमागम्य वदामि सरिता पते ।। १८१ ।।
तदा त्वया परित्याज्य· क्रोधोऽय वडवामुख· ।
भोजन भवतस्तोयमेतस्य तु भविष्यति ।। १८२ ।।
यत्नादेव विधार्योऽय यथा नो याति चान्तरम् ।
इत्युक्तो ब्रह्मणा सिन्धुरङ्गीचक्रे तदा क्रुधम् ।। १८३ ।।
ग्रहीतु वडवावक्त्रे शम्भोश्चाशक्यमप्यरम् ।
तत प्रविष्टो जलधौ पावको वडवामुख ।। १८४ ।।
वार्योघान्निदहन् सम्यग् ज्वालामालातिदीपित ।
[७२]यदाभवच्छम्भुनेत्राद् ददाह मदन तदा ।। १८५ ।।
अभवत् सुमहाशब्दो येनाकाश प्रपूरित· ।
तेन शब्देन महता कामदाहे क्षणेन च ।। १८६ ।।
सखीभ्या सह भीताभूत् काली शोकयुता तदा ।
तेन शब्देन हिमवाश्चकितो विस्मितस्तदा ।। १८७ ।।
सुतामेव जगामाशु गता काली हराश्रमम् ।
तां तत्र कालीं तनया भयशोकाकुला शुभाम् ।
रुदन्ती शम्भुविरहादाससादाचलेश्वरः ।। १८८ ।।
आसाद्य पाणिना तस्या मार्जयन्नयनद्वयम् ।
या भैषी कालि मा रोदीरित्युक्त्वा ता तदाग्रहीत् ।। १८९ ।।
क्रोडीकृत्य सुता ता तु हिमवानचलेश्वर· ।
स्वमालयमथानिन्ये सान्त्वयामास चार्दिताम् ।। १९० ।।
अन्तर्हिते हरे काली विरहात् तस्य सततम् ।
निवसन्ती पितुर्गेहे शुशोच च मुमोह च ।। १९१ ।।
शैलाधिराजोऽप्य मेनकापि मैनाकमुख्योऽपि सखीद्वय च ।
तां सान्त्वयाचक्रुरदीनसत्त्वा हर विसस्मार तथापि नोमा ।।१९२।।

इति श्रीकालिकापुराणे द्विचत्वारिंशोऽध्याय ॥ ४२ ॥

---

७१. प्रभुः । ७२. ददाह दहनो नेत्रदहन· ।

त्रिचत्वारिंशोऽध्यायः

मार्कण्डेय उवाच

अथ देवमुनिर्यातो हिमवन्मन्दिर तदा।
नियोजितो बलभिदा नारद कामग. परम्॥ १॥
स गत' पूजितस्तेन धरेशेन महात्मना।
त समुत्सृज्य रहसि काली तामाससाद ह॥ २॥
आसाद्य काली स मुनि सम्बोध्य ज्ञानशालिनीम्।
उवाचेद वचस्तथ्य सर्वेषा जगता हितम्॥ ३॥

नारद उवाच

शृणु कालि वचो मह्य सत्य तदवधारय।
सेवितः स महादेवस्त्वयेह तपसा विना॥ ४॥
अनुरक्तोऽपि तेन त्वा महादेवो विसृष्टवान्।
त्वामृते शकरो नान्या द्वितीया सग्रहीष्यति॥ ५॥
त्व चापि नान्य दयित ग्रहीष्यसि विनेश्वरम्।
तस्मात् त्व तपसा युक्ता चिरमाराधयेश्वरम्॥ ६॥
तपसा सस्कृता त्वा तु स द्वितीया करिष्यति।
मन्त्रोऽय तस्य सुभगे शृणु त्व येन सोऽचिरात्॥ ७॥
आराधितस्ते प्रत्यक्षो भविष्यति महेश्वर।
ॐ नम. शिवायेति च सर्वदा शकरप्रिय॥ ८॥
चिन्तयन्ती तु तद्रूप नियमस्था षडक्षरम्।
मन्त्र जप त्व गिरिजे तेन तुष्टो भवेद्धर॥ ९॥
एवमुक्ता तदा काली नारदेन महात्मना।
कर्तव्यमनुमेने सा हित तथ्यञ्च तद्वच.॥ १०॥
अनुमान्य तपस्तप्तु तदा कालीञ्च नारद'।
स्वर्ग जगाम तस्याश्च निश्चिताभून्मतिर्व्रते॥ ११॥
अथ याते देवमुनौ काली सासाद्य मेनकाम्।
तप श्रद्धां समाचख्ये चात्मनो हरसंगमे॥ १२॥

काल्युवाच

तपस्तप्तु गमिष्यामि मातः प्राप्तु महेश्वरम्।
अनुजानीहि मा गन्तुं तपसेऽद्य तपोवनम्॥ १३॥

तपःकरणयत्न मे पितुरावेदय द्रुतम् ।
यावन्न दह्ये जननि भूतेशविरहाग्निना ॥ १४ ॥
इति तस्या वच श्रुत्वा मेनका शोककर्शिता ।
आलिग्य स्वसुतामूचे मा तप कुरु वल्लभे ॥ १५ ॥
मृदुदेहासि पुत्रि त्व मा तपो याहि कर्कशम् ।
तप सोढु मुनेर्गात्र शक्त ते न कलेवरम् ॥ १६ ॥
वनवासश्च ते पुत्रि नेष्ट शत्रुगणैरपि ।
तस्मात् त्व सम्परित्यज्य वनवासोद्भव तप ।
आत्मनो ह्यनुरूपेण तपस्तत् कुरु यद्धितम् ॥ १७ ॥

मार्कण्डेय उवाच

मातु सा वचन श्रुत्वा गिरिजा दीनमानसा ।
इत्यूचे च तदा वाक्य तपोयत्नपरा प्रसूम् ॥ १८ ॥
मा निषेधय मा यास्ये तपसेऽद्य तपोवनम् ।
प्रच्छन्नमपि यास्यामि नानुज्ञाताप्यह त्वया ॥ १९ ॥

मेनकोवाच

गृहेषु देवा सतत ब्रह्मविष्णुशिवादय ।
तस्माद् गृहे पुत्रि देवानर्चय त्व यथेप्सितान् ॥ २० ॥
स्त्रीणा तपोवनगतिर्न श्रुता स्वामिना विना ।
तस्मान्न युज्यते पुत्रि तपोयात्रा वन प्रति ॥ २१ ॥
यतो निरस्ता तपसे वन गन्तु च मेनया ।
उमेति तेन सोमेति नाम प्राप तदा सती ॥ २२ ॥
अवज्ञाय तदा मातुर्वचन हिमवत्सुता ।
सखीभ्या ज्ञापयासास पितर तपसोद्यमम् ॥ २३ ॥
स तु ज्ञात्वा गिरिपतिस्तपसे चरितोद्यमम् ।
दुहितुश्चानुमेने च नातिहृष्टमना इव ॥ २४ ॥
सानुज्ञाप्य तदा तात यत्र दग्धो मनोभव. ।
शम्भुना प्रययौ तत्र गगावतरण प्रति ॥ २५ ॥
गगावतरण नाम प्रस्थो हिमवत स च ।
हरशून्योऽथ ददृशे काल्या तच्चिन्तया तदा ॥ २६ ॥
यत्र स्थित्वा पुरा शम्भुर्ध्यानवानभवद् भृशम् ।
तत्र क्षण तु सा स्थित्वा बभूव विरहार्दिता ॥ २७ ॥
हा हरेति क्षण तत्र रोदमाना गिरेः सुता ।
विलप्यापात्तिदु खार्ता चिन्ताशोकसमन्विता ॥ २८ ॥

क्षण विलप्य सा काली स्मृत्वा पूर्वोद्भव तदा ।
हार्द हरस्य सा मोहमवाप कमलेक्षणा ॥ २९ ॥
ततश्चिरेण सा मोहं धैर्यात् सस्तभ्य भामिनी ।
नियमायाभवत्तत्र दीक्षिता हिमवत्-सुता ॥ ३० ॥
प्रथम नियमस्तस्या बभूव फलभोजनम् ।
चर्या पचातपा चिन्ता शाम्भवी शाम्भवो जप ॥ ३१ ॥
यज्ञियैर्दारुभि शुष्कैश्चतुर्दिक्षु चतुष्कृतम् ।
वह्निसस्थापन ग्रीष्मे तीव्रांशुस्तत्र पचम ॥ ३२ ॥
हस्तान्तरे चतुर्वह्नीन् कृत्वा वैश्वानरेष्टिना ।
तन्मध्यस्था सूर्यविम्ब वीक्षन्ती वल्कलांशुका ॥ ३३ ॥
ग्रीष्म निन्ये वह्निमध्ये शिशिरे तोयवासिनी ।
प्रथम फलभोगेन द्वितीय तोयभोजनम् ॥ ३४ ॥
तृतीय तु स्वयम्पाति-वृक्षपल्लव-भोजनम् ।
क्रमेण तु तदा पर्ण निरस्य हिमवत् सुता ॥ ३५ ॥
निराहारव्रता भूत्वा तपश्चरणखिन्निका ।
आहारे त्यक्तपर्णाभूद्यस्माद्धिमवत सुता ॥ ३६ ॥
तेन देवैरपर्णेति कथिता पृथिवीतले ।
पचातपव्रतेनैव तोयानाञ्च प्रवेशनैः ॥ ३७ ॥
एकपादस्थिता सा तु वसन्ते हिमवत्सुता ।
षडक्षर जपन्ती सा चिर तेपे तपो महत् ॥ ३८ ॥
चीरवल्कलसवीता जटासंघातधारिणी ।
कृशागी चिन्तने शक्ता जिगाय तपसा मुनीन् ॥ ३९ ॥
ता तपश्चरणे शक्ता ररक्ष शकर. स्वयम् ।
आप्यायति स्म स तदा भयाद्रक्षति हषित ॥ ४० ॥
एव तस्यास्तपस्यन्त्याश्चिन्तयन्त्या महेश्वरम् ।
त्रीणि वर्षसहस्राणि जग्मु काल्यास्तपोवने ॥ ४१ ॥
षट्त्रिवर्षसहस्राणि सस्कृता वीक्षणात् स्वयम् ।
दैवेन विधिना देवी हरयोग्या तथाभवत् ॥ ४२ ॥
षट्त्रिवर्षसहस्रान्ते यत्र तेपे तपो हर ।
तत्र क्षणमथोषित्वा चिन्तयामास भामिनी ॥ ४३ ॥
नियमस्था महादेव कि मा जानाति नाधुना ।
येनाह सुचिरं तेन नानुज्ञाता तपोरता ॥ ४४ ॥
लोके नास्त्यत्र गिरिशः कि तत्र मुनिभि. स्तुतः ।

सर्वज्ञ सर्वगो देवो हरो देवैर्निगद्यते ॥ ४५ ॥
स सर्वगस्तु सर्वज्ञ सर्वात्मा सर्वहृद्गत ।
सर्वभूतिप्रदो देव सर्वभावनभावन ॥ ४६ ॥
सती च मेनका माता यदि चाह वृषध्वजे ।
सानुरक्ता नचान्यस्मिन् स प्रसीदतु शकर ॥ ४७ ॥
यदि नारदवक्त्रोत्थो मन्त्रोऽय रयात्षडक्षर ।
यदि भक्त्या मया जप्त हरस्तेन प्रसीदतु ॥ ४८ ॥
सत्य यदि तपस्तप्त सत्य चाराधितो हर ।
सत्य भवेद् यदि तपो हरस्तेन प्रसीदतु ॥ ४९ ॥

मार्कण्डेय उवाच

एव विचिन्तयन्ती सा यदातिष्ठद्धराश्रमे ।
अधोमुखी दीनवेशा जटावल्कलमण्डिता ॥ ५० ॥
तदैव ब्राह्मण कश्चिद् ब्रह्मचारी धृतव्रत ।
कृष्णाजिनोत्तरीयेण धृतदण्डकमण्डलु ॥ ५१ ॥
ब्राह्मया श्रिया दीप्यमान स्वगौश्च सुशोभन ।
जटाभि परिवीताभिरुद्रिक्तस्तनुदेहभृत् ॥ ५२ ॥
उपस्थितस्तदा काली शम्भुर्ब्राह्मणरूपधृक् ।
आसाद्य प्रथम काली समाभाष्य तदा द्विज ॥ ५३ ॥
ज्ञातु प्रत्यक्षतो राग श्रोतुमिच्छश्च तद्वच ।
वाग्मी विचित्रवाक्येन पप्रच्छ गिरिजा तदा ॥ ५४ ॥

ब्राह्मण उवाच

का त्व कस्यासि कल्याणि किमर्थ विजने वने ।
तपश्चरसि दुर्धर्ष मुनिभि प्रयतात्मभि ॥ ५५ ॥
न बाला त्व नापि वृद्धा तरुणी चातिशोभना ।
कथ पति विनाभीक्ष्ण तपश्चरसि साम्प्रतम् ॥ ५६ ॥
किवा तपस्विनी भद्रे कस्यचित् सहचारिणी ।
तपस्विन स पुष्पादि समाहर्तु गतोऽन्यत ॥ ५७ ॥
एतन्मम समाचक्ष्व यदि गुह्य भवेन्न ते ।
यदि ते हृदये मन्यु कश्चिद्वसति सम्प्रति ।
तदाचक्ष्व समर्थोऽस्मि तमहं चापि वारितुम् ॥ ५८ ॥
इत्युक्ता तेन विप्रेण गिरिजाथ निजा सखीम् ।
तस्योत्तरप्रदानाय कटाक्षेण न्ययोजयत् ॥ ५९ ॥
सा सखी विजया तस्या वचनाद् ब्राह्मणं तदा ।

प्रोवाचेद यथातथ्य वीक्षन्ती गिरिजामुखम् ॥ ६० ॥
एतस्य गिरिराजस्य तनयेय द्विजोत्तम ।
ख्याता च पार्वतीनाम्ना कालीति च सुशोभना ॥ ६१ ॥
ऊचे यन्न च केनापि शकर वृषभध्वजम् ।
वाञ्छन्ती दयित तीव्र तपश्चरति वै पतिम् ॥ ६२ ॥
त्रीणि वर्षसहस्राणि तपस्तपति भामिनी ।
न शकरो गिरिसुतामद्याप्यभ्युपपद्यते ॥ ६३ ॥
शकरो गिरिशो देव सर्वग परमेश्वर ।
इति स्म गद्यते देवैर्मुनिभिश्च तपोधनै ॥ ६४ ॥
किमेना स न जानाति कि सानौ नास्ति वा गिरे ।
इति चिन्ताविषण्णेयमद्य नो लभते सुखम् ॥ ६५ ॥
अप्रार्थितस्त्वमनया दयसे यदि वा सुखम् ।
तदैना शकरेणाद्य त्व सगमय सुव्रत ॥ ६६ ॥
इति तस्या वच श्रुत्वा ब्रह्मचारी तदा द्विज ।
स्मयमान इद वाक्य हेलयोवाच पार्वतीम् ॥ ६७ ॥

ब्राह्मण उवाच

अमोघदर्शनश्चास्मि हरं चानयितु क्षम ।
किन्त्वेक निगदाम्यद्य निश्चित मन्मत शृणु ॥ ६८ ॥
जानाम्यह महादेव त वदामि शृणुष्व मे ।
वृषध्वजो महादेवो भूतिलेपी जटाधर ॥ ६९ ॥
व्याघ्रचर्मांशुकश्चैक सवीतो गजकृत्तिना ।
कपालधारी सर्पौघै सर्वगात्रेषु वेष्टित ॥ ७० ॥
विषदग्धगलस्त्र्यक्षो विरूपाक्षो विभीषण ।
अव्यक्तजन्मा सतत गृहभोग्यविवर्जित ॥ ७१ ॥
ज्ञातिभिर्बान्धवैर्हीनो भक्ष्यभोज्यविवर्जित ।
श्मशानवासी सतत तत्सगपरिवर्जितः ॥ ७२ ॥
गर्जद्भिर्विकटैस्तीक्ष्णैर्भूतौघै परिवारित ।
शृगाररसहीनश्च भार्यापुत्रविवर्जित. ॥ ७३ ॥
केन वा कारणेन त्व भर्तार त समीहसे ।
पूर्व श्रुत मया चैव तस्यापरमिद कृतम् ॥ ७४ ॥
शृणु ते निगदाम्यद्य यदि ते गुह्य रोचते ।
दक्षस्य दुहिता साध्वी सती वृषभवाहनम् ॥ ७५ ॥
वव्रे पति पुरा दैवात् सम्भोगपरिवर्जितम् ।

कपालिजायेति सती दक्षेण परिवर्जिता ॥ ७६ ॥
यज्ञभागप्रदानाय शम्भुश्चापि विवर्जित ।
साथ तेनापमानेन भृश शोकाकुला सती ॥ ७७ ॥
तत्याज स्वा प्रिया प्राणास्तया त्यक्तश्च शकर ।
त्व स्त्रीरत्न तव पिता राजा निखिलभूभृताम् ॥ ७८ ॥
तथाविध पति कस्मादुग्रेण तपसेहसे ।
देवेन्द्रो वा धनेशो वा पवनो वाप्यपापति ॥ ७९ ॥
अग्निर्वाऽन्य सुरो वापि स्ववैद्यावश्विनावपि ।
विद्याधरो वा गन्धर्वो नागो वा मानुषोऽथ वा ॥ ८० ॥
रूपयौवनसम्पन्न समस्तगुणसयुत ।
स ते योग्य पति श्रीमानुदारकुलसम्भव ॥ ८१ ॥
येन त्व बहुरत्नौघ-पूरितेऽनर्घविस्तृते ।
माल्यप्रवरसयुक्ते धूपचूर्णं सुवासिते ॥ ८२ ॥
मृद्वास्तरणसयुक्ते विस्तृते सुमनोहरे ।
चारुप्रासादगर्भस्थे जाम्बूनदविचित्रिते ॥ ८३ ॥
शय्यातले समासाद्य स योग्यस्ते भवेत् पति ।
एव ज्ञात्वाऽद्य सुभगे यदि वाञ्छसि शकरम् ।
कि ते तपोभि सुतरामह त योजये त्वया ॥ ८४ ॥

मार्कण्डेय उवाच

इति श्रुत्वा तदा काली ब्राह्मणस्योत्तर तदा ।
मित तथ्य जगादैन ब्राह्मण कोपसयुक्ता ॥ ८५ ॥

काल्युवाच

न जानासि हर देव त्वं जानामीति भाषसे ।
बहिर्यद् दृश्यते तत्ते कथित द्विजनन्दन ॥ ८७ ॥
यस्य भाव न जानन्ति सेन्द्रा ब्रह्मादयः सुरा ।
तस्य त्व विप्रतनय शिशुर्ज्ञास्यसि कि भवम् ॥ ८७ ॥
यच्छ्रुत भवता नीचवदनाद् भाषित लघु ।
इतस्ततस्तु श्रुत्वैव भाषसे त्व न दृष्टवान् ॥ ८८ ॥
तस्मात् त्वत्तो वरं नाह वाञ्छये नापि वा पतिम् ।
अन्यद् वद न च त्वत्तो वाञ्छये हरसगमम् ॥ ८९ ॥
इत्युक्त्वा गिरिजा विप्रमवलोक्य सखीमुखम् ।
इदमाह तदा काली संशयारूढचेतना ॥ ९० ॥
महता चिन्तनेनेह तपसाराधितो हरः ।

तन्ममाग्रे विप्रसुतो निन्दितु वाक्यमुक्तवान् ॥ ६१ ॥
तदह चापनेष्यामि स्तुतिवाक्येन साम्प्रतम् ।
महात्मना च यो निन्दा श्रृणोति कुरुतेऽथवा ॥ ६२ ॥
तयोराग सम पूर्व मया तातमुखाच्छ्रुतम् ।
तस्मात्तदपनेष्येऽह तन्निषेधय विप्रकम् ॥ ६३ ॥
इत्युक्त्वा सा सखी काली शम्भुसगतमानसा ।
आग समार्जनायाशु हर स्तोतुमुपाक्रमत् ॥ ६४ ॥

काल्युवाच

नम शिवाय शान्ताय कारणत्रयहेतवे ।
निवेदयामि चात्मान त्व गति परमेश्वर ॥ ६४ ॥
विज्ञानसौभाग्यसुहृद्गताय ते
प्रपञ्चहीनाय हिरण्यबाहवे ।
नमोऽस्तु नारायणपद्मसम्भव
प्रधानबीजाय जगद्धिताय ते ॥ ६६ ॥
इति स्तुवन्ती पुनरेव स द्विज-
स्तदा वच किंचिदुदीरितु पुन ।
समीक्ष्य कालीमकरोत् सयत्नक
बुद्ध्वा समाचष्ट सखी गिरे सुता ॥ ६७ ॥
अय द्विज किंचन वक्तुमिच्छ-
त्युग्र हर चापि न सविदान ।
निन्दन्नहि प्राणहरीं हरस्य
निन्दामह श्रोतुमिह क्षमामि ॥ ६८ ॥
यावद् भूरिवचोऽस्याह न श्रृणोम्यधुना सखि ।
गच्छामि तावद् दूराय समुत्तिष्ठामि मत्प्रिये ॥ ६९ ॥
इत्युक्त्वा सा तया सख्या सहिता हिमवत्सुता ।
प्रतस्थेऽथ समुत्थाय तमुत्सृज्य द्विज हठात् ॥ १०० ॥
अथ शम्भुर्निज रूपमास्थाय हिमवत्सुताम् ।
त समुत्सृज्य गच्छन्तीं हर स्मेरमुखोऽन्वयात् ॥ १०१ ॥
अह हरो महादेवो मा सस्तौषि न चाधुना ।
सम्मुखीभव हे कालि समाश्वासय शाकरि ॥ १०२ ॥
इत्युक्त्वा स महादेवो गच्छन्त्या पुरतो गत ।
प्रसार्य हस्तौ काल्यास्तु गति तस्या विरोधयन् ॥ १०३ ॥
सा वीक्ष्य शम्भुवदन तत्क्षणादभवद्धठात् ।

अधोमुखी तडिद्वातचकितेव गिरे. सुता ॥ १०४ ॥
मन्दाक्ष प्रीतिलज्जाभि सा जडेव तदाभवत् ।
वक्तुं च नाशकत् किंचिद्विवक्षुरपि भामिनी ॥ १०५ ॥
मनोरथाना सिद्ध्या तु सुधाभिरिव पूरितम् ।
शरीरमभवत्तस्या मुदा पूर्ण द्विजोत्तमा. ॥ १०६ ॥
षट्त्रिवर्षसहस्रैस्तु तप क्लेशमविन्दत ।
यत्त क्षणात् समुत्सृज्य सम्मोदमुदिताभवत् ॥ १०७ ॥
ता च वीक्ष्य तथाभूता प्रणयाद् वृषभध्वज ।
कामेन भस्मरूपेण गात्रस्थेन च मोहित. ॥ १०८ ॥
अथ ता विरहोद्रिक्त समेत्य वृषभध्वज ।
सम्बोधयन्निद चाटुवचन प्रोक्तवान् मुदा ॥ १०९ ॥
न तु सुन्दरि मा वक्तु किंचनापि त्वमीहसे ।
तप क्लेश स्मरयन्ती कि मह्य कुप्यसि साम्प्रतम् ॥ ११० ॥
अह च परितप्यामि त्वामृते सुभगे मम ।
समयाद् यत् समारब्ध तपस्तप्तु त्वया समम् ॥ १११ ॥
सानुरक्तोऽथ सस्कृत्य भविष्यामि त्वया प्रिये ।
अधुना समतीतो मे य कृत समयो मया ॥ ११२ ॥
तपसे भवती चापि तपसैव सुसस्कृता ।
सचिन्तनेन जप्येन तीव्रेण तपसा तदा ।
मूल्येन महता क्रीतो दासोऽह मा नियोजय ॥ ११३ ॥
त्वदगाना सस्करणे जटाना च प्रसाधने ।
प्रमुच्य वल्कल गात्राच्चार्वंशुकनिवेशने ॥ ११४ ॥
हारनूपुरकेयूरकाञ्च्यादिपरिधापने ।
द्रुत नियोजय शुभे यदि स्नेहोऽस्ति मादृशि ॥ ११५ ॥
निर्दग्धो यो मया कामो भस्मरूपेण मत्तनौ ।
स्थितो मा प्रतिकृत्येव त्वदग्रे दग्धुमिच्छति ॥ ११६ ॥
तस्मादुद्धर मा कामादग्नेरिव मनोहरे ।
त्वदङ्गामृतदानेन प्रसीद दयिते मम ॥ ११७ ॥

इति कालिकापुराणे त्रिचत्वारिंशोऽध्यायः ॥ ४३ ॥

चतुश्चत्वारिंशोऽध्यायः

मार्कण्डेय उवाच

अथ श्रुत्वा वच शम्भोर्गिरिजातीव हर्षिता ।
मेने प्राप्त तदा शम्भु सुन्दर दयित पतिम् ॥ १ ॥
अथ प्राह तदा काली सखीवक्त्रेण शकरम् ।
यथा स शृणुते वाक्य श्रोतुमिच्छुश्च शकर ॥ २ ॥
न सन्धावतिभेदेन प्रवर्तन्तेऽत्र सज्जना' ।
मर्यादया हरस्त मे पाणि गृह्णातु शकर ॥ ३ ॥
पितृदत्ता भवेत् कन्या तपोदत्ता भवेन्नहि ।
तपसा चेत् प्रदत्ताह मा तातश्च प्रदास्यति ॥ ४ ॥
तस्मात् सम्प्रार्थ्य पितर हिमवन्त नगेश्वरम् ।
वैवाहिकेन विधिना पाणि गृह्णातु मे हर ॥ ५ ॥

मार्कण्डेय उवाच

इत्युक्त्वा विररामाथ काली लज्जासमन्विता ।
हरोऽपि तद्वच सत्य तथ्य योग्य तदाग्रहीत् ॥ ६ ॥
तत स सगण शम्भुस्तत्र वास तदाकरोत् ।
गङ्गावतरणे सानौ यथापूर्व तथाधुना ॥ ७ ॥
काली पितुर्गृहं याता सखीभि परिवारिता ।
नालोकयन्ती सा दीना गुरूणा वदन सती ॥ ८ ॥
एतस्मिन्नन्तरे सप्त मरीचिप्रमुखान् मुनीन् ।
चिन्तयामास शशिभृत् काली प्रार्थयितु तदा ॥ ९ ॥
चिन्तिता सप्त मुनयस्तत्क्षणान्मदनारिणा ।
आकृष्टा इव केनापि तत्सकाशमुपागता ॥ १० ॥
तान् मुनीन् ददृशे शम्भु सप्ताग्नीनिव दीपितान् ।
अरुन्धती वसिष्ठस्य सकाशे ददृशे सतीम् ॥ ११ ॥
अरुन्धती ततो दृष्ट्वा वसिष्ठस्य समीपत· ।
मेने योषिद्ग्रह धर्म मुनिभिश्चाप्यवर्जितम् ॥ १२ ॥
ततस्ते मुनय सर्वे सम्पूज्य वृषभध्वजम् ।
इदमूचु· प्रहर्षेण स्मरणाकर्षिता प्रियम् ॥ १३ ॥

ऋषय ऊचुः

यत् प्रत्यक्ष दृश्यते शुद्धरूप
चन्द्रप्रख्य चन्द्रखण्डोपशोभि ।
अन्त प्रज्ञ भावित तन्मुनीना
भाग्य दृष्ट भागधेयेन मुक्तै ॥ १४ ॥
प्रज्ञातन्त्र ध्यानतन्त्र पुरस्ता-
न्नित्य ध्येय ध्यायिता स्वप्रकाशम् ।
पुञ्जीभूत बाह्यतत्त्वेन शश्वद्
योग्यप्राप्य धाम शम्भोरुदारम् ॥ १५ ॥
दृष्ट्वा यस्यैवाग्रभाग स नेत्र
त्राणाय स्याद् दर्शन सूर्यतुल्यम् ।
तद्धामेद स्थानसर्वस्य नित्य
भक्त्या स्तुत्य त नम शम्भुदेहम् ॥ १६ ॥
प्रकाशते य प्रथमादिभागत
स्थित स वामे य इहैव नेता ।
सोऽस्माकमस्तु प्रथम स्वसिद्ध्यै
हरस्य शक्त्या विधृतो ललाटे ॥ १७ ॥
य प्रधानात्मक सत्त्वरजोभ्या तमसान्वित ।
पुरुष· सर्वजगता स हरो न प्रसीदतु ॥ १८ ॥
इति सस्तुत्य देवेश मुनयो विनयानता ।
ऊचु· किमर्थ भवता स्मृतास्तन्नो निगद्यताम् ॥ १९ ॥
तेषा तद्वचन श्रुत्वा शकर प्रहसन्निव ।
जगाद तान्मुनीन् सर्वानाभाष्य च पृथक् पृथक् ॥ २० ॥

ईश्वर उवाच

हिताय सर्वजगता सम्भोगायात्मनस्तथा ।
दारान् ग्रहीतुमिच्छामि तथा सन्तानवृद्धये ॥ २१ ॥
सहाय तत्र कुर्वन्तु भवन्तो मम साम्प्रतम् ।
मदर्थे च तत कालो याचन्ता तुहिनाचलम् ॥ २२ ॥
महता तपसा काली मा पति लघु विन्दताम् ।
किन्तु ग्रहीष्ये विधिना तस्माद् याचन्तु तं गिरिम् ॥ २३ ॥
यथा यथा स्वयं कालीं शैलो दातुं समुत्सहेत् ।
तथा तथा विदध्वं हि यूय वाग्विभवान्विता· ॥ २४ ॥

मार्कण्डेय उवाच

हर सम्बोध्य मुनयो ह्यगच्छन् गिरिराड्गृहम् ।
तेन प्रपूजितास्ते तु प्रोचुस्त मुनयो गिरिम् ॥ २५ ॥
यश्चन्द्रशेखरो देवो देवदेवश्च यो मत ।
शापानुग्रहणे शक्तो य एको जगता पति ॥ २६ ॥
य सहरति सर्वाणि जगन्ति प्रलयोद्भवे ।
यो विभूतिप्रदो भक्ते नानारूपो मनोहर ॥ २७ ॥
स ते दुहितर काली भार्यामादातुमिच्छति ।
यदि पश्यसि त्व योग्य वर त दुहितु समम् ॥ २८ ॥
तदा प्रयच्छ तनया काली शशिभृते गिरे ।
इत्युक्तस्तैर्गिरिपतिश्चिर स्वहृदयस्थितम् ॥ २९ ॥
दुहितुश्च प्रिय ज्ञात्वा प्राप्य सद्वचनान्मुदम् ।
आह चेद प्रकाशेन युष्माभिस्त्वहमागतै ॥ ३० ॥
पावितो मुनिशार्दूलै पूरितश्च मनोरथ ।
दास्यामि शम्भवे पुत्री युष्माभि प्रार्थितस्त्वहम् ॥ ३१ ॥
पूर्वमेव तपस्तप्त्वा तयेश पतिरीहित ।
धातुर्नियोजनमिद कोऽन्यथा कर्तुमुत्सहेत् ॥ ३२ ॥
कोऽन्य प्रार्थयितु शक्त सुता मम विना हरात् ।
हरेणावगृहीता या तामन्य क समुत्सहेत् ॥ ३३ ॥
हर गृहीत्वा मनसा नान्य सापीह वाञ्छति ।
इत्युक्त्वा मेनया सार्ध सुता दातु च शम्भवे ॥ ३४ ॥
अगीकृत्य विसृष्टास्ते ह्यनुप्रापुर्महेश्वरम् ।
ते गत्वा मुनय सर्वे मरीचिप्रमुखा द्विजा ॥ ३५ ॥
शैलराजो यदाचष्ट तदूचुर्मदनारये ।
हिमवास्तनया दातु तुभ्यमुत्सहते हर ॥ ३६ ॥
यदिदानी त्वया कर्तु युज्यते क्रियता तु तत् ।
अस्माश्चाप्यनुजानीहि हर गन्तु निजास्पदम् ॥ ३७ ॥
सिद्ध ज्ञात्वा हर साध्य मुदितस्तान् विसृष्टवान् ।
यथायोग्य समाभाष्य क्रमादेकैकशो मुनीन् ॥ ३८ ॥
कालीविवाहावसरे यूयमायात मा प्रति ।
इति ते वै हरेणोक्त प्रतिश्रुत्यर्षयो ययु ॥ ३९ ॥
अथान्योन्यप्रियतया कृत्वा कृत्वा गतागतम् ।
समय कारयामास विवाहाय हरो गिरिम् ॥ ४० ॥

माधवे मासि पञ्चम्यां सिते पक्षे गुरोर्दिने।
चन्द्रे चोत्तरफाल्गुन्यां भरण्यादौ स्थिते रवौ ॥ ४१ ॥
आगता मुनयस्तत्र मरीचिप्रमुखा मुहुः।
हरेण चिन्तिताः सर्वे तथा ब्रह्मादयः सुराः ॥ ४२ ॥
तथा च सर्वे दिक्पाला मुनयश्च तपोधनाः।
शच्या सह तथा शक्रो ब्रह्माण्याद्यास्तु मातरः ॥ ४३ ॥
नारदश्च गतस्तत्र देवर्षिर्ब्रह्मणः सुतः।
एतैः परिचरैः सार्धं गणैराप्यायितः स्वकैः ॥ ४४ ॥
वैवाहिकेन विधिना गिरिपुत्रीं हरोऽग्रहीत्।
विवाहे गिरिजां शम्भोः सर्पा येऽष्टौ तनौ स्थिताः ॥ ४५ ॥
ते जाम्बुनदसन्नद्धा अलंकारास्तदाभवन्।
द्विभुजोऽभून्महादेवो जटाः केशत्वमागताः ॥ ४६ ॥
शिरःस्थितश्चन्द्रखण्डः सोऽर्चिषा ज्वलितोऽभवत् ॥ ४७ ॥
विचित्रवसनं व्याघ्रकृत्तिरासीत्तदा द्विजाः।
विभूतिलेपो ह्यस्याभूत् सुगन्धिमलयोद्भवः ॥ ४८ ॥
गौररूपो हरस्तत्र बभूवाद्भुतदर्शनः।
ततो देवाः सगन्धर्वाः सिद्धविद्याधरोरगाः ॥ ४९ ॥
विस्मयं परमं जग्मुर्हरं दृष्ट्वा तथाविधम्।
हिमवान् मुदितश्चासीत् सहपुत्रैश्च मेनया ॥ ५० ॥
ज्ञातयश्चास्य मुमुदुर्हरं दृष्ट्वा तथाविधम्।
इदं ब्रह्मा तत्र जगौ हरं दृष्ट्वा मनोहरम् ॥ ५१ ॥
सर्वं शिवकरं यस्मात् सुवेशमभवत्सुराः।
तस्माच्छिवोऽयं लोकेषु नाम्नाख्यातोऽधिकं शिवः ॥ ५२ ॥
महेश्वरमुमायुक्तमीदृशं यः स्मरेद्धृढा।
सततं तस्य कल्याणं वाञ्छितं च भविष्यति ॥ ५३ ॥
एवं काली महामाया योगनिद्रा जगत्प्रसूः।
पूर्वं दाक्षायणी भूत्वा पश्चाद् गिरिसुताभवत् ॥ ५४ ॥
स्वयं समर्थापि सती काली सम्मोहितुं हरम्।
तथाप्युग्रं तपस्तेपे हिताय जगतां शिवा।
एवं सम्मोहयामास कालिका चन्द्रशेखरम् ॥ ५५ ॥
इत्येतत् कथितं सर्वं त्यक्तदेहा सती यथा।
हिमवत्तनया भूत्वा पुनः प्राप महेश्वरम् ॥ ५६ ॥
इदं यः कीर्तयेत् पुण्यं कालिकाचरितं द्विजाः।

नाधयो व्याधयस्तस्य दीर्घायु स च जायते ॥ ५७ ॥
इद पवित्र परममिद कल्याणवर्धनम् ।
श्रुत्वापि सकृदेवेद शिवलोकाय गच्छति ॥ ५८ ॥
य श्राद्धे श्रावयेद्विप्रान् कालिकाचरित महत् ।
पितरस्तस्य कैवल्यमाप्नुवन्ति न सशय ॥ ५९ ॥
य श्रावयेद् ब्राह्मणाना सन्निधौ वा समागत ।
तत्र स्वय हरो गत्वा शृणोति सह मायया ॥ ६० ॥
इति व कथित पुण्य सर्वपापप्रणाशनम् ।
युष्मभ्य रोचते चान्यद्यत्तत् पृच्छन्तु सत्तमा ॥ ६१ ॥

इति श्रीकालिकापुराणे कालीहरसमागमो नाम
चतुश्चत्वारिंशोऽध्याय ॥ ४४ ॥

पञ्चचत्वारिंशोऽध्यायः

ऋषय ऊचुः

विचित्रमिदमाख्यात ब्रह्मन् कालीहरागमम् ।
पुण्य पापहर नित्य श्रुतिसौख्यप्रद वरम् ।। १ ।।
भूय कथय शर्वस्य कालीतन्वर्धमुत्तमम् ।
कथ जहार गौरी वा कथम्भूताथ कालिका ।। २ ।।
केन वा कारणेनाशु कृष्णा गौरीत्वमागता ।
तत्र कथय तत्त्वेन मुनिश्रेष्ठ द्विजोत्तम ।। ३ ।।

मार्कण्डेय उवाच

इद तु महदाख्यान कथयिष्यामि वोऽधुना ।
महर्षयस्तच्छृण्वन्तु तत्त्वेन शुभद परम् ।। ४ ।।
एतदौर्व पुरा राजा सगर पृष्टवान्मुनिम् ।
स त यथा समाचष्ट तद्वोऽथ निगदाम्यहम् ।। ५ ।।
पुराभूत् सोमवशे च सगरो नाम पार्थिव ।
स श्रीमान् बलवान् दक्ष सर्वशास्त्रार्थपारग ।। ६ ।।
सोऽभूदेकरथेनैव जित्वा सर्वान् महीभुज ।
सार्वभौमो नरपति सर्वराजगुणैर्युत ।। ७ ।।
त प्राप्तराज्य राजान सगर पार्थिवोत्तमम् ।
सभाजयितुमत्यर्थ मुनय समुपागता ।। ८ ।।
प्राच्योदीच्या महात्मानो दाक्षिणात्यास्तथोत्तरा ।
मुनयो ब्राह्मणाश्चैव नृप द्रष्टु समागमन् ।। ९ ।।
आगतेष्वथ सर्वेषु महात्मा ज्वलनोपम ।
और्वो नाम मुनि श्रीमानागतो नन्दितु नृपम् ।। १० ।।
तमागत मुनि दृष्ट्वा ज्वलन्तमिव पावकम् ।
सपर्यया महत्या तु सगरस्तमपूजयत् ।। ११ ।।
पाद्यमाचमनीय च दत्त्वैवार्घपुरोगमम् ।
निवेशयामास च त मुनिश्रेष्ठ वरासने ।। १२ ।।
उवाच च महात्मानमौर्व स सगरो नृप ।
प्रणम्य च यथायोग्यं कुशल त इति द्विजम् ।। १३ ।।
स च प्राह मुनिश्रेष्ठो नरराज सदा मम ।

सर्वत्र कुशल त्वा तु द्रष्टु कुशलमुत्सहे ॥ १४ ॥
त्वत्त कोऽन्योऽस्ति कुशली पृथिव्या सर्वराजसु ।
य एक सञ्जिगायाशु भवान् सकलपार्थिवान् ॥ १५ ॥
कुशल वर्धता नित्य तव राजवरोत्तम ।
यथा नीत्या सदाचारै पृथिवी शाधि भूपते ॥ १६ ॥
तव वृद्धौ जगद्वृद्धिर्वृद्धौ चेष्टा तत कुरु ।
शुभ्राशुवृद्धौ सतत सागरस्येव वर्धनम् ॥ १७ ॥
प्रथम सद्गुणैरात्मा क्रियता नृप योजनम् ।
तत स्वभार्या महिषी क्रियता तद्गुणैर्युता ॥ १८ ॥
नित्या सयोजिता चेत् स्याद्वनिता स्वयमेव हि ।
स्वगुणेषु प्रवेक्ष्यन्ती महत्यपि धृतव्रता ॥ १९ ॥
श्रूयते हिमवत्पुत्री शम्भुसगतमानसा ।
क्रियाभ्युपायैर्बहुभि शम्भुना सा प्रयोजिता ॥ २० ॥
ततोऽतिमहता प्रेम्णा शकरस्याथ पार्वती ।
शरीरमर्धमहरत्तस्यैवानुमते सती ॥ २१ ॥
अर्धनारीश्वरस्तेन तदा प्रभृति शकर ।
अभवन् नृपशार्दूल नान्या भार्या गृहीतवान् ॥ २२ ॥
तस्मात् त्वमपि राजेन्द्र स्वजायामात्मनोत्तरे ।
गुणै सयोजय लघु सयोजय तत सुतम् ॥ २३ ॥

मार्कण्डेय उवाच

इत्यौर्वभाषित श्रुत्वा सगरोऽपि मुदान्वित ।
इद मुनिमपृच्छत् स नृपति स्मितसन्तत ॥ २४ ॥

सगर उवाच

कथ सा गिरिजा देवी कायार्धमहरत् सती ।
शकरस्य द्विजश्रेष्ठ तदह श्रोतुमुत्सहे ॥ २५ ॥
नीत्या यया वा योक्तव्या स्वात्मा भार्या सुतोऽथवा ।
ता नीतिं च सदाचारसहिता श्रोतुमुत्सहे ॥ २६ ॥
राजनीतिं सता नीतिमन्येषा च कृतात्मनाम् ।
पृथक् पृथक् श्रोतुमिच्छुरह त्वा नाथये द्विज ॥ २७ ॥
यदि गुह्यमिद ब्रह्मन्न तदा श्रोतुमुत्सहे ।
तथा नाज्ञापयामि त्वा श्रोतुमिच्छुश्च तत्समम् ॥
कृपया कथनीय चेत्तदा कथय तन्मुने ॥ २८ ॥

मार्कण्डेय उवाच

इत्येव सगरेणोक्तमौर्वोऽपि द्विजसत्तम।
प्रत्युवाच महात्मान कृपालुस्तत्र भूपतौ ॥ २९ ॥

और्व उवाच

शृणु राजन् प्रवक्ष्यामि यद् यत् पृष्टमिह त्वया।
यथा हरस्य तन्वर्धं भूभृत्पुत्री पुराहरत् ॥ ३० ॥
यथा नीतिस्त्वया कार्या यत्र यत्र नृपोत्तम।
सर्वेषा च सदाचार क्रमाद् वक्ष्यामि तच्छृणु ॥ ३१ ॥
यदोढा हिमवत्पुत्री शकरेण महात्मना।
कियन्त स तदा काल तत्र निन्ये सहोमया ॥ ३२ ॥
रममाणस्तया सार्ध सानौ कुञ्जे दरीषु च।
विजहार चिर तत्र पार्वती मोदयन् हर ॥ ३३ ॥
अथ काले तु सम्प्राप्ते शम्भु कैलासपर्वतम्।
सगणो भार्यया सार्धमगच्छत्त्रिदिवोपमम् ॥ ३४ ॥
स त्वया क्रीडमानश्च त्यक्तध्यानात्मचिन्तन।
तद्वक्त्रचन्द्रे नेत्राणि चकोरानिव चाकरोत् ॥ ३५ ॥
पुष्पाणि क्वचिदाहृत्य गिरिजा प्रति शकर।
सर्वाङ्गसङ्गिनीं माला विदधेऽतिमनोहराम् ॥ ३६ ॥
कदाचिदादर्शतले युगपच्चात्मनो मुखम्।
मुख तथैवापर्णाया वीक्षाञ्चक्रे वृषध्वज ॥ ३७ ॥
कदाचिन्मृगनाभीना विलेपैर्गन्धपत्रकम्।
तस्या घनस्तनयुगे विलिलेख स्मरान्तक ॥ ३८ ॥
गन्धसारविलेपेन तिलकान्यम्बिकातनौ।
ललाटे चाकरोच्चारु चन्द्रवद् घनसन्धिषु ॥ ३९ ॥
उमानिर्यासससक्तकेशपाशेषु चित्रकम्।
चन्दनागुरुकस्तूरीकुकुमस्य विलेपनै ॥ ४० ॥
चकार येन तस्यास्तु केशपाशो व्यराजत।
नर्तनायावतीर्णस्य शिखितुच्छस्य साम्यधृक् ॥ ४१ ॥
जाम्बूनदमयाञ्शुद्धान् कुण्डलाद्यान् मनोहरान्।
अलकारानुमा देहे समाकार्षीद् वृषध्वज ॥ ४२ ॥
तैर्जाम्बूनदसम्भूतैर्योजितै गिरिजातनु।
विभाति जलदापूर्णे कालिकेव तडिद्गणैः ॥ ४३ ॥

सर्वैर्दिव्यैरलकारैर्नानारत्नै सदशुकै ।
सपूर्णमण्डिता काली सादृश्य प्रकृतेर्दधौ ॥ ४४ ॥
एव सदा सानुरागस्तस्या शम्भुर्जगत्पति ।
जगद्धिताय चिक्रीड काल्या दयितया सह ॥ ४५ ॥
काली च जगता माता महामाया जगन्मयी ।
योगनिद्रा जगद्बुद्धिर्विद्याविद्यात्मिकाखिला ॥ ४६ ॥
प्रकृति परमा मूर्ति सर्गान्तस्थितिकारिणी ।
सम्मोह्य शकर यत्नाज्जगता च हितैषिणी ।
रेमे तेन सम देवी चन्द्रिकेव सुधाशुना ॥ ४७ ॥
अथैकदा स्मरहर कैलासाग्रे सहोमया ।
रममाणो मुदा युक्तो ददर्शोऽप्सरस शुभा ॥ ४८ ॥
रूपयौवनसम्पन्ना सर्वलक्षणसयुता ।
तासा मध्यगता वेश्या उर्वशी च मनोहरा ॥ ४९ ॥
ता सर्वा रक्तगौराग्य सर्वालङ्कारभूषिता ।
मुनीना च मनोऽत्यर्थ शक्ता मोहयितु हठात् ॥ ५० ॥
ता प्रणम्य हर दृष्ट्वा गिरिजा च मनोरमाम् ।
अग्रे प्राञ्जलयस्तस्थुस्तद्भीतिनतमस्तका. ॥ ५१ ॥
अथ प्राह तदा भर्ग पार्वतीमिदमद्भुतम् ।
तासा समक्ष तस्या तु भाषितु स्याद् यदप्रियम् ॥ ५२ ॥
कालि भिन्नाञ्जनश्यामे उर्वश्याद्यप्सरोगणै ।
त्वयेह स्त्रीस्वभावेन सलाप क्रियतामिति ॥ ५३ ॥
तच्छ्रुत्वा वचन तस्य यथायोग्य च सोर्वशी ।
अप्सरस समाभाष्य विसृष्टा गिरिजा तया ॥ ५४ ॥
अथ सा क्रोधवशगा पार्वती भर्गभाषितात् ।
काली भिन्नाञ्जनश्यामेत्युदिता ह्यभवत् क्षणात् ॥ ५५ ॥
सा चाप्सरसा पुरतो वर्णोद्देशविकत्थनम् ।
न सेहे मन्युना युक्ता गिरिजेन्दुकलाभृत. ॥ ५६ ॥
अथ सा रोषसयुक्ता त्यक्त्वा वृषभवाहनम् ।
अपह्नुते शैलसानौ रोषापह्नुतिमागता ॥ ५७ ॥
मार्गमाणोऽथ विरहव्याकुलो वृषवाहनः ।
नाससाद कियत्कालं पार्वती पर्वतोत्तमे ॥ ५८ ॥
विरहव्याकुल ज्ञात्वा स्वय सा पार्वती हरम् ।
आत्मान दर्शयामास गिरिसानावपह्नुते ॥ ५९ ॥

तामासाद्य तत शम्भु किमर्थमभज प्रिये ।
मान मनोनुद देवि विशीर्ण इव चाब्रवीत् ॥ ६० ॥
भर्तुराग पुरन्ध्रीणा मानग्रहणकारणम् ।
तद्विना ग्रहणात्तस्य भीरु प्राप्नोति वाच्यताम् ॥ ६१ ॥
तस्मात् किमर्थमकरो रोष त्व जलजानने ।
तदाचक्ष्व द्रुत कान्ते मनो मे न प्रसीदति ॥ ६२ ॥
इत्युक्त्वा शकरो देवी तामालिङ्गितुमुद्यत ।
काली त वारयामास वचन चाब्रवीदिदम् ॥ ६३ ॥
न दृष्टपूर्वा किमह येन भिन्नाञ्जनोपमा ।
क्रियते मयि भूतेश भवताप्सरसा पुर ॥ ६४ ॥
जातिहीन वृत्तिहीन रूपहीनमदक्षिणम् ।
हीनागमतिरिक्ताग तेन दोषेण नाक्षिपेत् ॥ ६५ ॥
इति ब्रह्मा पुरा प्राह वेदौघार्थविनिश्चयम् ।
त चावमन्य भवता परिहासोऽभ्यभाष्यत ॥ ६६ ॥
यावन्न मे शरीरस्य भवित्री स्वर्णगौरता ।
न समेष्ये त्वया तावदिति सत्य ब्रवीमि ते ॥ ६७ ॥
शरीरगौरता शम्भो न समेष्ये त्वया विना ।
तत्र मे शृणु सन्धाय आत्मन शिरसा शपे ॥ ६८ ॥
इत्युक्त्वा सा तदा देवी तस्यैव पुरतो ययौ ।
महाकोषीप्रपाताख्य हिमवत्सानुमुत्तमम् ॥ ६९ ॥
महादेवोऽपि त भाव्य ज्ञानेन कृतनिश्चयम् ।
अर्थ ज्ञात्वा तदापर्णा सर्वज्ञो नाप्यवारयत् ॥ ७० ॥
सा गत्वा पूर्ववत्तत्र शम्भुसगतमानसा ।
शतमाराधयामास वर्षाणि वृषभध्वजम् ॥ ७१ ॥
एक पाद समुत्क्षिप्य वामेनाक्रम्य सा क्षितिम् ।
उत्तराभिमुखी भूत्वा निराहारा निरन्तरम् ॥ ७२ ॥
वैयाघ्रचर्मवसना सोर्ध्वमूर्द्धानना सती ।
ज्योतिर्मय पर शान्त शिव शिवकर वरम् ॥ ७३ ॥
आत्मस्वरूपतत्त्वज्ञा तत्त्वेनाराधयद्धरम् ।
ता चिन्तयन्ती परमनिश्चला तत्त्वमानसाम् ॥ ७४ ॥
मेने मुनिगण स्थाणुर्यो न जानाति तत्त्वत ।
एव तस्यास्तपस्यन्त्या जग्मुर्वर्षाणि वै शताम् ॥ ७५ ॥
अन्येषा च यथा शश्वदेक नृपतिसत्तम ।
ततस्ता शतवर्षान्ते शकरो योगतत्पर ॥ ७६ ॥

आत्मान दर्शयामास क्रमादेक स सत्रपम् ।
प्रथम दर्शयामास ब्रह्माण च हरि तत ॥ ७७ ॥
ततस्तु शाम्भव देह ततस्तेषामथैकताम् ।
ज्योतिर्मयत्व शुद्धत्व सर्वेषा हेतुता तथा ॥ ७८ ॥
ततस्तु शम्भुरूप स दर्शयामास शकर ।
योगनिद्रा महामाया योगिनी कालिकाम्बिकाम् ॥ ७९ ॥
प्रथम दर्शयित्वा तु तस्या प्रकृतिरूपताम् ।
पश्चात् सा पार्वतीत्येव क्रमात्तस्या अदर्शयत् ॥ ८० ॥
तपसा सम्भृतेनाशु ज्ञानमासाद्य पार्वती ।
अन्तर्दृष्ट्या बहिर्दृष्ट्या तत्त्व ज्ञात्वा यथातथम् ॥ ८१ ॥
शम्भुं जगन्मय मेने तथात्मान जगन्मयीम् ।
ब्रह्मा विष्णुर्हरश्चापि तत सर्वमिद जगत् ॥ ८२ ॥
अहं समस्तप्रकृतिर्योगनिद्रा तथा सती ।
इति ध्यानेन सा देवी प्राप्य ध्यान तदात्यजत् ।
उन्मील्य नयनद्वन्द्व बहि शम्भु ददर्श च ॥ ८३ ॥
सा दृष्ट्वा शकर देव देवदेवमुमापतिम् ।
तुष्टाव वाग्भिरिष्टाभिर्यमिन योगतत्परम् ॥ ८४ ॥

पार्वत्युवाच

नमस्ते जगता नाथ नमस्ते केशवाव्यय ।
प्रधानपुरुषातीत कारणत्रयकारण ॥ ८५ ॥
योगमोहमनोराग-धर्माधर्ममयस्तथा ।
विद्याविद्यास्वरूपश्च शाम्भव. काय एष ते ॥ ८६ ॥

त्व नि श्रेय श्रेयसा युज्यमानो
दृश्योऽदृश्यो योगमूर्तिर्मनीषी ।
सम्यक् श्रद्धा पौरुषे तत्त्वरूप
त्व वै ज्योति शान्तिरूप पुरस्तात् ॥ ८७ ॥

ब्रह्मा विष्णुस्त्व हरस्त्व महेन्द्र.
सूर्य सोमो वायुरग्निर्धनेश ।
त्व तोयेश शमनो राक्षसश्च
शेषस्त्वत्तो भिद्यते कोऽपि नास्मिन् ॥ ८८ ॥

त्व भूमिर्द्यौर्द्युसदा चापि पन्था-
स्त्व स्थावरो जङ्गमो भूर्बलस्थ ।

ज्ञान ज्ञेय ध्यानगम्य च तत्त्व
परात्पर व्यक्तरूप परेषाम् ॥ ८६ ॥
त्व पुरुष परमात्मा प्रधान
त्व हि ज्यायानागमो ज्ञानगम्य ।
भाव कृत्य पचरूपी समस्तै-
रासाद्यस्ते गोचरास्तद्भवाय ॥ ९० ॥
कीर्ति कीर्त्य स्तुत्यरूपी स्तुतिश्च
द्रष्टा दृश्य स्थैर्यधृक् स्थावरश्च ।
नित्योऽनित्यो मुक्तयोगो वियोगो
दानादाने भेदसामप्रयोग ॥ ९१ ॥
नीतिर्नेयो दीक्षितो दक्षिणाश्च
सारात् सार सविधाता विधेय ।
आर्योऽनार्यो रूपधृग्रूपहीनो
दिव्यो देवो मानुषोऽमानुषश्च ॥ ९२ ॥
सृज्य स्रष्टा पालक पाल्यरूप-
श्चेता चेयो नोर्मियुक्तस्तथोर्मि ।
विद्याविद्यावेदवादैकरूपो
रूपारूपस्तीक्ष्णसौम्यैकरूप ॥ ९३ ॥
भावाभाव शोभन शुद्धरूपी
शश्वद्दान्त शान्तिरुग्रा मुनीनाम् ।
द्वन्द्वोऽद्वन्द्व सर्वगोऽसर्वगश्च
भ्रान्तोऽभ्रान्त सिद्धसिद्धिप्रदश्च ॥ ९४ ॥
एकस्थस्त्व सर्वगोप्ता सुदेहो
निर्देहस्त्व देह एक सुराणाम् ।
स्थूल सूक्ष्मो निर्विकार शरीरी
विश्वात्मा त्व नास्ति भिन्नो भवत्त ॥ ९५ ॥
कार्याकार्ये यस्य रूपे समस्ते
व्याप्याव्याप्ये भागहीनोऽतिपूर्ण ।
योगज्ञानस्थात्मक यस्य नित्य
रूप यस्य श्रीद तस्मै नमस्ते ॥ ९६ ॥
प्रधानपुसोरपि यो विधाता
य कालरूपी पुरुष परेश ।
तमीशमुग्र वरद वरेण्य
नमामि चिन्नीतिवितानक त्वाम् ॥ ९७ ॥

अक्षयो योऽव्यय साक्षी क्षेत्रज्ञ क्षेत्रधृग्वर ।
तस्मै नमस्ते विश्वात्मन् वृषध्वज महेश्वर ॥ ६८ ॥
ज्ञानामृतविनिस्यन्दि यस्य चिच्चन्द्रमा सदा ।
तद्रूपमेक य ज्ञेय भक्तिमात्र नमोऽस्तु ते ॥ ६६ ॥

और्व उवाच

इति स्तुतो महादेव सर्वभूतानुकम्पक ।
प्रसन्नवदन प्राह पार्वती प्रतिहर्षयन् ॥ १०० ॥

ईश्वर उवाच

प्रीतोऽस्मि देवि भद्र ते वर वरय वाञ्छितम् ।
तपसाप्यायितश्चाह त्वया ब्रह्मा तथा 'हरि ॥ १०१ ॥
तपसा त्वत्समो नास्ति शीलेन च गुणेन च ।
त्वा विना न हि तृप्यामि प्रिये कुरु यथेप्सितम् ॥ १०२ ॥
तत सा मोहिता प्राह मायया हिमवत्सुता ।
जाम्बुनदाभगौरो मे देहो भवतु साम्प्रतम् ।
अनन्यकान्तस्त्व चापि भूया मत्तो विना हर ॥ १०३ ॥
एवमुक्तो महादेव पार्वत्या पार्वती तत ।
आकाशगगातोयौघे मज्जयामास भामिनीम् ॥ १०४ ॥
सा निमज्ज्य समुत्तीर्णा विद्युद्गौरी व्यजायत ।
सिताम्भोमध्यगा देवी शारदाभ्रे तडिद्यथा ॥ १०५ ॥
शम्भुश्चागीचकाराशु नाह त्वत्तो विना प्रिये ।
मनसापि ग्रहीष्यामि नान्या सत्य ब्रवीमि ते ॥ १०६ ॥

और्व उवाच

अथ तोयात् समुत्तीर्णा पार्वती मोदसयुता ।
तप क्लेशपरित्यक्ता चन्द्रिकेव विधोर्यथा ॥ १०७ ॥
अथ ता पार्वती देवीमादाय वृषभध्वज ।
जगाम शैल कैलासं स्वमाश्रमपद लघु ॥ १०८ ॥
तदा गत्वा हरो देवीमधिवास्य विभूष्य च ।
पूर्ववन्मोदयामास नर्महासकथादिभि ॥ १०६ ॥
सापि सौवर्णगौराङ्गी वीक्ष्य रूप मनोहरम् ।
गृहीतसमय शम्भु प्राप्यातीव मुमोद ह ॥ ११० ॥
एव तयोस्तु शिवयोरन्योन्यरममाणयो ।
जगाम सुचिर कालं कैलासे पर्वतोत्तमे ॥ १११ ॥

अथैकदा महादेवसमीपे हिमवत्सुता ।
आसीना ददृशे तस्य स्वां छायामुरसि स्थिताम् ॥ ११२ ॥
स्फटिकाभ्रसमे स्वच्छे हृदि शम्भोर्मनोहरे ।
योगिज्ञानादर्शतले चार्वङ्गी प्रतिबिम्बिताम् ॥ ११३ ॥
आत्मन्छाया गिरिसुता वामभागे मनोहरे ।
ददर्श वनितारूपा स्मितवक्त्रां मनोहराम् ॥ ११४ ॥
भ्रान्त्या दृष्ट्वाथ पार्वत्यास्तदा ज्ञानमजायत ।
कृतसत्योऽपि गिरिश किमन्या वनिता दधौ ॥ ११५ ॥
मायया स्थापिता गात्रे वीक्षन्ती कुटिलं च माम् ।
इति तस्यास्तदा वक्त्रं मलिनं भ्रुकुटीयुतम् ।
बभूव वृषकेतुश्च श्याम उत्पातको यथा ॥ ११६ ॥
सा दृष्ट्वाथ तदा छाया विष्णुमाया-विमोहिता ।
अपहुतं गिरेः शृङ्गं मानाद्रोषाद्विवेश ह ॥ ११७ ॥
अथ तां मार्गमाणस्तु शंकरो विरहाकुलः ।
चिरादपहुतां देवीमाससाद ततो हरः ॥ ११८ ॥
तामासाद्य महादेवो विवर्णवदनां प्रियाम् ।
उवाच रोषणे हेतुं ज्ञातुमिच्छुर्यथातथम् ॥ ११९ ॥

ईश्वर उवाच

किमर्थंस्त्वं वरारोहे मह्यं कुप्यसि कोपने ।
रोषहेतुमहं वक्तुं तवेच्छामीह वल्लभे ॥ १२० ॥
न तुभ्यमपराध्यामि वाचा वा मानसाथवा ।
कायेन वा कथं कोपं कर्तुमर्हसि भामनि ॥ १२१ ॥

देव्युवाच

समयेन मया पूर्वं तथा सम्प्रार्थितो भवान् ।
कथं तं परिहाय त्वमन्यां भार्यां समीहसे ॥ १२२ ॥
प्रत्यक्षेण मया दृष्टा तव हृद्यन्तरे हर ।
चार्वंगी वनिता काचित्तोयनिर्यातभस्मनि ॥ १२३ ॥
भवान् सर्वज्ञानमयः सर्वगः परमेश्वरः ।
तोषितो मे तपोव्रातैर्न तुष्टस्त्वं महेश्वर ॥ १२४ ॥
तस्मादहं तपस्तप्तुं शश्वद्गन्तुं समुत्सहे ।
अनुजानीहि मां शम्भो मा विलम्बं वृथा कृथा ॥ १२५ ॥
इति श्रुत्वा वचस्तस्या स्मितविस्तारिताननः ।
शंकरः पार्वतीं प्राह सन्दिग्धामिव भामिनीम् ॥ १२६ ॥

नाहमन्या स्त्रिय वोढा नाह समयभेदक ।
तव मिथ्यामतिर्जाता मुग्धे मूढतयाधुना ॥ १२७ ॥
त्वमिच्छसि यदि श्रोतु तत्र हेतु च पार्वति ।
तदह कथये तत्त्व मान मानिनि मा कृथा ॥ १२८ ॥
मम वक्षसि विस्तीर्णे दर्पणस्वच्छभासिनि ।
तवैव वपुषश्छायाबिम्बिता लोकिता त्वया ॥ १२९ ॥
इदानीमेव बुध्यस्व त्वामृते नास्ति सा मयि ।
नात्र मानस्त्वया कार्यो हृदयान्तरसस्थिते ॥ १३० ॥

देव्युवाच

मयि स्थिताया छायास्ति मामृते नास्ति सा पुन ।
कथमेतन्मया ज्ञेय तन्मे वद वृषध्वज ॥ १३१ ॥

ईश्वर उवाच

गवाक्षाभ्यन्तरे स्थित्वा तज्जालेन मनोहरे ।
पश्य तोयौघनिर्यातभूतिलेपमुरो मम ॥ १३२ ॥
तथा त्व मण्डित देह वीक्ष्यादर्शतले पुन ।
मद्धृदासन्नमासाद्य तादृक्छाया विलोकय ॥ १३३ ॥
यथा द्रक्ष्यसि देहे स्व तत् कुरु त्व तथा मम ।
आलोकय निजा छाया त्वा विना नास्ति तत् पुन ॥ १३४ ॥
त्वमेव ज्ञास्यसि च्छाया मद्वक्षसि मनोहरे ।
ज्ञात्वा विसृज्यमान मा त्व चाप्युपपत्स्यसि ॥ १३५ ॥

और्व्य उवाच

एवमुक्ता हरेणाथ पार्वतीन्दुकलाभृत ।
तोयैर्निर्धाव्य हृदय स्वा छाया पुनरैक्षत ॥ १३६ ॥
दृष्ट्वादर्शतले वक्त्र निज देह च पार्वती ।
आलोकयामास तदा शम्भ्वच्छकरवक्षसि ॥ १३७ ॥
यथा सा कुरुते देवी कापट्य नेत्रविभ्रमम् ।
तथा सा कुरुते च्छाया करकम्पादिक तथा ॥ १३८ ॥
तत पुनर्गवाक्षस्य जाले स्थित्वा हिमाद्रिजा ।
तथा व्यलोकयच्छम्भोर्हृदय वीतभूतिकम् ॥ १३९ ॥
तया तत्र तु पार्वत्या वृषभध्वजवक्षसि ।
न कापि दृष्टा वनिता दृष्ट जालस्य मण्डलम् ॥ १४० ॥

एव बहुविधैर्देवी तदोपायैस्तथेतरै ।
निर्यातसशाया भूत्वा लज्जा प्राप वरागना ॥ १४१ ॥
तां लज्जिता गिरिसुतामीषद्भीतामधोमुखीम् ।
शम्भुरालिग्य पाणिभ्या मुख चास्याश्चुचुम्ब च ॥ १४२ ॥
स तामाह महादेवो देवीमाश्वासयन् मुहु ।
मा व्रीडस्व महाभागे भ्रान्ति कस्य न जायते ॥ १४३ ॥
मानस्त्वयि वरस्त्रीभि कार्य प्रेमकरो यत ।
त्वयापि विरल कार्यो मानो देवि न सर्वदा ॥ १४४ ॥
इत्युक्ता देवदेवेन मैनाकसहजाम्बिका ।
शङ्करं प्रणयात् प्राह सूनृत मधुर वच ॥ १४५ ॥

देव्युवाच

यथा तवाह सतत छायेवानुगता हर ।
भवेय साहचर्येण तथा मा कर्तुमर्हसि ॥ १४६ ॥
सर्वगात्रेण सस्पर्श नित्यालिंगनविभ्रमम् ।
अहमिच्छामि भवतस्तत्त्व चेत् कर्तुमर्हसि ॥ १४७ ॥

भगवानुवाच

रोचते तन्मह्यमपि यस्त्वमिच्छसि भामिनि ।
तत्रोपायमहं वक्ष्ये यदि शक्नोषि तं कुरु ॥ १४८ ॥
अर्ध मम गृहाण त्व शरीरस्य मनोहरे ।
अर्ध भवतु मे नारी अथैवार्ध पुमानिति ॥ १४९ ॥
यदि त्वमपि शक्नोषि कर्तु तदर्धमीदृशम् ।
तदाह ते हरिष्यामि शरीरार्ध वरानने ॥ १५० ॥
तवैवार्ध तथा नारी ह्यर्ध भवतु पूरुष ।
विद्यते तत्र शक्तिर्मे त्वमनुज्ञातुमर्हसि ॥ १५१ ॥

देव्युवाच

तवैवाह हरिष्यामि शरीरार्ध वृषध्वज ।
किं त्वह त्वेकमिच्छामि तच्चेत्त्व कर्तुमिच्छसि ॥ १५२ ॥
यदाहमर्ध भवतो भूत्वा तिष्ठामि तावता ।
त्यजाम्यहं यदा तेऽर्ध सम्पूर्ण स्यात्तदा द्वयम् ॥ १५३ ॥
इत्यर्धभागहरण भवेद्यदि यथेप्सितम् ।
तवैवाह तदा शम्भो शरीरार्ध हराम्यहम् ॥ १५४ ॥

ईश्वर उवाच

एवमस्तु भवेन्नित्य यथार्ध हर्तुमर्हसि ।
शरीरस्यार्धहरण भूयस्तव यथेप्सितम् ॥ १५५ ॥

और्व्य उवाच

अथ गौरी तदा पूर्वमनुभूत तप स्थितौ ।
योगनिद्रास्वरूप तदात्मनोऽचिन्तयद्धिया ॥ १५६ ॥
हर प्रणम्य प्रथम ब्रह्माण च तत परम् ।
ततस्त्रिजगतामीश हरि नारायण प्रभुम् ॥ १५७ ॥
चिन्तयित्वा यदा तेषामेकता सा जगन्मयी ।
आत्मान योगनिद्रा च चिन्तयित्वा तपस्विनी ॥ १५८ ॥
दक्षिणे स्वशरीरस्य भागार्ध शशभृद्भृत ।
शरीरस्य तदा वाममतिप्रेम्णा निज हरे ॥ १५९ ॥
हरोऽपि स्वशरीरार्ध गौरीकाये तदा स्वयम् ।
प्रेम्णा न्यवेशयत्तस्याश्चिकीर्षु प्रियमद्भुतम् ॥ १६० ॥
अथ स्थित्वा तदा भर्ग काल्या सह चिर तदा ।
परित्यज्य शरीरार्ध पृथगेव बभौ रुचा ॥ १६१ ॥
काली भूत्वा स्वर्णगौरी शरीरार्द्ध च शकरम् ।
प्राप्तमोदा तदात्मान सन्तुष्टा च जगन्मयी ॥ १६२ ॥
एव यदा शरीरार्धमादाय परमेश्वरी ।
रहस्ये तिष्ठति तदा राजतेऽतीव शोभना ॥ १६३ ॥
अर्द्ध धम्मिल्लसयुक्त जटाजूटार्द्धयोजितम् ।
एकस्मिन् श्रवणे भोगी भागे जाम्बूनदार्चितम् ॥ १६४ ॥
कुण्डल श्रवणेऽन्यस्मिन् शीर्षे तस्या व्यराजत ।
अर्द्ध मृगाक्षि चान्यार्द्ध वृषभाक्षि व्यजायत ॥ १६५ ॥
अर्द्ध स्थूलनस चारु तिलपुष्पनस परम् ।
दीर्घश्मश्रु तथैवार्द्धमर्द्ध श्मश्रुविवर्जितम् ॥ १६६ ॥
आरक्तचारुदशन रक्तौष्ठमेकतस्तथा ।
अपर शुक्लविपुल दीर्घाकृतिरद परम् ॥ १६७ ॥
अर्द्धनीलगल चार्द्धमपर हारसयुतम् ।
अर्द्ध ककणकेयूरयुक्तबाहु तथापरम् ॥ १६८ ॥
नागकेयूरसयुक्त स्थूलबाहुनिरूर्मिकम् ।
अर्ध विलोलसुभुज करिहस्तभुजं परम् ॥ १६९ ॥

एकत्र सोमिकाशाखा करस्यान्यत्र ता विना ।
एकस्तन तु हृदय रोमावल्यर्धसयुतम् ॥ १७० ॥
रम्भास्तम्भसमानोरु सुपार्ष्णि मृदुपादकम् ।
एक तथापर स्थूल सहतोरुपदाम्बुजम् ॥ १७१ ॥
एक चारुमृदुस्थूलजघन सुमनोहरम् ।
तथापर दृढकटि सहतोर्द्धपदान्वयम् ॥ १७२ ॥
एक वैयाघ्रचर्मौघयुक्त भूतिविलेपनम् ।
अपर मृदु कौशेयवसन चन्दनोक्षितम् ॥ १७३ ॥
एवमर्द्ध तथा जात योषिल्लक्षणसयुतम् ।
अपर बलवद् भूरि सुगूढ पुरुषाकृति ॥ १७४ ॥
एवमर्द्ध स्मररिपोर्जहार गिरिजा सती ।
हिताय सर्वजगता कालिका कालिकोपमा ॥ १७५ ॥
तस्या शरीर राजेन्द्र हरतन्वर्द्धस-युतम् ।
येनोपमेय तत्रास्ति मार्गित भुवनत्रये ॥ १७६ ॥
सन्तान पारिजातो वा एकान्तविशदस्तरु ।
अमोघया यथा वल्ल्या तौ चापि ययतुर्नहि ॥ १७७ ॥
बहुधा च पृथक् तेन तौ रमाते नरेश्वर ।
अर्द्धनारीश्वरो भूत्वा स तु रेमे कदाचन ॥ १७८ ॥
इति यद्यपि भूतेश स्वय शक्नोति कालिकाम् ।
गौरी कर्तु तदा सर्वभूतकारणकारण ॥ १७९ ॥
तथापि ता गिरिसुता सयोज्य विविधै पुरा ।
तपस्ययोजयद् देव क्रियोपायैरनेकश ॥ १८० ॥
तपोनिर्धूतसर्वांगी पश्चाद् गौरीमथाकरोत् ।
अर्द्ध च प्रददौ तस्यै शरीरस्य महश्वर ॥ १८१ ॥
नैवास्य तत्त्व जानन्ति शक्राद्या सकला सुरा ।
शरीरार्द्धप्रदानस्य तपसे योजनस्य च ॥ १८२ ॥
एतस्य तत्त्व जानन्ति महात्मानो महाबला ।
नन्दी भृङ्गी महाकालो वेतालौ भैरवस्तथा ॥ १८३ ॥
अङ्गभूता महेशस्य वीतभीतास्तपोधना ।
ये मानुषशरीरेण प्रापिरे तपसो बलात् ॥ १८४ ॥
गणानामाधिपत्य तु ते जानन्ति हर परम् ।
एव सदा त्वया योज्या सानुगा नृपसत्तम ॥ १८५ ॥
वनिता सत्क्रियोपायैस्ततो भद्रमवाप्स्यसि ।

य इद श्रृणुयान्नित्यमद्भुत पुण्यदायकम् ॥ १८६ ॥
शिवयो प्रीतिकरण शरीरार्द्धग्रह तथा ।
गौरीत्वसाधनञ्चैव कालिकाया शुभावहम् ॥ १८७ ॥
न तस्य विघ्ना जायन्ते स च पुण्यतमो मत ।
दीर्घायु स सुखी भूयात् पुत्रपौत्रसमन्वित ॥ १८८ ॥
सतत परिश्रृण्वान शिवयोश्चरित महत् ।
शिवलोकमवाप्नोति सुचिर शिववल्लभ ॥ १८९ ॥

इति श्रीकालिकापुराणेऽर्द्धनारीश्वरचरिते
पञ्चचत्वारिंशोऽध्याय ॥ ४५ ॥

षट्चत्वारिंशोऽध्यायः

सगर उवाच

कोऽसौ भैरवनामाभूत् को वा वेतालसञ्ज्ञक ।
कथ वा तौ शरीरेण मानुषेण गणाधिपौ ॥ १ ॥
अभूता द्विजशार्दूल तन्मे वद महामुने ।
जानामि नन्दिन विप्र सहाय शशभृद्भृत ॥ २ ॥
यथाभवद् गणाध्यक्षस्तन्नारदमुखाच्छ्रुतम् ।
यथा भृङ्गिमहाकालौ विश्रुतौ हि हरात्मजौ ॥ ३ ॥
कथ वा तौ समुत्पन्नौ त्वत्त श्रोतु समुत्सहे ।
योऽसौ शरभरूपस्य महादेवस्य वै पुरा ॥ ४ ॥
कायभाग. श्रुत. पूर्वं स महाभैरवाह्वय ।
स एव कि भैरवाख्य कि वान्यो द्विजसत्तम ॥ ५ ॥
वेत्तुं तत्त्वेन तत् सर्वमिच्छामि द्विजसत्तम ।
कस्य वा तनयौ भूत्वा गणाध्यक्षत्वमागतौ ।
तच्चापि कथयस्वाद्य यथा तौ वानराननौ ॥ ६ ॥

और्व उवाच

शृणु राजन् प्रवक्ष्यामि महाकालस्य भृङ्गिण ।
भैरवस्यापि चरित वेतालस्य महात्मन ॥ ७ ॥
योऽसौ भृङ्गी हरसुतो महाकालोऽपि भर्गज ।
तावेव गौरीशापेन सम्भूय नरयोनिजौ ॥ ८ ॥
वेतालभैरवौ जातौ पृथिव्या नृपवेश्मनि ।
यथा भृङ्गिमहाकालाव्युत्पन्नौ प्राक् तथा शृणु ॥ ९ ॥
योऽसौ महाभैरवाख्य. सकाय शरभो हर ।
भैरव' पृथगेवाय गणाध्यक्षो हरात्मज ॥ १० ॥
ऊढाया हिमवत्पुत्र्या भर्गेण सुमहात्मना ।
तारकस्य वधार्थाय देवै शक्रपुरोगमै ।
स्तुतिभिर्नतिभि शम्भु सन्ततिर्याचिता पुरा ॥ ११ ॥
स याचितो देवगणैर्भगवान् वृषभध्वज ।
महामैथुनमारेभे सन्तानायोमया सह ॥ १२ ॥
आरब्धे मैथुने तेन नरवर्य्येण वै ययु' ।
द्वात्रिंशद् वत्सरा राजन् क्षणवच्चन्द्रधारिण. ॥ १३ ॥

स महामैथुन कुर्वस्तृप्ति नाप महेश्वर ।
नाप्यस्य प्रच्युत तेजो न तृप्ति प्राप पार्वती ॥ १४ ॥
तन्महासङ्गसमये चकम्पे वसुधा स्फुटम् ।
आकुला सकला देवा स्यु स्वर्गस्थाश्च येऽपरे ॥ १५ ॥
सर्वं जगत्तदा भूतमाकुल शिवयोस्तयो ।
ततो निवृत्तिजातेन महामैथुनकर्मणा ॥ १६ ॥
अथ सेन्द्रा सुरा सर्व ब्रह्माण जगतापतिम् ।
शरण्य शरण जग्मुर्भीता शकरकेलिभि ॥ १७ ॥
ते सम्भूयाथ धातार प्रणम्य च सुरोत्तमा ।
आकुल सर्वमाचख्युर्हरमैथुनकर्मणा ॥ १८ ॥
तत सर्वान् देवगणान् पश्चात् कृत्वैव वृत्रहा ।
स्वयमाह विधातार तत्कालभयभाषितम् ॥ १९ ॥

इन्द्र उवाच

आकुला सकला लोका हरमैथुनकर्मणा ।
अह महद्भय प्राप्य शरण त्वामिहागत ॥ २० ॥
एवम्भूते सगमे च शकरस्योमया सह ।
य पुत्रो जायते ब्रह्मन् स मामभिभविष्यति ॥ २१ ॥
तत्क्रियादर्शनादेव सूत्पन्नादपि तत्सुतात् ।
ब्रह्मन् जात भय मेऽद्य तारकादपि चाधिकम् ॥ २२ ॥
तस्मादेव त्व विधेहि तत्सुतो मा सुरान्यथा ।
न बाधेत तथा यत्नात्तारयास्मान्महाभयात् ॥ २३ ॥

ब्रह्मोवाच

उमाया जायते पुत्रो यदि शकरतेजसा ।
अशक्य सर्वलोकेशै सेन्द्रैरपि सुरासुरै ॥ २४ ॥
तस्माद्धरो यथोमाया न प्रसूतो भविष्यति ।
तथाहं सविधास्यामि गत्वा देवैर्हरान्तिकम् ॥ २५ ॥
तारकस्य विघातश्च यथा स्याद्धरतेजसा ।
तच्चाप्यह करिष्यामि व्येतु ते मानसो ज्वर ॥ २६ ॥
इत्युक्त्वा सह देवौघै कैलासाद्रि प्रजापति ।
जगाम रेमे गिरिशो गिरिपुत्र्या सम भृशम् ॥ २७ ॥
तत्र गत्वा महादेव ब्रह्मा लोकपितामह ।
सर्वै सुरगणै सार्ध तुष्टाव वृषभध्वजम् ॥ २८ ॥

देवा ऊचुः

प्रीतये यस्य न रतिर्न कामो यन्मनोभव ।
न यस्य जन्मनो हेतुस्तस्मै तुभ्य नमो नम ॥ २६ ॥
यस्य लोकहितायैव जातो जायापरिग्रह ।
त्र्यम्बकाय नमस्तस्मै स शिवो न प्रसीदतु ॥ ३० ॥
यन्मन्मथ विना देवं शृङ्गाराद्या विशन्ति च ।
स्वबलेनैव त देव त्वा वय प्रणता] हरम् ॥ ३१ ॥
हिरण्यरेता स्वर्णाभो यो हिरण्यभुजाह्वय ।
स त्व सर्गहरो देवो नित्य नोऽभिप्रसीदतु ॥ ३२ ॥
जगन्मयी योगनिद्रा विष्णुमाया बलीयसी ।
तस्याभवत् स्वय जाया तस्मै तुभ्य नमो नम ॥ ३३ ॥
पचभूतमय यस्य पञ्चशीर्ष विराजते ।
त पञ्चवदन देव भक्त्या त्वा प्रणमामहे ॥ ३४ ॥
सद्योजातमघोर च वामदेवमुमापतिम् ।
ईशान प्रणमामोऽद्य य तत्पुरुषमाह वै ॥ ३५ ॥
योऽसतामशिवो नित्य यो वा भक्तिमता शिव ।
शिवाशिवस्वरूपाय नमस्तस्मै शिवाय ते ॥ ३६ ॥

रूपैस्त्रिभिर्य स्थितिसृष्टिनाश
विष्ण्वात्मभि शम्भुरिति प्रसिद्धै ।
करोति शश्वज्जगता नुमस्त
शिव विरूपाक्षमसु शिवेशम् ॥ ३७ ॥
य शूलखट्वाङ्गमृगाङ्कधारी
यो गोध्वज शक्तिमान् पञ्चरूपी ।
तस्मै तुभ्य जातवेद प्रभाय
भूयो भूयो नो नम शकराय ॥ ३८ ॥
ब्रह्मार्चिष्मान् भोगभृद् दैत्यहन्ता
यन्ता योद्धा वीतगर्भो जगत्या ।
स त्व स्तुतो न प्रसीदत्वनन्तो
नित्योद्रेकी मुक्तरूप प्रधान ॥ ३९ ॥
परब्रह्मरूपी नियतैकमुक्त
परज्योतिरूपी नियतस्त्वनन्तः ।
पर पाररूपी नियतात्मभागी
स नो भर्गरूपी गिरिशोऽस्तु भूत्यै ॥ ४० ॥

उमापतिं महामाय महादेव जगत्पतिम् ।
शिव शिवकर शान्त नमाम स प्रसीदतु ॥ ४१ ॥
इति स्तुतो महादेव शक्राद्यैस्त्रिदशै स्वयम् ।
उमासङ्ग परित्यज्य भर्गोऽगात्त्रिदिवौकस ॥ ४२ ॥
येन भावेन स तदा महामैथुनतत्पर ।
आसीत् तेनैव भावेन ब्रह्मादीना ससाद ह ॥ ४३ ॥
अथ तान् स सुरान् प्राह महादेवस्त्वरन्निव ।
किमर्थमागता यूयं तन्मे वदत निर्जरा ॥ ४४ ॥
तमूचुस्त्रिदशा सर्वे ब्रह्मशक्रपुरोगमा ।
त्वन्महामैथुनाद्भर्ग व्याकुल सकल जगत् ॥ ४५ ॥
पृथिवी कम्पतेऽतीव सशैलवनकानना ।
सागरा क्षुभिता सर्वे नदा नद्यश्च शकर ॥ ४६ ॥
देवाश्च सर्वे दिक्पाला न शान्ति प्राप्नुवन्ति वै ।
तस्मात् त्वं सर्वलोकेश सकलाननुकम्पय ॥ ४७ ॥
त्यक्त्वा महामैथुन तु रतिमात्र नियोजय ।
एतच्छ्रुत्वा वचस्तस्य ब्रह्मण परमात्मन ।
उवाच शकरो देव नातिहृष्टमना इव ॥ ४८ ॥

ईश्वर उवाच

इय प्रवृत्तिर्भवता शिवायामरसत्तमा ।
त्यक्ते महामैथुने तु रतिमात्र प्रयोजिते ।
नोमाया भविता पुत्रस्तदर्थमयमुद्यम ॥ ४९ ॥
उमाशरीरज पुत्रो यो भवेन्मम तेजसा ।
स एव तु रिपून् हत्वा त्रिदशान् वर्धयिष्यति ॥ ५० ॥
तस्मान्महामैथुने मेऽतीव भीता सुरोत्तमा ।
स्वं स्वं स्थान प्रगच्छन्तु अह तदनुचिन्तये ॥ ५१ ॥

देवा ऊचुः

उमाशरीरज पुत्रो यथा न भविता हर ।
तथा कुरु जगन्नाथ तन्महामैथुन त्यज ॥ ५२ ॥

ईश्वर उवाच

रतिमात्रेण नोमाया मत्पुत्र सम्भविष्यति ।
महामैथुनसन्त्यागात् स्यादपुत्री तु पार्वती ॥ ५३ ॥
तस्मादह तु देवानां वचनाद् ब्रह्मणस्तथा ।
त्यद्ये महामैथुन तु किं त्वेक कुरुतामरा ॥ ५४ ॥

येन मे प्रसृत तेजो महामैथुनकारणात् ।
धार्य तेजस्विन देवमानयन्त्वमरास्तु तम् ॥ ५५ ॥
यो निष्कम्पो निर्विकारो भूत्वा तेजो ग्रहीष्यति ।
तन्मे वदन्तु त्रिदशास्त्वद्ये तेज शरीरजम् ॥ ५६ ॥

और्व्य उवाच

वृषध्वजवच श्रुत्वा देवा ब्रह्मपुरोगमा ।
हरतेजोग्रहायाथ वीतिहोत्र ययुर्द्धिया ॥ ५७ ॥
अथ ब्रह्माणमामन्त्र्य तथानुज्ञाप्य पावकम् ।
सेन्द्रा देवगणा सर्वे हरमूचुरिद वच ॥ ५८ ॥

देवा ऊचुः

एष वैश्वानर श्रीमान् भूरितेजमयो बली ।
महामैथुनबीज तु त्वत्तेज सग्रहीष्यति ॥ ५९ ॥
इत्युक्त्वा त्रिदशा सर्वे वीतिहोत्र पुर स्थितम् ।
तस्मै निर्देशयामासु शम्भवे सर्वहेतवे ॥ ६० ॥
तत षडङ्ग स्व रेतो व्यादिते दहनानने ।
उत्ससर्ज महाबाहुर्महामैथुनकारणम् ॥ ६१ ॥
अग्नावुत्सृज्यमानस्य तेजस शशभृद्भृत ।
अणुद्वयमतिस्वल्प गिरिप्रस्थे पपात ह ॥ ६२ ॥
तयोस्तु कणयो सद्य सम्भूतौ शकरात्मजौ ।
एको भृङ्गसम कृष्णो भिन्नाञ्जननिभोऽपर ॥ ६३ ॥
भृङ्गाभस्य तदा ब्रह्मा नाम भृङ्गीति चाकरोत् ।
महाकृष्णैकरूपस्य महाकालेति लोकभृत् ॥ ६४ ॥
ततस्तौ पालयामास शकर प्रमथोत्करै ।
अपर्णया चापि तथा क्रमात् तावतिवर्द्धितौ ॥ ६५ ॥
प्रवृद्धो तौ महात्मानौ हरोमाप्रतिपालितौ ।
क्रमाद् गणेशौ कृत्वा तौ हरो द्वारि न्ययोजयत् ॥ ६६ ॥

सगर उवाच

उत्सृष्टमग्नौ यत्तेजस्तत् कि वृत्त द्विजोत्तम ।
तदप्यह श्रोतुमिच्छु सक्षेपात् तद्वदस्व मे ॥ ६७ ॥

और्व्य उवाच

अग्नावुत्सृज्य तेजासि तावत्कालं वृषध्वज. ।
आकाशगङ्गामुद्दिश्य देवानिदमुवाच ह ॥ ६८ ॥

एतत् तेजो दुराधर्षं स्त्रीभिरन्यै सुरोत्तमा ।
योगनिद्रामृते देवी शैलपुत्रीमृतेऽथ वा ॥ ६९ ॥
तस्मादहं प्रवक्ष्यामि यथेदं तेजसा सुत ।
यत्र वा भविता देवो या च वा तद्ग्रहीष्यति ॥ ७० ॥
इय त्वाकाशगा गगा शैलराजसुतापरा ।
उमाया भगिनी ज्येष्ठा ततोऽपत्यं हुताशनात् ॥ ७१ ॥
जनिष्यत्यात्मवीर्येण तेजसानुपमद्युति ।
भविष्यति स व श्रीमान् सेनापतिररिन्दम ॥ ७२ ॥
स तारक व पुरतो विजेष्यति शिखिध्वज ।
अमोघया महाशक्त्या मयैव प्रतिवर्द्धित ॥ ७३ ॥
इत्युक्त्वा स महादेवो विसृज्य सकलान् सुरान् ।
पार्वतीमभिसमन्त्र्य शौचार्थं गतवास्तदा ॥ ७४ ॥
पार्वती वचन श्रुत्वा देवानामप्रिय सती ।
चुकोप त्रिदशौघाय पुत्राशापरिवर्जिता ॥ ७५ ॥
मन्युना दह्यमानेव स्फुरदोष्ठाधरा तदा ।
इदमाह सुरान् दृष्ट्वा हर च त्यक्तमैथुनम् ॥ ७६ ॥

देव्युवाच

यस्माद्वियोजित शम्भुर्युष्माभिर्मम मैथुने ।
अजातपुत्रा च कृता वारस्त्रीवाहमर्दिता ॥ ७७ ॥
तस्मात् सर्वे सुरगणा अद्यावधि निरन्तरम् ।
महामैथुनविभ्रष्टा भवन्तु निजयोषिति ॥ ७८ ॥
तेषामपि तथा पुत्रा न जनिष्यन्ति मे यथा ।
भार्याश्च सन्त्वपत्येन हीना देव्यो वराङ्गना. ॥ ७९ ॥
यथाह परितप्यामि पुत्राशापरिवर्जिता ।
तथा सन्तु समस्तास्ता देव्य पुत्राशया च्युता. ॥ ८० ॥

और्व्य उवाच

एव सुरान् गिरिसुता शशाप कुपिता भृशम् ।
तत्कालावधि न स्वर्गे जायन्ते देवपुत्रका. ॥ ८१ ॥
नाद्यापि सम्प्रजायन्ते पुत्रास्तासु सुधाशिनाम् ।
दहनोऽपि तथा काले प्राप्ते गगोदरे स्वयम् ।
रेत: सक्रामयामास शाम्भव स्वर्णसन्निभम् ॥ ८२ ॥
सा तेन रेतसा देवी सर्वलक्षणसयुतम् ।

एक स्कन्दो विशाखाख्यो द्वितीयश्चारुरूपधृक् ।
शक्तिद्वयधरौ द्वौ तौ तेज कान्तिविवर्द्धितौ ॥ ८३ ॥
तावेकत्व जगामाशु विशाख स्कन्द एव च ।
शिशुश्चाप्यभवद् यातो यथान्यस्य सुतस्तथा ॥ ८४ ॥
ततस्त तनय जात तथा दृष्ट्वातिविस्मिता ।
मध्ये शरवणस्याशु गगा त व्यसृजद्धठात् ॥ ८५ ॥
विसृज्य गर्भ त गगा बहुलायै स्वय तदा ।
गर्भवृत्तान्तमाचख्यौ जात च व्यसृजद् यथा ॥ ८६ ॥
तच्छ्रुत्वा बहुला ज्ञात्वा महादेवतनूद्भवम् ।
परिगृह्य सुत त तु पालयामास कृत्तिका ॥ ८७ ॥
उमाया शकरस्यापि विज्ञाप्यानुमते तयो ।
ततो नीत्वा ददौ देव्यै त पुत्रमरिमर्दनम् ॥ ८८ ॥
सोऽतिवृद्धः शक्तिधरो महाबलपराक्रम ।
वर्द्धित शकरेणाशु देवसेनाधिपोऽभवत् ॥ ८९ ॥
तत सुरारि सगण तारक लोकतारकम् ।
शक्तिहस्तो हरसुत प्रममाथ महाबलम् ॥ ९० ॥
एवमग्नौ समुत्सृष्ट तेजो भर्गेण सङ्गतम् ।
यथा वृत्त तथा तेऽद्य कथित नृपसत्तम ॥ ९१ ॥
साम्प्रत प्रस्तुतं श्राव्य महाकालस्य भृङ्गिण ।
वृत्तान्त शृणु राजेन्द्र तौ भूतौ मनुजौ यथा ॥ ९२ ॥

इति श्रीकालिकापुराणे षट्चत्वारिंशोऽध्याय ॥ ४६ ॥

सप्तचत्वारिंशोऽध्यायः

औम्य उवाच

हरो यावद् जगत्यर्थे देववर्गं प्रसादितः ।
तावन्महामैथुनेन[1] हीनोऽभूदुमया सह ॥ १ ॥
वर्तते रतिमात्रेण स्वेच्छां सम्पूरयन् सदा ।
यथा[2] मनोरथं देव्या सततं पूरयन्मृड ॥ २ ॥
अथैकदोमया सार्धं निगूढं रतिमन्दिरे ।
नर्माकरोन्महादेवो मोदयुक्तो रतिप्रिय ॥ ३ ॥
यदा सा नर्मणे याता गौरी स्मरहरान्तिकम् ।
तदा भृङ्गिमहाकालौ द्वास्थौ द्वारि प्रतिष्ठितौ ॥ ४ ॥
नर्मावसाने सा देवी मुक्तधम्मिल्लबन्धना ।
बन्धहीन[3] गलद्गात्राद्वस्त्रमालम्ब्य पाणिना ॥ ५ ॥
व्यस्तहारा [4]गन्धपुष्पैराकुलैर्नातिशोभना ।
विलुप्तकुङ्कुमा दष्टदशनच्छदविभ्रमा ॥ ६ ॥
निःसृता रतिसकेलिनिलयाब्जलजानना ।
ईषदाघूर्णनयना निचिता[6] स्वेदबिन्दुभि ॥ ७ ॥
तां निःसरन्तीं सदनात् तथाभूतामनिन्दिताम् ।
अयोग्यां वीक्षितुञ्चान्यैर्वृषध्वजमृते पतिम्[7] ॥ ८ ॥
ददर्शतुर्महात्मानौ नातिहृष्टात्ममानसौ ।
भृङ्गी चापि महाकाल प्राप्तकाल चुकोपतु ॥ ९ ॥
दृष्ट्वा तां मातरं दीनौ तथाभूतावधोमुखौ ।
चिन्तां च जग्मतुस्तीव्रां निशश्वसतुरुत्तमौ ॥ १० ॥
तौ पश्यन्तौ तदा देवी ददर्श हिमवत्सुता ।
चुकोप च तदापर्णा वाक्यं चैतदुवाच ह ॥ ११ ॥
एवं भूतां च मां कस्मादसम्बद्धावपश्यताम् ।
भवन्तौ तनयौ शुद्धौ ह्रीमर्यादाविवर्जितौ ॥ १२ ॥
यस्मादिमाममर्यादां भवन्तौ निरपत्रपौ ।

---

१. मैथुनेषु । २. तथा । ३. अथ ' ।
४. कामपत्रै ' । ५. केलिमायाब्ज '' । ६. विचित्रा ।
७. प्रियम् ।

अकुर्वतां ततो भूयाद् भवतोर्जन्म मानुषे ॥ १३ ॥
मानुषीं योनिमासाद्य मद्वेक्षणदोषतः[1] ।
भविष्यन्तौ भवन्तौ तु शाखामृगमुखौ भुवि ॥ १४ ॥
इति तावुमया शप्तौ हरपुत्रौ महामती ।
भृङ्गी चैव महाकालः स्वमातुरन्तिकं तदा ॥ १५ ॥
तौ प्राप्तदुःखौ तु तदा दुर्मनस्कौ हरात्मजौ ।
शापं तस्या न सेहाते प्रोचतुश्चेदमद्रिजाम् ॥ १६ ॥
अनागसौ सदैवावां भवत्या हिमवत्सुते ।
कथं शप्तौ त्वया मातर्हठादेव प्रकोपया ॥ १७ ॥
नियोजितौ यथा द्वारि महेशेन त्वया सह ।
तथा नियोगं कुर्वन्तौ तिष्ठावो द्वारि संयतौ ॥ १८ ॥
हठान्निःसरणं गेहात् तवैव न हि युज्यते ।
आगच्छन्त्या भवत्या तु दृष्टावावां सुसंयतौ ॥ १९ ॥
तस्मान्निरर्थकं कोपं को दोषस्तत्र चावयोः ।
तस्मात् तत्र प्रतीकारं शृणु मातरनिन्दिते ॥ २० ॥
त्वं मानुषी क्षितौ भूया हरो भवतु मानुषः ।
मानुषस्य हरस्याथ जायाया हरतेजसा ॥ २१ ॥
भवत्याश्चापि मानुष्या भविष्यावस्तथोदरे ।
यदि सत्यं हरसुतावावां यदि निरागसौ ॥ २२ ॥
तदावयोरिदं वाक्यं सत्यमस्तु गिरेः सुते ।
इत्यन्योन्यमथो शापं दत्त्वा दत्त्वा सुदारुणम् ॥ २३ ॥
[2]विविशुर्नृपशार्दूल गौरी हरसुतौ च तौ ।
अथ काले व्यतीते तु सर्वज्ञो वृषभध्वजः ॥ २४ ॥
तद्भावि कर्म ज्ञात्वैव मानुषो ह्यभवत् स्वयम् ।
ब्रह्मणो दक्षिणाङ्गुष्ठाद् दक्षो ब्रह्मसुतोऽभवत् ॥ २५ ॥
अदितिस्तत्सुता जाता ततः पुषाह्वयोऽभवत् ।
पुषपुत्रोऽभवत् पौष्यः सर्वशास्त्रार्थपारगः ॥ २६ ॥
यस्य तुल्यो नृपो भूमौ न भूतो न भविष्यति ।
स पुत्रहीनो राजाभूत् पौष्यो नृपतिसत्तम ॥ २७ ॥
शेषे वयसि संप्राप्ते भार्याभिस्तिसृभिः सह ।
पौष्यः परमया भक्त्या ब्रह्माणं पर्यतोषयत् ॥ २८ ॥
तस्य प्रसन्नो भगवान् ब्रह्मा लोकपितामहः ।

---

१ मात्रवेक्षण । २ विनेशु ।

तमुवाच च राजान किमिच्छसि वदस्व मे ॥ २९ ॥
प्रसन्नोऽस्मि नृपश्रेष्ठ प्रदास्यामि यथेप्सितम् ।
यदिष्ट तव जायाना तद्वदिष्यसि साम्प्रतम् ॥ ३० ॥

पौष्य उवाच

हिरण्यगर्भापुत्रोऽह पुत्रार्थी त्वामुपारमहे ।
त्वयि प्रसन्ने पुत्रो मे भूयाल्लक्षणसयुत ॥ ३१ ॥
एतदर्थं सभार्योऽह भक्त्या त्वा समुपस्थित ।
यथा मे जायते पुत्रस्तथा कुरु जगत्पते ॥ ३२ ॥
पुन्नाम्नो नरकात् पुत्रस्त्रायते पितर प्रसूम् ।
अतस्तस्माद् भय ब्रह्मस्त्व नाशयितुमर्हसि ॥ ३३ ॥

ब्रह्मोवाच

शृणु पौष्य यथा भावी पुत्रस्तव कुलोद्वह· ।
तदह ते वदाम्यद्य भार्याभिस्तत् समाचार ॥ ३४ ॥
इद फल गृहाण त्व मया दत्त नृपोत्तम ।
अजीर्ण बहुले काले प्राप्तेऽपि सुरस सदा[1] ॥ ३५ ॥
फलमेतत् समादाय तावत् सवत्सरत्रयम्[2] ।
आराधय महादेव स प्रसन्नो भविष्यति ॥ ३६ ॥
यथा सम्भाषते भर्ग फलमेतत् तथा भवान् ।
करिष्यति फल राजन् भार्याभिस्तिसृभि सह ॥ ३७ ॥
ततस्ते लक्षणोपेतस्तनय कुलवर्धन ।
भविष्यति स्वय शास्ता चक्रवर्ती वसुन्धराम् ॥ ३८ ॥
इत्युक्त्वा प्रययौ ब्रह्मा राजापि सह भीरुभि ।
हर यष्टु समारेभे भक्त्या परमया युत ॥ ३९ ॥
निराशी· सयताहार कदाचित् फलभोजन ।
दृषद्वतीनदीतीरे फल सस्थाप्य चाग्रत ॥ ४० ॥
पुष्पार्घदीपधूपैश्च[3] वृषभध्वजमतर्पयत् ।
स तु वर्षद्वयेऽतीते महादेवो जगत्पति ॥ ४१ ॥
पौष्यस्य नृपते सम्यक् प्रससादार्थसिद्धये ।
प्रसन्न· प्राह नृपति महादेवो हसन्निव ।
उपाससे किमर्थं मा तन्मे वद ददामि ते ॥ ४२ ॥

१· सुरससदि । २· द्वयम् ।
३ धूपदीपार्घै· ।

पौष्य उवाच

अपुत्रोऽह पुत्रकामस्तच्छृणुष्व[1] वृषध्वज ।
यथाह पुत्रवान् वै स्या वृषध्वज तथा कुरु ॥ ४३ ॥❀
इति स न्यगदद्राजा भार्याभि सह हर्षित ।❀
प्रणम्य स्तुतिपूर्वेण भक्तिनम्रात्ममानस ॥ ४४ ॥
तत पुत्रार्थिन भूप प्रसन्नो वृषभध्वज ।❀
ब्रह्मदत्त फल हस्ते कृत्वेद तमुवाच ह ॥ ४५ ॥

ईश्वर उवाच

इद फल ब्रह्मदत्त विभज्य नृपते त्रिधा ।
भोजयेथा[2] स्वजायास्त्व प्रहृष्ट सुस्थमानस ॥ ४६ ॥
तत प्रवृत्ते भवत एतासु ऋतुसगमे ।
आधास्यन्ति तु गर्भास्तु भार्यास्ते युगपन्नृप ॥ ४७ ॥
कालप्राप्ते च युगपत् प्रसवो योषिता तव ।
भविष्यति नृपश्रेष्ठ तत्रेत्थ त्व करिष्यसि ॥ ४८ ॥
एकस्या जठरे शीर्षभागस्ते सम्भविष्यति ।
अपरस्यास्तदा कुक्षेर्मध्यभागो भविष्यति ॥ ४९ ॥
अधो नाभ्यास्तु यो भाग सोऽपरस्या भविष्यति ।
तच्च खण्डत्रय भूप यथास्थान पृथक् पृथक् ॥ ५० ॥
योजयिष्यसि पश्चात् ते पुत्र एको भविष्यति ।
तस्य शीर्षे चन्द्ररेखा सहजा सम्भविष्यति ॥ ५१ ॥
तेनैव नाम्ना स ख्याति गमिष्यति च भूतले ।
इत्युक्त्वा स महादेवस्तासा गर्भान् स्वय तदा ॥ ५२ ॥
सस्कर्तु जाह्नवीतोयमात्मवासाय वै न्यधात्[3] ।
तत फले स्वय देव प्रविवेश वृषध्वज ॥ ५३ ॥
तत्क्षणात् तत्फल भूत त्रिभाग स्वयमेव हि ।
पौष्यस्तत्फलमादाय मुदित सह भार्यया ॥ ५४ ॥
प्रययौ मन्दिर हृष्टो अनुज्ञाप्य वृषध्वजम् ।
तत समुचिते काले प्राप्ते ताभिस्तु भक्षितम् ॥ ५५ ॥

---

१ पूजयामि ।
❀ मुद्रितपुस्तके अधिक· ।
२. भोजयेत्ता ।
३. ··· आत्मन शिरसो न्यधात् ।

तत्फल नृपशार्दूल गर्भोश्चाप्यायिता शुभा ।
सम्पूर्णे गर्भकाले तु गर्भश्च समजायत ॥ ५६ ॥
खण्डत्रय पृथग्राजस्तथा भर्गेण भाषितम् ।
तच्च खण्डत्रय पौष्यो यथास्थान नियोज्य च ॥ ५७ ॥
एकपिण्ड चकाराशु तत्र पुत्रो व्यजायत ।
तस्य शीर्षे तदा राजन् सहजेन्दुकला शुभा ॥ ५८ ॥
विरराज यथा स्वस्था शरत्काले कला विधो ।
त सर्वलक्षणोपेत पीनोरस्क सुनासिकम् ॥ ५९ ॥
सिहग्रीव विशालाक्ष दीर्घायतभुज तदा ।
दृष्ट्वा पोष्योऽथ भार्याभिस्तिसृभि सह सम्मुदम् ॥ ६० ॥
लेभे दरिद्र सत्कोष प्राप्येव विपुल ततः ।
तस्य नामाकरोद्राजा ब्राह्मणै स्वै पुरोहितै ॥ ६१ ॥
चन्द्रशेखर इत्येव कान्त्या चन्द्रमसः समः ।
ववृधे स महाभाग प्रत्यह चन्द्रवत् सुतः ॥ ६२ ॥
कलाभिरिव तेजस्वी शरदीव निशाकरः ।
एव तिसृणामम्बाना गर्भे जातो यतो हर ॥ ६३ ॥
अतस्त्र्यम्बक[१६]-नामाभूत् प्रथितो लोकवेदयोः ।
स राजपुत्र कौमारीमवस्था प्रापयत् तदा ॥ ६४ ॥
सर्वशास्त्रार्थतत्त्वज्ञो विष्णोस्तुल्यो बभूव ह ।
बले वीर्ये प्रहरणे शास्त्रे शीले च तत्सम ॥ ६५ ॥
नान्योऽभूद् नृपशार्दूल नो वा भूमौ भविष्यति ।
अभिषिच्याथ त राज्ये कुमार बलवत्तरम् ॥ ६६ ॥
दशपञ्चैकवर्षीय सर्वराजगुणैर्युतम् ।
तिसृभि सहभार्याभिर्वन पौष्यो विवेश ह ।
वृद्धोचितक्रिया कर्तु राजा परमधार्मिकः ॥ ६७ ॥
गते पितरि राजा स वनवास महाबलः ॥ ६८ ॥
सर्वा क्षिति वशे चक्रे सामात्यश्चन्द्रशेखर. ।
सार्वभौमो नृपो भूत्वा राजभि परिसेवितः ॥ ६९ ॥
अमरैरिव देवेन्द्रो विजहार श्रिया युत ।
एव पौष्यसुतो भूत्वा त्र्यम्बक पुण्यनिर्वृतः ॥ ७० ॥
ब्रह्मावर्ताह्वये रम्ये करवीराह्वये पुरे ।
दृषद्वतीनदीतीरे राजा भूत्वा मुमोद ह ॥ ७१ ॥

---

१६ सुत. ।

अथैकदा स पितर वनवासगत स्वयम् ।
मातृश्चापि नृपश्रेष्ठ द्रष्टुकामोऽभवन्नृप ॥ ७२ ॥
स एकस्यन्दनेनैव एकाकी चन्द्रशेखर ।
विपुल धनुरादाय समार्गणगण तदा ॥ ७३ ॥
तपोवन पुण्यमय विषयान्ते व्यवस्थितम् ।
आससाद दिदृक्षु स तात वृद्ध समातृकम् ॥ ७४ ॥
स गच्छन् पितुरभ्याश नृपति चन्द्रशेखर ।
ददर्श नमुच नाम तपस्यन्त महामुनिम् ॥ ७५ ॥
कृष्णाजिनोत्तरीयेण सवीत सूर्यसन्निभम् ।
ऊर्ध्वगाभिर्जटाभिश्च सयुत ध्यानिन कृशम् ॥ ७६ ॥
तपसा द्योतिततनु निश्चल कुशाजासनम् ।
त दृष्ट्वा दूरतो वीरो रथोपस्थादवातरत् ॥ ७७ ॥
उपतस्थे च विप्रेन्द्र विनयानतकन्धर ।
प्रणनाम मुनि त च वाक्यमेतदुदीरयन्[१७] ॥ ७८ ॥
पौष्यस्य तनयो ब्रह्मन् नाम्नाह चन्द्रशेखर ।
प्रणमामि महाभक्त्या भवन्त मुनिसत्तमम् ॥ ७९ ॥
इत्युक्त्वा प्राञ्जलिस्तस्थौ मुनेस्तस्याग्रतो नृप ।
नमुचस्य मुख वीक्ष्य भक्तिनम्रात्ममानसः[१८] ॥ ८० ॥
पूर्वमेव यदा राजा प्राविशत् तपसे वनम् ।
तदैव सह भार्याभिस्त मुनि प्रत्यपूजयत् ॥ ८१ ॥
चिरमाराध्य नमुच पौष्य परमपण्डित ।
प्रसादयामास मुनि पुत्रार्थे सूनृताक्षरै ॥ ८२ ॥
विषयान्ते तप कुर्वन् मुनिश्रेष्ठेह तिष्ठसि ।
एकन्तु प्रार्थये त्वत्तो यदि मा दयसे मुने ॥ ८३ ॥
शिशुर्मे तनयो राजा चन्द्रशेखरसज्ञक ।
सहजेन्दुकलायुक्तो बालभावाच्च चञ्चल. ॥ ८४ ॥
स चेद् भवन्तमासाद्य कदाचिदपराध्यति ।
तदा क्षमिष्यसि मुने मयैतत् प्रार्थित त्वयि ॥ ८५ ॥
पौष्यस्य वचन श्रुत्वा मुनिश्चाङ्गीचकार ह ।
दृष्ट्वा तत्तनय विप्र पौष्यवाक्यमथास्मरत् ॥ ८६ ॥
स्मृत्वाग्रत स्थित नम्र सुचिर चन्द्रशेखरम् ।
इद प्रोवाच स मुनिर्दयावान्नमुचाह्वय ॥ ८७ ॥

१७. उदाहरन् । १८ कन्धरः ।

विनयेनाद्य तुष्टोऽस्मि भवत चन्द्रशेखर ।
वर वरय दास्यामि वाञ्छित मे महत्तरम् ॥ ८८ ॥
तस्य श्रुत्वा ततो वाक्य नृपतिश्चन्द्रशेखर ।
पुन प्रणम्य नमुचमिदमाहातिसूनृतम् ॥ ८६ ॥
कायेन मनसा वाचा यदत्यर्थ द्विजोत्तम[१८] ।
तत्सर्व विषये मेऽस्ति त्वादृशा यस्य दक्षिणा ॥ ६० ॥
मनोगत मे दुष्प्राप वाञ्छनीय न विद्यते ।
तदेव वरणीय मे यद् ददाति स्वय भवान् ॥ ६१ ॥

नमुच उवाच

त्व सप्तदशवर्षाणा[१९] प्राप्ते सवत्सरे परे ।
भविष्यसि नृपश्रेष्ठ वररामापति स्वयम्[२०] ॥ ६२ ॥
यथा गिरिसुता शम्भोर्यथा लक्ष्मीर्गदाभृत ।
यथा सुरेशस्य शची तथा तेऽपि भविष्यति ॥ ६३ ॥
इत्युक्त्वा स मुनिर्भूप नमुचस्तपसा निधि ।
विसर्जयामास तदा स चापि मुदितो ययौ ॥ ६४ ॥
स गत्वा पितर प्राप्य मातृश्च चन्द्रशेखर ।
अपूजयद् यथार्हन्तु तैरप्याश्वासित सुत. ॥ ६५ ॥
अथागतो नृप स्वीया करवीरपुरी प्रति ।
मुदित सचिवै सार्द्ध रेमे देवेन्द्रसन्निभ ॥ ६६ ॥

इति श्रीकालिकापुराणे सप्तचत्वारिंशोऽध्याय ॥ ४७ ॥

---

१८. यदर्थं द्विजसत्तम । १९ °वर्षीयान् । २० सुखी ।

अष्टचत्वारिंशोऽध्यायः

और्व्य उवाच

अवतीर्णे महादेवे पौष्यजायासुखेच्छया ।
मानुषेण प्रमाणेन गते सवत्सरत्रये ॥ १ ॥
गिरिजापि ककुत्स्थस्य राज्ञो भार्यास्वजायत ।
मेनकाया यथापूर्व स्वेच्छया परमेश्वरी ॥ २ ॥
अथार्यावर्तविषये ब्रह्मण्य शूरसत्तम ।
इक्ष्वाकुवशजो राजा ककुत्स्थो नाम धार्मिक ॥ ३ ॥
भोगवत्याह्वयाया तु पुर्यां रिपुनिषूदन ।
सर्वलक्षणसम्पन्नो भूपालगुणसयुत ॥ ४ ॥
तस्य भार्या महाभागा भर्गदेवस्य पुत्रिका ।
सा मनोन्मथिनी नाम्ना पूजिता पतिवल्लभा ॥ ५ ॥
तस्या पुत्रशत यज्ञे देवगर्भाभमच्युतम् ।
बलवीर्यसमायुक्त ककुत्स्थनृपसत्तमात् ॥ ६ ॥
पुत्री न विद्यते तस्यास्तदर्थं सा गृहान्तरे ।
निभृत स्थण्डिल कृत्वा चण्डिका समपूजयत् ॥ ७ ॥
पूज्यमाना महादेवी चण्डिका राजभार्यया ।
प्रसन्ना सा त्रिभिर्वर्षैस्ता स्वप्ने चाब्रवीदिदम् ॥ ८ ॥
योषिल्लक्षणसम्पन्ना[21] सार्वभौमस्य भामिनी ।
नक्षत्रमालया युक्ता पुत्री तव भविष्यति ॥ ९ ॥
सापि स्वप्ने वर प्राप्य मुदिताभून्नृपाङ्गना ॥ १० ॥
पार्वत्यपि स्वय तस्या गर्भे काले विवेश ह ।
सा मनोन्मथिनी देवी प्रवृत्ते ऋतुसगमे ।
गर्भ दधौ महासत्त्व चन्द्रिकेवामृतोत्करम् ॥ ११ ॥
सम्पूर्णे तु तत काले प्राप्ते नक्षत्रमालिनीम् ।
सा मनोन्मथिनी देवी सुषुवे तनया शुभाम् ॥ १२ ॥
ता दृष्ट्वा हारसयुक्ता शरज्ज्योत्स्नोपमा शुभाम् ।
ककुत्स्थो भार्यया सार्द्धमत्यर्थमुदितोऽभवत् ॥ १३ ॥
सहजेनाथ हारेण भूषिता तु[22] ककुत्स्थजा ।

---

२१ [21]संयुक्ता ।   २२ वै ।

ववृधे मन्दिरे तस्य वर्षास्विव सुरापगा ॥ १४ ॥
तेनैव हारचिह्नेन तस्यास्तारावतीति वै ।
नामाकरोत् पिता काले यथोक्ते नृपसत्तम ॥ १५ ॥
कालक्रमेण सा बाल्यं व्यतीता वरवर्णिनी ।
मञ्जुलं यौवनोद्भेदं प्राप श्रीरिव माधवे ॥ १६ ॥
सा श्रिया श्रियमन्वेति शौचेनाथ सती शुभा ।
सुशीला शीलचरितैः स्वरूपेण च पार्वतीम् ॥ १७ ॥
तस्यास्तु यौवनोद्भेदं दृष्ट्वा राजा सुतैः सह ।
ककुत्स्थः कारयामास समयेऽथ स्वयंवरम् ॥ १८ ॥
माधवे मासि सम्प्राप्ते चन्द्रवृद्धौ शुभे दिने ।
स्वयंवरसभां चक्रे तारावत्याः पिता सुतैः ॥ १९ ॥
वार्त्तिकास्तु बहून् राजा वडवाभिः क्रमेलकैः[२३] ।
तूर्णं प्रस्थापयामास नानादेशनृपान् प्रति ॥ २० ॥
ते राजानस्तदा श्रुत्वा वार्तां वै वार्त्तिकाननात् ।
तूर्णमेव समाजग्मुस्तारावत्याः स्वयंवरम् ॥ २१ ॥
तं श्रुत्वा पौष्यतनयश्चतुरङ्गबलैर्युतः ।
स्वयंवरं जगामाशु दिव्यालंकारसंयुतः[२४] ॥ २२ ॥
तत्र गत्वा नृपश्रेष्ठाः ककुत्स्थेन विनिर्मिते ।
स्वयंवरसभामध्ये यथायोग्यमुपस्थिताः ॥ २३ ॥
आसीनेष्वथ भूपेषु ककुत्स्थस्तनयां स्वकाम् ।
शुभे मुहूर्ते सम्प्राप्ते सभां नेतुं मनोऽकरोत् ॥ २४ ॥
एतस्मिन्नन्तरे राज्ञः कुमारी वरवर्णिनी ।
वृद्धां धात्रीं निजां सम्यक्सम्पूर्णज्ञानशालिनीम् ॥ २५ ॥
स्वयंवरसभां द्रष्टुं प्राहिणोत् सदसं प्रति ।
उवाच च तदा धात्रीं राजपुत्री सुमंगलाम्[२५] ॥ २६ ॥
स्वयंवरसभां गत्वा चारुरूपं सुलक्षणम् ।
नृपं निरूप्य भो धात्रि समक्षं मे निवेदय ॥ २७ ॥
त्वं मातर्मम कल्याणं सौभाग्यमपि वाञ्छसि ।
यथा सौभाग्यदः स्वामी मम स्यात् त्वं तथा कुरु ॥ २८ ॥
एवं तां प्रेषयित्वाथ धात्रीं तां नृपपुत्रिका ।
सा मनोन्मथिनी यत्र प्राराधयत चण्डिकाम् ॥ २९ ॥
तत्र प्रायान्महाभागा शुभा तारावती तदा ।

---

२३ वडवाभिक्रमेण वै । २४ मण्डितः । २५ सुमंगला ।

तत्र गत्वा महादेवी प्रणम्य कालिकाह्वयाम् ॥ ३० ॥
मानुषेणाथ भावेन ता ज्ञात्वात्मानमात्मना ।
प्रणनाम महाशक्त्या वाक्य चैतदुवाच ह ॥ ३१ ॥
प्रणमामि महामाया योगनिद्रा जगन्मयीम् ।
सा मे प्रसीदता गौरी चण्डिका भक्तवत्सला ॥ ३२ ॥
यदि सत्य जनन्या मे मदर्थे त्व प्रपूजिता ।
तेन सत्येन सुभग पतिर्मम नृपोत्तम ॥ ३३ ॥
स्वयवरेऽद्य भवतु प्रसीद हरवल्लभे ।
इति तस्या वच श्रुत्वा चण्डिका हरमोहिनी ॥ ३४ ॥
मोहयन्ती नृपसुता यथात्मान न वेत्ति च ।
तथा प्राहादृश्यमूर्तिरिद सा सूनृत वच ॥ ३५ ॥

देव्युवाच

पौष्यस्य तनयो योऽसौ नाम्नाभूच्चन्द्रशेखर ।
स मनोहररूपस्ते प्रिय स्वामी भविष्यति ॥ ३६ ॥
तमिन्दुकलया शीर्षे चिह्नितं नृपसत्तमम् ।
वरयस्व वरारोहे पार्वतीव वृषध्वजम् ॥ ३७ ॥
इत्युक्त्वा विररामाशु पार्वती नृपपुत्रिकाम् ।
सापि नत्वा तथादृश्या हर्षोत्फुल्लविलोचना ॥ ३८ ॥
जगाम मङ्गलगृह जनन्या यत्र वासिता ।
अथाजगाम सा धात्री निरूप्य सदृश पतिम् ॥ ३९ ॥
तारावत्यास्तदाचष्ट रहस्य नृपसत्तम ।
दृष्ट्वा तामग्रतो धात्री प्रहृष्टा नृपते सुता ॥ ४० ॥
पप्रच्छ निभृतं कीदृक् को वा दृष्टस्त्वया नृप. ।
सा प्राह धात्री वचनात् तव भूपा विलोकिता. ॥ ४१ ॥
चारुरूपा· कुलीनाश्च शास्त्रे शस्त्रे च पारगा ।
तेषामह न शक्नोमि प्रवक्तु सुबहून् गुणान् ॥ ४२ ॥
येषु मे रोचते तांस्तु कथयामि शुभप्रभे ।
चारुरूपा मया तेषु चत्वार पुरुषा. शुभे ॥ ४३ ॥
दृष्टास्तत्रापि नासत्यौ देवौ द्वावपरौ नरौ ।
देवयो कथने कृत्य किंचिन्नापि न विद्यते ॥ ४४ ॥
यौ पुन' पृथिवीपालौ तयोरेक. सदारकः[२६] ।
नाम्ना सर्वांगकल्याणोऽथापरश्चन्द्रशेखर. ॥ ४५ ॥

२६. सुलक्षण ।

नासत्ययोरेतयोस्तु विशेषो नास्ति कश्चन।
रूपे शरीरसौभाग्ये सर्वे चातिमनोहरा ॥ ४६ ॥
नृपौ पुनमहासत्त्वौ सिंहस्कन्धौ महाभुजौ।
आरक्तपाणिनयनमुखपादकरोद्भवौ[२७] ॥ ४७ ॥
पीनोरस्कौ विशालाक्षौ लग्नभ्रूयुगलावुभौ।
सर्वलक्षणसम्पूर्णौ देवालङ्कारमण्डितौ ॥ ४८ ॥
तयोरपि वय स्थत्वात् प्रशस्तश्चन्द्रशेखर।
सुशील सूनृतवचाः शास्त्रे शस्त्रे च सम्मत ॥ ४९ ॥
ईषदुद्भिन्नरोम्णा तु नीलेन चारु निर्मलम्।
राजते वदन तस्य लक्ष्मणेव निशाकर ॥ ५० ॥
दीप्तिमत्यापि कलया राजते स निशापते।
सहजेन शिरस्थेन साक्षात् स चन्द्रशेखर ॥ ५१ ॥
स एव ते पतिर्योग्यश्चिह्नेनानेन सुन्दरि।
त त्व वरय राजान तव योग्य शुभोदयम् ॥ ५२ ॥
धात्र्याश्चैव वच. श्रुत्वा राजपुत्री जगाद ताम्।
मत्पार्श्वचारिणी भूत्वा निदेशय नृपोत्तमम् ॥ ५३ ॥
धात्रि स्वयवरसभाप्रवेशसमये मम।
तयोरायात्तदा राजा त्वन्योन्य भाषमाणयो ॥ ५४ ॥
सुता स्वयवरसभा नेतु काले शुभोदये।
स्वय तदा ककुत्स्थस्तु सुताया मङ्गलालये ॥ ५५ ॥
आसाद्य पुत्रीं दयिता योषिद्भि कृतमङ्गलाम्।
माल्य सुगन्धिपुष्पाणा करणादाय तत्करे ॥ ५६ ॥
दत्त्वा चेदमुवाचाशु प्रापयन् मगलालयात्।
प्रविश्य समितौ मातुर्माल्येनान्येन सत्तमम् ॥ ५७ ॥
य त्वमिच्छसि राजान द्विज वा त्व वरिष्यसि।
एवमुक्त्वा शिविकया स्वाप्तैर्वृद्धैश्च पूरुषै ॥ ५८ ॥
प्रवेशयामास सुता ककुत्स्थ समिति मुदा।
तामागता सभा दृष्ट्वा शक्राद्यास्त्रिदशास्तदा ॥ ५९ ॥
अन्ये दिक्पतयश्चापि सभा तत्क्षणमागता।
सावतीर्य तदावाप्य यानात् तारावती मुदा[२८] ॥ ६० ॥
धात्र्या चानुगया युक्ता व्यचरत् सदसोऽन्तरे।
सभामध्ये चिरं सा तु विहृत्य वरवर्णिनी ॥ ६१ ॥
भावित्वान्नियतेर्योगाच्चण्डिकाया प्रसादत।

---

२७ रागकरौ भुजौ। २८. तदा।

तयो समत्वादेकत्वात्तया धात्र्या विबोधिता ॥ ६२ ॥
गतिस्वेदजघर्माम्भ कणिकानिचितानना ।
पति पूर्वतर पुत्री राज्ञस्तारावती सती ॥ ६३ ॥
स्वय सा पार्वती देवी वव्रे च चन्द्रशेखरम् ।
वृत दृष्ट्वा तदा तन्तु ब्राह्मणा सामगीतिभि ॥ ६४ ॥
तयोर्वैवाहिकश्चक्रुर्मङ्गल यतमानसा ।
वैतालिका[29] गायकाश्च तथा तौर्यत्रिका नृप ॥ ६५ ॥
प्रशसन्ति स्म गायन्ति वादयन्ति च कौतुकात् ।
सर्वे च त्रिदशा मोदमवापुश्चन्द्रशेखरे ॥ ६६ ॥
तारावत्या वृते चाथ ककुत्स्थोऽप्यतिहर्षित ।
वृत्तान्तं वीक्ष्य ये भूपा सुबाहुप्रमुखा परे ॥ ६७ ॥
रुष्टास्तान् वारयामास समितौ चन्द्रशेखर ।
ततो यातेषु देवेषु त्रिदिव प्रति स्वेच्छया ॥ ६८ ॥
भूपेषु च प्रयातेषु ककुत्स्थेनार्चितेषु च ।
वैवाहिकेन विधिना स राजा चन्द्रशेखर ॥ ६९ ॥
तारावती तदा भार्या ककुत्स्थानुमते पुन ।
सस्कृत्य ज्ञापयामास देवेभ्यो वैदिकैर्मखै ॥ ७० ॥
पाणिग्रहणसस्कारान्[30] कृत्वा ता सहचारिणीम् ।
करवीरपुरायाशु प्रययौ चन्द्रशेखर ॥ ७१ ॥
द्वाविंशत् तु सहस्राणि दासीना प्रददौ पुन ।
ककुत्स्थाख्यो विट्पतये तस्मिन्नुद्वाहकर्मणि ॥ ७२ ॥
गवा षष्टिसहस्राणि सौरभीणा तथैव च ।
दुहित्रे प्रददौ दाय दासान् दासी प्रमाणत ॥ ७३ ॥
अपरा या निजा[31] पुत्री ककुत्स्थाख्यस्य भूपते ।
नाम्ना चित्राङ्गदा ख्याता रूपैस्तारावती समा ॥ ७४ ॥
दासीनामधिपा भूत्वा स्वय चानुययौ तदा ।
तारावती भूपसुता ज्येष्ठा स्वा भगिनी शुभाम् ॥ ७५ ॥
तान् दासान् सुसमादाय ककुत्स्थतनयो महान् ।
ज्येष्ठो विश्वावसुर्नाम गच्छन्त चन्द्रशेखरम् ॥ ७६ ॥
तारावत्या च सहित स्यन्दनेनाशुगामिना ।
धीमाननुययौ पश्चात् करवीरपुर प्रति ॥ ७७ ॥

---

२९. विज्ञानिका ।
३० 'सम्भार' । ३१. योनिजा ।

तारावत्या सम राजा पौष्यजश्चन्द्रशेखर ।
करवीरपुरे रम्ये रेमे नृपतिशेखर ॥ ७८ ॥
इति स्वय महादेवो मानुषी योनिमाश्रित [32] ।
पार्वती च स्वय जाता नरयोनिमनिन्दिता ॥ ७९ ॥
तथा भृङ्गी महाकाल एतयोरभवत् सुत ।
तथा त्व शृणु राजेन्द्र कथयामि समुद्भवम् ॥ ८० ॥

इति श्रीकालिकापुराणेऽष्टचत्वारिंशोऽध्याय ॥ ४८ ॥

---

३२. योनिमितवान् ।

एकोनपञ्चाशोऽध्यायः

मार्कण्डेय उवाच

अथ काले व्यतीते तु ककुत्स्थतनया सती ।
विधातुमार्तवं स्नानं योषिद्भिः परिवारिता ॥ १ ॥
शीतामलजलां हृद्यां नदीं प्राप्ता दृषद्वतीम् ।
प्रभिन्नाञ्जनसङ्काशां कलुषध्वंसकोविदाम् ॥ २ ॥
कृतस्नानामनुत्तीर्णामर्धमग्नां महासतीम् ।
ददृशे स्वर्णगौराङ्गीं कपोतो मुनिसत्तम ॥ ३ ॥
कापोतं वपुरास्थाय प्राणिनां वधशङ्कया ।
विचचार यतः पूर्वं कपोतस्तेन स स्मृतः ॥ ४ ॥
तां दृष्ट्वा हेमगर्भाभां चन्द्रिकां शारदीमिव ।
कपोतः कामयामास कामबाणार्दितो भृशम् ॥ ५ ॥
कामाग्निपरितप्तः स ककुत्स्थतनयां मुनिः ।
अभिगम्याथ कल्याणीमिदं वचनमब्रवीत् ॥ ६ ॥
का त्वं कस्यासि वनिता पुत्री वा कस्य सुन्दरि ।
कस्मात् समागता वा त्वमुपाप्तुं तटिनीजलम् ॥ ७ ॥
रूपं ते सौम्यमाह्लादि पूर्णचन्द्रनिभं मुखम् ।
तिलपुष्पप्रतीकाशं नासिकायुगलं तव ॥ ८ ॥
वातकम्पितनीलाब्जसदृशे लोचने तव ।
बाहू मनोहरौ वृत्तौ मृणालमृदुलायतौ ।
ऊरू गजकरप्रख्यौ मध्यं वेदिविलग्नकम् ॥ ९ ॥
ईदृशेन तु रूपेण न त्वं मानुषभामिनी[33] ।
देवी वा दानवी वा त्वमप्सरोगुणशालिनी[34] ॥ १० ॥
अथवा भोग्यभोगाय श्रीस्त्वं नारीत्वमागता ।
अपर्णा वा शची वा त्वं तन्मे वद मनोहरे ॥ ११ ॥

और्व्य उवाच

इति वाक्यं मुनेः श्रुत्वा जलादुत्तीर्य भामिनी ।
प्रणम्य तं मुनिं नम्रा वचनं चेदमब्रवीत् ॥ १२ ॥
अहं तारावती नाम्ना ककुत्स्थस्य सुता सती ।

---

३३. कामिनी । ३४ त्वमप्सरोगणकामिनी ।

चन्द्रशेखरभूपस्य भार्यां जानीहि मा मुने ॥ १३ ॥
नाह देवी न गन्धर्वी न यक्षी न च राक्षसी।
मानुष्यह नृपसुता चारित्रव्रतधारिणी ॥ १४ ॥

कपोत उवाच

त्वा दृष्ट्वा मा स्वय काम सङ्गत सगमाय ते।
पीडितश्चाति तेनाह त्वया शक्त्या समक्षया ॥ १५ ॥
स्मरसागरकल्लोलपतित मा निराकुलम्।
त्वदूरुतरिणा त्राहि तूर्ण त्व मृदुभाषिणी[३५] ॥ १६ ॥
मत्त पुत्रद्वय चारु रूपलक्षणसयुतम्।
भविष्यति महाभागे बलवीर्ययुत महत् ॥ १७ ॥
कपोतस्य वच श्रुत्वा भयदुःखसमाकुला।
जगाद गद्गद वाक्य वाग्मिन्यथ ककुत्स्थजा ॥ १८ ॥

तारावत्युवाच

वाक्यमन्यन्मया[३६] कार्य न कार्यमतिनिन्दितम्।
तस्मान्मा वद मामित्थ प्रणम्य त्वा प्रसादये ॥ १९ ॥
तवापि नैतद् योग्य स्यान्मुनेरिह तपोधन।
तपःक्षयकर गर्ह्य सतीत्वभ्रशक मम ॥ २० ॥

कपोत उवाच

तपोऽव्ययो वा चान्यद्वा दूषण तन्ममास्त्विह।
तथापि त्वामह त्यक्तुं नेच्छामि सुरतौ शुभे ॥ २१ ॥
अवश्य मम कामेभ्यस्त्राण कर्तुमिहार्हसि।
अन्यथा कामदग्धोऽह त्वया त्यक्तो मनोहरे ॥ २२ ॥
भवती च करिष्यामि शापदग्धा सबान्धवाम्।
ततस्तद्वचन[३७] श्रुत्वा देवी तारावती तदा।
ऋषिशापभयात् साध्वी न किंचिद्वोत्तर ददौ ॥ २३ ॥
सम्भाषयेऽह स्वसखीरिह तिष्ठ महामुने ॥ २४ ॥
एवमुक्त्वा तदा देवी दासीना मध्यमागता।
चित्राङ्गदा समाहूय वचन चेदमब्रवीत् ॥ २५ ॥
चित्रांगदे मुनिरसौ मा वै कामयते भृशम्।
कि करिष्ये सतीभावान्न भ्रष्टा स्यामह कथम् ॥ २६ ॥

---

३५ भाषिणि। ३६. साधुपरथा मया।
३७ तत्तस्य।

पतिं बन्धूंश्च कपोत सद्य शापाग्निना दहेत् ।
नाहं मुनिं कामये चेत् सशये पतिता त्वहम् ॥ २७ ॥
ततश्चित्रागदा प्राह मा भैस्त्व सत्यभाषिणि ।
तत्रोपायमह वक्ष्ये यत्कृत्वा त्व प्रमोदयसे ॥ २८ ॥
न जहाति मुनिश्चेत्त्वा दासीमेका मनोहराम् ।
सुभूषणैर्भूषयित्वा मुनये त्व नियोजय ॥ २९ ॥
कामातुरो मुनिर्मोहात् कृपणो ज्ञास्यते न हि ।
दासी त्वद्भूषणाच्छन्ना ज्योत्स्नाच्छन्ना मृगीमिव ॥ ३० ॥
एव कुरु महाभागे मा त्व चिन्ता गम शुभे ।
त्वं चेत् सतीति नियत न ज्ञास्यति तदा मुनि ॥ ३१ ॥
ततस्तारावती प्राह ता रूपगुणशालिनीम् ।
चित्राङ्गदा भूपपुत्री शश्वद्विनयसूनृताम् ॥ ३२ ॥
त्वमेव गच्छ भगिनी कपोताख्यमनिन्दिते ।
मद्भूषणैर्भूषयित्वा स्वशरीर मनस्विनि ॥ ३३ ॥
अन्यां प्रस्थापिता विप्र सम्बध्य क्रोधवह्निना ।
धक्ष्यत्यवश्य सकुला मा तस्माद् गच्छ सुन्दरि ॥ ३४ ॥
त्वं मत्समा सर्वगुणै सर्वभूषणभूषिता ।
मुनि सगमयस्वाद्य रक्ष मा सकुला शुभे ॥ ३५ ॥
ततस्तस्या वच श्रुत्वा विनय च सकातरम् ।
तूष्णी भूत्वा क्षण तस्थौ नातिहृष्टमना इव ॥ ३६ ॥
जगाद च महाभागां चित्रागदा ककुत्स्थजाम् ।
करिष्ये वचन तेऽद्य समये मा स्मरिष्यसि ॥ ३७ ॥
यदर्थे पितर चेम भूप च चन्द्रशेखरम् ।
आश्वासयिष्यति तथा समस्ता च सखीगणान् ॥ ३८ ॥
एवमुक्त्वा भूषणानि तारावत्या पिधाय सा ।
चित्राङ्गदा जगामाशु मुने कामोत्सवाय च ॥ ३९ ॥
तारावती तदा दीना वस्त्रालकारवर्जिता ।
दासीमध्यगता भूत्वा तामेवानुययौ प्रियाम् ॥ ४० ॥
तामायान्ती ततो दृष्ट्वा कपोत. काममोहित ।
मुनीना परजायासु सस्मार सगमं तदा ॥ ४१ ॥
प्रम्लोचा कामिता पूर्वं वतण्डस्य सुतेन वै ।
यथा वा कामिता पद्मा भरद्वाजेन धीमता ॥ ४२ ॥
तथाहं कामयिष्यामि साम्प्रत वरवर्णिनीम् ।
पश्चात् तपोबलात् तद्वज्जायापापाद् विमोक्ष्ये ॥ ४३ ॥

इति चिन्तयतस्तस्य तदा चित्रागदा शुभा ।
समेत्य त मुनि लज्जायुक्ता[38] चैषाद्द किचन[39] ॥ ४४ ॥
तामासाद्य महाभाग: कपोतो मुनिसत्तम ।
श्रृगारवेषभावाय मदन मनसास्मरत् ॥ ४५ ॥
स्मृतमात्रोऽथ मदन स्वयमेत्य महामुनिम् ।
गन्धमाल्यै सुवासोभिरध्युवासातिहर्षित: ॥ ४६ ॥
तेनाधिवासितो विप्र कपोतश्चारुरूपधृक् ।
जज्वाल तेजसा चापि द्वितीय इव भास्कर. ॥ ४७ ॥
मनोहर तथा दृष्ट्वा कपोत मदनोपमम् ।
तारावतीमृते सर्वा सकामाश्चाभवन् स्त्रिय ॥ ४८ ॥
तारावती मुनि दृष्ट्वा सुन्दर मदनोपमम् ।
विस्मय परम प्राप्ता[40] मुनि कामममन्यत ॥ ४९ ॥
अथ चित्रागदा विप्र कामुक कामसगमे ।
तदा नियोजयामास सुप्रीतश्चाभवत् क्षणात् ॥ ५० ॥
ततस्तस्या समुत्पन्नं सद्योजात सुतद्वयम् ।
देवगर्भोपम दीप्तज्वलनार्कसमप्रभम् ॥ ५१ ॥
जाते सुतद्वये ता तु मुनि ससृज्य पाणिना ।
निनाय पूर्ववद्भाव वचन चेदमब्रवीत् ॥ ५२ ॥
मत्सगमे कियत्काल प्रिये तिष्ठ शुभानने ।
ममेच्छया यास्यसि त्व भय ते नास्ति राजत ॥ ५३ ॥
एवमस्त्विति सा प्राह ऋषि शापभयात्[41] सती ।
ततो विसर्जयामास मुनिरन्याश्च योषित ॥ ५४ ॥
ततस्तारावती देवी दासीभि परिवारिता ।
भगिनीमनुशोचन्ती जगाम भवन निजम् ॥ ५५ ॥
गत्वा त सर्ववृत्तान्त कपोतकृतमद्भुतम् ।
ब्रह्मावर्ताधिपायाशु शशसाथ ककुत्स्थजा ॥ ५६ ॥
स श्रुत्वा नृपशार्दूल क्षणमात्र विचिन्त्य च ।
चित्रागदाया साहाय्य कपोतानुमतेऽकरोत् ॥ ५७ ॥
कपोतोऽपि तदा तस्या जातयो सुतयोस्तयो ।
यथोक्तेनाथ विधिना सस्कारमकरोत्तदा ॥ ५८ ॥

---

३८ लज्जामुक्ता । ३९ चैषाभवत् तदा ।

४० जाता ।

४१ ऋषिशापभयात् ।

सगर उवाच

चित्राङ्गदा कथं पुत्री ककुत्स्थस्याभवत् तदा ।
तदहं श्रोतुमिच्छामि कथयस्व द्विजोत्तम ॥ ५९ ॥

और्व उवाच

एकदा तु ककुत्स्थोऽसौ हिमवन्तं महागिरिम् ।
मृगयायै जगामाथ मृगाश्चापि निपातिताः ॥ ६० ॥
लम्बन्ती सुरलोकात् तु भूमिं प्रति तदोर्वशीम् ।
विश्रामायोपविष्टस्तु सानौ वेश्यां ददर्श ह ॥ ६१ ॥
तामासाद्य महाराज कामबाणप्रपीडितः ।
अवतीर्णां गिरौ शश्वदङ्गसंगमयाचत ॥ ६२ ॥
सा ज्ञात्वा नृपशार्दूलं ककुत्स्थं शक्रसन्निभम् ।
उर्वशी रमयामास गिरिकुञ्जे यथेप्सितम् ॥ ६३ ॥
ततो राज्ञः ककुत्स्थस्य स्वर्वेश्यायां तदा सुता ।
अभवन् नृपशार्दूलात् सद्योजाता मनोहरा ॥ ६४ ॥
अथ कामेन सन्तुष्टं ककुत्स्थं सा तदोर्वशी ।
अथेष्टदेशं विज्ञाप्य गन्तुमैच्छदनिन्दिता ॥ ६५ ॥
तामाह राजा तनयां परित्यज्य कथं शुभे ।
गन्तुमिच्छसि चार्वङ्गि सुतामेनां तु पालय[४२] ॥ ६६ ॥
सा प्राहाह स्वर्गणिका मयि कस्य न चाभवत् ।
तनयस्तनया वापि सद्योजाता नृपात्मजा[४३] ॥ ६७ ॥
स्वतेजसा शरीरस्य विकारो मे न विद्यते ।
सुताश्चापि न पाल्यन्ते वेश्याभावात् स्वभावतः ॥ ६८ ॥
दयास्ति यदि ते पुत्र्यां नीत्वैनां वर्धय स्वयम् ।
गन्तुं मामनुजानीहि सत्यमेतद् ब्रवीमि ते ॥ ६९ ॥
इत्युक्त्वा सा जगामाशु यथेष्टं सोर्वशी नृप ।
पुत्रीं तां समुपादाय नगरं स्वं विवेश ह ॥ ७० ॥
तस्याश्चित्राङ्गदा नाम स चकार नृपः स्वयम् ।
मनोन्मथिन्यै चादात् तां भार्यायै पुत्रिकां शुभाम् ॥ ७१ ॥
इदं च वचनं देवी तदा प्राह नृपोत्तम ।
देवि पुत्री ममेयं त्वमेनां पालय सद्‌गुणाम् ॥ ७५ ॥
मयानीता शैलजाता मा हेलां कर्तुमर्हसि ।
इत्युक्ता राजपुत्री सा पालने चाकरोन्मतिम् ॥ ७३ ॥

---

४२ यथेष्टं भासि मत्पुत्रीमेनां त्वं प्रतिपालय । ४३. नृपोत्तम ।

भर्तुराज्ञा पुरस्कृत्य नान्यत् किंचिदुवाच ह ।
सा चैकदा बाल्यभावादष्टावक्र महामुनिम् ।। ७४ ।।
व्रजन्त जिह्ममेवाशु जहासोपजहास च ।
स चुकोप मुनिस्तस्यै शाप परमदारुणम् ।। ७५ ।।
ददौ दासी स्ववशस्य भवितेति ककुत्स्थजे ।
दासी भूत्वा स्ववशस्य ह्यनूढैव सुतद्वयम् ।। ७६ ।।
जनयिष्यसि पापिष्ठे ततो भद्रमवाप्स्यसि ।
एव ककुत्स्थतनया जाता चित्रागदा नृप ।। ७७ ।।
दासी च भूता सा ते तारावत्या निवासिता ।
अनूढाप्यलभत् पुत्रयुग्म मुनिवराच्छुभात् ।। ७८ ।।
तौ च पुत्रो महाभागौ महाकार्य करिष्यत ।
इति ते कथित राजन् यथाचित्रागदाऽभवत् ।
ककुत्स्थस्य सुता साध्वी प्रस्तुत शृणु साम्प्रतम् ।। ७९ ।।

इति श्रीकालिकापुराणे एकोनपचाशोऽध्याय. ॥ ४९ ॥

पञ्चाशोऽध्यायः

और्व उवाच

अथ काले व्यतीते तु पुनस्तारावती शुभा ।
आर्तव विहित स्नानं नदी प्राप्ता दृषद्वतीम् ॥ १ ॥
दासीसहस्रै सयुक्ता नानालङ्कारमण्डिता ।
रम्भादिभिर्यथेन्द्राणी तथा सा प्रत्यदृश्यत ॥ २ ॥
सावतीर्णा जले देवी गौराङ्गी तडिदुज्ज्वला ।
नदीमुज्ज्वलयामास भिन्नाञ्जनसमाम्भसम् ॥ ३ ॥
स्थली काचमयी स्वच्छा काचनीप्रतिमा यथा ।
स्वभासा ज्वलयामास प्रतिबिम्बेन सा तथा ॥ ४ ॥
अथ ता पुनरेवाथ कपोतो मुनिसत्तम ।
आनाभिमग्ना तोयौघैर्ददर्श सुमनोहरम् ॥ ५ ॥
दृष्ट्वा तामथ पप्रच्छ तदा चित्रागदा मुनि ।
केय जले दृषद्वत्यामवतीर्णा[४४] सखीशतै ॥ ६ ॥
श्रिया ज्वलन्ती श्रीतुल्या किमपर्णा गिरे सुता ।
अतीव भ्राजते रूपैर्न संस्तौषि च ता किमु ॥ ७ ॥
अथ तस्य वच श्रुत्वा मुनेश्चित्रागदा तदा ।
ऋषिशापभयात् साध्वी सस्तौमीति तदाऽब्रवीत् ॥ ८ ॥
इय तारावती नाम ककुत्स्थस्य सुता[४५] सती ।
चन्द्रशेखरभूपाल भार्याऽतिदयिता शुभा ॥ ९ ॥
एषा त्वया कामिता तु कामार्थ पूर्वतो मुने ।
स्वालकारैरलकृत्य मा दत्त्वा ते गृह गता ॥ १० ॥
सेय पुनर्नदी स्नातु भगिनी मे समागता ।
ज्येष्ठा ता तु मुने वक्तु न ते किंचिच्च युज्यते ॥ ११ ॥
त्वमत्र तिष्ठ विप्रेन्द्र ज्येष्ठा ता भगिनी प्रियाम्[४६] ।
समाभाष्य समेष्ये त्वामनुजानासि चेद् गतौ ॥ १२ ॥
इति श्रुत्वा वचस्तस्या मुनि स्नेहेन वञ्चनाम् ।
तारावत्या कृता पूर्व मुनिस्तस्मै चुकोप ह[४७] ॥ १३ ॥

---

४४ दृषद्वत्या अवतीर्णा । ४५. ककुत्स्थतनया ।
४६ ज्येष्ठा मे भगिनी प्रिया । ४७ चुकोपास्यै मुनिस्तु स. ।

इय पापीयसी रामा वचनामकरोन्मयि ।
तस्या सकालनञ्चाह करिष्याम्यद्य निश्चितम् ॥ १४ ॥
इत्युक्त्वा स तया सार्धं मुनिश्चित्रागदाख्यया ।
जगाम यत्र सा देवी स्थिता तारावती शुभा ॥ १५ ॥
गत्वा ता तु समासाद्य कपोतो मुनिसत्तम ।
इद तारावती प्राह कुपित प्रहसन्निव ॥ १६ ॥
कामार्थं प्रार्थिता पूर्वं त्व मया च्छद्मना त्वया ।
वञ्चितोऽस्मि दुराधर्षे फल तस्य समाप्नुहि ॥ १७ ॥
ममापि पुरत पापे त्व सतीति विकत्थसे ।
सतीत्वभ्रशक मा[48] त्व नैव कामितवत्यसि ॥ १८ ॥
तस्माद् बीभत्सवेषस्त्वा कपाली पलितो रह ।[49]
विरूपो धनहीनश्च कामयिष्यति वै हठात् ॥ १९ ॥
सद्योजात पुत्रयुग सश्रीक वानराननम् ।
भविष्यति च ते पापे त्वेकाब्दाभ्यन्तरेऽधुना ॥ २० ॥
एतच्छ्रुत्वा मुनेर्वाक्य प्राह तारावती मुनिम् ।
कोपाद् भयाच्च सा देवी स्फुरदोष्ठपुटा तदा ॥ २१ ॥
यदि सा पूजयित्वा तु चण्डिका प्राप मा प्रसू ।
यद्यह व्रतिनी नित्य भूपतौ चन्द्रशेखरे ॥ २२ ॥
ककुत्स्थस्य सुता सत्य यद्यह द्विजसत्तम ।
तेन सत्येन मे देवान्नान्यो मा कामयिष्यति ॥ २३ ॥
यदि सत्य महादेवो नित्यमाराध्यते मया ।
तेन सत्येन मे देवादाराध्याच्चन्द्रशेखरात् ॥ २४ ॥
स्वप्नेऽपि मुनिशार्दूल नान्यो मा कामयिष्यति ।
इत्युक्त्वा सा मुनि नत्वा स्वामिविन्यस्तमानसा ॥ २५ ॥
ययौ तारावती देवी स्वस्थानमिति भामिनी ।
तस्या गताया देव्या तु चिन्तयामास ता मुनि ॥ २६ ॥
ममैव पुरतश्चैषा निर्भीतापि प्रवल्गते[50] ।
अत्रान्तर्विनिगूढ तु बीज शुद्ध भविष्यति ॥ २७ ॥
एव विचिन्त्य स मुनिर्ध्यानसयुक्तमानस ।
दिव्यज्ञानपरो भूत्वा सर्ववृत्तान्तमाददे ॥ २८ ॥
यथा भृङ्गिमहाकालौ देव्या शप्तौ सुतावुभौ ।

---

४८ सोऽह न करोमि भवत्यपि । ४९ ज्वर ।
५०. प्रगल्भते ।

प्रतिशाप यथा तौ तु ददतु पार्वती हरम् ॥ २९ ॥
यथावतीर्णौ मानुष्ययोनौ तौ तु यदर्थत ।
चित्रागदा यथा जाता यदर्थ देवकन्यका ॥ ३० ॥
दिव्यज्ञानेन तज्ज्ञात्वा मुनि किचन नाकरोत् ।
चित्रागदामादरेण समादाय मुनिस्तत ॥ ३१ ॥
स्वस्थान गतवान् विप्र पूजयामास ता मुनि ।
तारावती च तत्सर्व चन्द्रशेखरभूपते ॥ ३२ ॥
वृत्तान्त मुनिशापस्य कथयामास भामिनी ।
तत्सर्व[५१] पौष्यजो राजा स्वगत चिन्तया युत ॥ ३३ ॥
आश्वास्य दयिता भार्या माभैर्देवीति सोऽचिरात्[५२] ।
सतत सेवया पत्युर्धर्मार्थपरिसेवनै ॥ ३४ ॥
वर्जनादप्रशस्ताना मुनिशापोऽपनीयते ।
तस्मात् त्व देवि सुभगे चारित्रव्रतधारिणी ॥ ३५ ॥
कल्याणभागिनी नित्य नापद समवाप्स्यसि ।
एवमुक्त्वा स राजा तु करवीरपुराधिप ॥ ३६ ॥
प्रासाद कारयामास उच्चैरभ्रकष बहु ।
उच्चैश्चतु शत व्याम त्रिशद्योजनविस्तृतम् ॥ ३७ ॥
रत्नस्फटिकभूम्यन्त खचित रत्नकर्बुरै ।
वैदूर्यपटलै शुभ्रैश्छादित सुमनोहरम् ॥ ३८ ॥
स्वर्ण रत्नतुलास्तम्भ विश्वकर्मविनिर्मितम् ।
रक्षार्थ कारयामास तारावत्या प्रियङ्करम् ॥ ३९ ॥
रत्नसोपानसयुक्त वैदूर्यवलभीयुतम् ।
सौवर्णनोपसम्बद्धसुधर्मा[५३]-सदृश गुणै ॥ ४० ॥
तस्या समस्तभोग्यानि स्वादूनि च मृदूनि च ।
आप्तैरासादयामास पुरुषैश्चन्द्रशेखर ॥ ४१ ॥
ततस्तारावतीं देवीमादाय चन्द्रशेखर ।
नित्य प्रासादपृष्ठ तमारुह्य रमते नृप ॥ ४२ ॥
एव सवत्सर यावदन्यैरप्राप्यवेश्मनि ।
आप्तैरधिष्ठितद्वारि ता देवी समरक्षत ॥ ४३ ॥
एकदा तु विना तेन करवीराधिपेन तु ।
उच्चै प्रासादमारुह्य स्थिता तारावती सदा ॥ ४४ ॥
चिन्तयन्ती नृपं त तु दयित चन्द्रशेखरम् ।

---

५१. तत् श्रुत्वा । ५२. ··चोचिवान् ५३. नाक ।

तत्पदे न्यस्तमनसा सावित्रीव पतिव्रता ॥ ४५ ॥
आराध्य च महादेव पार्वत्या सहित तदा ।
इष्टा देवी च सा देवी चिन्तयन्ती स्म च स्थिता[५४] ॥ ४६ ॥
तत्र सा चिन्तयन्ती तु त्र्यम्बक चन्द्रशेखरम् ।
विवेद भेद न तयोश्चन्द्रशेखरयोर्द्वयो ॥ ४७ ॥
एव प्रासादपृष्ठे तु स्थिता तारावती सती ।
सुधर्मामध्यगा देवी शक्रश्रीरिव भूषिता ॥ ४८ ॥
अथोमया सम देवो वियता चन्द्रशेखर ।
आजगाम तदा गच्छन् प्रासाद् प्रति त नृप ॥ ४९ ॥
ददृशे सूत्तरन्ती सा उमाया[५५] सदृशी गुणै ।
सर्वलक्षण-सम्पूर्णा[५६] माधवस्येव माधवी[५७] ॥ ५० ॥
ता दृष्ट्वा न्यगदद् देवी गौरी वृषभकेतन ।
स्मितप्रसन्नवदन· प्रहसन्निव भामिनीम् ॥ ५१ ॥

ईश्वर उवाच

इय ते मानुषी मूर्ति प्रिये तारावतीति या ।
भृगिमहाकालयोस्ते जन्मनो विहिता स्वयम् ॥ ५२ ॥
त्वत्तो ह्यनन्यकान्तोऽह नान्य गन्तुमिहोत्सहे ।
त्वमिदानी स्वय चास्या मूर्त्या प्रविश भामिनि ।
तत उत्पादयिष्यामि महाकाल च भृङ्गिणम् ॥ ५३ ॥

देव्युवाच

ममैव मानुषी मूर्तिरस्या वृषभकेतन ।
विशामि तेऽत्र वचनादुत्पादय सुतद्वयम् ॥ ५४ ॥
मम भृङ्गिमहाकाल कपोताना च शापत ।
एव मोक्षो भवेद् भर्ग तस्मात् त्व कुरुमत्प्रियम् ॥ ५५ ॥

और्व उवाच

प्रविवेश ततो देवी स्वय तारावतीतनौ ।
महादेवोऽपि तस्या तु कामार्थ समुपस्थित ॥ ५६ ॥
तत सापर्णयाविष्टा देवी तारावती सती ।
कामयान महादेव स्वयमेवाभजन्मुदा ॥ ५७ ॥
तस्मिन्कालेऽभवद्भर्ग कपाली चास्थिमाल्यधृक् ।
बीभत्सवेशो दुर्गन्ध पलितोऽतिविरूपधृक् ॥ ५८ ॥

---

५४ चिंतयन् समवस्थिता ।
५५ च चरन्तीं तामुमाया ।   ५६. सम्पूर्णां ।   ५७ माधवीं

कामावसाने तस्या तु सद्योजात सुतद्वयम् ।
अभवन्नृपशार्दूल तथाशाखामृगाननम् ॥ ५६ ॥
तद्देहान्नि सृतापर्णो जातयो सुतयोस्तयो ।
मोहयित्वा यथात्मान न जानाति ककुत्स्थजा ॥
अह गौरी तथा भर्गभावेन[५८] मानुषेण तु ॥ ६० ॥
अथ तारावती देवी सुतौ दृष्ट्वा क्षितिस्थितौ ।
पातिव्रत्यात्[५९] परिभ्रष्टा आत्मान वीक्ष्य भामिनी ॥ ६१ ॥
तथा बीभत्सवेश तु हर दृष्ट्वाग्रत स्थितम् ।
मुनिशाप तदा मेने प्राप्त कालान्तकोपमम् ॥ ६२ ॥
इति शोकविमूढा च निनिन्द च सतीव्रतम् ।
इद चोवाच त वीक्ष्य महादेव त्रिशूलिनम् ॥ ६३ ॥
मुनिव्रतादपि वर नारीणा च सतीव्रतम् ।
इति स्म सतत धीरा व्याहरन्ति पुराविद ॥ ६४ ॥
न तत्सत्यमह मन्ये यत्प्रवृत्त ममेदृशम् ।
इत्युक्त्वा सा तदा देवी शुशोच च मुमोह च ॥ ६५ ॥
तामाहाथ महादेवो मा कार्षीस्त्व वरानने ।
शोक सतीव्रत चापि मा निन्द त्व सुचेतने ॥ ६६ ॥
कपोतेन यदा शप्ता त्व तदैव तदग्रत ।
उक्तवत्यसि दीर्घाक्षि यत् तद्भूत[६०] तवाधुना ॥ ६७ ॥
यदि सत्य महादेवो नित्यमाराध्यते मया ।
तेन सत्येन मे देवादाराध्याच्चन्द्रशेखरात् ॥ ६८ ॥
स्वप्नेऽपि मुनिशार्दूल नान्यो मा कामयिष्यति ।
सोऽहमेव महादेव आराध्यश्चन्द्रशेखर ॥ ६९ ॥
त्व मया कामिता चापि मा कार्षी शोकमङ्गने ।
इत्युक्त्वा स महादेवस्तत्रैवान्तरधीयत ॥ ७० ॥
मायया मोहिता देवी तत्र तारावती सती ।
भूमौ मलिनवेशेन मन्युना समुपाविशत् ॥ ७१ ॥
सुतौ च पतितौ भूमौ सा देवी नासभाजयत् ।
भर्तुरागमन शश्वत् काङ्क्षन्ती भर्गभाषितम् ॥ ७२ ॥
न रराज गृहे चापि मुक्तकेशी तथास्थिता ।
अथ क्षणान्महाभाग स राजा चन्द्रशेखर ॥ ७३ ॥
प्रासादपृष्ठमागच्छद् द्रष्टु तारावती तदा ।

---

५८. गौरी[illegible] तथा भावेन । ५९. सतीव्रता[illegible] । ६०. तद्वृत्त ।

स त प्रासादमारुह्य जाया तारावती तदा ॥ ७४ ॥
ददर्श पतिता भूमौ मुक्तकेशी निरुत्सवाम् ।
श्यामानना श्वसन्ती[61] च सत्यगर्हण[62] तत्पराम् ॥ ७५ ॥
सुतौ च पतितौ भूमौ सूर्याचन्द्रमसौ तदा[63] ।
वानरास्यौ स ददृशे पद्क्षोभ वृषस्य च ॥ ७६ ॥
इति सर्वमवेद्याथ सा राजा चन्द्रशेखर ।
भीतश्च विस्मितश्चैव भार्या पप्रच्छ सम्भ्रमात् ॥ ७७ ॥
किं किं तारावति तव[64] प्रवृत्त निर्जनेगृहे ।
को वा धर्षितवास्त्वा हि शिव[65] सिंहवधूमिव ॥ ७८ ॥
कस्य वा पृथुकावेतौ प्रोद्दीप्तौ वानराननौ ।
तन्मे द्रुत समाचक्ष्व को वा त्वा कामितोऽपर[66] ॥ ७९ ॥

औौर्व उवाच

एवमुक्ता तु भूपेन तदा तारावती सती ।
वृत्तान्त कथयामास सकल चन्द्रशेखरे ॥ ८० ॥
यथा समागतो भर्ग उत्तर च यथोक्तवान् ।
तत्सर्व कथयामास बाष्पकण्ठा सगद्गदा ॥ ८१ ॥
तस्यास्तद्वचन श्रुत्वा चिन्तयश्चन्द्रशेखर ।
किं वृत्तमिति विज्ञातु भूतले समुपाविशत् ॥ ८२ ॥
स्वगत चिन्तयन् राजा चकारेमा विचारणाम् ।
अनन्यकान्तो गिरिश स नान्या पार्वतीमृते ॥ ८३ ॥
कामयिष्यति तस्मात् स न भर्ग परमेश्वर ।
ऋषिशापो हि बलवास्तच्छापादेव[67] राक्षस ॥ ८४ ॥
कोऽपि मायाबलोपेत. शकरच्छद्मनागत. ।
एषा सती प्रिया भार्या राक्षसेनापि[68] दूषिता ॥ ८५ ॥
कथ चेय[69] मया ग्राह्या पूर्ववत् सर्वकर्मसु ।
एतौ च तनयौ तस्य सद्योजातौ च राक्षसौ ॥ ८६ ॥
अन्यथा वा कथभूतौ शाखामृगमुखौ सुतौ[70] ।
एवं चिन्तयतस्तस्य दैवौघविनियोजिता ॥ ८७ ॥
सरस्वती वियत्स्था तु राजानमिति चाब्रवीत् ।
न त्वया सशय कार्यस्तारावत्या[71] नृपोत्तम ॥ ८८ ॥

---

६१ कुणतीं । ६२ सती । ६३. मसप्रभौ ।
६४ तत्र । ६५ शिवा । ६६ को वा त्वां मिलितोऽपर. ।
६७. स राक्षस । ६८ नाभिदूषिता । ६९. कथकारं ।
७० मुखाननौ । ७१. वत्सा ।

सत्यमेव महादेवो भार्यां तव समेयिवान् ।
एतौ च तनयौ तस्य राजस्त्व[७२] परिपालय ॥ ८९ ॥
योऽन्यस्ते सशयोऽत्रास्ति नारदस्त विनेष्यति ।
इत्युक्त्वा विररामाशु वाग्देवी प्रियवादिनी ॥ ९० ॥
जातसप्रत्ययो राजा भार्यामाश्वासयत्तदा ।
सुतौ तु देवदेवस्य सस्कृत्य विधिना तदा ॥ ९१ ॥
पालयामास नृपतिराकाक्षन्नारदागमम् ।
अथाजगाम देवर्षिर्नारदस्तस्य मन्दिरम् ॥ ९२ ॥
पूजाभिर्बहुभिस्त तु प्रत्यगृह्णात् स भूपति ।
पूजयित्वा यथान्याय तारावत्या सम नृप ॥ ९३ ॥
उच्चै प्रासादमतुल सुरेशभवनोपमम् ।
आरोहयामास तदा त मुनि चन्द्रशेखर ॥ ९४ ॥
तत्रोपाशु तदा राजा सभार्यश्चन्द्रशेखर ।
पूर्वप्रवृत्तवृत्तान्तमपृच्छच्चन्द्रशेखर ॥ ९५ ॥
पूतोस्स्म्यनुगृहीतोऽस्मि[७३] भवता ब्रह्मसूनुना ।
अन्तर्बहिश्च विप्रेन्द्र तुङ्गप्रासादगामिना ॥ ९६ ॥
एक मे सशय ब्रह्मश्छेत्तुमर्हसि हृद्गतम् ।
त्वदन्य. सशयस्यास्य च्छेत्ता नैवास्ति कुत्रचित् ॥ ९७ ॥
ऋषिशापेन भार्येय मम तारावती सती ।
बीभत्सवेशाकृतिना धर्षिता कृत्तिवाससा ॥ ९८ ॥
तस्यात्मजौ समुत्पन्नौ सद्योजाताविमौ पुन. ।
तत्र[७४] मे सशय शश्वन्नित्य चित्ते प्रवर्तते ॥ ९९ ॥
अनन्यकान्तो गिरिशो गिरिजा पार्वतीमृते ।
कथं सङ्गमयामास मानुषी हीनजन्मजाम् ॥ १०० ॥
कथमुत्पादयामास मनुष्यौ[७५] तनयौ स्वकौ ।
एदत्सर्व समाचक्ष्व यदि गुह्य न ते भवेत् ॥ १०१ ॥

और्व उवाच

इति पृष्ट स तु मुनिश्चन्द्रशेखरभूभृता ।
कथयामास तत्सर्व नारदो मुनिसत्तम ॥ १०२ ॥
यथा भृंगिमहाकालौ समुत्पन्नौ पुरातनौ ।
यथा शप्तौ च पार्वत्या तौ चोदाहरतां[७६] यथा ॥ १०३ ॥

---

७२. संप्रतिपालय । ७३. प्रीतोऽस्मि । ७४. एतन्मे ।
७५. मानुष्या । ७६ तौ पश्चादाहुर्यथा ।

यथा पौष्यसुतो जातो भर्ग' स चन्द्रशेखर ।
तारावती ककुत्स्थस्य गृहे गौरी यथाभवत् ॥ १०४ ॥
तत्सर्व कथयामास नारदश्चन्द्रशेखरे ।
इद च परमाख्यान कथयामास नारद ॥ १०५ ॥

नारद उवाच

व्याजहार यदापर्णा कालीति वृषभध्वज ।
तदोमा तपसे याता वपुर्गौरत्वकाक्षया ॥ १०६ ॥
अमर्षयुक्ता वचनाच्छकरस्य गिरे· सुता ।
विनीयमाना भर्गेण सानु हिमवतो गिरे ॥ १०७ ॥
तस्या गताया पार्वत्या शकरो विरहार्दित ।
कैलासाद्रि परित्यज्य मेरुपृष्ठ तदा ययौ ॥ १०८ ॥
तत्रापि शर्म नो लेभे पार्वत्या च विनाकृत ।
मोहित कामदेवेन तथा वै योगनिद्रया ॥ १०९ ॥
अथैकदा मेरुपृष्ठे चरन्ती सुमनोहराम् ।
सावित्री ददृशे शम्भु पार्वत्या सदृशी गुणै ॥ ११० ॥
ता दृष्ट्वा मदनाविष्ट पार्वत्या विरहार्दित ।
अविद्यया समाविष्टो बभूव प्राकृतो यथा ॥ १११ ॥
अथ ता पार्वतीभ्रान्त्या चरन्तीमन्वधावत ।
एहि मां पार्वति शुभे भवद्विरहपीडितम् ॥ ११२ ॥
प्रहरत्येष मा काम पूर्ववैरमनुस्मरन् ।
मम तत्र प्रतीकार कुरु सम्प्रति वल्लभे[७७] ॥ ११३ ॥
इत्युक्त्वा विमुखी यान्ती सावित्री वृषभध्वज ।
स्कन्धे हस्तेन पस्पर्श सा चुकोप ततो भृशम् ॥ ११४ ॥
अथ सा सम्मुखी भूत्वा सावित्र्यतिपतिव्रता ।
इदमाह महादेव गर्हयन्ती वृषध्वजम् ॥ ११५ ॥
किं त्व पशुपते मूर्ख मानुष' प्राकृतो यथा ।
निरस्य कलहैर्भार्यामनुनेतुमिहार्हसि ॥ ११६ ॥
विमूढचेतन कामैर्न सस्तौषि परस्त्रियम् ।
असस्तुत्वापि सम्प्रष्टु मादृशी युज्यते तव ॥ ११७ ॥
किमह पार्वती मूढ येन मत्स्कन्धदेशात ।
हस्त ढदास्यविज्ञाय सावित्रीं विद्धि मा सतीम् ॥ ११८ ॥

---

७७. कुरुष्व पतिवल्लभे ।

यस्मान्मानुषवन्मा त्वमनुजानासि बर्बर[७८]।
तस्मात् त्व मानुषीयोन्या सुरत सविधास्यसि ॥ ११६ ॥
गौरीमृते नान्यकान्तस्त्वमन्या तु[७९] समीहसे।
तस्यैतत्फलित भर्ग गच्छ मा त्व परित्यज ॥ १२० ॥
इत्युक्त्वा सा गता देवी स्वमाश्रमपद सती।
लज्जाविस्मयसयुक्तो हरोऽप्यायात् निजास्पदम् ॥ १२१ ॥
अतोऽय मानुषीयोनौ सुरत शकरोऽकरोत्।
तस्मान्नि सशय राजन्निमा तारावती सतीम्।
दयस्व तनयावेतौ भर्गस्य प्रतिपालय ॥ १२२ ॥

और्व उवाच

तत स राजा श्रुत्वैव नारदस्य मुखात् तदा।
आत्मन शम्भुरूपत्व गौरी तारावतीति च।
मनुष्ययोनावुत्पन्नावुमावृषभकेतनौ ॥ १२३ ॥
श्रुत्वातिहर्षितो राजा विस्मितो नारद पुन।
पप्रच्छ मुनिशार्दूल विज्ञातुमिति चात्मन ॥ १२४ ॥
शकरत्व च गौरीत्व तारावत्या समक्षतः।
यथाह तत्तु पश्यामि त मा ज्ञापय निश्चितम् ॥ १२५ ॥

नारद उवाच

अके तारावती कृत्वा अक्षिणी[८०] त्व निमीलय।
क्षण तारावती चापि निमीलयतु चक्षुषी ॥ १२६ ॥
निमील्य पश्चाद्राजेन्द्र उन्मीलय[८१] ततो द्रुतम्।
ततस्ते शाम्भव ज्ञान रूप चापि भविष्यति ॥ १२७ ॥
इत्युक्तो नारदेनाथ स राजा चन्द्रशेखरः।
वामेन पाणिना धृत्वा देवी तारावतीं सतीम्[८२] ॥ १२८ ॥
चक्षुषी च तया सार्ध निमील्योन्मील्य तत्क्षणात्।
तन्निमीलनकाले[८३] तु तस्याभूच्छम्भुरूपता ॥ १२९ ॥
गौरीरूपाऽभवद् देवी ततस्तारावती [८४]सती।
अह शम्भुरह गौरीति विज्ञान तयोरभूत् ॥ १३० ॥
तत प्रोवाच त शम्भु नारद प्रहसन्निव।

---

७८. यस्माद् मानुषधर्मान् मामनुजानीतवान् हर।
७९. गौरीमनन्यकान्तस्त्वमन्यामद्य।
८०. दृग्युगं। ८१. प्रोन्मील्य।
८२. स्वयम्। ८३, उन्मीलनावकाले। ८४. तदा।

शम्भुः साक्षाद् भवान् गौरी देवी तारावती स्वयम् ॥ १३१ ॥
प्रत्यक्ष ते महाभाग सपश्यात्मानमात्मना ।
ततो राजा भवत्वेवमित्युक्त्वाथ स्वका तनुम् ॥ १३२ ॥
व्याघ्रचर्मपरीधाना[85] दशभिर्बाहुभिर्युताम्[86] ।
त्रिशूलखट्वागधरा[87] शक्त्यादिधृतहस्तकाम्[88] ॥ १३३ ॥
वृषभोपरि सस्था[89] तु जटाजूटविभूषिताम्[90] ।
तारा च विद्युद्गौराङ्गी पद्महस्ता शुभाननाम् ॥ १३४ ॥
वीक्ष्य सप्रत्यय प्राप ज्ञानेनापि तदात्मनि ।
ततस्तु नारदः प्राह शृणु राजन् वचो मम ॥ १३५ ॥
नृयोनौ वैष्णवी माया युवा पूर्वममोहयत् ।
तेन तेन शरीरेण शम्भुत्व नेक्षित त्वया ॥ १३६ ॥
अधुना दर्शिता तेऽद्य शम्भुना शम्भुरूपता ।
निमील्य नयनद्वन्द्व पुनस्त्व याहि मर्त्यताम् ॥ १३७ ॥
आसाद्य मानुष भावमादेहान्तं स्थिरो भव ।
तथा तारावती देवी तूर्ण भवतु मानुषी ॥ १३८ ॥

और्व उवाच

आत्मनो देवरूपत्व ज्ञात्वा दृष्ट्वाऽथ चक्षुषा ।
जातसप्रत्ययो राजा न्यमीलयत लोचने ॥ १३९ ॥
ततस्तारावती देवी न्यमीलयत चक्षुषी ।
पुनस्तौ मानवौ जातौ महिषी नृपतिस्तथा ॥ १४० ॥
उन्मील्य तौ तु नेत्राणि मानुषत्वं तदात्मनो ।
दृष्ट्वा आवा तथा मर्त्याविति ज्ञानमभूत् तयो ॥ १४१ ॥
ततो विमोहितौ तौ तु दम्पती विष्णुमायया ।
अह राजा च महिषी अहमित्यभवन्मति ॥ १४२ ॥
तस्या सुतौ तु जायाया देवाशाविति तन्मती[91] ।
आवा स्थिता कला मूर्ध्नि अभूतां जातचिह्नितौ ॥ १४३ ॥
ततः स राजा न्यगदत् त मुनि नारद मुदा ।
सत्यमेतत् त्वया प्रोक्त करिष्ये वचनं तव ॥ १४४ ॥
पालयिष्ये शम्भुपुत्रौ सत्यलभ्ये सदैव हि ।
किन्त्वेतौ मुनिशार्दूल त्व संस्कुरु यथाविधि ॥ १४५ ॥

---

८५. ··धान । ८६ युंतम् ।
८७ ··धरं । ८८. हस्तक । ८९ सस्थं ।
९० · भूषितम् । ९१. तद् सती ।

और्व उवाच

ततस्तयोर्न्नाम चक्रे नारदो वचनान्नृप।
ज्येष्ठो भैरवनामाऽभूद् गौरीपुत्रो भयकर ॥ १४६ ॥
वेतालसदृश कृष्णो वेतालोऽभूत् तथापर ।
इति चक्रे तयोर्नाम देवर्षिब्रह्मण सुत ॥ १४७ ॥
अन्याश्च सर्वान् सस्कारान्नारदो मुनिसत्तम' ।
चकार क्रमशो वाक्याच्चन्द्रशेखरभूभृत ॥ १४८ ॥
एव सर्वान् संशयास्तु सञ्छिद्य मुनिसत्तम ।
सस्कृत्य भर्गतनयौ विसृष्टस्तेन भूभृता ॥ १४९ ॥
ययावाकाशमार्गेण नाकपृष्ठ स नारद ।
नारदे तु गते राजा मुदितश्चन्द्रशेखर ॥ १५० ॥
तारावत्या सम रेमे करवीराह्वये पुरे।
शम्भोरशोऽहमित्येव गौर्यास्तारावतीति च ॥ १५१ ॥
जातश्रद्धस्तदा राजा शशास सुचिर क्षितिम्।
तनयौ च हरस्याथ तदा वेतालभैरवौ ॥ १५२ ॥
ववृधाते महात्मानौ शरच्चन्द्राविवोद्यतौ।
चन्द्रशेखरभूपस्य तारावत्या नृपोत्तम ॥ १५३ ॥
त्रय पुत्रा महावीर्या रूपसम्पत्-समन्विता ।
ज्येष्ठस्तत्रोपरिचरो दमनोऽलर्क एव च ॥ १५४ ॥
वेतालभैरवाभ्या तु ज्यायासस्तेऽभवस्त्रय ।
एवमेते त्रय पुत्राश्चन्द्रशेखरभूभृत ॥ १५५ ॥
वेतालभैरवौ चापि सद्योजातौ हरात्मजौ।
समानभोगा ववृधुश्चन्द्रशेखरभूभृत ।
पालितास्तु सभार्येण समानासनवाहना ॥ १५६ ॥

इति पचसुता महाबला
पचभूतसदृशा कृता विधे ।
ववृधिरे प्रथम सकल जगत्
समतीत्य मुदा[९२] बलदर्पिता ॥ १५७ ॥

इति श्रीकालिकापुराणे पञ्चाशोध्याय ॥ ५० ॥



---

९२ समतीतमुदार।

एकपञ्चाशोऽध्यायः

और्व उवाच

अथ कालक्रमेणैव प्रवृद्धास्ते महाबला ।
शस्त्रास्त्रज्ञानकुशला शास्त्रार्थपरिनिष्ठिता ॥ १ ॥
सम्प्राप्तयौवना दीप्ता दुर्धर्षा परिपन्थिभि. ।
धर्मार्थज्ञानकुशला ब्रह्मण्या सत्यवादिन ॥ २ ॥
सदा सहचरौ तत्र प्रीत्या वेतालभैरवौ ।
अलर्को दमनश्चैव तथोपरिचरस्त्रय ।
सदा सहचरा नित्य भ्रातरश्चान्द्रशेखरा ॥ ३ ॥
त्रिष्वात्मजेषु[13] नृपते सदोपरिचरादिषु ।
ममत्वमधिक नित्य प्रीतिस्नेहौ तथाधिकौ ॥ ४ ॥
वेताले भैरवे चापि चन्द्रशेखरभूभृत. ।
नास्त्येव तादृशी प्रीतिर्यादृशी तेषु जायते ॥ ५ ॥
न तौ दृष्ट्वा स नृपति कदाचिच्चन्द्रशेखर ।
अत्याल्हादयतेऽजस्र[14] पुत्रबुद्ध्येष्यतेऽथवा[15] ॥ ६ ॥
तौ वीरौ धर्मकुशलौ महाबलपराक्रमौ ।
त्रैलोक्यविजये दक्षौ शस्त्रास्त्रग्रामपारगौ ॥ ७ ॥
ताभ्या बिभेति च नृप. कदा किवा करिष्यत. ।
वेतालभैरवावेतौ मा सुतान् राज्यमेव वा ॥ ८ ॥
इति चिन्तापरो राजा नित्यमेव निरीक्षते ।
प्रणतावपि तत्पुत्रौ सम्यग् वेतालभैरवौ ॥ ९ ॥
अथोपरिचर राजा यौवराज्येऽभ्यषेचयत् ।
ज्यायासमौरस पुत्र सर्वराजगुणैर्युतम् ॥ १० ॥
य पश्चात् सर्वभूपालान्[16] योजयिष्यति नीतिभिः ।
राजोपरिचरो नाम सर्वशास्त्रार्थपारग. ॥ ११ ॥
दमनाय ददौ दाय तथालर्काय भूमिभृत् ।
प्रभूतधनरत्नानि तथासनरथान् बहून् ॥ १२ ॥
तावन्ति न[17] ददौ ताभ्या दायवित्तानि भागश. ।

---

१३. दृष्ट्वात्मजेषु । १४. आह्लादयतेऽजस्र ।
१५. पुत्रबुध्याय ते वा । १६ य पालात् सर्वभूतानि ।
१७. सः ।

वेतालभैरवाभ्या तु ततस्तौ मन्युराविशत् ॥ १३ ॥
मन्युनाभिपरीतौ[१८] तौ विचरन्तावितस्तत ।
न भोगमीप्सता वीरौ तपसे च कृतोद्यमौ ।
अनूढभार्यौ सतत निर्जने वसत सदा ॥ १४ ॥
तथाभूतौ तदा पुत्रौ देवौ वेतालभैरवौ ।
बुबुधे चिन्तयाक्रान्ता देवी तारावती तदा ॥ १५ ॥
राजोपरिचराद् भीता पत्युश्च चन्द्रशेखरात् ।
नोवाच किंचित् सुदतीच्छन्न तौ बोधयत्यपि ॥ १६ ॥
एतस्मिन्नन्तरे विद्वान् कपोतो मुनिसत्तम ।
चित्रागदासगभोगी सन्तुष्ट सुरतोत्सवै ॥ १७ ॥
चित्रागदा परित्यज्य सपुत्रा सहचारिणीम् ।
इयेष गन्तुं स[१९] प्रोचे तदा चित्रागदा वच ॥ १८ ॥

मुनिरुवाच

चित्रांगदे तपस्तप्तु गमिष्यामि तपोवनम् ।
कि ते प्रिय करोमीह त मे वद मनोहरे ॥ १९ ॥

चित्रांगदोवाच

तुम्बुरुश्च सुवर्चाश्च तनयौ तव सुव्रत ।
एतयोस्त्व मुनिश्रेष्ठ प्रिय कुरु यथोचितम् ॥ २० ॥
मा चापि भगिनीगेहे सस्थाप्य द्विजसत्तम ।
तदा तपोवन गच्छ यदि ते रोचतेऽनघ ॥ २१ ॥
इति श्रुत्वा वचस्तस्या कपोतो मुनिसत्तम ।
हिरण्यार्थ [१]समालोच्य कुबेरसदन ययौ ॥ २२ ॥
प्रार्थयित्वा कुबेर तु सुवर्णाना शतानि षट् ।
निष्काणा तु सहस्राणि स लेभे मुनिसत्तम ॥ २३ ॥
शत भाराश्च रत्नानामानीय च सवीवधै ।
पुत्राभ्या प्रददौ विप्रो भार्यायै च विशेषत ॥ २४ ॥
ततस्तां सहपुत्राभ्यां तैर्धनैरपि भूरिभि ।
चित्रांगदामतेनाथ पुत्रयोरपि सम्मते ॥ २५ ॥
सुवर्चसं तुम्बुरु च तथा चित्रागदामपि ।
आमन्त्र्य मुनिशार्दूल करवीर-पुरं ययौ ॥ २६ ॥

---

१८ मन्युनातिपरीतौ ।

१९. तपसे प्रोचे चित्रांगदां च स. । १. तदालोच्य ।

तत्र गत्वा स कपोतो राजानं चन्द्रशेखरम्।
राजोपरिचरं चैव वाक्यमेतदुवाच ह ॥ २७ ॥
इयं ककुत्स्थजा भूप तवैव विदिता[२] पुरा।
सद्योजातौ तथैवास्यामेतौ मे तनयौ शुची ॥ २८ ॥
एभिर्वित्तैः सम पुत्रौ मम त्वं प्रतिपालय।
राजोपरिचरश्चापि पालयत्विह मे सुतौ ॥ २९ ॥
अपुत्रस्य नृप पुत्रो निर्धनस्य धनं नृपः।
अमातुर्जननी राजा ह्यतातस्य पिता नृपः ॥ ३० ॥
अनाथस्य नृपो नाथो ह्यभर्तुः पार्थिवः पतिः।
अभृत्यस्य नृपो भृत्यो नृप एव नृणां सखा।
सर्वदेवमयो राजा तस्मात् त्वामर्थये नृप ॥ ३१ ॥

और्व उवाच

ततः स राजा तं प्राह मुनिमेवं द्विजोत्तमम्।
करिष्ये त्वद्वचश्चाह राजोपरिचरश्च सः ॥ ३२ ॥
अथ चित्रांगदां राजा जग्राह मुनिसम्मते।
सुतौ च तस्य सधनौ ज्यायसे सूनवे ददौ ॥ ३३ ॥
स चोपरिचरः प्रादाद्राज्यमर्धं सुवर्चसे।
तथैव सचिवाध्यक्षमकरोत्तुम्बुरुं तदा ॥ ३४ ॥
कपोतश्चापि सुप्रीतः पुत्रार्थं समवेक्ष्य च।
जगामामन्त्र्य नृपतिं तपसे च तपोवनम् ॥ ३५ ॥
पथि गच्छन् स कपोतः शम्भुपुत्रौ मनोहरौ।
एकाकिनौ चरन्तौ तु सूर्याचन्द्रमसाविव ॥ ३६ ॥
तयोर्ददर्श च तदा वदने वानराकृती।
स्मृत्वा पूर्वकथां दृष्ट्वा नावपृच्छत् तपोधनः ॥ ३७ ॥
कौ युवां देवगर्भाभौ चरन्तौ विजने पथि।
एकाकिनौ नरश्रेष्ठौ तन्मे वदतमीरितम् ॥ ३८ ॥
अथ तौ प्रणिपत्यैनं सम्भाष्य च समञ्जसम्।
कपोताख्यं मुनिश्रेष्ठमूचतुः शंकरात्मजौ ॥ ३९ ॥
चन्द्रशेखरपुत्रौ नौ तारावत्यां समुद्गतौ।
विद्धि त्वं मुनिशार्दूल प्रणमावः पदं तव ॥ ४० ॥
अवज्ञां वीक्ष्य नृपतेरावयोः सततं मुने।
एकाकिनौ निर्जनेषु भ्रमावो मन्युना सदा ॥ ४१ ॥

---
२. विषये।

किमर्थमात्मजौ पुत्रौ प्रणतौ सतत नृप ।
अवज्ञाय महाभाग दायमात्र न दित्सति[3] ॥ ४२ ॥
तस्मादावा तपस्तप्तुमिच्छावो द्विजसत्तम ।
उपदेशप्रदानेन चानुगृह्णाति चेद्भवान् ॥ ४३ ॥
ततस्तयोर्वचः श्रुत्वा प्रहस्य मुनिसत्तम. ।
भूतभव्यभवज्ज्ञानस्ताविद मुनिरब्रवीत् ॥ ४४ ॥

मुनिरुवाच

न युवा तनयौ तस्य चन्द्रशेखरभूपतेः ।
तारावत्या समुत्पन्नौ भवन्तौ शकरात्मजौ ॥ ४५ ॥
सद्यो जातौ महावीर्यौ वेतालत्वे च सम्मतौ[4] ।
भृङ्गिमहाकालसञ्ज्ञौ शापाद् धरणिमागतौ[5] ॥ ४६ ॥
युवयोरत्र तेनैव न दाय [6]दित्सति प्रियम् ।
गच्छत शरण तात शकर वृषभध्वजम् ॥ ४७ ॥
स एव युवयो सर्व करिष्यति महेश्वरः ।
कि वात्युग्रेण तपसा चिरकालफलेन वै ॥ ४८ ॥
इत्युक्त्वा मुनिशार्दूल कपोत परमात्मधृक् ।
भूतभव्यभवज्ज्ञानन्ताभ्या सर्वमथोचिवान् ॥ ४९ ॥
यथा भृगिमहाकालौ शप्ताववनिमागतौ ।
यथा हरश्च गौरी च पृथिवीमागतौ नृप ॥ ५० ॥
तारावती यथा शप्ता तेनैव मुनिना पुरा ।
यथा तौ च समुत्पन्नौ तारावत्युदरे पुरा ॥ ५१ ॥
यथा वा नारदेनैव सशयच्छेदन नृपे ।
तत्सर्व कथयामास पुत्राभ्या गिरिशस्य तु ॥ ५२ ॥
तच्छ्रुत्वा तौ महात्मानौ तदा वेतालभैरवौ ।
मुदा परमया युक्तौ बभूवतुरनिन्दितौ[7] ॥ ५३ ॥
मोदपूर्णौ तदा भूत्वा सिक्ताविव सुधारसैः ।
पुन पप्रच्छ कपोत वेतालो भैरवोऽपि च ॥ ५४ ॥
पितावयोर्महादेवस्त्वया सत्यमितीरितम् ।
सोऽर्चनीयो यथावाभ्या सिद्धये मुनिसत्तम ॥ ५५ ॥
आवाभ्या च यथाराध्यो यत्र वाराधितो हर. ।
प्रसादमेष्यत्यचिरात् तन्नो वद महामते ॥ ५६ ॥

---

३. यच्छति । ४. सर्वतत्त्वे सुसम्मतौ । ५. अवनि ** ।
६ दास्यति । ७. बभवतुररिन्दमौ ।

धन्यावनुगृहीतौ नौ यत् त्वया मुनिसत्तम ।
विज्ञापितमिद सर्वं हृच्छल्य चोद्धृत च नौ ॥ ५७ ॥
पुनरावा दयस्व त्व कृपामय मुनीश्वर ।
प्राप्स्यावो न चिराद् भर्ग यथा वद तथैव नौ ॥ ५८ ॥

मुनिरुवाच

शृणु त्व कथयाम्यद्य यत्र चाराधितो हर ।
नचिरादेव भवतोरायास्यति समक्षताम् ॥ ५९ ॥
नित्य यत्र महादेवो वसन् भवति तुष्टये ।
युवा[8] तत् सम्प्रवक्ष्यामि स्थान गुह्य प्रकाशितम् ॥ ६० ॥
वाराणसी नाम पुरी गगातीरे मनोहरे ।
वरणायास्तथा [9]चासेर्मध्ये चापाकृति सदा ॥ ६१ ॥
स्वय वृषध्वजस्तत्र नित्य वसति योगिनाम् ।
सदा प्रीतिकरो योगी स्वय चाप्यात्मचिन्तकः ॥ ६२ ॥
वियत्स्था सा पुरी नित्य भर्गयोगबलाद् धृता ।
दिव्यज्ञान ददात्येषा तत्र यो म्रियते नर ॥ ६३ ॥
तस्मै स्वय महादेवः ससार-ग्रन्थिमुक्तये ।
स भूत्वा परमो योगी मृतस्तत्र भवान्तरे ॥ ६४ ॥
सुलभेनैव निर्वाणमाप्नोति हरसम्मत. ।
योगयुक्तो महादेव पार्वत्या सहित.[10] सदा ॥ ६५ ॥
देवगन्धर्वयक्षाणां मानुषाणा च नित्यश. ।
ज्ञेयो हर प्रकाशश्च क्षेत्र तच्च प्रकाशितम् ॥ ६६ ॥
न तत्र कामदो देवो नचिराच्च प्रसीदति ।
आराधितश्चिरं प्रीत्या निर्वाणाय प्रसीदति ॥ ६७ ॥
गौर्या विवर्जिता[11] सा तु पुरी तत्र न गच्छति ।
योगस्थान महाक्षेत्र कदाचिदपि शाकरी ॥ ६८ ॥
आसन्न युवयो क्षेत्रमिद वाराणसी तु यत् ।
कथित नातिदूरे च वर्तते नरसत्तमौ ॥ ६९ ॥
अपर तु प्रवक्ष्यामि गुह्य पीठ सदार्चितम् ।
हरगौरीसमायुक्तं पर धर्मार्थकामदम् ॥ ७० ॥
तपसा चाति तीव्रेण चिराद् भवति मोक्षदम् ।

८. तस्मौ । ९ वरुणायास्तथैवाग्रे . ।
१०. . सहित' । ११. गौर्य्याविवर्जिता ।

नचिरात् कामद पुण्य क्षेत्र पीठ निगद्यते ॥ ७१ ॥
चिरात् तु कामदो देवो न चिराद् यत्र ज्ञानद ।
तत्क्षेत्रमिति लोकेषु गद्यते पूर्ववन्दिभि.[12] ॥ ७२ ॥
कामरूप महापीठ गुह्याद् गुह्यतम परम् ।
सदा सन्निहितस्तत्र पार्वत्या सह शंकर ॥ ७३ ॥
न चिरात् पूजितो देवस्तस्मिन् पीठे प्रसीदति ।
पार्वती चानुगृह्णाति भर्गभक्त तु तत्र वै ॥ ७४ ॥
ददाति नचिरात् काम भक्ताय परमेश्वर ।
तत् तु पीठ प्रवक्ष्यामि शृणुत साम्प्रत युवाम् ॥ ७५ ॥
करतोया नदी पूर्व यावद् दिक्करवासिनीम् ।
त्रिंशद् योजनविस्तीर्ण योजनैकशतायतम् ॥ ७६ ॥
त्रिकोणं कृष्णवर्ण च प्रभूताचलपूरितम् ।
नदीशतसमायुक्त कालरूप प्रकीर्तितम् ॥ ७७ ॥
शम्भुनेत्राग्निनिर्दग्ध काम शम्भोरनुग्रहात् ।
तत्र रूप यत प्राप कामरूपं ततोऽभवत्[13] ॥ ७८ ॥
तस्य पीठस्य वायव्या नैर्ऋत्या मध्यभागत ।
ऐशान्या च तथाग्नेय्या मध्ये पार्श्वे च शकर ॥ ७९ ॥
स्वमाश्रमपद कृत्वा षट्सु स्थानेषु शोभनम् ।
नित्य वसति तत्रापि पार्वत्या सह नर्मभि ॥ ८० ॥
मध्ये देवीगृह तत्र तदधीन तु शकर ।
नीलाख्ये पर्वतश्रेष्ठे पार्वती तत्र तिष्ठति ॥ ८१ ॥
ऐशान्या नाटके शैले शकरस्य महाश्रम ।
नित्य वसति तत्रेशस्तदधीना च पावती ॥ ८२ ॥
अपरे चाश्रमा सन्ति हरगौर्यो सदातना[14] ।
नैतयोः सदृशः कोऽपि विद्यते शकराश्रम ॥ ८३ ॥
[15]यत्राराध्यो महादेवो भवद्भ्या नरसत्तमौ ।
तत्स्थान मनसादाय प्रसादय वृषध्वजम् ॥ ८४ ॥

वेतालभैरवावूचतुः[16]

कामरूप गमिष्यावौ रहस्य नाटकाचलम् ।
गौरीहरौ स्थितौ यत्र नित्य सन्निहितौ मुने ॥ ८५ ॥

---

१२ '' सूरिभि । १३ ततो मतः । १४. सनातना' ।
१५' तत्राराध्यो. । १६. तावूचतु ।

आराधनीयो भूतेशो ह्यवश्यमिह चावयो ।
यथैवाराधयिष्यावस्तथाचद्व द्विजोत्तम ॥ ८६ ॥
येन मन्त्रेण वा देवो नचिरात् तु प्रसीदति ।
तत् त्व वद महाभागानुग्रहोऽस्त्यावयोर्यदि ॥ ८७ ॥

ऋषिरुवाच

नाटक पर्वतश्रेष्ठ गच्छत नरसत्तमौ ।
तत्र नित्य महादेवौ रमतेऽपर्णया[17] सह ॥ ८८ ॥
सन्ध्याचले तत्र मुनिराराधयति शंकरम् ।
वशिष्ठो ब्रह्मण पुत्रस्त युवामनुगच्छतम् ॥ ८९ ॥
स च मन्त्र सतन्त्र च हराराधनकर्मणि ।
ज्ञापयिष्यति वा पृष्ट किल वेतालभैरवौ ॥ ९० ॥
तपसे गन्तुमिच्छामि नेदानी कालयापना ।
युज्यते मम तस्मान्मा त्यजत वीरसत्तमौ ॥ ९१ ॥
एवमुक्त्वा मुनिश्रेष्ठ कपोत प्रययौ वनम् ।
तौ त मुनि नमस्कृत्य जग्मतुर्भवनं निजम् ॥ ९२ ॥
अथ तौ समय कृत्वा दीक्षितौ तपसे तदा ।
पितरावप्यनुज्ञाप्य भ्रातॄनन्याश्च बान्धवान् ।
प्रस्थान कामरूपाय चक्रतुस्तौ महामती ॥ ९३ ॥
तौ गच्छन्तौ परिज्ञाय शंकरोऽपि .सहोमया ।
देवान् सर्वानुवाचेदं सान्त्वयन्निव[18] सेन्द्रकान् ॥ ९४ ॥

ईश्वर उवाच

पुत्रौ मे तपसे यात साम्प्रतं सुरसत्तमा ।
ममाराधनचित्तौ तु तौ दयध्व सुरेश्वरा ॥ ९५ ॥
संस्कृत्य तपसा चैतौ पुत्रौ वेतालभैरवौ ।
गाणपत्ये नियोक्ष्यामि तौ संस्कुर्वन्तु निर्जरा ॥ ९६ ॥
अनेनैव शरीरेण तौ गणेशत्वमाप्स्यत. ।
तपसा तु तयो कायौ भावं त्यक्त्वा तु मानुषम् ॥ ९७ ॥
यथाप्नुतः सौरभावं विधास्यामि ह्यह तथा ।
इत्युक्त्वा वामदेवोऽपि पार्वत्या सह 'पुत्रकौ ॥
गच्छन्तौ वियता स्नेहात् पश्चादनुययौ शिव. ॥ ९८ ॥
शक्राद्यास्त्रिदशाः सर्वे दिक्पालाश्च तथापरे ॥ ९९ ॥
सर्वे हर चानुजग्मुरनुगच्छन्तमात्मजौ ।

---

१७ वसते । १८ सान्त्वयन्दिवि ।

अथ तौ तु नदीं प्राप्य कृष्णाजिनधरौ तदा ॥ १०० ॥
आदाय तापसं भावं[१९] गंगातुल्यां दृषद्वतीम् ।
तपस्विनौ तु देवेन त्र्यम्बकेणाथ पालितौ ॥ १०१ ॥
देवैः सह तदायातौ कामरूपाह्वयाश्रमम् ।
आसाद्य कामरूपं तु करतोयानदीजले ॥ १०२ ॥
उपस्पृश्य ततस्तौ तु नन्दिकुण्डं नृपोत्तम ।
तत्र स्नात्वाप्युपस्पृश्य नदीं गत्वा जटोद्भवाम् ॥ १०३ ॥
उपस्पृश्य च तौ तत्र[२०] नन्दिनं तपसा धृतम् ।
प्रणम्य जल्पिशं देवं जग्मतुर्नाटकाचलम् ॥ १०४ ॥
नाटकाचलमासाद्य प्रणम्य वृषभध्वजम् ।
आराधनोपदेशाय कपोतकवचं स्मरौ[२१] ॥ १०५ ॥
जग्मतुर्दक्षिणां काष्ठां यत्र सन्ध्याचलः स्थितः ।
कान्ता नाम नदी तत्र वशिष्ठेनावतारिता ॥ १०६ ॥
तस्यास्तीरे महाशैलः स्निग्धच्छायलतातरुः ।
सन्ध्यां वशिष्ठः कृतवांस्तत्र यस्माद् विधेः सुतः ॥ १०७ ॥
अतः सन्ध्याचलं नाम तस्य गायन्ति देवताः ।
तत्रासाद्य वशिष्ठं तु साक्षादिव हुताशनम् ॥ १०८ ॥
आराधयन्तं गिरिशं ध्यानसंयुक्तमानसम् ।
तपःश्रिया दीप्यमानं द्वितीयमिव भास्करम् ॥ १०९ ॥
प्रणम्य पुरतस्तस्य तदा वेतालभैरवौ ।
प्राञ्जली तस्थतुर्भूप विनयानतकन्धरौ ॥ ११० ॥
इदं चाप्यूचतुस्तौ तु प्रणमन्तौ विधेः सुतम् ।
तारावत्यां समुत्पन्नौ चन्द्रशेखरभूभृतः ॥ १११ ॥
क्षेत्रे भर्गस्य तनयावावां जानीहि मानुषौ ।
आराधयितुमिच्छावो हरं कार्यस्य सिद्धये ॥ ११२ ॥
वाञ्छितस्य यदि त्वं नावनुगृह्णासि सुव्रत ।
तयोस्तद् वचनं श्रुत्वा वशिष्ठो मुनिसत्तम ॥ ११३ ॥
उवाचेति युवां ज्ञातौ मया सत्यं हरात्मजौ ।
हरस्याराधनं कार्यं[२२] युवयोर्नरसत्तमौ ॥ ११४ ॥
तत्रास्ति मम कृत्यं किं तद्भाषतमनिन्दितौ[२३] ।

१९. आददे तापसं वेषं । २० तत्राप्युपस्पृश्य च तौ ।
२१. कपोतस्य वचः स्मरन् । २२. योग्यं ।
२३. भाषतमरिन्दमौ ।

वृषध्वजाराधनाय युवयोस्तु प्रयोजनम्।
विद्यते तन्निमित्त यत् तत् सिद्धमिति चिन्त्यताम्[२४] ॥ ११५ ॥

वेतालभैरवावूचतुः

येन मन्त्रेण नचिरात् सम्यगाराधितो हरः।
प्रसादमेष्यत्यवनौ तन्नो वद महामुने ॥ ११६ ॥
यथा चाराधयिष्यावस्तन्त्र यद् यादृश क्रम।
तत्सर्व मुनिशार्दूल वक्तुमर्हसि चोत्तरम् ॥ ११७ ॥
यथा त्वदुपदेशेन प्राप्स्यावो नचिराद् हरम्।
यथा वाचा मुनिश्रेष्ठ ह्यनुशाधि न तौ त्वयि ॥ ११८ ॥

वसिष्ठ उवाच

प्रसन्न एव भवतोर्वृषकेतु सहोमया।
नचिरात् स्वयमेवात्र प्रसाद च समेष्यति ॥ ११९ ॥
सर्वैर्देवगणै सार्ध सभार्यो वृषभध्वज।
आकाशमार्गेणायात पालयन् स्वसुतौ गृहात्[२५] ॥ १२० ॥
किन्तु मानुषदेहो वामधिवास्य तपोव्रतैः।
स्वयन्नेष्यति कैलास गाणपत्ये नियोज्य वाम् ॥ १२१ ॥
अह चाप्युपदेक्ष्यामि यथा भर्ग युवा द्रुतम्।
प्राप्स्यथः पार्वतीपुत्रावेकाग्र शृणुत तु तत् ॥ १२२ ॥
चिरात् प्रसीदति ध्यानान्नचिराद् ध्यानपूजनात्[२६]।
तस्माद् ध्यान पूजन च कथयाम्यद्य तत्त्वत ॥ १२३ ॥
तेजोमय सदा शुद्धो ज्ञानामृतविवर्धित[२७]।
जगन्मयश्चिदानन्द शौरिब्रह्मस्वरूपधृक् ॥ १२४ ॥
महादेवो महामूर्तिर्महायोगयुत सदा।
जगन्ति तस्य रूपाणि तानि को गदितु क्षम ॥ १२५ ॥
किन्तु यैरिह रूपैस्तु विचरत्येष[२८] शकर।
तेषा यन्मे ज्ञानगम्य तत्रेष्ट निगदामि वाम् ॥ १२६ ॥
प्रथम शृणुत मन्त्र ततोऽनुध्यानगोचरम्।
तत क्रम तु पूजाया क्रमाद् वृत्त नरर्षभौ ॥ १२७ ॥
समस्ताना स्वराणां तु दीर्घा शेषा सबिन्दुकाः।
ऋलृशून्या सार्धचन्द्रा उपान्तेनाभिसहिता ॥ १२८ ॥
एभि पचाक्षरैर्मन्त्र पचवक्त्रस्य कीर्तितम्।

---

२४ यत् तस्मात् त्वमवधारय। २५. वाञ्छितौ गुहाम्।
२६ ध्यानतत्परात्। २७. विवर्जित। २८. विहरत्येष।

क्रमात् सम्मदसन्दोह-नादगौरव-सञ्ज्ञका ॥ १२६ ॥
प्रासादस्तु भवेच्छेष पचमन्त्रा· प्रकीर्तिता ।
एकैकेन तथैकैक वक्त्त्र देव प्रपूजयेत् ॥ १३० ॥
एक समुदित कृत्वा षचभिर्वा प्रपूजयेत् ।
प्रसादेनाथ वा पचवक्त्र देव प्रपूजयेत् ॥ १३१ ॥
सम्मदादिषु मन्त्रेषु प्रासादस्तु प्रशस्यते ।
शम्भो प्रसादनेनैष यस्माद् वृत्तस्तु मन्त्रक ॥ १३२ ॥
तेन प्रासादसञ्ज्ञोऽय कथ्यते मुनिसत्तमै[२९] ।
तस्मात् सर्वेषु मन्त्रेषु प्रासाद' प्रीतिद पर[३०] ॥ १३३ ॥
आमोदकारक शम्भोर्मन्त्र सम्मद उच्यते ।
मन प्रपूरणाच्चापि सन्दोह परिकीर्तित ॥ १३४ ॥
आकर्षको भवेन्नादो गुरुत्वाद् गोरवाह्वय ।
एतद्व्यस्त समस्त च मन्त्र शम्भो प्रकीतितम् ॥ १३५ ॥
पचाक्षर तु यन्मन्त्र पचवक्त्रस्य कीर्तितम् ।
युवा तेनैव मन्त्रेण आराधयतमीश्वरम् ॥ १३६ ॥
ध्यान वक्ष्यामि शृणुत[३१] सम्यग् वेतालभैरवौ ।
पचवक्त्र महाकाय जटाजूटविभूषितम् ॥ १३७ ॥
चारुचन्द्रकलायुक्त मूर्ध्नि वालौघभूषितम्[३२] ।
बाहुभिर्दशभिर्युक्त व्याघ्रचर्मामराम्बरम् ॥ १३८ ॥
कालकूटधर कण्ठे नागहारोपशोभितम् ।
किरीटबन्धन[३३] बाहुभूषण च भुजगमान् ॥ १३६ ॥
बिभ्रत सर्वगात्रेषु ज्योत्स्नार्पितसुरोचिषम् ।
भूतिसलिप्तसर्वांगमेकैकत्र त्रिभिस्त्रिभि ॥ १४० ॥
नेत्रैस्तु पचदशभिर्ज्योतिष्मद्भिर्विराजितम् ।
वृषभोपरि सस्थं तु गजकृत्तिपरिच्छदम् ॥ १४१ ॥
सद्योजात वामदेवमघोर च तत परम् ।
तत् पुरुष तथेशान पचवक्त्र प्रकीर्तितम् ॥ १४२ ॥
सद्योजात भवेच्छुक्लं शुद्धस्फटिकसनिभम् ।
पीतवर्णं तथा सौम्य वामदेव मनोहरम् ॥ १४३ ॥
नीलवर्णमघोर तु दष्ट्रा भीतिविवर्धनम् ।
रक्त तत्पुरुषं देव दिव्यमूर्ति मनोहरम् ॥ १४४ ॥

२९. मुनिपुंगवै । ३० प्रभो । ३१. ध्यानञ्च शृणु वक्ष्यामि ।
३२. वालौघसगतम् । ३३. कोटीरबन्धन ।

श्यामल च तथेशान सर्वदेव शिवात्मकम् ।
चिन्तयेत् पश्चिमे त्वाद्य द्वितीय तु तथोत्तरे ॥ १४५ ॥
अघोर दक्षिणे देव पूर्वे तत्पुरुषं तथा ।
ईशान मध्यतो ज्ञेय चिन्तयेद् भक्तितत्पर॰ ॥ १४६ ॥
शक्तित्रिशूलखट्वांगवरदाभयद शिवम् ।
दक्षिणेष्वथ हस्तेषु वामेष्वपि तत शुभम्[३४] ॥ १४७ ॥
अक्षसूत्र बीजपूर भुजग डमरूत्पलम् ।
अष्टैश्वर्यसमायुक्त ध्यायेत् तु हृद्गत शिवम् ॥ १४८ ॥
एव विचिन्तयेद् ध्याने महादेव जगत्पतिम् ।
चिन्तयित्वा द्वारपालान् गणेशादीन् प्रपूजयेत् ॥ १४९ ॥
विशुद्धि पचभूताना चिन्तयित्वा ततो मुहु ।
अष्टमूर्तीस्तत पश्चात् पूजयेदष्टनामभि॰ ॥ १५० ॥
आसनानि च तस्याथ पूजयेत् सकलानि तु[३५] ।
भावादीन्यष्टपुष्पाणि हृदैव विनियोजयेत् ॥ १५१ ॥
नाराचमुद्रया तस्य ताडन परिकीर्तितम् ।
विसर्जन धेनुमुद्रा दर्शयित्वा विधानत ॥ १५२ ॥
निर्माल्यधारण कुर्यात् सदा चण्डेश्वर धिया ।
प्रत्येक पचभिर्मन्त्रैरङ्गादीनि प्रमार्जयेत् ॥ १५३ ॥
सम्मदादिभिरेतस्य पूर्वोक्तैर्नरसत्तमौ ।
बाला[३६] ज्येष्ठा तथा रौद्री काली च तदनन्तरम् ॥ १५४ ॥
कलविकरिणी देवी[३७] बलप्रमथिनी तथा ।
दमनी सर्वभूताना मनोन्मथिनी तथैव च ॥ १५५ ॥
अष्टौ ता पूजयेद् देवी क्रमाच्छम्भोश्च प्रीतये ।
एव शिव पूजयित्वा ध्यानतत्परमानस॰ ॥ १५६ ॥
जपेन्माला समादाय मन्त्र ध्यात्वा तथा गुरुम् ।
एक पचाक्षर मन्त्रमेक[३८] प्रासादमेव वा ॥ १५७ ॥
तत्सक्तमनसौ जप्त्वा शीघ्र सिद्धिमवाप्स्यथ[३९] ।
इति वा[४०] कथित मन्त्र ध्यानपूजाक्रम तथा ।
गच्छत नाटक शैल तत्राराधयत हरम् ॥ १५८ ॥

वेतालभैरवावूचतुः

पचाक्षरस्तु मन्त्रोऽय धृतस्त्वत्सम्मते मुने ।
अनेनैव हर देव पूजयिष्यावहे मुदा ॥ १५९ ॥

---

३४. शृणु । ३५. पूजयित्वा कलानि तु । ३६. रामां । ३७. चैव ।
३८. मेरु । ३९ मवाप्स्यत॰ । ४० नौ ।

इत्युक्त्वा तन्नमस्कृत्य तदा वेतालभैरवौ।
जग्मुतुर्नाटक शैल वशिष्ठानुमते नृप ॥ १६० ॥
तत्रास्ति सरसी रम्या सुसम्पूर्णमनोहरा[41]।
सर्वदा स्वच्छसलिला प्रफुल्लकमलोत्पला ॥ १६१ ॥
तस्यास्तीरे तु विपुल सुमनोज्ञो हराश्रम ।
सर्वदा दानवैर्देवै किन्नरै· प्रमथैस्तथा ॥ १६२ ॥
रक्ष्यते नृपशार्दूल नृत्यवादनतत्परै ।
यस्मान्नटति तत्रेशो नित्य कौतुकतत्पर ॥ १६३ ॥
तस्मान्नाटकनाम्नासौ[42] शैलराज प्रगीयते।
छत्राकार तु त शैल मनोज्ञ शकरप्रियम् ॥ १६४ ॥
आसाद्य यत्र सरसी तत्र गत्वा तु तौ तदा।
न चैवापश्यता तत्र हराश्रममनुत्तमम् ॥ १६५ ॥
गन्तु चैवाश्रमस्थान तौ नैवाशकता नृप।
ततो हर प्रणम्याशु तस्यैव सरसस्तटे ॥ १६६ ॥
निर्माय स्थण्डिल चारु वशिष्ठोक्तक्रमेण तु।
हरमाराद्धुमारेभे वेतालो भैरवोऽपि च ॥ १६७ ॥
आराधयन्तौ भूतेश तौ तदा शकरात्मजौ।
दृष्ट्वा हरो देवगणै· सार्ध तस्मिस्तु पर्वते।
अधित्यकाया न्यवसत् स्वाश्रमेऽपणया सह ॥ १६८ ॥
अधोभागे सरस्तीरे तपस्यन्तौ हरात्मजौ।
स्थितौ दृष्ट्वा देवगणैः सहित शकर स्थित ॥ १६९ ॥
नृत्यमर्दलशब्दो यो हरस्य सतत भवेत्।
शृणुतस्तौ[43] तदा शब्द गन्तु द्रष्टुं न लभ्यते ॥ १७० ॥
हरेणाधिष्ठित शैलः सर्वदेवगणै सह।
राजते स्म तदा भूप सुधर्मा वासवी यथा[44] ॥ १७१ ॥
ध्यायतोस्तु तदा तत्र भगवान् वृषभध्वज ।
नचिरादेव तस्याभूद् ध्यानमार्गेषु निश्चल ॥ १७२ ॥
तौ पूजयन्तौ गच्छन्तौ स्थितौ वा चन्द्रशेखरम्।
नैव [45]तत्यजतुश्चित्तै· कदाचिदपि भूमिप ॥ १७३ ॥
पचाक्षरेण मन्त्रेण पूजयन्तौ वृषध्वजम्।

---

४१ पूर्णा मम मनोहरा। ४२ तस्मात्त नाटक नाम्ना।
४३. शृण्वतस्तु ४४. सुधर्म्मेवामरावती।
४५ तौ अहतु·।

व्यतिचक्रमतुस्तौ तु सहस्र परिवत्सरान् ॥ १७४ ॥
निराहारौ यताहारौ हरसक्तमानसौ ।
तपसा निन्यतुर्वर्षान् सहस्र चैकवर्षवत् ॥ १७५ ॥
गते वर्षसहस्रे तु स्वयमेव वृषध्वज ।
प्रसन्नस्तु तयोर्भूत्वा प्रत्यक्षत्वमुपागतः ॥ १७६ ॥
त तु प्रत्यक्षतो दृष्ट्वा तदा वेतालभैरवौ ।
वृषध्वज तुष्टुवतुर्ध्यानगम्य पुरःस्थितम् ॥ १७७ ॥
हररूप यथाध्यात हृद्गत तेजसोज्ज्वलम् ।
तथा दृष्ट्वा ततस्ताभ्या [४६]वशिष्ठस्यानुमानत ॥ १७८ ॥

वेतालभैरवावूचतुः

पचवक्त्र महाकाय सर्वज्ञानमयं परम् ।
संसारसागरत्राण प्रणमावो वृषध्वजम् ॥ १७९ ॥
त्व पर परमात्मा च परेश पुरुषोत्तम ।
त्व कूटस्थो जगद्व्यापी प्रधानः परमेश्वर ॥ १८० ॥
रूपात्मा त्व महातत्त्व तत्त्वज्ञानालयं[४७] प्रभु ।
साख्ययोगालय शुद्धो गुणत्रयविभागवित् ॥ १८१ ॥
त्व नित्यस्त्वमनित्यश्च जगत्कर्ता लय स्मृत ।
एकोऽनेकस्वरूपश्च शान्तचेष्टो जगन्मय ॥ १८२ ॥
निर्विकारो निराधारो नित्यानन्दः सनातन ।
त्व विष्णुस्त्व महेन्द्रस्त्व[४८] ब्रह्मा त्व जगता पति ॥ १८३ ॥

यो रूपरूपेश्वररत्नमाल
सम्भूतिभूतो निरवग्रहश्च ।
काद्यावतीर्णावगतप्रमाथी
योगेश्वरो ज्ञानगतिस्त्वगम्य ॥ १८४ ॥
प्रमेयरूपात्मधराधराभो
भोगीन्द्रबद्धामृतभोगतन्त्र ।
सूक्ष्माक्षरस्तत्त्वविदप्रमाथी
त्व देवदेव शरण सुराणाम् ॥ १८५ ॥
विकल्पमानापरिहीनदेह·
शुद्धान्तधामानुगतैकविद्यः ।
वर्धिष्णुरुग्रः पुरुष· परात्मा
त्वमिन्द्रियौघस्य विचारबुद्धि ॥ १८६ ॥

४६ वशिष्ठो मनसा नुत । ४७ मय । ४८ महेशश्च ।

त्व नाथनाथ प्रभव परेषा
गतिर्मुनीना परयोगिगम्य ।
त्व भूधरो भागधरो ह्यनन्तो
विश्वात्मनस्ते बहव प्रपञ्चा ॥ १८७ ॥
ज्ञानामृतस्यन्दकपूर्णचन्द्रो
मोहान्धकारस्य पर प्रदीप [49] ।
भक्तात्मजाना परम पिता त्व
कामे च पचाननरूपधारी [50] ॥ १८८ ॥
शास्ताखिलाना प्रथमो विवस्वा-
स्तनूनपात् त्व तनुषे गुणौघान् ।
त्व ब्रह्मरूपेण करोषि सृष्टि
विष्णुस्वरूपे सतत स्थिति च ॥ १८९ ॥
त्व रुद्ररूपी कुरुषे तथान्त
त्वत्तो न चान्यज्जगतीह वस्तु ।
त्व रात्रिनाथो दिवसेश्वरश्च
त्वमग्निराप पवनो धरित्री ॥ १९० ॥
नभस्तथा त्व क्रतुतन्त्रहोता
त्वमष्टमूर्तिर्भवतो न चान्यत् ।
अनन्तमूर्तिस्त्विह मुख्यभावा-
न्निगद्यते चाष्टमयी त्रिमूर्तिः ॥ १९१ ॥
अनन्तमूर्ते कथमन्यथा ते
सख्यास्ति रूपस्य यदष्टमूर्ति ।
त्व त्र्यम्बकस्त्व त्रिपुरान्तकश्च
त्व शम्भुरीश शमनो विधाता ॥ १९२ ॥
सहस्रबाहुश्च हिरण्यबाहु
सहस्रमूर्तिस्त्विह पचवक्त्र. ।
प्रभूतनेत्रस्तु षडर्धनेत्र
प्रभूतबाहुर्दशबाहुरीश ॥ १९३ ॥
प्रभूतभोगी मितभोगयुक्तो
भोग्यानुसारो निरवग्रहश्च ॥ १९४ ॥
नित्यानित्यस्वरूपाय नित्यधामस्वरूपिणे ।
परतत्त्वस्वरूपाय नमस्तुभ्यं शिवात्मने ॥ १९५ ॥

४९. प्रदीप्तः । ५० रूपरूपी ।

नान्त लिंगस्य यस्याप्त विष्णुना ब्रह्मणा तव ।
तस्यावा किं विधास्याव स्तुतिवाक्य वृषध्वज ॥ १९६ ॥
स्वरूप यस्य जानन्ति न देवा नापि दानवा ।
बालावावा[52] कथन्तु त्वा स्तोष्याव परमेश्वर ॥ १९७ ॥
भक्तिमात्रेण देवेश तवावा[53] वृषभध्वज ।
कुर्व प्रणाम गौरीश भूयस्तुभ्य नमो नम ॥ १९८ ॥

और्व उवाच

इति स्तुतो महादेवो वेतालेन महात्मना ।
भैरवेणापि राजेन्द्र प्रसन्न प्राह तौ तदा ॥ १९९ ॥

भगवानुवाच

तुष्टोऽस्मि युवयो पुत्रौ वृणुत वाञ्छित वरम् ।
दास्यामि युवयोरिष्ट प्रसन्नोऽह तपोव्रतै ॥ २०० ॥
स्तुतिभिस्तु दमैश्चापि तथैकान्तानुचिन्तनै ।
मुहुमुहु सुप्रसन्न इष्ट दास्यामि वा सुतौ ॥ २०१ ॥

वेतालभैरवावूचतुः

तुष्टोऽसि यदि सत्य नौ सत्यमावा सुतौ यदि ।
वृषध्वज तवैवेह तदेष्ट देहि नौ वरम् ॥ २०२ ॥
सुतभावेन पितर भवन्त जगतां पतिम् ।
नित्यं यथावगच्छावस्तथा देहि वर तु नौ ॥ २०३ ॥
न राज्यमभिकाङ्क्षावो न धन नान्यदेव वा ।
त्वद्भक्त्या सेवन कर्तु तवेच्छावो वृषध्वज ॥ २०४ ॥
त्वत्पादपकजद्वन्द्वे नित्य मधुकरात्मताम् ।
त्वयि प्रसन्ने नेत्राणां युगले प्राप्नुता सदा ॥ २०५ ॥
इतोऽन्यथा त्वच्चिन्ताभिस्त्वद्ध्यानैस्त्वत्प्रपूजनै ।
कल्पकोटिसहस्राणि यान्तु सम्यक्तथावयोः ॥ २०६ ॥
ततस्तद्[54] वचन श्रुत्वा महादेवो हसन्निव ।
सर्वैर्देवगणै सार्ध देवत्वमकरोत्तयोः ॥ २०७ ॥
देवेन्द्रसम्मतेनैव सुधामानीय नाकतः ।
वेतालभैरवौ तान्तु पाययामास शकरः ॥ २०८ ॥
पीतेऽमृते ततस्तौ तु मर्त्यतां नरसत्तमौ ।
अमर्त्यतां परित्यज्य प्रापतु· शिवशक्तितः ॥ २०९ ॥

---

५२. नरावावां० । ५३. भवावा । ५४. तयो· ।

तस्मिन्काले स्वपन्तौ तु दिव्यज्ञानबलान्वितौ।
दिव्यरूपोपसम्पन्नौ बभूवतुररिन्दमौ॥ २१०॥
अभिन्नेनैव देहेन देवत्व गतयोस्तयो।
प्राह शम्भुस्तदा तौ तु सुतौ परमहर्षितौ॥ २११॥

भगवानुवाच

अह तुष्टस्तु युवयो पार्वतीं दयिता मम।
मद्दत्त काममिच्छन्तावाराधयतमीश्वरीम्[५५]॥ २१२॥
तामृते तु न शक्नोमि दातुमिष्ट सनातनम्।
सेवितु च सुतौ नित्य शरण व्रजत शिवाम्[५७]॥ २१३॥
अचिराद् येन भावेन प्रीति देवी गमिष्यति।
अत्र वा तत्र[५८] वा गत्वा तेन भावेन चार्य्यताम्॥ २१४॥

इति श्रीकालिकापुराणे वेताल भैरवोत्पत्तिकथने
एकपचाशोऽध्याय॥ ५१॥



५५. मद्गतकाममाकांक्षा। ५७ तस्मात्त्वा शरण व्रज।
५८. यत्र वा तत्र।

द्विपञ्चाशोऽध्यायः

और्व उवाच

एव वदति भूतेशे तदा वेतालभैरवौ।
प्राहतुर्व्योमकेश तौ हर्षोत्फुल्लविलोचनौ ॥ १ ॥

वेतालभैरवावूचतुः

पार्वत्या न हि जानीवो ध्यान मन्त्र विधि तथा।
कथमाराधयिष्यावो भगवन् सम्यगुच्यताम् ॥ २ ॥

श्रीभगवानुवाच

महामायाविधि मन्त्र कल्प च भवतो सुतौ।
उपदेक्ष्यामि तत्त्वेन येन सव भविष्यति ॥ ३ ॥

और्व उवाच

इत्युक्त्वा स महामायाध्यान मन्त्र विधिं तथा।
कथयामास गिरिशस्तयो सम्यङ् नृपोत्तम ॥ ४ ॥
यदष्टादशभि पश्चात्पटलैश्च स भैरव।
स निर्णयविधि कल्प निबबन्ध शिवामृते ॥ ५ ॥

सगर उवाच

कीदृङ् मन्त्र पुरा शम्भुरवोचदुभयोस्तयो.।
येनाराध्य महामाया तौ गणेशत्वमापतु. ॥ ६ ॥
सकल्प सरहस्य च साङ्ग तच्छ्रोतुमुत्सहे।
दशाष्टपटलैर्यत् तु निबबन्ध सभैरव ॥ ७ ॥

और्व उवाच

बहुत्वाद् वदितु तस्य चिरेणैव तु शक्यते।
तस्मात् सद्य समुद्धृत्य यन्महादेवभाषितम्।
सक्षेपात् कथये तत्त्वं तच्छृणुष्व नृपोत्तम ॥ ७ ॥
पृच्छन्तौ पार्वती मन्त्र तदा वेतालभैरवौ।
जगाद स महादेव शृणुत मन्त्रकल्पकौ ॥ ९ ॥

श्रीभगवानुवाच

शृणु मन्त्र प्रवक्ष्यामि गुह्याद् गुह्यतम परम्।
अष्टाक्षर तु वैष्णव्या महामायामहोत्सवम् ॥ १० ॥

अस्य श्रीवैष्णवीमन्त्रस्य नारदऋषि शम्भुर्देवता ।
अनुष्टुप् छन्द सर्वार्थसाधने विनियोग ॥ ११ ॥
हान्तान्तपूर्वो रान्तश्च[५९] नान्तो णान्तस्तथैव च ।
कैकादशाष्टादिषष्ठ खान्तो विष्णुपुर सर ॥ १२ ॥
एभिरष्टाक्षरैर्मन्त्र शोणपत्रसमप्रभम् ।
ॐकार पूर्वत कृत्वा जप्य सर्वैस्तु साधकै ॥ १३ ॥
महामन्त्रमिद गुह्य वैष्णवीमन्त्रसज्ञकम् ।
मन्त्र कलेवरगत तस्मादङ्ग प्रकीर्तितम् ॥ १४ ॥
महादेवस्योर्ध्वमुख बीजमेतत् प्रकीर्तितम् ।
ॐकाराक्षरबीज च यकार शक्तिरुच्यते ॥ १५ ॥
सबीज कथित मन्त्र कल्पं च शृणु भैरव ।
तीर्थे नद्या देवखाते गर्तप्रस्रवणादिके ॥ १६ ॥
परकीयेतरे तोये स्नानं पूर्व समाचरेत् ।
आचान्त शुचिता प्राप्त कृतासनपरिग्रह ॥ १७ ॥
उत्तराभिमुखो भूत्वा स्थण्डिल मार्जयेत् तत ।
करेणानेन मन्त्रेण यूं स क्षित्या इति स्वयम् ॥ १८ ॥
ॐ ह्री[६०] स इति मन्त्रेण आशापूरणकेन च ।
तोयैरभ्युक्षयेत् स्थान भूतानामपसारणे ॥ १९ ॥
तत सव्येन हस्तेन गृहीत्वा स्थण्डिल शुचि ।
मन्त्र लिखेत् सुवर्णेन याज्ञिकेन कुशेन वा ॥ २० ॥
ॐ वैष्णव्यै नम इति मन्त्रराजमथापि वा ।
ततस्त्रिमण्डलं कुर्यात् तेनैव समरेखया ॥ २१ ॥
नित्यासु न हि पूजासु रजोभिर्मण्डल लिखेत् ।
पुरश्चरणकार्येषु तत्काम्येषु प्रयोजयेत् ॥ २२ ॥
रेखामुदीच्या[६१] प्रथम पश्चिमे तदनन्तरम् ।
दक्षिणे तु तत. पश्चात् पूर्वभागे तु शेषत. ॥ २३ ॥
वर्णाना च सहद्वारै रेवमेव[६२] क्रमो भवेत् ।
ॐ ह्रीं श्रीं स इति मन्त्रेण मण्डल पूजयेत् तत. ॥ २४ ॥
हस्तेन मण्डल कृत्वा कुर्याद् दिग्बन्धन तत ।
आशाबन्धनमन्त्रेण पूर्वोक्तेन यथाक्रमम् ॥ २५ ॥
फडन्तेनात्मनाप्यत्र करेणैव निबन्धयेत् ।

---

५९. मान्त । ६० ॠ । ६१. रेखामुदीचीं प्रथमां ।
६२ क्रमत्वाद् वा ।

यवाना मण्डलैरेकमङ्गुल चाष्टभिर्भवेत् ।। २६ ।।
अदीर्घयोजितैर्हस्तैश्चतुर्विशतिरङ्गुलै ।
तत्प्रमाणेन हस्तेन हस्तैक तस्य मण्डलम् ।। २७ ।।
पद्म वितस्तिमात्र स्यात् कर्णिकार तदर्धकम् ।
दलान्यन्योन्यसक्तानि ह्यायतानि नियोजयेत् ।। २८ ।।
न न्यूनाधिकभागानि सबर्हिर्वेष्टितानि च ।
मध्यभागे न्यसेद् द्वारन्न न्यूने नाधिके तथा ।
सुबद्ध मण्डल तच्च रक्तवण विचिन्तयेत् ।। २९ ।।

इतोऽन्यथा मण्डलमुग्रमस्या.
करोति यो लक्षणभागहीनम् ।
फलं न चाप्नोति न काममिष्टं
तस्मादिद मण्डलमत्र लेख्यम् ।। ३० ।।

इति श्रीकालिकापुराणे महामायाकल्पेऽष्टादशपटले
द्विपञ्चाशत्तमोऽध्याय ।। ५२ ।।

त्रिपञ्चाशोऽध्यायः

श्रीभगवानुवाच

ततो लमिति मन्त्रेण अर्घपात्रस्य मण्डलम् ।
चतुष्कोण विधायाशु द्वारपद्मविवर्जितम् ॥ १ ॥
ओं ह्रीं श्रीमितिमन्त्रेण अर्घपात्र तु मण्डले ।
विन्यसेत् प्रथम तत्र पूजयित्वा समिध्यति[1] ॥ २ ॥
ओं ह्रीं ह्रौमितिमन्त्रेण गन्धपुष्पे तथा जलम् ।
अर्घपात्रे क्षिपेत् तत्र मण्डल विन्यसेत् तत ॥ ३ ॥
पूर्ववन्मण्डल कृत्वा अर्घपात्रे ततो जलै ।
त्रिभागै[2] पूरयेत् पात्र पुष्प तत्र विनि क्षिपेत्[3] ॥ ४ ॥
ततो ह्रीमिति मन्त्रेण आसन पूजयेत् स्वकम् ।
तत क्ष्रौमितिमन्त्रेण आत्मान[4] पूजयेद् बुध ॥ ५ ॥
गन्धै पुष्पै शिरोदेशे तत पूजा समाचरेत्[5] ।
ओं ह्रीं स इति मन्त्रेण पुष्प हस्ततलस्थितम् ॥ ६ ॥
संमृज्य सव्यहस्तेन घ्रात्वा वामकरेण तु ।
ऐशान्या निक्षिपेदेतत् पूर्वमन्त्रेण कोविद ॥ ७ ॥
रक्त पुष्प गृहीत्वा तु कराभ्या पाणिकच्छपम् ।
बद्ध्वा कुर्यात् तत पश्चाद् दहनप्लवनादिकम् ॥ ८ ॥
वामहस्तस्य तर्जन्या[6] दक्षिणस्य कनिष्ठिकाम्[7] ।
तथा दक्षिणतर्जन्या[8] वामाङ्गुष्ठ[9] नियोजयेत् ॥ ९ ॥
उन्नत दक्षिणाङ्गुष्ठ वामस्य मध्यमादिका ।
अङ्गुलीर्योजयेत् पृष्ठे दक्षिणस्य करस्य च ॥ १० ॥
वामस्य पितृतीर्थेन मध्यमानामिके तथा ।
अधोमुखे तु ते कुर्याद् दक्षिणस्य करस्य च ॥ ११ ॥
कूर्मपृष्ठसम पृष्ठ कुर्याद् दक्षिणहस्तत[10] ।
एव बद्ध सर्वसिद्धि ददाति पाणिकच्छप ॥ १२ ॥

---

१ नमित्यपि । २. त्रिभागं । ३ पुन क्षिपेत् ।
४. आसनं । ५ समारभेत् । ६. तर्जन्या ।
७ कनिष्ठया । ८ तर्जन्या । ९. वामांगुष्ठेन योजयेत् ।
१० कूर्मपृष्ठसमं कुर्याद् दक्षिणस्य च हस्तत ।

कुर्यात् तद्धृदयासन्न[11] निमील्य नयनद्वयम् ।
सम कायशिरोग्रीव कृत्वा स्थिरमना बुध ॥ १३ ॥
ध्यान समारभेद् देव्या दाहप्लवनपूर्वकम् ।
अग्नि वायौ विनिक्षिप्य वायु तोये जल हृदि ॥ १४ ॥
हृदय निश्चले दत्त्वा[12] आकाशे निक्षिपेत्स्वनम् ।
ॐ हूँ फडिति मन्त्रेण भित्त्वा रन्ध्र तु मस्तके ॥ १५ ॥
शब्देन सहित जीवमाकाशे स्थापयेत् तत ।
वाग्वग्नियमशक्राणा बीजेन वरुणस्य च ॥ १६ ॥
परास्थानपराश्चैतै. सार्धचन्द्रै सबिन्दुकै ।
शोष दाह तथोच्छाद पीयूषासेवन परम् ॥ १७ ॥
यथाक्रमेण कर्तव्य चितामात्र विशुद्धये ।
ततस्तु देवीबीजेन अणु जाम्बूनदाकृतिम् ॥ १८ ॥
तत्रासाद्य द्विधा कुर्यात् ऊम् ह्रीं श्रीमिति मन्त्रका. ।
तदूर्ध्वभागेषु हृद्लोक स्वर्गो च ख तथा ॥ १९ ॥
निष्पाद्य शेषभागेन भुव पातालवारिणि ।
चिन्तयेत्तत्र सर्वाणि सप्तद्वीपा च मेदिनीम् ॥ २० ॥
तत्तेषु सागरास्तास्तु स्वर्णद्वीप विचिन्तयेत् ।
तन्मध्ये रत्नपर्यक रत्नमण्डपसस्थितम् ॥ २१ ॥
आकाशगङ्गातोयोघै सदैव सेवित शुभम् ।
तत्पर्यके रक्तपद्म प्रसन्न सर्वदाशिवम् ॥ २२ ॥
चिन्तयेत् स्वर्णमानाक सप्तपातालनालकम् ।
आब्रह्मभुवनस्पर्शि सुवर्णाचलकर्णिकम् ॥ २३ ॥
तत्रस्थितां महामाया ध्यायेदेकाग्रमानस ।
शोणपद्मप्रतीकाशा मुक्तमूर्धजलम्बिनी ॥ २४ ॥
चलत्काञ्चनमारुह्य कुण्डलोज्ज्वलशालिनीम् ।
सुवर्णरत्नसम्पन्न - किरीटद्वयधारिणीम् ॥ २५ ॥
शुक्लकृष्णारुणैर्नेत्रैस्त्रिभिश्चारुविभूषिताम् ।
सन्ध्याचन्द्रसमप्रख्य-कपोलां लोललोचनाम् ॥ २६ ॥
विपक्वदाडिमीबीजदन्तान् सुभ्रूयोगोज्ज्वलाम् ।
बन्धूकदन्तवसना शिरीषप्रभनासिकाम् ॥ २७ ॥
कम्बुग्रीवा विशालाक्षीं सूर्यकोटिसमप्रभाम् ।
चतुर्भुजां विवसना पीनोन्नतपयोधराम् ॥ २८ ॥

11. सन्ने । 12 कृत्वा । स्वक ।

दक्षिणोर्ध्वेन निस्त्रिशत्परेण सिद्धसूत्रकम् ।
बिभ्रती वामहस्ताभ्यामभीति वरदायिनीम् ॥ २९ ॥
निम्ननाभिक्रमायाता क्षीणमध्या मनोहराम् ।
आनमन्नागपाशोरू गुप्तगुल्फा सुपार्ष्णिकाम् ॥ ३० ॥
बद्धपर्यङ्कसकल्पा निवीरासनराजिताम् ।
गात्रेण रत्नसस्तम्भ सम्यगालम्ब्य सस्थिताम् ॥ ३१ ॥
किमिच्छसीति वचन व्याहरन्ती मुहुर्मुहु ।
पञ्चानना पुर सस्थ निरीक्षन्ती सुवाहनाम् ॥ ३२ ॥
मुक्तावली - स्वर्णरत्नहारकङ्कणादिभि ।
सर्वैरलङ्कारगणैरुज्ज्वला सस्मिताननाम् ॥ ३३ ॥
सूर्यकोटिप्रतीकाशा सर्वलक्षणसयुताम् ।
नवयौवनसम्पन्ना तथा सर्वाङ्गसुन्दरीम् ॥ ३४ ॥
ईदृशीमम्बिका ध्यात्वा नम फडिति मस्तके ।
स्वकीये प्रथम दद्यात् सोऽहमेव विचिन्त्य च ॥ ३५ ॥
अङ्गन्यासकरन्यासौ तत कुर्यात् क्रमेण च ।
एभिर्मन्त्रै स्वरै सह सुमीसूमै क्रमान्वितै ॥ ३६ ॥
ओम् क्षौम् चैते सप्रणवा रक्तवर्णा मनोहराम् ।
अङ्गुष्ठादिकनिष्ठान्तमन्त्रसवेष्टन फट् ॥ ३७ ॥
प्रान्तेन कुर्याद् विन्यास पूर्वं करतलद्वये ।
हृच्छिर शिखाकवचनेत्रेषु क्रमतो न्यसेत् ॥ ३८ ॥
ततस्तु मूलमन्त्रस्य वक्त्रे पृष्ठे तथोदरे ।
बाह्वोर्गुह्ये पादयोश्च जङ्घयोर्जघने क्रमात् ॥ ३९ ॥
विन्यसेदक्षराण्यष्टौ ओंकार च तथा स्मरन् ।
एभि प्रकारैरतिशुद्धदेह पूजा सदैवार्हति नान्यथा हि ।
शरीरशुद्धि मनसो निवेश भूतप्रसार कुरुते नृणा तत् ॥ ४० ॥

इति श्रीकालिकापुराणे महामायाकल्पे त्रिपञ्चाशोऽध्यायः ॥

चतुःपञ्चाशोऽध्यायः

भगवानुवाच

ततोऽर्घपात्रे तन्मन्त्रमष्टधाकृत्य सजपेत् ।
तेन तोयानि पुष्पाणि स्व मण्डलमथासनम् ॥ १ ॥
आशोधयेत् तत पश्चात् पूजोपकरण समम् ।
ॐ ऐं ह्रीं ह्रौमिति मन्त्रेण शब्दप्राशुविवर्जितम् ॥ २ ॥
द्वारपाल ततो देव्या आसनानि च पूजयेत् ॥
नन्दिभृङ्गिमहाकालगणेशा द्वारपालकाः ।
उत्तरादिक्रमात् पूज्या आसनानि च[13] मध्यत ॥ ३ ॥
आधारशक्तिप्रभृति हेमाद्यन्तान्[14] प्रपूजयेत् ।
प्रसिद्धान् सर्वतन्त्रेषु पूजाकल्पेषु भैरव ॥ ४ ॥
दशदिक्पालसहितान् धर्माधर्मादिकास्तथा ।
मण्डलाग्न्यादिकोणेषु पूजयेत् पार्श्वदेशत ॥ ५ ॥
सूर्याग्निसोममरुता मण्डलानि च पद्मकम् ।
रजस्तथा तम सत्त्व योगपीठ गुरो पदम् ॥ ६ ॥
सारादीन् भद्रपीठान्तान् सागोपागान् प्रपूजयेत् ।
ब्रह्माण्ड स्वर्णडिम्ब[15] च ब्रह्मविष्णुमहेश्वरान् ॥ ७ ॥
ससागरान् सप्तद्वीपान्[16] स्वर्णद्वीप समण्डपम् ।
रत्नपद्म सपर्यङ्क रत्नस्तम्भ तथैव च ॥ ८ ॥
पचानन मण्डलस्य मध्येऽवश्य प्रपूजयेत् ।
ह्रीं मन्त्रेण तत कूर्मपृष्ठ पाण्योर्निबध्य च ॥ ९ ॥
ध्यायेच्च पूर्ववद् देवीमासाद्यासनमुत्तमम् ।
हृन्मध्ये चिन्तयेत् स्वर्णद्वीप पर्यङ्कसभृतम्[17] ॥ १० ॥
पश्यन्निव ततो देवीमेकाग्रमनसा स्मरेत् ।
प्रत्यक्षीकृत्य हृदये मानसैरुपचारकै ॥ ११ ॥
षोडशाना[18] प्रकारैस्तु हृदिस्था पूजयेच्छिवाम् ।
ततस्तु वायुबीजेन दक्षिणे च पुटेन च ॥ १२ ॥
नासिकाया विनि:सार्य क्रीं मन्त्रेण च भैरव ।

---

१३. तु । १४. हेमाद्यन्ता । १५ द्वीपं च । १६ सागरान् सप्तद्वीपास्तु ।
१७ सहितम् । १८ अयशाना ।

स्थापयेत् पद्ममध्ये तु तद्धस्त न वियोजयेत् ॥ १३ ॥
कृते वियोगे हस्तस्य पुष्पात् तस्माच्च भैरव ।
गन्धर्वैं पूज्यते देवी पूजकैर्नाप्यते फलम् ॥ १४ ॥
आवाहन तत कुर्याद् गायत्र्या शिरसा सह[१९] ।
महामायायै विद्महे त्वा चण्डिकाख्या धीमहि[२०] ॥ १५ ॥
एतदुक्त्वा[२१] तत पश्चाद् धियो यो न प्रचोदयात् ।
स्नानीय देवि ते तुभ्य ॐ ह्री श्रीं नम इत्यत[२२] ॥ १६ ॥
स्नानीय च ततो देव्यै दद्याल्लक्षणलक्षितम् ।
ततस्तु मूलमन्त्रेण गन्धपुष्प सदीपकम् ॥ १७ ॥
धूपादिक प्रदद्यात् तु[२३] मोदक पायस तथा ।
सिता गुड दधि-क्षीर सर्पिर्नानाविधै फलै ॥ १८ ॥
रक्तपुष्प पुष्पमाला सुवर्णरजतादिकम् ।
नैवेद्यमुत्तम देव्या लाङ्गल मोदक सिताम् ॥ १९ ॥
शाण्डिल्यकरताम्राख्य-कूष्माण्डाना फलानि च ।
हरीतकीफल चापि नागरङ्गकमेलकाम्[२४] ॥ २० ॥
बालप्रिय च यद् द्रव्य कसेरुकबिसादिकम् ।
तोय च नारिकेलस्य देव्यै देय[२५] प्रयत्नत ॥ २१ ॥
रक्त कौशेयवस्त्र च देय नील कदापि न ।
देव्या प्रियाणि पुष्पाणि बकुल केशर तथा ॥ २२ ॥
माध्य कह्लारवज्राणि[२६] करवीरकुरुण्टकान् ।
अर्कपुष्प शाल्मलक दूर्वाङ्कुर सुकोमलम्[२७] ॥ २३ ॥
कुशमञ्जरिका दर्भा[२८] बन्धूककमले तथा ।
मालूरपत्र पुष्प च त्रिसन्ध्यारक्तपर्णके ॥ २४ ॥
सुमनासि प्रियाण्येतान्यम्बिकायाश्च भैरव ।
बन्धूक बकुल माध्य बिल्वपत्राणि सम्यकम् ॥ २५ ॥
उत्तम सर्वपुष्पेषु द्रव्ये पायसमोदकौ ।
माल्य बन्धूकपुष्पस्य शिवायै बकुलस्य वा ॥ २६ ॥
करवीरस्य माध्यस्य सहस्राणा ददाति य ।
स कामान् प्राप्य चाभीष्टान् मम लोके प्रमोदते ॥ २७ ॥

---

१९. शिवया शिवम् । २० महामाये विद्महे त्वा चण्डिकायै स्वधीमहि
२१. एवमुक्त्वा । २२ इत्युत । २३ धूपादिक च दद्यात्तु ।
२४. नागरंगकहैमना । २५. दद्यात् । २६ मन्दारवज्राणि ।
२७. पूर्वांकुरसुकोमला । २८ गर्भा ।

चन्दनं शीतलं[29] चैव कालीयकसमन्वितम्।
अनुलेपनमुख्यं तु देव्यै दद्यात् प्रयत्नतः॥ २८॥
कर्पूरं कुङ्कुमं कूर्चं मृगनाभिं सुगन्धिकम्[30]।
कालीयकं सुगन्धेषु देव्याः प्रीतिकरं परम्॥ २९॥
यक्षधूपः प्रतीवाहः पिण्डधूपः सगोलकः[31]।
अगुरुः सिन्धुवारश्च धूपाः प्रीतिकरा मताः॥ ३०॥
अगरागेषु सिन्दूरं देव्याः प्रीतिकरं परम्।
सुगन्धि शालिजं चान्नं मधुमाससमन्वितम्॥ ३१॥
अपूपं पायसं क्षीरमन्नं देव्याः प्रशस्यते।
रत्नोदकं सकर्पूरं पिण्डीतककुमारकौ[32]॥ ३२॥
रोचनं पुष्पकं देव्याः स्नानीयं परिकीर्तितम्।
घृतप्रदीपो दीपेषु प्रशस्तः परिकीर्तितः॥ ३३॥
पुष्पाञ्जलित्रयं दद्याद् मूलमन्त्रेण शोभनम्।
दत्त्वोपचारानखिलान्मध्ये चैताः प्रपूजयेत्॥ ३४॥
कामेश्वरीं गुप्तदुर्गां विन्ध्यकन्दरवासिनीम्।
कोटेश्वरीं दीर्घिकाख्यां प्रकटीं भुवनेश्वरीम्[33]॥ ३५॥
आकाशगंगां कामाख्यां यदां दिक्करवासिनीम्[34]।
मातङ्गीं ललितां दुर्गां भैरवीं सिद्धिदां तथा॥ ३६॥
बलप्रमथिनीं चण्डीं चण्डोग्रां चण्डनायिकाम्।
उग्रां[35] भीमां शिवां शान्तां जयन्तीं कालिकां तथा॥ ३७॥
मङ्गलां भद्रकालीं च शिवां धात्रीं कपालिनीम्[36]।
स्वाहां स्वधामपर्णां च पद्मपुष्करिणीं तथा॥ ३८॥
दमनीं[37] सर्वभूतानां मनःप्रोत्साहकारिणीम्[38]।
दमनीं सर्वभूतानां चतुःषष्टिं च योगिनीः॥ ३९॥
एताः सम्पूज्य मध्ये तु मन्त्रेणाङ्गानि पूजयेत्।
हृच्छिरस्तु [39]शिखावर्मनेत्रबाहुपदानि च॥ ४०॥
मूलमन्त्राद्यक्षरैस्तु त्रिभिराद्यङ्गपूजनम्।
एकैकं वर्द्धयेत् पश्चान्मन्त्राण्यङ्गौघपूजने॥ ४१॥

---

२९. कुचन्दनं श्रितं चैव। ३० मृगनाभिसमन्वितं।
३१ सुगोलकः। ३२. पिण्डीलककुमारकौ।
३३ कोटीश्वरीं दीर्घिकाख्यां तथा दिक्करवासिनीम्।
३४ मुद्रितपुस्तके अधिकम्। ३५ उमां।
३६ कपालिकाम्। ३७ मदनीं।
३८ प्रोन्मादकारिणीम्। ३९. शिखाकवच।

सिद्धसूत्र च खड्ग च खड्गमन्त्रेण पूजयेत् ।
ततोऽष्टपत्रमध्ये[40] तु पूजयेदष्टयोगिनी ॥ ४२ ॥
शैलपुत्री चण्डघण्टा स्कन्दमातरमेव च ।
कालरात्रि च पूर्वादिचतुर्दिक्षु प्रपूजयेत् ॥ ४३ ॥
चण्डिकामथ कूष्माण्डी तथा कात्यायनी शुभाम् ।
महागौरीं चाग्निकोणे नैऋत्यादिषु पूजयेत् ॥ ४४ ॥
महामाया क्षमस्वेति[41] मूलमन्त्रेण चाष्टधा ।
पूजयेत् पद्ममध्ये तु बलिदान तत परम् ॥ ४५ ॥

एव यदा कल्पविधानमानै
सम्पूज्यते भैरव कामदेवी ।
तदा स्वय मण्डलमेत्य देय
गृह्णाति काम च ददाति सम्यक् ॥ ४६ ॥

इति श्रीकालिकापुराणे अष्टादशपटलोद्धारे महामायाकल्प-श्चतु पचाशोऽध्याय ॥ ५४ ॥



४०. पत्रैरब्जस्य । ४१. नमामीति ।

पञ्चपञ्चाशोऽध्यायः

श्रीभगवानुवाच

बलिदान तत पश्चात् कुर्याद् देव्या प्रमोदकम्[40] ।
मोदकैर्गजवक्त्र च हविषा तोषयेद्रविम्[41] ॥ १ ॥
तौर्यत्रिकैश्च नियमै शकर तोषयेद्धरिम्[42] ।
चण्डिका बलिदानेन तोषयेत् साधक सदा ॥ २ ॥
पक्षिण कच्छपा ग्राहाश्छागलाश्च[43] वराहका ।
महिषो गोधिकाशोषा तथा[44] नवविधा मृगा ॥ ३ ॥
चामर कृष्णसारश्च शश पचाननस्तथा ।
मत्स्या स्वगात्ररुधिरैश्चाष्टधा बलयो महा[45] ॥ ४ ॥
अभावे च तथैवैषा कदाचिद्धयहस्तिनौ ।
छागला शरभाश्चैव नरश्चैव[46] यथाक्रमात् ॥ ५ ॥
बलिर्महाबलिरिति बलय परिकीर्तिता ।
स्नापयित्वा बलिं तत्र पुष्पचन्दनधूपकै[47] ॥ ६ ॥
पूजयेत् साधको देवी बलिमन्त्रैर्मुहुर्मुहु ।
उत्तराभिमुखो भूत्वा बलि पूर्वमुख तथा ॥ ७ ॥
निरीक्ष्य साधक पश्चादिम मन्त्रमुदीरयेत् ।
वरस्त्व[48] बलिरूपेण मम भाग्यादुपस्थित ॥ ८ ॥
प्रणमामि तत[49] सर्वरूपिण[50] बलरूपिणम् ।
चण्डिका प्रीतिदानेन[51] दातुरापद्विनाशन[52] ॥ ९ ॥
वैष्णवीबलिरूपाय बले तुभ्य नमो नम[53] ।
यज्ञार्थे पशव[54] सृष्टा स्वयमेव स्वयम्भुवा ॥ १० ॥
अतस्त्वा घातयाम्यद्य तस्माद् यज्ञे वधोऽवध ।
ओं ऐ ह्री श्री इतिमन्त्रेण त बलि कामरूपिणम्[55] ॥ ११ ॥
चिन्तयित्वा न्यसेत् पुष्पं मूर्ध्नि तस्य च भैरव ।

---

४० प्रमोदनम् । ४१ तोषयेद्धरिम् । ४२ हरम् ।
४३. वराहैश्च गणैस्तथा । ४४. गोधिका चासरतथा ।
४५. गात्ररुधिर चाष्टका बलयो मता । ४६ नव चैव । ४७ वन्दनै. ।
४८. नरस्त्व । ४९. सदा । ५० भक्त्या ।
५१ प्रीतिरूपेण । ५२ विनाशिने । ५३. नमोऽस्तु ते ।
५४ बलय । ५५ मम रूपिणम् ।

ततो देवी समुद्दिश्य काममुद्दिश्य चात्मनः ॥ १२ ॥
अभिषिच्य बलिं पश्चात्[५६] करवाल प्रपूजयेत् ।
रसना त्व चण्डिकाया[५७] सुरलोकप्रसाधक[५८] ॥ १३ ॥
ऐं ह्रीं श्रीमिति मन्त्रेण ध्यात्वा खड्ग प्रपूजयेत् ।
कृष्ण पिनाकपाणि च कालरात्रिस्वरूपिणम् ॥ १४ ॥
उग्र रक्तास्यनयन रक्तमाल्यानुलेपनम् ।
रक्ताम्बरधर चैक पाशहस्त कुटुम्बिनम् ॥ १५ ॥
पीयमान च रुधिर भुञ्जान[५९] क्रव्यसहतिम्[६०] ।
असिर्विशसन खड्गस्तीक्ष्णधारो दुरासद. ॥ १६ ॥
श्रीगर्वो[६१] विजयश्चैव धर्मपाल नमोऽस्तु ते ।
पूजयित्वा तत. खड्ग ॐ आ ह्रीं फडितिमन्त्रकै ॥ १७ ॥
गृहीत्वा विमल खड्ग छेदयेद् बलिमुत्तमम् ।
ततो बलीना रुधिर तोयसैन्धवसत्फलै ॥ १८ ॥
मधुभिर्गन्धपुष्पैश्च अधिवास्य प्रयत्नत ।
ॐ ऐं ह्रीं श्रीं कौशिकीति रुधिर दापयामि ते[६२] ॥ १९ ॥
स्थाने नियोजयेद्रक्त[६३] शिरश्च सप्रदीपकम् ।
एव दत्त्वा बलि पूर्ण फल प्राप्नोति साधक. ॥ २० ॥
हीन स्याद्धीनतामूल निष्फल स्याद् विपर्ययात् ।
बलिदाने तु दुर्गाया अन्यत्रापि विधि सदा ॥ २१ ॥
अयमेव प्रयोक्तव्य सद्भिर्वेतालभैरवौ ।
जप समारभेत् पश्चात् पूर्ववद्ध्यानमास्थित[६४] ॥ २२ ॥
हस्तेन स्रजमादाय चिन्तयेन्मनसा शिवाम् ।
चिन्तयित्वा गुरु मूर्ध्नि यथा वर्णादिक भवेत् ॥ २३ ॥
मन्त्र च कण्ठतो ध्यात्वा[६५]सितवर्ण हिरण्मयम् ।
महामाया च हृदये आत्मान गुरुपादयो ॥ २४ ॥
आचक्षेत[६६] तत पश्चाद् गुरोर्मन्त्रस्य चात्मन ।
देव्याश्चाप्येकता ध्यात्वा सुषुम्नावर्त्मना तत ॥ २५ ॥
तत्त्वस्वरूपमेक तु षट्चक्र प्रति लम्बयेत् ।
षट्चक्रेऽपि महामाया क्षण ध्यात्वा प्रयत्नत ॥ २६ ॥
लम्बयेन्मूलमात्रेण वादिषोडशाच्चक्रकम् ।

५६. दद्यात् । ५७ चण्डिकाया । ५८ सुरभोगप्रसाधक ।
५९ भुञ्जन्तं । ६० क्रव्यसहतिम् । ६१ श्रीगर्भो विजयः ।
६२ रुधिराध्यायितामिते । ६३ स्वस्थाने भोजयेद्रक्त ।
६४. ध्यानतत्पर । ६५ पीत । ६६ आज्ञाचक्रे ।

आदिषोडशचक्रस्था साधकानन्दकारिणीम् ॥ २७ ॥
चिन्तयन्[६७] साधको देवीं जपकर्म समारभेत् ।
भ्रुवोरुपरि नाडीना त्रयाणा प्रान्त उच्यते ॥ २८ ॥
तत्प्रान्त त्रिपथस्थान षट्कोण चतुरङ्गुलम् ।
रक्तवर्ण[६८] तु योगज्ञैराज्ञाचक्रमितीर्यते ॥ २९ ॥
कण्ठे त्रयाणा नाडीना वेष्टन विद्यते नृणाम् ।
सुषुम्नेडापिङ्गलाना षट्कोण तत्षडङ्गुलम् ॥ ३० ॥
तत् षट्चक्रमिति प्रोक्त शुक्ल कण्ठस्य मध्यगम्[६९] ।
त्रयाणामथ नाडीना हृदये चैकता भवेत् ॥ ३१ ॥
तत्स्थान षोडशार[७०] स्यात् सप्ताङ्गुलप्रमाणत ।
तत्प्रयुक्त[७१] तु योगज्ञैरादिषोडशचक्रकम् ॥ ३२ ॥
ध्यानानामथ मन्त्राणा चिन्तनस्य जपस्य च ।
यस्मादाद्य तु हृदय तस्मादादीति गद्यते ॥ ३३ ॥
जपादौ पूजयेन्माला तोयैरभ्युक्ष्य यत्नत ।
निधाय मण्डलस्यान्त सव्यहस्तगता च वा ॥ ३४ ॥
ॐ माले माले महामाये सर्वशक्तिस्वरूपिणि ।
चतुर्वर्गस्त्वयि न्यस्तस्तस्मान्मे सिद्धिदा भव ॥ ३५ ॥
पूजयित्वा ततो माला गृह्णीयाद्[७२] दक्षिणे करे ।
मध्यमाया मध्यभागे वर्जयित्वाथ तर्जनीम् ॥ ३६ ॥
अनामिकाकनिष्ठाभ्या युताया नम्रभागत. ।
स्थापयित्वा तत्र मालामङ्गुष्ठाग्रेण तद्गतम् ॥ ३७ ॥
प्रत्येक बीजमादाय जप्यादर्धेन[७३] भैरव ।
प्रतिवार पठेन्मन्त्र शनैरोष्ठ च चालयेत्[७४] ॥ ३८ ॥
मालाबीज तु जप्तव्य स्पृशेन्नहि परस्परम् ।
पूर्वजापप्रयुक्तेन नैवागुष्ठेन[७५] भैरव ॥ ३९ ॥
पूर्वबीज जपन् यस्तु परबीज च सस्पृशेत् ।
अगुष्ठेन भवेत् तस्य निष्फलस्तस्य[७६] तज्जप ॥ ४० ॥
माला स्वहृदयासन्ने धृत्वा दक्षिणपाणिना ।
देवी विचिन्तयन् जप्य कुर्याद् वामेन न स्पृशेत् ॥ ४१ ॥

---

६७. चिन्तयेत् । ६८ रक्तचन्दन । ६९ मध्यत. ।
७० षोडशास्र । ७१. तत् पीतयुक्त । ७२ गृहीत्वा ।
७३. जप्य कुर्यात्तु । ७४ न चालयेत् ।
७५ पूर्वजापप्रयुक्तेनैवागुष्ठाग्रेण । ७६ निष्फल तस्य ।

स्फटिकेन्द्राक्षरुद्राक्षै पुत्रञ्जीवसमुद्भवै. ।
सुवर्णमणिभि सम्यक् प्रवालैरथवाब्जजै.[७७] ॥ ४२ ॥
अक्षमाला तु कर्तव्या देवीप्रीतिकरी परा ।
जपेदुपाशु सतत कुशग्रन्थ्याथ पाणिना ॥ ४३ ॥
मालाबीजेषु सर्वेषु रुद्राक्षो मत्प्रियाप्रिय[७८] ।
रुद्रप्रीतिकरी यस्मात् तेन रुद्राक्षरोचनी ॥ ४४ ॥
प्रवालैरथवा कुर्यादष्टाविशतिबीजकै ।
पचपचाशता वापि न न्यूनैरधिकैश्च[७९] वा ॥ ४५ ॥
रुद्राक्षैर्यदि जप्येत इन्द्राक्षै स्फटिकैस्तथा ।
नान्य मध्ये प्रयोक्तव्य पुत्रञ्जीवादिक च यत् ॥ ४६ ॥
यद्यन्यत् तु प्रयुज्येत मालाया जपकर्मणि ।
तस्य काम च मोक्ष च ददाति न प्रियकरी ॥ ४७ ॥
मिश्रीभाव ततो याति चाण्डालै पापकर्मभि ।
जन्मान्तरे जायते स वेदवेदाङ्गपारग ॥ ४८ ॥
एको मेरुस्तत्र देय सर्वेभ्य स्थूलसम्भव ।
आद्य स्थूल ततस्तस्माद् न्यून न्यूनतर तथा ॥ ४९ ॥
विन्यसेत् क्रमतस्तस्मात् सर्पाकारा हि सा यत ।
ब्रह्मग्रन्थियुत कुर्यात् प्रतिबीज यथास्थितम् ॥ ५० ॥
अथवा ग्रन्थिरहित दृढरज्जुसमन्वितम् ।
द्विरावृत्याथ[८०] मध्येन चार्धवृत्यान्तदेशत[८१] ॥ ५१ ॥
ग्रन्थि प्रदक्षिणावर्त स ब्रह्मग्रन्थिसञ्ज्ञक ।
आत्मना[८२] योजयेन्माला नामन्त्रो योजयेन्नर[८३] ॥ ५२ ॥
दृढ सूत्र नियुञ्जीत जपे त्रुट्यति नो यथा ।
यथा हस्तान्न च्यवेत जपत स्रक् तमाचरेत् ॥ ५३ ॥
हस्तच्युताया विघ्न स्याच्छिन्नाया मरण भवेत् ।
एव य कुरुते माला जप च जपकोविद[८४] ॥ ५४ ॥
स प्राप्नोतीप्सित काम हीने स्यात् तु विपर्यय ।
अन्यत्रापि जपेन्माला जप्य देवमनोहरम् ॥ ५५ ॥
तादृश साधक कुर्यान्नान्यथा तु कदाचन ।
यथाशक्ति जप कुर्यात् सख्ययैव प्रयत्नत ॥ ५६ ॥

---

७७ बजकै । ७८ सप्रियाप्रिय । ७९ न न्यूनैर्नाधिकै. ।
८० त्रिरावर्त्य । ८१ सार्द्धवर्त्यान्तदेशत. । ८२. नामेना ।
८३. 'बुध । , ८४. मयकोविद ।

असख्यात च यज्जप्त तस्य तन्निष्फल भवेत् ।
जप्त्वा माला शिरोदेशे प्राशुस्थानेऽथ वा न्यसेत् ॥ ५७ ॥
स्तुतिपाठ तत कुर्यादिष्ट काम निवेद्य च ।
स्तुतिश्चापि महामन्त्र[८५] साधन सर्वकर्मणाम् ॥ ५८ ॥
वक्ष्ये युवा महाभागौ सर्वसिद्धिप्रदायकम् ।
सर्वमङ्गलमङ्गल्ये शिवे सर्वार्थसाधिके ॥ ५९ ॥
शरण्ये त्र्यम्बके गौरि[८६] नारायणि नमोऽस्तु ते ।
सप्तधावर्तन कृत्वा स्तुतिमेना च साधक ॥ ६० ॥
पञ्चप्रणामान् कृत्वाथ ऐ ह्री श्रीमितिमन्त्रकै ।
अन्येषा पुरतश्चैव अधिक वा यथेच्छया ॥ ६१ ॥
योनिमुद्रा तत पश्चाद् दर्शयित्वा विसर्जयेत् ।
द्वौ पाणी प्रसृतीकृत्य कृत्वा चोत्तानमञ्जलिम् ॥ ६२ ॥
अगुष्ठाग्रद्वय न्यस्य कनिष्ठाग्रद्वयोस्तत ।
अनामिकायां वामस्य तत्कनिष्ठा पुरो न्यसेत्[८७] ॥ ६३ ॥
दक्षिणस्यानामिकाया कनिष्ठा दक्षिणस्य च ।
अनामिकाया पृष्ठे तु मध्यमे द्वे निवेशयेत् ॥ ६४ ॥
द्वे तर्जन्यौ कनिष्ठाग्रे तदग्रेणैव योजयेत् ।
योनिमुद्रा समाख्याता देव्या प्रीतिकरी मता ॥ ६५ ॥
त्रिवार दर्शयेत् ता तु[८८] मूलमन्त्रण साधक ।
ता मुद्रा शिरसि न्यस्य मण्डल विन्यसेत् तत ॥ ६६ ॥
ऐशान्यामग्रहस्तेन द्वारपद्मविवर्जितम् ।
तत्र नत्वा रक्तचण्डा ह्री श्री मन्त्रेण साधक ॥ ६७ ॥
रक्तचण्डायै नम इति निर्माल्य तत्र निक्षिपेत्[८९] ।
उदके तरुमूले वा निर्माल्य तत्र सत्यजेत् ॥ ६८ ॥
एव य पूजयेद् देवी विधानेन शिवा नर. ।
सोऽचिरेण लभेत्कामान् सर्वानेव मनोगतान् ॥ ६९ ॥
अर्धलक्षजप जप्त्वा प्रथम चैव साधक[९०] ।
पुरश्चरेद् विशेषेण नानानैवेद्यवेदनै ॥ ७० ॥
कुण्ड मण्डलवत् कृत्वा[९१] चाष्टम्या समुपोषित ।
नवम्या शुक्लपक्षस्य रजोभि. पञ्चभिर्नर[९२] ॥ ७१ ॥

---

८५ मन्त्र । ८६ देवि । ८७ प्रयोजयेत् ।
८८ अग्रे । ८९ विन्यसेत् । ९० चिरसाधक ।
९१. कुर्यात् । ९२ पञ्चवर्णकै ।

पूर्ववन्मण्डलं कृत्वा गुरुपित्रोश्च सन्निधौ।
अनेनैव विधानेन पूजयित्वा तु चण्डिकाम्॥ ७२॥
सहितैर्बिल्वपत्रैश्च अष्टोत्तरशतत्रयम्।
तिलैर्होमं चरेत् तस्या सहस्रत्रितयं जपेत्॥ ७३॥
नैवेद्यं गन्धपुष्पे च वस्त्रं दद्याच्च यत्प्रियम्[93]।
पूर्वोक्तं चान्यदप्यस्यै प्रदद्यात् पायसं तथा॥ ७४॥
पूजावसाने देयं स्यात् तज्जातीयं बलित्रयम्।
सिन्दूरं स्वर्णरत्नानि[94] यद्यत्[95] स्त्रीणां विभूषणम्॥ ७५॥
निवेदयेद् यथाशक्त्या पुष्पमाल्यं च भूरिशः।
महाशक्तु सशाल्यन्नं गव्यव्यञ्जनसंयुतम्[93]॥ ७६॥
देव्यै नवम्यां सम्पूर्णं बलिं दद्याद् घृतादिभिः।
दक्षिणां गुरवे दद्यात् सुवर्णं गां तथा तिलम्॥ ७७॥
अभिशप्तमपुत्रं च सावद्यं कितवं तथा।
क्रियाहीनमकल्पज्ञं वामनं गुरुनिन्दकम्॥ ७८॥
सदा मत्सरसंयुक्तं गुरुं मन्त्रेषु वर्जयेत्।
गुरुर्मन्त्रस्य मूलं स्यान्मूलशुद्धौ तदुद्गतम्॥ ७९॥
सफलं जायते यस्मान्मन्त्रं यत्नात्परीक्षयेत्।
शाठ्यात् क्रोधात्तु मोहाद्वा नासन्मत्या[96] गुरोर्मुखात्॥ ८०॥
कल्पेषु दृष्ट्वा वा मन्त्रं गृह्णीयाच्छद्मनाऽथ वा।
स मन्त्रस्तेय[97] पापेन तामिस्रे नरके नरः॥ ८१॥
मन्वन्तरत्रयं स्थित्वा पापयोनिषु जायते।
शठे क्रूरे च मूर्खे च छद्मकारिण्यभक्तिके॥ ८२॥
मन्त्रं न दूषिते दद्यात्[98] सुबीजं विपिने[99] तथा[100]।
लब्धेण साधयेत् कामं पुरश्चरणपूर्वकम्॥ ८३॥
पापक्षयो भवेद् यस्मात् पुरश्चरणकर्मणा।
लक्षद्वयेन मन्त्रस्य जपेन नरसत्तमौ॥ ८४॥
त्रिसन्ध्यासु प्रतिदिनं बीजसंघातकेन च।
कविर्वाग्मी पण्डितश्च यशस्वी च प्रजायते॥ ८५॥
साधकः साधकश्रेष्ठ पूजास्था न ततः शृणु।
यत्र यत्र नरः पूजां निर्जने कुरुते च यः[1]॥ ८६॥

९३ मत्प्रियम्। ९४ रत्नादि। ९५ यत। ९६ न संप्राप्तो।
९७ ब्रह्मस्तेय। ९८ देयं। ९९ इरिणे।
१००. यथा। १ यत्।

तस्यादत्ते स्वय देवी पत्र पुष्प फल जलम् ।
शिला प्रशस्ता पूजाया स्थण्डिल निर्जन तथा ॥ ८७ ॥
जपश्चोपाशु सर्वेषामुत्तम परिकीर्तित. ।
अशुचिर्न महामाया पूजयेत् तु कदाचन ॥ ८८ ॥
अवश्य तु स्मरेन्मन्त्र योऽतिभक्तियुतो नर ।
दन्तरक्ते समुत्पन्ने स्मरण च न विद्यते ॥ ८९ ॥
सर्वेषामेव मन्त्राणा स्मरणान्नरक व्रजेत् ।
जानूर्ध्वे क्षतजे जाते नित्य कर्म न चाचरेत् ॥ ९० ॥
नैमित्तिक च तदध स्रवद्रक्तो न चाचरेत् ।
सूतके च समुत्पन्ने क्षुरकर्मणि मैथुने ॥ ९१ ॥
धूमोद्गारे तथा वान्ते नित्यकर्माणि सत्यजेत् ।
द्रव्ये भुक्ते त्वजीर्णे च न वै भुक्त्वा च किञ्चन ॥ ९२ ॥
कर्म कुर्यान्नरो नित्य सूतके मृतके तथा ।
पत्र पुष्प च ताम्बूल भेषजत्वेन कल्पितम् ॥ ९२ ॥
कणादिपिप्पल्यन्त च फल भुक्त्वा न चाचरेत् ।
जलस्यापि नरश्रेष्ठ भोजनाद् भेषजादृते ॥ ९४ ॥
नित्यक्रिया निवर्तेत सह नैमित्तिकै सदा ।
जलौका गूढपाद च कृमिगण्डूपदादिकम् ॥ ९४ ॥
कामाद्धस्तेन सस्पृश्य नित्यकर्माणि सत्यजेत् ।
विशेषत शिवापूजा प्रमीतपितृको नर[२] ॥ ९६ ॥
यावद् वत्सरपर्यन्त मनसापि न [३]चाचरेत् ।
महागुरुनिपाते तु काम्य किञ्चिन्न चाचरेत् ॥ ९७ ॥
आर्त्विज्य ब्रह्मयज्ञ[४] च श्राद्ध देवयज च यत् ।
गुरुमाक्षिप्य विप्र च प्रहृत्यैव च पाणिना ॥ ९८ ॥
न कुर्यान्नित्यकर्माणि रेत पाते च भैरव ।
आसन चार्घ्यपात्र च भग्नमासादयेन्नतु[५] ॥ ९९ ॥
ऊषरे कृमिसयुक्ते स्थाने मृष्टेऽपि नार्चयेत् ।
नीचैरासनमासाद्य शुचि प्रयतमानस ॥ १०० ॥
अर्चयेच्चण्डिका देवीं देवमन्य च भैरव ।
दिग्विभागे तु कौबेरीदिक्छिवा प्रीतिदायिनी[६] ॥ १०१ ॥

---

२ द्विज । ३ संस्मरेत् । ४ ब्रह्मचर्यं ।
५ भग्नशाखं न चादयेत् । ६ दिक् शिवाप्रीतिकारिणी ।

तस्मात् तन्मुख आसीन पूजयेच्चण्डिका सदा ।
पुष्प च कृमिसमिश्र विशीर्ण भग्नमृद्गते ॥ १०२ ॥
सकेश मूषिकोद्धूत यत्नेन परिवर्जयेत् ।
याचित परकीय च तथा पर्युषित च यत् ।
अन्त्यसृष्ट पदा स्पृष्ट यत्नेन परिवर्जयेत् ॥ १०३ ॥
इद शिवाया परम मनोहर
करोति योऽनेन तदीयपूजनम् ।
स वाञ्छितार्थ समवाप्य चण्डिका-
गृह प्रयाता नचिरेण भैरव ॥ १०४ ॥

इति श्रीकालिकापुराणे और्व्यसगरसवादे महामायाकल्प- पचपचाशोऽध्याय ॥ ५५ ॥

षट्पञ्चाशोऽध्यायः

श्रीभगवानुवाच

अस्य[७] मन्त्रस्य कवच शृणु वेतालभैरव।
वैष्णवीतन्त्रसञ्ज्ञस्य वैष्णव्याश्च विशेषत ॥ १ ॥
तत्र मन्त्राद्यक्षर तु वासुदेवस्वरूपधृक्।
वर्णो द्वितीयो ब्रह्मैव तृतीयश्चन्द्रशेखर ॥ २ ॥
चतुर्थो गजवक्त्रश्च पञ्चमस्तु दिवाकर.।
शक्ति स्वय पकारश्च महामाया जगन्मयी ॥ ३ ॥
यकारस्तु महालक्ष्मी शेषवर्ण सरस्वती।
योगिनीपूर्ववर्णस्य शैलपुत्री प्रकीर्तिता ॥ ४ ॥
द्वितीयस्य तु वर्णस्य चण्डिका योगिनी मता।
चन्द्रघण्टा तृतीयस्य कुष्माण्डी तत् परस्य च ॥ ५ ॥
स्कन्दमाता तकारस्य पश्य कात्यायनी स्वयम्।
कालरात्रि सप्तमस्य महादेवीति सस्थिता ॥ ६ ॥
प्रथम वर्णकवच योगिनीकवच तथा[८]।
देवौघकवच पश्चाद् देवीदिक्कवच तथा ॥ ७ ॥
ततस्तु पार्श्वकवच द्वितीयान्ताव्ययस्य[९] च।
कवच तु तत. पश्चात् षड्वर्ण कवच तथा ॥ ८ ॥
अभेद्यकवच चेति सर्वत्राणपरायणम्।
इमानि कवचान्यष्टौ यो जानाति नरोत्तम ॥ ९ ॥
सोऽहमेव महादेवी[१०] देवीरूपश्च शक्तिमान्।
अस्य वैष्णवीतन्त्रकवचस्य नारदऋषिरनुष्टुप्छन्द[११] ॥ १० ॥
कात्यायनी देवता[१२] सर्वकामार्थसाधने विनियोग ।
अ पातु पूर्वकाष्ठायामाग्नेय्या पातु क सदा ॥ ११ ॥
पातु चो यमकाष्ठाया दो नैऋत्या च सर्वदा।
मा पातु तोऽसौ पाश्चात्ये शक्तिर्वायव्यदिग्गता ॥ १२ ॥
य पातु मा चोत्तरस्यामैशान्या यस्तथावतु।
मूर्ध्नि रक्षतु मा सोऽसौ बाहौ मा दक्षिणे तु क. ॥ १३ ॥

---

७ अगि। ८. तत.। ९ द्वितीयायान्त्वक्षरस्य तु।
१० महादेवो। ११ ईश्वरो देवता। १२ देवी।

मा वामबाहौ च पातु हृदि टो मा सदावतु ।
त पातु कण्ठदेशे मा कट्यो [13] शक्तिस्तथावतु ॥ १४ ॥
य पातु दक्षिणे पादे षो मा वामपादे तथा ।
शैलपुत्री तु पूर्वस्यामाग्नेय्या पातु चण्डिका ॥ १५ ॥
चन्द्रघण्टा पातु याम्या [14]यमभीतिविवर्धिनी ।
नैर्ऋत्ये त्वथ कूष्माण्डी पातु मा जगता प्रसू ॥ १६ ॥
स्कन्दमाता पश्चिमाया[15] मा रक्षतु सदैव हि ।
कात्यायनी मा वायव्ये पातु लोकेश्वरी सदा ॥ १७ ॥
कालरात्री तु कौबेर्या सदा रक्षतु मा स्वयम् ।
महागौरी तथैशान्या सतत पातु पावनी ॥ १८ ॥
नेत्रयोर्वासुदेवो मा पातु नित्य सनातन ।
ब्रह्मा मा पातु वदने पद्मयोनिरयोनिज ॥ १९ ॥
नासाभागे रक्षतु मा सर्वदा चन्द्रशेखर ।
गजवक्त्र स्तनयुग्मे पातु नित्य हरात्मज ॥ २० ॥
वामदक्षिणपाण्योर्मा नित्य पातु दिवाकर ।
महामाया स्वय नाभौ मा पातु परमेश्वरी ॥ २१ ॥
महालक्ष्मी पातु गुह्ये जानुनोश्च सरस्वती ।
महामाया पूर्वभागे नित्य रक्षतु मा शुभा ॥ २२ ॥
अग्निज्वाला तथाग्नेय्या पायान्नित्य वरासिनी ।
रुद्राणी पातु मा याम्या नैर्ऋत्या चण्डनायिका ॥ २३ ॥
उग्रचण्डा पश्चिमाया[16] पातु नित्य महेश्वरी ।
प्रचण्डा पातु वायव्ये कौबेर्या घोररूपिणी[17] ॥ २४ ॥
ईश्वरी च तथैशान्या पातु नित्य सनातनी ।
ऊर्ध्व पातु महामाया पात्वध परमेश्वरी ॥ २५ ॥
अग्रत पातु मामुग्रा पृष्ठतो वैष्णवी तथा ।
ब्रह्माणी दक्षिणे पार्श्वे नित्य रक्षतु शोभना ॥ २६ ॥
माहेश्वरी वामपार्श्वे नित्य पायाद् वृषध्वजा ।
कौमारी पर्वते पातु वाराही सलिले च माम्[18] ॥ २७ ॥
नारसिंही दष्ट्रिभये पातु मा विपिनेषु च ।
ऐन्द्री मा पातु चाकाशे तथा सर्वजले स्थले ॥ २८ ॥
सेतुः सर्वाङ्गुली पातु देवादि पातु कर्णयो ।

---

१३. कट्यौ । १४ या च भीति । १५. पश्चिमस्यां ।
१६ पश्चिमस्यां । १७. घोररूपिका । १८. सलिलेऽवतु ।

देवान्तश्चिबुके पातु पार्श्वयो शक्तिपञ्चम ॥ २६ ॥
हा पातु मा तथैवोर्वोर्मोया[19] रक्षतु जङ्घयो ।
सर्वेन्द्रियाणि य[20] पातु रोमकूपेषु[21]सर्वदा ॥ ३० ॥
त्वचि मा वै सदा पातु मा शम्भु[22] पातु सर्वदा ।
नखदन्तकरोष्ठादौ रॉ मा पातु सदैव हि ॥ ३१ ॥
देवादि पातु मा वस्तौ देवान्त स्तनकक्षयो[23] ।
एतदादौ तु य सेतुर्बाह्वो मा पातु देहत ॥ ३२ ॥
आज्ञाचक्रे सुषुम्नाया षट्चक्रे हृदि सन्धिषु ।
आदिषोडशचक्रे च ललाटाकाश एव च ॥ ३३ ॥
वैष्णवी तन्त्रमन्त्रो मा नित्य रक्षश्च तिष्ठतु ।
[24]कर्णनाडीषु सर्वासु पार्श्वकक्षशिखासु[25] च ॥ ३४ ॥
रुधिरस्नायुमज्जासु मस्तिष्केषु च पर्वसु ।
द्वितीयाष्टाक्षरो मन्त्र कवच[26] पातु सर्वत ॥ ३५ ॥
रेतो वायौ नाभिरन्ध्रे पृष्ठसन्धिषु सर्वत ।
षडक्षरस्तृतीयोऽय मन्त्रो मा पातु सर्वदा ॥ ३६ ॥
नासारन्ध्रे महामाया कण्ठरन्ध्रे तु वैष्णवी ।
सर्वसन्धिषु मा पातु दुर्गा दुर्गार्तिहारिणी ॥ ३७ ॥
श्रोत्रयोर्हूं फडित्येव नित्य रक्षतु कालिका ।
नेत्रबीजत्रय नेत्रे सदा तिष्ठतु रक्षितुम्[27] ॥ ३८ ॥
ॐ ऐं ह्री ह्रौं नासिकाया रक्षन्ती चास्तु चण्डिका ।
ॐ ह्री[28] हूं मा सदा तारा जिह्वामूले तु[29] तिष्ठतु ॥ ४० ॥
हृदि तिष्ठतु मे सेतुर्ज्ञान रक्षितुमुत्तमम् ।
ॐ क्षौ फट् च महामाया[30] पातु मा सर्वत सदा ॥ ४० ॥
ॐ यॅु स प्राणान् कौशिकी मा प्राणान् रक्षतु रक्षिका ।
ह्रीं हू सौं[31] भर्गदयिता देहशून्येषु पातु माम् ॥ ४१ ॥
ॐ नम सदा शैलपुत्री सर्वान् रोगान् प्रमृज्यताम्[32] ।
ॐ ह्री स स्फें क्ष[33] फडस्त्राय सिंहव्याघ्रभयाद्रणात् ॥ ४२ ॥
शिवदूती पातु नित्य ह्री सर्वास्त्रेषु तिष्ठतु ।

---

१९ मीमा । २० या । २१ यै सदा । २२ शेष ।
२३. स्तस्य कक्षयो । २४ गर्भे । २५ कुक्षौ शिरासु ।
२६ कवच । २७ रक्षितम् । २८ क्रीं । २९ मूलेषु ।
३० महामारी । ३१ ओं श्रीं सो मा । ३२ प्रमार्जनाम् ।
३३ चौं च ।

ॐ हा[३४] ही सश्चण्डघण्टा कर्णच्छिद्रेषु पातु माम् ॥ ४३ ॥
ॐ क्री स कामेश्वरी कामानभितिष्ठतु रक्षतु ।
ॐ आ हू फड्डुग्रचण्डा रिपून् विघ्नान् विमर्दताम् ॥ ४४ ॥
[३५]ॐ अ शूलात् पातु नित्य वैष्णवी जगदीश्वरी ।
ओ क ब्रह्माणी पातु चक्रात् च रुद्राणी तु शक्तित ॥ ४५ ॥
ओ ट कौमारी पातु वज्रात् त[३६] वाराही तु काण्डत ।
ओ प पातु नारसिही मा क्रव्यादेभ्यस्तथास्त्रत ॥ ४६ ॥
शस्त्रास्त्रेभ्य समस्तेभ्यो यन्त्रेभ्योऽनिष्टमन्त्रत ।
चण्डिका मा सदा पातु य[३७] स देव्यै नमो नम ।
विश्वासघातकेभ्यो मामैन्द्री रक्षतु मन्मन.[३८] ॥ ४७ ॥
ओ नमो महामायायै ओ वैष्णव्यै नमो नम ।
रक्ष मा सर्वभूतेभ्य सर्वत्र परमेश्वरि ॥ ४८ ॥
आधारे वायुमार्गे हृदि कमलदले चन्द्रवत् स्मेरसूर्ये,[३९]
वस्तौ वह्नौ समिद्धे[४०] विशतु वरदया[४१] मन्त्रमष्टाक्षरन्तत् ।
यद्ब्रह्मा मूर्ध्नि धत्ते हरिरवति गले चन्द्रचूडो हृदिस्थ,
त मा पातु प्रधान निखिलमतिशाय पद्मगर्भोमबीजम् ॥ ४६ ॥
आद्या. शेषा स्वरौघैर्ममयवलवरैरस्वरेणापि[४२] युक्तै
सानुस्वाराविसर्गैर्हरिहरविदित यत्सहस्र च साष्टम् ।
मन्त्राणां सेतुबन्ध निवसति सतत वैष्णवीतन्त्रमन्त्रे
तन्मा पायात्पवित्र परमपरमज[४३]भूतलव्योमभागे ॥ ५० ॥
अङ्गान्यष्टौ तथाष्टौ वसव इह तथैवाष्टमूर्तिर्दलानि[४४]
प्रोक्तान्यष्टौ तथाष्टौ मधुमतिरचिता. सिद्धयोऽष्टौ तथैव ।
अष्टावष्टाष्टसख्या[४५] जगति रतिकला क्षिप्रकाष्ठागयोगा
मय्यष्टावक्षराणि क्षरतु न हि गणो यद्धृदोयस्त्वमूषाम्[४६] ॥५१॥
इयि तत्कवच प्रोक्त धर्मकामार्थसाधनम् ।
इद रहस्य परममिद सर्वार्थसाधकम् ॥ ५२ ॥

---

३४. ह्रीं । ३५ ॐ प पातु नारसिही मा क्रव्यादेभ्यस्तथास्त्रत । ओं ह्रीं ह्रीं ह्राँ ह्रूँ कालरात्रि खड्गात् रक्षतु मा सदा इत्यधिक पाण्डुलिप्याम् ।
३६ ॐ । ३७ ओं सं० । ३८. स नम. ।
३९ चन्द्रमध्ये ससूर्ये । ४० ससन्धौ । ४१ वरद मा ।
४२ याद्या सेवासुरोघैर्नमयवलवरैर्वंदिह्वयेनापि ।
४३ भूजल । ४४ कुलानि । ४५. काष्ठा अष्टाष्टसख्या ।
४६ सद्धृदोय स्त्वमूषाम् ।

य सकृच्छृणुयादेतत् कवचं मयकोदितम् ।
स सर्वाल्लभते कामान् परत्र शिवरूपताम् ॥ ५३ ॥
सकृद् यस्तु पठेदेतत् कवच मयकोदितम् ।
स सर्वयज्ञस्य फल लभते नात्र सशय ॥ ५४ ॥
सग्रामेषु जयेच्छत्रु[47] मातङ्गानिव केशरी ।
दहेत् तृण यथा वह्निस्तथा शत्रु दहेत् सदा ॥ ५५ ॥
नास्त्राणि तस्य शस्त्राणि शरीरे प्रविशन्ति वै ।
न तस्य जायते व्याधिर्न च दु ख कदाचन ॥ ५६ ॥
गुटिकाञ्जनपातालपादलेपरसाञ्जनम् ।
उच्चाटनाद्यास्ता. सर्वा प्रसीदन्ति च सिद्धय ॥ ५७ ॥
वायोरिव मतिस्तस्य भवेदन्यैरवारिता ।
दीर्घायु. कामभोगी च धनवानभिजायते ॥ ५८ ॥
अष्टम्या सयतो भूत्वा नवम्या विधिवच्छिवाम् ।
पूजयित्वा विधानेन विचिन्त्य मनसा शिवाम् ॥ ५९ ॥
यो न्यसेत् कवच देहे तस्य 'पुण्यफल[48] शृणु ।
जितव्याधि शतायुश्च रूपवान् गुणवान् सदा ॥ ६० ॥
धनरत्नौघसम्पूर्णो विद्यावान् स च जायते ।
नाग्निर्दहति तत्काय नाप सक्लेदयन्ति च ॥ ६१ ॥
न शोषयति त वायु क्रव्यात् त[49] न हिनस्ति च ।
शस्त्राणि नैन[50] छिन्दन्ति न तापयति भास्कर ॥ ६२ ॥
न तस्य जायते विघ्नो नास्ति तस्य च सज्वर ।
वेतालाश्च पिशाचाश्च राक्षसा गणनायका ॥ ६३ ॥
सर्वे तस्य वश यान्ति भूतग्रामाश्चतुर्विधा ।
नित्य पठति यो भक्त्या कवच हरनिर्मितम् ॥ ६४ ॥
सोऽहमेव महादेवो महामाया च मातृका ।
धर्मार्थकाममोक्षाश्च तस्य नित्य करे स्थिता. ॥ ६५ ॥
अन्यस्य वरद सोऽर्थैर्नित्य भवति पण्डित ।
कवित्व सत्यवादित्व सतत तस्य जायते ॥ ६६ ॥
वदेच्छ्लोकसहस्राणि भवेच्छ्रुतिधरस्तथा ।
लिखित यस्य गेहे तु कवच भैरव स्थितम् ॥ ६७ ॥
न तस्य दुर्गति क्वापि जायते तस्य[51] दूषणम् ।
ग्रहाश्च सर्वे तुष्यन्ति वश गच्छन्ति भूमिपा ॥ ६८ ॥

४७ शत्रून् । ४८ सम्यक् । ४९ क्रव्यादो । ५० नैव । ५१ नापि ।

यद्राज्ये कवचज्ञोऽस्ति जायन्ते तत्र नेतय ।
सेतुर्देव शक्तिबीज पचमोहाय ते नम † ॥ ६९ ॥
वायुर्बलेन चैतायै द्वितीयाष्टाक्षर त्विदम् ।
सेतुर्देवोऽथ वैष्णव्यै षडक्षरमिद स्मृतम् ॥ ७० ॥
एतद् द्वय तु जिह्वाग्रे सतत यस्य वर्तते ।
तस्य देवी महामाया काये तिष्ठति वै सदा ॥ ७१ ॥
मन्त्राणा प्रणव सेतुस्तत्सेतु प्रणव स्मृत ।
क्षरत्यनोङ्कृत ‡ पूर्व परस्ताच्च विशीर्यते ॥ ७२ ॥
नमस्कारो महामन्त्रो देव इत्युच्यते सुरै ।
द्विजातीनामय मन्त्र शूद्राणा सर्वकर्मणि ॥ ७३ ॥
अकार चाप्युकार च मकार च प्रजापति ।
वेदत्रयात्समुद्धृत्य प्रणव निर्ममे पुरा ॥ ७४ ॥
स उदात्तो द्विजानीना राज्ञा स्यादनुदात्तक ।
प्रचितश्चोरुजाताना मनसापि तथा स्मरेत् ॥ ७५ ॥
चतुर्दशस्वरो योऽसौ शेष औकारसज्ञक ।
स चानुस्वारचन्द्राभ्या शूद्राणा सेतुरुच्यते ॥ ७६ ॥
नि सेतु च यथा तोय क्षणान्निम्न प्रसर्पति ।
मन्त्रस्तथैव नि सेतु क्षणात् क्षरति यज्वनाम् ॥ ७७ ॥
तस्मात् सर्वत्र मन्त्रेषु चतुर्वर्णा द्विजातय ।
पार्श्वयो सेतुमादाय जपकर्मसमारभेत् ॥ ७८ ॥
शूद्राणामादिसेतुर्वा द्वि सेतुर्वा यथेच्छत ।
द्वि सेतव समाख्याता सर्वदैव द्विजातय ॥ ७९ ॥

और्व्य उवाच

एतत् ते सर्वमाख्यात कवच त्र्यम्बकोदितम् ।
अभेद्य कवच तत् तु कवचाष्टकमुत्तमम् ॥ ८० ॥
महामायामन्त्रकल्प कवच मन्त्रसयुतम्[५२] ।
षडक्षरसमायुक्तं त्रिषु लोकेषु दुर्लभम् ॥ ८१ ॥
एतत् त्व नृपशार्दूल नित्यभक्तियुत पठन् ।
जपन् मन्त्र च वैष्णव्या सर्वसिद्धिमवाप्स्यसि ॥ ८२ ॥

इति श्रीकालिकापुराणे महामायामन्त्रकल्पो (कवच) नाम षट्पञ्चाशोऽध्याय ॥ ५६ ॥

---

† पंचमोहा दिवाकरः । ‡ क्षरत्यनोंकृतं । ५२ तन्त्रसंयुतम् ।

सप्तपञ्चाशोऽध्यायः

मार्कण्डेय उवाच

श्रुत्वेम सगरो राजा सवाद भैरवेण वै।
वेतालेनापि भर्गस्य पुनरौर्व्वमपृच्छत ॥ १ ॥

सगर उवाच

मन्त्र कलेवरगत साङ्ग[53] प्रोक्त त्वया द्विज।
अङ्गमन्त्राणि मे देव्या कथ्यन्तां भो द्विजोत्तम ॥ २ ॥
तथा मन्त्राणि सर्वाणि पूजास्थानानि सर्वश।
तथैवोत्तरमन्त्राणि कवचानि पृथक् पृथक् ॥ ३ ॥
कामाख्यायाश्च माहात्म्य सरहस्य समन्त्रकम्।
यथा शशास भगवान् महादेव उमापति· ॥ ४ ॥
वेतालभैरवाभ्या तत्[54] समाचक्ष्व सविस्तरात्।
शृण्वतो न हि मे तृप्तिर्जायते महदद्भुतम् ॥ ५ ॥
भवता कथ्यमान हि पर कौतूहल मम।

और्व्व उवाच

शृणु त्व राजशार्दूल यत्पुत्राभ्यामुमापति· ॥ ६ ॥
उवाच महदाख्यान तन्मे निगदतोऽधुना।
एतद्रहस्य परम पवित्र पापनाशनम् ॥ ७ ॥
पर स्वस्त्ययन पुसा[55] गर्भे पुसवनं स्मृतम्।
कल्याणकारक भद्र चतुर्वर्गफलप्रदम् ॥ ८ ॥
शठाय चलचित्ताय नास्तिकाय जितात्मने।
देवद्विजगुरूणा च मिथ्यानिर्बन्धकारिणे ॥ ९ ॥
न पापायाभिशस्ताय खञ्जकाणादिरोगिणे।
न कथ्य न च वा देय श्रद्धाविरहिताय च ॥ १० ॥
महामायामन्त्रकल्पं प्रोक्त्वा ताभ्यामुमापति·।
वेतालभैरवाभ्या तु पुनरेवाभ्यभाषत ॥ ११ ॥

---

५३ सागप्रोक्त। ५४ यत्तत्। ५५. सर्वदेवबलं स्मृतम्।

भगवानुवाच

अङ्गमन्त्र प्रवक्ष्यामि प्रोक्तवाँस्तन्त्रमुत्तमम्[५६]।
तदेव प्रथम विद्धि सर्वपूजासु सङ्गतम् ॥ १२ ॥
आचान्त शुचिता प्राप्त सुस्नातो देवपूजने ।
पूजावेद्या बहि स्थित्वा चतुर्हस्तान्तरे धिया ॥ १३ ॥
गृहे वा[५७] द्वारदेशस्थ प्रणम्य शिरसा[५८] गुरुम् ।
प्रणमेदिष्टदेव स्व दिक्पालानपि चेतसा ॥ १४ ॥
यत् पूर्वमर्जित पाप तद्दिनेऽन्यदिनेऽपि वा ।
प्रायश्चित्तैर्नापनुन्न तच्च[५९] पाप स्मरेद्धिया ॥ १५ ॥
तत्पापस्यापनोदाय मन्त्रद्वयमुदीरयेत् ।
देवि त्व प्राकृत चित्त पापाक्रान्तमभून्मम ॥ १६ ॥
तन्नि सारय चित्तान्मे पाप हू फट् च ते नम. ।
सूर्य सोमो यम कालो महाभूतानि पञ्च वै ॥ १७ ॥
एते शुभाशुभस्येह कर्मणो नव साक्षिण ।
तत पुनर्हू फडिति पार्श्वमूर्ध्वमधस्तथा ॥ १८ ॥
आत्मान क्रोधदृष्ट्याथ निरीक्ष्य सुमना भवेत् ।
एव कृते प्रथमत पापोत्सारणकर्मणि ॥ १९ ॥
यत् स्याद् दृढतर पाप तद् दूरे चावतिष्ठते ।
अतीते पूजने स्थान स्व प्रयाति पुनश्च यत् ॥ २० ॥
यत् स्यादल्पतर पाप तन्नाशमुपगच्छति ।
ॐ अ फडितिमन्त्रेण पूजावेदी ततो विशेत् ॥ २१ ॥
पूजने त्यक्तपापस्य काममिष्ट क्षणाद् भवेत् ।
नाराचमुद्रया दृष्ट्वा समया स प्रलोकयेत् ॥ २२ ॥
पुष्पनैवेद्यगन्धादि ह्रीं हूं फडिति[६०] मन्त्रकै ।
यदात्मनानवज्ञात सम्यक् पुष्पादिदूषणम् ॥ २३ ॥
अस्पृश्यस्पर्शन वापि यदन्यायार्जित च वा ।
तथा निर्माल्यससृष्ट कीटाद्यारोहण च यत् ॥ २४ ॥
तत्सर्व नाशमायाति नैवेद्याद्यवलोकनात् ।
ततो रमितिमन्त्रेण शिखा दीपस्य सस्पृशेत् ॥ २५ ॥
स तस्य सुभगो दीपो भवेत् स्पर्शनमात्रत[६१] ।

---

५६. सेतुमुत्तमम् । ५७ चेद्द्वार । ५८ मनसा । ५९ तस्य ।
६०. ह्रां ह्रीं हूं फट् । ६१ शुभदो दीपो नि क्षेप्याद्. शुभप्रद. ।

पतङ्गकीटकेशादि-दाहात् क्रव्यादसहत[६२] ॥ २६ ॥
वसामज्जास्थिसम्पूतिर्यज्ञादावुपयोजनम्[६३] ।
अज्ञातरूप तत्सर्व दोष स्पर्शाद् विनाशयेत् ॥ २७ ॥
नारसिहेन मन्त्रेण देवतीर्थेन सस्पृशेत् ।
पानीय घटमध्यस्थ वीक्षन्नभ्युद्य[६४] याजक ॥ २८ ॥
वामेन पाणिना धृत्वा वामपार्श्वे स्थित तदा ।
पात्रमाधारमन्त्रेण सस्कुर्वन् सस्पृशेज्जलम् ॥ २९ ॥
यज्ञदानादपेयादि सस्पृष्टिरिह सङ्गता ।
यदन्यद् दूषण पात्रे तोये वा ज्ञानतो भवेत् ॥ ३० ॥
जलाशय शवस्पर्शाज्जल स्नानाच्च सङ्गतम् ।
दूषणानि विनश्यन्ति तानि वै देवपूजने ॥ ३१ ॥
प्रजापतिसुतो हान्तप्रान्त स्वरसमन्वित. ।
चन्द्रार्धबिन्दुसहितो मन्त्रोऽय नारसिहक ॥ ३२ ॥
स्वसज्ञाद्यक्षर बिन्दुचन्द्रार्धपरियोजितम् ।
आधारमन्त्र जानीयात् साधक कार्यसिद्धये ॥ ३३ ॥
तत आधारमन्त्रेण पाणिभ्यामासन स्वकम् ।
आदाय विनिधायाशु पुन सस्पृश्य पाणिना ॥ ३४ ॥
आत्ममन्त्रेणोपविशेत् तदा तस्मिन् वरासने ।
दु शिल्पिरचितत्वादि यद्वान्यासनभूषणम् ॥ ३५ ॥
अज्ञात विलय याति उपवेशात् समन्त्रकात्[६५] ।
आहूय स्वाक्षर[६६] पूर्व सोमसामिसमन्वितम् ॥ ३६ ॥
सबिन्दुक विजानीयादात्ममन्त्र तु साधक. ।
ततस्तु मातृकान्यास नादबिन्दुसमन्वितम् ॥ ३७ ॥
कुर्यात् तु मातृकामन्त्रै स्वशरीरे विचक्षणः ।
कल्पेषु च यदज्ञात[६७] मन्त्रोच्चारणकर्मणि ॥ ३८ ॥
यद् दुष्ट वा तथा स्पृष्ट मात्राभ्रष्टादिदूषणम् ।
तन्न्यस्ता मातृकामन्त्रा नाशयन्ति सदैव हि ॥ ३९ ॥
व्यञ्जनानि च सर्वाणि तथा विष्ण्वादय. स्वरा' ।
सर्वे ते मातृकामन्त्राश्चन्द्रबिन्दुविभूषणा.[६८] ॥ ४० ॥
सर्व युगान्तवन्द्येषु न्यस्तेषु न्यूनपूरणम् ।

---

६२ क्रव्यादता गत । ६३ सम्भृतिर्मर्यादा उपभोजनम् ।
६४ वीक्ष्य शुध्यतु । ६५ समन्त्रक । ६६ पुरुषाद्यक्षरं ।
६७ ज्ञान । ६८. रक्तबिन्दुविभूषिता ।

मन्त्रे कल्पे च कुर्वन्ति विन्यस्ता मातृका[६९] स्वयम् ॥ ४१ ॥
एकमात्रो भवेद्ध्रस्वो द्विमात्रो दीर्घ उच्यते ।
प्लुतस्त्रिमात्रो विज्ञेयो वर्णा एते व्यवस्थिता ॥ ४२ ॥
सर्वेषामेव वर्णाना मात्रादेव्यस्तु मातृका ।
शिवदूतीप्रभृतयस्तन्न्यासास्तत्तनुस्थिता ॥ ४३ ॥
पूरयन्ति च तान् न्यूनाश्चतुर्वर्ग तथाचिरात् ।
ददत्येव सदा रक्षा कुर्वन्ति सुरपूजने ॥ ४४ ॥
चतुर्वर्गप्रदश्चाय सर्वकामफलप्रद ।
सर्वदामातृकान्यासस्तुष्टिपुष्टिप्रदायक ॥ ४५ ॥
य. कुर्याद् मातृकान्यास विनापि सुरपूजनात् ।
तस्माद् बिभेति सतत भूतग्रामश्चतुविध ॥ ४६ ॥
त द्रष्टुमपि देवाश्च स्पृहयन्ति महौजसम् ।
स सर्व च वश कुर्याद् न च याति पराभवम् ॥ ४७ ॥
कुसुम विष्णुमन्त्रेण अगुल्यग्रेण साधक ।
विमर्दनार्थ गृह्णीयात् करशोधनकर्मणि ॥ ४८ ॥
उपान्त सामि चन्द्रेण रजित शून्यसयुत ।
रुद्रान्तोपरिसस्पृष्टो मन्त्रोऽय वैष्णवो मत ॥ ४९ ॥
प्रासादेन तु मन्त्रेण अङ्गुल्यग्रेण साधक ।
गृहीत्वा च तत कुर्यात् कराभ्या पुष्पमर्दनम् ॥ ५० ॥
निर्मथेत्[७०] कामबीजेन जिघ्रेद् ब्राह्मेण तत् पुन ।
प्रासादेन परित्यागो दिश्यैशान्या विशेषत ॥ ५१ ॥
एव कृते तु करयोर्विशुद्धिरतुला भवेत् ।
जलौकागूढपादादिस्पर्शाच्छुद्धिर्विशोधनात् ॥ ५२ ॥
दुर्गन्ध्युच्छिष्टसस्पर्शाद् दूषण करयोस्तु यत् ।
अज्ञातरूप तत्सर्व नाशयेत्[७१] सुविधानतः ॥ ५३ ॥
अङ्गुल्यग्राणि शुद्धानि पुष्पाणा ग्रहणाद् भवेत् ।
तलद्वय मर्दनात् तु विशुद्धमभिजायते ॥ ५४ ॥
निर्मञ्छनात् पाणिपृष्ठ घ्राणान्नासाग्रमुत्तमम् ।
तीर्थानि च समायान्ति[७२] नासिकाया कर प्रति ॥ ५५ ॥
तस्माद् यत्नेन कार्याणि कर्माण्येतानि भैरव ।
प्रान्तादिर्वासुदेवेन वर्णेनापि च सहित ॥ ५६ ॥

६९ मातृका सगता । ७० निर्मुञ्चेत् । ७१ नाशयेत इमानि वै ।
७२. '' वशमायान्ति ।

शम्भुचूडाबिन्दुयुक्त प्रासादश्च स उच्यते ।
कामबीज तु विज्ञेय वासुदेवेन्दुबिन्दुभि ॥ ५७ ॥
व्यञ्जन चाद्यदन्त च प्रान्तदन्त्या तु पूर्वकम् ।
आद्यदन्त्यद्वय पश्चाद् व्यञ्जन प्रणवोत्तरम् ॥ ५८ ॥
ब्रह्मबीजमिद प्रोक्त सर्वपापप्रणाशनम् ।
प्रणव दीर्घमुच्चार्य प्रथम मुखशुद्धये ॥ ५९ ॥
वासुदेवस्य बीजेन प्राणायाम समाचरेत् ।
यस्य देवस्य यद्रूप तथा[७३] भूषणवाहनम् ॥ ६० ॥
तदेव पूजने तस्य चिन्तयेत् पूरकादिभि ।❀
वैष्णवीतन्त्रमन्त्रस्य कण्ठाद्य यत्पुर'सरम् ॥ ६१ ॥
तद् बीज वासुदेवस्य पूर्णचन्द्रनिभ सदा ।
गङ्गावतारबीजेन प्रथम धेनुमुद्रया ॥ ६२ ॥❀
अमृतीकरण कुर्यादर्घपात्राहिते जले ।
शशिखण्डयुत कण्ठ्य पञ्चमीबलबीजक[७४] ॥ ६३ ॥
गङ्गावतारमन्त्रोऽय सर्वपापप्रणाशक ।
मात्राद्वययुतो बिष्णुर्बलबीजमुदाहृतम् ॥ ६४ ॥
अमृतीकरणे वृत्ते तोय यद् दीयतेऽमृतम् ।
भूत्वा प्रयाति देवस्य प्रीतये सुरपूजने ॥ ६५ ॥
गङ्गापि स्वयमायाति पूजापात्रजल प्रति ।
अमृतीकरण कुर्याद् धर्मकामार्थसिद्धये ॥ ६६ ॥
स्वस्तिक गोमुख पद्ममर्धस्वस्तिकमेव च ।
पर्यङ्कमासनं शस्तमभीष्टसुरपूजने ॥ ६७ ॥
पादयन्त्रमिद प्रोक्त सर्वमन्त्रोत्तमोत्तमम् ।
तद् गृह्णीयाद् वराहस्य बीजेन प्रथमं बुध ॥ ६८ ॥
मायादिरग्निबीजस्य चतुर्थ समन्यात्रिक[७५] ।
[७६]षष्ठस्वरोपरिचरो वाराह बीजमुच्यते ॥ ६९ ॥
वाराहबीजसशुद्ध मन्त्रपादद्वये कृतम् ।
पश्यन्नभीष्टदेव तु पाददोष न पश्यति ॥ ७० ॥
न युक्तमन्यथा पाददर्शन सुरपूजने ।
मन्त्रेण[७७] लभतेऽभीष्टांस्तस्मान्मन्त्रपरो[७८] भवेत् ॥ ७१ ॥

---

७३ यथा । ❀ श्लोकद्वय पाण्डुलिप्यां नास्ति ।
७४ पञ्चमो बलबीजग । ७५ समन्यात्रिक । ७६ अष्ट ।
७७ यन्त्रेण । ७८ पदो ।

पाणिकच्छपिका कुर्यात् कूर्ममन्त्रेण साधक ।
तत्र सस्कृतपुष्पेण पूजयेदात्मनो वपु ॥ ७२ ॥
पूजिते तेन पुष्पेण देवत्व स्वस्य जायते ।
द्वितीय वैष्णवीतन्त्र बीज बिन्द्विन्दुसयुतम् ॥ ७३ ॥
षष्ठस्वरोपरिचर कूर्मबीज प्रकीर्तितम् ।
दहनप्लवनस्यादौ रन्ध्रस्य दशमस्य तु ॥ ७४ ॥
भेदन साधक कुर्यान्मन्त्रेण प्रणवेन तु ।
बीजेन वासुदेवस्य आकाशे विनिधापयेत् ॥ ७५ ॥
प्राणेन सहित बीज ततपूर्व[७९] प्रतिपादितम् ।
अज्ञाता प्रयताना तु मण्डलस्थानमार्जनात् ॥ ७६ ॥
द्रव्याणा विप्रकार स्यात् ससर्गाणा तथैव च ।
मधुकैटभयोर्मेद सघातैर्दृढता गता ॥ ७७ ॥
मेदिनी सर्वदा शुद्धा सुरपूजासु सर्वत ।
अद्यापि सर्वे त्रिदशा न स्पृशन्ति पदा क्षितिम् ॥ ७८ ॥
न च स्वीयतनुच्छाया योजयन्ति च भूतले ।
तस्य दोषस्य मोक्षार्थ मन्त्रराज[८०] लिखेत् क्षितौ ॥ ७९ ॥
प्रोक्षणाद् वीक्षणाद् वापि शुद्धा भवति मेदिनी ।
वीक्षण धर्मबीजेन स्थण्डिलस्य समाचरेत् ॥ ८० ॥
दान्तो बलेन सयुक्तश्चूडाबिन्दुसमन्वितः ।
धर्मबीजमिति प्रोक्त धर्मकामार्थसाधनम् ॥ ८१ ॥
आदान धारण चैव तथा सस्थानपूजने ।
पूरण सलिलेनैव नि च्षेपो गन्धपुष्पयो. ॥ ८२ ॥
मण्डलस्याथ विन्यास पुन पुष्पस्य सश्रय ।
अमृतीकरण पात्रप्रतिपत्तिरिय नर ॥ ८३ ॥
आनिरुद्धेन चादाय[८१] अस्त्रमन्त्रेण धारणम् ।
पात्रे तु मण्डलन्यास वाग्बीजाग्रेण योजयेत् ॥ ८४ ॥
आनिरुद्ध भवेद्बीजमाद्य बिन्दुद्वयोत्तरम्[८२] ।
फडन्तेनानिरुद्ध तु[८३] अस्त्रमन्त्र प्रकीर्तितम् ॥ ८५ ॥
शम्भुराद्यवल प्रान्त सम्पूर्णा[८४] सहिता[८५] इमे ।
परत परत पूर्व समाप्त्यन्ताः सबिन्दुका. ॥ ८६ ॥

---

७९. तत्सर्वं । ८० मन्त्रबीज । ८१ चादानमस्त्र ।
८२ द्वयोत्तकम् । ८३ फडन्तेनानिरुद्धान्तं । ८४ सपूर्वं ।
८५. सहिता ।

तृतीय वाग्भव बीज सकल निष्कलाह्वयम् ।
स्वरश्चतुर्थ सकल' ससृष्टौ बिन्दुनेन्दुना ॥ ८७ ॥
वर्गाद्यादिर्द्वितीय तु वाग्भव बीजमुच्यते ।
कामराजाह्वय चैतद् धर्मकामार्थसाधनम् ॥ ८८ ॥
मनोभवस्य बीज तु कुण्डलीशक्तिसयुतम् ।
वासुदेवेन सम्पृक्तमाद्य वाग्भवमुच्यते ॥ ८६ ॥
इद सारस्वत नाम यदाद्य वाग्भव स्मृतम् ।
एकैक कामबीजादि त्रिभिस्तु त्रिपुरामह ॥ ६० ॥
आद्य तृतीयं सामीन्दुबिन्दुभ्य समलकृतम् ।
मदनस्य तु मन्त्रोऽय कामभोगफलप्रद ॥ ६१ ॥
औदेतोरूपविन्यस्त यन्त्र भास्करसन्निभम् ।
तद् वक्ष्ये कुण्डलीशक्तिमभेदात् तु निगद्यते ॥ ६२ ॥
भूतापसारण कुर्यान्मन्त्रेणानेन याजक ।
यस्मिन् कृते स्थानभूता दूर[८६] यान्ति सुरार्चने ॥ ६३ ॥
स्थितेषु तत्र भूतेषु नैवेद्यमण्डल तथा ।
विलुम्पन्ति सदा लुब्धा न गृह्णन्ति च देवता ॥ ६४ ॥
तस्माद् यत्नेन कर्तव्य भूतानामपसारणम् ।
अस्त्रमन्त्रेण सहित तस्य मन्त्रमिद स्मृतम् ॥ ६५ ॥
अपसर्पन्तु ते भूता ये भूता भूमिपालका ।
भूतानामविरोधेन पूजाकर्म करोम्यहम्[८७] ॥ ६६ ॥
अनेन स्थण्डिलाद् भूतानपसार्याथ साधक ।
ततो दिग्बन्धन कृत्वा दिग्भ्यस्तानपसारयेत् ॥ ६७ ॥
विष्णुबीज फडन्त तु मन्त्र दिग्बन्धने स्थितम् ।
करेण छोटिकापूर्व[८८] वेष्टन बन्धन दिश ॥ ६८ ॥
आत्मन पूजनेनाथ कर्मारम्भाधिकारिता ।
पूजित चासन योगपीठस्य सदृश भवेत् ॥ ६६ ॥
स्वभावतः सदा शुद्धं पञ्चभूतात्मक वपु ।
मलपूतिसमायुक्त - श्लेष्मविण्मूत्रपिच्छिलम् ॥ १०० ॥
रेतोनिष्ठीवलालाभि'[८९] स्रवद्भिरपरिष्कृतम् ।
बीजभूतानि चैतस्य महाभूतानि पञ्च वै ॥ १०१ ॥

---

८६ दर । ८७. देवपूजा करोम्यहम् । ८८. स्फोटिका
८९. ' निष्ठीवमानाभि. ।

तेषा तु सर्वभूताना बीजाना देहसङ्गिनाम् ।
वायुतेज पृथिव्यम्भोवियता शुद्धये क्रमात् ॥ १०२ ॥
शोषण दहन भस्मप्रोत्सादोऽमृतवर्षणम् ।
आप्लावन च कर्तव्यं चिन्तामात्रविशुद्धये ॥ १०३ ॥
अण्डस्य चिन्तनाद् भेदात्तन्मध्ये देवचिन्तनात् ।
स्वकीयस्येष्टदेवस्य चिन्ता सर्वात्मना भवेत् ॥ १०४ ॥
सोऽहमित्यस्य सतत चिन्तनाद् देवरूपता ।
आत्मनो जायते सम्यक् सस्कृति पुष्पदानत ॥ १०५ ॥
अह देवोऽथ नैवेद्य पुष्पगन्धादिक च यत् ।
पूजोपकरणार्थं च देवत्वमिह जायते ॥ १०६ ॥
देवाधारो ह्यह देवो देवं देवाय योजयेत् ।
सर्वेषा देवतासृष्ट्या जायते शुद्धतापि च ॥ १०७ ॥*
मनोजीवात्मनो शुद्धि प्राणायामेन जायते ।
अन्तर्गत यच्च मल तच्च शुद्ध प्रजायते ॥ १०८ ॥
गृहे चेत् पूजयेद् देव तदा तस्य विलोकनम् ।
कुर्यादादित्यबीजेन चतु पार्श्वेष्वपि[९०] क्रमात् ॥ १०९ ॥
हान्त समाप्तिसहितो वह्निबीजेन सहित ।
उपान्त सचतुर्थस्तु स तथा सकलोऽग्रतः ॥ ११० ॥
आदित्यबीज कथित सर्वरोगविनाशनम् ।
धर्मार्थकाममोक्षाणा कारण तोषदायकम् ॥ १११ ॥
अशुद्धपक्षिसयोग–पक्षिविष्ठाप्रसेचने ।
मूषिकाणा तथा स्पर्शे कृमिकीटादिसगम ॥ ११२ ॥
एवमादीनि नश्यन्ति लोकनाद् गृहदूषणम् ।
ततस्तु योगपीठस्य ध्यान प्रथमतश्चरेत् ॥ ११३ ॥
ध्यानमात्र योगपीठ प्रविशत्येव मण्डलम् ।
योगपीठे स्मृते सर्वं योगपीठमय समम् ॥ ११४ ॥
न योगपीठादधिक विद्यते परमासनम् ।
यस्य ध्यानाज्जगद् व्याप्त सचराचरमानुषम् ॥ ११५ ॥
तच्चिन्तनस्य माहात्म्य को वा वक्तु समुत्सहेत् ।
चिन्तामात्रेण मानुष्य पश्य शोकविनाशनम् ॥ ११६ ॥
धारणाद् योगपीठ तु चतुर्वर्गफलप्रदम् ।

---

* इय पंक्ति पाण्डुलिप्या न दृश्यते । ९०. ...पार्श्वे चतुःक्रमात् ।

शुद्धस्फटिकसकाश चतुष्कोण चतुर्वृतिम् ॥ ११७ ॥
आधारशक्त्या विहित प्रग्रहं[९१] सूर्यसन्निभम् ।
आग्नेयादिषु कोणेषु चतुर्षु क्रमत स्थितम् ॥ ११८ ॥
धर्मो ज्ञान तथैश्वर्य वैराग्य क्रमत सदा ।
पूर्वादिदिक्षु चैतानि स्थितानि क्रमतो यथा ॥ ११९ ॥
अधर्मश्च तथाज्ञानमनैश्वर्य तत. परम् ।
अवैराग्य पर तस्माद्धारणार्थं व्यवस्थितम् ॥ १२० ॥
तस्योपरि जलौघस्तु तस्मिन् ब्रह्माण्डमास्थितम् ।
ब्रह्माण्डाभ्यन्तरे तोय कूर्मस्तस्योपरि स्थित ॥ १२१ ॥
कूर्मोपरि तथानन्त पृथ्वी तस्योपरि स्थिता ।
अनन्तगात्रसयुक्त नाल पातालगोचरम् ॥ १२२ ॥
पृथ्वीमध्ये स्थित पद्म दिक्पत्र गिरिकेशरम् ।
तस्याष्टदिक्षु दिक्पाला' स्वर्गो मध्ये व्यवस्थित ॥ १२३ ॥
कर्णिकाया ब्रह्मलोको महर्लोकादयो ह्यध ।
स्वर्गे ज्योतीषि देवाश्च चतुर्वेदास्तदन्तरे ॥ १२४ ॥
सत्त्व रजस्तम इति गुणा प्रकृतिसम्भवा ।
सदा स्थिता पद्ममध्ये पर तत्त्व तथैव च ॥ १२५ ॥
आत्मतत्त्व तत्र सस्थमूर्ध्वच्छदनमूर्धत ।
अधोऽधश्छदन तत्र केशराग्रे स्थित पुन ॥ १२६ ॥
सूर्याग्निचन्द्रमरुता[९२] मण्डलानि क्रमात् तत ।
शावासन योगपीठे सुखासनमत परे ॥ १२७ ॥
आराध्यासनमस्माच्च ततश्च विमलासनम् ।
मध्ये विचिन्तयेत् सर्व जगद्वै सचराचरम् ॥ १२८ ॥
ब्रह्मविष्णुशिवाश्चैव भागत्रयविनिश्चितान् ।
आत्मान चिन्तयेत् तत्र पूजने समुपस्थितम् ॥ १२९ ॥
मण्डल योगपीठ तु पद्म पद्म तु चिन्तयेत् ।
शावादीन्यासनानीह चत्वार्यपि विचिन्तयेत् ॥ १३० ॥
योगपीठ पृथग्ध्यात्वा[९३] मण्डलेन सहैकताम् ।
पुनर्ध्यात्वा ततः पश्चात् पूजयेदासन तत' ॥ १३१ ॥
ध्यानेन योगपीठस्य यथा यद्दीयते जलम् ।
नैवेद्यपुष्पधूपादि तत् स्वय चोपतिष्ठते ॥ १३२ ॥

---

९१ ग्रहण । ९२ वाय्वग्निचन्द्रमरुता । ९३. पुनर्ध्यात्वा ।

सर्वे देवा सगन्धर्वा सचराचरगुह्यका ।
चिन्तिता पूजिताश्च स्युर्योगपीठस्य पूजने ॥ १३३ ॥
अभीष्टदेवतापूजा विना यस्य विचिन्तनात् ।
लभते वै चतुर्वर्गं तुष्टि पुष्टिश्च जायते ॥ १३४ ॥
आवाहनानन्तरत पाणिभ्यामवतारयेत् ।
प्रागुत्तानौ करौ कृत्वा ऊर्ध्वमुत्क्षिप्य सान्तरौ ॥ १३५ ॥
निरन्तरावध. कुर्यान्नामयन् पूजकस्तथा ।
हेरम्बस्य तु बीजेन तस्मादवतरेति च ॥ १३६ ॥
आम्रेडितेन चाभीष्टदेवाना लम्बनाय वै ।
नासिकावायुनि साराद्वियत्स्था देवता भवेत् ॥ १३७ ॥
एव कृते[94] मण्डले तु स्थितिस्तस्य प्रजायते ।
स्वान्त शुद्धांशुबिन्दुभ्या हैरम्ब बीजमुच्यते ॥ १३८ ॥
नाशन विघ्नबीजाना धर्मकामार्थसाधनम् ।
गन्धपुष्पे तथा धूपदीपौ नैवेद्यमेव च ॥ १३९ ॥
यदन्यद् दीयते वस्त्रमलकारादिक च यत्[95] ।
तेषा दैवतमुच्चार्य कृत्वा प्रोक्षणपूजने ॥ १४० ॥
उत्सृज्य मूलमन्त्रेण प्रतिनाम्ना निवेदयेत् ।
वरुणस्य तु बीजेन तेषा प्रोक्षणमाचरेत् ॥ १४१ ॥
इष्टेन मूलमन्त्रेण तथोत्सर्गनिवेदने[96] ।
लपरश्चन्द्रबिन्दुभ्या बीज वारुणमुच्यते ॥ १४२ ॥ॐ
विलोकन पूजन च तथा दान पृथक् पृथक् ।
जपकर्मणि मालाया प्रतिपत्तिरिद त्रयम् ॥ १४३ ॥
इष्टमन्त्रेण मालाया प्रोक्षण परिकीर्तितम् ।
बीज गाणपत पूर्वमुच्चार्य तदनन्तरम् ॥ १४४ ॥
अविघ्न कुरु माले त्व गृह्णीयादित्यनेन च ।
जपान्ते शिरसि न्यासो मालाया परिकीर्तित. ॥ १४५ ॥
स्रजमादाय पाणिभ्या श्रीबीजेन तथार्चयेत् ।
अन्त्यदन्त्यान्तमात्राभ्या चादिवर्गतृतीयकौ[97] ॥ १४६ ॥
परत. परत. पूर्व श्रीबीज बिन्दुनेन्दुना ।
मालाया अवतारस्तु शिरस· क्रियते यदा ॥ १४७ ॥

---

९४ भूते ।   ९५ किंचन ।
९६ मूलमन्त्रेण मालानां प्रोक्षण परिकीर्तितम् ।
ॐ मुद्रितपुस्तके अधिकः ।   ९७. चादिवर्गान्तदुर्यकौ ।

ता समादाय पाणिभ्या कुर्यात् सारस्वतेन[९८] वै ।
श्रीबीजानामाद्यमाद्य बिन्दुचन्द्रार्धसयुतम् ॥ १४८ ॥
एतच्चतुष्टय बीज सारस्वतमुदीरितम् ।
पौराणिकैर्वैदिकैश्च मूलमन्त्रेण चैव हि ॥ १४९ ॥
प्रदक्षिणा प्रणाम च कुर्याद्धर्मार्थसाधकम् ।
भूमि वीक्ष्य तथाभ्युक्ष्य क्षितिबीजेन पूर्वत ॥ १५० ॥
स्पृशस्ता शिरसा भूमि प्रणमेदिष्टदेवता. ।
समाप्तिहीन वाराह बीज बिन्द्विन्दुसयुतम् ॥ १५१ ॥
क्षितिबीज विजानीयाच्चतुर्वर्गप्रदायकम् ।
दर्पण व्यजन घण्टा चामर प्रोक्षयेत् पुनः ॥ १५२ ॥
नैवेद्यालोकमन्त्रेण पूर्वप्रोक्तेन भैरव ।
नामाक्षराणि चाद्यानि चैतेषा बिन्दुनेन्दुना ॥ १५३ ॥
तस्मै नम इति प्रान्ते ग्रहणे मन्त्र उच्यते ।
निवेदनमथैतेषामिष्टमन्त्रेण चाचरेत् ॥ १५४ ॥
वाग्भवस्य द्वितीयेन कामबीजेन भैरव ।※
मुद्राया बन्धन कार्य मूलमन्त्रेण दर्शनम् ॥ १५५ ॥※
परित्याग तु मुद्रायास्ताराबीजेन चाचरेत् ।※
प्रान्तादिश्चन्द्रबिन्दुभ्या षष्ठस्वरसमन्वित ॥ १५६ ॥※
ताराबीजमिति प्रोक्त धर्मकामार्थसाधनम् ।
मुद् ददाति यस्मात् सा मुद्रा तेन प्रकीर्तिता ॥ १५७ ॥
दर्शिताया तु मुद्राया भवेत् पूजासमापनम् ।
काम मोक्षं तथा धर्ममर्थमोदयुता स्वयम् ॥ १५८ ॥
ददाति साधकायाशु देवता गन्तुमुत्सुका ।
मुद्रान्ते तु महामन्त्रान् षडिमान् समुदीरयेत् ॥ १५९ ॥
यद् दत्त भक्तिमात्रेण पत्र पुष्प फल जलम् ।
आवेदित च नैवेद्य तद्गृहाणानुकम्पया ॥ १६० ॥
आवाहन न जानामि न जानामि विसर्जनम् ।
पूजाभाव न जानामि त्व गति परमेश्वरि ॥ १६१ ॥
कर्मणा मनसा वाचा त्वत्तो नान्यं गतिर्मम[९९] ।
अन्तश्चरेण भूतानां त्वं गति.[१००] परमेश्वरि ॥ १६२ ॥
मातर्योनिसहस्रेषु येषु येषु व्रजाम्यहम् ।

---

९८ स्वामिसुनेन । ※ मुद्रितपुस्तके अधिक ।
९९ नान्यास्ति मे गति' । १०० द्रष्टी ।

तेषु तेष्वच्युता भक्तिरच्युतेऽस्तु सदा त्वयि ॥ १६३ ॥
देवी दात्री च भोक्त्री च देवी[1] सर्वमिदं जगत् ।
देवी[2] जयति सर्वत्र या[3] देवी सोऽहमेव च ॥ १६४ ॥
यदक्षरपरिभ्रष्टं मात्राहीनं च यद् भवेत् ।
तत्सर्वं क्षम्यतां[4] देवि कस्य न स्खलितं मनः ॥ १६५ ॥
मन्त्रेषु पठितेष्वेषु स्वयमेव प्रसीदति ।
दातुं देवी[5] चतुर्वर्गं न चिरादेव भैरव ॥ १६६ ॥
ऐशान्यां मण्डलं कुर्याद् द्वारपद्मविवर्जितम् ।
विसर्जनार्थं निर्माल्यधारिण्याः पूजनाय वै ॥ १६७ ॥
पाद्यादिभिः पूजयित्वा ध्यात्वा निर्माल्यधारिणीम् ।
निःक्षिप्य तस्मिन् निर्माल्यं मन्त्रेण तु विसर्जयेत् ॥ १६८ ॥
गच्छ गच्छ परं स्थानं स्वस्थानं परमेश्वरि ।
यत्र ब्रह्मादयो देवा न विदुः परमं पदम् ॥ १६९ ॥
विसृज्य मन्त्रेणानेन ततः पूरकवायुना ।
ध्यायस्तु मन्त्रेणानेन नत्वा तां स्थापयेद्धृदि ॥ १७० ॥
तिष्ठ देवि परे स्थाने स्वस्थाने परमेश्वरि ।
यत्र ब्रह्मादयः सर्वे सुरास्तिष्ठन्ति मे हृदि ॥ १७१ ॥
ततः एकजटाबीजैरिष्टदेवीं धिया स्मरन् ।
निर्माल्यं मूर्ध्नि गृह्णीयाद् धर्मकामार्थसाधनम् ॥ १७२ ॥
मण्डलप्रतिपत्तिं तु ततः कुर्याद् विभूतये ।
सर्वाङ्गुलीनामग्रौघैः पद्ममष्टदलान्वितम् ॥ १७३ ॥
निर्मन्थयेत् क्षितिबीजेन मण्डलं चापि भैरव ।
ततस्तु मूलमन्त्रेण सर्ववश्येन वा पुनः ॥ १७४ ॥
अनामिकानामग्रेण ललाटमपि संस्पृशेत् ।
समाप्तिसहितं प्रान्तस्ताराबीजं ततः परम् ॥ १७५ ॥
स्मरबीजं[6] विसर्गेण परतः परतः परम् ।
भवेदेकजटाबीजं धर्मकामार्थसाधनम् ॥ १७६ ॥
ततो भास्करबीजेन सहितेनात्मना पुनः ।
मन्त्रेण भास्करायार्घमच्छिद्रार्घं निवेदयेत् ॥ १७७ ॥

---

१ देवी दाता च भोक्ता च देवः । २ देवो । ३. यो देवो ।
४ चन्तुमर्हसि मा । ६. बन्धुबीजं ।

नमो विवस्वते ब्रह्मन् भास्वते विष्णुतेजसे।
जगत्सवित्रे शुचये सवित्रे कर्मदायिने ॥ १७८ ॥
तत कृताञ्जलिर्भूत्वा पठित्वा मन्त्रमीरितम्।
एकाग्रमनसा वाग्भिरच्छिद्रमवधारयेत् ॥ १७९ ॥
यज्ञच्छिद्र तपश्छिद्र यच्छिद्र पूजने मम।
सर्व तदच्छिद्रमस्तु भास्करस्य प्रसादत ॥ १८० ॥
ततस्तु पुष्पनैवेद्य-तोयपात्रादिक च यत्।
देवीबीजेन तत्सर्व पुनरेव विलोकयेत् ॥ १८१ ॥
हस्तेन चक्षुषा वापि यत्र यत्र कृत पुरा।
मन्त्रन्यासस्तत्र तत्र विसृष्टिरमुना भवेत् ॥ १८२ ॥
प्रान्तादिपञ्चमो । वह्निबीजषष्ठस्वराहित।
तथोपान्त वाग्भवाद्य दुर्गाबीज प्रचक्षते ॥ १८३ ॥
स्थण्डिले ज्वलदग्नौ च तोये सूर्यमरीचिषु।
प्रतिमासु च शुद्धासु शालग्रामशिलासु च ॥ १८४ ॥
शिवलिगे शिलाया तु पूजा कार्या विभूतये।
सर्वत्र मण्डलन्यास कुर्यादेकाग्रमानस ॥ १८५ ॥
योगपीठस्य बीजेन स्थण्डिलादिषु साधक।
वासुदेवस्य रुद्रस्य ब्रह्मणो मिहिरस्य च ॥ १८६ ॥
कुर्यात् सर्वत्र पूजासु प्रतिपत्तिमिमा बुध।
एव य पूजयेद् विष्णुममीभि प्रतिपत्तिथि. ॥ १८७ ॥
चतुर्वर्गप्रदस्तस्य न ·चिराज्जायते हरि।
शिवो वा मिहिरो वापि येऽन्ये लम्बोदरादय' ॥ १८८ ॥
प्रसीदन्ति सुरा सर्वे पूजाया विधिनामुना।
विशेषतो महादेवी महामाया जगन्मयी ॥ १८९ ॥
प्रतिपत्तिमिमां नित्य स्पृहयत्येव पूजने।
एव य कुरुते पूजा सम्यक् स फलभाग्भवेत् ॥ १९० ॥
एतैर्विहीना या पूजा ततोऽल्पाल्प फल भवेत्[७]।
अगहीनस्तु पुरुषो न सम्यग्याज्ञिको यथा ॥ १९१ ॥
अगहीना तथा पूजा न सम्यक् फलभाग्भवेत्।
इद रहस्य परममिद स्वस्त्ययनं परम्।
मन्त्रवेदमय शुद्ध सर्वपापप्रणाशनम् ॥ १९२ ॥

---

७ ततोऽल्पा फलदा भवेत्।

य श्रावयेद् ब्राह्मणसन्निधाने
श्राद्धेषु यज्ञे सुरपूजनेषु ।
सम्यक् फल तस्य लभेत् स कर्मणो
विनापि पूजा तदनन्तमश्नुते ॥ १६३ ॥

इति श्रीकालिकापुराणे उत्तरतन्त्रे सप्तपचाशोऽध्याय ॥ ५७ ॥

अष्टपञ्चाशोऽध्याय:

श्रीभगवानुवाच

देव्यास्तन्त्र विशेषेण[8] शृणुत साम्प्रत युवाम् ।
येन चाराविता देवी नाचिराद्वरदा भवेत ॥ १ ॥
[9]पूर्वतन्त्राद्विशेषेण तथा वै तन्त्रमुत्तरम् ।
विशेषेण च सामान्यात् कथित भवतो पुरा ॥ २ ॥
पुनर्देव्या विशेषेण पूजाया भक्तिकर्मणि ।
यानि तन्त्राणि शेषाणि[10] तानि वक्ष्याम्यह पुन ॥ ३ ॥
य कुर्यात् तु महामायाभक्तिमेकाग्रमानस ।
अङ्गिना[11] वाङ्गिमन्त्रेण तेन कार्यमिद शुभम् ॥ ४ ॥
फल पुष्प च ताम्बूलमन्नपानादिक च यत् ।
अदत्त्वा तु महादेव्यै न भोक्तव्य कदाचन ॥ ५ ॥
पथि वा पर्वताग्रे वा सभायामपि साधक ।
यथा तथा निवेद्यैव स्वमर्थमुपकल्पयेत् ॥ ६ ॥
दृष्ट्वैव मदिराभाण्ड रक्तवर्णास्तथा स्त्रिय[12] ।
सिह शव रक्तपद्म व्याघ्रवारणसङ्गमम् ॥ ७ ॥
गुरु राजानमथवा महामाया ततो नमेत् ।
पतिव्रताया भार्याया सदैव ऋतुसगम ॥ ८ ॥
क्रियते चण्डिका ध्यात्वा तदा कार्यो विभूतये ।
शान्तिक पौष्टिक वापि तथेष्टापूर्त्तकर्मणी ॥ ९ ॥
यदा कुर्यात् तदा नत्वा देवीयात्रा समाचरेत् ।
तौर्य्यत्रिक यदा पश्येत् केवल गीतमेव वा ॥ १० ॥
तच्च देव्यै निवेद्यैव कर्तव्य स्वोपयोजनम् ।
यदेव भूषण वासो मलयोद्भवमेव वा ॥ ११ ॥
स्वकाये परियुञ्जीत तत्र मन्त्र धिया न्यसेत् ।
व्यायामे च विवाने च सभाया वा जले स्थले ॥ १२ ॥
यत्र यत्र स्वय गच्छेत् तत्र देवी सदा स्मरेत् ।
यद् यत् कर्म तु पूजाग तत्तन्मन्त्रेण चाचरेत् ॥ १३ ॥
मन्त्रहीन पूजनाङ्ग कर्म यत् तत्तु निष्फलम् ।

---

८ प्रवक्ष्यामि । ९ सर्व । १० तन्त्रविशेषाणि ।
११ वङ्ग । १२ रक्तवस्त्र ।

यस्मिन् कर्मणि योद्दिष्टो मन्त्रपूजासु भैरव ।। १४ ।।❀
नैवेद्यालोकमन्त्रेण तत्त तत् कर्म समाचरेत् ।
देव्यास्तु मण्डलन्यासमिष्टमन्त्रेण चाचरेत् ।। १५ ।।❀
पूजान्ते मण्डल लिप्त्वा तिलक तेन कारयेत्[13] ।
सर्ववश्येन मन्त्रेण धर्मकामार्थदायिना ।। १६ ।।
बलिदाने बलि छित्वा खड्गस्थै रुधिरै स्वकै ।
सर्ववश्येन मन्त्रेण ललाटे तिलक न्यसेत् ।। १७ ।।
जगद्वशे भवेत् तस्य चतुर्थ कस्य वह्निना[14] ।
षष्ठस्वरेण सयुक्त कलाबिन्दुसमन्वित ।। १८ ।।
अथोपान्तस्थकारान्त सपरोऽपि तथा पुन ।
द्विर्मोहीति [15]हकारास्य तुर्यो द्विस्वरसयुत ।। १९ ।।
तृतीयवर्ग-प्रान्तेन तृतीयस्वरसज्ञिना ।
पूरितान्तो द्विधा वर्णस्तथा[16] [17]वादिचतुर्थक ।। २० ।।
स्वरो द्वितीयश्च तथा क्षोभशब्द पुर सर ।
पुरेति सहित सोऽपि मित्र शत्रुश्च राक्षस ।। २१ ।।
दक्षप्रजा[18] तथा राजा सर्वशास्त्र इति श्रुत ।
विनापि पूजन कुर्याद् यो रहस्तिलक नर ।। २२ ।।
मन्त्रेणानेन सतत सर्व तस्य वशो भवेत् ।
राजा वा राजपुत्रो वा स्त्रियो वा यक्षराक्षसा ।। २३ ।।
सर्वे तस्य वश यान्ति भूतग्रामाश्चतुर्विधा ।
प्रवासे पथि वा दुर्गे स्थानाप्राप्तौ जलेऽपि वा ।। २४ ।।
कारागारे निबद्धो वा प्रायोवेशगतोऽपि[19] वा ।
कुर्यात् तत्र महामायापूजा वै मानसी बुध ।। २५ ।।
मनोभये[20] समुत्पन्ने सिहव्याघ्रसमाकुले ।
परचक्रागमे वापि कुर्यान्मानसपूजनम् ।। २६ ।।
मनसा हृदयस्यान्तर्ध्यात्वा योगाख्यपीठकम् ।
तत्रैव पृथिवीमध्ये पूजा तत्र समाचरेत् ।। २७ ।।
मैत्र प्रसाधन स्नान दन्तधावनकर्म वै ।
अन्यच्च सर्व मनसा कृत्वा कुर्याच्च पूजनम् ।। २८ ।।❀
पश्चात्[21] पुष्पादिभि पूजा बहिर्देशे विधीयते ।

❀ मुद्रितपुस्तके अधिको दृश्यते । १३ साधयेत् । १४ वह्नि ।
१५. औकारस्य । १६ द्विरावर्त । १७. भादि ' । १८ यज्ञपूजा ।
१९ प्रायोवेगगतोऽपि । २० मनस्तुष्टौ । ❀मुद्रितपुस्तके अधिक ।
२१. यथा ।

तथा ह्यपि कर्तव्या सर्वाश्च प्रतिपत्तय ॥ २९ ॥
अष्टम्या सतत देवीयाजक स्यात् सदा व्रती ।
नवम्या तु तथा पूजा कर्तव्या निजशोणितै ॥ ३० ॥
लिगस्था पूजयेद् देवी पुस्तकस्था तथैव च ।
स्थण्डिलस्था महामाया पादुकाप्रतिमासु च ॥ ३१ ॥
चित्रे च[२२] त्रिशिखे खड्ग जलस्था वापि पूजयेत् ।
पञ्चाशदङ्गुल खड्ग त्रिशिख च त्रिशूलकम् ॥ ३२ ॥
शिलाया पर्वतस्याग्रे तथा पर्वतगह्वरे ।
देवी सम्पूजयेन्नित्य भक्तिश्रद्धासमन्वित ॥ ३३ ॥
वाराणस्या सदा पूजा सम्पूर्णफलदायिनी ।
ततस्तद्द्विगुणा प्रोक्ता पुरुषोत्तमसन्निधौ ॥ ३४ ॥
ततोऽपि द्विगुणा प्रोक्ता द्वारावत्या विशेषत ।
सर्वक्षेत्रेषु तीर्थेषु पूजा द्वारावतीसमा ॥ ३५ ॥
विन्ध्ये शतगुणा प्रोक्ता गङ्गायामपि तत्समा ।
आर्यावर्ते मध्यदेशे ब्रह्मावर्ते तथैव च ॥ ३६ ॥
विन्ध्यवत् फलदा पूजा प्रयागे पुष्करे तथा ।
ततश्चतुर्गुणा प्रोक्ता करतोया नदीजले ॥ ३७ ॥
तस्माच्चतुर्गुणफला नन्दिकुण्डे च भैरव ।
ततश्चतुर्गुणा प्रोक्ता जल्पिषेश्वरसन्निधौ ॥ ३८ ॥
तत्र सिद्धेश्वरीयोनौ ततोऽपि द्विगुणा स्मृता ।
ततश्चतुर्गुणा प्रोक्ता लौहित्यनदपाथसि ॥ ३९ ॥
तत्समा कामरूपे तु सर्वत्रैव जले स्थले ।
सर्वश्रेष्ठो यथा विष्णुर्लक्ष्मी सर्वोत्तमा यथा ॥ ४० ॥
देवीपूजा तथा शस्ता कामरूपे सुरालये ।
देवीक्षेत्र कामरूप विद्यतेऽन्यत्र तत्समम् ॥ ४१ ॥
अन्यत्र विरला देवी कामरूपे गृहे गृहे ।
तत शतगुणा प्रोक्ता नीलकूटस्य मस्तके ॥ ४२ ॥
ततोऽपि द्विगुणा प्रोक्ता हेरुके शिवलिङ्गके[२३] ।
ततोऽपि द्विगुणा प्रोक्ता शैलपुत्र्यादियोनिषु ॥ ४३ ॥
तत शतगुणा प्रोक्ता कामाख्यायोनिमण्डले ।
कामाख्याया महामायापूजा य· कृतवान् सकृत् ॥ ४४ ॥
स चेह लभते कामान् परत्र शिवरूपताम् ।

---

२२ मित्रिते । २३ हेरुकेश्वरलिंगके ।

न तस्य सदृशोऽन्योऽस्ति कृत्य तस्य न विद्यते ॥ ४५ ॥
वाञ्छितार्थमवाप्येह चिरायुरभिजायते ।
वायोरिव गतिस्तस्य भवेदन्यैरबाधिता ॥ ४६ ॥
सग्रामे शास्त्रवादे वा दुर्जय स च जायते ।
वैष्णवीतन्त्रमन्त्रेण कामाख्यायोनिमण्डले ।
सकृत् तु पूजन कृत्वा फल शतगुण लभेत् ॥ ४७ ॥
मूलमूर्तिर्महामाया योगनिद्रा जगन्मयी ।
तस्यास्तु वैष्णवीतन्त्र मन्त्र प्राक् प्रतिपादितम् ॥ ४८ ॥
अन्या या मूर्तय प्रोक्ता शैलपुत्र्यादयोऽपरा ।
तस्या एव विभागास्तास्तच्छरीरविनिर्गता ॥ ४९ ॥
नि सरन्ति यथा नित्य सूर्यबिम्बान्मरीचय ।
देव्यास्तथोग्रचण्डाद्या महामायाशरीरत ॥ ५० ॥
तासामेवाङ्गरूपाणि[24] वक्तव्यानि मया तव[25] ।
एकैव तु महामाया कार्यार्थ भिन्नता गता ॥ ५१ ॥
कामाख्या तु महामाया मूलमूर्ति प्रगीयते ।
पीठैर्भिन्नाह्वया सा तु महामाया प्रगीयते ॥ ५२ ॥
एक एव[26] यथा विष्णुर्नित्यत्वाद् हि सनातन ।
जनानामर्दनात् सोऽपि जनार्दन इति श्रुत. ॥ ५३ ॥
तथैव सा महामाया कामार्थ सङ्गता गिरौ ।
कामाख्येति सदा देवैर्गद्यते सतत नरै ॥ ५४ ॥
यथा हि पुरुष कोऽपि च्छत्री च्छत्रग्रहाद् भवेत् ।
स्नापक स्नानकाले वै कामाख्यापि तथाह्वया ॥ ५५ ॥
महामायाशरीर तु कामार्थ समुपस्थितम् ।
लोहितै कुकुमै पीत कामार्थमुपयोजितै ॥ ५६ ॥
खड्ग त्यक्त्वा कामकाले सा गृह्णाति स्रज स्वयम् ।
यदा तु त्यक्तकामा सा तदा स्यादसिधारिणी ॥ ५७ ॥
कामकाले शिवप्रेते न्यस्तलोहितपकजे ।
रमते[27] त्यक्तकामा तु सितप्रेतोपरि स्थिता ॥ ५८ ॥
तथैवेतस्ततो गत्या सिहरथा कमदा भवेत् ।
कदाचित् सा सितप्रेते कदाचिद्रक्तपकजे ॥ ५९ ॥
कदाचित् केशरीपृष्ठे रमते कामरूपिणी ।

---

२४ तन्त्राणि । २५. यथा । २६. एवमेव । २७. वसते ।

यदा लोहितपद्मस्था तथाग्रे केशरी चर ॥ ६० ॥
यदा प्रेतगता[२८] देवी तदाग्रेऽन्य निरीक्षते।
महामायास्वरूपेण यदा सा वरदा भवेत् ॥ ६१ ॥
पूजाकाले तदा प्रेतपद्मसिंहोपरि स्थिता।
रक्तपद्मे यदा ध्यायेत् तदाग्रे चिन्तयेद्धरिम् ॥ ६२ ॥
यदा ध्यायेद्धरौ चान्यद्वयमग्रे विचिन्तयेत्।
त्रिषु ध्यातेषु युगपत् प्रेतपद्महरौ[२९] क्रमात् ॥ ६३ ॥
स्थितेषु कामदा देवी तेषु ध्यायेत कामदाम्[३०]।
एकैकस्मिन्नपि तथा यथावच्छिन्तयेच्छिवाम् ॥ ६४ ॥
एका समस्ता जगता प्रकृति सा यतस्तत ।
विष्णुब्रह्मशिवैर्देवैर्ध्रियते सा जगन्मयी ॥ ६५ ॥
सितप्रेतो महादेवो ब्रह्मालोहितपकजम्।
हरिर्हरिरतु विज्ञेयो वाहनानि महौजस ॥ ६६ ॥
स्वमूर्त्या वाहनत्व तु तेपा यस्मान्न युज्यते।
तस्मान्मूर्त्यन्तर कृत्वा वाहनत्व गतास्त्रय ॥ ६७ ॥
यस्मिन् यस्मिन् महामाया प्रीणाति सतत शिवा।
तेन तेनैव रूपेण आसनान्यभवस्त्रय ॥ ६८ ॥
सिंहोपरि स्थित पद्म रक्त तस्योर्ध्वग शिव ।
तस्योपरि महामाया वरदाऽभयदायिनी ॥ ६९ ॥
एव रूपेण यो ध्यात्वा पूजयेत् सतत शिवाम् ।※
ब्रह्मविष्णुशिवास्तेन पूजिता स्युरसशयम् ॥ ७० ॥
एव सदा महामाया कामाख्या चैकरूपिणी।
ध्यानतो रूपतो भिन्ना तस्मात्ता तत्र पूजयेत् ॥ ७१ ॥
एव विशेषतन्त्राणि दुर्गाया कथितानि वाम्।
अङ्गमन्त्राणि तस्यास्तु श्रूयता नरसत्तमौ[३१] ॥ ७२ ॥

इति श्रीकालिकापुराणे अष्टपचाशोऽध्याय ॥ ५८ ॥

---

२८ सना। २९. प्रेते पद्मे । ३० ध्यातातिकामदा।
※ मुद्रितपुस्तकेऽधिक दृश्यते। ३१. द्विजसत्तमा ।

एकोनषष्टितमोऽध्यायः

श्रीभगवानुवाच

अङ्गमन्त्राण्यह वक्ष्ये चण्डिकाया विशेषत ।
यै समाराधिता देवी चतुर्वर्गप्रदा भवेत् ॥ १ ॥
तालव्यान्तो युत षष्ठस्वरबिन्द्विन्दुवह्निभि[32] ।
तथोपान्त स्वरस्त्वेते बाह्य वाग्भवमेव च ॥ २ ॥
नेत्रबीज चण्डिकायास्त्रयमेतत् प्रकीर्तितम् ।
वामललाटदाक्षिण्यनेत्रेषु[33] त्रितय क्रमात् ॥ ३ ॥
धर्मार्थकाममोक्षाणा सर्वदा कारण परम् ।
मन्त्रमेतन्महागुह्य दुर्गाबीजमिति स्मृतम् ॥ ४ ॥
यदा कात्यायनमुनेराश्रमेषु दिवौकसाम्[34] ।
तेजोभिर्धृतकायाभूद् देवी देवौघसस्तुता ॥ ५ ॥
तदा नेत्रत्रयाद् देव्या मूलमूर्तिर्विनि सृता ।
तेजोमयी जगद्धात्री महिषासुरघातिनी ॥ ६ ॥
तेजोभि सर्वदेवाना सा धृत्वा वपुरुत्तमम् ।
अस्त्राण्यनेकान्यादाय देवैर्दत्तानि भागश ॥ ७ ॥
सगण सानुबन्ध च सामात्यबलवाहनम् ।
ब्रह्माद्यै सस्तुता देवी जघान महिषासुरम् ॥ ८ ॥
हते तु महिषे देवी पूजिता त्रिदशैस्तत' ।
अनेनैव तु मन्त्रेण लोके ख्याति च सा गता ॥ ९ ॥
तत प्रभृति सा मूर्तिः सर्वै· सर्वत्र पूज्यते ।
मूलमूर्त्ति सुगुप्ताभूत् स्वमूर्त्यो ख्यातिमागता ॥ १० ॥
देवाना वरदानेन ब्रह्माद्यैरुपयोजनात् ।
यन्मूर्ति' पूज्यते सवस्ता मूर्ति शृणु भैरव ॥ ११ ॥❀
जटाजूटसमायुक्तामर्द्धेन्दुकृतशेखराम् ।
लोचनत्रयसयुक्ता [35]पूर्णेन्दुसदृशाननाम् ॥ १२ ॥
तप्तकाचनवर्णाभा सुप्रतिष्ठा सुलोचनाम् ।
नवयौवनसम्पन्ना सर्वाभरणभूषिताम् ॥ १३ ॥

---

३२. स्वरविन्दुसवह्निभि । ३३ वामनासिकाविदक्षिण' ।
३४. दिवौकस· । ❀ मुद्रितपुस्तकेऽधिक । ३५. पद्मेन्दु''' ।

सुचारुदशना तीक्ष्णा[३६] पीनोन्नतपयोधराम् ।
त्रिभङ्गस्थानसंस्थाना महिषासुरमर्दिनीम् ॥ १४ ॥
मृणालायतसंस्पर्शदशबाहुसमन्विताम् ।
त्रिशूल दक्षिणे देय[३७] खड्ग चक्र क्रमादध ॥ १५ ॥
तीक्ष्णबाण तथा शक्ति बाहुसघेषु सङ्गताम् ।
खेटक पूर्णचाप च पाश चाङ्कुशमूर्धत ॥ १६ ॥
घण्टा च परशु चापि वामेऽध प्रतियोजयेत् ।
अधस्तान्महिष तद्वद्विशिरस्क प्रदर्शयेत् ॥ १७ ॥
शिरश्छेदोद्भव तद्वद्दानव खड्गपाणिनम् ।
हृदि शूलेन निभिन्न निर्यदन्त्रविभूषितम् ॥ १८ ॥
रक्तरक्तीकृताग च रक्तविस्फुरितेक्षणम् ।
वेष्टित नागपाशेन भ्रुकुटीकुटिलाननम् ॥ १९ ॥
सपाशवामहस्तेन धृतकेश च दुर्गया ।
वमद्रुधिरवक्त्र च देव्या सिह प्रदर्शयेत् ॥ २० ॥
देव्यास्तु दक्षिण पाद सम सिहोपरि स्थितम् ।
किंचिदूर्ध्व तथा वाममङ्गुष्ठ महिषोपरि ॥ २१ ॥
उग्रचण्डा प्रचण्डा च चण्डोग्रा चण्डनायिका ।
चण्डा चण्डवती चैव चामुण्डा चण्डिका तथा ॥ २२ ॥
आभि शक्तिभिरष्टाभि सतत परिवेष्टिताम् ।
चिन्तयेत् सतत देवी धर्मकामार्थमोक्षदाम् ॥ २३ ॥
एतस्याश्चागमन्त्र तु दुर्गातन्त्रमिति श्रुतम् ।
शृणुष्वैकमना भूत्वा धर्मकामार्थसाधनम् ॥ २४ ॥
वह्निभार्या स्वर षष्ठो[३८] हान्त प्रान्तोऽग्निरेव च ।
दुर्गादिरिति मोङ्कार दुर्गामन्त्र[३९]मिति श्रुतम् ॥ २५ ॥
रवौ मकरराशिस्थे या भवेत् सितपचमी ।
तस्यामनेन मन्त्रेण सम्पूज्य विधिवच्छिवाम् ॥ २६ ॥
शुक्लाष्टम्या पुनर्देवी पूजयित्वा यथाविधि ।
नवम्या बलिदानानि प्रभूतानि समाचरेत् ॥ २७ ॥
सन्ध्याया च बलि कुर्यान्निजगात्रासृगुक्षितम् ।
एव कृते तु कल्याणैर्युक्तो नित्य प्रमोदते ॥ २८ ॥
*पुत्रपौत्रसमृद्धस्तु धनधान्यसमृद्धिभि ।

---

३६ तद्वत् । ३७ ध्येय । ३८ स्वरे तुर्ये । ३९ तन्त्र ।
* न तस्य जायते शोको न च मारी प्रजायते । इत्यधिक पाण्डुलिप्याम् ।

दीर्घायु सर्वसुभगो लोकेऽस्मिन् स च जायते ।। २६ ।।
सिताष्टम्या तु चैत्रस्य पुष्पैस्तत्कालसम्भवै ।
अशोकैरपि य कुर्यान्मन्त्रेणानेन पूजनम् ।। ३० ।।
न तस्य जायते शोको रोगो वाप्यथ दुर्गति ।
ज्यैष्ठे तु शुक्लपक्षस्य अष्टम्या समुपोषित ।। ३१ ।।
नवम्या मतिलैरन्नैर्यावकैरथ मोदकै ।
क्षीरैराज्यैस्तथा क्षौद्रै शर्कराभि सपिष्टकै ।। ३२ ।।
नानापशूना रुधिरैर्मांसैरपि च पूजयेत् ।
ततो दशम्या शुक्लायामद्भिस्तु तिलमिश्रितै ।। ३३ ।।
दुर्गातन्त्रेण मन्त्रेण दातव्यमञ्जलित्रयम् ।
एव कृते दशम्या तु यत्पाप दशजन्मभि ।। ३४ ।।
कृत तत्प्रलय याति दीर्घायुरपि जायते ।
आषाढे शुक्लपक्षस्य याष्टमी श्रावणस्य च ।। ३५ ।।
पवित्रारोपण[४०] कुर्याद् देवीप्रीतिकर परम् ।
दुर्गातन्त्रेण मन्त्रेण दुर्गाबीजेन भैरव ।। ३६ ।।
वैष्णवीतन्त्रमन्त्रेण दुर्गाबीजेन भैरव ।
वैष्णवीतन्त्रमन्त्रेण पवित्रारोपण चरेत् ।
विशेषाच्छ्रावण[४१] प्राप्य देव्या कुर्यात् पवित्रकम् ।। ३७ ।।
सर्वेषामेव देवाना पवित्रारोपण चरेत् ।
आषाढे श्रावणे वापि सवत्सरफलप्रदम् ।। ३८ ।।
प्रतिपद्धनदस्योक्ता पवित्रारोपणे तिथि ।
द्वितीया तु श्रियो देव्यास्तिथीनामुत्तमा स्मृता ।। ३६ ।।
तृतीया भवभाविन्याश्चतुर्थी तत्सुतस्य च ।
पचमी सोमराजस्य षष्ठी प्रोक्ता गुहस्य च ।। ४० ।।
सप्तमी भास्करस्योक्ता दुर्गायाश्च तथाष्टमी ।
मातृणा नवमी प्रोक्ता वासुकेर्दशमी मता ।। ४१ ।।
एकादशी ऋषीणा च द्वादशी चक्रपाणिन ।
त्रयोदशी त्वनङ्गस्य मम चैव चतुर्दशी ।। ४२ ।।
ब्रह्मणो दिक्पतीना च पौर्णमासी तिथिर्मता ।
पवित्रारोपण यो वै देवाना न समाचरेत् ।। ४३ ।।
तस्य सावत्सरीपूजाफल हरति केशव ।
तस्माद् यत्नेन कर्तव्य पवित्रारोपण परम् ।। ४४ ।।
कृते बहुफलप्राप्तिस्तत्पूजा सफला भवेत् ।

४०. रोहण । ४१. " श्रावणारम्य " ।

पवित्र येन सूत्रेण यथा कार्य विजानता ॥ ४५ ॥
तच्छ्रणुष्व प्रमाण तु वचनान्मम भैरव ।
प्रथम दर्भसूत्र च पद्मसूत्र तत परम् ॥ ४६ ॥
तत क्षौम सुपुण्य स्यात् कार्पासकमत परम् ।
पट्टसूत्र तथान्येन पवित्राणि न कारयेत् ॥ ४७ ॥
विचित्राणि पवित्राणि कर्तव्यानि तु यत्नत ।
गन्धमान्यै सुरभिभि रचितानि यथोदितम् ॥ ४८ ॥
कन्या च कर्तयेत् सूत्र प्रमदा च[४२] पतिव्रता ।
विधवा साधुशीला वा दु खशीला न कर्तयेत् ॥ ४९ ॥
यत्सूचिभिन्न दग्ध च भस्मधूमाभिगुण्ठितम् ।
तद्वर्जनीय यत्नेन सूत्रमस्मिन् पवित्रके ॥ ५० ॥
उपयुक्त चाखुजग्ध मद्यरक्तादिदूषितम् ।
मलिन नीलरक्त च प्रयत्नेन विवर्जयेत् ॥ ५१ ॥
सूत्रै पवित्र कुर्वीत कनिष्ठोत्तममध्यमम् ।
कनिष्ठ यत् पवित्र तु सप्तविशतितन्तुभि ॥ ५२ ॥
मर्त्यलोके यश कीर्ति सुखसौभाग्यवर्धनम् ।
चतु पञ्चाशता प्रोक्त तन्तूना मध्यम परम् ॥ ५३ ॥
दिव्यभोगावह पुण्य स्वर्गमोक्षप्रदायकम्[४३] ।
उत्तम चैव तन्तूनामष्टोत्तरशतेन वै ॥ ५४ ॥
तद्दत्वा तु महादेव्यै शिवसायुज्यमाप्नुयात् ।
उत्तम वासुदेवाय दद्याद् यदि पवित्रकम् ॥ ५५ ॥
तदा याति हरेर्लोक साधको नात्र सशय ।
अष्टोत्तरसहस्र तु रत्नमालेति गीयते ॥ ५६ ॥
पवित्र तु महादेव्या भुक्तिमुक्तिप्रदायकम् ।
रत्नमाल्या तु यो यच्छेन्महादेव्यै पवित्रकम् ॥ ५७ ॥
कल्पकोटिसहस्राणि स्वर्गे स्थित्वा शिवो भवेत् ।
एतत् तु नागहाराख्य शकरस्य पवित्रकम् ॥ ५८ ॥
अष्टोत्तरसहस्रेण तन्तुना सुमनोहरम् ।
य प्रयच्छति मह्य तु स[४४] यावास्तन्तुसचय ॥ ५९ ॥
तावत्कल्पसहस्राणि मम लोके प्रमोदते ।
अष्टोत्तरसहस्रेण वनमाला हरे स्मृता ॥ ६० ॥
तन्तूना तस्य दानेन विष्णुसायुज्यमाप्नुयात् ।

४२ वा । ४३ सौख्य । ४४ मह्य तव् ।

यत् कनिष्ठ पवित्र तु नाभिमात्र भवेत् तु तत् ॥ ६१ ॥
द्वादशग्रन्थिसयुक्तमात्ममानेन योजयेत् ।
ऊरुप्रमाण मध्य स्याद् ग्रन्थीना तत्र योजयेत् ॥ ६२ ॥
चतुर्विंशतिमप्यस्य मानमात्मन एव च ।
पवित्रमुत्तम प्रोक्त जानुमात्र च भैरव ॥ ६३ ॥
षट्त्रिंशत्तन्तुग्रन्थीना योजयेदात्ममानत ।
शतमष्टोत्तर कार्य ग्रन्थीना सुविधानत ॥ ६४ ॥
नागहाराह्वय तद्वदन्येषु च विधानत ।
पवित्र क्रियते येन सूत्रेण ग्रन्थय पुन ॥ ६५ ॥
तदन्यवर्णसूत्रेण कर्तव्या लक्षणान्विता ।
ग्रन्थि तु सप्तभि कुर्याद् वेष्टनैस्तु कनिष्ठके ॥ ६६ ॥
द्विगुणैर्मध्यमे कुर्यात्त्रिगुणैरुत्तमे तथा ।
अधिवास्य पवित्राणि पूर्वस्मिन् दिवसे तत ॥ ६७ ॥
मन्त्रन्यास पवित्रे तु कुर्यात् तत्रापरेऽहनि ।
दुर्गाबीजेन मन्त्रेण मन्त्रन्यास द्विजश्चरेत् ॥ ६८ ॥
वैष्णवीतन्त्रमन्त्रेण कुर्युरन्ये च भैरव ।
प्रतिग्रन्थि स्वय कुर्यान्मन्त्रन्यास विचक्षण ॥ ६९ ॥
अङ्गुष्ठाग्रेण जपन मालायामिह भैरव ।
यावन्तो ग्रन्थयश्चात्र तावन्त्येव च सन्न्यसेत् ॥ ७० ॥
मन्त्राणि तस्य तेन स्यादेवागोपनियोजनम् ।
दुर्गातन्त्रेण मन्त्रेण तत्त्वन्यास तु कारयेत् ॥ ७१ ॥
एकत्र न्यस्य सकल यज्ञपात्रे पवित्रकम् ।
तस्मिन् निधाय गन्धादि पुष्पाणि च सुशोभनम् ॥ ७२ ॥*
तत्वन्यास तत कुर्यादगुल्यग्रेण भैरव ।
विष्णोस्तु मूलमन्त्रेण तत्वन्यास तु कारयेत् ॥ ७३ ॥*
इद विष्णुरिति प्रोक्तं मन्त्रन्यास द्विजस्य हि ।
शूद्राणा मन्त्रविन्यासे मन्त्रो वै द्वादशाक्षर ॥ ७४ ॥
प्रासादेन तु मन्त्रेण तत्त्वन्यासो मम स्मृत ।
अनेन मन्त्रन्यास च दान चानेन कारयेत् ॥ ७५ ॥
कुकुमोशीरकपूर[४५]श्चन्दनादिविलेपनै ।
पवित्राणि विलिप्याथ तत्त्वन्यासं तु योजयेत् ॥ ७६ ॥
सम्पूज्य मण्डले देवी विधिवत् प्रयतो नर ।

* मुद्रितपुस्तकेऽधिक दृश्यते । ४५. खर्जूरै ।

वैष्णवीतन्त्रमन्त्रेण दुर्गातन्त्रेण भैरव ॥ ७७ ॥
दुर्गाबीजेन दद्यात् तु देव्या मूर्ध्नि पवित्रकम् ।
यस्य देवस्य य प्रोक्तस्तस्य तेनैव मण्डलम् ॥ ७८ ॥❀
यस्य यस्य तु यो मन्त्रो यथा ध्यानादिपूजनम् ।
तत् तत् तेनैव मन्त्रेण पूजयित्वा प्रयत्नत ॥ ७९ ॥
तस्यैव बीजमन्त्राभ्या मूर्ध्नि दद्यात् पवित्रकम् ।
पवित्र मम यो दद्याद् देवेभ्यश्च पवित्रकम् ॥ ८० ॥
सर्वेषामेव देवाना सम्पूर्णार्थश्च भैरव ।❀
अग्निर्ब्रह्मा भवानी च गजवक्त्रो महोरग' ॥ ८१ ॥
स्कन्दो भानुर्मातृगणो दिक्पालाश्च नवग्रहा ।
एतान् घटेषु प्रत्येक पूजयित्वा यथाविधि ॥ ८२ ॥
पवित्र मूर्ध्नि चैकैक दद्यादेभ्य समाहित ।
पचगव्यचरु कृत्वा देव्यै दत्त्वाहुतित्रयम् ॥ ८३ ॥
तेनैव विष्णवे[४६] दत्त्वा शम्भवे च यथाविधि ।
आज्यैरष्टोत्तरशत तिलैराज्यैस्तथैव च ॥ ८४ ॥
अष्टोत्तरशत दद्यान्महादेव्यै च साधक ।
एवमेव विधानेन विष्ण्वादीना च साधक[४७] ॥ ८५ ॥
पवित्रारोपण कुर्याद् धर्मकामार्थसिद्धये ।
नैवेद्यैर्विविधै पेयैर्वटपिष्टकमोदकै ॥ ८६ ॥
कूष्माण्डैर्नारिकेलैश्च खर्ज्जुरै पनसैस्तथा ।
आम्रदाडिमकर्कारुद्राक्षादिविविधै फलै ॥ ८७ ॥
भक्ष्यभोज्यादिभि सर्वैर्मत्स्यैर्मांसैस्तथौदनै. ।
गन्धै पुष्पैस्तथा धूपैर्दीपैश्च सुमनोहरै ॥ ८८ ॥
वासोभिर्भूषणैश्चैव भवानीसाधको यजेत् ।
नटनर्तकसघैश्च वेश्याभिश्चैव भैरव ॥ ८९ ॥
नृत्यगीतै समुदितो जागर कारयेन्निशि ।
भोजयेद् ब्राह्मणाश्चापि ज्ञातीनपि द्विजातिभि ॥ ९० ॥
पवित्रारोपणे वृत्ते दक्षिणामुपदापयेत् ।
हिरण्य गा तिलघृत वासो वा शाकमेव वा ॥ ९१ ॥
इम मन्त्र तत पश्चात् साधक समुदीरयेत् ।
मणिविद्रुममालाभिर्मन्दारकुसुमादिभि ॥ ९२ ॥

❀ मुद्रितपुस्तकेऽधिक दृश्यते ।
४६ वह्नये । ४७ वैष्णव ।

इय सावत्सरी पूजा तवास्तु परमेश्वरि।
ततो विसर्जयेद् देवी पूजाभि प्रतिपत्तिभि ॥ ६३ ॥
एव कृते पवित्राणा दाने देव्या यथाविधि।
सवत्सरस्य या पूजा सम्पूर्णा वत्सराद् भवेत् ॥ ६४ ॥
कल्पकोटिशत यावद् देवीगेहे वसेन्नर.।
तत्रापि सुखसौभाग्यसमृद्धिरतुला भवेत् ॥ ६५ ॥

इति श्रीकालिकापुराणे एकोनषष्टितमोऽध्याय ॥ ५९ ॥

षष्टितमोऽध्यायः

श्रीभगवानुवाच

दुर्गातन्त्रेण मन्त्रेण कुर्याद् दुर्गामहोत्सवम् ।
महानवम्या शरदि बलिदानं नृपादय ॥ १ ॥
आश्विनस्य तु शुक्लस्य भवेद् या अष्टमी तिथि ।
महाष्टमीति सा प्रोक्ता देव्या प्रीतिकरी परा ॥ २ ॥
ततोऽनु नवमी या स्यात् सा महानवमी स्मृता ।
सा तिथि सर्वलोकाना पूजनीया शिवप्रिया[४८] ॥ ३ ॥
अनयोर्वत्स पूजाया विशेष शृणु भैरव ।
सम्पूज्य मण्डले देवी विधिवत् प्रयतो नर ॥ ४ ॥*
वैष्णवीतन्त्रमन्त्रेण दुर्गातन्त्रेण भैरव ।*
मूर्तिभेदे यथा देवी पूजा गृह्णाति भूतये ॥ ५ ॥
कन्यासम्थे रवौ वत्स शुक्लामारभ्य नन्दिकाम् ।
अयाचिताशी नक्ताशी एकाशी त्वथ चापद[४९] ॥ ६ ॥
प्रात स्नायी जितद्वन्द्वस्त्रिकाल शिवपूजक ।
जपहोमसमायुक्तो भोजयेच्च कुमारिका ॥ ७ ॥
बोधयेद् बिल्वशाखासु षष्ठ्या देवीफलेषु च ।
सप्तम्या बिल्वशाखा तामाहृत्य प्रतिपूजयेत् ॥ ८ ॥
पुन पूजा तथाष्टम्या विशेषेण समाचरेत् ।
जागर च स्वय कुर्याद् बलिदान महानिशि ॥ ९ ॥
प्रभूतबलिदान तु नवम्या विधिवच्चरेत् ।
ध्यायेद् दशभुजा देवी दुर्गातन्त्रेण पूजयेत् ॥ १० ॥
विसर्जन दशम्या तु कुर्याद् वै साधकोत्तम[५०] ।
कृत्वा विसर्जन तस्या तिथौ नक्त समाचरेत् ॥ ११ ॥
यदा तु षोडशभुजा महामाया प्रपूजयेत् ।
दुर्गातन्त्रेण मन्त्रेण विशेष तत्र वै शृणु ॥ १२ ॥
कन्याया कृष्णपक्षस्य एकादश्यामुपोषित ।
द्वादश्यामेकभक्त तु नक्त कुर्यात् परेऽहनि ॥ १३ ॥

---

४८ शिवा तथा । * अधिक दृश्यते ।
४९ अथ वा मद । ५० शार्वरोत्सवे ।

चतुर्दश्यां महामायां बोधयित्वा विधानतः ।
गीतवादित्रनिर्घोषैर्नानानैवेद्यवेदनैः ॥ १४ ॥
अयाचितं बुधः कुर्यादुपवासं परेऽहनि ।
एवमेव व्रतं कुर्याद् यावद्वै नवमी भवेत् ॥ १५ ॥
ज्येष्ठायां च समभ्यर्च्य मूलेन प्रतिपूजयेत् ।
उत्तरेणार्चनं कृत्वा श्रवणान्ते विसर्जयेत् ॥ १६ ॥
यदा त्वष्टादशभुजां महामायां प्रपूजयेत् ।
दुर्गातन्त्रेण मन्त्रेण तत्रापि शृणु भैरव ॥ १७ ॥
कन्यायां कृष्णपक्षस्य पूजयित्वार्द्रभे दिवा ।
नवम्यां बोधयेद् देवीं गीतवादित्रनिस्वनैः ॥ १८ ॥
शुक्लपक्षे चतुर्थ्यां तु देवीकेशविमोचनम् ।
प्रातरेव तु पञ्चम्यां स्नापयेत् तु शुभैर्जलैः[५१] ॥ १९ ॥
सप्तम्यां पत्रिकापूजा अष्टम्यां चाप्युपोषणम् ।
पूजाजागरणं चैव नवम्यां विधिवद्बलिः ॥ २० ॥
सम्प्रेषणं दशम्यां तु क्रीडाकौतुकमंगलैः ।
नीराजनं दशम्यां तु बलवृद्धिकरं महत् ॥ २१ ॥
यदा वै वैष्णवीं देवीं महामायां जगन्मयीम् ।
पूजयेत् तत्र च तदा विशेषं शृणु भैरव ॥ २२ ॥
कन्यासंस्थे रवौ पूजा या शुक्ला तिथिरष्टमी ।
तस्यां रात्रौ पूजितव्या महाविभवविस्तरैः ॥ २३ ॥
नवम्यां बलिदानं तु कर्तव्यं वै यथाविधि ।
जपं होमं च विधिवत् कुर्यात् तत्र विभूतये ॥ २४ ॥
सम्पूजयेन्महादेवीमष्टपुष्पिकया नरः ।
रामस्यानुग्रहार्थाय रावणस्य वधाय च ॥ २५ ॥
रात्रावेव महादेवी ब्रह्मणा बोधिता पुरा ।
ततस्तु त्यक्तनिद्रा सा नन्दायामाश्विने सिते ॥ २६ ॥
जगाम नगरीं लङ्कां यत्रासीद्राघवः पुरा ।
तत्र गत्वा महादेवी तदा तौ रामरावणौ[५२] ॥ २७ ॥
युद्धे नियोजयामास स्वयमन्तर्हिताम्बिका ।
रक्षसां वानराणां च जग्ध्वा सा मांसशोणिते[५३] ॥ २८ ॥

---

५१. सुजलैः शिवाम् । ५२ तौ तदा रामरावणौ ।
५३. शोणितम् ।

रामरावणयोर्युद्ध सप्ताह सा न्ययोजयत् ।
व्यतीते सप्तमे रात्रौ नवम्या रावण तत ॥ २६ ॥
रामेण घातयामास महामाया जगन्मयी ।
यावत्तयो स्वय देवी युद्धकेलिमुदैक्षत ॥ ३० ॥
तावत् तु सप्तरात्राणि सैव देवै[५४] सुपूजिता ।
निहते रावणे वीरे नवम्या सकलै सुरै ॥ ३१ ॥
विशेषपूजा दुर्गायाश्चक्रे लोकपितामह ।
तत सम्प्रेषिता देवी दशम्या शार्वरोत्सवै ॥ ३२ ॥
शक्रोऽपि देवसेनाया नीराजनमथाकरोत् ।
शान्त्यर्थ सुरसैन्याना देवराज्यस्य वृद्धये ॥ ३३ ॥
रामरावणबाणेन युद्ध चावेद्य भीतिदम् ।
तृतीयाया तु लकाया पूर्वोत्तरदिशि स्थितम् ॥ ३४ ॥
स्वातीनक्षत्रयुक्ताया भीत सुरबल महत् ।
शान्त्यर्थ वरयामास देवेन्द्रो वचनाद् हरे ॥ ३५ ॥
ततस्तु श्रवणेनाथ दशम्या चण्डिका शुभाम् ।
विसृज्य चक्रे शान्त्यर्थ बलनीराजन हरि ॥ ३६ ॥
नीराजितबल शक्रस्तत्र राम च राघवम् ।
सम्प्राप्य प्रययौ स्वर्ग सह देवै शचीपति ॥ ३७ ॥
इतिवृत्त पुराकल्पे मनो स्वायम्भुवेऽन्तरे ।
प्रादुर्भूता दशभुजा देवी देवहिताय वै ॥ ३८ ॥
नृणा त्रेतायुगस्यादौ जगता हितकाम्यया ।
पुराकल्पे यथावृत्त प्रतिकल्प तथा तथा ॥ ३६ ॥
प्रवर्तते स्वय देवी दैत्याना नाशनाय वै ।
प्रतिकल्प भवेद्रामो रावणश्चापि राक्षस ॥ ४० ॥
तथैव जायते युद्ध तथा त्रिदशसगम ।
एव रामसहस्राणि रावणाना सहस्रश ॥ ४१ ॥
भवितव्यानि भूतानि तथा देवी प्रवर्तते ।
पूजयन्ति सुरा सर्वे बल नीराजयन्त्यपि ॥ ४२ ॥
तथैव च नरा सर्वे कुर्यु पूजा यथाविधि ।
बलनीराजन राजा कुर्याद् बलविवृद्धये ॥ ४३ ॥
दिव्यालङ्कारयुक्ताभिर्वारुणीभि[५५] प्रवर्तनम् ।
कर्तव्य नृत्यगीतानि क्रीडाकौतुकमगलै ॥ ४४ ॥

५४. सर्वैर्देवी । ५५ ललनाभि ।

मोदकैः पिष्टकैः पेयैर्भक्ष्यभोज्यैरनेकशः ।
कूष्माण्डैर्नारिकेलैश्च खर्जूरैः पनसैस्तथा ॥ ४५ ॥
द्राक्षामलकशाण्डिल्यैः प्लीहैश्च करुणैस्तथा ।
कशेरुक्रमुकैर्मूलैः सजम्बूतिन्दुकादिभिः[५६] ॥ ४६ ॥
गव्यैर्गुडैस्तथा मांसैर्मद्यैर्मधुभिरेव च ।
बालप्रियैश्च नैवेद्यैर्लाजाक्षतफलादिभिः ॥ ४७ ॥
इक्षुदण्डैः सिताभिश्च लवलीनागरङ्गकैः ।
अजाभिर्महिषैर्मेषैरात्मशोणितसञ्चयैः[५७] ॥ ४८ ॥
पद्याद्यैर्बलिजातीयैस्तथा नानाविधैर्मृगैः ।
पूजयेच्च जगद्धात्रीं मांसशोणितकर्दमैः ॥ ४९ ॥
रात्रौ रकन्दविशाखस्य कृत्वा पिष्टकपुत्रिकाम् ।
पूजयेच्छत्रुनाशाय दुर्गायाः प्रीतये तथा ॥ ५० ॥
होमं च सतिलैराज्यैर्मांसैरपि तथा चरेत् ।
उग्रचण्डादिका पूज्यास्तथाष्टा योगिनीः शुभाः ॥ ५१ ॥
योगिन्यश्च चतुःषष्टिस्तथा वै कोटियोगिनीः ।
नवदुर्गास्तथा पूज्या देव्याः सन्निहिताः शुभाः ॥ ५२ ॥
जयन्त्यादिर्गन्धपुष्पैस्ता देव्या मूर्तयो यतः ।
देव्यः सर्वाणि चास्त्राणि भूषणानि तथैव च ॥ ५३ ॥
अङ्गप्रत्यङ्गयुक्तानि वाहनं सिंहमेव च ।
महिषासुरमर्दिन्याः पूजयेद् भूतये सदा ॥ ५४ ॥
पुराकल्पे महादेवी मनोः स्वायम्भुवेऽन्तरे ।
नृणां कृतयुगस्यादौ सर्वदेवैः स्तुता सदा ॥ ५५ ॥
महिषासुरनाशाय जगतां हितकाम्यया ।
योगनिद्रा महामाया जगद्धात्री जगन्मयी ॥ ५६ ॥
भुजैः षोडशभिर्युक्ता भद्रकालीति विश्रुता ।
क्षीरोदस्योत्तरे तीरे बिभ्रती विपुलां तनुम्[५८] ॥ ५७ ॥
अतसीपुष्पवर्णाभा ज्वलत्काञ्चनकुण्डला ।
जटाजूटसखण्डेन्दुमुकुटत्रयभूषिता ॥ ५८ ॥
नागहारेण सहिता स्वर्णहारविभूषिता ।
शूलं चक्रं च खड्गं च शङ्खं बाणं तथैव च ॥ ५९ ॥

---

५६ दानुजम्बुरिकादिभिः । ५७ सत्रव ।
५८. विपुलं वपुः ।

शक्ति वज्र च दण्ड च नित्य दक्षिणबाहुभि ।
बिभ्रती सतत देवी विकाशिदशनोज्ज्वला ॥ ६० ॥
खेटक चर्म चाप च पाश चाङ्कुशमेव च ।
घण्टा पर्शु च मुषल बिभ्रती वामपाणिभि ॥ ६१ ॥
सिहस्था नयनै रक्तवर्णैस्त्रिभिरतिज्ज्वला ।
शूलेन महिष भित्त्वा तिष्ठन्ती परमेश्वरी ॥ ६२ ॥
वामपदेन चाक्रम्य तत्र देवी जगन्मयी ।
ता दृष्ट्वा सकला देवा प्रणम्य परमेश्वरीम् ॥ ६३ ॥
नोचु[५९] किञ्चन त दृष्ट्वा निहत महिषासुरम् ।
तत प्रोवाच देवास्तान् ब्रह्मादीन् परमेश्वरी ॥ ६४ ॥
स्मितप्रभिन्नवदना विकाशिवदनोज्ज्वला ।
गच्छन्तु भो सुरगणा जम्बुद्वीपान्तर प्रति ॥ ६५ ॥
हिमवत्-पर्वतासन्ने वर कात्यायनाश्रमम् ।
तत्रैव भवता साध्य भविष्यति न सशय ॥ ६६ ॥
इत्युक्त्वा सा महादेवी तत्रैवान्तरधीयत ।
देवा अपि तदा जग्मु कात्यायनमुने पुरम् ॥ ६७ ॥
आश्रम प्रति ते गत्वा विस्मयाविष्टमानसा[६०] ।
निहतो महिषो देव्या दिष्टोऽस्माभिर्यदर्थत ॥ ६८ ॥
स्तुता चैषा महादेवी जगद्धात्री जगन्मयी ।
किमर्थमाह सा देवी गन्तु कात्यायनाश्रमम् ॥ ६९ ॥
किमन्यद् वाञ्छित कार्यमस्माक वा भविष्यति ।
इति ब्रुवन्तस्ते सर्वे गच्छन्ति स्म परस्परम् ॥ ७० ॥
हिमवत्-पर्वतासन्न मुनि-कात्यायनाश्रमम् ।
तत सेन्द्रा सदिक्पाला ब्रह्मविष्णुशिवास्तथा ॥ ७१ ॥
निषेदु सुचिर प्रीता दुर्गादर्शनलालसा ।
ततो रुद्रगणा सर्वे महिषासुरचेष्टितम् ॥ ७२ ॥
आगत्य कथयामासुर्देवलोकपराभवम् ।
ततस्तत्र महाकोप ब्रह्मविष्णुशिवादय. ॥ ७३ ॥
चक्रु कोऽन्योऽस्ति महिषो हतो देव्या स दानव ।
पुनर्येनेह क्रियते जगद्विध्वसन भृशम् ॥ ७४ ॥
इति प्रकुप्यता तेषा शरीरेभ्य पृथक् पृथक् ।
निश्चक्रमुश्च तेजासि शक्तिरूपाणि तत्क्षणात् ॥ ७५ ॥

५९ प्रोचु । ६० चेतना ।

तत्तेजोभिर्धृतवपुर्देवी कात्यायनेन वै ।
सन्धुक्षिता पूजिता च तेन कात्यायनी स्मृता ॥ ७६ ॥
ततस्तेनैव मन्त्रेण[61] दशबाहुयुतेन वै ।
पश्चाज्जघान महिषं जगद्धात्री जगन्मयी ॥ ७७ ॥
यदा स्तुता महादेवी बोधिता चाश्विनस्य च ।
चतुर्दशी कृष्णपक्षे प्रादुर्भूता जगन्मयी ॥ ७८ ॥
देवाना तेजसा मूर्ति शुक्लपक्षे सुशोभने ।
सप्तम्या साऽकरोद् देवी अष्टम्या तैरलङ्कृता ॥ ७९ ॥
नवम्यामुपहारैस्तु पूजिता महिषासुरम् ।
निजघान दशम्या तु विसृष्टान्तर्हिता शिवा ॥ ८० ॥

मार्कण्डेय उवाच

श्रुत्वेमा[2] सगरो राजा देव्या सङ्गतिमुत्तमाम् ।
सशयालुश्च तद्रूपे पुनरौर्वमपृच्छत ॥ ८१ ॥

सगर उवाच

यदि पश्चान्महादेवी जघान महिषासुरम् ।
कथ पूर्वं [63]भद्रकाली-रूपाभून्महिषासुरम् ॥ ८२ ॥
तथाहि दर्शन तस्या पादाक्रान्तश्चकार च ।
हृदि शूलेन निभिन्न ददृशु सकला सुरा ।
एव तु[64] सशय छिन्धि मुनिश्रेष्ठ ममाधुना ॥ ८३ ॥

और्व उवाच

शृणु त्व नृपशार्दूल भद्रकाली यथा पुरा ।
प्रादुर्भूता महामाया महिषेण सहैव तु ॥ ८४ ॥
महिषासुर एवासौ निद्राया निशि पर्वते[65] ।
स्वप्न प्रददृशे वीरो दारुण घोरदर्शनम् ॥ ८५ ॥
महामाया भद्रकाली छित्त्वा खड्गेन मे शिर ।
पपौ तस्य च रक्तानि व्यादितास्यातिभीषणा ॥ ८६ ॥
तत प्रातर्भययुत स दैत्यो महिषासुर ।
तामेव पूजयामास सुचिर सानुगस्तदा ॥ ८७ ॥
आराधिता तदा देवी महिषेणासुरेण वै ।
प्रादुर्भूता भद्रकाली भुजै षोडशभिर्युता ॥ ८८ ॥

---

६१ रूपेण । ६२. श्रुत्वेत्थ । ६३. तत् कालीरूपाऽहन्... ।
६४. तवस्त्वं । ६५ पूर्वत ।

तत प्रणम्य महिषो महामाया जगन्मयीम् ।
उवाचेद वचो नम्रमूर्तिर्भक्तियुतोऽसुर ॥ ८६ ॥

महिष उवाच

देवि खड्गेन सञ्छिद्य शोणितानि शिरो मम ।
त्वया भुक्तानि दृष्टानि मया स्वप्नेन निश्चितम् ॥ ६० ॥
अवश्य तु त्वया कार्य मया ज्ञात प्रमाणत ।
एतद्रुधिरपान मे तत्रैक देहि मे वरम् ॥ ६१ ॥
वध्यस्तवाह नात्रास्ति सशय परमेश्वरि ।
ममापि तत्र नो दु ख नियति केन लघ्यते ॥ ६२ ॥
किन्तु त्वयैव महित शम्भुराराधित पुरा ।
मम पित्रा मदर्थेन जात पश्चादह तत ॥ ६३ ॥
मयाप्याराधित शम्भु प्राप्ताश्चेष्टास्तथाविधा ।[६६]
मन्वन्तरत्रय यावदासुर राज्यमुत्तमम् ॥ ६४ ॥
अकण्टक मया भुक्तमनुतापो न विद्यते ।
कात्यायनेन मुनिना शप्तोऽह शिष्यकारणात् ॥ ६५ ॥
सीमन्तिनी विनाश ते करिष्यति न सशय ।
पुरा मुनि तपस्यन्त रौद्राश्व नाम सत्तमम् ॥ ६६ ॥
मुने कात्यायनाख्यस्य शिष्य हिमवदन्तिके ।
दिव्यस्त्रीरूपमतुल कृत्वाह कौतुकात् तदा ॥ ६७ ॥
मया समोहितो विप्रोऽत्यजत् सद्यस्तदा तप ।
नदूरात् सस्थितेनाह मुनिना कात्यसूनुना ॥ ६८ ॥
ज्ञात्वा माया तदा शप्त शिष्यार्थे क्रोधवह्निना ।
यस्मात् त्वया मे शिष्योऽय मोहितस्तपसश्च्युत ॥ ६६ ॥
कृतस्त्वया स्त्रीरूपेण तत् त्वा स्त्री निहनिष्यति ।
इति मा शप्तवान् पूर्वं मुनि कात्यायन स्वयम् ॥ १०० ॥
तस्य शापस्य कालोऽयमागत्य समुपस्थित ।
देवेन्द्रत्व मया प्राप्त भुक्त त्रिभुवन समम् ॥ १०१ ॥
किञ्चिन्न शोच्यं मेऽत्रास्ति वाञ्छनीय हि यन्मया ।
तस्मात् त्वा वै प्रपन्नोऽहं[६७] प्रार्थ्यं शेष हि यन्मम ।
यद्[६८] देहि देवि दुर्गे त्वं भूयस्तुभ्य नमो नम ॥ १०२ ॥

६६. तथा वरा. । ६७. प्रसन्नोऽह । ६८ तं ।

देव्युवाच

प्रार्थनीयो वरो यस्ते त वृणुष्व महासुर ।
दास्यामि ते वर प्रार्थ्य सशयो नात्र विद्यते ॥ १०३ ॥

महिष उवाच

यज्ञभागमह भोक्तुमिच्छामि त्वत्-प्रसादत ।
यथा मखेषु सर्वेषु पूज्योऽह स्या तथा कुरु ॥ १०४ ॥
त्वत्-पादसेवां न त्यक्ष्ये यावत्सूर्य प्रवर्तते ।
एव वरद्वय देहि यदि देयो वरो मम ॥ १०५ ॥

देव्युवाच

यज्ञभागा सुरेभ्यस्तु कल्पिता वै पृथक् पृथक् ।
भागो न विद्यते चान्यो य दास्यामि तवाधुना ॥ १०६ ॥
किन्तु त्वयि मया युद्धे निहते महिषासुर ।
नैव त्यक्ष्यसि मत्पाद सतत नात्र सशय ॥ १०७ ॥
मम प्रवर्तते पूजा यत्र यत्र च तत्र ते ।
पूज्यश्चिन्त्यश्च तत्रैव कायोऽय तव दानव ॥ १०८ ॥
इति श्रुत्वा वचस्तस्या प्रत्यूषे महिषासुर ।
वर प्राप्येह मुदित. प्रसन्नवदनस्तदा ॥ १०९ ॥
उग्रचण्डे भद्रकालि दुर्गे देवि नमोऽस्तु ते ।
प्रभूता मूर्तया देवि भवत्या सकलात्मिका. ॥ ११० ॥
काभिस्ते मूर्तिभि पूज्यो यज्ञेऽह परमेश्वरि ।
तत् समाचक्ष्व यदि मे भवत्येह कृपा कृता ॥ १११ ॥

देव्युवाच

यानि नामानि प्रोक्तानि त्वयेह महिषासुर ।
तासु मूर्तिषु सपृष्ट पूज्यो लोके भविष्यसि ॥ ११२ ॥
उग्रचण्डेति या मूर्तिर्भद्रकाली ह्यह पुन ।
यया मूर्त्या त्वा हनिष्ये सा दुर्गेति प्रकीर्तिता ॥ ११३ ॥
एतासु मूर्तिषु सदा पादलग्नो नृणा भवान् ।
पूज्यो भविष्यति स्वर्गे देवानामपि रक्षसाम् ॥ ११४ ॥
आदिसृष्टावुग्रचण्डामूर्त्या त्व निहत पुरा ।
द्वितीयसृष्टौ तु भवान् भद्रकाल्या मया हतः ॥ ११५ ॥
दुर्गारूपेणाधुना त्वा हनिष्यामि सहानुगम् ॥ ११६ ॥

किन्तु पूर्वं न गृहीतस्त्व मया पादयोस्तले ॥ ११६ ॥
अधुना प्रार्थितवरो गृहीत पूर्वकामयो[६९] ।
ग्रहीतव्यश्च पश्चात् त्व यज्ञभागोपभुक्तये ॥ ११७ ॥

और्व उवाच

इत्युक्त्वा सा महामाया उग्रचण्डाह्वया तनुम् ।
दर्शयामास च तदा महिषायासुराय वै ॥ ११८ ॥
या मूर्ति षोडशभुजा भद्रकालीति विश्रुता ।
तथैव मूर्तिं बाहुभ्यामपराभ्या तु बिभ्रती ॥ ११९ ॥
दक्षिणाधो गदा वामपाणिना पानपात्रकम् ।
सुरापूर्ण च शिरसा मुण्डमालां बिलेशयम् ॥ १२० ॥
भिन्नाञ्जनचयप्रख्या प्रचण्डा सिंहवाहिनी ।
रक्तनेत्रा महाकाया युक्ताऽष्टादशबाहुभि ॥ १२१ ॥
उग्रचण्डा भद्रकाली देव्या मूतिद्वय तथा ।
महिष प्रणनामाशु दृष्ट्वा विस्मयमागत.[७०] ॥ १२२ ॥
ततो यथा पदाक्रम्य निहतो महिषासुर. ।
तथैव जगृहे पादतले देवीद्वय तु तम् ॥ १२३ ॥
हृदि शूलेन निर्भिन्न माहिष विशिररककम् ।
गृहीतकेश देव्या तु निर्यदन्त्रविभूषितम् ॥ १२४ ॥
वमद्रक्त[७१] महाकाय दृष्ट्वा पूर्वतनु स्वकम् ।
भय प्राप्यासुर सोऽथ शुशोच च मुमोह च ॥ १२५ ॥
ततस्तु क्षणमात्मान सस्तभ्य स तु दानव ।
प्रणम्य वचन देवीमिदमाह स गद्गदम् ॥ १२६ ॥

महिष उवाच

यदि देवि प्रसन्नासि यज्ञभागाश्च कल्पिता ।
तदा ममान्यदा नाश एवमेतद् भवेन्न हि ॥ १२७ ॥
यथाह न सुरै सार्धं करिष्ये वैरमद्भुतम् ।
तथा मा कुरु भो देवि न जन्म प्रलभे यथा ॥ १२८ ॥

देव्युवाच

आराधिताऽह भवता वरो दत्तो मया तव ।
वध्यश्च त्व ममैवेह नात्र कार्या विचारणा ॥ १२९ ॥
यत् त्वया प्रार्थित चापि सर्वै सुरगणै सह ।

६९. कालयो. । ७० सयुत. । ७१. निर्यद्रक्त ।

विरोधो[७२] मे सदा मा भूदिति चापि भविष्यति ॥ १३० ॥
मत्पादतलसस्पर्शाच्छरीर तव दानव ।
यज्ञभागोपभोगाय विशीर्ण न भविष्यति ॥ १३१ ॥
तव जीवात्मभि प्राणाः सर्व एव महासुर ।
हरस्य पादसयोगाच्चिर स्थास्यति केवलम् ॥ १३२ ॥
कल्पकोटिसहस्राणि त्रिशत् त्व महिषासुर ।
शतानि चाष्टावन्यानि जन्म ते न भविष्यति ॥ १३३ ॥
इति देवी वर दत्त्वा महिषायासुराय वै ।
प्रणता तेन शिरसा तत्रैवान्तरधीयत ॥ १३४ ॥
महिषोऽपि निजस्थान ययौ समोहित पुन ।
मायया चासुर भावमादाय नृप पूववत् ॥ १३५ ॥

सगर उवाच

अनेके निहता दैत्या मायया लोकभूतये ।
न ते पुन प्रगृहीतास्तेभ्यो दत्त्वा वरान् शुभान् ।
केन वा कारणेनाय प्रगृहीतो वरा कथम् ।
दत्तास्तस्मै समाचक्ष्व मम सम्यग् द्विजोत्तम ॥ १३६ ॥

और्व उवाच

आराधितो महादेवो रम्भेण सुरवैरिणा ।
चिरेण स च सुप्रीतस्तपसा तस्य शकरः ॥ १३७ ॥
अथ तुष्टो महादेव· प्रत्यक्ष रम्भमूचिवान् ।
प्रीतोऽस्मि ते वर रम्भ वरयस्व यथेप्सितम् ॥ १३८ ॥
एवमुक्त प्रत्युवाच रम्भस्त चन्द्रशेखरम् ।
अपुत्रोऽह महादेव यदि ते मय्यनुग्रहः ॥ १३९ ॥
मम जन्मत्रये पुत्रो भवान् भवतु शंकर ।
अवध्य सर्वभूताना जेता च त्रिदिवौकसाम् ॥ १४० ॥
चिरायुश्च यशस्वी च लक्ष्मीवान् स च शकर ।
एवमुक्तस्तु दैत्येन प्रत्युवाच वृषध्वज ॥ १४१ ॥
भवत्वेतद्वाञ्छित ते भविष्यामि सुतस्तव ।
इत्युक्त्वा स महादेवस्तत्रैवान्तरधीयत ॥ १४२ ॥
रम्भोऽपि यात' स्वस्थान हर्षोत्फुल्लविलोचन· ।
पथि गच्छन् स रम्भोऽथ ददर्श महिषी शुभाम् ॥ १४३ ॥

७२ विरोधीःको ।

त्रिहायणीं चित्रवर्णां सुन्दरीमृतुशालिनीम् ।
स ता दृष्ट्वाथ महिषी रम्भ कामेन मोहित. ॥ १४४ ॥
दोर्भ्यां गृहीत्वा च तदा चकार सुरतोत्सवम् ।
तयो प्रवृत्ते सुरते तदा सा तस्य तेजसा ॥ १४५ ॥
दधार महिषी गर्भ तदाऽभून्महिषासुर ।
तस्या स्वांशेन गिरिशस्तत्पुत्रत्वमवाप्तवान् ॥ १४६ ॥
ववृधे स तदा राम्भि शुक्लपक्षशशांकवत् ।
त च कात्यायनमुनि शप्तवान्महिषासुरम् ॥ १४७ ॥
दुर्नय वीक्ष्य शिष्यार्थे शिष्यानुग्रहकारक ।
कात्यायनेन शप्त त विज्ञाय महिषासुरम् ।
प्राह प्रणामपूर्व तु चण्डिका चन्द्रशेखर ॥ १४८ ॥

ईश्वर उवाच

देवी कात्यायनेनाथ शप्तोऽद्य महिषासुर ।
योषिद्विनाशकर्त्रीति भवितेति जगन्मये ॥ १४९ ॥
नि.सशयमृषेर्वाक्य भविष्यति न सशय. ।
मदीयो माहिप कायो देवि कार्यस्त्वया त्वयि[७३] ॥ १५० ॥
हन्तव्य सतत योगयुक्त पूर्वे परेऽपि च ।
हरिर्हरिस्वरूपेण न त्वा वोढु क्षमोऽधुना ॥ १५१ ॥
ममाय माहिष कायस्तव वोढा भविष्यति ।
इति पूर्व महादेवो देवी प्रार्थितवान् पुरा ॥ १५२ ॥
तेन देवी महादेव जग्राह महिषासुरम् ।
त्रिषु जन्मसु पुत्रोऽभूद्रम्भस्य भगवान् हर ॥ १५३ ॥
सृष्टित्रये स रम्भोऽपि रम्भ एव व्यजायत ।
आसुर तादृश तेपे तप परमदारुणम् ॥ १५४ ॥
तथैवाराधित शम्भु पुत्रार्थे प्रददौ वरम् ।
तथैव महिषी भेजे प्रथम सुरताय स ॥ १५५ ॥
तस्या तथाऽभवद्वीरो दानवो महिषासुर ।
तथैव शेपे भगवान् मुनि कात्यायनस्तु तम् ॥ १५६ ॥
इति प्रवृत्ते पूर्वेऽस्मिन् परस्मिन् स तु जन्मनि ।
महिष पूजयित्वाऽथ देवीं वरमयाचत ॥ १५७ ॥
तृतीये जन्मनि वर प्राप्य कल्पानशेषत ।

७३ जगन्मयि ।

नेह मे जन्म भवितेत्येव वरमयाचत ॥ १५८ ॥
तेन देवीपादतले तिष्ठत्येषोऽसुरोऽधुना ।
नोत्पत्तिरपि तस्याथ सवर्तान्तादभून्नृप ॥ १५९ ॥
एव देवीप्रसादेन महादेवाशसम्भव ।
परामवाप सतत प्रतिपत्ति महासुर ॥ १६० ॥
इति ते कथित राजन् यथा स महिषासुर ।
देवीपादतल प्राप्य यथा सोऽद्यापि मोदते ।
प्रस्तुत शृणु भो राजन् कथयामि नृपोत्तम ॥ १६१ ॥

मार्कण्डेय उवाच

इति व कथित राजा सगर सहितो यथा ।
और्व्वेण चक्रे सवाद देवीमहिषयोजने ॥ १६२ ॥
पुनर्यदाह भूयोऽपि सगराय महात्मने ।
तच्छृण्वन्तु मुनिश्रेष्ठा गुह्याद् गुह्यतर परम् ॥ १६३ ॥

इति श्रीकालिकापुराणे महिषासुरोपाख्यानो
नाम षष्टितमोऽध्याय ॥ ६० ॥

एकषष्टितमोऽध्यायः

और्व उवाच

यथाह भगवान् देवो भैरवाय महात्मने ।
वेतालाय नृपश्रेष्ठ तथा त्व प्रस्तुत शृणु ॥ १ ॥

श्रीभगवानुवाच

उग्रचण्डा च या मूर्तिरष्टादशभुजाऽभवत् ।
सा नवम्या पुरा कृष्णपक्षे कन्या गते रवौ ॥ २ ॥
प्रादुर्भूता महामाया योगिनीकोटिभि सह ।
आषाढस्य तु पूर्णाया सत्र द्वादशवार्षिकम् ॥ ३ ॥
दक्ष कर्तुं समारेभे वृता सर्वे दिवौकस ।
ततोऽह न वृतस्तेन दक्षेण सुमहात्मना ॥ ४ ॥
कपालीति सती चापि तज्जायेति च नो वृता ।
ततो रोषसमायुक्ता प्राणास्तत्याज सा सती ॥ ५ ॥
त्यक्तदेहा सती चापि चण्डमूर्तिस्तदाऽभवत् ।
तत प्रवृत्ते यज्ञेऽपि तस्मिन् द्वादशवार्षिके ॥ ६ ॥
नवम्या कृष्णपक्षे तु कन्याया चण्डमूर्तिधृक् ।
योगनिद्रा महामाया योगिनीकोटिभि सह ॥ ७ ॥
सतीरूप परित्यज्य यज्ञभङ्गमथाकरोत् ।
शकरस्य गणै सर्वै सहिता शकरेण च ॥ ८ ॥
स्वय बभञ्ज सा देवी महासत्र महात्मन ।
ततो देव्या महाक्रोधे व्यतीते त्रिदिवौकस ॥ ९ ॥
पूजयाचक्रुरतुला देवी पूर्वोदितेन वै ।*
पूर्वोदितविधानेन पूजामस्या दिवौकस ॥ १० ॥
कृत्वैव परमामापुर्निर्वृति दु खहानये ।
एवमन्यैरपि सदा कार्यं देव्या प्रपूजनम् ॥ ११ ॥
विभूतिमतुला प्राप्तु चतुर्वर्गप्रदायिकाम् ।*
यो मोहादथवाऽऽलस्याद् देवीं दुर्गां महोत्सवे ॥ १२ ॥
न पूजयति दम्भाद् वा द्वेषाद्वाऽप्यथ भैरव ।
क्रुद्धा भगवती तस्य कामानिष्टान्निहन्ति वै ॥ १३ ॥

---

* मुद्रितपुस्तकेऽधिक दृश्यते ।

परत्र च महामाया-बलिर्भूत्वा प्रजायते[७४] ।
अष्टम्यां रुधिरैश्चैव महामांसैः सुगन्धिभिः ॥ १४ ॥
पूजयेद्बहुजातीयैर्बलिभिर्भोजनैः शिवाम् ।
सिन्दूरैः पट्टवासोभिर्नानाविधविलेपनैः ॥ १५ ॥
पुष्पैरनेकजातीयैः फलैर्बहुविधैरपि ।
उपवासं महाष्टम्यां पुत्रवान् न समाचरेत् ॥ १६ ॥
यथा तथैव पूतात्मा व्रती देवीं प्रपूजयेत् ।
पूजयित्वा महाष्टम्यां नवम्यां बलिभिस्तथा[७५] ॥ १७ ॥
विसर्जयेद् दशम्यां तु श्रवणे शावरोत्सवैः ।
अन्त्यपादो दिवाभागे श्रवणस्य यदा भवेत् ॥ १८ ॥
तदा सम्प्रेषणं देव्या दशम्यां कारयेद् बुधः ।
सुवासिनी – कुमारीभिर्वेश्याभिर्नर्तकैस्तथा ॥ १९ ॥
शङ्खतूर्यनिनादैश्च मृदङ्गैः पटहैस्तथा ।
ध्वजैर्वस्त्रैर्बहुविधैर्लाजपुष्पप्रकीर्णकैः ॥ २० ॥
धूलिकर्दमविक्षेपैः क्रीडाकौतुकमङ्गलैः ।
भगलिङ्गाभिधानैश्च भगलिङ्गप्रगीतकैः ॥ २१ ॥
भगलिङ्गादिशब्दैश्च क्रीडयेयुरलं जनाः ।
परैर्नाक्षिप्यते यस्तु यः परान्नाक्षिपेद् यदि ॥ २२ ॥
क्रुद्धा भगवती तस्य शापं दद्यात् सुदारुणम् ।
आदिपादो निशाभागे श्रवणस्य यदा भवेत् ॥ २३ ॥
तदा देव्याः समुत्थानं नवम्यां न पुनर्दिवा ।
अन्त्यपादो निशाभागे श्रवणस्य यदा भवेत् ॥ २४ ॥
तदा देव्याः समुत्थानं नवम्यां दिनभागतः ।
विसर्जनमनेनैव मन्त्रेण वत्स भैरव ॥ २५ ॥
कर्तव्यमम्भसि स्थाप्य विसृज्य च विभूतये ।

इत्यनेन तु मन्त्रेण देवी संस्थापयेज्जले ।
सर्वलोक-हितार्थाय सर्वलोकविभूतये ॥ ३० ॥
दुर्गा तन्त्रेण मन्त्रेण पूजितऽव्ये उभे अपि ।
भद्रकालीमुग्रचण्डा महामाया महोत्सवे ॥ ३१ ॥
नेत्रबीजं तु सर्वासा पूजने परिकीर्तितम् ।
योगिनीना तु सर्वासा मूलमूर्तेस्तथैव च ॥ ३२ ॥
मन्त्र तथोग्रचण्डाया पृथक् त्व शृणु भैरव ।
आद्यद्वय नेत्रबीजं मन्त्रस्योपान्तमन्तरे ॥ ३३ ॥
वह्निनाऽन्त स्वरेणेन्दुबिन्दुभ्या तन्त्रमौग्रकम् ।
नेत्रबीज द्वितीय तु द्विधावर्तितमुच्यते ॥ ३४ ॥
भद्रकाल्यास्तु मन्त्रोऽय धमकामार्थसिद्धये ।
यदा तु वैष्णवी देवी महामाया जगन्मयी ॥ ३५ ॥
पूज्यते वैष्णवी देवी तन्त्रोक्ता अष्टयोगिनी ।
ता प्रोक्ता शैलपुत्र्याश्च पूर्वकल्पे च भैरव ॥ ३६ ॥
उग्रचण्डादयश्चाष्टौ दुर्गातन्त्रस्य कीर्तिता ।
भद्रकाल्यास्तु मन्त्रेण भद्रकाली प्रपूजयेत्[७८] ॥ ३७ ॥
पूजयेद् भूतिवृद्धयर्थमेता एवाष्टयोगिनी ।
जयन्ती मङ्गला काली भद्रकाली कपालिनीम् ॥ ३८ ॥
दुर्गा शिला क्षमा धात्री दलेष्वष्टसु पूजयेत् ।
यदोग्रचण्डातन्त्रेण सा, देवी तत्र पूज्यते[७९] ॥ ३९ ॥
योगिन्यस्तत्र पूज्या स्युरष्टावन्याश्च भैरव ।
कौशिकी शिवदूती च उमा हैमवतीश्वरी ॥ ४० ॥
शाकम्भरी च दुर्गा च सप्तमी च महोदरी ।
उमाया सौम्यमूर्तेस्तु तन्त्र त्व शृणु भैरव ॥ ४१ ॥
पादि समाप्तिसहित फडन्तो नान्त एव च ।
एकाक्षरस्त्र्यक्षरश्च उमामन्त्र इति स्मृत. ॥ ४२ ॥
सुवर्णसदृशी गौरी भुजद्वयसमन्विताम् ।
नीलारविन्दं वामेन पाणिना बिभ्रती सदा ॥ ४३ ॥
शुक्ल तु चामर धृत्वा भर्गस्याङ्केऽथ[८०] दक्षिणे ।
विन्यस्य दक्षिण हस्त तिष्ठन्तीं परिचिन्तयेत् ॥ ४४ ॥
विनापि शम्भु रुद्राणीं भक्तस्तु परिचिन्तयेत् ।
द्विभुजा स्वर्णगौराङ्गी पद्मचामरधारिणीम् ॥ ४५ ॥

७८ प्रपूजने । ७९ प्रतिगृह्यते । ८० भर्गस्याशे ।

व्याघ्रचर्मस्थिते पद्मे पद्मासनगता सदा ।
एतस्या पूजने प्रोक्ता अष्टौ वेतालभैरव ॥ ४६ ॥
योगिन्यो नायिकाश्चापि पृथक्त्वेन व्यवस्थिता ।
जया च विजया चैव मातङ्गी ललिता तथा ॥ ४७ ॥
नारायण्यथ सावित्री स्वधा स्वाहा तथाऽष्टमी ।
पूर्व शुम्भो निशुम्भश्च दानवौ भ्रातरावुभौ ॥ ४८ ॥
बभूवतुर्महासत्त्वौ महाकायौ महाबलौ ।
अन्धकस्य सुतौ द्वौ तौ दन्तिनाविव दुर्मदौ ॥ ४९ ॥
मया विनिहिते तस्मिन्नन्धकाख्ये महाबले ।
ससैन्यवाहनौ तौ तु पातालतलमाश्रितौ ॥ ५० ॥
ततस्तप्त्वा तपस्तीव्र ब्रह्माणन्तौ महासुरौ ।
सम्यक् तदाऽतोषयता स सुप्रीतो वर ददौ ॥ ५१ ॥
तौ ब्रह्मवरदृप्तौ तु समासाद्य जगत्त्रयम् ।
इन्द्रत्वमकरोच्छुम्भश्चन्द्रत्व च निशुम्भक ॥ ५२ ॥
सर्वेषामेव देवाना यज्ञभागानुपाहरत् ।
स्वय शुम्भो निशुम्भश्च दिक्पालत्व च तौ गतौ ॥ ५३ ॥
सर्वे सुरगणा सेन्द्रास्ततो गत्वा हिमाचलम् ।
गगावतारनिकटे महामाया प्रतुष्टुवु ॥ ५४ ॥
अनकेश स्तुता देवी तदा सर्वामरोत्करै ।
मातङ्गवनितामूर्तिर्भूत्वा देवानपृच्छत ॥ ५५ ॥
युष्माभिरमरैरत्र स्तूयते का च भामिनी ।
किमर्थमागता यूय मातगस्याश्रम प्रति ॥ ५६ ॥
एव ब्रुवन्त्या मातग्यास्तस्यास्तु कायकोषत. ।
समुद्भूताऽब्रवीद् देवी मा स्तुवन्ति सुरा इति ॥ ५७ ॥
शुम्भो निशुम्भो ह्यसुरौ बाधेते सकलान् सुरान् ।
तस्मात् तयोर्वधायाह स्तूये तै सकलै सुरै ॥ ५८ ॥
विनि सृताया देव्या तु मातग्या कायकोषत ।
भिन्नाञ्जननिभा कृष्णा साऽभूद् गौरी क्षणादपि ॥ ५९ ॥
कालिकाख्याऽभवत् सापि हिमाचलकृताश्रया ।
तामुग्रतारामृषयो वदन्तीह मनीषिण' ॥ ६० ॥
उग्रादपि भयात्त्राति यस्माद् भक्तान् सदाम्बिका ।
एतस्या. प्रथम बीज कथित त्रयमेव[८१] च ॥ ६१ ॥

---

८१ मन्त्रमेव ।

एषैवैकजटाख्या तु यस्मात्तस्माज्जटैकिका ।
शृणुत चिन्तन चास्या सम्यग्वेतालभैरवौ ॥ ६२ ॥
यथा ध्यात्वा महादेवी भक्त प्राप्नोत्यभीप्सितम् ।
चतुर्भुजा कृष्णवर्णा मुण्डमालाविभूषिताम् ॥ ६३ ॥
खड्गं दक्षिणपाणिभ्या [८२]बिभ्रती चामर त्वध ।
कर्त्री च खर्पर चैव क्रमाद्वामेन बिभ्रतीम् ॥ ६४ ॥
द्या[८३] लिखन्ती जटामेका बिभ्रती शिरसा स्वयम् ।
मुण्डमालाधरा शीर्षे ग्रीवायामपि सर्वदा ॥ ६५ ॥
वक्षसा नागहार तु बिभ्रती रक्तलोचनाम् ।
कृष्णवस्त्रधरा कट्या व्याघ्राजिन-समन्विताम् ॥ ६६ ॥
वामपाद शवहृदि सस्थाप्य दक्षिण पदम् ।
विन्यस्य सिहपृष्ठे तु लेलिहाना शव स्वयम् ॥ ६७ ॥
साट्टहासा महाघोरा रावयुक्तातिभीषणाम् ।
चिन्त्याग्रे तारा सतत भक्तिमद्भि सुखेप्सुभि ॥ ६८ ॥
एतस्या सम्प्रवक्ष्यामि या अष्टौ योगिनी स्मृता ।
महाकाल्यथ रुद्राणा उग्रा भीमा तथैव च ॥ ६९ ॥
घोरा च भ्रामरी चैव महारात्रिश्च सप्तमी ।
भैरवी चाष्टमी प्रोक्ता योगिनीस्ता प्रपूजयेत् ॥ ७० ॥
या कायकोषान्नि सृता कालिकायास्तु भैरव ।
सा कौशिकीति विख्याता चारुरूपा मनोहरा ॥ ७१ ॥
नि सृता हृदयाद् देव्या रसनाग्रेण चण्डिका ।
नैतस्या सदृशी मूर्त्या चारुरूपेण विद्यते ॥ ७२ ॥
त्रिषु लोकेषु कान्त्या वा नास्यास्तुल्या भविष्यति ।
योगनिद्रा महामाया या मूलप्रकृतिर्मता ॥ ७३ ॥
तस्या प्राणस्वरूपेय देवी या कौशिकी स्मृता ।
नेत्रबीज तथैतस्या बीज तु परिकीर्तितम् ॥ ७४ ॥
मन्त्रमस्या प्रवक्ष्यामि मूर्तिरूप च भैरव ।[८४]
समाप्तिनान्त्यदन्त्यस्तु षड्वर्गादि-सबिन्दुभि ॥ ७५ ॥
षष्ठस्वरेण सस्पृष्टो बिन्दुना समलकृत ।
कौशिकीमन्त्रतन्त्रोऽय सर्वकामार्थदायक ॥ ७६ ॥

---

८२ बिभ्रतीन्दीवर । ८३ ख ।
८४ तन्त्रमस्या प्रवक्ष्यामि सर्वकामप्रद नृणाम् ।

तस्यास्तु सम्प्रवक्ष्यामि या मूर्तिरिह भैरव ।
शृणुष्वैकमना भूत्वा जगदाह्लादकारकम् ॥ ७७ ॥
धम्मिल्लसयतकचा विवोश्चाधोमुखी कलाम् ।
केशान्ते तिलकस्योर्ध्वे दधती सुमनोहरा ॥ ७८ ॥
मणिकुण्डलसघृष्टगण्डा मुकुटमण्डिता ।
सज्ज्योति कर्णपूराभ्या कर्णमापूर्य सगता ॥ ७९ ॥
सुवर्णमणिमाणिक्य नागहारविराजिता ।
सदा सुगन्धिभि [८५]पद्मैरम्लानैरतिसुन्दरी ॥ ८० ॥
माला बिभर्ति ग्रीवाया रत्नकेयूरधारिणी ।
मृणालायतवृत्तैस्तु बाहुभि कोमलै. शुभै ॥ ८१ ॥
राजन्ती कञ्चुकोपेत-पीनोन्नतपयोधरा ।
क्षीणमध्या पीतवस्त्रा त्रिवलीप्रख्यभूषिता ॥ ८२ ॥
शूल वज्र च बाण च खड्ग शक्ति तथैव च ।
दक्षिणै पाणिभिर्देवी गृहीत्वा तु विराजिता ॥ ८३ ॥
• गदा घण्टा च चाप च चर्म शङ्ख तथैव च ।
ऊर्ध्वादिक्रमतो देवी दधती वामपाणिभि ॥ ८४ ॥
सिहस्योपरि तिष्ठन्ती व्याघ्रचर्माणि कौशिकी ।
बिभ्रती रूपमतुल ससुरासुरमोहनम् ॥ ८५ ॥
एतस्या शृणु वत्स त्व या पूज्या अष्टयोगिनी ।
ता पूजिताश्च कुर्वन्ति चतुर्वर्ग नृणा सदा ॥ ८६ ॥
ब्रह्माणी प्रथमा प्रोक्ता ततो माहेश्वरी मता ।
कौमारी चैव वाराही वैष्णवी पञ्चमी तथा ॥ ८७ ॥
नारसिही तथैवैन्द्री शिवदूती तथाऽष्टमी ।
एता पूज्या महाभागा[८६] योगिन्य कामदायिका ॥ ८८ ॥
देव्या ललाटनिष्क्रान्ता या कालीति च विश्रुता ।
तस्या मन्त्र प्रवक्ष्यामि कामद शृणु भैरव ॥ ८९ ॥
समाप्तिसहितो दन्त्य प्रान्तस्तस्मात् पुर सर ।
षष्ठस्वराग्निबिन्द्विन्दुसहित सादिरेव च ॥ ९० ॥
कालीमन्त्रमिति प्रोक्त धर्मकामार्थदायकम् ।
एतन्मूर्ति प्रवक्ष्यामि वत्सैकाग्रमना[८७] शृणु ॥ ९१ ॥
नीलोत्पलदलश्यामा चतुर्बाहुसमन्विता ।

---

८५. पुष्पैः । ८६. महामाया । ८७. वत्सैकाग्र… ।

खट्वाग चन्द्रहास च बिभ्रती दक्षिणे करे ॥ ९२ ॥
वामे चर्म[88] च पाश च ऊर्ध्वाधोभागत पुन ।
दधती मुण्डमाला च व्याघ्रचर्मधरा वराम् ॥ ९३ ॥
कृशागी दीर्घदष्ट्रा च अतिदीर्घातिभीषणा ।
लोलजिह्वा निम्नरक्त-नयना नादभैरवा ॥ ९४ ॥
कबन्धवाहनासीना[89] विस्तार-श्रवणानना ।
एषा ताराह्वया देवी चामुण्डेति च गीयते ॥ ९५ ॥
एतस्या योगिनोऽष्टौ पूजयेच्चिन्तयेद् यदि ।
त्रिपुरा भीषणा चण्डी कर्त्री हर्त्री विधायिनी ॥ ९६ ॥
कराला शूलिनी चेति अष्टौ ता परिकीर्तिता ।
एषाऽतिकामदा देवी जाड्यहानिकरी सदा ॥ ९७ ॥
एतस्या सदृशी काचित् कामदा न हि विद्यते ।
कौशिक्या हृदयाद् देवी नि सृता ध्यायतो हरे ॥ ९८ ॥
शिवदूतीति सा ख्याता या च देवशतैर्वृता ।
मन्त्रमस्या प्रवक्ष्यामि धर्मकामार्थदायकम् ॥ ९९ ॥
यच्छ्रुत्वा साधको याति दुर्लभ शिवमन्दिरम् ।
यामाराध्य महादेवी शिवदूती शिवात्मिकाम् ॥ १०० ॥
नचिराल्लभते कामान् नर सर्वजयी भवेत् ।
अन्त समाप्तिसहितो बिन्द्विन्दुभ्या दशावर ॥ १०१ ॥
स्वरेणोपान्तदन्त्येन सस्पृष्टोऽन्तेन पूर्वश ।
स एव बिन्दुयुगलपूर्वस्थोपान्तपावक ॥ १०२ ॥
षष्ठस्वरकलाशून्यै सहित प्रथमस्थित ।
मन्त्रोऽय[90] शिवदूत्यास्तु शिवदूतीजयप्रद ॥ १०३ ॥
रूपमस्या प्रवक्ष्यामि शृणु वत्सैकसम्मत ।
चतुर्भुज महाकाय सिन्दूरसदृशद्युति ॥ १०४ ॥
रक्तदन्त मुण्डमाला-जटाजूटार्धचन्द्रधृक् ।
नागकुण्डलहाराभ्या शोभित नखरोज्ज्वलम् ॥ १०५ ॥
व्याघ्रचर्म-परीधान दक्षिणे शूलखड्गधृक् ।
वामे पाश तथा चर्म बिभ्रदूर्ध्वापरक्रमात् ॥ १०६ ॥
स्थूलवक्त्र च पीनोष्ठ तुगमूर्ति भयकरम् ।
निक्षिप्य दक्षिण पाद सन्तिष्ठत् कुणपोपरि ॥ १०७ ॥

८८ चर्म कपाल च । ८९. पीना विस्तार' । ९०. तन्त्रोऽयं ।

वामपाद शृगालस्य पृष्ठे फेरुशतैर्वृतम् ।
ईदृशी शिवदूत्यास्तु मूर्ति ध्यायेद् विभूतये ॥ १०८ ॥
ध्यानमात्रादथैतस्या नर कल्याणमाप्नुयात् ।
पूजनादचिराद् देवी सर्वान् कामान् ददाति च ॥ १०९ ॥
य शिवाविरुत श्रुत्वा शिवदूती शुभप्रदाम् ।[९१]
प्रणमेत् साधको भक्त्या तस्य कामा. करे स्थिता ॥ ११० ॥
यदा जघान जगता रक्तबीज हिताय वै ।
महादेवी महामाया तदास्या कायतः सृता ॥ १११ ॥
दूत प्रस्थापयामास शिव शुम्भाय साम्बिका ।
तेन[९२] सा शिवदूतीति देवै सर्वै प्रगीयते ॥ ११२ ॥
क्षेमकारी च शान्ता च वेदमाता महोदरी ।
कराला कामदा देवी भगास्या भगमालिनी ॥ ११३ ॥
भगोदरी भगारोहा भगजिह्वा भगा तथा ।
एता द्वादश योगिन्य· पूजने परिकीर्तिता ॥ ११४ ॥
एता द्वादश योगिन्य शिवदूत्या सदैव हि ।
विचरन्ती स्वय देवी यत्र तत्रैव गच्छति ॥ ११५ ॥
योगिन्यो ह्यथ सख्य स्युर्यथान्यासा तथा पुन ।
चण्डिकायास्तु योगिन्य सख्योऽत्र च प्रकीर्तिता ॥ ११६ ॥
इति ते त्वङ्गमन्त्राणि कथितानि समासत ।
कामाख्यायाश्च माहात्म्य कल्पमात्र वदामि वाम् ॥ ११७ ॥

इति श्रीकालिकापुराणे कामाख्यामाहात्म्ये
एकषष्टितमोऽध्याय ॥ ६१ ॥

---

९१. शिवप्रदाम् । ९२. तथा ।

द्विषष्टितमोऽध्यायः

भगवानुवाच

कामार्थमागता यस्मान्मया सार्धं महागिरौ ।
कामाख्या प्रोच्यते देवी नीलकूटे रहोगता ॥ १ ॥
कामदा कामिनी कामा कान्ता कामागदायिनी ।
कामागनाशिनी यस्मात् कामाख्या तेन चोच्यते ॥ २ ॥
एतस्या शृणु माहात्म्य कामाख्याया विशेषत ।
या सा प्रकृतिरूपेण जगत्सर्वं नियोजयेत् ॥ ३ ॥
मधुकैटभनाशाय महामायाविमोहित ।
यदा सयुयुधे विष्णुस्तदैषामोहयद्धरिम्[१३] ॥ ४ ॥
दैनन्दिने तु, प्रलये प्रसुप्ते गरुडध्वजे ।
तस्य श्रवणविड्जातावसुरौ मधुकैटभौ ॥ ५ ॥
कूर्मपृष्ठे स्थिता देवी विशीर्णेवाभवज्जलै[१४] ।
ता विशीर्णा योगनिद्रा महामाया व्यलोकयत् ॥ ६ ॥
ता वै दृढतरा पृथ्वी कर्तु प्रति तदेश्वरी ।
उपाय चिन्तयामास कथ पृथ्वी भवेद्दृढा ॥ ७ ॥
इदानीमाज्यवत्[१५] पृथ्वी प्रवृत्ता कोमला जलै ।
सृष्टिकाले जनान् सोढु कथ शक्ता भविष्यति ॥ ८ ॥
इति सचिन्त्य सा माया जगता सृष्टिरूपिणी ।
उपगम्य तदा विष्णुमाससाद सुनिद्रितम् ॥ ९ ॥
त तु सुप्त समासाद्य जगन्नाथ जगत्पतिम् ।
वामहस्तकनिष्ठाग्र तस्य कर्णे न्यवेशयत् ॥ १० ॥
निवेश्य नखराग्रेण प्रोद्धृत्य श्रावण मलम् ।
चूर्णीचकार सा देवी योगनिद्रा जगत्प्रसू ॥ ११ ॥
तत्कर्णमलचूर्णिभ्यो मधुर्नामासुरोऽभवत् ।
ततो दक्षिणहस्तस्य कनिष्ठाग्र तु दक्षिणे ॥ १२ ॥
कर्णे न्यवेशयद् देवी तस्मादप्युद्धृत मलम् ।
तच्चापि क्षोदयामास करशाखाद्वयेन तु ॥ १३ ॥

---

१३ मोहयद् दृढम् । १४ कूर्मपृष्ठगता पृथ्वी प्रवृत्ता कोमलाजलैः ।
१५ इदानीं साभवत् ।

ततोऽभूत् कैटभो नाम बलवान् सोऽसुरो महान् ।
उत्पन्न स च पानार्थं यस्मान्मृगितवान्मधु ॥ १४ ॥
ततस्तस्य महादेवी मधुनामाकरोत्तदा ।
उत्पन्न कीटवद्भाति महामायाकरे यत ॥ १५ ॥
ततोऽस्य कैटभ नाम महामाया तदाकरोत् ।
तावुवाच महामाया युध्यता हरिणा सह ॥ १६ ॥
युवा नो श्रद्धयेवात्र भवन्तो निहनिष्यति ।
युवा यदा प्रभाषेथे आवा विष्णो वधान भो ॥ १७ ॥
तदैवाय युवा हन्ता नान्यथा हरिरप्यथ ।
महामायामोहितौ तौ विष्णुगात्र तदा गतौ ॥ १८ ॥
भ्रममाणौ ददृशतुर्नाभिपद्मोत्थित विधिम् ।
तमूचतुस्तौ धातार हनिष्यावोऽद्य त्वामिह ॥ १९ ॥
त जागरय वैकुण्ठ यदि जीवितुमिच्छसि ।
ततो ब्रह्मा महामाया योगनिद्रा जगत्प्रसूम् ॥ २० ॥
प्रसादयामास तदा स्तुतिभिर्बहुभिर्भयात् ।
चिर स्तुताथ सा देवी ब्रह्मणा जगदात्मना ॥ २१ ॥
प्रसन्ना तरसा व्यग्रमुवाच च यथाविधि ।
किमर्थ सस्तुता चाह कि करिष्याम्यह तव ॥ २२ ॥
तद् वद त्व महाभाग करिष्याम्यहमद्य ते ।
ततस्तेन महामाया प्रोक्ता धात्रा महात्मना ॥ २३ ॥
प्रबोधय जगन्नाथ यावत्तौ मा हनिष्यत ।
सम्मोहय दुराधर्षावसुरौ मधुकैटभौ ॥ २४ ॥
इत्युक्ता सा तदा देवी ब्रह्मणा जगदात्मना ।
बोधयामास वैकुण्ठ मोहयामास[९६] तौ तदा ॥ २५ ॥
तत प्रबुद्ध कृष्णस्तु ददर्श भयशालिनम् ।
ब्रह्माण तौ तदा घोरावसुरौ मधुकैटभौ ॥ २६ ॥
ततस्ताभ्या स युयुधे ह्यसुराभ्यां जनार्दन ।
नाशक्नुवारितु वीरावसुरौ मधुकैटभौ ॥ २७ ॥
अनन्तोऽपि फणाग्रेण तान्नो धर्तुं क्षमोऽभवत् ।
युध्यमानान् महावीरान् वैकुण्ठ मधुकैटभान् ॥ २८ ॥
अथ ब्रह्मा शिलारूपा स्थितिशक्ति तदाकरोत् ।

---

९६. योधयामास ।

अर्धयोजनविस्तीर्णामर्धयोजनमायताम् ॥ २९ ॥
तस्या शिलाया गोविन्दो युयुधे नृपसत्तम।
सह ताभ्या शिला सा तु प्रविवेश जलान्तरम् ॥ ३० ॥
तस्या तु शक्त्या मग्नाया तोये स युयुधे हरि·।
पञ्चवर्षसहस्राणि बाहुयुद्धैर्निरन्तरम् ॥ ३१ ॥
यदा वै नाशकद् हन्तु तौ विष्णुर्जगता पति।
परा चिन्ता तदावाप विधातापि भयात् तत ॥ ३२ ॥
ततस्तावेव त विष्णुमूचतुर्बलदर्पितौ।
पुन पुनजगन्मातृ-महामाया-विमोहितौ ॥ ३३ ॥
तुष्टौ स्वस्त्वन्नियुद्धेन वर वरय माधव।
तवेष्ट सम्प्रदास्याव सत्यमेतद् ब्रुवोऽधुना ॥ ३४ ॥
तयोस्तद्वचन श्रुत्वा माधवो जगता पति[१७]।
उवाच तौ युवा वध्यौ भवता मे महाबलौ ॥ ३५ ॥
इति देहि वर मह्य दातव्य यदि विद्यते।
तौ तदा प्राहतुर्नाशरत्वत्तो नौ शोभनोऽधुना[१८] ॥ ३६ ॥
तत्रावा जहि नो यत्र तोय सम्प्रति विद्यते।
तयोस्तद्वचन श्रुत्वा माधवो जगता पति ॥ ३७ ॥
ब्रह्माण मा च शीघ्रेण प्राहेद चात्मसञ्ज्ञया।
ब्रह्मशक्तिशिला शीघ्रमुद्धृत्य ध्रियता यथा ॥ ३८ ॥
तत्र स्थित्वा महाघोरौ हनिष्यामि महाबलौ।
ततो ब्रह्मा ह्यह चैव उद्दधार शिला तु ताम् ॥ ३९ ॥
तस्या मध्ये पूर्वभागे ह्यह पर्वतरूपधृक्।
ऊर्ध्वं स्थित्वा शिला भित्त्वा प्रविवेश रसातलम् ॥ ४० ॥
ऐशान्यामभवत् कूर्म पर्वतश्चाग्रहीच्छिलाम्।
वायव्या च तथानन्तो नैर्ऋत्या च सुरेश्वरी ॥ ४१ ॥
महामाया जगद्धात्री शैलरूपप्रधारिणी।
आग्नेय्या च तथा विष्णुरेकरूपेण सस्थित· ॥ ४२ ॥
ब्रह्मशक्तिशिला गृह्णन् भगवान् परमेश्वर।
मध्ये ब्रह्मा त्वह चैव वराहश्च तथापर· ॥ ४३ ॥
ततो वराहपृष्ठास्य चरमे जगतापति·।

---

१७ भगवान् गरुडध्वज।
१८. तौ तदा प्राह युष्मत्तो योध्यो नौ शोभनो वर'।

स्थित्वा शिलामवष्टभ्य ब्रह्मशक्तिमधोगताम् ॥ ४४ ॥
वामोरुजघने यत्नादारोप्य शिरसी तयो ।
जगदाधारभूत स सर्वयत्नेन सयुत ॥ ४५ ॥
सर्वैर्बलै समाक्रम्य चिच्छेद च पृथक् पृथक् ।
मधुकैटभयो सम्यग् ग्रीवयो[99] पृथिवीभृते ॥ ४६ ॥
तस्य चाक्रमत स्थेम्ना ब्रह्मशक्तिरधोगता ।
ध्रियमाणापि देवौघैर्यत्नादपि मुहुर्मुहु ॥ ४७ ॥
ततस्तयोस्तु मृतयो शरीरे जगता पति ।
ब्रह्मशक्ति समुद्धृत्य न्यधात् तस्या प्रयत्नत ॥ ४८ ॥
उद्धृताया पृथिव्या तु तयोर्मेदोविलेपनै ।
सुदृढामकरोत् पृथ्वी क्लेदिता तोयराशिभि ॥ ४९ ॥
मेदोविलेपनाद् यस्माद् गीयते मेदिनी च सा ।
अद्यापि पृथिवी देवी देवराक्षसमानुषै ॥ ५० ॥
अथ काले बहुतिथे व्यतीते प्राणिसर्जने ।
अगृह्णा दक्षतनया भार्यार्थेऽह वधू वराम् ॥ ५१ ॥
सा मेऽभूत् प्रेयसी भार्या प्रादाय समय पितु ।
अनिष्टकारी त्व चेत् स्या प्राणास्त्यक्ष्ये तदा त्वहम् ॥ ५२ ॥
ततो यज्ञे समस्तास्तु स च वव्रे चराचरम् ।
न मा नापि सती वव्रे तदानीष्टान्मृता तु सा ॥ ५३ ॥
ततो मोह[100]समाक्रान्तस्तमादाय मृतामहम् ।
प्रात[1] पोठवर त तु भ्रममाण इतस्तत ॥ ५४ ॥
तस्यास्त्वङ्गानि पर्यायात् पतितानि यतो यत ।
तत् तत् पुण्यतम जात योगनिद्राप्रभावत ॥ ५५ ॥
तस्मिस्तु कुब्जिकापीठे सत्यास्तद्योनिमण्डलम् ।
पतित तत्र सा देवी महामाया व्यलीयत ॥ ५६ ॥
लीनाया योगनिद्राया मयि पर्वतरूपिणी ।
स नीलवर्ण शैलोऽभूत्पतिते योनिमण्डले ॥ ५७ ॥
स तु शैलो महातुङ्ग पातालतलमाविशत् ।
तस्या आक्रमणाद्गाढ[2] ह्यन्तस्थ द्रुहिणो ह्यधात् ॥ ५८ ॥
स तु पूर्वं ब्रह्मशक्ति शिला धर्तुं चतुर्मुख ।
शैलरूपोऽभवत् तेन शैलरूपेण मामधात् ॥ ५९ ॥
ब्रह्मा पर्वतरूपी स मयि पर्वतरूपिणी ।

---

९९. वीरयो । १०० समुत्पन्न । १. प्राप्त० । २. वाम ।

स शक्तोऽधोऽगमद् गाढमाक्रान्तो मायया विधे[१] ॥ ६० ॥
ततो वराह ससक्तो मयि मा स तु माधव ।
शैलरूप शैलरूप धर्तु समुपचक्रमे ॥ ६१ ॥
सोऽप्यधोऽयान्मया सार्धं तदा पर्वतरूपिणीं ।
आक्रम्य देवी पृथिवी स्थितो भुवि निखानित ॥ ६२ ॥
शत शत योजनाना तुङ्गमासीद् गिरित्रयम् ।
तदाक्रान्त महादेव्या सर्वमेव ह्यधोगतम् ॥ ६३ ॥
क्रोशमात्रस्थित तुङ्गशेष तत्त्रितयस्य तु ।
एका समस्तजगता प्रकृति सा यतस्तत ॥ ६४ ॥
ब्रह्मविष्णुशिवैर्देवैर्धृता सा जगता प्रसू ।
तत्र पूर्वो ब्रह्मशैल श्वेत इत्युच्यते सुरै ॥ ६५ ॥
मद्रूपधारी शैलस्तु नील इत्युच्यते तथा ।
स तु मध्यगत पीठस्त्रिकोणोलूखलाकृति ॥ ६६ ॥
विभ्राजमान सतत मध्ये ब्रह्मवराहयो ।
वराह शैलरूपो य स चित्र इति कथ्यते ॥ ६७ ॥
सर्वेषा सस्थित पश्चाद् दीर्घ सर्वेभ्य एव तु ।
ऐशान्या योऽभवत् कूर्म शैलरूपो महाद्युति ॥ ६८ ॥
मणिकर्ण स नाम्ना तु ख्यातो देवौघसेवित' ।
योऽनन्तरूप शैलस्तु वायव्या समवस्थित ॥ ६९ ॥
मणिपर्वतसज्ञोऽसौ पर्वतो माधवप्रिय ।
महामाया गिरिर्यस्तु नैर्ऋत्या समवस्थित ॥ ७० ॥
स गन्धमादनो नाम्ना सर्वदा शकरप्रिय ।
वराहपृष्ठचरमे यतश्छिन्नौ महासुरौ ॥ ७१ ॥
हरिणा तत्र सयात पाण्डुनाथ इति स्मृत ।
ब्रह्मशक्तिशिलायास्तु पूर्वभागे तु मध्यत ॥ ७२ ॥
यस्तु पर्वतरूपोऽह स तु भस्मचलाह्वय. ।
एव पुण्यतमे पीठे कुब्जिकापीठसज्ञके ॥ ७३ ॥
नीलकूटे मया सार्धं देवी रहसि सस्थिता ।
सत्यास्तु पतित तत्र विशीर्णं योनिमण्डलम् ॥ ७४ ॥
शिलात्वमगमच्छैले कामाख्या तत्र सस्थिता ।
सस्पृश्य ता शिलां मर्त्यो ह्यमरत्वमवाप्नुयात् ॥ ७५ ॥
अमर्त्यो ब्रह्मसदन तत्स्थो मोक्षमवाप्नुयात् ।

---

१. विधौ ।

तस्या' शिलाया माहात्म्य यत्र कामेश्वरी स्थिता ॥ ७६ ॥
अद्भुत यस्य गुह्ये तु लोह भस्म भवेद्गतम् ।
सा चापि प्रत्यह तत्र पञ्चमूर्तिधराभवत् ॥ ७७ ॥
मोहार्थ सर्वलोकाना ममापि प्रीतये शिवा ।
अह पञ्चमुखेनाशु पञ्चभागे व्यवस्थित ॥ ७८ ॥
ईशान पूर्वभागस्थ. कामेश्वर्या प्रधानत' ।
ऐशान्या वै तत्पुरुषो ह्यघोरस्तस्य सन्निधौ ॥ ७९ ॥
सद्योजातोऽथ वायव्या वामदेवस्तु सगतः ।
देव्याश्चापि[४] नरश्रेष्ठ पञ्चरूपाणि भैरव ॥ ८० ॥
शृणु वेताल गुह्यानि देवैरपि सदैव हि ।
कामाख्या त्रिपुरा चैव तथा कामेश्वरी शिवा ॥ ८१ ॥
शारदाथ महालोका कामरूपगुणैर्युता ।
मयि लिङ्गत्वमापन्ने शिलाया योनिमण्डले ॥ ८२ ॥
सर्वे शिलात्वमगमच्छैलरूपाश्च निर्जरा. ।
यथाह निजरूपेण रेमे वै सह कामया ॥ ८३ ॥
शिलारूपप्रतिच्छन्नास्तथा सर्वास्तु देवता. ।
शिलारूपप्रतिच्छन्ना. शैले शैले व्यवस्थिता. ॥ ८४ ॥
रमन्ते च स्वरूपेण[५] नित्य रहसि सङ्गता ।
ब्रह्मा विष्णुर्हरश्चात्र दिक्पाला सर्व एव ते ॥ ८५ ॥
अन्येऽप्यत्र स्थिता देवा सानुकूला सदा मयि ।
उपासितु तदा देवी कामाख्या कामरूपिणीम् ॥ ८६ ॥
नीलशैलस्त्रिकोणस्तु मध्यनिम्न सदाशिव ।
तन्मध्ये मण्डल चारु त्रिशच्छक्तिसमन्वितम् ॥ ८७ ॥
गुहा मनोभवा तत्र मनोभवविनिमिता ।
योनिस्तस्यां शिलाया तु शिलारूपा मनोहरा ।
वितस्तिमात्रविस्तीर्णा एकविंशाङ्गुलीयुता ॥ ८८ ॥
क्रमसूक्ष्मविनम्रा सा भस्मशैलानुगामिनी ।
महामायो जगद्धात्री मूलभूता सनातनी ॥ ८९ ॥
सिन्दूरकुंकुमारक्ता सर्वकामप्रदायिनी ।
तस्या योनौ पञ्चरूपा नित्य क्रीडति कामिनी ॥ ९० ॥
तत्राष्टौ योगिनीर्नित्या मूलभूता सनातनीः ।
पूर्वोक्ता. शैलपुत्र्याद्या स्थिता देव्या समन्तत ॥ ९१ ॥

---

४ नो देव्याश्च । ५. शरीरेण ।

तासा तु पीठनामानि श्रृणु चैकत्र भैरव ।
गुप्तकामा च श्रीकामा तथान्या विन्ध्यवासिनी ॥ ९२ ॥
कोटीश्वरी वनस्था तु पाददुर्गा तथापरा ।
दीर्घेश्वरी क्रमादेव प्रकटा भुवनेश्वरी ॥ ९३ ॥
स्वयोगिन्य पीठनाम्ना ख्याता अष्टौ च देवता ।
सर्वतीर्थानि चैकत्र जलरूपाणि भैरव ॥ ९४ ॥
स्थितानि नाम्ना सौभाग्यसरस्यल्पापि पुण्यदा ।
विष्णुस्तु तीरे तस्यास्तु नाम्ना कमल इत्युत ॥ ९५ ॥
कामुकाख्यस्तु वटुक कामाख्याभ्यर्णसस्थित ।
लक्ष्मी सरस्वती देव्यौ देव्या सगे व्यवस्थिते ॥ ९६ ॥
ललिताख्याभवल्लक्ष्मीर्मातङ्गी तु सरस्वती ।
गणाध्यक्ष पूर्वभागे तस्य शैलस्य सस्थित ॥ ९७ ॥
सिद्ध स नाम्ना विख्यातो द्वारे देव्या प्रिय सुत ।
कल्पवृक्ष कल्पवल्ली तिन्तिडी चापराजिता ॥ ९८ ॥
भूत्वा तस्मिन् महाशैले स्थितो देव्या धृतः प्रिये ।
वराह पाण्डुनाथाख्य स्थितस्तत्र हरिर्यत ॥ ९९ ॥
जघने शिरसी कृत्वा जघान मधुकैटभौ ।
तस्यासन्ने ब्रह्मकुण्ड ब्रह्मणा निर्मित पुरा ॥ १०० ॥
ईशानाख्य शिवो यत्र तत् सिद्धेश्वरसञ्ज्ञकम् ।
शिलारूप सिद्धकुण्ड मध्यस्थ विद्धि[६] भैरव ॥ १०१ ॥
तस्यासन्ने गयाक्षेत्र क्षत्र वाराणसी तथा ।
योनिमण्डलसकाश कुण्ड भूत्वा व्यवस्थितम् ॥ १०२ ॥
तत्रैवामृतकुण्ड तु सुधासङ्घप्रपूरितम् ।
ममा प्रियार्थमिन्द्रेण स्थापित सह निर्जरै ॥ १०३ ॥
वामदेवाह्वय शीर्ष श्रीकामेश्वरसंज्ञकम् ।
कामकुण्ड महापुण्य तस्यासन्ने व्यवस्थितम् ॥ १०४ ॥
केदारसञ्ज्ञक क्षेत्र मध्यस्थ सिद्धकामयो ।
दीर्घं चतुर्दशव्यामच्छायाच्छत्राह्वय तु तत् ॥ १०५ ॥
तस्यासन्ने शैलपुत्री गुप्तकामाह्वया तु सा ।
गुप्तकुण्डस्य मध्यस्था कामेशग्रावणि सङ्गता ॥ १०६ ॥
कामेश्वरशिलासक्ता कामाख्यासञ्ज्ञिता सदा ।

---

६ सिद्ध ।

पूर्वभागेण ससक्ता योनेस्तु परमार्गत.[७] ॥ १०७ ॥
कामकामाख्ययोर्मध्ये कालरात्रिर्व्यवस्थिता ।
पीठे दीर्घेश्वरी नाम्ना सीमाभागे प्रचण्डिका ॥ १०८ ॥
कामाख्याप्रस्तरप्रान्ते कूष्माण्डी नाम योगिनी ।
पीठे कोटीश्वरी नाम्ना योनिरूपेण सस्थिता ॥ १०९ ॥
यच्चाघोराह्वय शीर्ष तत्कामायास्तु दक्षिणे ।
पीठे भैरवनामा तु गदिते परमार्थिभि ॥ ११० ॥
चामुण्डा भैरवी नाम्ना भैरवासन्नसस्थिता ।
नायिका कामदा भक्तेश्चण्डमुण्डविनाशिनी ॥ १११ ॥
कामाभैरवयोर्मध्ये[८] स्वय देवी सुरापगा ।
हिताय सर्वजगता देव्यास्तु प्रीतये सदा ॥ ११२ ॥
सद्योजाताह्वय शीर्ष पीठे त्वाम्रातकेश्वरम् ।
भैरवाख्ये गह्वरे तु स्थित देवर्षिसेवितम् ॥ ११३ ॥
विद्धि तत्रैव दुर्गाख्या नायिका योगरूपिणीम् ।
सिद्धकामेश्वरी नाम्ना ख्याता देवेषु नित्यश ॥ ११४ ॥
अजीर्णपत्र सुच्छायो वृक्षस्तत्र सुसस्थित ।
आम्रातक कल्पवृक्ष कल्पवल्लीसमन्वित ॥ ११५ ॥
पीठे तु सिद्धगङ्गाख्या स्वय गङ्गा समुत्थिता ।
आम्रातकस्य निकटे मम प्रीतिविवृद्धये ॥ ११६ ॥
पुष्कराख्य तु तत्क्षेत्र पीठे त्वाम्रातकाह्वयम् ।
ऐशान्यां तत्पुरुषाख्य मम शीर्ष व्यवस्थितम् ॥ ११७ ॥
भुवनेश्वरनाम्ना तु पीठे ख्यात च भैरव ।
गह्वर भुवनेशस्य भुवनानन्दसञ्ज्ञकम् ॥ ११८ ॥
तस्यासन्ने तु सुरभि शिलारूपेण सस्थिता ।
कामधेनुरिति ख्याता पीठे कामप्रदायिनी ॥ ११९ ॥
योऽसौ शरभमूर्तिर्मे मध्यखण्डप्रचण्डक ।
महाभैरवनामाभूत् कोटिलिङ्गाह्वयस्तु स. ॥ १२० ॥
मूर्तिभि पञ्चभि पञ्चभागेषु समवस्थित ।
अह पञ्चादतिप्रीत्या भैरवाख्य स्थितो धरे ॥ १२१ ॥
महागौरी तु या देवी योगिनी सिद्धरूपिणी ।
सा ब्रह्मपर्वते चास्ते शिलारूपेण चोर्ध्वत ॥ १२२ ॥
अतीवरूपसम्पन्ना नाम्ना सा भुवनेश्वरी ।

७. परभागता । ८. कामाख्या भैरवीमध्ये ।

यत्र ब्रह्मा तु ससक्तो मयि पर्वतरूपिणि ॥ १२३ ॥
कल्पवल्ली तु तत्रास्ते नाम्ना सा त्वपराजिता ।
कामधेनुरदूरस्था पूर्वभागे महेश्वरी ॥ १२४ ॥
श्रीकामाख्या योनिरूपा चण्डिका सा तु योगिनी ।
आग्नेय्या विद्धि ता सस्था सर्वकामप्रदा शुभाम् ॥ १२५ ॥
योगिनी चन्द्रघण्टाख्या पीठेऽभूद् विन्ध्यवासिनी ।
योगिनी स्कन्दमाता तत्पीठेऽभूद् वनवासिनी ॥ १२६ ॥
कात्यायनी पीठनाम्ना पाददुर्गेति गद्यते ।
नैर्ऋत्या नीलशैलस्य प्रान्ते सा सस्थिता शिवा ॥ १२७ ॥
योऽसौ नन्दी मम तनु स तु पाषाणरूपधृक् ।
सस्थित पश्चिमद्वारि हनुमान् पीठनामत ॥ १२८ ॥

और्व उवाच

इति तस्य वच श्रुत्वा शम्भोरमिततेजस ।
भैरवस्त तु पप्रच्छ वेतालोऽपि समुत्सुक ॥ १२९ ॥

वेतालभैरवावूचतुः

श्रुत पीठक्रमस्तात देव्या पूजाक्रमस्तथा ।
श्रोतुमिच्छामि मूर्तीना पञ्चानामपि शङ्कर ॥ १३० ॥
रूपाणि पञ्चमूर्तीना मन्त्राणि च समन्तत ।
तत्र मन्त्राणि[9] तन्त्राणि वद नौ वृषभध्वज ॥ १३१ ॥

ईश्वर उवाच

शृणु वक्ष्यामि वेताल मन्त्र तन्त्र पृथक् पृथक् ।
कामाख्यापचमूर्तीना रूप कल्प च[10] भैरव ॥ १३२ ॥
कामस्थ काममध्यस्थ कामदेवपुटीकृतम् ।
कामेन कामयेत् कामी काम कामे नियोजयेत् ॥ १३३ ॥
ज्येष्ठ तु व्यञ्जनं ब्रह्मन् पर शान्त तदुच्यते ।
प्रथम क्रमत कुर्यात्तत्ससक्तं सुधामयम् ॥ १३४ ॥
प्रजापतिस्तथा शक्रबीज सस्थादिसयुतम् ।
चन्द्रार्धसहितं बीज कामाख्याया प्रचक्ष्यते ॥ १३५ ॥

---

९ यन्त्राणि ।

१०. काम रूपं च ।

इदं धर्मप्रदं काममोक्षार्थाना प्रदायकम् ।
इदं रहस्यं परममन्यत्र तु सुदुर्लभम् ॥ १३६ ॥
श्रोत्रेणोद्यम्य शृणुयाद् गुरुवक्त्रान्नरोत्तम ।
स कामानखिलान् प्राप्य शिवलोके महीयते ॥ १३७ ॥

श्रुतिसकलितसारं देवकण्ठौघहारं
सकलकलुषहारि श्रीधरानन्दकारि ।
सुनयशुभगगोभिर्भ्राजयेद्यद्यशोभि-
स्तदिह शिवसमस्तं विघ्नहन्त्रीङ्गितार्थम् ॥ १३८ ॥

नयनकरभकारि ध्यानिनां चोपकारि
प्रणयिसुनयसस्थं देवसत्याह्निकस्थम् ।
परमपदविशीर्णं सर्वदौर्भाग्यजीर्णं[11]
शृणु शिवपदरूपं कामदेव्याः स्वरूपम् ॥ १३९ ॥

श्रवणगगनमात्रा चार्दितं यस्य नाम
प्रभवति बहुभूत्यै गीतिमार्गैकधाम ।
सुरगणगणनाया कुण्डली यस्य शक्ति-
स्तदिह परमरूपं चिन्तनीयं हताशैः[12] ॥ १४० ॥

रविशशियुतकर्णा कुकुमापीतवर्णा
मणिकनकविचित्रा लोलकर्णा त्रिनेत्रा ।
अभयवरदहस्ता साक्षसूत्रप्रशस्ता
प्रणतसुरनरेशा सिद्धकामेश्वरी सा ॥ १४१ ॥

अरुणकमलसस्था रक्तपद्मासनस्था
नवतरुणशरीरा मुक्तकेशी सुहारा ।
शवहृदि पृथुतुगस्तन्ययुग्मा मनोज्ञा
शिशुरविसमवस्त्रा सर्वकामेश्वरी सा ॥ १४२ ॥

विपुलविभवदात्री स्मेरवक्त्रा सुकेशी
ललितनखरदन्ता सामिचन्द्रावनम्रा ।
मनसिजहृषदिस्था योनिमुद्रालसन्ती
पवनगमनशक्ता सश्रुतस्थानभागा ॥ १४३ ॥
चिन्त्या चैव विद्युदग्निप्रकाशा
धर्मार्थाद्यं साधकैर्वाञ्छितार्थैः ।

---

११. शुद्धं । १२ कृतीशैः ।

कल्प्यन्त त्रीण्यस्तद सम्यगर्घ
वेताल त्व भैरव श्रीप्रतिष्ठम् ॥ १४४ ॥
तस्मिन्नर्घ[13] मण्डल यद्धि पश्चात्
कार्य चैतच्चन्दनै पुष्पयुक्तै ।
पर्यायो यो लेखने पूर्वमुक्तो
देवीतन्त्रे सोऽत्र पूर्व विधेय ॥ १४५ ॥

इति श्रीकालिकापुराणे कामाख्यापूजातन्त्रे
द्विषष्टितमोऽध्याय ॥ ६२ ॥

---

१३. तस्मिन्नार्घ्यं ।

त्रिषष्टितमोऽध्यायः

ईश्वर उवाच

वैष्णवीतन्त्रमन्त्रस्य यथापूर्वं मयोदितम् ।
मण्डल प्रतिपत्त्या तु पर्यायो मण्डलस्य य ॥ १ ॥
स एव प्रथम कार्य शिलाया पुष्पचन्दनै. ।
पात्रादीना प्रतिष्ठान तथैवात्रापि योजयेत् ॥ २ ॥
वैष्णवीतन्त्रमन्त्रस्य प्रोक्ता या प्रतिपत्तय ।
अत्र ताः सकला योज्या आसनाद्यैश्च पूजनम् ॥ ३ ॥
तेभ्योऽन्यो यो विशेषोऽत्र तद् वक्ष्ये शृणु भैरव ।
प्रथम भास्करायार्घ्यं प्रदद्याच्श्वेतसर्षपै ॥ ४ ॥
पुष्पचन्दनसवीतै सगणाय महात्मने ।
आसनार्चनशेषे तु पीठोक्ता सर्वदेवता. ॥ ५ ॥
पीठनाम्ना तु सयोज्या मण्डलस्य तु मध्यत. ।
ध्यानस्वरूपं भिन्न तद् वैष्णव्या सह भैरव ॥ ६ ॥
कामायाः[14] सर्वमन्यत् तु महामायास्तवोदितम्[15] ।
योगिनीस्तु चतुषष्टि पूजयेच्च पृथक् पृथक् ॥ ७ ॥
गुहा मनोभवां चापि महोत्साहा तथा सखीम् ।
अनन्तर पूजयेत् तु दिक्पालाश्च नवग्रहान् ॥ ८ ॥
रूपतस्तान् समुद्दिश्य पूजयेदिष्टसिद्धये ।
पूर्वद्वारे गणपतिं प्रथम तु प्रपूजयेत् ॥ ९ ॥
नन्दिन च हनूमन्त पश्चिमद्वारि पूजयेत् ।
भृङ्गी चोत्तरत पूज्यो महाकालस्तु दक्षिणे ॥ १० ॥
एते मम द्वारपाला देव्या द्वारे प्रपूजयेत् ।
पात्रामृतीकृतिविधौ[16] कुर्याद् वै काममुद्रया ॥ ११ ॥
भूतापसारण कुर्यात् पूर्व तालत्रयेण तु ।
वामहस्ते दक्षिणेन पाणिना तालमाहरेत् ॥ १२ ॥
हूँ हूँ फडितिमन्त्रेण वेतालादींश्च सारयेत् ।
सर्वमुत्तरतन्त्रोक्त तन्त्र कुर्यात् तु साधक ॥ १३ ॥
अत्रोक्तेन स्वरूपेण प्राणायाम तथा चरेत् ।

---

१४. कामाख्याया. । १५ क्रमाद् गतम् । १६. पात्रस्य सङ्कृति… ।

स्नापयेत् प्रथम देवी मूलमन्त्रेण पूजक ॥ १४ ॥
मधुक्षीराज्यदधिभिर्गोमूत्रैर्गोमयैस्तथा ।
रत्नोदकै शर्कराभिर्गुडरत्नकुशोदकै ॥ १५ ॥
सितसर्षपमुद्गाभ्या[17] तिलक्षीरैस्तथा यवै ।
रक्तचन्दनपुष्पैश्च दूर्वाभी रोचनायुतै ॥ १६ ॥
नवभिर्वितरेदर्घ्य शिलाया योनिसन्निधौ ।
आसन पाद्यमर्घ्य च तत आचमनीयकम् ॥ १७ ॥
मधुपर्क स्नानजल वस्त्र चन्दनभूषणम् ।
पुष्प धूप च दीप च नेत्राञ्जनमत परम् ॥ १८ ॥
नैवेद्याचमनीये च प्रदक्षिणनमस्कृती ।
एते षोडश निर्दिष्टा उपचारास्तु पीठत॰ ॥ १९ ॥
आवाहयेन्महादेवी गायत्र्या कामयोगया ।
तामेव विद्धि वेताल गुह्य भैरवदैवतम् ॥ २० ॥
कामाख्ये त्वमिहागच्छ यथावन्मम सन्निधौ ।
पूजाकर्मणि सान्निध्यमिह कल्पय कामिनि ॥ २१ ॥
कामाख्यायै च विद्महे कामेश्वर्यै तु धीमहि ।
तत कुर्यान्महादेवी ततश्चानु प्रचोदयात् ॥ २२ ॥
एषा तु कामगायत्री पूजयेदनया शुभाम् ।
पूजावसाने च बलीन्देव्या प्रीत्यै निवेदयेत् ॥ २३ ॥
रुद्राक्षमालया जाप्यमादायैव समाचरेत् ।
नाक्षरैर्मूलमन्त्रस्य त्रिधा वृत्त प्रपूजयेत् ॥ २४ ॥
कामाख्याया॰ षडङ्गानि आह्वानानन्तरे तथा ।
वैष्णवीतन्त्रमन्त्रस्य कराङ्गन्यासयोश्च ये ॥ २५ ॥
स्वरा प्रोक्तास्तै स्वरैस्तु सार्धचन्द्रै सबिन्दुकै ।
मूलमन्त्राद्यक्षराभ्या युगपत्तु नियोजितै ॥ २६ ॥
कनिष्ठादिक्रमेणैव ह्यङ्गन्यास समाचरेत् ।
अङ्गन्यासकरन्यासौ कृत्वा पश्चात्तु साधक ॥ २७ ॥
हृच्छिरस्तु शिखावर्मनेत्रास्योदरपृष्ठत ।
बाह्वो पाण्योर्जङ्घयोश्च पादयोश्चापि विन्यसेत् ॥ २८ ॥
अभय वरद हस्तमक्षमाला च सूत्रकम् ।
पूजयेच्छशिन सूर्य शिरश्चान्द्रकला तथा ॥ २९ ॥
रक्तपद्म शव चैव लौहित्य ब्रह्मपुत्रकम् ।

---

17 युक्ताभ्यां ।

मनोभव शिला तत्र शक्तिस्था शवमध्यत[१८] ॥ ३० ॥
देव्या प्रपूजयेद्भक्त कारवाल च पार्श्वत. ।
पीठादिदेवतास्तत्र यजेत् कामेश्वरीं शुभाम् ॥ ३१ ॥
त्रिपुरा पूजयेन्मध्ये पीठप्रत्यधिदेवताम् ।
शारदा च महोत्साहा मध्य एव प्रपूजयेत् ॥ ३२ ॥
चण्डेश्वरी महादेवी देव्या निर्माल्यधारिणी ।
योनिमुद्रा समाख्याता कामाख्याया विसर्जने ॥ ३३ ॥
इद द्रव्य तु सिन्दूरचन्दनागुरुकुकुमै. ।
इति यो हि मया प्रोक्तो विशेष. परिपूजने ॥ ३४ ॥
एभिर्विशेषै सहित वैष्णवीतन्त्रगोचरम् ।
सर्वं कल्प समासाद्य कामाख्या परिपूजयेत् ॥ ३५ ॥
अनेनैव विधानेन कामाख्या यस्तु पूजयेत् ।
मनोभवगुहामध्ये स याति परमा गतिम् ॥ ३६ ॥
ब्रह्माणी चण्डिका रौद्री गौरीन्द्राणी तथैव च ।
कौमारी वैष्णवी दुर्गा नारसिंही च कालिका ॥ ३७ ॥
चामुण्डा शिवदूती च वाराही कौशिकी तथा ।
माहेश्वरी शाकरी च जयन्ती सर्वमङ्गला ॥ ३८ ॥
काली कपालिनी मेधा शिवा शाकम्भरी तथा ।
भीमा शान्ता भ्रामरी च रुद्राणी चाम्बिका तथा ॥ ३९ ॥
क्षमा धात्री तथा स्वाहा स्वधा पर्णा महोदरी ।
घोररूपा महाकाली भद्रकाली भयङ्करी ॥ ४० ॥
क्षेमकरी चोग्रचण्डा चण्डोग्रा चण्डनायिका ।
चण्डा चण्डवती चण्डी महामोहा[१९] प्रियङ्करी ॥ ४१ ॥
कलविकरिणी देवी बलप्रमथिनी तथा ।
मदनोन्मथिनी देवी सर्वभूतस्य दामनी ॥ ४२ ॥
उमा तारा महानिद्रा विजया च जया तथा ।
पूर्वोक्ता शैलपुत्र्याद्या योगिन्यष्टौ च या क्रमात् ॥ ४३ ॥
ताभिरेभिश्च सहिता. चतु षष्टि च योगिनी ।
पूजयेन्मण्डलस्यान्त. सर्वकामार्थसिद्धये ॥ ४४ ॥
नानाविध तु नैवेद्य पान पायसमेव[२०] च ।
मोदकापूपपिष्टादि देव्यै सम्यक् प्रदापयेत् ॥ ४५ ॥
एव तु पूजयेद् देवीं कामाख्या वरदायिनीम् ।

१८ मध्यतः । १९. महामाया । २०. पानमासवमेव च ।

भक्तियुक्तो नरो यस्तु स सर्वान् लभते प्रियान् ॥ ४६ ॥
महोत्साहा तु या देवी महामाया तु सा स्मृता ।
वैष्णवीतन्त्रमन्त्रेण सा पूज्या योनिमण्डले ॥ ४७ ॥
तदेव मण्डल चास्य ह्यङ्गन्यास तथैव च ।
सा एव पूजापर्याये तद्ध्यान सैव देवता ॥ ४८ ॥
तन्त्र[२१] तदेवमुक्त तु तस्मान्नान्य तु किञ्चन ।
मण्डलादिविसृष्ट्यर्थं महामायामहोत्सवे ॥ ४९ ॥
यत्प्रोक्त तेन ता देवी महोत्साहा तु मण्डले ।
स्नानपूर्वं पूजयेत्तु मध्वाज्यादिभिरासवै ॥ ५० ॥
शृणुत त्रिपुरामूर्ते कामाख्याया प्रपूजनम् ।
एतस्या मूलमन्त्र तु पूर्वमुत्तरतन्त्रके ॥ ५१ ॥
युवयोरिष्टयो सम्यक् क्रमात् तत् प्रतिपादितम् ।
वाग्भव कामबीज तु डामर चेति तत्त्रयम् ॥ ५२ ॥
सर्वधर्मार्थकामादिसाधक कुण्डलीयुतम् ।
त्रीण्यस्मात् पुरतो दद्याद् दुर्गा ध्याता महेश्वरी ॥ ५३ ॥
त्रिपुरेति तत ख्याता कामाख्या कामरूपिणी ।
तस्यास्तु स्नापन यादृक्कामाख्याया प्रकीर्तितम् ॥ ५४ ॥
तेनैव स्नापन कुर्यान्मूलमन्त्रेण पूजक[२२] ।
त्रिकोण मण्डल चास्यास्त्रिपुर तु त्रिरेखकम् ॥ ५५ ॥
मन्त्र तु अक्षर ज्ञेय तथा रूप त्रय पुन ।
त्रिविधा[२३] कुण्डली शक्तिस्त्रिदेवाना च सृष्टये ॥ ५६ ॥
सर्वं त्रय त्रय यस्मात् त्रिपुरा तेन सा स्मृता ।
उदीच्याद्यथ पूर्वान्ता रेखा कार्यास्तु मण्डले ॥ ५७ ॥
त्रिस्त्रिरेखास्तु कर्तव्यास्ता एव पुष्पचन्दनै ।
ऐशान्यामथ नैर्ऋत्या मन्त्र कृत्वा तु सलिखेत् ॥ ५८ ॥
नैर्ऋत्या चैव वायव्या ततो ह्यैशान्यगा पुन· ।
एव त्रिकोण विलिखेन्मण्डलस्यान्तरे पुन ॥ ५९ ॥
ऐशान्याद्यास्तु[२४] या रेखा सा तु शक्तिर्निगद्यते ।
नैर्ऋत्या वायवी याता ततो ह्यैशान्यगा तु या ॥ ६० ॥
सा तु शम्भु समाख्याता शक्त्या शम्भु विभेदयेत् ।

---

२१. मन्त्र तु देवताभ्य । २२. साधक· । २३ त्रिपुरा ।
२४ ऐशान्यादिषु ।

शक्त्या विभिन्न भूतेश वेष्टयेत् कमलेन तु ॥ ६१ ॥
अष्टपत्रेण ता ध्यात्वा त्रिवर्णा प्राक् प्रपूजयेत् ।
त्रिभिस्त्रिभिस्तु रेखाभि शक्ति शम्भु च वेष्टयेत् ॥ ६२ ॥
स्थानस्याभ्युक्षण सम्यद्ध मार्जन लिखन तथा ।
अस्त्रमन्त्रप्रयोगाणा भूतानामपसारणम् ॥ ६३ ॥
वैष्णवीतन्त्रमन्त्रोक्त तथैवोत्तरतन्त्रके ।
यत् प्रोक्त तत् तु सामान्य प्राक् कुर्यात् साधको नर ॥६४॥
त्रिपुराया विशेषेण सहित पूजनक्रमम् ।
एतत् त्रिकोण देवाना त्रयाणा स्थानमिष्यते ॥ ६५ ॥
ऐशान्या तु तथेशानो नैर्ऋत्या चतुरानन ।
वायव्या तु तथा ब्रह्मा षट्कोणेषु प्रकीर्तिता ॥ ६६ ॥
दल त्वेकपुर प्रोक्त केशर चापर पुरम् ।
पुर शेष त्रिकोण तु त्रिकोण मण्डल स्मृतम् ॥ ६७ ॥
दलेषु केशरे चापि त्रिकोणे च त्रिधा त्रिधा ।
रेखास्तु विहिता सम्यक् कुर्यात् तत्र पुन पुन[२५] ॥ ६८ ॥
उत्तर तद् भवेद् द्वार तस्य वै धनुराकृति ।
पूर्वद्वार तु षट्कोण चतुष्कोण तु दक्षिणे ॥ ६९ ॥
पश्चिम तोरणाकार यथा चान्यत्र मण्डले ।
ऐशान्या पचबाणास्तु लिखेद् वह्नौ च तद्धनु ॥ ७० ॥
नैर्ऋत्या पुस्तक चापि वायव्यामक्षमालिकाम् ।
एव कृत्वा मण्डल तु धृत्वा वामेन पाणिना ॥ ७१ ॥
वाग्वेश्मने नम इति मण्डल पूजयेत् तत ।
पूजयित्वा ततो भूताम् कालिकात्रितयेन तु ॥ ७२ ॥
मूलमन्त्रेण पूर्वोक्तैर्मन्त्रैरपि समाचरेत्[२६] ।
नवभिश्छोटिकाभिस्तु त्रिधा कृत्वा तु वेष्टनम् ॥ ७३ ॥
अभ्युक्षण तत कुर्याद् भूतानामपसारणम् ।
प्रतिपत्तिस्तु पात्रस्य अर्घ्यार्थ नवधा पुन ॥ ७४ ॥
पूर्ववत् साधक कुर्याद् दहन प्लवन तथा ।
अमृतीकरण कुर्यात् प्रथम धेनुमुद्रया ॥ ७५ ॥
योनिमुद्रा तत कुर्यात् पात्रतोय तु त्रि स्पृशेत् ।
मार्तण्डभैरवायार्घ्य दूर्वाभि सिद्धसर्षपै ॥ ७६ ॥

---

२५. पृथक् पृथक् । २६. च चारयेत् ।

रक्तपुष्पैश्चन्दनैश्च सगणाय निवेदयेत् ।
पाणिकच्छपिका कृत्वा चिन्तन योनिमुद्रया ॥ ७७ ॥
आदौ मध्ये च कर्तव्य क्रमादू वेतालभैरव ।
अस्त्रमन्त्रण पात्रस्य स्थापनार्थं तु मण्डलम् ॥ ७८ ॥
षट्कोण तु लिखे पूर्व तन्मन्त्रस्थापनेऽपि च ।
ऐँ ऑ क्लीमिति मन्त्रेण त्रिधा पात्रे जल क्षिपेत् ॥ ७९ ॥
त्रिधा गन्ध च पुष्प च त्रिधा दूर्वाक्षत पुन ।
ह्रॉ ह्रीँ ह्रूँ ह्रैँ ह्रौमिति च अङ्गुष्ठादि क्रमान्न्यसेत् ॥ ८० ॥
ॐ ह्र इत्यस्त्रमन्त्रण पाणिपृष्ठतले तथा ।
हृदयादिक्रमात् पश्चान्न्यास कुर्यात् त्रिधा त्रिधा ॥ ८१ ॥
सयोज्य पाण्यो क्रमतश्चाङ्गुष्ठादि द्वय द्वयम् ।
त्रिधा त्रिधा पृथक् कुर्याच्छेषाङ्गानि च विन्यसेत् ॥ ८२ ॥
कर्णरन्ध्रे तथा ब्रह्मद्वार केशतल तथा ।
नासिकारन्ध्रयुगल जानुयुग्म पदद्वयम् ॥ ८३ ॥
त्रिधा त्रिधा न्यसेदेभि षड्भिर्मन्त्रै पृथक् पृथक् ।
प्राणायाम तत कुर्यात् पूरके स्तम्भकैस्तथा ॥ ८४ ॥
रेचकेनापि त्रिपुरामूर्ति देवी विचिन्तयेत् ।
दहनप्लवन कृत्वा आद्या मूर्तिं विचिन्तयेत् ॥ ८५ ॥
त्रिधाहृत्याथ हृदये ता मूर्तिं शृणु भैरव ।
सिन्दूरपुञ्जसकाशा त्रिनेत्रा तु चतुर्भुजाम् ॥ ८६ ॥
वामोर्ध्वे पुष्पकोदण्ड धृत्वाध पुस्तक तथा ।
दक्षिणोर्ध्वे पचबाणानक्षमाला दधात्यध ॥ ८७ ॥
चतुर्णा कुणपाना तु पृष्ठेऽन्य कुणपान्तरम् ।
निधाय तस्य पृष्ठे तु समपादेन सस्थिताम् ॥ ८८ ॥
जटाजूटार्धचन्द्रेण समाबद्धशिरोधराम्[२७] ।
नग्ना त्रिवलिभेदेन चारुमध्या मनोहराम् ॥ ८९ ॥
सर्वालङ्कारसम्पूर्णा सर्वाङ्गसुन्दरी शुभाम् ।
स्रवद्द्रविणसन्दोहा सर्वलक्षणसयुताम् ॥ ९० ॥
एना तु प्रथम ध्यात्वा त्रिधात्मान तु चिन्तयेत् ।
तद्रूप च तत पश्चात् पुष्प तद्वाग्भवेन तु ॥ ९१ ॥
स्वमस्तके पुनर्दद्यादङ्गन्यास पुनस्तथा ।
मन्त्रद्वय त्रिधा जप्त्वा वाग्भवाद्य तु साधक ॥ ९२ ॥

२७ शिरोरुहाम् ।

अर्घ्यपात्रस्य तोयेषु तैस्तोयै सेचयेच्छिर ।
पूजोपकरण चापि त्रिरभ्युद्य तथैव तु ॥ ९३ ॥
कामपीठ ततो ध्यात्वा पूजयेत् क्रमतस्त्विमान् ।
गणेश च गणाध्यक्ष गणनाथ तथैव च ॥ ९४ ॥
गणक्रीड च पूर्वादिद्वारे मन्त्रेण पूजयेत् ।
हैरम्बबीजमेतेषा मन्त्रस्तु परिकीर्तित ॥ ९५ ॥
विद्याशान्तिनिवृत्तिश्च प्रतिष्ठा द्वारपालका ।
कलान्ता पूजयेत् सम्यक् पूर्वादिक्रमतस्तथा ॥ ९६ ॥
सिद्धपुत्र ज्ञानपुत्र तथा सहजपुत्रकम् ।
शेष समयपुत्र तु पूजयेद् वटुकानिमान् ॥ ९७ ॥
प्रत्येक तु श्रिय देवी बटुकाना परे वरे ।
श्रीमित्यनेन मन्त्रेण पूर्वादौ पूजयेत् क्रमात् ॥ ९८ ॥
सिद्धस्य सहजस्याथ ज्ञानस्य समयस्य च ।
कुमारी पूजयेत कोणे ऐशान्यादौ तु मण्डले ॥ ९९॥
गोरट डामर चैव लोहजङ्घ तथैव च ।
भूतनाथ क्षेत्रपालमीशानादौ प्रपूजयेत् ॥ १०० ॥
मण्डलस्य च मध्ये तु पञ्चबाणान् प्रपूजयेत् ।
द्रावण शोषण चैव बन्धन मोहन तथा ॥ १०१ ॥
आकर्षण च मध्येन मन्त्रेणैव प्रपूजयेत् ।
ततस्त्रिष्वथ कोणेषु पूजयेत् तु त्रियोगिनी ॥ १०२ ॥
भग च भगजिह्वा च भगास्यामुत्तरादिकम् ।[२८]
क्रमात्तु पूज्यास्तिस्रोऽन्या अन्या मध्ये त्रिकोणके[२९] ॥१०३॥
भागमालिनी तु प्रथमे द्वितीये तु भगोदरीम् ।
तृतीये भगरोहा तु योगिनीं कामरूपिणीम् ॥ १०४ ॥
अनङ्गकुसुमा देवीं तथैवानङ्गमेखलाम् ।
अनङ्गमदना चैव ह्यनङ्गमदनातुराम् ॥ १०५ ॥
अनङ्गवेशा चानङ्गमालिनी मदनातुराम् ।
दलकेशरमध्ये तु ह्यष्टमी मदनाकुशाम् ॥ १०६ ॥
शैलपुत्र्यादयश्चाष्टौ त्रिपुरापूजनक्रमे ।
एतन्नामभिरव्यग्रा बभूवु कामयोगिनी ॥ १०७ ॥
वाग्भवेन तथा दुर्गा नेत्रबीजान्तकेन तु ।

२८. ""सुफमेखलाम् । २९ त्रियोम्वा मध्येषु चाष्टकोणयो. ।

अङ्गन्यास समन्त्रैस्तु षड्भिरष्टाविमान् पुन ॥ १०८ ॥
पूजयेत् क्षेत्रपालास्तु मध्ये किञ्जल्कपत्रयो ।
हेतुक त्रिपुरघ्न च अग्निजिह्व तथैव च ॥ १०९ ॥
अग्निवेतालसञ्ज्ञ च काल चाथ करालकम् ।
एकपाद भीमनाथमुत्तरादिक्रमेण तु ॥ ११० ॥
एभिरेवाष्टभिर्मन्त्रै कामराजेन सयुतै ।
नवैतानसिताङ्गादीन् नायकान् पूजयेत् क्रमात् ॥ १११ ॥
मण्डलस्य चतुर्दिक्षु द्वौ द्वौ पूर्वादिषु क्रमात् ।
पद्ममण्डलयोर्मध्ये शेषमेक तु पूजयेत् ॥ ११२ ॥
असिताङ्गो रुरुश्चण्ड क्रोधोन्मत्तौ भयङ्कर ।
कपाली भीषणश्चैव सहारश्चेति वै नव ॥ ११३ ॥
ऐशान्यादिक्रमाद् द्वे द्वे नायिका पूजयेन्नर ।
पद्ममण्डलयोर्मध्ये अग्नौ द्वे च प्रपूजयेत् ॥ ११४ ॥
ब्रह्माणी भैरवीं चैव तथा माहेश्वरीमपि ।
कौमारी वैष्णवी चैव नारसिही तथैव च ॥ ११५ ॥
वाराही च तथेन्द्राणी चामुण्डा चण्डिका तथा ।
आधारशक्तिप्रभृतीन् मण्डलस्य तु मध्यत ॥ ११६ ॥
वैष्णवी तन्त्रकल्पोक्तान् सर्वान् भैरव पूजयेत् ।
शिवस्य पञ्च या प्रोक्ता सद्योजातादय पुरा ॥ ११७ ॥
मूर्तयस्ता पद्ममध्ये पञ्चप्रेतत्वमागता ।
ता पञ्च पूजयेन्मध्ये रक्तपद्म शव तथा ॥ ११८ ॥
सिह च पूजयेत् तत्र जगदाधारसञ्ज्ञितम् ।
जयन्ती मङ्गला काली भद्रकाली कपालिनीम् ॥ ११९ ॥
दुर्गा क्षमा शिवा धात्री स्वधा स्वाहा च पूजयेत् ।
उग्रचण्डा प्रचण्डा च चण्डोग्रा चण्डनायिका ॥ १२० ॥
चण्डा चण्डवती चैव चण्डरूपातिचण्डिका ।
एता सम्पूजयेन्मध्ये मण्डलस्य विशेषत ॥ १२१ ॥
आदित्यादीन् ग्रहान् सर्वान् रूपतो ह्यस्त्रसंयुतान् ।
क्रमात् प्रत्येकमुद्दिश्य पार्श्वे पार्श्वे प्रपूजयेत् ॥ १२२ ॥
दिक्पालाना तु मन्त्रेण तथा सर्वांस्तु दिक्पतीन् ।
अस्त्रमन्त्रैस्तु तान् सर्वांस्तेषा मन्त्राणि भैरव ॥ १२३ ॥
नाथ कामेश्वर तत्र एकवक्त्र चतुर्भुजम् ।

भस्मश्वेत मध्यहृदि रक्तपुष्पैस्तु कुङ्कुमै ॥ १२४ ॥
त्रिशूल च पिनाक च वामहस्तद्वये स्थितम् ।[30]
उत्पल बीजपूर च दक्षिणद्वितये तथा ॥ १२५ ॥
श्वेतपद्मोपरिस्थ च ध्यात्वा मध्ये प्रपूजयेत् ।
कामाख्या मूर्तितो ध्यात्वा कामाख्यामपि पूजयेत् ॥ १२६ ॥
कामेश्वरी तत्र देवी पूजयेत् परमेश्वरीम् ।
वक्ष्यमाणेन रूपेण तत्र वेतालभैरवौ ॥ १२७ ॥
कराल क्षेत्रपाल च कर्त्रिखर्परधारिणम् ।
पूजयेदीशमत्यर्थ दंष्ट्राभिन्नाधर भयम् ॥ १२८ ॥
तिन्तिडी कल्पवृक्ष च सुच्छाय रत्नभूपितम् ।
त्रिकूट कृष्णवर्ण च नीलशैल महाद्युतिम् ॥ १२९ ॥
मनोभवा गुहा तत्र पचव्यामायता शुभाम् ।
रत्नमण्डलसयुक्ता रक्तवर्णा सुवर्त्तुलाम् ॥ १३० ॥
अपराजिता च वल्ली च व्यामत्रयसुविस्तृताम् ।
आरक्तवर्णा सतत कुसुमैरुपशोभिताम् ॥ १३१ ॥
बटुक कम्बलाख्य तु स्वर्णगौर गजासनम् ।
द्विभुज दक्षिणे दण्डपाणि वामे कपालकम्[31] ॥ १३२ ॥
बिभ्रत पुरतो देव्या पूज्यो विघ्नविपत्तये ।
भैरव पाण्डुनाथश्च रक्तगौरश्चतुर्भुज ॥ १३३ ॥
गदा पद्म च शक्ति च चक्र चापि करेषु च ।
बिभ्रद् देव्या पुरोभागे पूज्योऽय विष्णुरूपधृक् ॥ १३४ ॥
श्मशान हेरुकाख्य च रक्तवर्ण भयङ्करम् ।
असिचर्मधर रौद्र भुञ्जान मनुजामिषम् ॥ १३५ ॥
तिसृभिर्मुण्डमालाभिर्गलद्रक्ताभिराजितम् ।
अग्निनिर्दग्धविगलद्दन्तप्रेतोपरिस्थितम् ॥ १३६ ॥
पूजयेच्चिन्तनेनैव शस्त्रवाहनभूषणम् ।
महोत्साहा योगिनी तु महामायास्वरूपिणीम् ॥ १३७ ॥
ध्यानतो रूपतस्ता तु देव्या अग्रे प्रपूजयेत् ।
पुरी चन्द्रवतीं देव्या नीलपर्वतपूर्वत ॥ १३८ ॥
योजनद्वयविस्तीर्णामर्धयोजनमायताम्[32] ।
उच्चैरनेकप्रासाद - सौधसद्मविभूषिताम् ॥ १३९ ॥

---

३० धृतम् । ३१. कृपाणकम् । ३२. सार्धयोजनविस्तृताम् ।

मणिरत्नसुवर्णौघजातप्रासादविस्तृतम् ।
क्रीडासरोवरै सद्भि सञ्छन्ना विकचै कचै[33] ॥ १४० ॥
सयुता पूजयेत् तत्र देव्या अग्रे समन्त्रकम् ।
लौहित्य रक्तगौराङ्ग नीलवस्त्रविभूषितम् ॥ १४१ ॥
रत्नमालासमायुक्त चतुर्बाहुसमन्वितम् ।
पुस्तक श्वेतपद्म च बिभ्रत दक्षिणे करे ॥ १४२ ॥
वामे शक्तिध्वज चैव शिशुमारस्थित शुभम् ।
पीठेश्वरानिमान् मध्ये मन्त्रैरेतै प्रपूजयेत् ॥ १४३ ॥
नाथ कामेश्वर देव प्रासादे न प्रपूजयेत् ।
कामेश्वर्यास्तु मन्त्रेण यजेत् कामेश्वरी शुभाम् ॥ १४४ ॥
द्वावुपान्तौ बलेनैव मदनान्ते च तत्क्रमात् ।
योजयेन्नादबिन्दुभ्या मायाकरणमन्त्रकम्[34] ॥ १४५ ॥
चण्डिकानेत्रबीजस्य यच्छेषमक्षर तु तत् ।
कल्प तिन्तिडिकावृक्षमन्त्रमेतत् प्रकीर्तितम् ॥ १४६ ॥
उग्राया मध्यबीज तु नीलशैलस्य मन्त्रकम् ।
मनोभवस्य बीज तु महादेवेन सहितम् ॥ १४७ ॥
आदिस्थेनेन्दुना बिन्दुयुक्त वान्तेन योजितम् ।
मनोभवगुहाया तु मन्त्रमेतत् प्रकीर्तितम् ॥ १४८ ॥
वैष्णवीतन्त्रमन्त्रस्य यच्छेष बीजमस्वरम् ।
तदधो वान्तसश्लिष्ट चतुर्थस्वरसयुतम् ॥ १४९ ॥
चन्द्रबिन्दुसमायुक्त तन्मत्रञ्चापराजितम् ।
हयग्रीवस्वरूपस्य विष्णोर्यद्बीजमुत्तमम्[35] ॥ १५० ॥
कम्बलस्य तु तन्मन्त्र पूजने परिकीर्तितम् ।
केवल सप्ररोहादिषष्ठस्वरसमन्वित ॥ १५१ ॥
चन्द्रबिन्दुसमायुक्त हयग्रीवस्य बीजकम् ।
भैरव पाण्डुनाथ च वनमालिस्वरूपिणम् ॥ १५२ ॥
वाराहेण तु बीजेन पूजयेत् तु विधानत ।
सपरौ द्वावनुस्वारविसर्गाभ्या तु सयुतौ ॥ १५३ ॥
महाभैरवमन्त्रेण भैरवान्तेन पूजयेत् ।
महोत्साहा महामाया द्वितीयाष्टाक्षरेण तु ॥ १५४ ॥
देवीतन्त्रोदितेनैव पूजयेद् भूतिवृद्धये ।

३३ विकचपङ्कजै । ३४ समन्त्रकम् । ३५ बीजमुद्धृतम् ।

आद्याक्षर तु सामीन्दुबिन्दुभ्या समलङ्कृतम् ॥ १५५ ॥
स्वनाम्नश्चन्द्रवत्यास्तु पूजामन्त्र प्रकीर्तितम् ।
सर्वलक्षणसम्पूर्ण सर्वालङ्कारभूषितम् ॥ १५६ ॥
लौहित्यनदराजस्य ब्रह्मपुत्रस्य भूतिदम् ।
ब्रह्मबीज तु मन्मन्त्र वह्निभार्यान्तमिष्यते ॥ १५७ ॥
द्वितीय त्रिपुरारूप तथैव तु तृतीयकम् ।
आवाहनार्थ देव्यास्तु चिन्तयेद् योनिमुद्रया ॥ १५८ ॥
बन्धूकपुष्पसङ्काशा जटाजूटेन्दुमण्डिताम् ।
सर्वलक्षणसम्पूर्णा सर्वालङ्कारभूषिताम् ॥ १५९ ॥
उद्यद्रविप्रभा[२६] पद्मपर्यङ्केषु सुसस्थिताम् ।
मुक्तारत्नावलीयुक्ता पीनोन्नतपयोधराम् ॥ १६० ॥
वलीविभङ्गचतुरामासवामोदमोदिताम् ।
नेत्राह्लादकरी शुभ्रा क्षोभणी जगता तथा ॥ १६१ ॥
त्रिनेत्रा योनिमुद्रायामीषद्धाससमायुताम् ।
नवयौवनसम्पन्ना मृणालाभचतुर्भुजाम् ॥ १६२ ॥
वामार्धे पुस्तक धत्ते अक्षमाला तु दक्षिणे ।
वामेनाभयदा देवी दक्षिणार्धे वरप्रदाम् ॥ १६३ ॥
स्रवद्रक्तौघसूर्याभा शिरोमाला तु बिभ्रतीम् ।
आपादलम्बिनीं[२७] कल्पद्रुममासाद्य सस्थिताम् ॥ १६४ ॥
कदर्पोपवनान्तस्था कामाह्लादकरी शुभाम् ।
द्वितीया त्रिपुरा ध्यायेदेवरूपा मनोहराम् ॥ १६५ ॥
तृतीया त्रिपुरारूप शृणु वेतालभैरव ।
जवाकुसुमसङ्काशा मुक्तकेशी शुभाननाम् ॥ १६६ ॥
सदाशिव हसन्त तु प्रेतवद् विनिधाय वै ।
हृदये तस्य देवस्य ह्यर्द्धपद्मासनस्थिताम् ॥ १६७ ॥
रक्तोत्पलैर्मिश्रिता तु मुण्डमाला पदानुगाम् ।
ग्रीवाया धारयन्तीं तु पीनोन्नतपयोधराम् ॥ १६८ ॥
चतुर्भुजा तथा नग्ना दक्षिणार्धेऽक्षमालिनीम् ।
वरदा तदधो वामे जगन्माया तथाभयाम् ॥ १६९ ॥
अधस्तु पुस्तकं धत्ते त्रिनेत्रा हसिताननाम् ।
स्रवद्रुधिरभोगार्ता तथा सर्वाङ्गसुन्दरीम् ॥ १७० ॥

---

२६. अरुणवर्णां पद्मपर्यंकसस्थिताम् । २७ नखिनीं ।

एवंविधं तृतीयं तु रूपं ध्यायेत् तु पूजक: ।
आद्यं तु वाग्भवं रूपं द्वितीयं कामराजकम् ॥ १७१ ॥
डामरं मोहनं चापि तृतीयं परिकीर्तितम् ।
एकैकं तु त्रिरूपाणि प्राग्विचिन्त्यार्थसाधक: ॥ १७२ ॥
मन्त्रत्रयेण प्रत्येकं हृदि षोडशकैस्तथा ।
पूजयेदुपचारैस्तु बहिर्यद्वत्तथैव च ॥ १७३ ॥
मन्त्रत्रयं तथैकत्र कृत्वाचमनमूर्तय: ।
कर्तव्या एकतस्तत्र मध्यरूपे निवेशयेत् ॥ १७४ ॥
नासापुटेन नि:सार्य दक्षिणेनाथ तां पुन: ।
अवतार्य कराभ्यां तु देवीमावाहयेत् त्रिधा ॥ १७५ ॥
गायत्रीत्रयमुच्चार्य स्नापयेत् प्रथमं तु ताम् ।
आवाहने तु मन्त्रोऽयं पठितव्यश्च साधकै: ॥ १७६ ॥
एहि देवि शुभावर्ते यज्ञेऽस्मिन् मम सन्निधौ ।
अव्युच्छिन्ना तत: शुभ्रां वाचं कण्ठस्य देहि मे ॥ १७७ ॥
एह्येहि भगवत्यम्ब त्रिपुरे कामदायिनि ।
इमं भागबलिं गृह्य सान्निध्यमिह कल्पय ॥ १७८ ॥
नारायण्यै च विद्महे वाग्मयायै च धीमहि ।
एवमुक्त्वा तत: पश्चात् तन्नो देवी प्रचोदयात् ॥ १७९ ॥
नारायण्यै विद्महे त्वां चण्डिकायै च धीमहि ।
शेषभागे प्रयुञ्जीत तन्न: कुब्जि: प्रचोदयात् ॥ १८० ॥
महामायायै विद्महे त्वां सम्मोहिन्यै च धीमहि ।
पश्चादेवं प्रयुञ्जीत तन्नश्चण्डि: प्रचोदयात् ॥ १८१ ॥
एतास्तु त्रिपुरादेव्या गायत्र्य: परिकीर्तिता: ।
प्रत्येकं स्नापनं कुर्यात् त्रिपुराणां च तिसृभि: ॥ १८२ ॥
वाग्भवेन तु मन्त्रेण प्रथमं पूजयेच्छिवाम् ।
कामराजेन वै पश्चाड्डामरेणापि पूजयेत् ॥ १८३ ॥
पश्चादेनां त्रिभिर्मन्त्रैरेकत्रैव तु पूजयेत् ।
ततो[38] मन्त्रेण वै दद्यादुपचारांस्तु षोडश ॥ १८४ ॥
कामाख्यातन्त्रगदितान् सम्पूज्याङ्गाक्षरान् पुन: ।
अंगन्यासस्य यन्मन्त्रैर्देव्या अंगानि पूजयेत् ॥ १८५ ॥
शेषं तु मूलमन्त्रेण चाष्टांगानां प्रपूजनम् ।
एकैकं प्रक्रमं पूज्य त्रिपुरायै नमस्तत: ॥ १८६ ॥

३८ तेन ।

नवधा पूजयेद् देवी त्रिपुरा कामरूपिणीम् ।
उत्तरादिचतुष्पत्रे पद्मस्यैतान् प्रपूजयेत् ॥ १८७ ॥
ब्रह्माण माधव शम्भु भास्कर च तथैव च ।
ऐशान्यादिषु तेष्वेव क्रमाद् देव्या प्रपूजयेत् ॥ १८८ ॥
जयन्ती प्रथम पश्चाद् वायव्यामपराजिताम् ।
नैर्ऋत्या विजया चैव तथाग्नेय्या जयाह्वयाम् ॥ १८९ ॥
त्रिकोणे केशरस्यान्ते काम प्रीति रति तथा ।
पूजयेत् पञ्चबाणाश्च पुष्प चाप च पुस्तिकाम् ॥ १९० ॥
अक्षमाला पञ्चशरान् रत्नपर्यकमेव च ।
प्रेतपद्मशिव चैव सम्यक् तत्रैव पूजयेत् ॥ १९१ ॥
सम्पूज्य पूर्ववन्माला स्फाटिकामेव भैरव ।
आदायाथोत्तरीयेण तामाच्छाद्य प्रयत्नत ॥ १९२ ॥
पूर्वोद्धृत जपेत् सम्यक् साधकस्त्रिपुरामनुम् ।
जप्त्वा स्तुति पठित्वा च प्रणम्य च मुहुर्मुहु ॥ १९३ ॥
त्रिपुरायै बलि दद्यात् सम्भवात् तत् त्रिजातिकम् ।[३९]❀
सफेनैस्तोयसयुक्तै शर्करामधुसैन्धवै ॥ १९४ ॥
अभ्युद्य रुधिर दद्यात कामराजेन भैरव ।
छेदयेद् वाग्भवेनैव डामरैवितरेच्छिर ॥ १९५ ॥
यत्र यत्र बलि दद्यात् साधको देवतार्च्चने ।
वैष्णवीतन्त्रकल्पोक्तमादद्यात् पूजने बलिम् ॥ १९६ ॥
ततो देव्यै वलीन् दद्यादेतद्वर्णक्रमात् पुन ।
गोक्षीर ब्राह्मणो दद्याद् गव्यमाज्य तु राजज ॥ १९७ ॥
वैश्यस्तु माक्षिक दद्याच्छूद्र पुष्पासवादिक्रम् ।❀
घ्रात्वा पुष्पमथैशान्या निर्माल्य निक्षिपेद् बुध ॥ १९८ ॥
निर्माल्यधारिणी चास्या देवी त्रिपुरचण्डिका ।
विसृज्यादौ योनिमुद्रा पद्ममुद्रा तथैव च ॥ १९९ ॥
अर्धमुद्रा त्रिमुद्रां च प्रत्येकमपि दर्शयेत् ।
निर्माल्यमथ गृह्णीयात् कामराजाह्वयन तु ॥ २०० ॥
एव य पूजयेद् देवी त्रिपुरा कामरूपिणीम् ।
स कामानखिलान् प्राप्य देवीलोकमवाप्नुयात् ॥ २०१ ॥

इति श्रीकालिकापुराणे त्रिपुरापूजने त्रिषष्टितमोऽध्याय ॥ ६३ ॥

---

३९. शुभ्रपुष्पासवादिकान् । ❀ मुद्रितपुस्तकेऽधिक दृश्यते ।

चतुःषष्टितमोऽध्यायः

मार्कण्डेय उवाच

देव्या कामेश्वरी मूर्ति शृणु वक्ष्यामि भैरव ।
यस्याश्चिन्तनमात्रेण साधको लभते प्रियान् ॥ १ ॥
तन्त्र तस्या प्रथमतस्ततोऽनुध्यानगोचरम् ।
तत पूजाक्रम वक्ष्ये क्रमाद् वेतालभैरव ॥ २ ॥
प्रजापतिस्ततो वह्निरिन्द्रबीज तत परम् ।
चूडाचन्द्रार्धसहित चतुर्थस्वरसयुतम् ॥ ३ ॥
इद कामेश्वर बीजमन्त्र सर्वार्थसाधनम् ।
स्थानाभ्युक्षणयन्त्रादि पात्रन्यासादिक यथा ॥ ४ ॥
भूतापसारणादीश्च वैष्णवीतन्त्रभाषितान् ।
तथोक्तानुत्तरे तन्त्रे गृह्णीयात् साधकोत्तम[41] ॥ ५ ॥
प्राणायामत्रय कुर्याद् दहन प्लवन तथा ।
विशेषमण्डल चास्या शृणु वेतालभैरव ॥ ६ ॥
षट्कोण मण्डल कुर्याद्रक्तवर्ण तु चिन्तयेत् ।
विभेद्य शक्त्या शम्भु तु त्रिपुरातन्त्रवद् बुध ॥ ७ ॥
तत शक्ति शम्भुनापि भेदयेत् क्रमत सुधी ।
ऐशान्यादिनैर्ऋतान्ता रेखा कृत्वाथ दक्षिणे[42] ॥ ८ ॥
पश्चिमात् पूर्वगा रेखा पूर्वादपि तथोत्तराम् ।
उत्तरात् पश्चिमान्ता तु कृत्वा रेखास्तु योजयेत् ॥ ९ ॥
धनुस्तोरणसङ्काश द्वारे चोत्तरपश्चिमे ।
दक्षिण तु त्रिकोण स्यात् षट्कोण पूर्वमुच्यते ॥ १० ॥
जालन्धर लिखेत् पीठमुत्तरे पश्चिमे लिखेत् ।
ओड्रपीठ दक्षिणे तु कामरूप तु पूर्वत ॥ ११ ॥
देव्या द्वादशगुह्यानि यानि द्वादशभि करै ।
लिखेन्मण्डलकोणेषु तानि दिक्षु त्रय त्रयम् ॥ १२ ॥
षड्भि षड्भिस्तु रेखाभि कर्तव्यो मण्डलक्रम ।
अन्यदुत्तरतन्त्रोक्त वैष्णवीतन्त्रभाषितम् ॥ १३ ॥
मण्डलस्य क्रम सर्व विद्धि वेतालभैरव ।

---

४० ईश्वर । ४१ साधक स्वय । ४२ शुभा रेखा तु''

ॐ क्लीं मण्डलतत्त्वाय[४३] नम इत्यत्र मण्डलम् ॥ १४ ॥
पूजयेत् प्रथमं ध्यात्वा मण्डलं योगपीठकम् ।
पीठे शिलायां विलिखेन्मण्डलं योनिमण्डलम् ॥ १५ ॥
त्रिकोणं विलिखेत् पश्चाद् वेष्टयेत् कमलेन तु ।
रूपं तु चिन्तयेद् देव्याः कामेश्वर्या मनोहरम् ॥ १६ ॥
*प्रभिन्नाञ्जनसङ्काशां नीलस्निग्धशिरोरुहाम् ।
षड्वक्त्रां द्वादशभुजामष्टादशविलोचनाम् ॥ १७ ॥
प्रत्येकं षट्सु शीर्षेषु चन्द्रार्धकृतशेखराम् ।
मणिमाणिक्यमुक्तादिकृतमालामुरःस्थले ॥ १८ ॥
कण्ठे च बिभ्रतीं नित्यं सर्वालङ्कारमण्डिताम् ।
पुस्तकं सिद्धसूत्रं च पञ्चबाणं तु तं तथा ॥ १९ ॥
खड्गं शक्तिं च शूलं च बिभ्रतीं दक्षिणैः करैः ।
अक्षमालां महापद्मं कोदण्डं चाभयं तथा ॥ २० ॥
चर्म पश्चात् पिनाकं च बिभ्रतीं वामपाणिभिः ।
शुक्लं रक्तं च पीतं च हरितं कृष्णमेव च ॥ २१ ॥
विचित्रं क्रमतः शीर्षमैशान्यां पूर्वमेव च ।
दक्षिणं पश्चिमं चैव तथैवोत्तरशीर्षकम् ॥ २२ ॥
मध्यं चेति महाभाग क्रमाच्छीर्षाणि वर्णतः ।
शुक्लं माहेश्वरीवक्त्रं कामाख्यारक्तमुच्यते ॥ २३ ॥
त्रिपुरा पीतसङ्काशा शारदा हरिता तथा ।
कृष्णं कामेश्वरीवक्त्रं[४४] चण्डायाश्चित्रमिष्यते ॥ २४ ॥
धम्मिल्लसंयतकचं प्रतिशीर्षं प्रकीर्तितम् ।
सिंहोपरिसितप्रेतं तस्मिंल्लोहितपङ्कजम् ॥ २५ ॥
कामेश्वरीं स्थितां तत्र ईषत्प्रहसिताननाम् ।
विचित्रांशुकसंवीतां व्याघ्रचर्माम्बरां तथा ॥ २६ ॥
एवं कामेश्वरीं ध्यायेद् धर्मकामार्थसिद्धये ।
पीठेऽन्यत्राथवा देव्याः पूजायाः कथ्यते क्रमः ॥ २७ ॥
पीठे विशेषो वक्तव्यः सामान्ये त्वन्यदिष्यते ।
अङ्गुष्ठादिक्रमादेव संयोज्याथ युगं युगम् ॥ २८ ॥
मूलमन्त्रस्याक्षरेण दीर्घस्वरयुतेन च ।
षड्भिराद्यैर्न्यसेत् पूर्वमङ्गुलीयकमेव[४५] च ॥ २९ ॥

---

४३. मदन । * पाण्डुलिप्यां प्रथमान्त दृश्यते । यथा ' सङ्काशा ।
४४. माहेश्वरी''' । ४५ अंगुलीमन्त्रमेव च ।

हृच्छिर शीर्षवर्मनेत्रास्त्राणि पुनस्तथा।
न्यसेद् दक्षिणहस्तेन षड्भिर्मन्त्रैस्तथा क्रमात् ॥ ३० ॥
आस्य बाहुयुग कुक्षि गुह्य जानुयुग तथा।
पादयुग्म क्रमात् तैस्तु षड्भिर्मन्त्रैर्न्यसेत् तथा ॥ ३१ ॥
अष्टधा मूलमन्त्र तु जप्त्वाथार्घोहिते जले।
तेनोपकरण देय चाभ्युद्य क्रममारभेत् ॥ ३२ ॥
दैशिक पूजयेद् देवी पीठेनादैशिक क्वचित्।
तस्यैव हि करस्पर्शाद् देवी नोद्विजते शिवा ॥ ३३ ॥
यदि देशान्तराद् यात पीठ देशान्तर प्रति।
तद्दैशिकोपदेशेन तदा पूजा समारभेत् ॥ ३४ ॥
यद्यन्यत समायाता कामरूपादृते नर।
तद्देशजोपदेशेन सम्पूज्यफलमाप्नुयात् ॥ ३५ ॥
यस्मिन् देशे तु य पीठ ओड्रपाचालकादिषु।
तद्देशजोपदेशेन पूज्य पीठे सुरो नरै ॥ ३६ ॥
इतोऽन्यथा पूजने न सम्यक् फलमवाप्नुयात्।
महाविभवसम्पूर्णैर्विहितेनैव भैरव ॥ ३७ ॥
अनुक्तो य क्रमश्चात्र वैष्णवीतन्त्रगोचर।
तथैवोत्तरतन्त्रेऽपि प्रोक्तो ग्राह्यस्तु साधुकै ॥ ३८ ॥
पूर्वद्वारि प्रथमत कामतत्त्व प्रपूजयेत्।
दक्षिणे प्रीतितत्त्व तु रतितत्त्व च पश्चिमे ॥ ३९ ॥
उत्तरे मोहन तत्त्व क्रमादेतानि पूजयेत्।
ऐशान्या पूजयेद् देव गणेश द्वारपालकम् ॥ ४० ॥
अग्नौ तु चाग्निवेताल नैर्ऋत्या कालमेव च।
वायव्या नन्दिन[४८] चापि पूजयेत् क्रमतस्त्विमान् ॥ ४१ ॥
चतुष्क पञ्चक षट्क चतुष्क पञ्चक चतु।
षट्कार चैव यो वेद स योग्य पीठपूजने ॥ ४२ ॥
ओड्राख्य प्रथम पीठ द्वितीय जालशैलकम्।
तृतीय पूर्णपीठं तु कामरूप चतुर्थकम् ॥ ४३ ॥
ओड्रपीठं पश्चिमे तु तथैवोड्रेश्वरी शिवाम्।
कात्यायनी जगन्नाथमोड्रेश च प्रपूजयेत् ॥ ४४ ॥
उत्तरे पूजयेत् पीठ प्रशस्त जालशैलकम्।
जालेश्वर महादेव चण्डी जालेश्वरी तथा ॥ ४५ ॥

---

४८. दक्षिण।

दीर्घिका चोग्रचण्डा च तत्रैव परिपूजयेत् ।
दक्षिणे पूर्णशैल तु तथा पूर्णेश्वरी शिवाम् ॥ ४६ ॥
पूर्णनाथ महानाथ सरोजामथ चण्डिकाम् ।
पूजयद् दमनी[४७] देवी शान्तामपि तथा शिवाम्[४८] ॥ ४७ ॥
कामरूप महापीठ तथा कामेश्वरी शिवाम् ।
नील च पर्वतश्रेष्ठ नाथ कामेश्वर तथा ॥ ४८ ॥
पूजयेद् द्वारि पूर्व तु क्रमादेतास्तु भैरव ।
ओड्रादीना तु पीठाना क्षेत्रपालान् गुरूस्तथा ॥ ४९ ॥
अन्यास्तु द्वारपालादीन् स्वे स्वे स्थाने प्रपूजयेत् ।
विशेषात् कामरूपस्य कामेश्वरी प्रपूजयन् ॥ ५० ॥
तामेव नीलशैलस्था शृणु वेतालभैरव ।
नाथ कामेश्वरो देवो देवी कामेश्वरी तथा ॥ ५१ ॥
कराल क्षेत्रपालश्च चिञ्चावृक्षस्तथैव च ।
त्रिकूटे नीलशैलस्तु गुहा चापि मनोभवा ॥ ५२ ॥
वटुक कम्बलो नाम वह्नी चैवापराजिता ।
भैरव पाण्डुनाथश्च श्मशान हेरुकाह्वयम् ॥ ५३ ॥
योगिनी च महोत्साहा तथा चन्द्रवती पुरी ।
लौहित्यो नदराजश्च भ्रान्ता ढिक्करवासिनी ॥ ५४ ॥
जल्पीशाख्यस्तु वायव्या केदाराख्योऽथ राक्षसे ।
एतान् सम्पूजयेद् द्वारि[४९] तथा देव्यास्तु मण्डले ॥ ५५ ॥
द्वारपालो योगिनी च बटुकाद्या यथा तथा ।
कामरूपे पीठवरे ओड्रादिष्वथ तत् तथा ॥ ५६ ॥
मध्ये तु मण्डलस्याथ द्रावण शोषण तथा ।
बन्धन मोहन चैव तथैवाकर्षणाह्वयम् ॥ ५७ ॥
मनोभवस्य बाणास्तु पञ्चैतान् परिपूजयेत् ।
षट्कोणाग्रेषूत्तरादौ भगादिषट्कमेव च ॥ ५८ ॥
त्रिपुरातन्त्रमन्त्रोक्त पूजयेत् क्रमत सुधी ।
गणाक्रीडादिक तद्वत् तथा विद्याकलादिकान् ॥ ५९ ॥
बटुकान् सिद्धपुत्रादीन् सिद्धाद्याश्च कुमारिका ।
चतश्चतुष्कमित्येतच्चतुष्कमिति चोच्यते ॥ ६० ॥
काम रति च प्रीतिं च अनङ्गमेखलादिकम् ।

४७. दशमीं । ४८ तथाम्बिकाम् । ४९. पूर्वे ।

सप्त वै त्रिपुरन्नाद्या असिताङ्गादयो नव ॥ ६१ ॥
माहेश्वर्यादिका देव्यो दशभि पञ्चभिर्गणै ।
द्वितीय पञ्चक प्रोक्त पीठे कामफलप्रदम् ॥ ६२ ॥
आधारशक्तिमुख्या ये नित्य तत्र प्रतिष्ठिता ।
धर्माद्याश्च तथैवाष्टौ तथा सत्त्वादिका गुणा ॥ ६३ ॥
एकत्र ग्रहदिक्पालाश्चतुष्कमपर स्मृतम् ।
देव्यास्तथोग्रचण्डाद्या नायिका परिपूजयेत् ॥ ६४ ॥
पूर्वोक्तदेशे मन्त्रेण भक्त्या वेतालभैरव ।
आवाहन षोडशोपचाराणा प्रतिपादनम् ॥ ६५ ॥
जप च बलिदान च अङ्गास्त्राणा प्रपूजनम् ।
मुद्रा पूर्वा विसृष्टिश्च षट्कमेतत् प्रकीर्तितम् ॥ ६६ ॥
एतानि सप्त जानाति प्रकारान् पूजक सुधी ।
स एवोड्रादिपीठानि सम्पूजयितुमर्हति ॥ ६७ ॥
योऽज्ञात्वा सम्यगेतानि कुरुते पीठपूजनम् ।
न सम्यक् फलमाप्नोति हीनायुरपि जायते ॥ ६८ ॥
त्रिपुरातन्त्रमन्त्रोक्तस्थानेष्वेतेषु भैरव ।
पूजयित्वा प्रथमत पूजयेत् परमेश्वरीम् ॥ ६९ ॥
कामेश्वरि इहागच्छ सम्मुखीभव चेश्वरि ।
चिन्तयित्वाथ मनसाऽभ्यर्च्य कामेश्वरी हृदि ॥ ७० ॥
मानसैर्गन्धपुष्पाद्यैस्ततो दक्षिणनासया ।
नि सार्य वायु तत् पुष्पमारोप्य मण्डलान्तरे ॥ ७१ ॥
आवाहयेन्महादेवी सर्वकामेश्वरेश्वरीम् ।
कामेश्वरि इहागच्छ सम्मुखीभव सन्निधौ ॥ ७२ ॥
कामेश्वरि विद्महे त्वा कामाख्यायै च धीमहि ।
तन्न कुब्जि महामाये तत पश्चात् प्रचोदयात् ॥ ७३ ॥
एह्येहि भगवत्यम्ब लोकानुग्रहकारिणि ।
कामेशे कामरूपे त्व कामकान्ते प्रसीद मे ॥ ७४ ॥
ततस्तु प्रथम स्नान जल दत्त्वा तु पूजक ।
मूलमन्त्रेण वितरेदुपचारास्तु षोडश ॥ ७५ ॥
पूजयेन्मध्यभागे तु षडङ्गानि ततोऽर्चयेत् ।
अङ्गन्यासे तु ये मन्त्रा क्रमे पूर्व तु भाषिता ॥ ७६ ॥
तैरेव मन्त्रैरङ्गानि देव्या अपि च पूजयेत् ।
पूर्वाद्यष्टदलेष्वेता योगिनी परिपूजयेत् ॥ ७७ ॥

यथाक्रमेण कामाना सिद्ध्यर्थं कामदायिका' ।
गुप्तकामा तु श्रीकामा तथैव विन्ध्यवासिनीम् ॥ ७८ ॥
कोटेश्वरी वनस्था तु योगिनी पादचण्डिकाम् ।
दीर्घेश्वरी तु प्रकटा भुवनेशी क्रमाद् यजेत् ॥ ७६ ॥
वैष्णवीतन्त्रमन्त्रस्य यान्यष्टावक्षराणि तु ।
तानि बिन्द्विन्दुयुक्तानि मन्त्रन्यासाश्च चक्षते ॥ ८० ॥
मन्त्रेषु षण्णा कोणाना षडिमा परिपूजयेत् ।
ऐशान्यादिक्रमेणैव कामाख्या त्रिपुरा तथा ॥ ८१ ॥
शारदा च महोत्साहा प्रकटा भुवनेश्वराम् ।
सिद्धकामेश्वरी चापि देव्या रूपाणि भैरव ॥ ८२ ॥
अष्टपुष्पिकया देवी पुन सम्पूज्य चाष्टधा ।
जप्त्वा स्तुत्वा बलिं दत्त्वा नत्वा मुद्रा प्रदर्श्य च ॥ ८३ ॥
देव्यास्तु सिद्धचण्ड्या वै निर्माल्य प्रतिपाद्य च ।
विसृज्य मण्डलाद् देवी स्थापयेद् योनिमण्डले ॥ ८४ ॥
एतत् कामेश्वरीतन्त्र कथित युवयो सुतौ ।
शारदाया महातन्त्र समन्त्र शृणु भैरव ॥ ८५ ॥

इति श्रीकालिकापुराणे त्रिपुरापूजन नाम चतु षष्टितमोऽध्याय ॥ ६४ ॥

पञ्चषष्टितमोऽध्यायः

श्रीभगवानुवाच

शारत्काले पुरा यस्मान्नवम्या बोधिता सुरैः ।
शारदा सा समाख्याता पीठे लोके च मानवैः[50] ॥ १ ॥
तस्या तु नेत्रबीजाख्य मन्त्र प्राक् प्रतिपादितम् ।
दुर्गातन्त्र च तन्मन्त्रमङ्गमन्त्र पुरोदितम् ॥ २ ॥
ताभ्यामेव तु मन्त्राभ्या पूजयेत् ता जगन्मयीम् ।
तृतीय पीठमन्त्र तु शारदाया अनुत्तमम् ॥ ३ ॥
शृणुत चैकमनसा चतुर्वर्गप्रदायकम् ।
चतुर्थस्वरसयुक्तमुपान्तो वह्निना युत ॥ ४ ॥
कामराज तथा नान्तमुपान्तस्वरसयुतम् ।
वह्निना चापि सन्दीप्त सर्वबिन्द्विन्दुसयुत ॥ ५ ॥
हादि समाप्तिसहित एतद्बीज चतुर्थकम् ।
चतुर्भिरेभि कथितो मन्त्रोक्तैश्च षडक्षरैः ॥ ६ ॥
अय तृतीयो मन्त्रस्तु शारदाया प्रकीर्तित ।
अनेन पूजयेत् पीठे सर्वसिद्धिमवाप्नुयात् ॥ ७ ॥
रूपमस्या पुरा प्रोक्त सिहस्थ दशबाहुभि ।
तत्र पूजाक्रम सम्यक् शृणुत पुत्रकौ मम ॥ ८ ॥
चतुर्द्वारमण्डल[51] तु कुर्यात् तत्र विभूतये ।
महामायामण्डल तु शारदायास्तु मण्डलम् ॥ ९ ॥
वैष्णवीतन्त्रकल्पोक्तैर्मन्त्रस्थानादिमार्जनम् ।
कृत्वा तु नेत्रबीजेन मण्डल प्रस्तरे लिखेत् ॥ १० ॥
योनावष्टदल कृत्वा त्रिकोण मध्यतो न्यसेत् ।
अय विशेष. कथितो वैष्णवीमण्डलात् पुन ॥ ११ ॥
मण्डलोल्लेखन चैव तथा भूतापसारणम् ।
पात्रस्य प्रतिपत्तिस्तु अमृतीकरण तथा ॥ १२ ॥
गन्धपुष्पाम्भसा क्षेप आत्मासनप्रपूजनम् ।
प्राणायामश्च त्रिविधो भूतिशुद्धिप्रवेशनम् ॥ १३ ॥

---

५० नामत' ।   ५१ बहुद्वार ' ।

दहनप्लवने चैव पाणिकच्छपिका तथा।
योगपीठस्य च ध्यान वैष्णवीतन्त्रभाषितम् ॥ १४ ॥
तथैवोत्तरतन्त्रोक्त कुर्याद् देव्या प्रपूजनम्।
अमृतीकरण कुर्यात् सलिले धेनुमुद्रया ॥ १५ ॥
रूप त्वेव दशभुज पूर्वोक्त तु विचिन्तयेत्।
अङ्गन्यासकरन्यासौ दुर्गातन्त्रेण भैरव ॥ १६ ॥
नवाक्षरेण वै कुर्यादङ्गुष्ठादि क्रमेण तु।
हृदयादिक्रमात् पश्चाद् वक्त्रादावपि पूर्ववत् ॥ १७ ॥
एतदेवार्घपात्रे चाष्टधा मन्त्र जपेत् सुधी।
तत् तोयै सेचयेच्छीर्ष पुष्पगन्धादिक तथा ॥ १८ ॥
एव पूजाक्रम तत्र कुर्याद् देव्यास्तु मण्डले।
आदित्य चण्डिकारूप ध्यात्वा पूर्व शिलातले ॥ १९ ॥
तस्मै निवेदयेदर्घ्य सिद्धार्थाक्षतपुष्पकै।
आधारशक्तिप्रभृतीन् क्लीँ मन्त्रेण च साधक ॥ २० ॥
पूजयेत् प्रथम मध्ये धर्मादीनपि पूर्ववत्।
सत्त्वादीन् गुरुपादान्तान् पूर्वतन्त्रोदितान् बुधै ॥ २१ ॥
पूजयेन्मध्यपद्मे तु सुमेरुमपि मध्यत.।
पूर्वभागे मण्डलस्य देव्या शक्ती प्रपूजयेत् ॥ २२ ॥
नाथकामेश्वरादींस्तु लौहित्यान्तान् विशेषत।
सर्वान् वै पीठदेवास्तु मण्डलस्योत्तरे यजेत् ॥ २३ ॥
मणिकर्ण चित्ररथ भस्मकूट तथैव च।
श्वेत नील च चित्र च वाराह गन्धमादनम् ॥ २४ ॥
मणिकूट नन्दन च पश्चिमे पूजयेदिमान्।
जल्पीशमथ केदार देवी दिक्करवासिनीम् ॥ २५ ॥
धात्री स्वधा तथा स्वाहा मानस्तोकापराजिते।
दक्षिणे पूजयेदेताश्चतु पष्टि च योगिनी ॥ २६ ॥
ग्रहाश्च दशदिक्पालान् पूर्वाद्युक्तक्रमेण तु।
पूर्ववत् पूजयेद् धीमन् भैरव भैरवीमपि ॥ २७ ॥
तत कच्छपिका बद्ध्वा पुनरेव तु पूजक।
ध्यायेच्च पूर्ववद् देवी हृदिस्था मनसापि च ॥ २८ ॥
मानसैर्गन्धपुष्पाद्यै पूजयित्वा हृदि स्थिताम्।
नासापुटेन नि.सार्य दक्षिणेनाथ मण्डले ॥ २९ ॥

पुष्पमारोप्य[५२] कामाख्या शारदामाह्वयेन्मुहु ।
एह्येहि परमेशानि सान्निध्यमिह कल्पय ॥ ३० ॥
पूजाभाग गृहाणेम मख रक्ष नमोऽस्तु ते[५३] ।
दुर्गे दुर्गे इहागच्छ सर्वै परिकरै सह ॥ ३१ ॥
पूजाभाग ग्रहाणेम मख रक्ष नमोऽस्तु ते ।
नारायण्यै विद्महे त्वा चण्डिकायै तु धीमहि ॥ ३२ ॥
शेषभागे तु गायत्र्यास्तन्नश्चण्डि प्रचोदयात् ।
दत्त्वा स्नानमनेनैव दुर्गा तन्त्रेण वै पुन ॥ ३३ ॥
नेत्रबीजेन च तथा पीठमन्त्रेण चान्तरम् ।
चतुरक्षरेण शेषेण त्रिभिर्मन्त्रै प्रपूजयेत् ॥ ३४ ॥
चतुरक्षरमन्त्रेण पाद्यादीन्थ षोडश ।
वितरेदुपचारास्तु पूर्वोक्तांस्तास्तु भैरव ॥ ३५ ॥
दुर्गातन्त्रेण मन्त्रेण देव्यङ्गानि प्रपूजयेत् ।
दुर्गेत्यनेन हृदय पुनर्दुर्गेत्यनेन च ॥ ३६ ॥
शिखाकवचनेत्राश्च पादपादाश्च पञ्चभि ।
वादिपञ्चाक्षरै शेषै पूजयेत् क्रमत सुधी ॥ ३७ ॥
पूर्वाद्यष्टदलेष्वेता पूजयेन्नाधिकक्रमात् ।
जयन्ती पूर्वपत्रे तु आग्नेय्यादौ तु मङ्गलाम् ॥ ३८ ॥
काली च भद्रकाली च तथा चैव कपालिनीम् ।
दुर्गा शिवा क्षमा चैव क्रमादेव तु नामत ॥ ३८ ॥
केशवस्य तु मध्ये तु अष्टावेतास्तु नायिका ।
नेत्रबीजस्य मन्त्रेण बीजेन षट्सु[५४] नायिका. ॥ ४० ॥
अमीषा च तथैवासौ षड्भिरेतान्तराहितै ।
ह्रॉ ह्रॉ श्रीमित्युपान्ता तु प्रान्तामाद्यस्वरेण वै ॥ ४१ ॥
उग्रचण्डा प्रचण्डा च चण्डोग्रा चण्डनायिकाम् ।
चण्डा चण्डवती चैव चण्डरूपा च चण्डिकाम् ॥ ४२ ॥
त्रिकोणकेशरान्त तु काम प्रीति रति तथा ।
पञ्चबाणान् पुष्पधनु पूजयेत् काममन्त्रकै ॥ ४३ ॥
अष्टपुष्पिकया पश्चात् सम्पूज्य परमेश्वरीम् ।
देव्यास्तु करगृह्याणि शस्त्राण्यङ्गानि वाहनम् ॥ ४४ ॥
पञ्चानन केशर च देव्यग्रे तु प्रपूजयेत् ।
पीठदेवी शारदा तु कामाख्यामधिदेवताम् ॥ ४५ ॥

५२ पूजामारोप्य । ५३ सरहस्यत्र मण्डले । ५४. जटासु ।

त्रिपुराख्या महादेवीं पीठमत्यधिदेवताम् ।
कामेश्वरी महोत्साहा मध्य एव प्रपूजयेत् ॥ ४६ ॥
चतुरक्षरमन्त्रेण दद्यात् पुष्पाञ्जलित्रयम् ।
जप्त्वा स्तुत्वा बलि दत्त्वा नमस्कृत्यावगुण्ठ्य च ॥ ४७ ॥
योनिमुद्रा प्रदर्श्याथ निर्माल्य दिशि शूलिन[५५] ।
चण्डेश्वर्यै नम इति निक्षिप्य च विसर्जयेत् ॥ ४८ ॥
ततस्तु भास्करायार्घ्यं दद्याच्छिद्रावधारणम् ।
देवी च हृदये स्थाप्य स्थापयेद् योनिमण्डले ॥ ४९ ॥
एव देवी तु कामाख्या योनिमुद्रा[५६] जगन्मयीम् ।
शारदाख्या महादेवी योगेन विधिना यजेत् ॥ ५० ॥
सर्वकामान् सुसम्प्राप्य शिवलोकमवाप्नुयात् ।
यदि पीठ विनान्यत्र पूजयेत् कामरूपिणीम् ॥ ५१ ॥
नीलकूटे तदाप्येतत् सर्वमेव समाचरेत् ।
यदान्यत्र यजेद्•देवी जले वा स्थण्डिलेऽपि वा ॥ ५२ ॥
शिलादिषु[५७]च वह्नौ वा देवपीठे यथेच्छया ।
यजेद् वा न यजेद् वापि पीठेऽवश्य प्रपूजयेत् ॥ ५३ ॥
एव य पञ्चभिर्मन्त्रै पचमूर्तिधरा शिवाम् ।
एकैकेनाथ वा तस्य स्वय स्याद् वरदायिका[५८] ॥ ५४ ॥
विघ्ना न तस्य जायन्ते नाधयो व्याधयस्तथा ।
न तस्य सदृशोऽन्य स्याद् धनधान्यसमृद्धिभि ॥ ५५ ॥
गवा कोटिप्रदानात् तु यत्फल जायते नृणाम् ।
तत्फल समवाप्नोति कामाख्या पूजयन्नर ॥ ५६ ॥
दशपूर्वान् दशपरान् वंशानुद्धृत्य पापत ।
सकृत् सम्पूजनेनैव मम लोकमवाप्नुयात् ॥ ५७ ॥
द्वि सम्पूज्य महादेवीं कामाख्या योनिमण्डले ।
शत वशान् समुद्धृत्य देवीलोकमवाप्नुयात् ॥ ५८ ॥
यस्त्रिवारान् पूजयत् तु विधिनानेन मानव ।
नीलपर्वतमारुह्य कामाख्या योनिमण्डले ॥ ५९ ॥
स सहस्र तु वशानामुद्धृत्य पापकोषत ।
इहलोके सुखैश्वर्यचिरायुष्यमवाप्नुयात् ॥ ६० ॥

---

५५. निर्माल्यानि त्रिशूलिनः । ५६ योगनिद्रां ।
५७ शिलादिषु तदा देवीं पीठदेवान् । ५८ वरदाम्बिका ।

देहान्ते मद्गृह प्राप्य गणानामधिपो भवेत् ।
यस्या कस्यामथाष्टम्या नवम्या वापि साधक ॥ ६१ ॥
पञ्चरूपा तु कामाख्या पंचमन्त्रै सतन्त्रकै ।
पूजयेद् वरदा देवी मण्डलैश्च पृथक् पृथक् ॥ ६२ ॥
ध्यात्वा तु पचरूपाणि जप्त्वा मन्त्राश्च[59] पञ्च वै ।
कल्पकोटिसहस्राणि मम लोके च मानव ॥ ६३ ॥
स्थित्वा देवीप्रसादेन परे[60] निर्वाणमाप्नुयात् ।
इह लोके वाञ्छितार्थं सुख प्राप्य यशस्तथा ॥ ६४ ॥
रिपूञ्जित्वा स धर्मात्मा मातङ्गानिव केसरी ।
चिरायु पुत्रपौत्रैश्च विभवैश्च समन्वित ॥ ६५ ॥
क्रीडयित्वा ह्यमरवद् युवतीभिश्च सादरात् ।
यक्षरक्ष पिशाचाना नेता भवति नित्यश ।
सर्वान् कामानवाप्यैव द्विजराजसमो भवेत् ॥ ६६ ॥

इति श्रीकालिकापुराणे पञ्चषष्टितमोऽध्याय ॥ ६५ ॥

---

५९. मन्त्राणि । ६० दैवे ।

षट्षष्टितमोऽध्यायः

और्व्व उवाच

एतत्तन्त्र समस्त तु श्रुत्वा वेतालभैरवौ ।
पप्रच्छतुस्त्र्यम्बक च हर्षोत्फुल्लविलोचनौ ॥ १ ॥

वेतालभैरवावूचतुः

कामाख्याया श्रुत तन्त्र साङ्ग युष्मत्प्रसादत ।
नमस्कार तथा मुद्रा बलिदान तथैव च ॥ २ ॥
तथैव मातृकान्यास पूजाया चान्यत क्रमम् ।
एतत् सर्व समाचक्ष्व विस्तरेण जगत्प्रभो ।
शृण्वतो नहि नौ तृप्तिर्जायते मोदभूमिषु ॥ ३ ॥

श्रीभगवानुवाच

वक्ष्यामि यदह पृष्टो भवद्भ्या पुत्रकोत्तमौ ।
शृणुत नरशार्दूलावेकाग्रमनसाधुना ॥ ४ ॥
त्रिकोणमथ षट्कोणमर्धचन्द्र प्रदक्षिणम् ।
दण्डमष्टाङ्गमुग्र च सप्तधा नतिलक्षणम् ॥ ५ ॥
ऐशानी वाथ कौबेरी दिक् कामाख्याप्रपूजने ।
प्रशस्ता स्थण्डिलादौ च सर्वमूर्तेश्च सर्वत ॥ ६ ॥
त्रिकोणादिव्यवस्था तु यदि पूर्वमुखो यजेत् ।
पश्चिमाच्छाम्भवी गत्वा व्यवस्था निर्दिशेत् तदा ॥ ७ ॥
यदोत्तरामुख. कुर्यात् साधको देवपूजनम् ।
तदा याम्या तु वायव्या गत्वा कुर्यात् तु सस्थितिम् ॥ ८ ॥
दक्षिणाद् वायवी गत्वा दिश तस्माच्च शाम्भवीम् ।
ततोऽपि दक्षिणा गत्वा नमस्कारस्त्रिकोणवत् ॥ ९ ॥
त्रिकोणाख्यो नमस्कारस्त्रिपुराप्रीतिदायक. ।
दक्षिणाद् वायवी गत्वा वायव्याच्छाम्भवी तत. ॥ १० ॥*
ततोऽपि दक्षिणा गत्वा ता त्यक्त्वाग्नौ प्रविश्य च ।
अग्नितो राक्षसी गत्वा तत्पश्चादुत्तरां दिशम् ॥ ११ ॥*
उत्तराच्च तथाग्नेयीं भ्रमण द्वित्रिकोणवत् ।

---

* मुद्रितपुस्तकेऽधिक दृश्यते ।

षट्कोणोऽय नमस्कार प्रीतिद शिवदुर्गयो ॥ १२ ॥
दक्षिणाद् वायवी गत्वा तस्मादावृत्य दक्षिणम् ।
गत्वा योऽसौ नमस्कार सोऽर्धचन्द्र' प्रकीर्तित ॥ १३ ॥
सकृत् प्रदक्षिण कृत्वा वर्तुलाकृति साधक ।
नमस्कार कथ्यतेऽसौ प्रदक्षिण इति द्विजै ॥ १४ ॥
त्यक्त्वा स्वमासनस्थान पश्चाद् दुर्गानमस्कृति ।
प्रदक्षिण विना यातु निपत्य भुवि दण्डवत् ॥ १५ ॥
दण्ड इत्युच्यते देवै. सर्वदेवौघमोदद ।
पूर्ववद् दण्डवद् भूमौ निपत्य हृदयेन तु ॥ १६ ॥
चिबुकेन मुखेनाथ नासया हनुकेन च ।
[61]ब्रह्मरन्ध्रेण कर्णाभ्या यद्भूमिस्पर्शन कमात् ॥ १७ ॥
स चाष्टाङ्ग इति प्रोक्तो नमस्कारो मनीषिभि ।
प्रदक्षिणत्रय कृत्वा साधको वर्तुलाकृति· ॥ १८ ॥
ब्रह्मरन्ध्रेण सस्पर्शं क्षितेर्यस्मान्नमस्कृतौ ।
स उग्र इति देवौघैरुच्यते विष्णुतुष्टिद ॥ १९ ॥
नदाना सागरो यद्वद् द्विपदा ब्राह्मणो यथा ।
नदीना जाह्नवी यादृग् देवानामपि चक्रधृक् ॥ २० ॥
नमस्कारेषु सर्वेषु तथैवोग्र प्रशस्यते ।
त्रिकोणाद्यैर्नमस्कारै कृतैरेव तु भक्तित ॥ २१ ॥
चतुर्वर्ग लभेद् भक्तो नचिरादेव साधक ।
नमस्कारो महायज्ञ प्रीतिद सर्वत सदा ॥ २२ ॥
सर्वेषामेव देवानामन्येषामपि भैरव ।
योऽसावुग्रो नमस्कार· प्रीतिद सततो[62] हरे ॥ २३ ॥
महामायाप्रीतिकर स नमस्करणोत्तम ।
उक्तारतत्र नमस्कारा श्रृणुत परतो युवाम् ॥ २४ ॥
मुद्राणा परिसख्यान स्वरूपं च यथाक्रमम् ।
धेनुश्च सम्पुटश्चैव प्राञ्जलिर्बिल्वपद्मकौ ॥ २५ ॥
नाराचो मुण्डदण्डौ च योनिरर्घ तथैव च ।
[63]वन्दनी च महामुद्रा महायोनिस्तथैव च ॥ २६ ॥
भगश्च पुटकश्चैव निषङ्गोथाऽर्धचन्द्रक ।
अङ्गश्च द्विमुख चैव शङ्खमुद्रा च मुष्टिक ॥ २७ ॥

---

६१ अपि । ६२ सतत । ६३ नन्दनी च ।

वज्रं चैव तथा रन्ध्रं षड्योनिर्विमलं तथा ।
घटं शिखरिणीतुङ्गं पुण्ड्रोऽथ ह्यर्धपुण्ड्रकं ॥ २८ ॥
सम्मिलनी च कुण्डञ्च[६४] चक्रं शूलं तथैव च ।
सिंहवक्त्रं गोमुखं च प्रोन्नामोन्नमनं तथा ॥ २९ ॥
बिम्बं पाशुपतं शुद्धं त्यागोऽथोत्सारिणी तथा ।
प्रसारिणी चोग्रमुद्रा कुण्डलीव्यूहं एव च ॥ ३० ॥
त्रिमुखा चासिवल्ली च योगो भेदोऽथ मोहनम् ।
बाणो धनुश्च तूणीरं मुद्रा एताश्च सत्तमा ॥ ३१ ॥
अष्टोत्तरशतं मुद्रा ब्रह्मणा या प्रकीर्तिता ।
तासां तु पञ्चपञ्चाशदेता ग्राह्यास्तु पूजने ॥ ३२ ॥
शेषास्तु यास्त्रिपञ्चाशन्मुद्रास्ताः समयेषु च ।
द्रव्यानयनसंकेतनटनादिषु ताः स्मृता ॥ ३३ ॥
देवानां चिन्तने योगे ध्याने जप्ये विसर्जने ।
आधारतु पञ्चपञ्चाशन्मुद्रा भैरव कीर्तिता ॥ ३४ ॥
मुद्रां विना तु यज्जप्यं प्राणायामं सुरार्च्चनम् ।
योगो ध्यानासने चापि निष्फलानि च भैरव ॥ ३५ ॥
प्रत्येकं लक्षणं तेषां शृणुतं तनयौ युवाम् ।
दक्षिणामध्यमाग्रेण सव्यहस्तस्य तर्जनीम् ॥ ३६ ॥
योजयेत् सव्यमध्या तु तर्जन्या दक्षिणेन वै ।
तथा दक्षिणानामिकया वामहस्तकनिष्ठिकाम् ॥ ३७ ॥
अनामिका तु वामस्य दक्षिणस्य कनिष्ठया ।
योजयेद् भक्तिमान् सम्यग् दक्षिणावर्तनेन तु ॥ ३८ ॥
धेनुमुद्रा समाख्याता सर्वदेवस्य तुष्टिदा ।
संयोज्य द्वौ तलौ सर्वाण्यङ्गुल्यग्राणि हस्तयोः ॥ ३९ ॥
संयोज्य पार्श्वतोऽङ्गुष्ठौ सम्पुटं प्रोच्यते सुरैः ।
सर्वेषामथ देवानां सम्पुटः प्रीतिदायकः[६५] ॥ ४० ॥
ध्यानचिन्तनयोगादौ सम्पुटं शस्यते सदा ।
निकुब्जयुगलं पाण्योस्तं संयोज्यार्धं एव च ॥ ४१ ॥
मध्यशून्यं पुटाकारं प्राञ्जलिं परिकीर्तितं ।
अङ्गुष्ठमन्तरं कृत्वा पाण्योर्मुष्टिं विधाय च ॥ ४२ ॥
संयोज्य बिल्ववत्ते तु बिल्वमुद्रा प्रकीर्तिता ।
मणिबन्धादाकरभं संयोज्य करयोर्द्वयोः ॥ ४३ ॥

---

६४. धर्मार्थनीच कुण्ड च। ६५. प्रीतिद. सदा।

अङ्गुष्ठे चापि सयोज्य तथैव च कनिष्ठिके।
तिस्रस्तिस्रस्तयो पाण्योरङ्गुलीर्विरलास्तथा ॥ ४४ ॥
पद्ममुद्रा समाख्याता चतुर्वर्गफला नृणाम्।
अङ्गुष्ठाग्रेण तर्जन्या सयोज्याथोर्ध्वरेखया ॥ ४५ ॥
अन्याङ्गुलीस्तथानम्य नाराच स्यात् प्रसार्य ते।
मम चैव शिवायाश्च प्रीतिदेय प्रियङ्करी ॥ ४६ ॥
नाराचमुद्रा सतत प्रीत्यै वेतालभैरव।
अन्तराङ्गुष्ठमुष्टि च कृत्वा वामकरस्य तु ॥ ४७ ॥
मध्यमाया दक्षिणस्य तथानम्य प्रयत्नत।
मध्यमेनाथ तर्जन्या अङ्गुष्ठाग्र नियोज्य च ॥ ४८ ॥
दक्षिण योजयेत् पाणि वाममुष्टौ च साधक।
दर्शयेद् दक्षिणे भागे मुण्डमुद्रेयमिष्यते ॥ ४६ ॥
इय तु गणनाथस्य प्रीतिदा मुद्रिकोत्तमा।
सर्वेषामपि देवाना तुष्टिदा सर्वकर्मसु ॥ ५० ॥
अङ्गुष्ठमध्यमादीश्च सम्यगानम्य तर्जनीम्।
प्रसार्य दण्डमुद्रेति दक्षिणस्य करस्य च ॥ ५१ ॥
सर्वाङ्गुलीस्तु सयोज्य करयोरुभयोरपि।
सवेष्ट्य रज्जुवद् वेति पाण्योरपि कनिष्ठिके ॥ ५२ ॥
वामस्यानाममूले वै उदग्र विनियोजयेत्।
दक्षस्य मध्यमामूले तथाग्र वाममेव च ॥ ५३ ॥
योजयेद् योजनात् पश्चादावर्त्य करशाखिका।
योन्याकार तु तन्मध्य योनिमुद्रा प्रकीर्तिता ॥ ५४ ॥
कामाख्याया पञ्चमूर्तेर्दुर्गाया अपि भैरव।*
प्रीतिदा योनिमुद्रेय मम कामस्य च प्रिया ॥ ५५ ॥
ससक्ता अङ्गुली सर्वा प्रसार्याङ्गुष्ठपर्वणा।
अग्रेण च कनिष्ठाया अग्रेणापि च योजयेत् ॥ ५६ ॥
करस्य दक्षिणस्यैवमर्धयोनि प्रकीर्तिता।
महायोनिस्तु कथिता वैष्णवीतन्त्रणे वरे ॥ ५७ ॥
सम्पुट प्राञ्जलि वापि यदि शीर्षे प्रदर्शयेत्।
वन्दनीया समाख्याता मुद्रा विष्णुप्रमोदिनी ॥ ५८ ॥
सैव चेच्छ्रवणासक्ता[66] महामुद्रा प्रकीर्तिता।

* अधिक दृश्यते। ६६. शिखयासक्ता।

दक्षिणाग्रे तु सा सक्ता वैष्णवी परिकीर्तिता ।। ५९ ।।
महायोनिस्तु कथिता वैष्णवी तन्त्रगोचरे ।
द्वयोस्तु मूलेऽङ्गुष्ठाग्रमङ्गुली च कनिष्ठयो ।। ६० ।।
नियोज्य प्रसृतीकृत्य द्वौ पाणी योजयेत् पुन ।
भगमुद्रा समाख्याता लक्ष्मीवाणीशिवप्रिया ।। ६१ ।।
सर्वाङ्गुलीनामग्रौघ दक्षिणस्य करस्य च ।
सयोज्यैकत्र पुरतो निर्देश पुटक स्मृत ।। ६२ ।।
कनिष्ठानामिकाङ्गुष्ठाङ्गुलीना योजयेद् बुध ।
अग्राण्येकत्र मध्या तु तर्जनी च प्रसार्य वै ।। ६३ ।।
कुब्जीकृत्य करद्वन्द्व पृथगग्रे निदर्शयेत् ।
नि सङ्गनाममुद्रेयं नरसिंहवराहयो ।। ६४ ।।
कनिष्ठानामिकामध्यमाकुञ्चन् दक्षिणेन तु ।
करस्य तर्जन्यङ्गुष्ठे प्रसार्य क्रियते तु या ।। ६५ ।।
सा मुद्रा ह्यर्धचन्द्राख्या प्राणा प्रीतिदायिनी ।
ऊर्ध्वीकृत्य तथाङ्गुष्ठ करस्य दक्षिणस्य तु ।। ६६ ।।
कृत्वा मध्या तदङ्गुष्ठ वाममुष्टिं तथोर्ध्वत ।
ऊर्ध्वाङ्गुष्ठा तथा कुर्यादङ्गमुद्रा प्रकीर्तिता ।। ६७ ।।
एतस्या एव मुद्राया कनिष्ठादिवियोगत ।
अष्टौ मुद्रा समाख्याता नाम तासा पृथक् शृणु[६७] ।। ६८ ।।
द्विमुख चैव मुष्टि च वज्रमाबद्धमेव च ।
विमलश्च घटश्चैव तुङ्ग पुण्ड्रतथैव च ।। ६९ ।।
नवाना विष्णुमूर्तिना सार्धमङ्गेन मुद्रिका ।
क्रमान्नव समाख्याता नायिकाना, तथैव च ।। ७० ।।
सयोज्य करयो पृष्ठे तथावर्त्य तु वै समम् ।
प्रसार्य तर्जनीयुग्म सयुक्त सर्वत पुन ।। ७१ ।।
अङ्गुष्ठौ च तथासक्तौ शङ्खमुद्रा प्रकीर्तिता ।
उत्तानमञ्जलि कृत्वा अङ्गुष्ठे द्वे कनिष्ठयो ।। ७२ ।।
मूले निक्षिप्य तु करौ सयोज्याथ प्रदर्शयेत् ।
सा योनिरिति विख्याता मुद्रा देवौघतुष्टिदा ।। ७३ ।।
मुष्टिर्दक्षिणहस्तस्य यदोर्ध्वाङ्गुष्ठिका भवेत् ।
सा स्याच्छिखरिणीमुद्रा ब्राह्मीसूर्यप्रिया च सा ।। ७४ ।।
अनामिके कनिष्ठे च सयोज्य वायुना पुन ।
मध्यमा तर्जनीना तु धेनुमुद्रेव बन्धनम् ।। ७५ ।।

---

६७. पृथक् पृथक् ।

सार्धधेनुरिति ख्याता चन्द्रप्रीति विवर्धिनी ।
करयोरङ्गुलीना तु सर्वाग्राण्येकत स्थिता ॥ ७६ ॥
नियोज्य द्वे तले चैव तदधोऽपि नियोज्य च ।
अग्रैरग्रैर्योजयेत् तु मुद्रा सम्मीलनी तु सा ॥ ७७ ॥
भौमभूमिमुनीशानामिय प्रीतिविवर्धिनी ।
सर्वाङ्गुलीस्तु सयोज्य दक्षिणस्य करस्य च ॥ ७८ ॥
कियद्भाग तथानम्य तल कुर्यात् तु कुण्डवत् ।
समाख्याता कुण्डमुद्रा बुधवाणीशिवप्रिया ॥ ७९ ॥
सर्वाङ्गुलीना मध्य तु वामहस्तस्य चाङ्गुली ।
प्रसार्याङ्गुष्ठयुगल सयोज्याग्रेण भैरव ॥ ८० ॥
तदङ्गुष्ठद्वय कार्य सम्मुख वितरेत् तत ।
चक्रमुद्रा समाख्याता गुरुविष्णुशिवप्रिया ॥ ८१ ॥
अङ्गुष्ठ मध्यमा चैव नामयित्वा करस्य तु ।
दक्षिणस्य परास्तिस्रो योजयेदग्रत पुन ॥ ८२ ॥
शूलमुद्रा समाख्याता मम शुक्रग्रहप्रिया ।
निकुब्जीकृत्य तु करौ वामाङ्गुलिगणस्य तु ॥ ८३ ॥
अग्राणि योजयेन्मध्ये तलस्यासव्यहस्तत ।[६८]
अध कृत्वा वामहस्त मुद्रा सिहमुखी स्मृता ॥ ८४ ॥
इय प्रीत्यै तु दुर्गाया सूर्यपुत्रस्य चक्रिण ।
भगमुद्रा कर्णमूले गोमुखाख्या प्रकीर्तिता ॥ ८५ ॥
मम विष्णोस्तथा राहो सर्वदा प्रीतिदायिनी ।
मुष्टिद्वयमथोत्तान कृत्वा सयोज्य पार्श्वत ॥ ८६ ॥
दक्षिणस्य कनिष्ठादीन् प्रसार्य क्रमत पुन ।
तथा वामकनिष्ठाभ्यामेकैकेन प्रसारयेत् ॥ ८७ ॥
अष्टौ मुद्रा समाख्याता नामत क्रमत शृणु ।❀
प्रोल्लासोन्नमन चैव बिम्ब पाशुपत तथा ॥ ८८ ॥
शुद्ध त्याग सारणी च तथा चैव प्रसारणी ।
आकुञ्चकरशाखास्तु दक्षिणा सा तु मुद्रिका ॥ ८९ ॥
उग्रमुद्रा समाख्याता रवहस्तस्य विपर्ययात् ।❀
इन्द्रादिलोकपालाना दशमुद्रा प्रकीर्तिता ॥ ९० ॥
सर्वेषामेव देवाना परमप्रीतिवर्धना ।[६९]

---

६८ तलस्य सव्यहस्तत । ❀ अधिक लभ्यते ।
६९ तथा तुष्टिकर महत् ।

अङ्गुष्ठाग्रं तु तर्जन्या अग्रे भागेन योजयेत् ॥ ९१ ॥
आकुञ्चमध्यमाद्यास्तु दक्षहस्तस्य चाङ्गुली. ।
दर्शयेत् कुण्डलाकारं कुण्डलीशक्तितुष्टिदम् ॥ ९२ ॥
सर्वेषामपि देवानां यथा तुष्टिकरं महत् ।
अङ्गुष्ठतर्जनीमध्या अग्रभागे नियोज्य च ॥ ९३ ॥
मध्यमा च कनिष्ठा च आकुञ्च्य दक्षिणे करे ।
त्रिमुखाख्या समाख्याता विश्वदेवप्रिया सदा ॥ ९४ ॥
केतो प्रियेय सततं मातृणामपि तुष्टिदा ।
तर्जन्यङ्गुष्ठयोरग्रभागौ संयोज्य चाङ्गुली ॥ ९५ ॥
अन्या आकुञ्चयेत् तिस्र साऽसिवल्ली प्रकीर्तिता ।
पितृणामथ साध्यानां रुद्राणां विश्वकर्मण ॥ ९६ ॥
सर्वदा प्रीतिजननी साऽसिवल्ली प्रकीर्तिता ।
पादौ तलाभ्यां संयोज्य तदङ्गुष्ठद्वयं यत ॥ ९७ ॥
ऊर्ध्वं संयोजयेन्नाभौ तस्योपरि तथाञ्जलिं ।
योगमुद्रा समाख्याता योगिनां तत्त्वदायिनी ॥ ९८ ॥
सर्वेषामपि देवानां पूजने चिन्तने तथा ।
योगमुद्रा समाख्याता तुष्टिप्रीतिकरी सदा ॥ ९९ ॥
प्राञ्जलिर्नाम मुद्रा तु ऊर्ध्वाधो भावयोजिता ।
विभिद्य दर्शयेद्धस्तौ ऊर्ध्वाधः प्रसृतीकृतौ ॥ १०० ॥
भेदमुद्रा समाख्याता मम विष्णोर्विधे प्रिया ।
अङ्गुष्ठे द्वे तु निक्षिप्य करयोरुभयोरपि ॥ १०१ ॥
अग्रेण योजयेत् पश्चात् कनिष्ठायुगलं तत ।[70]
उभयोर्हस्तयोश्चान्यास्तर्जन्याद्याश्च योजयेत् ॥ १०२ ॥
अग्राग्रैस्तु पृथक्कृत्य दर्शयेत् तु कनिष्ठिकाम् ।
मुद्रा सम्मोहनं नाम कामदुर्गारमाप्रिया[71] ॥ १०३ ॥
सर्वेषामिह देवानां मोहनं प्रीतिदं स्मृतम् ।
आनम्यासव्यहस्तस्य मध्यमानामिके तथा ॥ १०४ ॥
तयो पृष्ठे सुसंयोज्य अङ्गुष्ठाग्रं ततः परम् ।
कनिष्ठां तर्जनीं चैव अग्रेणायोजयेत् तत ॥ १०५ ॥
बाणमुद्रा समाख्याता सर्वदेवस्य तुष्टिदा ।
सर्वाङ्गुलीस्तु सङ्कोच्य अङ्गुष्ठमथ तर्जनीम् ॥ १०६ ॥

---

७०. तर्जन्याद्याश्च योजयेत् । ७१. शिवदुर्गाविष्णुगा ।

प्रसार्य करयो पश्चादङ्गुष्ठाग्र तु योजयेत् ।
अगुष्ठाग्रेण तर्जन्या अग्रेणापि च तर्जनीम् ॥ १०७ ॥
यथाशक्ति प्रसार्यापि धेनुमुद्रा प्रकीर्तिता ।
सर्वाङ्गुलीनामग्राणि ब्राह्मे तीर्थे, नियोजयेत् ॥ १०८ ॥
अनामिकाया पृष्ठे तु अङ्गुष्ठाग्र नियोज्य च ।
शून्य तूणीरवत् कृत्वा तेषामन्तस्तु भैरव ॥ १०९ ॥
तूणीरमुद्रा चाख्याता सर्वेषा प्रीतिवर्धिनी ।
मुद्रासु सस्थिता पूजा सर्वेषु परिचिन्तनम् ॥ ११० ॥
मुद्रासु सस्थिता योगा मुद्रा मोदकरास्तत ।
यदा यदा पूजनेषु चिन्तने ध्यानकर्मणि ॥ १११ ॥
यज्ञादौ स्तवने वापि हस्तकृत्य न विद्यते ।
तदा मुद्रान्वित कुर्यादिष्टापूर्ते करद्वयम् ॥ ११२ ॥
यज्ञकृत्येषु चेच्छक्तो हस्तो मुद्रासु च क्षम ।
तदा मुद्रा विधायैव तत्तत् कृत्य समाचरेत् ॥ ११३ ॥
मुद्राविमुक्तहस्त तु क्रियते कर्म दैविकम् ।
कृत्वा तन्निष्फल यस्मात् तस्मान्मुद्रान्वितो भवेत् ॥ ११४ ॥
विसर्जने तु देवाना यस्य या परिकीर्तिता ।
मुद्रा तां पूजनादौ तु तस्य चैव प्रयोजयेत् ॥ ११५ ॥
विसृज्योक्तामृते मुद्रा मुद्रायुक्त समाचरेत् ।
पूजनादि समस्त तु कर्मवृद्धौ विचक्षण ॥ ११६ ॥
अतो मुद्रा पर नाम मुद्रा पुण्यप्रदायिनी ।
देवाना मोददा मुद्रा तस्मात् ता यत्नतश्चरेत् ॥ ११७ ॥
अर्धयोनिर्महायोनिर्योनिर्ब्राह्मी च वैष्णवी ।
मुद्रा विसर्जने प्रोक्ता शिवात्रिपुरयो सदा ॥ ११८ ॥
दुर्गाया सर्वरूपेषु मुद्रा एता प्रकीर्तिता ।
योनि च सम्पुट चैव महायोनि तथैव च ॥ ११९ ॥
वर्जयित्वा व्यस्तभावादुक्तादन्यत्र योजयेत् ।
भवेद् यास्तु त्रिपञ्चाशदन्या मुद्रा समन्तत. ॥ १२० ॥
ता व्यस्तभावाद्[72] वामा स्युर्मुद्रा मोदकरा परा ।
एव वा कथिता मुद्रा पूजने पूज्यतुष्टिदा ।
क्रमस्तु बलिदानस्य शृणु वेतालभैरव ॥ १२१ ॥

इति श्रीकालिकापुराणे मुद्राकथने षट्षष्टितमोऽध्याय ॥ ६६ ॥

---

७२. भाव्यस्तु .. ।

सप्तषष्टितमोऽध्यायः

श्रीभगवानुवाच

क्रमस्तु बलिदानस्य स्वरूप रुधिरादित[73] ।
यथा स्यात् प्रीतये सम्यक् तद् वा वक्ष्यामि पुत्रकौ ॥ १ ॥
वैष्णवीतन्त्रकल्पोक्त क्रम सर्वत्र सर्वदा ।
साधकैर्बलिदानस्य ग्राह्य सर्वसुरस्य च ॥ २ ॥
पक्षिण कच्छपा ग्राहा मत्स्या नवविधा मृगा ।
महिषो गोधिका गावश्छागो रुरुश्च[74] शूकर ॥ ३ ॥
खड्गश्च कृष्णसारश्च गोधिका शरभो हरि ।
शार्दूलश्च नरश्चैव स्वमात्ररुधिर तथा ॥ ४ ॥
चण्डिकाभैरवादीना बलय परिकीर्तिता ।
बलिभि साध्यते मुक्तिर्बलिभि साध्यते दिवम् ॥ ५ ॥
बलिदानेन सतत जयेच्छत्रून्नृपान् नृप ।
मत्स्याना कच्छपाना तु रुधिरै. सतत शिवा ॥ ६ ॥
मासैक तृप्तिमाप्नोति ग्राहैर्मासास्तु त्रीनथ ।
मृगाणा शोणितैर्देवी नराणामपि शोणितै[75] ॥ ७ ॥
अष्टौ मासानवाप्नोति तृप्ति कल्याणदा च सा ।
गोधिकाना गोरुधिरैर्वार्षिकी तृप्तिमाप्नुयात् ॥ ८ ॥
कृष्णसारस्य रुधिरै शूकरस्य च शोणितै. ।
प्राप्नोति सतत देवी तृप्ति द्वादशवार्षिकीम् ॥ ९ ॥
अजाविकाना रुधिरै पञ्चविंशतिवार्षिकीम् ।
महिषाणा च खड्गाना रुधिरै' शतवार्षिकीम् ॥ १० ॥
तृप्तिमाप्नोति परमा शार्दूलरुधिरैस्तथा ।
सिंहस्य शरभस्याथ स्वगात्रस्य च शोणितै ॥ ११ ॥
देवी तृप्तिमवाप्नोति सहस्र परिवत्सरान् ।
मासैरपि तथा प्रीति रुधिरैर्यस्य यावती ॥ १२ ॥
कृष्णसार मृग खड्ग तथा मत्स्य च रोहितम् ।
वार्ध्रीणसयुग चापि फल तेषा पृथक् पृथक् ॥ १३ ॥

---

७३. स्वरूपरुधिरादिभिः । ७४ बभ्रुश्च । ७५. विस्तृतै ।

कृष्णसारस्य मासेन तथा खड्गेन चण्डिका ।
वर्षाणा च शतान्येव तृप्तिमाप्नोति केवलम् ।। १४ ।।
रोहितस्य तु मत्स्यस्य मासैर्वार्ध्रीणसस्य च ।
तृप्ति प्राप्नोति वर्षाणा शतानि त्रीणि मत्प्रिया ।। १५ ।।
तृप्नुवन्त्विन्द्रियक्षीण श्वेत वृद्धमजापतिम् ।
वार्ध्रीणस प्रोच्यतेऽसौ हव्ये कव्ये च सत्कृत ।। १६ ।।
नीलग्रीवो रक्तशीर्ष कृष्णपाद सितच्छद ।
वार्ध्रीणस स्यात्पक्षी च मम[७६] विष्णोरपि प्रिय ।। १६ ।।
नरेण बलिना देवी सहस्र परिवत्सरान् ।
विधिदत्तेन चाप्नोति तृप्ति लक्ष त्रिभिर्नरै ।। १८ ।।
नारेणेवाथ मासेन त्रिसहस्र च वत्सरान् ।
तृप्तिमाप्नोति कामाख्या भैरवी मम रूपधृक् ।। १९ ।।
मन्त्रपूत शोणित तु पीयूष जायते सदा ।
मस्तक चापि तस्यात्ति मास चापि तथा शिवा[७७] ।। २० ।।
तस्मात् तु पूजने दद्याद् बले शीर्ष च लोहितम् ।
भोज्ये होमे च[७८] मासानि नियुञ्जीयाद्[७९] विचक्षण ।। २१ ।।
पूजासु नाममासानि दद्याद् वै साधक क्वचित् ।
ऋते तु लोहित शीर्षममृत तत्तु जायते ।। २२ ।।
कूष्माण्डमिक्षुदण्ड च मद्यमासवमेव च ।
एते बलिसमा प्रोक्तास्तृप्तौ छागसमा सदा ।। २३ ।।
चन्द्रहासेन कर्त्र्या वा छेदन मुख्यमिष्यते ।
दात्रासिधेनुक्रकचशकुलाभिस्तु मध्यमम्[८०] ।। २४ ।।
क्षुरक्षुरप्रभल्लैश्च वाधम परिकीर्तितम् ।
एभ्योऽन्यै शक्तिबाणाद्यैर्बलिश्छेद्य कदापि न ।। २५ ।।
नात्ति देवी बलि तत्तु दाता मृत्युमवाप्नुयात् ।
हस्तेन छेदयेद् यस्तु प्रोक्षित साधक पशुम्[८१] ।। २६ ।।
पक्षिण वा ब्रह्मवध्यामवाप्नोति सुदु सहाम्[८२] ।
नामन्त्र्य खण्डं तु बलि नियुञ्जीत विचक्षणः ।। २७ ।।
खड्गस्यामन्त्रणे मन्त्रा यावन्त कथिता पुरा ।
महामायाबलौ ते वै योज्यास्तत्रोदिता बुधै ।। २८ ।।

---

७६ पक्षीश्च स च । ७७. तुष्टिद यत । ७८ विलोमे ।
७९ विषञ्जीयाद् । ८०. खड्गनाभिसुमध्यमम् ।
८१. पशुपक्षिणम् । ८२ ब्रह्मवध्यामवाप्नोति प्राप्नोति च दुरुद्धराम् ।

तै सार्धमेते मन्त्रास्तु योज्या खड्गादिमन्त्रणे ।
पूजने शारदादीना कामाख्याया विशेषत ॥ २६ ॥
द्वि कालीति ततो देव्या वज्रेश्वरिपद तत ।
ततोऽनु लौहदण्डायै नम शेषे तु योजयेत् ॥ ३० ॥
सम्पूज्यानेन मन्त्रेण खड्गमादाय पाणिना ।
कालराज्यास्तु मन्त्रेण त खड्गमभिमन्त्रयेत् ॥ ३१ ॥
नेत्रबीजस्य मध्य[83] तु द्विरावर्त्य प्रयोजयेत् ।
ततोऽनु कालिकालीति करालोष्ठी तत परम्[84] ॥ ३२ ॥
हान्तादीश्च तृतीयेन स्वरेणैकादशेन वै[85] ।
योजिता नादबिन्दुभ्या द्वौ तत् पश्चान्नियोजयेत् ॥ ३३ ॥
फेत्कारिणिपद तस्मात् खादयच्छेदयेत्यत ।
सर्वान् दुष्टानिति ततो द्विर्मारय लुलायकम् ॥ ३४ ॥
खड्गेन छिन्धि छिन्धीति तत किलकिलेति वै ।
तत चिर्किचिकीत्येव तत पिबपिबेति च ॥ ३५ ॥
ततोऽनु रुधिर चेति स्फे स्फेकिरि किरीति च ।
कालिकायै नम इति कालराज्यास्तु मन्त्रकम् ॥ ३६ ॥
इत्यनेन तु मन्त्रेण करवालेऽभिमन्त्रिते ।
कालरात्री स्वय तत्र प्रसीदत्यरिहानये ॥ ३७ ॥
बले पूर्वोदिता मन्त्रा नित्य गुह्यास्तु[86] साधकै ।
अय मन्त्रस्तु वक्तव्यस्तस्य हत्याविहानये[87] ॥ ३८ ॥
यज्ञार्थे पशव सृष्टा स्वयमेव स्वयम्भुवा ।
अतस्त्वा घातयिष्यामि[88] तस्माद् यज्ञे वधोऽवध ॥ ३६ ॥
ततो दैवतमुद्दिश्य काममुद्दिश्य चात्मन. ।
छेदयेत् तेन खड्गेन[89] बलिं पूर्वानन तु तम् ॥ ४० ॥
अथवोत्तरवक्त्र स्वय पूर्वमुखस्तथा ।
पूर्वोक्तान् सैन्धवादींस्तु[90] वक्त्रेऽवश्य नियोजयेत् ॥ ४१ ॥
सौवर्ण राजत ताम्र रैत्य[91] पत्रपुट च वा ।
माहेयं कास्यमथवा यज्ञकाष्ठमय च वा ॥ ४२ ॥
पात्र रुधिरदानाय कर्त्तव्य विभवावधि ।

---

८३ मन्त्रं । ८४. विकटदंष्ट्रोन्नत पदम् । ८५ वा ।
८६ साध्या । ८७ हृद् योऽरिहानये । ८८ घातयाम्यद्य ।
८९. मन्त्रेण । ९० स्वेसुरादींस्तु । ९१. ऐन्द्र ।

न लौहे वल्कले वापि वैत्रे राङ्केऽथ सैसके ॥ ४३ ॥
दद्याद्रक्त बलीना तु भूमौ स्रुचि स्रुवे तथा[९२] ।
न घटे भूतले वापि देय क्षुद्रे न भाजने[९३] ॥ ४४ ॥
रुधिराणि प्रदद्यात्तु भूतिकामो नरोत्तम ।
नरस्य तु सदा रक्त माहेय तैजसेऽथ वा ॥ ४५ ॥
दद्यान्नरपतिस्तत्तु न पत्रादौ कदाचन ।
हयमेधमृते दद्यान्न कदाचिद्धय बलिम् ॥ ४६ ॥
तथा दिक्पालमेधे तु गज दद्यान्नराधिप ।
न कदाचित् तदा देव्यै प्रदद्याद्धयहस्तिनौ ॥ ४७ ॥
हयाकर्षे चामर तु बलि दद्यान्नराधिप ।
सिह व्याघ्र नरं चापि स्वगात्ररुधिर तथा ॥ ४८ ॥
न दद्यात् ब्राह्मणो मद्य महादेव्यै कदाचन ।
सिह व्याघ्रन्नर दत्वा ब्राह्मणो नरक व्रजेत् ॥ ४९ ॥
इहापि स्यात् स हीनायु सुखसौभाग्यवर्जित ।
स्वगात्ररुधिर दद्याच्चात्मवध्यामवाप्नुयात् ॥ ४० ॥
मद्य दत्त्वा ब्राह्मणस्तु ब्राह्मण्यादेव हीयते ।
न कृष्णासार वितरेद् बलि तु क्षत्रियादिक ॥ ५१ ॥
ददत कृष्णसार तु ब्रह्महत्या भवेद् यत ।
यत्र सिंहस्य व्याघ्रस्य नरस्य विहितो वध ॥ ५० ॥
ब्रह्मणोक्ता तु बल्यादौ तत्राय विहित क्रम ।
कृत्वा घृतमय व्याघ्र नर सिह च भैरव ॥ ५३ ॥
अथवा पूपविकृत यवक्षोदमय च वा ।
घातयेच्चन्द्रहासेन तेन मन्त्रेण सस्कृतम् ॥ ५४ ॥
प्रभूतबलिदाने तु द्वौ वा त्रीन् वाग्रत कृतान् ।
पूजयेत् प्रमुखान् कृत्वा सर्वान् मन्त्रेण साधक ॥ ५५ ॥
सामान्यपूजा कथिता बलीना पूर्वतो मया ।
विशेषो यत्र यत्रास्ति तन्मत्त शृणु भैरव ॥ ५६ ॥
महिष प्रददेद् देव्यै भैरव्यै भैरवाय वा ।
अनेनैव तु मन्त्रेण तदा त पूजयेद् बलिम् ॥ ५७ ॥
यथा वाह भवान् द्वेष्टि यथा वहसि चण्डिकाम् ।
तथा मम रिपून् हिस शुभ वह लुलायक ॥ ५८ ॥

---

९२ यवा । ९३ स पद्योउ, खण्डेनापि न चापि पानभाजन ।

भवेद् गणानामधिपो मयापि बहुसत्कृतः।
इतोऽन्यथा पापयुक्त मलमूत्रवसायुतम् ॥ ९० ॥
तं बलिं न हि गृह्णाति कामाख्यान्यापि नामतः।
अन्येषा महिषादीना बलीनामथ पूजनात् ॥ ९१ ॥
कायो मेध्यत्वमायाति रक्त गृह्णाति वै शिवा।
अन्येभ्योऽपि च देवेभ्यो यदा यत्तु प्रदीयते ॥ ९२ ॥
तदर्चितं प्रदद्यात् तु पूजिताय सुराय वै।
काणं पङ्गुं चातिवृद्धं रोगिणं च गलद्व्रणम् ॥ ९३ ॥
क्लीबं हीनाङ्गमथवा वृद्धलिङ्गं कुलक्षणम्।
श्वित्रिण चातिह्रस्व च महापातकिन तथा ॥ ९४ ॥
अद्वादशकवर्षीयं शिशुसूतकसंयुतम्।
ऊर्ध्वं संवत्सराच्चापि महागुरुनिपातिनम् ॥ ९५ ॥
बलिकर्मणि चैतास्तु वर्जयेत् पूजितानपि।
पशूना पक्षिणा वापि नराणा च विशेषतः ॥ ९६ ॥
स्त्रियं न दद्यात् तु बलीन् दत्त्वा नरकमाप्नुयात्।
सङ्घातबलिदानेषु योषितं पशुपक्षिणः ॥ ९७ ॥
बलिं दद्यान्मानुषी तु त्यक्त्वा सङ्घातपूजितम्।
न त्रिमासीयकान्यूनं पशुं दद्याच्छिवाबलिम् ॥ ९८ ॥
न च त्रैपक्षिकान्यूनं प्रदद्याद् वै पतत्त्रिणम्।
काणव्यङ्गादिदुष्टं तु न पशुं पक्षिणं तथा ॥ ९९ ॥
देव्यै दद्यात् तथा मर्त्यं तथैव पशुपक्षिणौ।
छिन्नलाङ्गूलकर्णादीन् भग्नदन्तांस्तथैव च ॥ १०० ॥
भग्नशृङ्गादिकं वापि न दद्यात् तु कदाचन।
न ब्राह्मणं बलिं दद्याच्चाण्डालमपि पार्थिव ॥ १०१ ॥
नोत्सृष्टं द्विजदेवेभ्यो भूपतेस्तनय तथा।
रणेन विजितं दद्यात्तनयं रिपुभूभृतः ॥ १०२ ॥
स्वपुत्रं भ्रातरं वापि पितरं चाविरोधिनम्।
विट्पतिं च न दद्यात्तु भागिनेयं च मातुलम् ॥ १०३ ॥
अनुक्तान्नापि दद्यात् तु तथाज्ञातान् मृगद्विजान्।
उक्तालाभे प्रदद्यात्तु गर्दभं चोष्ट्रमेव च ॥ १०४ ॥
लाभेऽन्येषां न वितरेद् व्याघ्रमुष्ट्रं खरं तथा।
सम्पूज्य विधिवन्मर्त्यं पशुं पक्षिणमेव वा ॥ १०५ ॥

सञ्छिन्नं[99]चापि मन्त्रेण मन्त्रेणैव निवेदयेत्।
नारं मर्त्यशिरोरक्त देव्याः सम्यग् निवेदयेत्॥ १०६ ॥
छागं तु वामतो दद्यान्माहिषं वितरेत् पुरः।
पक्षिणं वामतो दद्यादग्रतो देहशोणितम् ॥ १०७ ॥
क्रव्यादाना पशूना तु पक्षिणा तु शिरोऽसृजम्।
वामे निवेदयेत् पार्श्वे जलजाना च सर्वशः ॥ १०८ ॥
कृष्णसारस्य कूर्मस्य खड्गस्य शशकस्य च।
ग्राहाणामथ मत्स्यानामग्र एव निवेदयेत्॥ १०९ ॥
सिंहस्य दक्षिणे दद्यात् खड्गिनोऽपि च दक्षिणे।
पृष्ठदेशे न दद्यात् तु शिरो वा रुधिर वलेः॥ ११० ॥
नैवेद्यं दक्षिणे वामे पुरतो न तु पृष्ठतः।
दीपं दक्षिणतो दद्यात् पुरतो वा न वामतः॥ १११ ॥
वामतस्तु तथा धूपमग्रे वा न तु दक्षिणे।
निवेदयेत् पुरोभागे गन्धं पुष्पं च भूषणम्[100] ॥ ११२ ॥
मण्डले चेन्मध्यभागे वामदक्षादिपूर्ववत्।
मदिरा पृष्ठतो दद्यादन्यत् पानं तु वामतः॥ ११३ ॥
अवश्य विहितं यत्र मद्यं तत्र द्विजः पुनः।
नारिकेलजलं कास्ये ताम्रे वा विसृजेन्मधु॥ ११४ ॥
नापद्यपि द्विजो मद्यं कदाचिद् विसृजेदपि।
ऋते पुष्पासवादुक्ताद् गृञ्जनाद् वा विशेषतः॥ ११५ ॥
राजपुत्रस्तथामात्यः सचिवः सौप्तिकादयः।*
दद्युर्नरबलिं भूप सम्पत्त्या विभवाय च॥ ११६ ॥
नृपाननुमते मर्त्यं दत्त्वा पापमवाप्नुयात्।
उपप्लवे रणे वापि यथेच्छं वितरेन्नरः॥ ११७ ॥
यः कश्चिद्राजपुरुषो नान्यस्त्वपि कदाचन।
वलिदानदिनात् पूर्वं दिवसे तु बलि नरम्॥ ११८ ॥
मानस्तोकेति मन्त्रेण देवीसूक्तेन येन च।
गन्धद्वारेत्यनेनापि खड्गशीर्षे निधाय च॥ ११९ ॥
तस्मिन् खड्गे सुगन्धादि दत्त्वा तेनाधिवासयेत्।
गन्धादिक तु खड्गस्थं[1] गले तस्य प्रदापयेत्[2] ॥ १२० ॥

---

९९. संछिन्न । १००. धूपश्च । * गौप्तिकादय. ।
१. खड्ग तं । २ प्रपातयेत् ।

अम्बेऽम्बिकेति मन्त्रेण रौद्रेण भैरवस्य च।
एवं तु संस्कृते मर्त्यं देवी रक्षति त बलिम्॥ १२१॥
न तस्य व्याधयश्चापि क्षुण्णतारजसी न च।
न सूतकं दूषयेत्तजज्ञात्युत्पत्तिमृतादिकम्॥ १२२॥
छिन्न नरस्य शीर्षं तु पतित यत्र यत्र च।
यच्छुभं चाशुभं वापि पश्वादीना च तच्छृणु॥ १२३॥
छिन्नं शिरस्तथैशान्या नारं दिश्यथ राक्षसे।
पतितं राज्यहानि च विनाश च विनिर्दिशेत्॥ १२४॥
पूर्वाग्नियाम्यवारुण्य-वायव्यादिगतं क्रमात्।
श्रिय पुष्टि भयं लाभं पुत्रलाभ धन तथा॥ १२५॥
क्रमाद् विनिर्दिशेन्नारं छिन्नशीर्ष तु भैरव।
उत्तरादिक्रमादेव महिषस्यापि मस्तक॰ ॥ १२६॥
पतितो वायुकाष्ठान्ते सूचयेद् यच्छृणुष्व तत्।
भाग्यहानिन्तथैश्वर्यं वित्त रिपुजय भयम्॥ १२७॥
राज्यलाभं श्रियं चापि क्रमाद् विद्धि तु भैरव।
पशूना चैव सर्वेषा छागादीनामशेषतः॥ १२८॥
एव फल क्रमाद् विद्यादृते जलभवाण्डजौ।
जलजाना पक्षिणा तु याम्यनैर्ऋत्ययोर्भयम्॥ १२९॥
अन्यत्र तु श्रियं दद्यात् पतितं शातितं शिरः।
यः स्यात् कटकटाशब्दो दन्ताना छिन्नमस्तके॥ १३०॥
नराणा पशुपक्ष्यादिग्राहादीना च रोगदः।
लोतकं चक्षुषोर्जातं यदि स्रवति मस्तके॥ १३१॥
छिन्ने नरस्य राज्यस्य तदा हानिं विनिर्दिशेत्।
महिषे मस्तके नेत्राद् यदि स्रवति लोतकम्॥ १३२॥
छिन्ने निवेदितं वैरिभूपमृत्युं तदादिशेत्।
अन्येषामथ पश्वादिबलीना शिरसोऽर्दितात्॥ १३३॥
निर्गतं लोतकं धत्ते परां भीतिं गदं तथा।
हसतिच्छिन्नशीर्षं चेन्नारं स्यात् तु रिपुक्षयः॥ १३४॥
श्रीवृद्धिरायुषो वृद्धिः सदा दातुरसंशयः।
यद् यद्वाक्यं निगदति तथा भवति चाचिरात्॥ १३५॥
हूङ्काराद्राज्यहानिः स्याच्छ्लेष्मस्रावाच्च पञ्चता।
देवानां यदि नामानि भाषते छिन्नमस्तकः॥ १३६॥

विभूतिमतुला विद्यात् षण्मासाभ्यन्तरे तदा ।
रुधिरादानकाले तु शकृन्मूत्रे यदि स्रवेत् ॥ १३७ ॥
कार्यं तदाधश्चोर्ध्वं वा दातुः स्यान्मरणं तदा ।
आक्षेपाद् वामपादस्य महारोगः प्रजायते ॥ १३८ ॥
अन्यदाक्षेपचलनैः कल्याणमुपजायते ।
माहिषस्य तु रक्तस्य मानुषस्य तु साधकः ॥ १३९ ॥
अङ्गुष्ठानामिकाभ्या तु किंचिदुद्धृत्य भूतले ।
महाकौशिकमन्त्रेण निक्षिपेद् बलिमुत्तमम् ॥ १४० ॥
देवेभ्यः पूतनादिभ्यो नैर्ऋत्या दिशि पूर्वतः ।
महिषः[१] पञ्चवर्षीयः[४] पञ्चविंशतिवार्षिकः[५] ॥ १४१ ॥
बलिर्देयो नरो देव्यै तस्य रक्तं तु भूतये ।
नेत्रबीजत्रय कामबीजं हन्ता प्रजापतिः ॥ १४२ ॥
वह्निबीजं षट्स्वराभ्यां सपृक्तश्च तथा परः ।
स एवैतास्तथैतावदादिवर्गान्तसंयुतः ॥ १४३ ॥
षष्ठस्वरशिखाबिन्दुश्चन्द्रयुक्तस्तथापरः ।
द्विर्मासिकाबीजकान्तः कौशिकीत्यभिमन्त्रणम् ॥ १४४ ॥
एष बलिः स्वाहेति मन्त्रोऽयं कौशिकी स्मृतः ।
नृपो वैरिबलिं दद्यात् खड्गमामन्त्र्य पूर्वतः ॥ १४५ ॥
महिष चाथ छागं वा वैरिनाम्नाभिमन्त्र्य च ।
सूत्रेण वदने[७] बद्ध[८] त्रिधा तस्य तु मन्त्रकैः ॥ १४६ ॥
छित्त्वा तस्योत्तमाङ्गं तु देव्यै दद्यात् प्रयत्नतः ।
यदा यदा रिपोर्वृद्धिर्बलिदानं तदा परम् ॥ १४७ ॥
दद्यात् तदा शिरश्छित्त्वा रिपोस्तस्य क्षयाय च ।
प्राणप्रतिष्ठा च रिपोः कुर्यात् तस्मिन् पशावथ ॥ १४८ ॥
तस्मिन् क्षीणे रिपोः प्राणाः क्षीयन्ते विपदा युताः ।
आदौ विरुद्धरूपिणि चण्डिके च ततः परम् ॥ १४९ ॥
वैरिणन्त्वमुकं चेति याहीत्याम्रेडितं[९] पुनः ।
वह्निभार्या ततः पश्चात् खड्गमन्त्रं प्रकीर्तितम् ॥ १५० ॥

१ महिषं । ४. वर्षि । ५. वार्षिकम् । ६ द्विर्मासिक ।
७. वदन । ८. बद्ध्वा । ९ याहि त्वमिति तं ।

स्वयं स वैरी यो द्वेष्टि तमिमं पशुरूपिणम् ।
विनाशय महामारी स्फे स्फे खादय खादय ॥ १५१ ॥
इत्यनेन तु मन्त्रेण वलेः शिरसि पुष्पकम् ।
दद्यात् ततस्तद्रुधिरं द्व्यक्षराभ्या[10] निवेदयेत् ॥ १५२ ॥
महानवम्या शरदि यद्येवं दीयते वलिः ।
तदा तदष्टाङ्गभवैर्मांसैर्होम समाचरेत् ॥ १५३ ॥
दुर्गातन्त्रेण मन्त्रेण प्रणीते दहने शुचौ ।
एवं दत्त्वा वलि मर्त्यो रिपुक्षयमवाप्नुयात् ॥ १५४ ॥
नाभेरधस्ताद्रुधिरं पृष्ठभागस्य च श्रिये ।
स्वगात्ररुधिर दद्यान्न कदाचन साधकः ॥ १५५ ॥
नोष्ठस्य चिबुकस्यापि नेन्द्रियाणा च मानवः ।
कण्ठाधो नाभितश्चोर्ध्वं बाह्वोः पाणिमृते तथा ॥ १५६ ॥
प्रदद्याद्रुधिरं घातं नातिकुर्याच्च साधकः ।
गण्डयोश्च ललाटस्य भ्रुवोर्मध्यस्य शोणितम् ॥ १५७ ॥
कर्णाग्रस्य च बाह्वोश्च गलयो[11]रुदरस्य च ।
कण्ठाधो नाभितश्चोर्ध्व हृद्भागस्य यतस्ततः ॥ १५८ ॥
पार्श्वयोश्चापि रुधिर दुर्गायै विनिवेदयेत् ।
न गुल्फतोऽसृक्प्रदद्यान्न जत्रोर्नापि वक्त्रतः ॥ १५९ ॥
न च रोगबिलादङ्गान्नान्यघाताच्च भैरव ।
तदर्थे च कृताघातः सश्रद्धोऽक्षुब्धमानसः ॥ १६० ॥
श्रुते[12]रक्त प्रदद्यात्तु पद्मपुष्पस्य पत्रके ।
सौवर्णे [13]राजते कास्ये लौहे फाले च वा नरः ॥ १६१ ॥
निधाय देव्यै दद्यात् तु तद्रक्तं मन्त्रपूर्वकम् ।
खननं क्षुरिकाखड्गशङ्कुलादि यदस्त्रकम् ॥ १६२ ॥
घातेन बृहदस्त्रस्य महाफलमवाप्नुयात् ।
पद्मपुष्पस्य पत्रं तु यावद् गृह्णाति शोणितम् ॥ १६३ ॥
तत्प्रमाणे चतुर्भागाधिक रक्त तु साधकः ।
न कदाचित् प्रदद्यात्तु नाङ्गच्छेदमथाचरेत् ॥ १६४ ॥
यः स्वहृदयसञ्जातमासं माषप्रमाणतः ।
तिलमुद्गप्रमाणाद् वा देव्यै दद्यात् तु भक्तितः ॥ १६५ ॥

---

१० अक्षराभ्या । ११ स्तनयो. । १२. पूर्वं ।
१३. राजते पात्रे कांस्ये काले च ।

षण्मासाभ्यन्तरे तस्मात् काममिष्टमवाप्नुयात् ।
बाह्वोस्तु स्कन्धयोर्वापि यो दद्याद् दीपवर्तिकाम् ॥ १६६ ॥
हृदये वा स्नेहपात्रं विना भक्त्या तु साधकः ।
क्षणमात्रेण तद्दीपप्रदानस्य फलं शृणु ॥ १६७ ॥
भुक्त्वा च विपुलान् भोगान् देवीगेहे यदृच्छया ।
कल्पत्रय तु सस्थाय सार्वभौमो नृपो भवेत् ॥ १६८ ॥
महिषस्य शिरश्छिन्नं सप्रदीप शिवापुरः ।
हस्ताभ्यां यः समादाय अहोरात्रं तु तिष्ठति ॥ १६९ ॥
स चिरायुः पूतमूर्तिरिह भुक्त्वा मनोरमान् ।
भोगान्ते मद्गृहगो गणानामधिपो भवेत् ॥ १७० ॥
नरस्य शीर्षमादाय साधको दक्षिणे करे ।
वामेन रौधिरं पात्रं गृहीत्वा निशि जाग्रतः ॥ १७१ ॥
यावद्रात्र स्थितो मर्त्यो राजा भवति चेह वै ।
मृते मम गृहं प्राप्य गणानामधिपो भवेत् ॥ १७२ ॥
क्षणमात्र वलीना यः शिरोरक्तं करद्वये ।
गृहीत्वा चिन्तयेद् देवीं पुरस्तिष्ठति मानवः ॥ १७३ ॥
स कामानिह सम्प्राप्य देवीलोके महीयते ।
महामाये जगन्नाथे सर्वकामप्रदायिनि ॥ १७४ ॥
ददामि देहरुधिरं प्रसीद वरदा भव ।
इत्युक्त्वा मूलमन्त्रेण नतिपूर्वं विचक्षणः ॥ १७५ ॥
स्वगात्ररुधिरं दद्याद् मानवः सिद्धसन्निभः[१४] ।
येनात्ममांसं सत्येन ददामीश्वरि भूतये[१५] ॥ १७६ ॥
निर्वाणं तेन सत्येन देहि हूं हूं नमो नमः ।
इत्यनेन तु मन्त्रेण स्वमास वितरेद् बुधः ॥ १७७ ॥
सौभाग्यं सुखसम्पन्नं प्रदीपं परमं रुचिः ।
दीपयेन्मासमिह त दीपं ह्रौ ह्रौं नमो नमः ॥ १७८ ॥
इत्यनेन तु मन्त्रेण दीपं दद्याद् विचक्षणः ।
महानवम्यां शरदि रात्रौ स्कन्दविशाखयोः ॥ १७९ ॥
यवचूर्णमयं कृत्वा रिपुं मृन्मयमेव वा ।
शिरश्छित्त्वा वलिं दद्यात् कृत्वा तस्य तु मन्त्रतः ॥ १८० ॥

---

१४ सम्भवः । १५. भूपते ।

अनेनैव तु मन्त्रेण खड्गमामन्त्र्य यत्नतः।
रक्तं किलिकिली घोर घोराधारविहिंसकः॥ १८१ ॥
ब्रह्मशिष्याम्बिकाशिष्यममुकं चारिसत्तमम्।
[16]मान्तो विसर्गसहितः स च बिन्दुयुतोऽपरः॥ ८२॥
शिरश्छित्त्वा वलि दद्यात् कृत्वा तस्य तु मन्त्रतः।
अनेनैव तु मन्त्रेण बिन्दुना च समन्वितः॥ १८३ ॥
ब्रह्माग्निर्योगचन्द्रेण बिन्दुना च समन्वितः।
फडन्तो वलिषु प्रोक्तः खड्गस्कन्दविशाखयोः॥ १८४ ॥
रक्तद्रव्यैः शोचयित्वा कृत्रिमं तं वलि रिपुम्।
कुचन्दनस्य तिलकं ललाटे विनिवेश्य च॥ १८५ ॥
रक्तमाल्याम्बर कृत्वा रक्तवस्त्रधरं तथा।
कण्ठे बद्ध्वा रक्तसूत्रैर्नाभौ शल्यं च कृत्रिमम्॥ १८६ ॥
दत्त्वोत्तरशिरःस्कन्धं कृत्वा खड्गेन छेदयेत्।
शिरस्तस्य ततो दद्यात् स्कन्दमन्त्रेण मन्त्रितम्॥ १८७ ॥
चतुर्दशस्वराग्निभ्या सम्पृक्तः स्यात् पुरःसरम्[17]।
परतः परतः पूर्वं चन्द्रबिन्दुसमन्वितम्॥ १८८ ॥
स्कन्दस्य मूलमन्त्रोऽयं तेन तस्मै बलिं सृजेत्।
चतुर्दशस्वराग्निभ्यां तृतीयं तु च पूर्ववत्॥ १८९ ॥
प्रोक्तो विशाखमन्त्रोऽयं तेन तस्मै बलिं सृजेत्।
कुटिलाक्षौ कृष्णपिङ्गवर्णौ रक्ताङ्गधारिणौ॥ १९० ॥
त्रिशूलं करवालं च पाणिभ्या दक्षिणे तथा।
बिभ्रतौ नृकपालं च कर्त्रिका चाति वामतः॥ १९१ ॥
त्रिनेत्रौ नरमुण्डानां मालामुरसि बिभ्रतौ।
विकटौ दशनैर्भीमैर्गणेशौ द्वारपालकौ॥ १९२ ॥
ध्यानेन चिन्तयेद् देव्याः पुरतः संस्थितौ सदा।
चैत्रे मास्यसिते पक्षे चतुर्दश्या विशेषतः॥ १९३ ॥
वलिभिर्महिषैश्छागैः मा च भैरवरूपिणम्।
तोषयेन्मधुमिर्मांसैस्तेन तुष्याम्यहं सुतौ॥ १९४ ॥
चण्डिका वलिदाने तु वलिशीर्षं जलेन च।
अभिषिच्य तु मन्त्रेण मूलेनैव निवेदयेत्[18]॥ १९५ ॥

---

१६. सान्तो। १७. पूर्ववत्। १८. विदर्भयेत्।

ईषत्प्राणं तु बहुधा चलितं पूर्वमर्चितम् ।
वीक्षेत् कायसमृद्धिं तु सिद्धभावं च साधकः ॥ १९६ ॥

सितप्रेतो रथस्तेषा[19] योगपीठस्य सन्निभः ।
ध्यायाम्यस्मिन् महामाये सिद्धिं बोधयते नमः ॥ १९७ ॥

अनेनामन्त्रितं शीर्षं न चिराद् यदि वेपते ।
तत्कार्यस्य तदा सिद्धिरसिद्धिस्तु विपर्ययात् ॥ १९८ ॥

एवं ददद् वलिं वीरो यथोक्तविधिनाऽमुना ।
वलिदानादेव चतुर्वर्गमाप्नोत्यसंशयम्[20] ॥ १९९ ॥

एवं वलिप्रदानस्य क्रमो रूपं तथैव च ।
कथितो रुधिराध्याय उपचारान् शृणुष्व मे ॥ २०० ॥

इति श्रीकालिकापुराणे वलिदानविवरणं नाम
सप्तषष्टितमोऽध्याय ॥ ६७ ॥

---

१९. रथस्थैर्यं ।   ०. आप्नुयान्न मशय. ।

अष्टषष्टितमोऽध्यायः

श्रीभगवानुवाच

उपचारान् प्रवक्ष्यामि शृणु षोडश भैरव।
यैः सम्यक् तुष्यते देवी देवोऽप्यन्यो हि भक्तितः ॥ १ ॥
आसनं प्रथमं दद्यात् पौष्पं दारवमेव वा।
वास्त्रं वा चार्मणं कौशं मण्डलस्योत्तरे सृजेत् ॥ २ ॥
यदैव दीयते पद्मे मण्डलस्य तदुत्सृजेत्[21]।
वाक्पुष्पतोयैः कुसुमं विना यच्छादक[22] भवेत् ॥ ३ ॥
पद्मस्य तद्बहिर्देशे द्वारादौ विनिवेदयेत्।
अर्घ्यं पाद्यं चाचमनं स्नानीयं नेत्ररञ्जनम् ॥ ४ ॥
मधुपर्कं च गन्धं च पुष्पं पद्मे निवेदयेत्।
प्रतिमासु च यद्योग्यं गात्रे दातुं च तत् तनौ ॥ ५ ॥
दद्याद् योग्यं तु पुरतो नैवेद्यं भोजनादिकम्।
पौष्पासवं यद् विहितं यस्य तद् यदि गर्भकम् ॥ ६ ॥
निवेदयेत् तदा पद्मे विपुलं द्वारि चोत्सृजेत्।
पौष्पं पुष्पौघरचितं कुशसूत्रादिसंयुतम् ॥ ७ ॥
अतिप्रीतिकरं देव्या ममाप्यन्यस्य भैरव।
यज्ञकाष्ठसमुद्भूतमासनं मसृणं शुभम् ॥ ८ ॥
नोच्छ्रायं नातिविस्तीर्णमासनं विनियोजयेत्।
अन्यद् दारुभवं चापि दद्यादासनमुत्तमम् ॥ ९ ॥
सकण्टकं क्षीरयुतं दारुसारविवर्जितम्।
चैत्यश्मशानसम्भूतं वर्जयित्वा विभीतकम् ॥ १० ॥
वल्कलं कोषजं शाणं वस्त्रमेतत् त्रयं मतम्।
रोमजं कम्बलं [23]चैतदनेन तु चतुष्टयम् ॥ ११ ॥
अनेन रचितं दद्यादासनं चेष्टभूतये।
सिंहव्याघ्रतरक्षूणां छागस्य महिषस्य वा ॥ १२ ॥
गजानां तुरगाणां च कृष्णसारस्य चर्मणः।
सृमरस्याथ रामस्य मृगाणां नवभेदिनाम् ॥ १३ ॥

---

२१. मण्डलस्योत्तरे। २२. चाच्छादकं। २३. स्वैर्वा क्रमेण।

चर्मभिः सर्वदेवानामासनं प्रीतिदं श्रुतम्।
वस्त्रेषु कम्बलं शस्तमासन देवतुष्टये ॥ १४ ॥
राङ्कवं चार्मणं श्रेष्ठ दारवं चन्दनोद्भवम्।
यच्चासनं कुशमयं तदासनमनुत्तमम् ॥ १५ ॥
सर्वेषामपि देवानामृषीणा च यतात्मनाम्।
योगपीठस्य सदृशमासनं स्थानमुच्यते ॥ १६ ॥
आसनस्य प्रदानेन सौभाग्यं मुक्तिमाप्नुयात्।
शम्बरो रोहितो रामो न्यङ्कुरङ्कुशशा रुरुः ॥ १७ ॥
एणश्च हरिणश्चेति मृगा नवविधा मताः।
हरिणश्चापि विज्ञेयो पञ्चभेदोऽत्र भैरव ॥ १८ ॥
ऋष्यः खड्गो रुरुश्चैव पृषतश्च मृगस्तथा।
एते वलिप्रदानेषु चर्मदानेषु कीर्तिताः ॥ १९ ॥
सर्वेषा तैजसाना च आसनं श्रेष्ठमुच्यते।
आयसं वर्जयित्वा तु कास्यं सीसकमेव वा ॥ २० ॥
शिलामय मणिमयं तथा रत्नमय मतम्।
आसनं देवताभ्यस्तु भुक्त्यै मुक्त्यै समुत्सृजेत् ॥ २१ ॥
अत्रैव साधकाना च आसनं शृणु भैरव।
यत्रासीनः पूजयस्तु सर्वसिद्धिमवाप्नुयात् ॥ २२ ॥
ऐन्धनं चार्मणं वास्त्रं तैजसं च चतुष्टयम्।
आसनं साधकाना च सततं परिकीर्तितम् ॥ २३ ॥
[24]तत् सर्वमासनं शस्तं पूजाकर्मणि साधके।
न यथेष्टासनो भूयात् पूजाकर्मणि साधकः ॥ २४ ॥
काष्ठादिकासन कुर्यात् सितमेव सदा बुधः।
चतुर्विंशत्यङ्गुलेन दीर्घं काष्ठासन मतम् ॥ २५ ॥
षोडशाङ्गुलविस्तीर्णमुच्छ्रायं चतुरङ्गुलम्।
षडङ्गुल वा कुर्यात् तु नोच्छ्रितञ्चात आचरेत् ॥ २६ ॥
पूर्वोक्तं वर्जयेद् वर्ज्यमासनं पूजनेष्वपि।
वस्त्रं द्विहस्तान्नो दीर्घं सार्धहस्तान्न विस्तृतम् ॥ २७ ॥
न [25]त्र्यङ्गुलात् तथोच्छ्रायं पूजाकर्मणि सश्रयेत्।
यथेष्टं चार्मणं कुर्यात् पूर्वोक्त सिद्धिदायकम् ॥ २८ ॥

---

२४ पूर्वोक्त यद् देवेभ्य आसनं परिकीर्त्तितम्— इत्यधिकः पाण्डुलिप्याम्।
२५. द्व्यङ्गुलात्।

षडङ्गुलाधिकं कुर्यान्नोच्छ्रितं च कदाचन।
काम्बलं चार्मणं शैलं महामायाप्रपूजने ॥ २९ ॥
प्रशस्तमासनं प्रोक्त कामाख्यायास्तथैव च।
त्रिपुरायाश्च सततं विष्णोश्चापि कुशासनम् ॥ ३० ॥
बहुदीर्घं बहूच्छ्राय तथैव बहुविस्तृतम्।
दारुभूमिसमं प्रोक्तमश्मापि सर्वकर्मणि ॥ ३१ ॥
पृथक् पृथक् कल्पयेत् तु बहिर्द्वारि तथासनम्[२६]।
न पत्रमासन कुर्यात् कदाचिदपि पूजने ॥ ३२ ॥
न प्राण्यङ्ग-समुद्भूतमस्थिज द्विरदादृते।
मातङ्गदन्तसञ्जातं कामिकेष्वासनं चरेत् ॥ ३३ ॥
चार्मं पूर्वोदितं ग्राह्य तथा गन्धमृगस्य च।
सलिले यदि कुर्वीत देवतानां प्रपूजनम् ॥ ३४ ॥
तत्राप्यासन आसीनो नोत्थितस्तु कदाचन।
तोये शिलामय कुर्यादासन कौशमेव वा ॥ ३५ ॥*
दारव तैजसं वापि नान्यदासनमाचरेत्।*
आसनारोपसंस्थान स्थानाभावे तु पूजकः ॥ ३६ ॥
आसनं कल्पयित्वा तु मनसा पूजयेज्जले।
यद्यासितु न संस्थान विद्यते तोयमध्यतः ॥ ३७ ॥
अन्यत्र वा तदा स्थित्वा देवपूजा समाचरेत्।
इत्येतत् कथित पुत्र पूज्यपूजकसङ्गतम् ॥ ३८ ॥
आसनं पाद्यममुना शृणु वेताल भैरव।
पादार्थमुदकं पाद्यं केवलं तोयमेव तत् ॥ ३९ ॥
तत् तैजसेन पात्रेण शङ्खेनापि प्रदापयेत्।
धर्मार्थकाममोक्षाणा सस्थान पाद्यमिष्यते ॥ ४० ॥
तदासनोत्तरं दद्यान्मूलमन्त्रेण सर्वतः।
कुशपुष्पाक्षतैश्चैव सिद्धार्थैश्चन्दनैस्तथा ॥ ४१ ॥
तोयैर्गन्धैर्यथालब्धैरर्घ्यं दद्यात् तु सिद्धये।
अर्घ्येण लभते कामानर्घ्येण लभते धनम् ॥ ४२ ॥*
पुत्रायुःसुखमोक्षाणि दानादर्घ्यस्य वै लभेत्।
न दद्याद् भास्करायार्घ्यं शंखतोयैर्विचक्षणः ॥ ४३ ॥

---

२६. बहिर्दारुनीचासनम्। * मुद्रितपुस्तके अधिकः।

तथा न शुक्तिपात्रेण विष्णवेऽर्घ्यं निवेदयेत्*।
दद्यादाचमनीय तु सुगन्धिसलिलैः शुभैः ॥ ४४ ॥
कर्पूरवासितैर्वापि कृष्णागुरुविधूपितैः।
यथा तथा सुगन्धैर्वा प्रसन्नैः फेनवर्जितैः ॥ ४५ ॥
तत् तैजसेन पात्रेण शंखेनापि प्रदापयेत्।
उदक दीयते यत् तु प्रसन्न फेनवर्जितम् ॥ ४६ ॥
आचमनाय देवेभ्यस्तदाचमनमुच्यते।
केवल तोयमात्रेण तद् वा दद्यान्न मिश्रितम् ॥ ४७ ॥
वासितं तु सुगन्धाद्यैः कर्तव्य यदि लभ्यते।
आयुर्बल यशोवृद्धिं प्रदायाचमनीयकम् ॥ ४८ ॥
लभते साधको नित्य कामाश्चैव यथोत्थितान्[२७]।
दधिसर्पिर्जल क्षौद्र सिता ताभिश्च पञ्चभिः ॥ ४९ ॥
प्रोच्यते मधुपर्कस्तु सर्वदेवौघतुष्टये।
जल तु सर्वतः स्वल्प सितादधिघृत समम् ॥ ५० ॥
सर्वेभ्य[२८]श्चाधिकं क्षौद्र मधुपर्के प्रयोजयेत्।
तद् दद्यात् कास्यपात्रेण रौक्मश्वेतमयेन वा ॥ ५१ ॥
ज्योतिष्टोमाश्वमेधादौ पूर्वे चेष्टे च पूजने।
मधुपर्कः प्रदिष्टोऽय सर्वदेवौघतुष्टिदः ॥ ५२ ॥
धर्मार्थकाममोक्षाणा साधकः परिकीर्तितः।
मधुपर्कः सौख्यभोग्य-तुष्टि-पुष्टि-प्रदायकः ॥ ५३ ॥
पिष्टातकोऽथ कस्तूरी रोचनं कुङ्कुम तथा।
गुडः क्षौद्र पञ्चगव्य सर्वौषधिगणस्तथा ॥ ५४ ॥
सिता निर्णेजन तैलं स्निग्धस्नेहेन तत्तिलाः[२९]।
प्रान्ते तोयमिति प्रोक्त स्नानीय कल्पकोविदैः ॥ ५५ ॥
स्वर्णरत्नोदकं चैव कर्पूराद्यधिवासितम्।
तैजसैः कास्यपात्रैर्वा शङ्खैर्वा तन्निवेदयेत् ॥ ५६ ॥
मण्डले केशरे देयमादित्यप्रतिमासु च[३०]।
शिवलिङ्गे तथा भोगे पीठे देवतनौ तथा ॥ ५७ ॥
सद्यःस्निग्धे मृन्मये वा सर्पिःसिन्दुरजे तथा।
श्रीचन्दनप्रतिष्ठे वा लेपयेत् प्रतिमातनौ ॥ ५८ ॥

---

* मुद्रितपुस्तके अधिक। २७. यथेप्सितान्। २८. सर्वेषां।
२९. स्नेहस्तु स्वस्तिमान्। ३०. मण्डल केसरे देयमग्रेषु प्रतिमास्वथ।

स्वस्तिकस्थापिते[३१] खड्गे स्नापयेद् दर्पणेऽथ वा ।
एवं दद्यात् तु स्नानीय महादेव्यै विशेषतः ॥ ५९ ॥
रवि[३२] विष्णुशिवेभ्यो वा यत्र तत्र प्रपूजने ।
पूजकः स्नानदानात् तु चिरायुरुपजायते ॥ ६० ॥
सम्यक् स्नानप्रदानात् तु कल्पान्त स्वर्गभाग्भवेत् ।
यदेव दीयते पाद्य गन्धपुष्पादिक तथा ॥ ६१ ॥
उपाचारास्तथा सर्वानर्घ्यपात्राहितैर्जलैः ।
अमृतीकरणाद्यैस्तु सस्कृतैस्त्वभिषिच्य तैः ॥ ६२ ।
प्रदद्यादिष्टदेवेभ्यो गृह्णाति च ततः स्वयम् ।
अर्घ्यपात्राणि तैस्तोयैर्विना[३३] यद्विनिवेदनम् ॥ ६३ ॥
दीयते चेष्टदेवेभ्यः सर्वं तन्निष्फलं भवेत् ।
रागाल्लोभात् प्रमादाद् वा ह्यर्घ्यं पात्रामृतीकृतम् ॥ ६४ ॥*
तोय स्रुत स्यात् पात्रात् तु पुनः कुर्यात् तदामृतम् ।*
स्वल्पावशेषतोये तु पात्रस्थे ह्यमृतीकृते ॥ ६५ ॥*
तत्रान्यदुदक दद्यात् तत्तेनैवामृत भवेत् ।
वहूनि यदि पुष्पाणि माला वा प्रचुरा यदि[३४] ॥ ६६ ॥
दीयन्ते चार्घ्यपात्रस्थैर्जलैः संसिच्य चोत्सृजेत् ।
अन्यतोयैर्यदुत्सृष्टमर्घ्यपात्रस्थितेतरैः ॥ ६७ ॥
तन्न गृह्णातीष्टदेवो दत्त विधिशतैरपि ।
सस्कृते त्वर्घ्यपात्रे तु नवभिः प्रतिपत्तिभिः ॥ ६८ ॥
तिष्ठन्ति सर्वतीर्थानि पीयूषाणि च सर्वतः ।
तस्मात् तत्र स्थितैस्तोयैरभ्युक्ष्योपचारानुत्सृजेत् ॥ ६९ ॥
न योग्यमर्घ्यपात्रेषु निधाय विनिवेदयेत् ।
इद ते भैरव प्रोक्त षट्कं चैवासनादिकम् ।
वस्त्रादि दश वक्ष्यामि शृणु विज्ञानवृद्धये ॥ ७० ॥

इति श्रीकालिकापुराणे अष्टषष्टितमोऽध्याय ॥ ६८ ॥

---

३१. अन्तिक । ३२ विधि । ३३. अर्घ्यपात्राहितैः ।
* अधिकं तु सुकृते । ३४. भवेत् ।

एकोनसप्ततितमोऽध्यायः ।

श्रीभगवानुवाच ।

कार्पास- कम्बलं बाल्क कोशजं वस्त्रमिष्यते ।
तत्पूर्वं पूजयित्वैव मन्त्रैर्देवाय चोत्सृजेत् ॥ १ ॥
निर्दश मलिनं जीर्णं छिन्नं गात्रावलिङ्गितम् ।
परकीयं ह्याखुदष्ट सूचीविद्ध तथोषितम् ॥ २ ॥
उप्तलेशं[१४] विधौत च श्लेष्ममूत्रादिदूषितम् ।
प्रदाने देवताभ्यश्च दैवे पित्र्ये च कर्मणि ॥ ३ ॥
वर्जयेत् स्वोपयोगेन यज्ञादावुपयोजने ।
उत्तरीयोत्तरासङ्गैर्निचोलो मोदचेलकः ॥ ४ ॥
परिधानं च पञ्चैतान्यस्यूतानि[१५] प्रयोजयेत् ।
शाण[१६]वस्त्र निशार च तथैवातपवारणम् ॥ ५ ॥
चण्डातक तथा ह्यय पञ्च स्यूतान्यदुष्टये ।
पताकाध्वजकुण्डादौ स्यूत वस्त्र प्रयोजयेत् ॥ ६ ॥
अन्यत्रावरणादौ च तद्विनाशस्य तेन तत् ।
रक्त कौशेयवस्त्रं च महादेव्यै प्रशस्यते ॥ ७ ॥
पीतं तथैव कौशेय वासुदेवाय[१७] चोत्सृजेत् ।
रक्त तु कम्बल दद्याच्छिवाय परमात्मने ॥ ८ ॥
विचित्र सर्वदेवेभ्यो देवीभ्योऽशु निवेदयेत् ।
कार्पास सर्वतोभद्र दद्यात् सर्वेभ्य एव च ॥ ९ ॥
नैकान्तरक्त दद्यात् तु वासुदेवाय चैलकम् ।
तथा नैकान्तनील तु शिवाय विनिवेदयेत् ॥ १० ॥
नीलीरक्त तु यद्वस्त्र तत् सर्वत्र विवर्जितम् ।
दैवे पित्र्ये तूपयोगे वर्जयेत् तु विचक्षणः ॥ ११ ॥
नीलीरक्त प्रमादात्तु यो दद्याद् विष्णवे बुधः ।
निष्फला तस्य तत्पूजा तदा भवति भैरव ॥ १२ ॥

---

१४. गुप्तकेश । १५. पञ्च चैतान् । न च चैतान् ।
१६. वाक. । १७. वामदेवाय ।

विचित्रे वाससि पुनर्लग्न नीलीविरञ्जितम्[३८] ।
वस्त्रं दद्यान्महादेव्यै नान्यस्मै तु कदाचन ॥ १३ ॥
द्विपदा ब्राह्मणो यद्वद्देवाना वासवो यथा ।
तथा भूषणवर्गेषु वस्त्रमुत्तममुच्यते ॥ १४ ॥
वस्त्रेण जीर्यते लज्जा वस्त्रेण हीयते त्वघम् ।
वस्त्रात् स्यात् सर्वतः सिद्धिश्चतुर्वर्गप्रदं च तत् ॥ १५ ॥
वस्त्रं ते कथितं पुत्र सर्वप्रीतिप्रदायकम् ।
भोग्य भूषोत्तम नित्य भूषणानि शृणुष्व मे ॥ १६ ॥
किरीटं च शिरोरत्न कुण्डल च ललाटिका ।
तालपत्र च हारश्च ग्रैवेयकमथोर्मिका ॥ १७ ॥
प्रालम्बिकारत्नसूत्रमुत्तङ्गोतर्क्षमालिका ।
पार्श्वद्योतो नखद्योतो ह्यङ्गुलीच्छादकस्तथा ॥ १८ ॥
जूटालक[३९] मानवको मूर्धताराखलन्तिका[४०] ।
अङ्गदो बाहुवलयः शिखाभूषण इङ्गिका ॥ १९ ॥
प्रागदण्डबन्धमङ्गासना[४१]भिपूरोऽथ मालिका ।
सप्तकी शृङ्खलं चैव दन्तपत्र च कर्णकः ॥ २० ॥
ऊरुसूत्रं च नीवीं च मुष्टिवन्ध प्रकीर्णकम् ।
पादाङ्गदं हंसकश्च नूपुर क्षुद्रघण्टिका ॥ २१ ॥
सुखपट्टमिति प्रोक्ता अलङ्काराः सुशोभनाः ।
चत्वारिंशदमी प्रोक्ता लोके वेदे तु सौख्यदाः ॥ २२ ॥
अलङ्कारप्रदानेन चतुर्वर्गप्रसाधनम् ।
एतेषा पूजनं कृत्वा प्रदद्यादिष्टसिद्धये ॥ २३ ॥
तेषा दैवतमुच्चार्य पूजयेत् तु विचक्षणः ।
शिरोगतानि वा दद्यात् सौवर्णानि तु सर्वदा ॥ २४ ॥
चूडारत्नादिकानीह भूषणानि तु भैरव ।
ग्रैवेयकादिहंसान्त सौवर्णं राजतं च वा ॥ २५ ॥
निवेदयेत् तु देवेभ्यो नान्यत् तैजससम्भवम् ।
रीतिरङ्गादि[४२] संजात पात्रोपकरणादिकम् ॥ २६ ॥
दद्यादायुसमर्जं तु भूषण न कदाचन ।
घटाचामरकुम्भादिपात्रोपकरणादिकम् ॥ २७ ॥

---

३८. विवर्जितम् । ३९ कुटुम्बक । ४०. चन्द्रिका ।
४१ बकवद् ग्रामः । ४२. रीतिवंशादि ।

तद्भूषणान्तरे दद्यादस्मात् तदुपभूषणम् ।
सर्वं ताम्रमय दद्याद् यत् किंचिद् भूषणादिकम् ॥ २८ ॥
सर्वत्र स्वर्णवत् ताम्रमर्घ्यपात्रे ततोऽधिकम् ।
पूजार्घ्यपात्रनैवेद्याधारपात्र च पानकम् ॥ २९ ॥
औदुम्बर सदा विष्णोः प्रीतिदं तोषदं तथा ।
ताम्रे देवाः प्रमोदन्ते ताम्रे देवाः स्थिताः सदा ॥ ३० ॥
सर्वप्रीतिकरं ताम्र तस्मात् ताम्र प्रयोजयेत् ।
स्वोपयोगे नरः कुर्याद् देवानामपि भैरव ॥ ३१ ॥
ग्रीवोर्ध्वदेशे रौप्य तु न कदाचिच्च भूषणम् ।
प्रावारः पानपात्र च गण्डको गृहमेव च ॥ ३२ ॥
पर्यङ्कादि यदन्यच्च सर्वं तदुपभूषणम् ।
अयोमयमृते कास्यमृते यद्भूषण भवेत् ॥ ३३ ॥
स्वर्णरौप्यस्य चाभावे त्वधः काये नियोजयेत् ।
एतेषा भूषणादीना यद् दातु शक्यते नरैः ॥ ३४ ॥
तत् तद् दद्यात् सम्भवे तु सर्वमेव प्रदापयेत् ।
चतुर्वर्गप्रदं त्वित्थ[४३] भूषण सर्वसौख्यदम् ॥ ३५ ॥
तुष्टिपुष्टिप्रीतिकर यथाशक्तीष्टये सृजेत् ।
इद वा[४४] भूषण प्रोक्त सर्वदेवस्य तुष्टिदम् ॥ ३६ ॥
गन्ध च सम्यक् शृणुत पुत्रौ वेतालभैरवौ ।
चूर्णीकृतो वा घृष्टो वा दाहाकर्षित एव वा ॥ ३७ ॥
रसः सम्मर्दजो वापि प्राण्यङ्गोद्भव एव वा ।*
गन्धः पञ्चविधः प्रोक्तो देवानां प्रीतिदायकः ॥ ३८ ॥
गन्धचूर्ण गन्धपत्र चूर्णं सुमनसस्तथा ।
प्रशस्तगन्धयुक्ताना पत्रचूर्णानि यानि तु ॥ ३९ ॥
तानि गन्धवहानि स्युः सगन्धः प्रथमः स्मृतः ।
घृष्टो मलयजो गन्धः सचूर्णीकृतमेरुणा ॥ ४० ॥
अगुरुप्रभृतिश्चापि यस्य पङ्कः प्रदीयते ।
गन्धो दृष्ट्वामघृष्टोऽयं[४५] द्वितीयः परिकीर्तितः ॥ ४१ ॥
देवदार्वगुरुपद्मगन्धराशान्त[४६] चन्दनाः ।
प्रियादीना च यो दग्ध्वा[४७] गृह्यते दाहजो रसः ॥ ४२ ॥

४३. नित्य । ४४ नौ । *मुद्रितपुस्तके अधिक. ।
४५ घृष्ट्वामघृष्टगन्धोऽयं । ४६ ब्रह्मशाकशारान्त । ४७ गन्ध. ।

सदाह्याकर्षितो गन्धस्तृतीयः परिकीर्तितः ।
सुगन्धकरवीबिल्वगन्धीनि तिलक तथा ॥ ४३ ॥
प्रभृतीना रसो योऽसौ निष्पीड्य परिगृह्यते ।
ससम्मर्दोद्भवो गन्धः सम्मर्दज इतीष्यते ॥ ४४ ॥
मृगनाभिसमुद्भूतस्तत्कोषोद्भव एव वा ।
गन्धः प्राण्यङ्गजः प्रोक्तो मोददः स्वर्गवासिनाम् ॥ ४५ ॥
कर्पूरगन्धसाराद्याः क्षोदे घृष्टे च संस्थिताः ।
चन्द्रभागादयश्चापि रसे पङ्के च सङ्गताः ॥ ४६ ॥
गन्धसारं सर्वरसं गन्धादौ[४८] च प्रयुज्यते ।
मृगनाभिर्भवेद् घृष्टश्चूर्णोऽप्यन्यस्य योगतः ॥ ४७ ॥
एव सर्वं तु सर्वत्र गन्धो भवति पञ्चधा ।
घृष्टादिभावादन्योन्यं गन्धः प्रीतिकरं परः ॥ ४८ ॥
गन्धस्य विस्तरो भेदः प्रोक्तः कालीयकादयः ।
सर्वं पञ्चविधेष्वेव प्रविष्टो भवति क्षणात् ॥ ४९ ॥
गन्धो मलयजो यस्तु दैवे पित्र्ये च सम्मतः ।
तस्य पङ्को रसो वापि चूर्णो वा विष्णुतुष्टिदः ॥ ५० ॥
सर्वेषु गन्धजातेषु प्रशस्तो मलयोद्भवः ।
तस्मात् सर्वप्रयत्नेन दद्यान्मलयजं सदा ॥ ५१ ॥
कृष्णागुरुः सकर्पूरः सहितो मलयोद्भवैः ।
वैष्णवीप्रीतिदो गन्धः कामाख्यायाश्च भैरव ॥ ५२ ॥
कुङ्कुमागुरुकस्तूरीचन्द्रभागैः समीकृतैः ।
त्रिपुराप्रीतिदो गन्धस्तथा चण्ड्याश्च शस्यते ॥ ५३ ॥
दैवतोद्देशपूर्वेण गन्ध सम्पूज्य साधकः ।
देवायेष्टाय वितरेत् सर्वसिद्धिप्रदं सदा[४९] ॥ ५४ ॥
गन्धेन लभते कामान् गन्धो धर्मप्रदः सदा ।
अर्थानां साधको गन्धो गन्धे मोक्षः प्रतिष्ठितः ॥ ५५ ॥
अयं वां कथितो गन्धः पुत्रौ वेतालभैरवौ ।
पुष्पाणि देव्या वैष्णव्याः[५०] प्रियाणि शृणु सम्प्रति ॥ ५६ ॥
बकुलैश्चैव मन्दारैः कुन्दपुष्पैः कुरुण्टकैः ।
करवीरार्कपुष्पैश्च शाल्मलैश्चापराजितैः ॥ ५७ ॥

४८. सर्वत्र सम्मदादौ । ४९. सर्वसाध्यमवाप्नुयात् ।
५०. यानि पुष्पाणि च देव्याः ।

दमनैः सिन्धुवारैश्च सुरभी[५१] कुरुवकैस्तथा।
लताभिर्ब्रह्मवृक्षस्य दूर्वाङ्कुरैश्च कोमलैः॥ ५८॥
मञ्जरीभिः कुशाना च बिल्वपत्रैः सुशोभनैः।
पूजयेद् वैष्णवीं देवीं कामाख्या त्रिपुरां तथा॥ ५९॥
अन्याश्च या शिवप्रीत्यै जायन्ते पुष्पजातयः।
ता इमाः शृणु कथ्यन्ते मया वेतालभैरव॥ ६०॥
मालती मल्लिका जाती यूथिका माधवी तथा।
पाटला करवीरश्च जवा तर्कारिका[५२] तथा॥ ६१॥
कुब्जकस्तगरश्चैव कर्णिकारोऽथ रोचना।
चम्पकाम्रातकौ बाणो बर्वरा[५३] मल्लिका तथा॥ ६२॥
अशोको लोध्रतिलकौ अटरूषशिरीषकौ।
शमीपुष्पं च द्रोणश्च पद्मोत्पलबकारुणाः॥ ६३॥
श्वेतारुणत्रिसन्ध्ये च पलाशः खदिरस्तथा।
वनमालाऽथ सेवन्ती[५४] कुमुदोऽथ कदम्बकः॥ ६४॥
चक्र कोकनद चैव तण्डिलो[५५] गिरिकर्णिका।
नागकेशरपुन्नागौ केतक्यञ्जलिका तथा॥ ६५॥
दोहदा बीजपूरश्च नमेरुः शाल एव च।
त्रपुषी चण्डबिल्वश्च झिण्टी पचविधास्तथा॥ ६६॥
एवमाद्युक्तकुसुमैः पूजयेद् वरदा शिवाम्।
अपामार्गस्य पत्र तु ततो भृङ्गारपत्रकम्॥ ६७॥
ततोऽपि गन्धिनीपत्र वलाहकमतः परम्।
तस्मात् खदिरपत्रं तु वञ्जुलस्तवक[५६]स्तथा॥ ६८॥
आम्रं तु बकगुच्छ तु जम्बुपत्र ततः परम्।
बीजपूरस्य पत्र तु ततोऽपि कुशपत्रकम्॥ ६९॥
दूर्वांकुर ततः प्रोक्त शमीपत्रमतः परम्।
पत्रमामलकं तस्मादामलं पत्रमन्ततः[५७]॥ ७०॥
सर्वतो बिल्वपत्र तु देव्याः प्रीतिकरं मतम्।
पुष्पं कोकनद पद्मं जवा बन्धुक एव च॥ ७१॥
पत्र बिल्वस्य सर्वेभ्यो वैष्णवीतुष्टिद मतम्।
सर्वेषा पुष्पजातीना रक्तपद्ममिहोत्तमम्॥ ७२॥

---

५१. मरु॰। ५२. तु कारिका। ५३. सर्वरी। ५४. सेमन्ती।
५५ मण्डिलो। ५६ रञ्जन स्तवक। ५७ तस्मादामपत्र मत तत।

रक्तपद्मसहस्रेण यो माला सम्प्रयच्छति ।
भक्तियुक्तो महादेव्यै तस्य पुण्यफल शृणु ॥ ७३ ॥
कल्पकोटिसहस्राणि कल्पकोटिशतानि च ।
स्थित्वा मम पुरे श्रीमास्ततो राजा क्षितौ भवेत् [58]॥ ७४ ॥
पत्रेषु बिल्वपत्रं तु देवीप्रीतिकरं मतम ।
तत्सहस्रकृता माला पूर्ववत् फलदा भवेत् ॥ ७५ ॥
किंचात्र बहुनोक्तेन समान्येनेदमुन्यते ।
उक्तानुक्तैस्तथापुष्पैर्जलजै॰ स्थलसम्भवैः ॥ ७६ ॥
पत्रैः सर्वैर्यथालाभ सर्वौषधिगणैरपि ।
वनजैः सर्वपुष्पैश्च पत्रैरपि शिवा यजेत् ॥ ७७ ॥
पूजयेत् परमेशानी पुष्पाभावेऽपि पत्रकैः ।
पत्राणामप्यभावे तु तृणगुल्मौषधादिभिः ॥ ७८ ॥
औषधीनामभावे तु तत्फलैरपि पूजयेत् ।
अक्षतैर्वा जलैर्वापि तदभावे तु सर्षपैः ॥ ७९ ॥
सितैस्तस्याप्यलाभे तु मानसी भक्तिमाचरेत् ।
वाजिदन्तकपत्रैश्च पुष्पौघैरपि पूजयेत्[59] ॥ ८० ॥
तुलसीकुसुमैः पत्रैरर्चयेच्छ्रीविवृद्धये ।
पुरश्चरणकार्येषु बिल्वपत्रयुतैस्तिलैः ॥ ८१ ॥
साक्षतैः सघृतैर्वापि शिवामुद्दिश्य यत्नतः ।
जुहुयादनलं वृद्ध संस्कृतं कामवृद्धये ॥ ८२ ॥
संकल्पितः कामसिद्ध्यै सख्यया य॰ कृतो जपः ।
तदन्ते पूजन यत्तु विहित क्रियते द्विजैः ॥ ८३ ॥
पुरश्चरणसज्ञं तु कीर्तित द्विजसत्तमैः ।
तस्मिन् पुराणके पूर्वं पूर्वोक्तैर्विस्तरोदितैः ॥ ८४ ॥
विधानैः पूजयेद् देवीं कामाख्यां वैष्णवीमपि ।
यथासम्भवमेवात्र दद्यात् षोडश साधकः ॥ ८५ ॥
उपचारांस्तथैवोक्तान् विधिकृत्यान्न लंघयेत् ।
सम्पूर्णं पूजनं कृत्वा कल्पोक्तं शतधा जपेत् ॥ ८६ ॥
जपान्ते जुहुयादग्निं होमान्ते तु बलित्रयम् ।
त्रिजातीयं तु [60]वितरेत्तौर्यत्रिकमतः परम् ॥ ८७ ॥

५८ श्रीमानन्ते मोक्षमवाप्नुयात् । ५९ चण्डिका ।
६० विभजेत्तौर्य…

पत्नी स्वयं वा भ्राता वा गुरुर्वा विनियोजयेत् ।
नैवेद्यादीनि सर्वाणि स्वपुत्रः शिष्य एव वा ॥ ८८ ॥
यज्ञावसाने दद्यात् तु गुरवे दक्षिणा शुभाम् ।
चामीकरं तिलान् गाञ्च तदशक्तौ तु चेलकम् ॥ ८९ ॥
अष्टम्या शुक्लपक्षस्य ब्रह्मचारी जितेन्द्रियः ।
नवम्या वा चतुर्दश्या महादेव्याः पुरश्चरेत् ॥ ९० ॥
आदद्याद् गुरुवक्त्रात् तु विधिना विस्तरेण तु ।
कल्पोदितेन सम्पूज्य तिथिष्वेतासु भैरव ॥ ९१ ॥
सम्पूर्णपूजा नो कृत्वा न दद्यान्मन्त्रमीप्सितम् ।
न पुरश्चरण वापि कुर्यात् कृत्वाऽवसीदति ॥ ९२ ॥
नित्यपूजा सा तु पुनः सम्पूर्णा यदि शक्यते ।
कल्पोदित पूजयितु तदा कुर्यादतन्द्रित ॥ ९३ ॥
न चेद् विस्तरशः कर्तुं देव्या पूजा तु भैरव ।
कल्पोक्ता वाऽन्यदेवस्य तत्राय विधिरुच्यते ॥ ९४ ॥
मार्जनाद्यैस्तु सस्कृत्य स्थण्डिले मण्डल लिखेत् ।
पात्रस्य प्रतिपत्ति तु कृत्वा दाह स्रवं तथा ॥ ९५ ॥
ध्यायेदात्मानमथ च सस्कृत्याङ्गस्वरूपतः ।
अङ्गुष्ठाद्यस्त्रपर्यन्त द्वादशाङ्गस्य शुद्धये ॥ ९६ ॥
अर्घ्यपात्रेऽष्टधा जप्त्वा उपचारान् प्रसेचयेत् ।
आधारशक्तिप्रमुख मूलवर्णान् प्रयुज्य च ॥ ९७ ॥
हृदिस्था देवता ध्यात्वा बहिःकृत्य च वायुना ।
आरोप्य मण्डले दद्यादुपचारान् यथाविधि[६१] ॥ ९८ ॥
पूजयित्वा षडङ्गानि तथाष्टौ दलदेवताः ।
पुष्पाञ्जलित्रयं दत्त्वा जप्त्वा स्तुत्वा प्रणम्य च ॥ ९९ ॥
मुद्रामग्रे प्रदर्श्याथ ततः पश्चाद् विसर्जयेत् ।
सर्वेषामेव देवानामेष एव विधिः स्मृतः ॥ १०० ॥
सम्यक् कल्पोदिता पूजा यदि कर्तुं न शक्यते ।
उपचारास्तथा दातु पञ्चैतान् वितरेत् तदा ॥ १०१ ॥
गन्धं पुष्प च धूपं च दीप नैवेद्यमेव च ।
अभावे पुष्पतोयाभ्यां तदभावे तु भक्तितः ॥ १०२ ॥
संक्षेपपूजा कथिता तथा वस्त्रादिकं पुनः ।

---

६१ यथाशुभान् ।

पुरश्चरणकृत्ये[६२] च प्रदीप शृणु भैरव ॥ १०३ ॥
दीपेन लोकाञ्जयति दीपस्तेजोमयः स्मृतः ।
चतुर्वर्गप्रदो दीपस्तस्माद् दीपैर्यजेच्छ्रियम् ॥ १०४ ॥
सततं पुष्पदीपाभ्या पूजयेद् यस्तु देवताम् ।
ताभ्यामेव चतुर्वर्गः[६३] कथितो नात्र[६४] सशयः ॥ १०५ ॥
पुष्पैर्देवाः प्रसीदन्ति पुष्पे देवाश्च सस्थिताः ।
चराचराश्च सकलाः सदा पुष्परसाः स्मृताः ॥ १०६ ॥
किंचाति बहुनोक्तेन पुष्पस्योक्तिर्मतल्लिका ।
परं ज्योतिः पुष्पगत पुष्पेणैव प्रसीदति ॥ १०७ ॥
त्रिवर्गसाधन पुष्पं तुष्टिश्रीपुष्टिमोक्षदम्[६५] ।
पुष्पमूले वसेद् ब्रह्मा पुष्पमध्ये तु केशवः ॥ १०८ ॥
पुष्पाग्रे तु महादेवः सर्वे देवाः स्थिता दले ।
तस्मात् पुष्पैर्यजेद् देवान्नित्य भक्तियुतो नरः ॥ १०९ ॥
उच्चारितं नाममात्रं जायते सर्वभूतये ।
घृतप्रदीपः प्रथमस्तिलतैलोद्भवस्ततः ॥ ११० ॥
सार्षपफलनिर्यासजातो वा राजिकोद्भवः ।
दधिजश्चान्नजश्चैव दीपाः सप्त प्रकीर्तिताः ॥ १११ ॥
पद्मसूत्रभवा दर्भगर्भसूत्रभवाऽथवा ।
शणजा बादरी वापि फलकोषोद्भवा तथा ॥ ११२ ॥
वर्तिका[६६] दीपकृत्येषु सदा पञ्चविधाः स्मृताः ।
तैजस दारव लौहं मार्त्तिक्य नारिकेलजम् ॥ ११३ ॥
तृणध्वजोद्भवं वापि दीपपात्र प्रशस्यते ।
दीपवृक्षाश्च कर्तव्यास्तैजसाद्यैस्तु भैरव ॥ ११४ ॥
वृक्षेषु दीपो दातव्यो न तु भूमौ कदाचन ।
सर्वसहा वसुमती सहते न त्विदं द्वयम् ॥ ११५ ॥
अकार्यपादघात च दीपताप तथैव च ।
तस्माद् यथा तु पृथिवी ताप नाप्नोति वै तथा ॥ ११६ ॥
दीप दद्यान्महादेव्यै अन्येभ्योऽपि च भैरव ।
कुर्वन्तं पृथिवीतापं यो दीपमुत्सृजेन्नरः ॥ ११७ ॥
स ताम्रतापं[६७] नरक प्राप्नोत्येव शत समाः ।

---

६२ ···कृत्यं । ६३. स्वर्गंग । ६४. स्यान्नास्त्यत्र ।
६५. मोक्षदम् । ६६ कार्तिका । ६७ पात्रप्रानरक ।

सुवृत्तवर्तिः सुस्नेहः पात्रभग्नः सुदर्शनः[६८] ॥ ११८ ॥
सूच्छाये वृक्षकोटौ तु दीपं दद्यात् प्रयत्नतः।
लभ्यते यस्य तापस्तु दीपस्य चतुरङ्गुलात् ॥ ११९ ॥
न स दीप इति ख्यातो ह्योघवह्निस्तु स श्रुतः।
नेत्राह्लादकरः स्वर्चिर्दूरतापविवर्जितः ॥ १२० ॥
सुशिखः शब्दरहितो निर्धूमो नातिह्रस्वकः।
दक्षिणावर्तवर्तिस्तु प्रदीपः श्रीविवृद्धये ॥ १२१ ॥
दीपवृक्षस्थिते पात्रे शुद्धस्नेहप्रपूरिते।
दक्षिणावर्तवर्त्या तु चारुदीप्तः प्रदीपकः ॥ १२२ ॥
उत्तमः प्रोच्यते पुत्र[६९] सर्वतुष्टिप्रदायकः।
वृक्षेण वर्जितो दीपो मध्यमः परिकीर्तितः ॥ १२३ ॥
विहीनः पात्रतैलाभ्यामधमः परिकीर्तितः।
शाण वा दारव वस्त्र जीर्णं मलिनमेव वा ॥ १२४ ॥
उपयुक्त च नादद्याद् वर्तिकार्थं तु साधकः।
उपादद्यान्नूत्नमेव[७०] सतत श्रीविवृद्धये ॥ १२५ ॥
कोषज रोमज वस्त्र वर्तिकार्थं न चाददेत्।
न मिश्रीकृत्य दद्यात् तु दीपे स्नेहघृतादिकान् ॥ १२६ ॥
कृत्वा मिश्रीकृत स्नेहं तामिस्र नरकं व्रजेत्।
वसामज्जास्थिनिर्यासैः स्नेहैः प्राण्यङ्गसम्भवैः ॥ १२७ ॥
प्रदीप नैव कुर्यात् तु कृत्वा पङ्केऽवसीदति।
अस्थिपात्रेऽथ वा पच्येद् दुर्गन्धास्थिपवासिनि ॥ १२८ ॥
नैव दीपः प्रतातव्यो विबुधैः श्रीविवृद्धये[७१]।
नैव निर्वापयेद् दीप कदाचिदपि यत्नतः ॥ १२९ ॥
सतत लक्षणोपेत देवार्थमुपकल्पितम्।
न हरेज्ज्ञानतो दीप तथा लोभादिना नरः ॥ १३० ॥
दीपहर्ता भवेदन्धः काणो निर्वापको भवेत्।
उद्दीप्तदीप्तप्रतिमः काष्ठकाण्डसमुद्भवः ॥ १३१ ॥
बिल्वेध्मोद्भवमेवाथ दीपालाभे निवेदयेत्।
उल्मुकं नैव दीपार्थे कदाचिदपि चोत्सृजेत् ॥ १३२ ॥
प्रसन्नार्थं तु त दद्यादुपचाराद् बहिष्कृतम्।

---

६८. पात्रेऽभग्ने सुदर्शने। ६९ दीपः। ७० दद्यात् तृणमेव।
७१. साधकाना विवृद्धये।

एवं वां कथितो दीपो धूप च श्रृणुतं सुतौ ॥ १३३ ॥
नासाक्षिरन्ध्रसुखदः सुगन्धोऽतिमनोहरः ।
दह्यमानस्य काष्ठस्य प्रयतस्येतरस्य च ॥ १३४ ॥
परागस्याथवा धूमो निस्तापो यस्य जायते[७२] ।
स धूप इति विज्ञेयो देवाना तुष्टिदायकः ॥ १३५ ॥
राशीकृतैर्न चैकत्र तैर्द्रव्यैः परिधूपयेत् ।
तुषाग्निवर्तुला कृत्वा न तत् फलमवाप्नुयात् ॥ १३६ ॥
श्रीचन्दन च सरलः शालः कृष्णागुरुस्तथा ।
उदयः सुरथस्कन्दो रक्तविद्रुम एव च ॥ १३७ ॥
पीतशालः परिमलो त्रिमंदी काशलस्तथा ।
नमेरुर्देवदारुश्च बिल्वसारोऽथ खादिरः ॥ १३८ ॥
सन्तानः पारिजातश्च हरिचन्दनवल्लभौ ।
वृक्षेषु धूपाः सर्वेषा प्रीतिदाः परिकीर्तिताः ॥ १३९ ॥
अरालः सह सूत्रेण श्रीवासः पट्टवासकः ।
कर्पूरः श्रीकरश्चैव परागः श्रीहरामलौ ॥ १४० ॥
सर्वौषधीव जातीव वराहश्चूर्ण उत्कलः ।
जातीकोषस्य चूर्णं च गन्धः कस्तूरिका तथा ॥ १४१ ॥
क्षोदे वृत्ते च गदिता धूपा एते उदाहृताः ।
यक्षधूपो वृक्षधूपः श्रीपिष्टोऽगुरु झर्झरः ॥ १४२ ॥
पत्रिवाहः पिण्डधूपः सुगोलः कण्ठ एव च ।
अन्योन्ययोगा निर्यासा धूपा एते प्रकीर्तिताः ॥ १४३ ॥
एतैर्विधूपयेद् देवान् धूमिभिः कृष्णवर्त्मना ।
येषां धूपोद्भवैर्घ्राणैस्तुष्टिं गच्छन्ति जन्तवः ॥ १४४ ॥
निर्यासश्च परागश्च काष्ठ गन्ध तथैव च ।
कृत्रिमश्चेति पञ्चैते धूपाः प्रीतिकराः पराः ॥ १४५ ॥
न यक्षधूपं वितरेन्माधवाय कदाचन ।
न रक्त विद्रुमं मह्य सुरथ कद्रिल तथा ॥ १४६ ॥
यक्षधूपः पुत्रिवाहः पिण्डधूपः सुगोलकः ।
कृष्णागुरुः सकर्पूरो महामायाप्रियः स्मृतः ॥ १४७ ॥
वृकधूपेन वा देवीं महामायां प्रपूजयेत् ।
मेदोमज्जासमायुक्तान् न धूपान् विनियोजयेत् ॥ १४८ ॥
परकीयांस्तथाघ्रातांस्तेऽपि कृत्याभिमर्दितान् ।

---

७२. परागस्याथ निस्तापो धूपादन्यात् प्रजायते ।

पुष्प धूप च गन्ध च उपचारास्तथापरान् ॥ १४९ ॥
घ्रात्वा निवेद्य देवेभ्यो नरो नरकमाप्नुयात् ।
न भूमौ वितरेद् धूप नासने न घटे तथा ॥ १५० ॥
यथातथाधारगत कृत्वा तद् विनिवेदयेत् ।
रक्तविद्रुमशालौ च सुरथः[७३] सुरलस्तथा[७४] ॥ १५१ ॥
सन्तानको नमेरुश्च कालागुरुसमन्वितः ।
जातीकोषाक्षसयुक्तो धूपः कामेश्वरीप्रियः ॥ १५२ ॥
त्रिपुण्यायास्तथैवायं मातृणामपि नित्यशः ।
सर्वेषा पीठदेवाना रुद्रादीना च पुत्रकः ॥ १५३ ॥
एष वा कथितो धूपः शृणु तन्नेत्ररञ्जनम् ।
येन तुष्यति कामाख्या त्रिपुरा वैष्णवी तथा ॥ १५४ ॥
सौवीर यामुन तुत्थं मयूरयामुन तथा ।
दुर्विका मेघनीलश्च अञ्जनानि भवन्ति षट् ॥ १५५ ॥
स्रवद्द्रुम च सौवीर यामुन प्रस्तर तथा ।
मयूरग्रीवक रत्न[७५] मेघनीलस्तु तैजसम् ॥ १५६ ॥
घृष्टानि ग्राह्य चैतानि शिलाया तैजसेऽथ वा ।
प्रदद्यात् सर्वदेवेभ्यो देवीभ्यश्चापि पुत्रक ॥ १५७ ॥
घृततैलादियोगेन ताम्रादौ दीपवह्निना ।
यदञ्जन जायते तु दर्विका परिकीर्तिता ॥ १५८ ॥
सर्वाभावे तु तद् दद्याद् देवीभ्यो दाहजाञ्जनम् ।
महामाया जगद्धात्री कामाख्या त्रिपुरा तथा ॥ १५९ ॥
आप्नुवन्ति महातोषं षड्भिरेभिः सदाञ्जनैः ।
विधवा नाञ्जन कुर्यान्महामायार्थमुत्तमम् ॥ १६० ॥
नादत्ते त्वञ्जन देवी वैष्णवी विधवाकृतम् ।
न मृत्पात्रे योजयेत् तु साधको नेत्ररञ्जनम् ॥ १६१ ॥
न पूजाफलमाप्नोति मृत्पात्रविहिताञ्जनैः ।
चतुर्वर्गप्रदो धूपः कामद नेत्ररञ्जनम् ॥ १६२ ॥
तस्माद् द्वयमिद दद्याद् देवेभ्यो भक्तितो नरः ।
इति वा गदितो धूपस्तथोक्त नेत्ररञ्जनम् ।
नैवेद्यं तु महादेव्याः शृण्वैकाग्रमनाः पुनः ॥ १६३ ॥

इति श्रीकालिकापुराणे एकोनसप्ततितमोऽध्याय ॥ ६९ ॥

---

७३ सारथ· । ७४ सकलस्तथा । ७५ रूपं ।

सप्ततितमोऽध्यायः

श्रीभगवानुवाच—

निवेदनीय यद् द्रव्यं प्रशस्त प्रयत तथा ।
तद्भक्ष्याद्य पञ्चविध नैवेद्यमिति गद्यते ॥ १ ॥
भक्ष्य भोज्यं च लेह्य च पेय चोष्यं च पञ्चमम् ।
सर्वत्र चैतन्नैवेद्यमाराध्येष्टे निवेदयेत् ॥ २ ॥
तेषु[76] प्रियतर[77] देव्याः कथये श्रृणुत तु वाम्[78] ।
भक्ष्यादिपञ्चकैर्देवी दत्तैरेवाभितुष्यति ॥ ३ ॥
नादत्ते विधिवत् किंचिद् दत्तं चैतन्न विद्यते[79] ।
नागर[80] च कपित्थ च द्राक्षां क्रमुकमेव च ॥ ४ ॥
करक वरद कोल कुष्माण्ड पनस तथा ।
बकुल च मधूक च रसालाम्रातकेशरम्[81] ॥ ५ ॥
आक्षोड पिण्डखर्जूर करुण श्रीफल तथा ।
औदुम्बरं च पुन्नाग माधव कर्कटीफलम् ॥ ६ ॥
जाम्बव पिण्डखर्जूर बीजपूर च जाम्बवम् ।
हरीतकीमामलकं पड्विध नागरङ्गकम् ॥ ७ ॥
देवक मधुकं शीत पटोल क्षीरवृक्षजम ।
पाटलं शालज वृन्तमग्निज कदलीफलम् ॥ ८ ॥
तिन्दुक कुसुमं पीत कारविन्द करूषकम् ।
गर्भावर्तं च तत्पुष्प क्षीरस्राव्यमनङ्गजम् ॥ ९ ॥
कुमुदाना पङ्कजाना फलानि विविधानि च ।
वन्याना सकलैर्देवीं फलैः पुष्पैः प्रपूजयेत् ॥ १० ॥
ऋते श्लेष्मातक विम्बशैलकं वैष्णवीं तथा ।
सर्वेषां फलजातीनां मध्ये देवीप्रिय फलम् ॥ ११ ॥
लाङ्गलं मातुलुङ्गं च करमर्द रसालकम् ।
एवं फलानि देयानि कामाख्यायै च भैरव ॥ १२ ॥
त्रिपुरायै तथा सम्यक् पीठदेवीभ्य एव च ।
श्रृङ्गाटकं कशेरुं च शालूकं च मृणालकम् ॥ १३ ॥

---

७६. तवां । ७७ प्रियतम । ७८. युवाम् ।
७९ वै तद् निवेदयेत् । ८०. कांमक । ८१. तथा ।

शृङ्गबेर काचन च स्थूल कन्द बकुलकम् ।
एवमादीनि कन्दानि देव्यै सर्वाणि चोत्सृजेत् ॥ १४ ॥
परमान्न पिष्टक च यावकं कृशर तथा ।
मोदक पृथुकादीनि कन्दुपक्वानि चोत्सृजेत् ॥ १५ ॥
हविःशाल्योदन दिव्य[८२]माज्ययुक्त सशर्करम् ।
निवेदयेन्महादेव्यै सर्वाणि व्यञ्जनानि च ॥ १६ ॥
क्षीरादीन्यथ गव्यानि माहिष्या[८३]णि च सर्वशः ।
अजाविक्रमृगाणा च क्षीरादीनि निवेदयेत् ॥ १७ ॥
मध्वादीनि[८४]च सर्वाणि गुडधानाः सिता तथा ।
अन्नानि चैव पानानि मांसानि विनिवेदयेत् ॥ १८ ॥
सर्वं सुरभिगन्धाढ्य व्यञ्जनं सुमनोहरम् ।
शाकमासादिसम्भूत महादेव्यै निवेदयेत् ॥ १९ ॥
आमिष परमान्नं च दधिसर्पिः सशर्करम् ।
महादेव्यै निवेद्याथ वाजिमेधफल लभेत् ॥ २० ॥
सितासम्मिश्रिता दत्त्वा सुरां मधुसमन्विताम् ।
देवीलोके चिर स्थित्वा राजा क्षितितले भवेत् ॥ २१ ॥
लाङ्गल क्रमुक दत्त्वा रुचक करमर्दकम् ।
सौभाग्यमतुल प्राप्य देवीलोके महीयते ॥ २२ ॥
माषान् मुद्गान् मसूरांश्च तिलान् भङ्गास्तथैव च ।
यवादीन्यथ सर्वाणि यथायोग्य निवेदयेत् ॥ २३ ॥
यथा यथा भवेद्भक्ष्यं यथा द्रव्य तथा तथा ।
संस्कृत्य वेशवाराद्यैर्महादेव्यै निवेदयेत् ॥ २४ ॥
महावीरो मुनिर्वापि ब्राह्मणश्चेतरोऽथ वा ।
यद् यद् भक्ष्य स्वमर्थं तु प्रकल्प्यं स्याद् यथा यथा ॥ २५ ॥
तथा तथा महादेव्यै भक्तियुक्तो निवेदयेत् ।
संस्कार्याण्यथ संस्कृत्य यथा सस्कारकं भवेत् ॥ २६ ॥
संस्कार्यश्च यथा तस्यास्तत्तद् दद्यात्तथा तथा ।
यत्पूतिगन्धसंयुक्तं दग्धं भोज्यविवर्जितम्[८५] ॥ २७ ॥
तदुक्तमपि नो दद्यान्महादेव्यै कदाचन ।
ताम्बूलं गन्धसंयुक्तं कर्पूराद्यधिवासितम् ॥ २८ ॥

---

८२. हविषा-चौदन देव्यामाज्य । ८३. घृतादीनि ।
८४ दध्यादीनि । ८५ भोग्यबहि कृतम् ।

संचूर्णैर्जलजाना च संस्कृतं विनिवेदयेत् ।
वलिदानेषु विहिता य एव मृगपक्षिणः ॥ २९ ॥
तेषा मासानि मत्स्याना मासानि च निवेदयेत् ।
खड्गवार्ध्रीणसच्छागमासैर्मिश्रीकृतैः कृतम् ॥ ३० ॥
व्यञ्जन स्वादुगन्धाढय वासित सुमनोहरम् ।
सकृद् दत्त्वा महादेव्यै सार्वभौमो नृपो भवेत् ॥ ३१ ॥
मूलकैरेणमासेन लोहपात्रे सुसंस्कृतम् ।
व्यञ्जन गन्धिन दत्त्वा देवीलोकमवाप्नुयात् ॥ ३२ ॥
खर्जूर पिण्डखर्जूर यवचूर्णं च साज्यकम् ।
वैष्णव्यै विनिवेद्यैव राजसूयफल लभेत् ॥ ३३ ॥
कृशरान्नप्रदानेन सौभाग्यमतुल भवेत् ।
दत्त्वेव नारिकेलाम्बु वह्निष्टोमफल लभेत् ॥ ३४ ॥
जाम्बव लवली धात्री श्रीफलानि निवेद्य च ।
वह्निष्टोमफलं लब्ध्वा देवीलोकमवाप्नुयात् ॥ ३५ ॥
द्राक्षा सितासमायुक्तां नागरङ्गकसंयुताम् ।
विनिवेद्य महादेव्यै लक्ष्मीवान् रूपवान् भवेत् ॥ ३६ ॥
धान्य च पृथुक देव्यै दत्त्वा श्रियमवाप्नुयात् ।
इक्षुदण्डं मुद्गमण्डं नवनीत निवेद्य च ॥ ३७ ॥
सौभाग्यमुत्तम प्राप्य देवीलोके महीयते ।
नवनीतसमायुक्तं तिलं देव्यै निवेद्य च ॥ ३८ ॥
इह कामानवाप्यैव मृतो मोक्षमवाप्नुयात् ।
अभक्ष्यवर्ज्यं सर्वान्नं व्यञ्जनेन समन्वितम् ॥ ३९ ॥
भोज्यवत् परिकल्प्याथ महादेव्यै निवेदयेत् ।
रत्नतोयसमायुक्त सलिलं नारिकेलजम् ॥ ४० ॥
क्षीराज्यमधुभिर्मिश्रं सिताद्धिसमन्वितम् ।
यस्तैजसेन पात्रेण पेयं देव्यै निवेदयेत् ॥ ४१ ॥
भक्तिप्रवणचित्तेन तस्य पुण्यफल शृणु ।
कल्पकोटिसहस्राणि कल्पकोटिशतानि च ॥ ४२ ॥
स्थित्वा देवीपुरे धीरः सार्वभौमो भवेत् क्षितौ ।
ततः परं तु कैवल्यमाप्नोति च यथेच्छया ॥ ४३ ॥
कलायं च सनीवारं क्वथितं दधिसंयुतम् ।
महादेव्यै निवेद्यैव काममिष्टमवाप्नुयात् ॥ ४४ ॥

मरिचं पिप्पलीकोलं जीरकं तन्तुभ तथा।
संस्कारे च समक्षे च महादेव्यै निवेदयेत्॥ ४५॥

तिन्तिडी खण्डसंयुक्ता भक्तियुक्तो निवेद्य च।
ज्योतिष्टोमफल लब्ध्वा देवीलोकमवाप्नुयात्॥ ४६॥

राजमाषं मसूर च पालङ्क चाथ पोतिकाम्।
कालशाकं कलाय च ब्राह्मीमूलकमेव च॥ ४७॥

वास्तूक च कलम्वी च कञ्चुक हिलमोचिकाम्।
चक्र[८६] विद्रुमपत्र च तथैव च पुनर्नवाम्॥ ४८॥

शाकानेतान् महादेव्यै योजयेद् भक्तिसयुतः।
सोऽतुला श्रियमाप्नोति मम लोके महीयते॥ ४९॥

श्रद्धापरीष्टिसस्कारभक्तिद्रव्याभिसम्भ्रमम्[८७]।
रागाधिक्यात् फलाधिक्यं हीनाद् वै हीनता व्रजेत्॥ ५०॥

मन्त्रकालविरुद्धानि नैवेद्यानि कदाचन।
देवेभ्यो नोपयुञ्जीत गुरुताविहितानि च॥ ५१॥

राजते वाऽथ सौवर्णे ताम्रे वा प्रस्तरेऽपि च।
पद्मपत्रेऽथवा दद्यान्नैवेद्य मत्प्रियाप्रियम्॥ ५२॥
तैजसेषु च पात्रेषु सौवर्णं ताम्रमेव वा।
प्राशनार्थमुपादद्यादर्घ्यपात्रार्थमेव वा॥ ५३॥

यज्ञदारुमय वापि पात्रं मध्यममिष्यते।
सर्वालाभे तु माहेय स्वहस्तघटितं यदि॥ ५४॥

एतद् वां कथित पुत्रौ नैवेद्यं वैष्णवीप्रियम्।
कामाख्यायास्तथा देव्यास्त्रिपुराया विशेषतः।
प्रदक्षिणनमस्कारौ साम्प्रतं शृणुतं युवाम्॥ ५५॥

इति श्रीकालिकापुराणे सप्ततितमोऽध्याय ॥ ७०॥

---

८६ चु चु··· ।   ८७. ··· मन्त्रण ।

एकसप्ततितमोऽध्यायः

श्रीभगवानुवाच—

प्रसार्य दक्षिण हस्त स्वय नम्रशिराः पुनः ।
दक्षिण दर्शयन् पार्श्वं मनसापि[८८] च दक्षिण- ॥ १ ॥
सकृत् त्रिर्वा वेष्टयेयुर्देव्याः प्रीति प्रजायते ।
स च प्रदक्षिणो ज्ञेयः सर्वदेवौघतुष्टिदः ॥ २ ॥
अष्टोत्तरशत यस्तु देव्याः कुर्यात् प्रदक्षिणम् ।
स सर्वकाममासाद्य[८९] पश्चान्मोक्षमवाप्नुयात् ॥ ३ ॥
मनसापि च यो दद्याद् देव्यै भक्त्या प्रदक्षिणम् ।
प्रदक्षिणाद् यमगृहे नरकाणि न पश्यति ॥ ४ ॥*
कायिको वाग्भवश्चैव मानसस्त्रिविधः स्मृतः ।*
नमस्कारः श्रुतस्तज्ज्ञैरुत्तमाधममध्यमः ॥ ५ ॥
प्रसार्य पादौ हस्तौ च पतित्वा दण्डवत् क्षितौ ।*
जानुभ्यामवनि गत्वा शिरसास्पृश्य मेदिनीम् ॥ ६ ॥
क्रियते यो नमस्कार उत्तमः कायिकस्तु सः ।
जानुभ्यां न क्षितिं स्पृष्ट्वा[९०] शिरसास्पृश्य मेदिनीम् ॥ ७ ॥
क्रियते यो नमस्कारो मध्यमः कायिकः स्मृतः ।
पुटीकृत्य करौ शीर्षे दीयते यद् यथा तथा ।
अस्पृष्ट्वा जानुशीर्षाभ्या क्षिति सोऽधम उच्यते ॥ ८ ॥
या स्वय गद्यपद्याभ्यां घटिताभ्या नमस्कृतिः ।
क्रियते भक्तियुक्तेन वाचिकस्तूत्तमस्तु सः ॥ ९ ॥
पौराणिकैर्वैदिकैर्वा मन्त्रैर्वा क्रियते नतिः ।
स मध्यमो नमस्कारो भवेद् वाचनिकः सदा ॥ १० ॥
यत् तु मानुष्यवाक्येन नमन क्रियते सदा ।
स वाचिकोऽधमो ज्ञेयो नमस्कारेषु पुत्रकौ ॥ ११ ॥
इष्टमध्यानिष्टगतैर्मनोभिस्त्रिविधं पुनः ।
नमनं मानसं प्रोक्तमुत्तमाधममध्यमम् ॥ १२ ॥

---

८८ दक्षिणा । ८९. सर्वान् कामान् समासाद्य ।
* मुद्रितपुस्तके अधिक पाठ । ९० जानुभ्यां क्षितिमस्पृष्ट्वा ।

त्रिविधे च नमस्कारे कायिकश्चोत्तमः स्मृतः।
कायिकैस्तु नमस्कारैर्देवास्तुष्यन्ति नित्यशः ॥ १३ ॥
[९१]अयमेव नमस्कारो दण्डादिप्रतिनामभिः[९२]।
प्रणाम इति विज्ञेयः स पूर्वं प्रतिपादितः ॥ १४ ॥
नैवेद्येन भवेत् सर्व[९३] नैवेद्येनामृत भवेत्।
धर्मार्थकाममोक्षाश्च नैवेद्येषु प्रतिष्ठिताः ॥ १५ ॥
सर्वयज्ञमयं नित्यं नैवेद्य सर्वतुष्टिदम्।
ज्ञानद कामद[९४] पुण्य सर्वभोग्यमय तथा ॥ १६ ॥
मनसापि महादेव्यै नैवेद्यं दातुमिच्छति।
यो नरो भक्तियुक्तः सन् स दीर्घायुः सुखी भवेत् ॥ १७ ॥
महामाया सदा[९५]देवीमर्चयिष्यामि भक्तितः[९६]।
नानाविधैस्तु नैवेद्यैरिति चिन्ताकुलस्तु यः।
स सर्वकामान् सम्प्राप्य मम लोके महीयते ॥ १८ ॥
मनसापि च यो दद्याद् देव्यै भक्त्या प्रदक्षिणम्।
स दक्षिणे यमगृहे नरकाणि न पश्यति ॥ १९ ॥
देवमानुषगन्धर्वा यक्षराक्षसपन्नगाः।
नमस्कारेण तुष्यन्ति महात्मानः समन्ततः ॥ २० ॥
नमस्कारेण लभते चतुर्वर्गं महामतिः।
सर्वत्र सर्वसिद्ध्यर्थं नतिरेव प्रशस्यते ॥ २१ ॥
नत्या विजयते लोकान्नत्यायुरपि वर्धते।
नमस्कारेण दीर्घायुरच्छिन्ना लभते प्रजाः ॥ २२ ॥
नमस्कुरु महादेव्यै प्रदक्षिणमथो कुरु।
नैवेद्यं देहि नितरामिति यो भाषते मुहुः।
सोऽपि कामानवाप्येह मम लोके प्रमोदते ॥ २३ ॥
विदधाति च नैवेद्य महादेव्यै सुभक्तिमान्।
दातुं प्रति नरः सोऽपि देवीलोकमवाप्नुयात् ॥ २४ ॥
इति वां कथिताः सम्यगुपचारास्तु षोडश।
किमन्यद्रुचितं वा तत् कथयिष्यामि पृच्छतोः ॥ २५ ॥

इति श्रीकालिकापुराणे षोडशोपचारनिर्णये
एकसप्ततितमोऽध्याय. ॥ ७१ ॥

---

९१ स्वयमेव। ९२ "प्रतिपत्तिभि'। ९३ स्वर्गं।
९४ मानद। ९५. महा"। ९६ शक्तित.।

द्विसप्ततिमोऽध्यायः

श्रीभगवानुवाच—

कामाख्यायाश्च माहात्म्य शृणुत च[97] वदामि वाम् ।
सागं तद् सरहस्यं च शृणु वेताल भैरव ॥ १ ॥
एकदा गरुडेनाशु विष्णुर्विष्णुपरायणौ[98] ।
गच्छन् देवी तु कामाख्या नीलस्थामाससाद ह ॥ २ ॥
आसाद्य त गिरिश्रेष्ठमवज्ञाय स केशवः ।
गच्छ गच्छेति गरुडं चोदयामास तं गतौ ॥ ३ ॥
तं च देवी महामाया कामाख्या जगतां प्रसूः ।
गरुडेन समं कृष्ण स्तम्भयामास रोदसी ॥ ४ ॥
स तु गन्तुं महामाया-मायया परिमोहितः[99] ।
न गन्तुमथ वागन्तुमशकद् बद्धवत् स्थित· ॥ ५ ॥
अशक्त गरुडं दृष्ट्वा गमने गरुडध्वजः ।
क्रुद्धस्तं पर्वतश्रेष्ठमुत्सारयितुमुद्यतः ॥ ६ ॥
ततः कराभ्यां तं शैलं क्रोडीकृत्य जगत्पतिः ।
अभूत् क्षमश्चालयितु मनागपि न केशवः ॥ ७ ॥
तं चिचालयिषुं शैल कामाख्या क्रोधतत्परा ।
सिद्धसूत्रेण वैकुण्ठं बबन्ध गरुडेन हि ॥ ८ ॥
त बद्ध्वा सिद्धसूत्रेण ग्राहाग्रे लवणार्णवे ।
चिक्षेप हेलया देवी संक्षेपात् प्रापतत् तलम् ॥ ९ ॥
तं सागरतलं प्राप्तं पुनरेव स्वमायया ।
यन्त्रयित्वा समाक्रम्य जग्राहाब्धितल[100]स्थितम् ॥ १० ॥
स प्रयत्नेन महता नोत्प्लुतिं कर्तुमिष्टवान् ।
महायत्न प्रकुर्वाणः पुनरुन्मज्जने[1] हरिः ॥ ११ ॥
तस्यासारं प्रसारं च कामाख्या प्रतिषेधयेत् ।
ज्ञानोद्गमनमप्यस्य सा देवी प्रतिषेधयेत् ॥ १२ ॥
ततः प्रज्ञानरहितः प्रसारासारवर्जितः ।
गरुडेन समं तोयतले शीर्णमभूच्चिरम् ॥ १३ ॥

---

९७. कवचस्य । ९८ पदायने । ९९ मोहित खग ।
१००. ··मध्ये । · ··सर्जने ··· ।

मार्गमाणस्तु त स्रष्टा सागरान्तरसंस्थितम् ।
हरिमासादयामास बिशीर्णं प्राकृतं यथा ॥ १४ ॥
तमासाद्य सतार्क्ष्यं तु स्रष्टा लोकपितामहः ।
हस्ताभ्या त समादाय वोत्प्लावयितुमिष्टवान्[२] ॥ १५ ॥
तमुत्प्लावयितु शक्तो नाभूल्लोकपितामहः ।
स्वय च देवीमायाभिर्बद्धः सन् विस्मयन् स्थितः ॥ १६ ॥
मार्गमाणास्तु ते सर्वे देवाः शक्रपुरोगमाः ।
चिरेण चाथ कालेन समासे दुर्जलान्तरे ॥ १७ ॥
तावासाद्य ततः सर्वे सुराः शक्रपुरोगमाः ।
समुत्प्लावयितुं यत्न चक्रुर्नाशक्नुवश्च ते ॥ १८ ॥
ततः सर्वेऽपि ते देवा मोहिता मायया भृशम् ।
बिधिविष्णू स्थितौ यद्वत् तद्वत् ते तत्र सस्थिताः ॥ १९ ॥
मार्गमाणोऽथ तान् सर्वान् देवान् देवगुरुस्तदा ।
बृहस्पतिर्महादेवं हिमवत्-सानुसस्थितम् ॥ २० ॥
समासाद्य स देवाना वृत्तान्तं देवपूजितः ।
पृष्टवान् सादर सम्यक् स्तुत्वा नत्वा यथाविधि ॥ २१ ॥

गुरुरुवाच—

महादेव जगद्धाम जगत्प्रशमकारण ।
शक्रादीन्मार्गमाणोऽह देवांस्त्वा समुपस्थितः ॥ २२ ॥
ब्रह्मा विष्णुश्च न ब्रह्मसदने नापि नाकतः ।
संस्थितौ नापि कुत्रापि ज्ञायेते ह्यन्यदा यथा ॥ २३ ॥
तमिमं संशयं देव च्छिन्धि त्वं देवदेवताः[३] ।
कुत्र तिष्ठन्ति कस्माद् वा तथा भूत्वा ह्यवस्थिताः ॥ २४ ॥
अनुयास्यामि तान् सर्वानुपदेशात् तव प्रभो ।
तेषा स्थिति त्व कथय यदि ते वर्तते दया ॥ २५ ॥
तस्य तद् वचनं श्रुत्वा तदुद्देशमहं पुनः ।
तत् सर्वमुक्तवान् कर्म यथा बद्धाश्च मायया ॥ २६ ॥
अवज्ञाता महादेवी महामाया जगन्मयी ।
तेन तन्मायया बद्धो विष्णुस्तिष्ठति सागरे ॥ २७ ॥
तं मार्गमाणास्त्रिदशा ब्रह्माद्या मायया पुनः ।
निबद्धा निकटे तस्य स्थिताश्चात्यर्थसंयताः ॥ २८ ॥

---

२ वोत्तोलयितु । ३. त्वत्समो नास्ति देवता ।

तांस्तु[४] मार्गयितुं यासि यदिह त्व मया विना ।
बद्धस्तथैव त्वं चापि नायातु भविता प्रभुः ॥ २९ ॥
तस्माद् गच्छाम्यह तत्र यत्रास्ते गरुडध्वजः ।
ब्रह्मेन्द्राद्यास्तथा गुप्तान्मोचयिष्ये च तान् क्रमात् ॥ ३० ॥
इत्युक्त्वा गुरुणा सार्धं सम्भूय स वृषध्वजः ।
देवौघा यत्र तिष्ठन्ति गतस्तत्र महेश्वरः ॥ ३१ ॥
तत्र गत्वा महादेवो विष्णुमाभाष्य वेधसम् ।
सर्वास्तान् परिपप्रच्छ किमर्थं सस्थितास्त्विह ॥ ३२ ॥
गतागतविहीनाश्च जडवज्ज्ञानवर्जिताः ।
किमर्थमभवन् देवास्तन्मे भाषन्तु सम्प्रति ॥ ३३ ॥
तस्य तद्वचनं श्रुत्वा महादेवस्य केशवः ।
शनैर्भर्गमुवाचेदं ब्रह्मादीना पुरस्तदा ॥ ३४ ॥

श्रीभगवानुवाच

नीलकूटस्य शिखरादूर्ध्वभागेन गच्छता ।
वियता गरुडस्थेन मया नीलो महागिरिः ॥ ३५ ॥
धृतः करेण चोद्धर्तुं गरुडागतिवारणे[५] ।
तत्र मा सा महामाया कामाख्या कामरूपिणी ॥ ३६ ॥
योगनिद्रा स्वयं धृत्वा चिक्षेपाम्बुधिपुष्करे[६] ।
ततोऽहं तलमासाद्य तोयराशेः सवाहनः ॥ ३७ ॥
पतितो निवसाम्यत्र चिरमन्धकसूदन ।
निवसामि चिरं चाहमत्र सागरतोयके ॥ ३८ ॥
नाद्यापि सा महामाया नुदते[७] मां महेश्वर ।
मदर्थमागता देवा ब्रह्मेन्द्राद्याः समन्ततः ॥ ३९ ॥
तेऽपि बद्धा महादेव्या मायापाशेन वै हठात् ।
तस्मान्नो ह्यनुगृह्णीष्व नयेदानीं शिवालये[८] ॥ ४० ॥
तां च प्रसादयिष्यामः सम्यग्बन्धविहिंसया ।
हरेस्तद्वचनं श्रुत्वा ह्यहं च करुणायुतः ॥ ४१ ॥
उवाच परमप्रीत्या विधिविष्णू प्रति स्वयम् ।
ईश्वर्याः कामपूर्वायाः कवच सुमनोहरम् ॥ ४२ ॥

४. स्वं । ५. बाधने । ६ ' गह्वरं । ७. दयते ।
८. '' लयम् ।

बद्ध्वा शरीरे चाप्लाव्य पश्चाद् गच्छन्तु ता प्रति ।
अहं निबद्धकवचस्तेनाहं मायया त्विह ॥ ४३ ॥
न बद्धो मम ससर्गात् तथा चेह बृहस्पतिः ।
तस्माद् यूयं तु कवच शृणुध्व[९] वचनान्मम ॥ ४४ ॥
येन सौख्यात् समुत्प्लुत्य द्रक्ष्यामः परमेश्वरीम् ।
ॐ कामाख्याकवचस्य ऋषिर्बृहस्पतिः स्मृतः ॥ ४५ ॥
देवी कामेश्वरी तस्य अनुष्टुपछन्द इष्यते[१०] ।
विनियोगः सर्वसिद्धौ त च शृण्वन्तु देवताः ॥ ४६ ॥
शिरः कामेश्वरी देवी कामाख्या चक्षुषी मम ।
सारदा कर्णयुगलं त्रिपुरावदनं तथा ॥ ४७ ॥
कण्ठे पातु महामाया हृदि कामेश्वरी पुनः ।
कामाख्या जठरे पातु शारदा मां तु नाभितः ॥ ४८ ॥
त्रिपुरा पार्श्वयोः पातु महामाया तु मेहने ।
गुदे कामेश्वरी पातु कामाख्योरुद्वये तु माम् ॥ ४९ ॥
जानुनोः शारदा पातु त्रिपुरा पातु जङ्घयोः ।
महामाया पादयुगे नित्य रक्षतु कामदा ॥ ५० ॥
केशे कोटेश्वरी पातु नासायां पातु दीर्घिका ।
भैरवी दन्तसघाते मातंग्यवतु चाङ्गयोः ॥ ५१ ॥
बाह्वोर्मां ललिता पातु पाण्योस्तु वनवासिनी ।
विन्ध्यवासिन्यङ्गुलिषु श्रीकामा नखकोटिषु[११] ॥ ५२ ॥
रोमकूपेषु सर्वेषु गुप्तकामा सदावतु ।
पादाङ्गुलिपार्ष्णिभागे पातु मां भुवनेश्वरी ॥ ५३ ॥
जिह्वाया पातु मां सेतुः क. कण्ठाभ्यन्तरेऽवतु ।
लः पातु चान्तरे वक्ष इः पातु जठरान्तरे ॥ ५४ ॥
सामीन्दुः पातु मा वस्ताविन्दुबिन्द्वन्तरेऽवतु[१२] ।
तकारस्त्वचि मा पातु रकारोऽस्थिषु सर्वदा ॥ ५५ ॥
लकार. सर्वनाडीषु ईकारः सर्वसन्धिषु ।
चन्द्रः स्नायुषु मां पातु विन्दुमज्जासु सन्ततम् ॥ ५६ ॥
पूर्वस्यां दिशि चाग्नेय्या दक्षिणे नैर्ऋते तथा ।
वारुणे चैव वायव्या कौबेरे हरमन्दिरे ॥ ५७ ॥

---

९. शृणन्तु । १० उच्यते । ११ कोटिका ।
१२ वस्तौ गुह्य बिन्द्वन्तरेऽवतु ।

अकाराद्यास्तु वैष्णव्या अष्टौ वर्णास्तु मन्त्रगाः ।
पान्तु तिष्ठन्तु सतत समुद्भवविवृद्धये ॥ ५८ ॥
ऊर्द्ध्वाधः पातु सतत मा तु सेतुद्वय सदा ।
नवाक्षराणि मन्त्रेषु शारदामन्त्रगोचरे । ५९ ॥
नवस्वरं तु मा नित्य नासादिषु समन्ततः ।
वातपित्तकफेभ्यस्तु त्रिपुरायास्तु त्र्यक्षरम् । ६० ॥
नित्य रक्षतु भूतेभ्यः पिशाचेभ्यस्तथैव च ।
तत्सेतू[13] सततपाता क्रव्याद्भ्यो मान्निवारकौ ॥ ६१ ॥
नमः कामेश्वरी देवी महामाया जगन्मयीम् ।
या भूत्वा प्रकृतिर्नित्य तनोति जगदाद्यताम् ॥ ६२ ॥

कामाख्यामक्षमालाभयवरदकरा सिद्धसूत्रैकहस्ता-
श्वेतप्रेतोपरिस्था मणिकनकयुता कुङ्कुमापीतवर्णाम् ।
ज्ञानध्यानप्रतिष्ठामतिशयविनया[15] ब्रह्मशक्रादिवन्द्या-
मग्नौ बिन्द्वन्तमन्त्रप्रियतमविषया नौमि सिद्ध्यै रतिस्थाम्[16]॥६३॥
मध्ये मध्यस्य भागे सततविनमिता भावहावावलीया[17]-
लीला लोकस्य कोष्ठे सकलगुणयुता व्यक्तरूपैकनम्रा ।
विद्याविद्यैकशान्ता शमनशमकरी क्षेमकर्त्री वरास्या
नित्य पातात् पवित्रप्रणववरकरा[18] कामपूर्वेश्वरी नः ॥ ६४ ॥
इति हरकवच[19]तनुस्थित शमयति वै शमनं तथा यदि[20]।
इह गृहाण यतस्व विमोक्षणे सहित एष विधिः सह चामरैः ॥ ६५ ॥
इत्यय कवच यस्तु कामाख्यायाः पठेद् बुधः ।
सकृत् त तु महादेवी त्वनुव्रजति नित्यदा ॥ ६६ ॥
नाधिव्याधिभयं तस्य न क्रव्याद्भ्यो भय तथा ।
नाग्नितो नापि[21] तोयेभ्यो न रिपुभ्यो न राजतः ॥ ६७ ॥
दीर्घायुर्बहुभोगी च पुत्रपौत्रसमन्वितः ।
आवर्तयञ्छतं देवी मन्दिरे मोदते परे ॥ ६८ ॥
यथा तथा भवेद् बद्धः सग्रामेऽन्यत्र वा बुधः ।
तत् क्षणादेव मुक्तः स्यात् स्मरणात् कवचस्य तु ॥ ६९ ॥

---

१३ ओष्ठे तु सतत पातु । १४. माष्निराकरौ । १५. '' विशदां ।
१६ सिद्धिरभीष्टाम् । १४ सततपरिमिता भारहारावलीया ।
१८. '''प्रबलयुवकरा । १९ हरे कवच । २०. तथायति ।
२१. वापि ।

ईश्वर उवाच—

इति श्रुत्वा तु कवचं हरिर्ब्रह्मा सुरास्तथा।
शक्रोऽपि कवच देहे न्यास चक्रुः पृथक् पृथक् ॥ ७० ॥
ते तु विन्यस्तकवचा महामायाप्रभावतः।
उत्प्लुत्य सागरस्याम्भ[22] आसेदुः क्षितिमञ्जसा ॥ ७१ ॥
आसाद्य पृथिवी सर्वे ब्रह्मविष्ण्वादयः सुराः।
नीलकूटं समासाद्य[23] कामाख्या द्रष्टुमागताः ॥ ७२ ॥
दृष्ट्वा कामेश्वरीं देवी केशवस्ता[24] जगन्मयीम्।
इदमाह स्वय ज्ञात्वा प्रभाव तत् प्रतिष्ठितम् ॥ ७३ ॥
त्वमेव प्रकृतिर्देवी त्वमेव पृथिवी जलम्।
त्वमेव जगता माता त्वमेव च जगन्मयी ॥ ७४ ॥
त्त्र कर्त्री सर्वजगता विद्या त्वं मुक्तिदायिनी।
परापरात्मिका देवी स्थूलसूक्ष्मात्मिका तथा ॥ ७५ ॥
प्रसीद त्वं महादेवि प्रसन्नाया शुभे त्वयि।
देवाः सर्वे प्रसीदन्ति चतुर्वर्गप्रदेऽनघे ॥ ७६ ॥
प्रत्यक्षरूपा कामाख्या केशवस्य महात्मनः।
प्रत्यक्षरूपा कामाख्या हरिमाभाष्य चाब्रवीत् ॥ ७७ ॥

देव्युवाच—

केशव ब्रह्मणा सार्धं सर्वैर्देवैस्तथा गणैः।
मद्योनिसलिलेष्वद्य स्नान पान कुरु द्रुतम् ॥ ७८ ॥
ततस्त्व निरहङ्कारः[25] परवीर्यसमन्वितः।
आरुह्य गरुड याहि[26] त्रिदिव सह वेधसा ॥ ॥ ७९ ॥
एवमुक्तो महादेव्या केशवः सह वेधसा।
योनिमण्डलतोयेषु स्नान पानं चकार ह ॥ ८० ॥
कृतप्लावास्ततो देवाः कृतस्नानश्च केशवः।
गता देव्याश्च सम्मत्या त्रिदिवं प्रति हर्षिताः ॥ ८१ ॥
गच्छन्तस्ते देवगणाः सहिताः केशवेन च।
ब्रह्मणा च तदाद्राक्षुः कामाख्या ता वियद्गताम्[27]॥ ८२ ॥
नीलकूटसहस्राणि योनिभिः सह तद्गतै.।
ऊर्ध्वाधोभागयोगेन ददृशुः सस्थितानि च ॥ ८३ ॥

---

२२ स्यान्त। २३. मयासाद्य। २४. शिखरस्था।
२५ वीताहकार॰। २६. याता। २७. ॰॰ गता.।

तानि प्रत्येकतो देवा आरुह्यारुह्य तत्क्षणात् ।
पपुः[२८] सस्नुः पूर्ववत् ते प्रीतिमापुस्तथातुलाम् ॥ ८४ ॥
निरामयास्तथा जग्मुर्विस्मयाक्लिष्टचेतनाः[२९] ।
स्तुवन्तः प्रस्तुवन्तश्च कामाख्यायोनिमण्डलम् ॥ ८५ ॥
ततो देवगुरु[३०]नत्वा मा स्तुत्वा च मया[३१]पुनः ।
विसृष्टास्त्रिदिव[३२] याता[३३] हर्षोत्फुल्लविलोचनाः[३४] ॥ ८६ ॥
माहात्म्यमीदृश देव्या कामाख्यायास्तु भैरव ।
कवचं चेदृशं प्रोक्त तत्त्वमासाद्य पुत्रक ॥ ८७ ॥
यथेष्टविनियोगेन तामासाद्य सुखी भव ।
कामाख्यायाश्च माहात्म्य किमन्यत् कथयामि ते ॥ ८८ ॥
यस्या योनिशिलायोगाल्लोहाद्या यान्ति स्वर्णताम् ।
यद्योनिमण्डले स्नात्वा सकृत् पीत्वा च मानवः ।
नेहोत्पत्तिमवाप्नोति पर निर्वाणमाप्नुयात् ॥ ८९ ॥

इति श्रीकालिकापुराणे कामाख्याकवचमाहात्म्यवर्णन नाम द्विसप्ततितमोऽध्याय ॥ ७२ ॥

---

२८. पुन° । २९ °विष्टमानसा. । ३०. °गुरुर्नत्वा ।
३१. मयात् । ३२. विसृष्टास्त्रिदिवं । ३३. याता ।
३४. ° लोचन. ।

त्रिसप्ततितमोऽध्यायः

श्रीभगवानुवाच—

मातृकान्यासमधुना शृणु वेताल भैरव।
येन देवत्वमायाति नरोऽपि विहितेन वै ॥ १ ॥
वाग् ब्रह्माणीमुखा देव्यो मातृकाः परिकीर्तिताः।
तासा मन्त्राणि सर्वाणि व्यञ्जनानि स्वरास्तथा ॥ २ ॥
चन्द्रबिन्दुप्रयुक्तानि सर्वकाम[३५]-प्रदानि च।
ऋषिस्तु मातृमन्त्राणां[३६] ब्रह्मैव परिकीर्तितः ॥ ३ ॥
प्रोक्तश्छन्दश्च गायत्री देवता च सरस्वती।
शरीरशुद्धिमुख्ये तु[३७] सर्वकामार्थसाधने ॥ ४ ॥
विनियोगः समुद्दिष्टो मन्त्राणा न्यूनपूरणे[३८]।
अकारेण सम कादिवर्गो यः प्रथमः स्मृतः ॥ ५ ॥
तैश्चन्द्रबिन्दुसंयुक्तैस्तत्रस्थैरक्षरैर्बहिः[३९] ।
आकार च तथोच्चार्य अङ्गुष्ठाभ्या नमस्तथा[४०] ॥ ६ ॥
प्रथमं मातृकामन्त्रमङ्गुष्ठद्वयतो न्यसेत्।
परे वर्गाः स्वरैः सार्धं ये वान्ये न्यासकर्मणि ॥ ७ ॥
ते सर्वे चन्द्रबिन्दुभ्या युक्ताः कार्यास्तु सर्वतः।
ह्रस्वेकारश्च वर्गेण दीर्घेकारान्तकेन[४१] तु ॥ ८ ॥
तर्जन्योर्विन्यसेत् सम्यक् स्वाहान्तेन तु पूर्ववत्।
ह्रस्वोकारष्टवर्गेण दीर्घोरान्तकेन[४२] तु ॥ ९ ॥
मध्यमायुगले सम्यग्वषडन्तेन विन्यसेत्।
एकारादिटवर्गन्तु ऐकारान्तेन चैव हुम्[४३] ॥ १० ॥
न्यसेदनामिकायुग्मे नियतं तत्र भैरव।
ओकारादिपवर्गं तु औकारान्तमशेषतः ॥ ११ ॥
वौषडन्तं कनिष्ठाया विन्यसेत् कार्यसिद्धये।
अंकारादियकारादिवर्गेण क्षान्तकेन तु ॥ १२ ॥

---

३५ सिद्धि । ३६ एषामृषिस्तु मन्त्राणां ।
३७ ...प्रमुखसर्वार्थ । ३८. मूलशोधने । ३९. ....विह
४०. सदा । ४१ ...गेन । ४२ ...गेन । ४३. हु फट्

अइत्यन्तेन [४४]वलयोर्विन्यसेत् पाणिपृष्ठयोः ।
वषट्कार शेषभागे अस्त्रन्यासे नियोजयेत् ॥ १३ ॥
हृदयादिषडङ्गेषु पूर्ववत् क्रमतो न्यसेत् ।
अङ्गुष्ठाद्युक्तवर्गैस्तु क्रमात् षड्भिस्तथाविधैः[४५] ॥ १४ ॥
पुनस्तथा पादजानुसक्थिगुह्येषु पार्श्वयोः[४६] ।
वस्तौ च विन्यसेन्मन्त्रान् क्रमात् पूर्ववदक्षरैः ॥ १५ ॥
बाह्वोः पाण्योस्तथा कट्या नाभौ च जठरे तथा ।
स्तनयोरपि विन्यस्य तथा षड्भिः समाचरेत् ॥ १६ ॥
वक्त्रे च चिवुके गण्डे कर्णयोश्च ललाटके ।
असे कक्षे च षड्वर्गैः पूर्ववन्न्यासमाचरेत ॥ १७ ॥
रोमकूपे ब्रह्मरन्ध्रे गुदे जङ्घायुगे तथा ।
नखेषु पादपार्ष्ण्योश्च तथा पूर्ववदाचरेत् ॥ १८ ॥
एव तु मातृकान्यास यः कुर्यान्नरसत्तमः ।
स सर्वयज्ञपूजासु पूतो योग्यस्तु जायते ॥ १९ ॥
नातः परतर मन्त्रं विद्यते क्वचिदेव हि ।
यत्सर्वकामदं पुण्य चतुर्वर्गप्रद परम्[४७] ॥ २० ॥
वाग्देवता हृदि ध्यात्वा मूर्तिसर्वाक्षराणि च ।
त्रिधा च मातृकामन्त्रैः सक्रमैश्च पिबेज्जलम् ॥ २१ ॥
स वाग्मी पण्डितो धीमान् जायते च वरः कविः ।
चन्द्रबिन्दुसमायुक्तान् स्वरान् पूर्वं पठेद् बुधः ॥ २२ ॥
व्यञ्जनानि तु सर्वाणि केवलानि पठेत् ततः ।
अकारादिक्षकारान्तान्येव श्वासैश्च पूरकैः ॥ २३ ॥
जलं करतले गृह्य पठित्वाक्षरसख्यकम् ।
अभिमन्त्र्य तु तत् तोय प्रथम पूरकैः पिबेत् ॥ २४ ॥
कुम्भकेन[४८] द्वितीयं तु तृतीयन्त्वथ रेचकैः ।
एवं सकृत् त्रिवारं तु पीत्वा तोयं विचक्षणः ॥ २५ ॥
दृढाङ्गः पण्डितो भूयात् पुत्रपौत्रसमन्वितः ।
त्रिसन्ध्यमथ पीत्वैव मातृकामन्त्रमन्त्रितम्[४९] ॥ २६ ॥
तोयं कवित्वमाप्नोति सर्वान् कामास्तथैव च ।
सतत कुरुते यस्तु मातृकामन्त्रमन्त्रितम् ॥ २७ ॥

---

४४ यो विन्यसेत् । ४५ बुधैः । ४६ " पादयो. । ४७. " फलप्रदम् ।
४८. स्तम्भकेन । ४९. मातृकामन्त्रितं पुन ।

तोयपान महाभाग पूरकुम्भकरेचकैः ।
स सर्वकामान् सम्प्राप्य पुत्रपौत्रसमृद्धिमान् ॥ २८ ॥
भूत्वा महाकविर्लोके बलवान् सत्यविक्रमः ।
सर्वत्र वल्लभो भूत्वा चान्ते मोक्षमवाप्नुयात् ॥ २९ ॥
राजानमथवा राजपुत्र भार्यामथापि वा ।
वशीकरोति नचिरान्मातृकामन्त्रपानतः[५०] ॥ ३० ॥
न्यासक्रमे क्रमः प्रोक्तो वर्गक्रम इहैव तु ।
अक्षराणा क्रमेणाथ तोयपान समाचरेत् ॥ ३१ ॥
ये ये मन्त्रा देवतानामृषीणामथ रक्षसाम् ।
ते मन्त्रा मातृकामन्त्रै[५१]र्नित्यमेव प्रतिष्ठिताः ॥ ३२ ॥
सर्वमन्त्रमयश्चाय सर्ववेदमयस्तथा ।
चतुर्वर्गप्रदश्चायं मातृकामन्त्र उच्यते ॥ ३३ ॥
इति ते कथित पुत्र मातृकान्यासमद्भुतम् ।
विभागमथ मुद्राणां श्रृणु वेताल भैरव ॥ ३४ ॥

इति श्रीकालिकापुराणे मातृकान्यासवर्णने
त्रिसप्ततितमोऽध्याय ॥ ७३ ॥

---

५०. ° नाममन्त्रतः । ५१. ° मन्त्रे ।

चतुःसप्ततितमोऽध्यायः

श्रीभगवानुवाच—

या योनिमुद्रा कथिता मुद्राविभजने पुरा।
अष्टधा योनिमुद्रा स्यात् प्रथमा सा तु कीर्तिता ॥ १ ॥
द्वितीया खेचरी मुद्रा कामाख्यायास्तु भैरव।
ता विद्धि चाद्भुत गुह्यं येन तुष्यति चण्डिका ॥ २ ॥
अनामिका दक्षिणस्य तर्जन्या वामतो न्यसेत्।
वामानामा दक्षिणस्य तर्जन्या विनिवेशयेत् ॥ ३ ॥
ते द्वे तथा तर्जनीभ्या वेष्टयेदग्रतोऽग्रतः।
मध्ये द्वय तु विन्यस्य चोर्ध्वभागे त्वनामयोः ॥ ४ ॥
तदग्राग्रेण सयोगात् तथैव च कनिष्ठके।
अग्रेणैव च सयुक्ते तन्मूलेऽङ्गुष्ठके न्यसेत् ॥ ५ ॥
इय ते खेचरी योनिर्योनिमुद्रा तु[५२] कामदा।
एषैवाधः कनिष्ठे द्वे नियोज्य यदि युज्यते ॥ ६ ॥
ब्रह्मयोनिस्तु सा ख्याता कामेश्वर्यास्तु तुष्टिदा।
सवेष्टय पूर्ववत् पाण्योर्द्वे कनिष्ठ त्वनामिके ॥ ७ ॥
अधोभागे नियोज्याथ मध्यमे चोर्ध्वतस्तथा।
तासां परस्परश्चाग्रैरन्योऽन्य योजयेद् यदि[५३] ॥ ८ ॥
मध्या मध्ये तथाङ्गुष्ठे निःक्षिप्याग्रे नियोजयेत्।
योनिस्त्रिशाङ्करी प्रोक्ता त्रिपुरा तुष्टिदा सदा ॥ ९ ॥
मध्ये द्वे च तथा वेष्टया पूर्ववच्चाप्यनामिका।
कनिष्ठाभ्यां पुरो न्यस्य अङ्गुष्ठौ मूलयोस्तयो• ॥ १० ॥
मुद्रेय शारदी प्रोक्ता शारदायास्तु तुष्टिदा।
मूलयोनिस्तु कथिता वैष्णवीतन्त्रगोचरे ॥ ११ ॥
तर्जन्यनामिक मध्ये कनिष्ठेऽपि क्रमादपि।
करयोर्योजयित्वैव कनिष्ठामूलदेशतः ॥ १२ ॥
अङ्गुष्ठाग्रं तु निःक्षिप्य महायोनिः प्रकीर्तिता।
अङ्गुष्ठौ चाथ संवेष्टय संयुज्याथ कराङ्गुलीः ॥ १३ ॥

---

५२. सुकामदा। ५३ "'परं परं चाग्रे' अन्योऽन्यस्य च योजयेत्।

अग्रभागैर्मध्यशून्य तत्र कुर्यात् करद्वयम् ।
इय तु योगिनीयोनिर्योगिनीना प्रियंकरी ॥ १४ ॥
एता अष्टौ समाख्याता योन्यः कामेश्वरीप्रियाः ।
मूर्तिभेदेन चान्येषा देवानामपि तुष्टिदाः ॥ १५ ॥
यात्राया युद्धविषये वाग्वादे कलहे तथा ।
अष्टौ योन्यः स्मरेद् यस्तु जयस्तस्य सनातनः ॥ १६ ॥
विसर्जने पूजने च स्मरणे कर्मभेदतः ।
एता योन्यः समाख्याताश्चण्डिकापूजनेषु च ॥ १७ ॥
एतास्तु कथिता योन्य. क्रमात् क्रमविसर्जने ।
रहस्य वामदाक्षिण्य मन्त्रशुद्धि शृणुष्व मे ॥ १८ ॥
मन्त्रेण क्रियते यत् तु शारीर मन्त्रमुत्तमम् ।
तद्रहस्यमिति प्राहुर्मन्त्रेषु मन्त्रकोविदाः ॥ १९ ॥
कामाख्यायास्तु षट्कोणं मण्डलस्य दलान्तरे ।
त्रिधा लिखेन्मूलमन्त्रमूर्ध्वं त्रिष्वपि सन्धिषु ॥ २० ॥
अधस्त्रिसन्धिषु पुनर्विधि शक्र हरं तथा ।
सहितं मदनेनैव लिखेद् भूर्जत्वचि त्रिधा ॥ २१ ॥
तन्तुमादाय साहस्रं[५४] दक्षिणेन करेण वै ।
मालामपि समादाय संजपेदुत्तरामुखः ॥ २२ ॥
तद्भुजे दक्षिणे धार्यं बाहौ वा[५५] साधकोत्तमैः ।
जपान्ते लिखित यन्त्रं तेन सर्वजयी भवेत् ॥ २३ ॥
दीर्घायुः सर्ववशकृद्धनधान्यसमृद्धिमान् ।
मृतो देवीगृहे याति यन्त्रयन्त्रितबुद्धिमान् ॥ २४ ॥
षट्कोणानन्तरकृतं वेष्टिताष्टदलेष्वथ ।
लिखित्वा भूर्जपत्रेषु विलीनैर्यावकोदकैः ॥ २५ ॥
उत्तरादिक्रमेणैव वैष्णवीतन्त्रसङ्गतान् ।
अष्टो वर्णान्मध्यभागे पूर्ववत् कामराजकम् ॥ २६ ॥
त्रीन् वर्णान नेत्रबीजस्य त्रिकोणस्याग्रतो लिखेत् ।
एवं त्रिधाकृतं यन्त्रं[५६] कृत्वा वामकरे स्थितः ॥ २७ ॥
जपेत् त्रीणि सहस्राणि मालामादाय दक्षिणे ।
जपान्ते वैष्णावीरूपध्यानं कुर्यादतन्द्रितः ॥ २८ ॥

---

५४. तामादाय सहस्र तु । ५५. तत् कृत्वा दक्षिणे बाहौ वामे व. ।

५६. मन्त्र ।

प्राणायामसहस्र तु ततस्त लिखितोत्तमम् ।
ग्रीवाया धारयेद् यन्त्र तेन सर्वजयी भवेत् ॥ २९ ॥
राजपुत्रो भवेद्राजा तदन्यः सचिवो भवेत् ।
द्विजराजो भवेद् विद्वान् कविर्वाग्मी च वा भवेत् ॥ ३० ॥
राक्षसेभ्यः पिशाचेभ्यो भूतेभ्यश्चापि चान्यतः ।
साधु संविद्यते तस्य न कदाचित् पराजयः ॥ ३१ ॥
दीर्घायुर्बलवान् प्राज्ञो मृते मोक्षमवाप्नुयात् ।
सम्पूर्णं मण्डल कृत्वा अष्टपत्रसमन्वितम् ॥ ३२ ॥
भूर्जत्वचि श्रीफलस्य निर्यासैस्तस्य मध्यतः ।
षट्कोणं विलिखेत् तस्य प्रागग्रेष्वथ त्रिष्वपि ॥ ३३ ॥
विलिखेत् त्रिपुरावर्णानधो बीजं तु नेत्रकम् ।
दलेष्वष्टासु तु पुनर्वैष्णवीतन्त्रसङ्गतान् ॥ ३४ ॥
अष्टौ वर्णांस्तु विलिखेत् तथा द्वार्षु चतुर्ष्वपि ।
षट्कोणेपूत्तराकोणक्रमेणैकाग्रमानसः ॥ ३५ ॥
तद्धृत्वा दक्षिणकरे वैष्णवीतन्त्रमन्त्रकम् ।
जपेत् त्रिभिर्दिनैरेवायुतं सयतमानसः ॥ ३६ ॥
प्राणायामसहस्राणि त्रीणि कृत्वा तु हर्षितः ।
सन्ध्याकाले नवम्यां तु शीर्षेण धारयेद् बुधः ॥ ३७ ॥
शतायुः सर्वदमनो[५७] मतिमान् पण्डितोत्तमः ।
बलवीर्यधनैश्वर्ययुक्तः पार्थिव एव वा ॥ ३८ ॥
प्रत्यक्षतो महामाया कामाख्या त्रिपुरामपि ।
नित्यं पश्यति मेधावी महोच्छ्रासां च शारदाम् ॥ ३९ ॥
सिंहव्याघ्रौ[५८] भुजङ्गो वा येऽन्ये वा तस्य हिंसकाः ।
सर्वे तस्य तनु प्राप्य विषीदन्ति न सशयः ॥ ४० ॥
जयहेतुरतोऽन्यस्मात् सग्रामे शास्त्रवादतः ।
न विद्यते त्रिभुवने तस्मात् कुर्यात् तु यन्त्रकम् ॥ ४१ ॥
अन्ते देवीगृहं प्राप्य ततो मोक्षमवाप्नुयात् ।
महामाया शारदाख्या कामाख्या त्रिपुरा तथा ॥ ४२ ॥
महोत्साहा तथैतेषा मन्त्राणां यो गणो भवेत् ।
मण्डलं चाष्टदलकं तन्मध्ये विलिखेत् पुनः ॥ ४३ ॥

---

५७ सर्वदर्शनो ।   ५८. विषं ग्राहो ।

लिखित्वा पूर्ववत् पूर्वं प्रोक्तं मन्त्रगण समम् ।
अन्यद्वय द्वारदेशे कोष्ठेष्वक्षरतो लिखेत् ॥ ४४ ॥
शुक्लकौशेयवस्त्रेषु[५९] रसैर्वह्निशिखस्य तु ।
उत्तरीय तु तद्वस्त्र कृत्वा जप्य समाचरेत् ॥ ४५ ॥
कृतोपवासः शुद्धश्च मातृकान्यासपूर्वकम् ।
पञ्चानामपि वर्गाणा सहस्राणि तु पच वै ॥ ४६ ॥
दिवसैः पञ्चभिर्जप्त्वा तदन्ते च समाचरेत् ।
प्राणायामसहस्राणि पंच वे पचभिर्दिनैः ॥ ४७ ॥
अन्ते तु कवचन्यास कात्यायन्याः समाचरेत् ।
ततस्तु मातृकामन्त्रैः श्वासरोधनपूर्वकम् ॥ ४८ ॥
त्रिः पिबेत् कपिलाक्षीर जागृवाश्च तदा निशि ।
एव यः कुरुते यन्त्र शरीरे शुक्लवाससा ॥ ४९ ॥
सोऽत्र सिद्धिमवाप्नोति देवीलोकं च गच्छति ।
य उत्तरीय बिभृयाद् वस्त्र मन्त्रेण मन्त्रितम् ॥ ५० ॥
नित्यमेव महाभाग प्रभाव तस्य वै शृणु ।
न तस्य देहे शस्त्राणि प्रवेक्ष्यन्ति कदाचन ॥ ५१ ॥
नाग्निर्दहति तत्काय नापः सक्लेदयन्ति च ।
राक्षसाश्च पिशाचाश्च भूताद्या ये तु हिसकाः ॥ ५२ ॥
ते तं दृष्ट्वा महाभाग भुव गच्छन्ति वै भिया ।
गच्छेदवारितः सोऽपि सर्वत्र साधकोत्तमः ॥ ५३ ॥
वशीकरोति देवाश्च नृपानन्याश्च योषितः ।
उत्सहेद् यदि मेधावी वाग्मी राजा च वै भवेत् ॥ ५४ ॥
चिरजीवी महाभागो धनधान्यसमृद्धिमान् ।
कविः प्रज्ञासमायुक्तः सोऽभेद्यो जायतेऽरिभिः ॥ ५५ ॥
यस्मिन् पुरे स निवसेद् वज्रपातो न तत्र वै ।
रसः शरीरं शस्त्राणि दृढहस्तोज्झितान्यपि ॥ ५६ ॥
एतं न घ्नन्ति सतत जयः सर्वत्र भैरव ।
अपराध्यन्ति सततं तस्य सर्वत्र भैरव ॥ ५७ ॥
नाधयो व्याधयस्तस्य जायन्ते तु कदाचन ।
देवीपुत्रः स मतिमान् मृतो मोक्षमवाप्नुयात् ॥ ५८ ॥
न्त्रिता स्वामिना यन्त्रं या दधाति पतिव्रता ।

---

५९. ' वस्त्रेण ।

पुत्रैश्वर्यमवाप्नोति दीर्घायुः सा वधूर्भवेत् ॥ ५९ ॥
प्रत्येकमेक सहत्यावर्धनासहितेन च ।
क्रमाद् विंशतिमन्त्राणि कथितानि मयेह वै ॥ ६० ॥
तानि प्रत्येकतो बुद्ध्वा यो न्यसेत् सर्वदा हृदि ।
लिखित्वा सर्वयन्त्राणि बिभृयाद्योऽथ वा गले ॥ ६१ ॥
देवेन्द्रो जायते सोऽत्र प्रभावेणेह भूतले ।
पूर्वोक्तानि समस्तानि फलान्याप्नोति तत्क्षणात् ।
पिहितः सर्वलोकान्नीन्नित्यमेव प्रपश्यति ॥ ६२ ॥
एवं सार्धं यन्त्रवर्गैः समस्तै-
रष्टाभिर्यत् पूर्वमुक्त सहस्रम् ।
शुक्ले वस्त्रे संलिखित्वा स्वदेहे
धृत्वा नित्य प्राप्नुयाद् वै समस्तम् ॥ ६३ ॥
यः क्षत्रजातिर्हृदये स कुर्यात्
सग्रामकाले कवचेष्टधाम्नि ।
मन्त्राक्षराण्यादिकृतानि देव्या
अष्टौ बहिर्गात्रविशेषतश्च ॥ ६४ ॥
गले हरिं वक्षसि वै लिखेद् विधि
स्तनद्वये पुत्रयुत महेश्वरम् ।
बाह्वंगसन्ध्योश्च हरिं च वैष्णवीं
बाह्वोस्तु लक्ष्मी च सरस्वती च ॥ ६५ ॥
एवं रणाष्टाङ्गमिदं विधाय
गात्रे सवर्मण्यनुचिन्तयेच्छिवाम्[61] ।
लिखेल्ललाटे तिलकान्तरे नरः
समस्तमन्त्राक्षरयन्त्रमुत्तमम् ॥ ६६ ॥
ततो जपेदष्टधा तु पाणिं दत्त्वाष्टधामसु च ।
वैष्णवीतन्त्रमन्त्र तु ततो गच्छेद्रणाजिरम् ॥ ६७ ॥
स तु वीरो मम समः संग्रामेषु च जायते ।
तृणानीव परास्त्राणि जायन्तेऽग्नौ तथात्मनि[62] ॥ ६८ ॥
विनिःसरन्ति रिपवो याचका धनिनो धनम्[63] ।
सिंहाग्रथान्नरशार्दूलो वीर्यवान् बलवान् भवेत् ॥ ६९ ॥

६०. एभिः । ६१ गात्रेषु धर्मस्यानुचिन्तयन् शिवाम् ।
६२ तस्याग्नेरिव जायते । ६३ तद्ग्राद् हरिणा यथा ।

इद रहस्य कथित कामाख्यायास्तु भैरव।
वैष्णव्यास्तन्त्रमुख्येषु त्रिपुरायास्ततः शृणु ॥ ७० ॥
तस्यास्तु सर्वमन्त्राणि त्रयोदशयुतानि वै।
विंशति तु सहस्राणा तन्त्राद्य वाग्भव स्मृतम् ॥ ७१ ॥
द्वितीय कामराजाख्यं मोहन च तृतीयकम्।
आम्रेडितं वाग्भव तु चतुर्थं परिकीर्तितम् ॥ ७२ ॥
नेत्रबीजं द्वितीय तु द्विरुक्तं वाग्भव तथा।
आद्य तत्पचम प्रोक्त चतुर्भिरपि चाक्षरैः ॥ ७३ ॥
नेत्रबीज द्वितीय तु प्रथम परिकीर्तितम्।
द्वितीय कामबीज तु तृतीय वाग्भवं तथा ॥ ७४ ॥
एभिस्त्रिभिस्तु यन्मन्त्र तत् षष्ठं परिकीर्तितम्।
नेत्रबीज द्वितीय तु वाग्भव तेन सप्तमम् ॥ ७५ ॥
तदेव वाग्भवाद्यं तु अष्टमं परिकीर्तितम्।
वाग्भवं कामबीजं तु नेत्राभ्या नवम स्मृतम् ॥ ७६ ॥
कामबीजं तथैवाद्यं दशम चैव मोहनम्।
एकादशमिद प्रोक्त डामराद्यं तु वाग्भवम् ॥ ७७ ॥
द्वादशं कीर्तितं मन्त्रं शेषतस्त्रैपुर महः।
तन्महस्त्रैपुरं मन्त्र शृणुष्वैकमनास्त्विदम् ॥ ७८ ॥
प्रान्तादिस्तस्य चाप्यादिर्वह्निर्वाग्भवसन्धितः[६४]।
आद्य त्रिपुरभैरव्या बीजमाद्य प्रकीर्तितम् ॥ ७९ ॥
उपान्तश्च तदादिश्च वह्निशेषस्वरस्तथा[६५]।
चतुर्थस्वरबिन्द्विन्दुयुताश्चैतत् द्वितीयकम् ॥ ८० ॥
उपान्तश्च तदादिश्च वह्निशेषस्वरस्तथा।
समाप्तिर्बिन्दुसहिता सहितस्तु तृतीयकः ॥ ८१ ॥
एतत् तत्त्व विजानाति यो नरो भुवि भूमणिः।
सिद्धविद्याधरेभ्यस्तु सोऽधिकस्तत्समो भवेत्[६६]॥ ८२ ॥
एते त्रयोदश प्रोक्ता मन्त्रा मन्त्रेषु चोज्ज्वलाः।
विंशतेस्तु सहस्रेभ्यः पराश्चैते प्रकीर्तिताः ॥ ८३ ॥
विंशतेस्तु सहस्राणामाद्यमेतत् प्रकीर्तितम्।
त्रिपुरायास्तु बालाया मन्त्रं त्वच्छृणु भैरव ॥ ८४ ॥
वाग्भवं कामराजस्तु उपान्तादिः सबिन्दुकः।

---

६४. सन्निभः। ६५. व्यञ्जनाद्य भूषानन.। ६६ मन्मथो महान्।

शेषस्वरसमाप्तिभ्या मन्त्रमेतत् प्रकीतितम् ॥ ८५ ॥
एषा तु त्रिपुरा बाला मध्या प्रोक्ता पुरैव हि।
शेषा तेजस्विनी प्रोक्ता येय त्रिपुरभैरवी ॥ ८६ ॥
मध्यायाः पूजन प्रोक्त बालायाः शृणु साम्प्रतम्।
तथा त्रिपुरभैरव्याः सर्वसिद्धिप्रदायकम् ॥ ८७ ॥
विभिद्य शक्त्या शम्भुं तु शक्ति चापि विभेदयेत्।
शम्भवे वर्णषट्कोण केशर तत्र संलिखेत् ॥ ८८ ॥
मध्यायास्त्रिपुरायास्तु यादृशे द्वारमण्डले।
तादृशेऽत्रापि कर्तव्य कोणेषु लिखितं तथा ॥ ८९ ॥
पापोत्सारणकर्माणि[६७] भूम्यादीना विशोधनम्।
पूर्वमुत्तरतन्त्रोक्त त्रिपुरापीठभाषितम् ॥ ९० ॥
कामाख्यापूजने प्रोक्त सर्व कुर्यात् तु साधकः।
दहनप्लवनादीनि प्रतिपत्तिं च पात्रके[६८] ॥ ९१ ॥
सर्वं तु पूर्ववत् कार्यं कामाख्यापूजने यथा।
कृत्वाऽत्र देहन्यासं तु मन्त्रवर्णैस्तथाक्षरैः ॥ ९२ ॥
सर्वैः स्वरैस्तथा काद्यैस्ततो रूप विचिन्तयेत्।
चतुर्भुजा रक्तवर्णा रक्तवस्त्रविभूषिताम् ॥ ९३ ॥
दक्षिणोर्ध्वे स्रजं चाधो बिभ्रतीं पुस्तकोत्तमम्।
अभयं वामहस्ताभ्यां वरं च दधतीं तथा ॥ ९४ ॥
सहस्रसूर्यसकाशां त्रिनेत्रां गजगामिनीम्।
पीनतुङ्गस्तनयुगा सितप्रेतासनस्थिताम् ॥ ९५ ॥
स्मितप्रसन्नवदनां सर्वालकारसयुताम्।
तिसृभिर्मुण्डमालाभिः शिरोवक्षःकटीषु च ॥ ९६ ॥
त्रिगुणां त्रिगुणीभूतैः प्रत्येकं परिभूषिताम्।
मदिराघूर्णनयनां रक्तदन्तच्छदद्वयाम् ॥ ९७ ॥
चिन्तयेद् वरदां देवीमेव त्रिपुरभैरवीम्।
बालायास्त्रिपुरायास्तु रूपं पूर्वं प्रपूजने ॥ ९८ ॥
उक्तः क्रमः पीठयोगे तन्त्रादि शृणु भैरव।
पुष्पबाणांस्तु[६९] पाश च धत्ते पौष्पं शरासनम् ॥ ९९ ॥
पाशं च[७०] कुणपारूढा सा बाला त्रिपुरा स्मृता।
मन्मत्रे[७१] त्रिपुरे देवीं विद्महे पदमादितः ॥ १०० ॥

---

६७. कर्मादि। ६८. 'मातृके। ६९. पुष्पबाणं च।
७०. बाणं। ७१. तन्मध्ये।

कामेश्वरी धीमहि त्वा तन्नः क्लिन्ने प्रचोदयात् ।
एषा त्रिपुरगायत्रीत्यावाहनविशेषतः ॥ १०१ ॥
स्नानाद्यैः पूजयेत् सम्यग् बालामन्या च भैरवीम् ।
अस्याः क्रमे विशेषो यो न्यासे चोत्तरकर्मणि ॥ १०२ ॥
तत्सर्व सह मन्त्रौघैः शृणु वेतालभैरव ।
ब्राह्मे मुहूर्ते उत्थाय चिन्तयेत् परम गुरुम् ॥ १०३ ॥
ततोऽनु स्वगुरु शुद्ध ततस्त्रिपुरभैरवीम् ।
चतुर्भुजा शुक्लवर्णा वरदाभयपुस्तकाम् ॥ १०४ ॥
अक्षमाला च क्रमतो धत्ते वामे च दक्षिणे ।
सुवर्णरत्नखचिते सस्थिता प्रवरासने ॥ १०५ ॥
सौवर्णमुत्तरीय तु धत्ते सौवर्णकुण्डले ।
स्वगुरु वर्णतो ध्यानात् तथैव परिचिन्तयेत् ॥ १०६ ॥
भैरवीं चिन्तयित्वा तु तत उत्थाय चाचरेत् ।
मंत्रमाचमनं चैव दन्ताना शोधन तथा ॥ १०७ ॥
प्रातःस्नानं ततः कुर्यात् त्रैपुरं योजयन् क्रमम् ।
सर्वत्र देवीमन्त्रेषु वैदिकेष्वपि भैरवीम् ॥ १०८ ॥
त्रिपुरा चिन्तयेन्नित्यं देवमन्त्रेषु च क्रमात् ।
त्रिभिस्तु त्रिपुराबीजैस्त्रिधा मज्जनमाचरेत् ॥ १०९ ॥
देवानामपि सर्वेषु भैरवेषु[७२] पद सदा ।
कुर्याद् विशेषण नित्य नोच्चार्य निर्विशेषणम् ॥ ११० ॥
आपः पुनन्तु पृथिवीमुक्त्वा त्रिपुरभैरवीम् ।
कुर्यादाचमनं विप्रो द्रुपदायां तथाचरेत् ॥ १११ ॥
इदं विष्णुर्भैरवस्तु विचक्रम इतीरितम् ।
मृदालम्भनकृत्येषु नित्यमेवाप्युदीरयेत् ॥ ११२ ॥
गायत्री त्रिपुराद्या तु भैरवीमाह्वयेच्छिवाम् ।
मार्तण्डभैरवायेति सूर्यायार्घ्यं निवेदयेत् ॥ ११३ ॥
उदुत्यं जातवेदसं देवं वहन्ति केतवः ।
दृशे विश्वाय सूर्यं शेषे भैरवमीरयेत् ॥ ११४ ॥
तर्पणादौ प्रयुंजीत तृप्यता ब्रह्मभैरवः ।
आवाहने स्वय पितॄन् भैरवानिति कीर्तयेत् ॥ ११५ ॥

---

७२ सम ।

तृप्यतां भैरवीमातः पितर्भैरव तृप्यताम् ।
आदौ च त्रिपुरापूर्वं तर्पणेऽपि प्रयोजयेत् ॥ ११६ ॥
ज्योतिष्टोमाश्वमेधादौ यत्र य यं प्रपूजयेत् ।
तत्र भैरवरूपेण देवीमपि च भैरवीम् ॥ ११७ ॥
मदिरापात्रमालोक्य रक्तवस्त्रा स्त्रियं तथा ।
शिरो नरस्य दृष्ट्वा तु भैरवी चिन्तयेद् द्विजः ॥ ११८ ॥
स्त्रियो दृष्ट्वा ह्यथैकत्र युवतीः सुमनोहराः ।
ताभ्यस्त्रिपुरभैरव्याः[७३] प्रीतये वन्दनादिकम् ॥ ११९ ॥
दद्याद् भक्त्या तु मनसा चिन्तयन्नथ भैरवीम् ।
भैरवी प्रतिगृह्णामि भैरवोऽहं प्रतिग्रही ॥ १२० ॥
कन्याया भावयेद् धीमास्त्रिपुरायाः प्रपूजकः ।
भैरवाय ददाम्यद्य देवीं त्रिपुरभैरवीम् ॥ १२१ ॥
इतीरयेत् प्रदाने तु कन्यायास्त्रिपुरा ततः ।
तस्याः पूजोपकरणपात्राद्यं यान्यपूजने ॥ १२२ ॥
आसनाद्यं च सततं नोपयोज्य कदाचन ।
सकृत् तु दापयेदन्यैर्मदिरा साधको द्विजः ॥ १२३ ॥
शूद्रादयस्तु सततं ददुरासवमुत्तमम्[७४] ।
एवं तु वामभावेन यजेत् त्रिपुर भैरवीम् ॥ १२४ ॥
बाला तु वामदाक्षिण्यमार्गाभ्यामपि पूजयेत्[७५] ।
श्मशानभैरवीं देवीमुग्रतारां तथैव च ॥ १२५ ॥
उच्छिष्टभैरवीं चण्डी तथा[७६] त्रिपुरभैरवीम् ।
एतास्तु वामभावेन पूज्या दक्षिणता विना ॥ १२६ ॥
ऋषीन् देवान् पितृंश्चैव मनुष्यान् सुतसञ्चयान् ।
योजयेत् पंचभिर्यज्ञैर्ऋणानि परिशोधयेत् ॥ १२७ ॥
विधिवत् स्नानदानाभ्यां कुर्वन् यद्विधिपूजनम् ।
क्रियते सरहस्यं तु तद्दाक्षिण्यमिहोच्यते ॥ १२८ ॥
सर्वे च पितृदेवादौ यस्माद् भवति दक्षिणः ।
देवी च दक्षिणा यस्मात् तस्माद् दक्षिण उच्यते ॥ १२९ ॥
या पुनः पूज्यमाना तु देवादीनां च पूर्वतः[७७] ।
यज्ञभागं स्वयं धत्ते[७८] साबला तु प्रकीर्तिता ॥ १३० ॥

---

७३ भाद्या । ७४ दद्युरासर । ७५. पूजनं । ७६. तारां ।
७७. सर्वतः । ७८. भुङ्क्ते ।

पूजकोऽपि भवेद् वामस्तत्रैव सततं सुत।
पंचयज्ञान् न वा कुर्याद् यद् वा वाम्यप्रपूजने ॥ १३१ ॥
अन्यस्य पूजाभाग हि यतो गृह्णाति बालिका।
यत्पूजयेद्वामभावैर्न तत् स्यादृणशोधनम् ॥ १३२ ॥
पितृदेवनरादीना जायते च कदाचन।
सोऽभ्यस्य त्रिपुरायोग तेन योगेन सयुतः ॥ १३३ ॥
जीयते यदि सुप्राज्ञस्तदा मोक्षमवाप्नुयात्।
स च मोक्षश्चिरेणैव जायतेऽत्र पुनः[७९] पुनः ॥ १३४ ॥
ऋणशोधनजैः पापैराक्रान्तश्चैव भैरव।
इह लोके सुखश्वैर्ययुक्तः सर्वत्र वल्लभः ॥ १३५ ॥
मदनोपमकान्तेन शरीरेण विराजता।
सराष्ट्रकं च राजान वशीकृत्य समन्ततः ॥ १३६ ॥
मोहयन् वनिताः सर्वाः सर्वाश्च मदविह्वलाः।
सिहान् व्याघ्रान् स्तरक्षूश्च भूतप्रेतपिशाचकान् ॥ १३७ ॥
वशीकुर्वन् विचरति वायुवेगोद्यतस्ततः।
बाला वा त्रिपुरा देवी मध्या वाप्यथ भैरवीम् ॥ १३८ ॥
यो यजेत् परया भक्त्या यश्च बाणोपमाकृतिः।
कामेश्वरी तु कामाख्या पूजयेत् तु यथेच्छया ॥ १३९ ॥
दाक्षिण्याद् वामभावाद् वा सर्वथा सिद्धिमाप्नुयात्।
महामाया शारदा च शैलपुत्रीं तथैव च ॥ १४० ॥
यथा तथा प्रकारेण दाक्षिण्यादेव पूजयेत्।
यो दाक्षिण्यं विना भाव महामायां समर्चति ॥ १४१ ॥
स पापः स्वर्गलोकेभ्यश्च्युतो भवति रोगधृक्।
अन्यास्तु शिवदूत्याद्या देव्यो याः पूर्वमीरिताः ॥ १४२ ॥
तास्तु वां पान्तु दाक्षिण्यात् पूजितव्यास्तु साधकैः।
किन्तु यः पूजको वामः सोऽन्यासा परिवर्जितः ॥ १४३ ॥
सर्वासा पूजकः[८०] स्यात् तु दक्षिणस्तेन उत्तमः।
अथ त्रिपुरभैरव्या न्यासं च शृणु भैरव ॥ १४४ ॥
येन वै न्यासमात्रेण देववज्जायते नरः।
भैरवीतन्त्रमन्त्रस्य ऋषिर्दक्षिण उच्यते ॥ १४५ ॥
छन्दः पक्तिः समाख्याता देवी त्रिपुरभैरवी।

---

७९ त्रैपुरः। ८० पूरक।

कामार्थयोः साधने च विनियोगः प्रकीर्तितः ॥ १४६ ॥
हकारं विन्यसेन्नाभौ सकार वस्तितो न्यसेत् ।
वकार शेफे विन्यस्य एकार च गुदे तथा ॥ १४७ ॥
पुनरूर्वोस्तथैवाद्य जानुयुग्मे द्वितीयकम् ।
तृतीय जङ्घयोर्न्यस्य चतुर्थं पादयोर्न्यसेत् ॥ १४८ ॥
त्रिविध[८१] विन्यसेद् देव नाभ्यादेः पादसङ्गतम् ।
द्वितीयस्य तु बीजस्य आद्यं ह्यद्येव विन्यसेत् ॥ १४९ ॥
वामे स्तने द्वितीयं तु तृतीय दक्षिणे स्तने ।
चतुर्थमुदरे न्यस्य पचमं पार्श्वयोर्न्यसेत् ॥ १५०
षष्ठ नाभौ परिन्यस्य न्यसेच्चापि त्रिधा त्रिधा ।
तृतीयस्य तु बीजस्य मूर्ध्नि चाय तु विन्यसेत् ॥ १५१ ॥
द्वितीय न्यस्य केशान्ते तृतीय वदने न्यसेत् ।
चतुर्थं हृदये न्यस्य यथा स्यात् तु त्रिधा त्रिधा ॥ १५२ ॥
आद्याद्यं दक्षिणाङ्गुष्ठे द्वितीय तर्जनी पुनः ।
तृतीय च मध्यमायामनामाया चतुर्थकम् ॥ १५३ ॥
तृतीयाद्य कनिष्ठाया वामाङ्गुष्ठे द्वितीयकम् ।
तृतीय वामतर्जन्या चतुर्थं मध्यमातनौ ॥ १५४ ॥
अनामायां पंचमं तु षष्ठं शेषे तु विन्यसेत् ।
एव त्रिधा तु विन्यस्य तृतीयमथ बीजकम् ॥ १५५ ॥
उभयोर्हस्तयोः कृत्वा अङ्गुष्ठाद्य युगं युगम् ।
तृतीयं बीजवर्णांस्तु विन्यसेत् क्रमतो बुधः ॥ १५६ ॥
पिण्डितं सर्वबीजं तु विन्यसेत् तु कनिष्ठयोः ।
आद्य तु [८२]तलयोर्न्यस्य पृष्ठयोश्च द्वितीयकम् ॥ १५७ ॥
तालत्रयं ततो दत्त्वा तृतीयेन तु वेष्टनम् ।
कर्णयोश्चिबुके गण्डे मुखे दृङ्नासयोस्तथा ॥ १५८ ॥
स्कन्धयोश्च कफोणौ[८३] च जठरे शिश्नमूर्धनी ।
पादयोः पार्श्वयोश्चैव हृदये स्तनयुग्मके ॥ १५९ ॥
कण्ठदेशे च न्यस्तव्या मन्त्रवर्णक्रमात् पुनः ।
लिङ्गे रत्यै नम इति वाग्भवाद्येन विन्यसेत् ॥ १६० ॥
ॐ क्लीं प्रीत्यै नम इति हृदये विन्यसेत् ततः ।
मनो भवायेति ततो भ्रुवोर्मध्ये तृतीयकम् ॥ १६१ ॥

---

८१ त्रिधावर्ण्यं । ८२ स्तनयो. । ८३. कफक्षयोश्च ।

विन्यसेत् त्रिपुराबीजं सद्यो देवत्वसिद्धये।
ॐ ईं ईशानरूपाय ततो मनोभवाय वै ॥ १६२ ॥
नम इत्यन्ततः प्रोक्तो मूर्ध्नीशानं न्यसेत् पुनः।
वक्त्रे तत्पुरुष चापि बीजेन मकरध्वजम् ॥ १६३ ॥
हृदये घोरकन्दर्पमाद्यबीजेन वै न्यसेत्।
शिश्ने वा वामदेव[८४] तु मन्मथ चापि विन्यसेत् ॥ १६४ ॥
सद्योजात पादद्वये कामदेव च विन्यसेत्।
ॐ[८५] कारं च हकार च रेफमेकत्र सन्धितम् ॥ १६५ ॥
प्रान्तस्वर वाग्भवाद्य स्वरैर्ह्रस्वैस्तु पञ्चभिः।
एभिस्तु पञ्चभिर्मन्त्रैरीशनादीनि विन्यसेत् ॥ १६६ ॥
वक्त्राणि पूर्वमुक्तानि स्वमुखोर्ध्वे तु पूर्वतः।
दक्षिणोत्तरयोः पश्चात् पश्चिमे चापि विन्यसेत् ॥ १६७ ॥
हृदयादिषडङ्गानि दीर्घैराद्यस्वरैः पुनः।
न्यसेत् ततः पञ्चबाणान् मूर्धादिष्वथ विन्यसेत् ॥ १६८ ॥
ॐ ह्री क्ली सौ द्रावणाय न्यसेन्मूर्ध्नि ततः पुनः।
ॐ ह्रीं क्षोभणबाणाय पद्भ्या नम इतीरयेत् ॥ १६९ ॥
ॐ क्ली क्ली ह्री समाप्यन्तु षट्कारान्तार्धचन्द्रकैः।
वक्त्रे वशीकृत लिङ्गे सम्मोहनमथो न्यसेत् ॥ १७० ॥
आकर्षण तथा बाण हृदि मन्त्रैः क्रमान्न्यसेत्।
वाग्भवाद्यन्तकारान्तो[८६] वषट्कारसमन्वितः ॥ १७१ ॥
त्रिःशेषस्वर एवात्र चन्द्रार्धो बिन्दुसंयुतः।
एभिस्तु पञ्चभिर्मन्त्रैरष्टशक्तीः क्रमादिमाः ॥ १७२ ॥
एतेषु चाष्टस्थानेषु विन्यसेन्मन्त्रवित् पुनः।
सुभगां च भगा देवीं तृतीयां भगरूपिणीम् ॥ १७३ ॥
भगमालां चतुर्थीं तु अनङ्गकुसुमां ततः।
अनङ्गमेखला पश्चादनङ्गमदनां तथा[८७] ॥ १७४ ॥
अष्टमीं च तथा देवीं मदविभ्रममन्थराम्।
रूपतो ध्यानतश्चैषा यथा त्रिपुरभैरवी ॥ १७५ ॥
ललाटभ्रूमध्यभागमुखकर्णान्तकण्ठके ।
हृन्नाभिलिंगेष्वेवात्र न्यस्तव्या अष्टशक्तयः ॥ १७६ ॥

---

८४. ' बीजं। ८५ सकार च। ८६ वाग्भवाद्य दकारान्तो।
८७ तत।

शिरोललाटभ्रूयुग्मकर्णनेत्रद्वयेषु च।
गण्डयोरथ नासाया दन्तवीथ्या[८८] मुखे तथा ॥ १७७ ॥
चतुर्दशपदेष्वेषु न्यसेच्चतुर्दशस्वरान्।
चिबुके त्वथ ग्रीवाया कण्ठेदेशे तु पार्श्वयोः ॥ १७८ ॥
स्तनयोः कक्षयोश्चापि कफोण्योर्हस्तयोस्तथा।
तत् पृष्ठयोस्तथा नाभौ लिङ्गे चोरुद्वये तथा ॥ १७९ ॥
अष्ठीवदोर्जङ्घयोस्तु स्फिचोस्तु पदमूलयोः।
चरणाङ्गुष्ठयोः कादिमात्रान् वर्णांस्तु विन्यसेत् ॥ १८० ॥
मेखलाया कण्ठदेशे बाहुभूषणभागतः।
हारे स्रजि कुण्डले च केशबन्धे तथैव च ॥ १८१ ॥
चूडामणौ च न्यस्तव्या नकाराद्या. क्रमात्पुनः।
मन्त्राक्षराणि त्रीण्येव सन्धितानि पुनस्तथा ॥ १८२ ॥
प्रातिलोम्येन विन्यस्य मन्त्रैर्मूर्ध्नि त्रिधा त्रिधा।
अमृता योगिनीं विश्वयोगिनी चाक्षरक्रमात् ॥ १८३ ॥
ततो बीजत्र्यक्षराणि मूर्ध्नि बाहौ[८९] तथा हृदि।
विन्यस्य पूर्ववत् पूजामारभेन्मन्त्रविद् बुधः ॥ १८४ ॥
पूर्ववत् पूजयेद् देवी पीठदेवविवर्जिताम्।
विशषतो ह्यष्टशक्तीः क्रमान् तु[९०] स्वभगादिकाः ॥ १८५ ॥
मण्डलस्याष्टदिग्भागे पूर्वादौ परिचिन्तयेत्।
त्रिकोणाग्रे मृताद्यास्तु[९१] सम्पूज्यास्तु त्रियोनयः ॥ १८६ ॥
मध्येऽष्टभूषणान्येव पूजयेत् तु ततः[९२] पुनः।
ईशानादीनि वक्त्राणि मम भैरव मध्यतः ॥ १८७ ॥
पूजयेत् तु तथा तत्र मनोभवमुखानपि।
अन्यच्च पूजने तत्र क्रमः पूर्वोदितश्च यः ॥ १८८ ॥
स एव सततं ग्राह्यः त्रिपुरापरिपूजने।
निर्माल्यधारिणी देवी चैतस्याः शृणु भैरवी ॥ १८९ ॥
विसर्जनं चोत्तरस्यां त्यक्त्वा निर्माल्यमाचरेत्।
त्रिमूर्तिं पूजयेत् तां तु देवीं त्रिपुरभैरवीम् ॥ १९० ॥
न जपेत् त्रिंशता न्यून साधकस्तु कदाचन।
अङ्गुष्ठमध्यमानामाङ्गुलीभिस्तिसृभिः पुनः ॥ १९१ ॥

---

८८. अन्तरीक्षे। ८९. बाह्वोस्तथा। ९०. ताः।
९१ अमृताख्यास्तु। ९२. पूजयेदन्तत ।

सदा पुष्पादिक दद्यान्माला तु त्रिगुणा चरेत् ।
चर्मासनमधिष्ठाय पश्चात् कृत्वा पदद्वयम् ॥ १९२ ॥
पूजयेन्निर्जने देशे साधकोऽनन्यमानसः ।
आसादयेत् तु पुष्पादि नैवेद्यादि च यद् भवेत् ॥ १९३ ॥
तद् वामहस्तमुख्येन सततं साधको बुधः[९३] ।
त्रिच्छिद्रा त्रिपुरा प्रोक्ता न सम्यक्पूजिता यदि ॥ १९४ ॥
शरीरे निन्दितो व्याधिर्जायतेऽवश्यमेव हि ।
अवश्याः पुत्रदाराश्च भृत्याद्याश्च भवन्ति हि ॥ १९५ ॥
अस्त्राघातो[९४] भवेत् स्वस्य प्राणत्यागो न संशयः ।
त्रिच्छिद्रदायिनी चैवमन्यथा पूजिता यदि ॥ १९६ ॥
इतः प्रकारा[९५] सतत सम्यग् वेतालभैरव ।
एषा च त्रिपुरादेवी याश्चान्याः पूर्वभाषिताः ॥ १९७ ॥
सर्वास्तु माया भैरव्या योगनिद्रा जगत्प्रसूः ।
तस्याः प्रपंचरूपैस्तु बहुभिः सैव क्रीडति ॥ १९८ ॥
महामाया मूलभूता ततस्तु शारदा पुरा ।
उमा ततः शैलपुत्री मत्प्रियायास्ततस्त्विमाः ॥ १९९ ॥
उग्रचण्डा प्रचण्डाद्यास्त्रिपुराद्यास्तथैव च ।
तासा चापि सदैवाह महाभैरवरूपधृक् ॥ २०० ॥
नायकः सुतरा ताभिर्नित्य नित्य वसेद् बुधः ।
मम भैरवरूपस्य मन्त्रः पूर्वं मयोदितः ॥ २०१ ॥
रूप चोक्त पूजनेषु त्रिपुरायाः क्रमः स्मृतः ।
महाभैरव विद्महे कालरुद्राय[९६] धीमहि ॥ २०२ ॥
तन्नः कामो भैरवस्तु क्लदिन्[९७]नित्य प्रचोदयात् ।
एषा भैरवरूपस्य गायत्री मे प्रतिष्ठिता ॥ २०३ ॥
यथेष्टमासमद्यादि भोजनार्थं मया धृतः ।
महाभैरवकायोऽयं तथा स्त्रीरतिसगमे ॥ २०४ ॥
अयं तु वाम्यभावेन पूज्यो मद्यादिभिः सदा ।
वामः कायो ब्रह्मणोऽपि मांसमद्यादिभुक्तये ॥ २०५ ॥
कृतो महामोहनामा चार्वाकादिप्रवर्तकः ।
विष्णोर्वामात्मिका[९८] मूर्तिर्नरसिंहाह्वया भवेत् ॥ २०६ ॥
सा तु दाक्षिण्यवामाभ्या पूजनीया सदा बुधैः ।

---

९३ नर । ९४. शस्त्राघातात् । ९५ तत. प्रकारात् ।
९६ केलिरुद्राय । ९७ क्लेदि । ९८ विघ्नेश्वरात्मिका ।

तथैव बालगोपालमूर्तिर्जरायुवेष्टिता[९९] ॥ २०७ ॥
मद्यमांसाशनो भोगी लोलुपः स्त्रीषु सर्वदा ।
वह्वथस्तु चण्डिकादेव्याः वामिका मूर्तयः स्मृताः ॥ २०८ ॥
लक्ष्म्यास्तु वामिकामूर्तिरुक्ता दहनभैरवी ।
याग्निदाह पुरग्राममन्दिरेष्वकरोदयम् ॥ २०९ ॥
सुपूजिता[१००] महालक्ष्मीर्दहल्या ता तु पूजयेत् ।
वाग्भैरवी सरस्वत्या वामिकामूर्तिरीरिता ॥ २१० ॥
तस्या मन्त्र पुरा प्रोक्त शुक्लवर्णा तु सा स्मृता ।
मध्यायास्त्रिपुरायास्तु रूप ध्यानमिहोच्यते ॥ २११ ॥
पूजाक्रमस्तथैवोक्तः सर्वत्रैव तु भैरव।
मार्तण्डभैरवो नाम[१] मूर्तिः सूर्यस्य कीर्तिता ॥ २१२ ॥
गणेशस्याग्निवेतालः कथितो वामनामकः ।
एते वाम्येन भावेन पूजनीया विशेषतः ॥ २१३ ॥
त्रिधाद्यस्तु यथापूर्व नमयैर्वलवैस्तथा ।
वान्तैर्द्विरेफैः सर्वत्र यथा कृत्वा तथा तथा ॥ २१४ ॥
अनुस्वारविसर्गाभ्या प्राक्शेषौ परिकीर्तितौ ।
मध्ये तु केवलाः पूर्व सानुस्वारविसृष्टिभिः ॥ २१५ ॥
पश्चाद् द्वित्रिक्रमाद् यस्तु वर्णैरेकेन चैव हि ।
व्यस्तैः समस्तैरपि च दकारादिषु सयुतैः[२] ॥ २१६ ॥
आद्यायास्त्रिपुरायास्तु मन्त्रवद् योजितैस्तथा ।
तथा त्रिपुरभैरव्या मन्त्रवद्याक्षरैरपि ॥ २१७ ॥
त्रिश्चतुर्दशभिः कृत्वा डादींस्त्रींस्तु विशारयेत् ।
द्वितीय द्विगुण कृत्वा शेषेऽत्रादौ[३] च योजयेत् ॥ २१८ ॥
विंशतिस्तु सहस्राणि शेषे चापि त्रयोदश ।
आद्यमाद्यं ततः प्रोक्तं वाग्भवाद्यं तृतीयकम् ॥ २१९ ॥
एवं च परमप्येतन्मन्त्राणा च चतुष्टयम् ।
एतज्ज्ञात्वा नरः कामानखिलान् प्राप्य सङ्गतः ॥ २२० ॥
मृते[४] देवीपुर याति क्रमादेव तु भैरव ।
यः सकृत् तु जपेदेतत् सकलं मन्त्रसञ्चयम् ॥ २२१ ॥
प्रथमं कामतो[५] न्यस्य साधकस्तु त्रिभिर्दिनैः ।
चिन्तयन्मनसा देवीं सम्यक् त्रिपुरभैरवीम् ॥ २२२ ॥

---

९९ यो वायुरेषित । १०० अपूजिता । १. वाम ।
२. [illegible] । ३ चादौ । ४. ततो । ५. कामतो ।

स कामानखिलान् प्राप्य स्वरूपे मदनोपमः।
धार्मिको नृपतिर्भूयाद् ब्राह्मणो द्विजराड् भवेत्॥ २२३॥
आराधितशरीरस्तु[6] पिशाचाद्यैः सदैव हि।
नीरोगश्च चिरायुश्च बलवानपि जायते॥ २२४॥
एवं त्रिपुरभैरव्या मया प्रोक्तस्त्वयं क्रमः।
वैष्णव्यास्तु महादेव्याः सहस्राणि तु षोडश॥ २२५॥
शृणु भैरव मन्त्राणि शिवैकाग्रमनाः पुनः।
अष्टोत्तरसहस्रं तु चतुःषष्टिस्तथा त्रयः॥ २२६॥
मन्त्राः प्रोक्ता महादेव्या मूर्तिभेदेन ताः पुनः।
अनुस्वारविसर्गाभ्यां द्विगुणास्ते पुनः समाः॥ २२७॥
कादिव्यञ्जनसंयोगादूर्ध्वाधो व्यस्तभावतः।
द्वाभ्यां त्रिभिश्च सततमुद्धरेन्मन्त्रवित् पुनः॥ २२८॥
अष्टावष्टौ ततः कृत्वा समस्तव्यस्तसंयुतैः।
विस्वरैः सस्वरैश्चापि सानुस्वारविसर्गकैः॥ २२९॥
केवलैरपि तत्रैव द्विव्यस्तैरन्तरैस्तथा।
एवमष्टोत्तरं यावत् संयोगयोगभावतः॥ २३०॥
देव्यास्तु षट्सहस्राणि सहस्राणि तथा दश।
मन्त्रास्तु संख्यया ख्याताः क्रमाद् वेतालभैरव॥ २३१॥
समस्तव्यस्तरूपेण वैष्णव्या ये मयोदिताः।
तान् ज्ञात्वा मानवो याति ममैव सदनं प्रति॥ २३२॥
अष्टम्यां च नवम्यां च[7] सहस्राणि तु षोडश।
यो जपेन्मन्त्रबीजानि सकृदेव तु भैरव॥ २३३॥
ध्यायंस्तु वैष्णवीं मूर्तिं तदेकाग्रमनाः शृणु।
नरराजो भवेद् भूमौ पण्डितश्चातिहर्षितः॥ २३४॥
चिरायुः सुखभोगी स्यादुद्रिक्तो बलवाहनैः।
तान्येव चाष्टधा जप्त्वा सार्वभौमो नृपो भवेत्।
गणाध्यक्षो मृतेः स स्यात् ततो मुक्तिमवाप्नुयात्॥ २३५॥
इति सकलगुणौघैरस्तदोषस्तु नित्यं
भवति कलुषहन्ता श्रीविवृद्ध्यै सुमन्त्रः।
सततमखिलवेत्ता यो भवेदेतयोस्तु
स च भवति जितारी रोगशोकप्रमुक्तः॥ २३६॥

इति श्रीकालिकापुराणे त्रिपुरभैरवीबालात्रिधाकल्पे चतुःसप्ततितमोऽध्यायः ॥७४॥

---

६ अबाधित। ७ वा।

पञ्चसप्ततितमोऽध्यायः

श्रीभगवानुवाच—

निष्पल्लवद्वादशभिर्लक्षैर्मन्त्रजपैस्तथा ।
पुरश्चरेत् साधकस्तु काममिष्टाप्तिहेतवे ॥ १ ॥
जातीपुष्पं च बकुलं मालतीपुष्पमेव च ।
नन्द्यावर्तं पाटलं च सितपद्ममतः परम् ॥ २ ॥
आज्यमन्नं पायसं च दधिक्षीरं तथा मधु ।
लाजाश्चापि सकर्पूरा अमी एव चतुर्दश ॥ ३ ॥
पुरश्चरणसम्भूता त्रिपुरायाः प्रकीर्तिताः ।
द्वादशष्वेव लक्षेषु जप्तेष्वपि च साधकः ॥ ४ ॥
एतानि सर्वद्रव्याणि जुहुयादनलोज्ज्वले ।
लक्षत्रयं तु यो जप्त्वा पुरश्चरणमाचरेत् ॥ ५ ॥
स तु साज्यं सकर्पूरं जुहुयात् तु चतुष्टयम् ।
दशभिर्नवलक्षेषु द्रव्यैर्मन्त्री पुरश्चरेत् ॥ ६ ॥
जप्तेषु चाष्टभिः षट्सु सर्वैः सर्वत्र चाचरेत् ।
हस्तमात्रं तु कुण्डं स्यात् षट्कोणं त्र्यङ्गुलाधिकम् ॥ ७ ॥
त्रिपुरायास्तु मध्याया बालायाश्च सदैव हि ।
तथा त्रिपुरभैरव्याः कुण्डमानं प्रकीर्तितम् ॥ ८ ॥
चतुष्कोणं भवेत् कुण्डं हस्तमात्रद्वयेषु च ।
अष्टाङ्गुलाधिकं प्रोक्तं वैष्णव्यास्तु पुरश्चरे ॥ ९ ॥
त्रिकोणं हस्तमात्रं तु कामाख्यायास्तु कुण्डकम् ।
एवं सर्वप्रपञ्चानामासामपि तथा तथा ॥ १० ॥
संस्कुर्यादनलं वृद्धं विधिवद् वैष्णवीकृतौ ।
कामाख्यायास्तथा कुर्याज्ज्योतिष्टोमादि मत्सुत ॥ ११ ॥
आदौ त्रिपुरभैरव्याश्चतुर्भिर्दशभिस्तथा ।
जुहुयादनले वृद्धे आहुतीश्च चतुर्दश ॥ १२ ॥
पश्चात् तु मूलमन्त्रेण अष्टोत्तरशतत्रयम् ।
होमं यन्नव वा तेन शतानि नव वाऽथवा[८] ॥ १३ ॥
जपान्ते तु बलिं दद्याद् वैष्णव्या बलिदानतः ।
रत्नकर्पूरकनकान् यत्रैव गुरुदक्षिणाः ॥ १४ ॥

---

८. द्वादशापि वा ।

अलाभे दधिपुष्पाज्यलाजैर्द्रव्याः पुरश्चरेत् ।
लाभे चतुर्दशद्रव्यैर्जुहुयाद् विधिपूर्वकम् ॥ १५ ॥
अस्या यन्त्रं रहस्येन शृणु वेतालभैरव ।
यत्कृत्वैवाखिलान् कामॉल्लभते नरसत्तम ॥ १६ ॥
षट्कोण मण्डल कृत्वा तत् तु[9] कोणत्रये लिखेत् ।
मन्त्र त्रिपुरभैरव्यास्त्रिवर्णं तु ततस्त्वधः ॥ १७ ॥
आद्यायास्त्रिपुरायास्तु त्रिबीजानि लिखेदनु ।
मध्यबीजत्रयं मध्ये लिखित्वा पीठयन्त्रके ॥ १८ ॥
सर्वैस्तु मातृकावन्त्रैस्त्रिधा सवेष्टयेदनु ।
लाक्षारसैर्लिखित्वा तु त्रिलोहैर्वेष्टयेत् ततः ॥ १९ ॥
तद् धार्यं मूर्ध्नि सतत तेन सर्वजयी भवेत् ।
रूपवान् बलवान् वाग्मी धनरत्नयुतः सदा ॥ २० ॥
दीर्घायुः कामभोगी च सुप्रजः स च जायते ।
मध्ये बीजं लिखित्वैकं मूर्ध्नि चाधस्तथापरम् ॥ २१ ॥
आद्यायास्त्रिपुरायास्तु भैरव्यास्तद्वदेव हि ।
इमानि षट्कमन्त्राणि क्रमाद् वेतालभैरव ॥ २२ ॥
पूर्ववत् सल्लिखित्वैकं सवेष्टयाथ त्रिलोहकैः ।
वामे बाहौ दक्षिणे च हृदि कण्ठे करे तथा ॥ २३ ॥
मूर्ध्नि धार्याणि क्रमतः फलमेतच्च तद्भवम् ।
सम्पत्सौभाग्यसस्तम्भ-वशीकरणमोहनम् ॥ २४ ॥
कवित्वमथ सर्वत्र भवेदेतन्न सशयः ।
यन्त्रमन्त्राणि तन्त्राणि त्रैपुराणि तु भैरव ॥ २५ ॥
स पञ्च षट् सहस्राणि मन्त्रौघैस्त्रिगुणीकृतैः ।
तज्ज्ञात्वा पूजको धीमान् परत्रेह न सीदति ॥ २६ ॥
मन्त्रौघैस्तन्त्रमन्त्रैरविचलितपदं त्रैपुर यत् प्रधानं
यद्विप्राद्यैरदेय विगतभयपद यत्कवित्वप्रदातृ ।
त्रैवर्गीयं त्रिरूपं त्रिदिवमथ सुरा यत्र सन्ति त्रयोऽपि
तज्ज्ञानौघैः सुभूतं सकलशुभफलं[10] यन्महस्त्रैपुराख्यम् ॥ २७ ॥
कवच त्रिपुरायास्तु शृणु वेतालभैरव ।
यज्ज्ञात्वा मन्त्रवित् सम्यक् फलमाप्नोति पूजने ॥ २८ ॥
उपचाराः पुरा प्रोक्ता येन एवात्र पूजने ।
प्रतिपत्तिस्तु सैवात्र कीर्तिता नित्यपूजने ॥ २९ ॥

---

९. ऊर्ध्वकोणत्रये लिखेत् । १०. मय ।

कवचस्य च माहात्म्यमहं ब्रह्मा न केशवः ।
वक्तुं क्षमस्त्वनन्तोऽपि बहुजिह्वः कदाचन ॥ ३० ॥

क्रव्याद् भय न लभते तथा तोयपरिप्लवे ।
कवचस्मरणादेव सर्व कल्याणमाप्नुयात् ॥ ३१ ॥

ओं त्रिपुराकवचस्यास्य ऋषिर्दक्षिण उच्यते ।
छन्दश्चित्राह्वयं प्रोक्त देवी त्रिपुराभैरवी ॥ ३२ ॥
धर्मार्थकाममोक्षाणा विनियोगस्तु साधने ।
यथाद्यात्रिपुराख्याया बीजानि क्रमतः सुत ॥ ३३ ॥

नामतो वाग्भवादीनि कीर्तितानि मया पुरा ।
तथा त्रिपुरभैरव्या बीजानामपि नामतः ॥ ३४ ॥
वाग्भवः कामराजश्च तथा त्रैलोक्यमोहनः ॥ ३५ ॥

अवतु सकलशीर्षं वाग्भवे वाचमुग्रा
निखिलरचितकामान् कामराजोऽवतान्मे ।
सकलकरणवर्ग-मीश्वरः पातु नित्य
तनुगतबहुतेजो वर्धयन् बुद्धिहेतुः ॥ ३६ ॥
कूटैस्तु[11] पञ्चभिरिद गदित हि यन्त्रम्
मन्त्रं ततोऽनु सतत मम तेज उग्रम् ।
तेजोमय महति[12] नित्यपरायणस्थ[13]
तन्त्रे हृदि प्रवितता तनुतां सुबुद्धिम् ॥ ३७ ॥
आधारे वाग्भवः पातु कामराजस्तथा हृदि ॥ ३८ ॥
भ्रुवोर्मध्ये च शीर्षे च पातु त्रैलोक्यमोहनः ॥ ३९ ॥
विततकुलकलाज्ञा[14] कामिनी भैरवी या
त्रिपुरपुरदहाख्या सर्वलोकस्य माता ।
वितरतु मम नित्यं नाभिपद्मे सकुक्षौ
गणपतिवनिता[15] मा रोगहानिं सुख च ॥ ४० ॥
योगैर्जगन्ति परिमोहयतीव नित्यं
जागर्ति या त्रिपुरभैरवभामिनीति ।
साय[16] च भावकलिता मम पञ्चभागे
नासाक्षिकर्णरसनात्वचि • पातु नित्यम् ॥ ४१ ॥
आद्या तु त्रिपुरेय या मध्या या कामदायिनी ॥ ४२ ॥

११. हृदयेस्तु । १२. महसि । १३ यणस्य ।
१४. विचित्रकनकलाज्ञा । १५. गद्यगतजनिका । १६. सा पञ्चाकारकलिता ।

त्रिधा तु ह्यवता नित्यं देवी[17] त्रिपुरभैरवी ॥ ४३ ॥
उदयदिशि सदा मां पातु बाला तु माता
यमदिशि मम मध्याभद्रमुग्र विदध्यात् ।
वरुणपवनकाष्ठामध्यतो भैरवी मा-
मवतु सकलरक्षा कुर्वती सुन्दरी मे ॥ ४४ ॥
महामाया महायोनिर्विश्वयोनिः सदैव तु[18] ।
सा पातु त्रिपुरा नित्यं सुन्दरी भैरवी च या ॥ ४५ ॥
ललाटे सुभगा देवी पूर्वस्या दिशि कामदा ।
नित्यं तिष्ठतु रक्षन्ती सदा त्रिपुरसुन्दरी[19] ॥ ४६ ॥
भ्रुवोर्मध्ये तथाग्नेय्या दिशि मा त्रिपुरा च या[20] ।
वर्धयन्ती भगगणान् पातु[21] त्रिपुरभैरवी ॥ ४७ ॥
वदने दक्षिणस्या च दिशि मां भगसर्पिणी ।
त्रिपुरा यमदूतादीन् वारयन्ती सदाऽवतु ॥ ४८ ॥
कर्णयोः पश्चिमाया च दिशि[22] मा भगमालिनी ।
अयोनिजा जगद्योनिर्बाला मां त्रिपुराऽवतु ॥ ४९ ॥
अनङ्गकुसुमाकण्ठे प्रतीच्यां दिशि सुन्दरी ।
त्रिपुराभैरवी माता नित्य पातु महेश्वरी ॥ ५० ॥
हृदि मारुतकाष्ठाया देवी चानङ्गमेखला ।
नाभावुदीच्यां दिशि मा मातङ्गी त्रिपुरापरा ॥ ५१ ॥
अनङ्गमदना देवी पातु त्रिपुरभैरवी ।
ऐशान्यां दिशि लिङ्गे च मदविभ्रममन्थरा ॥ ५२ ॥
वाग्वादिनी रक्षतु मा सदा त्रिपुरभैरवी ।
गुदमेढ्रान्तरे पातु रतिस्त्रिपुरभैरवी ॥ ५३ ॥
हृदयाभ्यन्तरे प्रीतिः पातु त्रिपुरभैरवी[23] ।
भ्रूनासयोर्मध्यदेशे नित्यं पातु मनोभवः ॥ ५४ ॥
द्रावणी मा ग्रहः पातु वाणी[23] मा दुर्गमूर्धनि ।
क्षोभणो मां सदा पातु क्रव्याद्भ्योऽनिष्टमीलितः ॥ ५५ ॥
वशीकरणवाणी[24] मामम्नितः पातु राजतः ।
आकर्षणाह्वया[25] वाणी[26] मां पातु [27]शस्त्रघाततः ॥ ५६ ॥

---

१७. सा मे । १८. या । १९ भैरवी । २० भगा ।
२१ माता । २२. देवी चानंगमेखला । २३ बाणो ।
२४ ...बाणो । २५ णो । २६. बाणो । २७ शत्रु .. ।

मोहनः सर्वभूतेभ्यः पिशाचेभ्यो जलात्तथा ।
नित्यं पातु महाबाणस्तन्वानः काममुत्तमम् ॥ ५७ ॥
माला मा शास्त्रबोधाय[२८] शास्त्रवादे सदाऽवतु ।
पुस्तक पातु मनसि सकल्प वर्धयन् मम ॥ ५८ ॥
वरः पातु सदा धाम्नि[२९] [३०]धामतेजो विवर्धयन् ।
अभयं ह्यभयं धत्ता सर्वेभ्यो भूतिभावनम् ॥ ५९ ॥
ऊर्ध्वाधोभावभूतस्थिततरकरगौ रक्तकीर्णा सुचक्रा
कालाग्निप्रख्यरोचिः सकलसुरगणैरर्चिता मुण्डमाला ।
ज्ञानध्यानैकतानप्रबलबलकर तत्त्वभूतप्रतिष्ठं[३१]
पातादूर्ध्वं तथाधः सकलभयभृतो भोगभीरोस्तु विद्या ॥ ६० ॥
ह्रः पातु हृदि मां नित्यं सः शीर्षे पातु नित्यशः ।
रः पातु गुह्यदेशे मा सौः पातु कण्ठपार्श्वयोः ॥ ६१ ॥
रकारो मम नाडीषु शिरः सौः पातु सर्वदा ।
शक्रः पातु सदाकाशे[३२] ब्रह्मा रक्षतु सर्वतः ॥ ६२ ॥
विद्या विद्याभाविनी कामरूपा,
स्थूला सूक्ष्मा मायया यादिमाया ।
ब्रह्मेन्द्राद्यैरर्चिता भूतिदात्री
रक्षा कुर्यात् सर्वतो भैरवी माम् ॥ ६३ ॥
आद्या मध्या भाविनी नीतियुक्ता,
सम्यग्ज्ञानज्ञेयरूपापरा या ।
आदावन्ते मध्यभागे च तारा
पायाद् देवी त्रैपुरी भैरवी या ॥ ६४ ॥
यन्मन्त्रभागतन्त्राणा यन्त्राणामपि केशवः ।
ब्रह्मा रुद्रश्च जानाति तत्वं नान्यो नमोऽस्तु तान् ॥ ६५ ॥
त्व ब्रह्माणि भवानि विश्वभवितुर्लक्ष्मीरतिर्योगिनी ।
त्वं वाग्मी सुभगा भवायुतयुगं [३३]मन्त्राक्षरं निष्कलम् ।
वर्णास्ते निखिला [३४]स्तनावचलितस्त्व कामिनीकामदा
त्वं देवि त्रिपुरे कवित्वममल सौभाग्यमुच्चैः कुरु ॥ ६६ ॥
इदं तु कवचं देव्या यो जानाति स मन्त्रवित् ।
नाधयो व्याधयस्तस्य न भयं च सदा क्वचित् ॥ ६७ ॥

---

२८. ममो मा ज्ञानवृद्धाय । २९ स्थाम्नि । ३०. स्थान ''' ।
३१. प्रतिष्ठ । ३२. वामे । ३३ मन्त्रसक्षेप एवं ।
३४. स्तवायवनिता त्वं कामिनी कामदा ।

इति ते परमं गुह्यमाख्यात कवच परम्।
तद्भजस्व महाभाग ततः सिद्धिमवाप्स्यसि ॥ ६८ ॥
इद पवित्र परम पुण्यं कीर्तिविवर्धनम्।
त्रिपुरायास्त्रिमूर्तेस्तु कवच मयकोदितम् ॥ ६९ ॥
यः पठेत् प्रातरुत्थाय स प्राप्नोति मनोगतम्।
लिखित कवच यस्तु कण्ठे गृह्णाति मन्त्रवित् ॥ ७० ॥
न तस्य गात्र कृन्तन्ति रणे शस्त्राणि भैरव।
सग्रामे शास्त्रवादे च विजयस्तस्य जायते ॥ ७१ ॥
इदं कवचमज्ञात्वा यो जपेत् त्रिपुरा नरः।
स शस्त्रघातमाप्नोति भैरवी सुन्दरीमपि ॥ ७२ ॥
बीजमुच्चारयेत् स्वस्थो गतवाग् दोषनिश्चितः।
संयोगबोधः प्रत्येकभेद-श्रवणगोचरः ॥ ७३ ॥
यथैव जायते [35]सम्यग्यज्ञादिदोषवर्जितः।
यस्योच्चारणरणकृत्ये तु संयोगो बोधदूषणम् ॥ ७४ ॥
प्रत्येकभिन्नताबोधः स कुष्ठी जायते नरः।
न्यासाना प्रचुरत्वे तु फलानामपि भूरिता ॥ ७५ ॥
उक्तन्यासो न हि त्याज्यो ह्यधिक तु समाचरेत्।
मयोक्तन्यासमज्ञात्वा न कृत्वा वा प्रमादतः ॥ ७६ ॥
यः कुर्यात् पूजन देव्या आप्नुयात् स महापदम्।
मन्त्राक्षरस्य विन्यासः सर्वमन्त्रेषु कीर्तितः ॥ ७७ ॥
वैष्णवे चाथवा रौद्रे महाभागेऽथवा पुनः।
मन्त्रे कलेवरगते महामायाप्रपूजने ॥ ७८ ॥
मन्त्रन्यासे न वा कुर्यात् कुर्याद् वान्यत्र वाचरेत्।
अङ्गरागेषु सिन्दूरं पानेषु मदिरा तथा ॥ ७९ ॥
वस्त्र रक्त तु कौशेय त्रिपुराप्रीतिद मतम्।
त्रयो दीपाः प्रदातव्याः पञ्च वा सप्त भैरव ॥ ८० ॥
इतो न्यूनान् न प्रदद्यात् त्रिपुरायै कदाचन।
मल्लिकामालतीकुन्दं वको द्रोणः सिताम्बुजम् ॥ ८१ ॥
शुक्लपुष्पाणि[36] त्रिपुराप्रीतिदानि तु भैरव।
रक्ताम्बुजं जवा रक्ता करवीरोऽथ कोमलः ॥ ८२ ॥
रक्त त्रिपुरभैरव्याः प्रीतिदा स्नेहकाञ्चनैः।
इदं ते कथितं पुत्र संक्षेपादेव भैरव ॥ ८३ ॥

३५ प्रज्ञादि। ३६ " पक्षेषु।

अवाप्य सिद्धिं परमा स्वय विस्तारयिष्यसि ।
आराध्य त्व महामायामवाप्य च गणेशताम् ॥ ८४ ॥
कल्पमन्त्रौधमन्त्राणां भविष्यसि वितानकः[३७] ।
अस्यास्त्रिपुरभैरव्याः शुक्लरूपाणि यानि तु ॥ ८५ ॥
तानि सारस्वताख्यानि मन्त्राः सम्यगुदीरिताः ।
सरस्वती तु या देवी वीणापुस्तकधारिणी ॥ ८६ ॥
स्रक्[३८] कमण्डलुहस्ता च दक्षिणे शुक्लपर्णिका ।
महाचलस्य[३९] पृष्ठस्था सितपद्मोपरिस्थिता ॥ ८७ ॥
शुक्लवर्णा शुक्लवस्त्रा शुक्लाभरणभूषिता ।
तस्यास्तु वाग्भवाद्याभ्या नेत्रबीजं द्वितीयकम् ॥ ८८ ॥
कृत्वान्ते[४०] विनियोज्यैव मन्त्र प्राक्प्रतिपादितम् ।
वरदाभयहस्ता च मालापुस्तकधारिणी ॥ ८९ ॥
शुक्लपद्मासनगता सा परा वाग् सरस्वती ।
मालाबीजाद्यक्षरं तु द्विरुक्त चार्ध[४१] चन्द्रकम् ॥ ९० ॥
मन्त्रमस्याः पुरा प्रोक्तं तन्त्र सामान्यमीरितम् ।
एषा तु या रक्तवर्णा मुण्डमालाविभूषिता ॥ ९१ ॥
तस्याः प्रोक्तः पुरा मन्त्रः सा तु वृद्धा सरस्वती ।
षष्ठमन्त्रस्तथैतस्यास्त्रयोदशनिरूपणे ॥ ९२ ॥
एषा[४२] कवित्वशास्त्रौघ-तत्त्ववादविनिश्चये[४३] ।
सुखसम्पत्करा[४४] प्रोक्ता नित्यमेव तु भैरव ॥ ९३ ॥
अस्या व्यस्तसमस्तैश्च शुक्लरक्तादिभेदतः ।
चतुःषष्टिमूर्तयश्च त्रैपुराद्युत वाग्भवम् ॥ ९४ ॥
महामाया योगनिद्रा मूलभूता जगत्प्रसूः ।
जगन्माता जगद्धात्री विद्याविद्यापरात्मिका ॥ ९५ ॥
तस्या एव महाभाग त्रिपुराद्या विभूतयः ।
प्रस्तुताः कथिता नित्यं ताः स्वयंगत एव हि ॥ ९६ ॥
इति ते कथितं पुत्र महादेव्या मनोहरम् ।
रहस्यं वामदाक्षिण्य मन्त्रसिद्धिं शृणुष्व मे ॥ ९७ ॥

इति श्रीकालिकापुराणे त्रिपुराकवचं नाम पञ्चसप्ततितमोऽध्याय ॥ ७५ ॥

---

३७ विभावक । ३८. शुक्लमण्डलहस्ता । ३९ महाचेलकपुरस्तु ।
४० त्रि कृत्वा । ४१. सर्धं । ४२ पुता । ४३. ' श्रया. ।
४४ अत्र सम्यक् पुरा प्रोक्ता ।

षट्सप्ततितमोऽध्यायः

श्रीभगवानुवाच—

मन्त्रशुद्धिमवेक्ष्यैव गृह्णीयान्मन्त्रमुत्तमम् ।
तत्र सिद्ध[४५]सुसिद्धं च साध्य शात्रवमेव च ॥ १ ॥
मन्त्रं चतुर्विधं प्रोक्तं तद्विद्ध्यक्षरभेदतः ।
वर्णक्रमः शाश्वतस्तु यो मया भाषितः पुरा ॥ २ ॥
तत्रादौ भैरव ज्ञात्वा पश्चाच्चक्र शृणुष्व मे ।
वर्णानां तु मुखादीनां वैष्णवीतन्त्रसञ्ज्ञकः ॥ ३ ॥
यः प्रोक्तोऽभून्महामन्त्रस्तस्यासन्नक्षराणि तु ।
मूलभूतानि तान्येव ततोऽन्यानपि वर्धयेत् ॥ ४ ॥
अकारश्च ककारश्च चटकारौ तथैव च ।
तपकारौ यकारश्च वर्गाद्याः परिकीर्तिताः ॥ ५ ॥
अ आ इ ई उ ऊ ऋ ॠ ऌ[४६] ॡ एतेऽदीर्घदीर्घकाः ।
[४७]ए ऐ ओ औ विसर्गश्च बिन्द्वादिर्याज्ञिकस्तथा ॥ ६ ॥
[४८]ध्वनेरन्तरजाश्चेति कीर्तितास्तु स्वरा अमी ।
खकारश्च गकारश्च घ ङो वर्गः प्रकीर्तितः ॥ ७ ॥
[४९]व्यञ्जनकारादिछजौ टकारौ परमस्मृतः ।
ठकारश्च डकारश्च भैरवशब्दादिरेव च ॥ ८ ॥
णकारान्तरतृतीयोऽयं वर्गोष्ठादिः प्रकीर्तितः ।
थकारश्च दकारश्च धर्मशब्दादिरेव च ॥ ९ ॥
नबशब्दस्य चैवादिश्चतुर्थो वर्ग उच्यते ।
फलशब्दस्य यश्चादिर्बहुशब्दादिरेव च ॥ १० ॥
भकारो म न शब्दादिः पञ्चमो वर्ग उच्यते ।
यकारश्च रकारश्च लकारो वस्तथैव च ॥ ११ ॥
एभिश्चतुर्वर्गकोऽय षष्ठो भैरव उच्यते ।
शषसा हः क्षकारश्च सयोगः परिवेदकः ॥ १२ ॥
पंचभिः शेषवर्गोऽयं सप्तमः परिकीर्तितः ।
संयोगयोगसलोमप्रतिलोमैरिमे सुत ॥ १३ ॥

---

४५. शुद्धि । ४६ '' दीर्घो ऌ ॡस्तु दीघका ।
४७. एदैदौ च सदादिधोकादि '' । ४८ ध्यानानन्तरयश्चेति
४९ व्यञ्जनादौ ककारादि. '' ।

वर्णाः स्युर्मन्त्रनामादौ वाङ्मात्रेऽपि च भैरव ।
चतुर्वर्गप्रदा वर्णाः सुखदुःखकरास्तथा ॥ १४ ॥
रोगं च तेजसम्पूज्यपूजकाः परिकीर्तिताः ।
अहं विष्णुश्च ब्रह्मा च गायत्री ब्रह्ममातृकाः ॥ १५ ॥
अपर ब्रह्मवर्णार्थे परब्रह्मसुखप्रदम् ।
अपरं ब्रह्मकुशलः परब्रह्माधिगच्छति ॥ १६ ॥
सिसृक्षुरीश्वरो वर्णाञ्ज[५०]गन्ति स्वेच्छया पुनः ।
ससर्ज मम[५१] वक्त्रे ता ब्रह्मवक्त्रे च वै न्यधात् ॥ १७ ॥
अहं तु सकलान् वर्णान् न्यस्य भैरव तन्त्रकम् ।
अकारबहुल[५२] पुत्र ज्ञानमार्ग विवर्धयन् ॥ १८ ॥
य[५३] इमे गदिता वर्णा मया वर्णविनिश्चये ।
मन्त्रशुद्धिविवेकार्थं वर्णचक्र ततः शृणु ॥ १९ ॥
शक्तिशम्भुस्वरूपिण्यो रेखे द्वे प्रथम न्यसेत् ।
तन्मध्यतः [५४]पुनारेखे विष्णुलक्ष्मीतले तथा ॥ २० ॥
तयोस्तु रेखयोर्मध्ये द्वे रेखे समतो न्यसेत् ।
तस्य चक्रस्य चारेपु रेखास्तु पारसख्यया ॥ २१ ॥
चतस्रस्तु प्रदातव्याः स्वरमध्ये तु भैरव ।
भिन्नानां च तथा वर्णाः सन्धयोऽष्टौ प्रकीर्तिताः ॥ २२ ॥
नेमयस्तु चतस्रोऽस्य सन्धिमध्येषु कीर्तिताः ।
अष्टारसंयुतं चक्रं चतुर्नेमिसमन्वितम् ॥ २३ ॥
बहिर्वेष्टनसंयुक्तं वर्णचक्र प्रकीतितम् ।
मेषादीनां च राशीनामुदयास्तप्रतिज्ञया ॥ २४ ॥
इदमेव भवेच्चक्र ज्ञानश्रीवृद्धि-कारकम् ।
इदं चक्र लिखित्वा तु समभूमावुदङ्मुखः ॥ २५ ॥
प्राङ्मुखो वा लिखेद् वर्णाञ्छुचिरिष्ट नमन् गुरुम् ।
प्रदक्षिणं लिखेत् तस्मिन वर्णास्तेष्वेव तु क्रमात् ॥ २६ ॥
[५५]पुरोनेमावकार तु रकार चापि वै लिखेत् ।
अकारं वर्जयेद् दीर्घमीकारं च स्वरेषु वै ॥ २७ ॥
अकरादिक्षकारान्त कत्रा[५६] ङ न ञ ण वर्जितम् ।
प्रदक्षिणक्रमादेव लिखित्वा वर्णसंचयम् ॥ २८ ॥

स्वनामाद्यक्षरं गृह्य कुर्यात् तु गणनक्रमम् ।
मन्त्रस्याद्यक्षरं यावत् सिद्धाद्य तत्र योजयेत् ॥ २९ ॥
नवैकपचके सिद्धः साध्यः षड्युग्मपङ्क्तिषु ।
त्रिसप्तैकादशेष्वेव सुसिद्धः परिकीर्तितः ॥ ३० ॥
द्वादशाष्टचतुर्थेषु [५७]शास्त्रे वः परिकीर्तितः ।
सिद्धेनैवाचिरात् सिद्धिः साध्यः कालेन सिध्यति ॥ ३१ ॥*
क्रामान्नाशयते शत्रुः सुसिद्धः सिद्धिदोऽचिरात् ।
यो यो वर्णक्रमः प्रोक्तो मन्त्रे दक्षिणगोचरे ॥ ३२ ॥
वाम्याराधनमन्त्रेषु क्रम शृण्विह भैरव ।
ऋलृ द्वय ङ ञ ण ना वर्ज्याश्च वर्णगोचरे ॥ ३३ ॥
लिखेद् वामक्रमेणैव तत्र वर्णास्तु मन्त्रवित् ।*
नृसिंहार्कवराहाणा प्रासादप्रणवस्य च ॥ ३४ ॥
एकाक्षरद्व्यक्षराणा न सिद्धादिविचिन्तनम् ।
बीजेषु चापि सर्वेषु दीक्षार्थेषु च भैरव ॥ ३५ ॥
सिद्धादिचिन्ता नो कार्या ग्राह्यास्तु दश वश्यकम् ।
सुसिद्ध कामद ग्राह्य साध्यसिद्धविचारणात् ॥ ३६ ॥
न ग्राह्यः शात्रवो [५८]र्धारैर्गृहीत्वाप्नोति चापदम् ।
यो यस्यैकाक्षरो मन्त्रस्तन्नाम्ना स निगद्यते ॥ ३७ ॥*
सहितश्चन्द्रबिन्दुभ्या तद्बीजमिति गद्यते ।
तथा शक्रो नकारः स्यात् सार्धचन्द्रः सबिन्दुकः ॥ ३८ ॥
स एव शक्रबीजं स्यात् तथान्यत्रापि योजयेत् ।*
मन्त्रोद्धारेषु सर्वत्र परतः परतः पुरः ॥ ३९ ॥
पूर्वतोऽपि परे कार्यमनुक्तः पूर्वपक्षकः ।
यदा षोडशसाहस्र वैष्णव्या मन्त्रसञ्चयम् ॥ ४० ॥
चक्रे निरीक्ष्यते तत्र षोडशारं तु चक्रकम् ।
विंशतिस्तु सहस्राणि त्रिपुराया यदीक्षते ॥ ४१ ॥
द्वात्रिंशार तत्र चक्र लेखनीय सदा बुधैः ।
इदमेव महाचक्र षोडशारादिकं कृती ॥ ४२ ॥
कुर्यादधिकरेखाभिर्मन्त्रशुद्ध्यन्तरे सुत[५९] ।
इयं ते कथिता पुत्र मन्त्रसिद्धिरभीष्टदा ॥ ४३ ॥*

---

५७. शक्रवर्णास्तु मन्त्रवित् । * अधिको मुद्रितपुस्तके ।
५८ गृहीत्वापदमाप्नुयात् । ५९ भैरव ।

जानाति सम्यक्‌ य इमा स जयी काममाप्नुयात् ।
रहस्य परमं पुत्र प्रयोगादिप्रकारतः ॥ ४४ ॥
वक्ष्यामि तत् समासेन शृणु वेतालभैरव ।*
दन्तः पक्षविडालस्य तत्त्वचा परिवेष्टितः ॥ ४५ ॥
निर्माल्येन तु वैष्णव्या तत् सवेष्ट्य गुणत्रयम् ।
तत् तद् वा वामसूत्रस्य तत्तन्मन्त्रेण मन्त्रितम् ॥ ४६ ॥
गृहीत्वा दक्षिणे पाणौ मन्त्राणा शतमादितः[६०] ।
सञ्जयेदथ[६१] वैष्णव्या अष्टम्या नियतेन्द्रियः ॥ ४७ ॥
ततस्तु दक्षिणे बाहौ धार्यं यन्त्रोत्तम बुधैः ।
ततो द्वादशसिद्धिः स्याद्धर्तीचेन्नाभितित्तिलीम्[६२] ॥ ४८ ॥
जयः संग्रामवादेषु शरीरस्याप्यरोगिता ।
वशकृद्राजपुत्राणा राज्ञामपि च सन्ततम् ॥ ४९ ॥
भूतप्रेतपिशाचाश्च नो यान्ति नेत्रगोचरम् ।
योषिता[६३]-समदाना तु वशकृच्चिन्तनात्[६४] सकृत् ॥ ५० ॥
रुधिराणा श्लेष्मणा च धातूना स्तम्भन तथा ।
तेजसा स्तम्भक चैव चक्षुस्तेजःप्रद तथा ॥ ५१ ॥
मूर्ध्नि पक्षविडालस्य हस्त दत्त्वा शतत्रयम् ।
वैष्णवीतन्त्रमन्त्र तु जप्त्वा तं स्थापयेद् गृहे ॥ ५२ ॥*
तं विडाल तु या पश्येन्मलिनी वनिता सुत ।
नापुत्रा सा भवित्री तु कदाचिदपि भैरव ॥ ५३ ॥
तादृक् पक्षविडालस्तु यस्य तिष्ठति मन्दिरे ।
मृतापत्यापि तद्गेहे जीवत्पुत्रा प्रजायते ॥ ५४ ॥
कोकिलो भृङ्गराजो वा चकोरो वा शुकोऽथवा ।
वैष्णवीतन्त्रमन्त्रेण मन्त्रितो यत्र तिष्ठति ॥ ५५ ॥
विघ्नं न मन्दिरे तस्य भवितृ सुप्रजा भवेत् ।
न सर्पास्तत्र गच्छन्ति गताः खादन्ति नो नरान् ॥ ५६ ॥
नारी न बन्धकी तस्य मन्दिरेऽपि प्रजायते ।
पञ्चमूर्तेश्चण्डिकाया निर्माल्यानि च पञ्चमः ॥ ५७ ॥
तेषा बलीना मासेन स्थाल्या पक्त्वा दिनत्रयम् ।*
अष्टम्यां तत्पुनर्देव्यै दत्त्वा तन्मन्त्रमन्त्रितैः ॥ ५८ ॥

---

* मुद्रितपुस्तकेऽधिकः । ६०. मन्त्रासु शतमादित । ६१ सज्जपेदथ ।
६२. चेन्नाति तिंतिडी । ६३. प्रमदानां । ६४. चित्रपापकृत् ।

तोयैरभ्युक्ष्य भुञ्जीयान्मनसा चिन्तयेच्छिवाम् ।
तस्मिन् भुक्ते तु दीर्घायुर्जरा[६५] शोकविवर्जितः ॥ ५९ ॥
तेजस्वी शत्रुदमनः कविर्वाग्मी च जायते ।
ललाटे मूर्ध्नि कण्ठे च बाह्वोः पाण्योस्तथा हृदि ॥ ६० ॥
वैष्णवीतन्त्रमन्त्रस्य यानि चाष्टाक्षराणि च ।
लिखित्वा तानि चैतेषु स्थानेषु मन्त्रविद् बुधः ॥ ६१ ॥
कुङ्कुम क्षीरमलयजातपङ्कः सुयावकैः ।
अष्टम्या सयतो भूत्वा नवम्या प्रथम नरः ॥ ६२ ॥
प्रतिष्ठाने न्यस्य करमष्टावष्टौ जपेद् बुधः ।
आवर्तनेन मन्त्राणा ततोऽनु पूजयेच्छिवाम् ॥ ६३ ॥
ततस्तस्मिन् दिने देव्यै विजातीयं वलित्रयम् ।
दत्त्वा सहस्र मन्त्रस्य सख्यया जपमारभेत् ॥ ६४ ॥
जपान्ते तु हविर्भुक्त्वा सयतो रजनी नयेत् ।
एवं सकृत्कृते पुत्र रणे तस्य पराजयः ॥ ६५ ॥
कदाचिदपि नो भूयान्न च वादेषु शास्त्रतः ।
विधि[६६]मेवं सकृत् कृत्वा रणकाले यथा तथा ॥ ६६ ॥
सदा लिखेत् क्षत्रियस्तु विजयाय रणेषु च ।
अपर तु रणाष्टाङ्गं गृह्यमेतत् प्रकीर्तितम् ॥ ६७ ॥
अनेनैव तु गुह्येन विजयी त्व भविष्यसि ।
इति नौ कथित सर्व गुह्याद् गुह्यतरं शुभम्[६७] ॥ ६८ ॥
सुखसम्पत्करं मन्त्रं यन्त्रतन्त्रसमन्वितम् ।
यच्छ्रोतुं त्रिदशाः सर्वे नित्य वाञ्छन्ति चामृतम् ॥ ६९ ॥
तदिदन्ते समाख्यातं पुत्र वेतालभैरव ।
एतत् सर्वं न यो ज्ञात्वा तत्त्वतः पुत्र भैरव ॥ ७० ॥
स कामानखिलान् प्राप्य नित्य कैवल्यमाप्नुयात् ।
शृणोति यः सकृदिदं कथ्यमानो द्विजोत्तमैः ॥ ७१ ॥
न तस्य विघ्ना जायन्ते नापुत्रः स च जायते ।
दीर्घायुर्बलयुक्तश्च नित्यं प्रमुदितः कृती ॥ ७२ ॥
वाञ्छितार्थमवाप्नोति देवीगृहमवाप्नुयात् ।
गच्छत कामरूपान्तःपीठ नीलाचलाह्वयम् ॥ ७३ ॥

६५ जरापाक । ६६. विधिनैवं । ६७ परम् ।

कामाख्यानिलयं गुह्यं कुब्जिकापीठसञ्ज्ञकम् ।
आकाशगङ्गा यत्रास्ति तज्जलैरभिषिच्य च ॥ ७४ ॥
तत्राराधयत पुत्रौ महामाया जगन्मयीम् ।
सा प्रसन्नाचिराद् देवी वरदा नौ भविष्यति ॥ ७५ ॥

औौर्व उवाच—

इत्युक्त्वा वृषभारूढस्तदा वेतालभैरवौ ।
स पुत्रौ तु परित्यज्य तत्रैवान्तरधीयत ॥ ७६ ॥
ततस्तौ नाटक शैल परित्यज्य तपस्विनौ ।*
आसेदतुर्महात्मान वसिष्ठं ब्रह्मणः सुतम् ॥ ७७ ॥
स तु सन्ध्याचलगतस्तौ दृष्ट्वा समुपस्थितौ ।
सभाजयामास मुनिः शिष्यवत् तौ हरात्मजौ ॥ ७८ ॥
ततस्तस्योपदेशेन वसिष्ठस्य महात्मनः ।*
जग्मतुस्तौ महाशैल नील कामाख्ययागतम् ॥ ७९ ॥
तत्र गत्वा महात्मानौ वैष्णवीतन्त्रगोचरम् ।
आदाय यजता देवी महामाया जगन्मयीम् ॥ ८० ॥
भैरवाख्यस्य लिङ्गस्य निकटस्थौ शिवात्मनः ।
आकाशगङ्गामासाद्य स्थण्डिले मण्डलोत्तमम् ॥ ८१ ॥
विधाय नरशार्दूलौ जेपतुर्मन्त्रमुत्तमम् ।
त्व जप्त्वा विधिवन्मन्त्र सिद्धमष्टाक्षरात्मकम् ॥ ८२ ॥
वेतालस्य तथासाध्यमष्टलक्षाणि संख्यया ।
त्रिभिर्वर्षैस्तु लक्षाणा चतुर्णामन्ततस्ततः ॥ ८३ ॥
त्रिधा पुरश्चरणं च तौ भक्त्या समकुर्वताम् ।
यद्यदोत्तरतन्त्रोक्त कल्पोक्तं पूजने कृतम् ॥ ८४ ॥
तत्सर्वं चक्रतुस्तौ तु तं त्रिहायणसवृतौ[६८] ।
कामाख्या त्रिपुरादीनामन्यासामपि पूजनम् ॥ ८५ ॥
सकृत्कृत्वा पीठयात्रा चेरतुर्विधिवत् तदा ।
एवं तौ बद्धकवचौ कृतन्यासौ हरात्मजौ ॥ ८६ ॥
सुप्रीता चानुजग्राह महामायाऽथ तौ तदा ।
ध्यानस्थयोस्तु जपतोर्यजतोश्च जगन्मयीम् ॥ ८७ ॥
शिवलिङ्गं विनिर्भिद्य तदा प्रत्यक्षता गता ।
तस्यां विनिर्गतायां तु शिवलिङ्गं त्रिधाऽभवत् ॥ ८८ ॥

---

* अधिको मुद्रितपुस्तके । ६८ ...मऽयत ।

भैरवो भैरवी चेति हेरुकश्च तथा त्रयः ।
ता ददर्श तदा देवी वेतालो भैरवस्तदा ॥ ८९ ॥
यथा ध्यानगता दृष्टा बहिश्चापि तथा तथा ।
ता दृष्ट्वा चारु सर्वाङ्गी पीनोन्नतपयोधराम् ॥ ९० ॥
वरदाभयहस्ता च सिद्धसूत्रासिधारिणीम् ।
रक्तपद्मप्रतीकाशा सितप्रेतासनस्थिताम् ॥ ९१ ॥
निमील्य नयनद्वन्द्वं तदा वेतालभैरवौ ।
त्राहि त्राहि महामाये ऊचतुस्तौ मुहुर्मुहुः ॥ ९२ ॥
ततस्तया महादेव्या तेजसाप्यायितौ तु तौ ।
पस्पर्श वरहस्तस्य चाग्रभागेन वैष्णवी ॥ ९३ ॥
आप्यायितौ ततस्तौ तु स्पृष्टावपि तथा पुनः ।
आसेदतुश्च देवत्व मनुष्यत्वं विहाय च ॥ ९४ ॥
देवभूतौ तदा तौ तु महामाया जगन्मयीम् ।
स्तुतिभिर्नतिभिश्चेति तदा तुष्टुवतुः शिवाम् ॥ ९५ ॥

वेतालभैरवावूचतुः—

जय जय देवि सुरगणार्चितपङ्कजे[६९]
विश्वस्य भूतिभाविनि शशिमौलि-केलिभाविनि गिरिजे ।
नेत्रत्रयनिर्जितविवस्वद्विधुवह्निकान्तितुलितकमलजे
मध्यनेत्रनतभ्रूभङ्गभक्तरक्तमतिचयज्वायकविमलजे ॥ ९६ ॥
आज्ञाचक्रान्तशान्तनवकोटि-
करोटितुल्यकान्त शान्तशशधरे ।
बहुमायकायभोगयोगतरङ्ग-
[७०]सारस्य पद्मवसुचरे ॥ ९७ ॥
[७१]त्रिनाडिनीतमध्यबद्धविष्किर-
वल्लभशुभसुषुम्नसमाधारपरे ।
[७२]विबुधरत्नविमोदिविश्वमूर्ति-
महोमयानवसि[७३] षट्चक्रधरे[७४] ॥ ९८ ॥
आदिषोडशचक्रचुम्बितचारुदेहपीनतुङ्ग-
कुचाचलालिंगितभूमिमध्यनागशाकगते[७५] ।

---

६९. गणाचितपादपंकजे । ७०. ''साराररसास्यप्रध्वसकरे ।
७१. त्रिमात्रिगोमाध्यबहुविस्मितवल्लभसुषुम्नगमाधारपरे ।
७२ विविध'' । ७३ मवसि । ७४. परे । ७५.'' नाकभाक ' ।

सिद्धसूत्रवराभयासिशान्तपातक[७६]-
पङ्कजातकमूलमणिचतुर्बाहुयुते ।
ज्ञानतालकमन्त्रतन्त्रयोगियोग-
निबद्धसारसूतभङ्ग[७७] विनोदकृते ।
आत्मतत्त्वपरैकशाररत्नहारक-
मुक्तिसूक्तिविवेकसितप्रेतरते ॥ ९९ ॥
रत्नसारसमस्तसङ्गतरगराग-
वियोगिमन्त्रशान्तपुरविशेषकृते ।
योगिनीगणनृत्यभृत्यभावन-
निबद्धनद्धहारकङ्कणमुख्यभूषणपते ।
साट्टहासविनोदमोदितमुक्त-
केशसुरेशनिबद्धदेहपुटे ।
देहि देवि शोकशोचनबन्ध-
मोचनपापशातनशुद्धमते[७८] ॥ १०० ॥
सर्वविद्यात्मिका गुह्या मन्त्रयन्त्रमयीं शिवाम् ।
प्रणमामि महामाया लोके वेदे च कीर्तिताम् ॥ १०१ ॥
परापरात्मिका नित्या साध्याधारैकसस्थिताम् ।
कामाह्लादकरी कान्ता त्वा नमामि जगन्मयीम् ॥ १०२ ॥
प्रपञ्चपरमव्यक्त जगदेकविवर्धिनि[७९] ।
प्रभावेनार्धरक्तांगि[८०] देवि तुभ्य नमोऽस्तु ते ॥ १०३ ॥
कामाख्या नित्यरूपाख्या महामाया सरस्वती ।
या लक्ष्मीर्विष्णुवक्षःस्था नमावो ह्यच्युता शिवाम् ॥ १०४ ॥
मन्त्राणि यस्यास्तन्त्राणि सहस्राणि च षोडश ।
मन्त्रयन्त्रात्मके तुभ्य नमोऽस्तु मम पार्वति ॥ १०५ ॥
इति स्तुता ततस्ताभ्यां महामाया जगत्प्रसूः ।
उवाच मुदिता चेति वर वरयत युवाम् ॥ १०६ ॥
प्रत्यक्षतो महामायां पूर्ववद् ध्यानगोचराम् ।
तौ दृष्ट्वा भर्गतनयौ प्राहतुश्चेदमुत्तमम् ॥ १०७ ॥

वेतालभैरवावूचतुः ।

देव्यनेन शरीरेण भवत्याः शङ्करस्य च ।
प्रार्थये शाश्वतीं सेवां नित्यं यावद्रविः शशी ॥ १०८ ॥

---

७६ शातपातक । ७७ """सारभूतस्थान" ।
७८. शुभ । ७९ जगदगविवर्धनि । ८०. रक्तांगि ।

नान्यं वर साधयावो माये त्वत्तो जगन्मयि ।
अन्यथा तव भक्त्यैव स्थास्यावो गिरिकन्दरे[८१]॥ १०९ ॥
एवमुक्ता यतस्ताभ्या महामाया जगन्मयी ।
एवमस्त्विति चोवाच भवत्येव मुहुर्मुहुः ॥ ११० ॥
एव [८२]सिद्धिर्जगद्धात्री प्रोक्ता स्वस्याथ चूचुके ।
निष्पीड्य [८३]कारयामास क्षीरधाराद्वय शिवा ॥ १११ ॥
ततस्तु निःसृत क्षीर पाययामास भैरवम् ।
वेताल च महाराज पिबतस्तौ च तत् तदा ॥ ११२ ॥
पीत्वा तौ च तदा क्षीरं देवत्व प्राप्य शाश्वतम् ।
अजरौ चामरौ भूतौ महातेजस्विनौ शुभौ ॥ ११३ ॥
तस्यास्तु क्षीरममृत तत् पीत्वा तौ महाबलौ[८४] ।
पीयूषपानात् सजातौ ततस्तौ प्राह वैष्णवी ॥ ११४ ॥
गणाना देवदेवस्य भवतश्चाधिपौ युवाम् ।
द्वा.स्थौ च नित्यमासन्नौ नन्दिवद् भवत सुतौ ॥ ११५ ॥

और्व उवाच—

इत्युक्त्वा हरसम्मत्या महामाया जगन्मयी ।
योगिनीगणसयुक्ता तत्रैवान्तरधीयत ॥ ११६ ॥
अन्तर्हिताया तस्या तु तदा वेतालभैरवौ ।
मुदितौ परमप्रीतौ कृतकृत्यौ बभूवतुः ॥ १'७ ॥
अथागच्छद् देवगणैः सार्धं सप्रमथो हरः ।
सभाजयितुमत्यर्थं पुत्रौ वेतालभैरवौ ॥ ११८ ॥
तावासाद्य महादेवस्तदा नीलाह्वय गिरिम् ।
सकल दर्शयामास पीठ तु स्थानभेदतः ॥ ११९ ॥
कामाख्याया गुहा तत्र दर्शयित्वा मनोभवाम् ।
ततः स्वीयां कामगुहा छायाच्छत्र स्वमालयम् ॥ १२० ॥
स्वकीय पञ्चमूर्तीना संस्थानं चाप्यदर्शयत् ।
कामरूपस्य सकल पीठं देवमय तथा ॥ १२१ ॥
प्रत्येकं दर्शयामास क्रमतस्त्रिपुरान्तकः ।
प्रथमं करतोयाख्यां सत्यगङ्गा सदाशिवाम् ।
पुण्यतोयमयीं शुद्धा दक्षिणाब्ध्येकगामिनीम् ॥ १२२ ॥

इति श्रीकालिकापुराणे वेतालभैरवयो सिद्धिलाभो नाम षटसप्ततितमोऽध्याय ॥ ७६ ॥

---

८१ ॰मन्दिरे । ८२ एवमिद । ८३. सारयामास । ८४ महात्मनौ ।

सप्तसप्ततितमोऽध्यायः

और्व्व उवाच—

ततस्तु कामरूपस्य वायव्या त्रिपुरान्तकः ।
आत्मनो लिङ्गमतुल जल्पीशाख्यं व्यदर्शयत् ॥ १ ॥
यत्र नन्दी समाराध्य महादेव जगत्पतिम् ।
अभिन्नेन शरीरेण गाणपत्यमवाप्नुयात्[८५] ॥ २ ॥
नन्दिकुण्ड महाकुण्ड यत्र नन्दी पुराऽकरोत् ।
अभिषेक लब्धवर पीत तोयमनुत्तमम् ॥ ३ ॥
तत्र स्नात्वा च पीत्वा च कृतकृत्यो नरोत्तमः ।
हरस्य सदनं याति नन्दिनोऽपि महाश्रियः[८६] ॥ ४ ॥
तस्यासन्ने महादेवी नातिदूरे व्यवस्थिताम् ।
सिद्धेश्वरी योनिरूपा महामाया जगन्मयीम् ॥ ५ ॥
त्र्यम्बको दर्शयामास भैरवाय महात्मने ।
यत्र नन्दी महामायामाज्ञया शशिधारिणः ॥ ६ ॥
स्तुतिभिर्नतिभिः पूज्य गाणपत्यमवाप्नुयात्[८७] ।
सुवर्णमानसस्तत्र नदमुख्यो मनोहरः ॥ ७ ॥
नन्दिनोऽनुग्रहायाशु मानसाख्यं [८८]सरस्तु तत् ।
आगतं चाज्ञया शम्भोः पूर्वमेव तपस्यतः ॥ ८ ॥
जटोद्भवा तत्र नदी हिमवत्प्रभवा शुभा ।
यस्या स्नात्वा नरः पुण्यमाप्नोति जाह्नवीसमम् ॥ ९ ॥
गौरीविवाहसमये सर्वैर्मातृगणैः कृतः ।
जलाभिषेको भर्गस्य जटाजूटेषु यः पुरा ॥ १० ॥
तैस्तोयैरभवद्यस्माज्जटोदाख्या नदी ततः ।
चैत्र मासि सिताष्टम्या स्नात्वा यस्या नरो व्रजेत् ॥ ११ ॥
पूर्णायुर्वै नरश्रेष्ठ शिवस्य सदन प्रति ।
द्वापरस्य तु या[८९] गङ्गा त्रिःस्रोताख्या सरिद्वरा ॥ १२ ॥
हिमवत्प्रभवा शुद्धचन्द्रविम्बाद् विनिर्गता ।
यस्या स्नात्वा महामाघ्यां मातृयोनौ न जायते ॥ १३ ॥

---

८५ मवाप्तवान् । ८६. ममप्रिय. । ८७. मवाप्तवान् ।
८८. सर कृतम् । ८९ सा ।

चन्द्रसूर्यग्रहे स्नात्वा कैवल्य प्राप्नुयान्नरः।
सितप्रभा नाम नदी महादेवावतारिता ॥ १४ ॥
हिमवत्प्रभवा सापि सिता दक्ष[१०]समुद्रगा।
तस्या दशहराया तु दशम्या शुक्लपक्षके ॥ १५ ॥
स्नात्वा विष्णुगृहे याति नरो वै मुक्तपातकः।
नवतोया नाम नदी ततः पूर्वस्थिता पुरा ॥ १६ ॥
नव नव नव नित्यं कुर्वन्ती सा पुनाति हि।
नवतोया ततः प्रोक्ता हिमवत्प्रभवैव सा ॥ १७ ॥
तस्या स्नात्वा महामाघ्या नरो गच्छति देवताम्।
सम्पूर्ण माघमासं तु स्नात्वा विष्णुगृहं व्रजेत् ॥ १८ ॥
तासा नदीना तु पतिरगदो नाम वै नदः।
पीठपूर्वे स्थितः पुण्यो ब्रह्मपादसमुद्भवः ॥ १९ ॥
हिमवत्प्रभवः सोऽपि देवगन्धर्वसेवितः।
तत्र स्नात्वा च पीत्वा च नरो ब्रह्मगृह व्रजेत् ॥ २० ॥
कार्तिक सकल मासं यो गदाख्ये महानदे।*
स्नान करोति मनुजस्तस्य पुण्यफलं शृणु ॥ २१ ॥
इह लोके त्वरोगः स प्राप्य चैवोत्तम सुखम्।
शेषे ब्रह्मगृह प्राप्य ततो मोक्षमवाप्नुयात् ॥ २२ ॥
नन्दिकुण्डे नरः स्नात्वा नक्त कुर्यात् तदा निशि।
ततः परस्मिन् दिवसे गच्छेज्जल्पीशमन्दिरम् ॥ २३ ॥
तत्र स्नात्वा महानद्या जल्पीश प्रतिपूज्य च।
तस्या निशि हविष्याशी संयतस्ता निशां नयेत् ॥ २४ ॥
ततोऽनुदिवसे प्राप्ते गच्छेत् सिद्धेश्वरी शिवाम्।
ता पूजयेत् तथाष्टम्यामुपवास तथाचरेत् ॥ २५ ॥
चतुर्भुजा तु सा देवी पीनोन्नतपयोधरा।
सिन्दूरपुञ्जसङ्काशा धत्ते कर्त्री च खर्परम् ॥ २६ ॥
दक्षिणे बामबाहुभ्यामभीतिवरदायिनी।

---

१०. सिततोया।

* तासा नदीना पतिरगदो नाम वै नदः।
पीठपूर्वे स्थित पुण्ये ब्रह्मपादसमुद्भवः ॥
हिमवत्प्रभव सोऽपि देवगन्धर्वसेवित।
तत्र स्नात्वा च पीत्वा च नरो ब्रह्मगृह व्रजेत् ॥—पाण्डुलिप्यामधिक।

जटामण्डितशीर्षा च [११]रक्तपद्मोपरिस्थिता ॥ २७ ॥
पंचाक्षरजपान्तादिर्मन्त्रेऽस्याः परिकीर्तितः।
कामख्यातन्त्रमेवास्याः पूजने तन्त्रमीरितम् ॥ २८ ॥
एवं कृत्वा नरो धीरः पुनर्योनौ न जायते।
जामदग्न्यभयाद् भीताः क्षत्रियाः पूर्वमेव ये ॥ २९ ॥
[१२]म्लेच्छच्छद्मान्युपादाय जल्पीश शरणं गताः।
ते[१३] म्लेच्छवाचः सततमार्यवाचश्च सर्वदा ॥ ३० ॥
जल्पीश सेवमानास्ते गोपायन्ति च त हरम्।
त एव तु गणास्तस्य महाराजमनोहराः ॥ ३१ ॥
तोषयित्वा तथा सर्वान् जल्पीश पूजयेन्नरः।
वरदाभयहस्तोऽयं द्विभुजः कुन्दसन्निभः ॥ ३२ ॥
तत्पुरुषस्य तु मन्त्रेण पूजयेद् देवमुत्तमम्।
एव पुण्यकरः पीठो जल्पीशस्य महात्मनः।
एव ज्ञात्वा नरो याति शंकरस्य पुर प्रति ॥ ३३ ॥

इति श्रीकालिकापुराणे सप्तसप्ततितमोऽध्याय ॥ ७७ ॥

---

११. प्रेत । १२ म्लेच्छत्व समुपादाय।
१३. ते म्लेच्छाः सतत चैवा-नार्यवाचश्च सर्वदा।

अष्टसप्ततितमोऽध्यायः

मार्कण्डेय उवाच—

एतच्छ्रुत्वा तु सवादमुत्तमं शंकरस्य च।
भैरवस्य तु वेतालसहितस्य महात्मनः॥ १॥
भूयश्च सगरो राजा मुनिमौर्व महामतिम्।
पप्रच्छ मोदसंहृष्टः सूनृत चेदमुत्तमम्॥ २॥

सगर उवाच—

विचित्रमिदमाख्यात भगवन्मुनिसत्तम।
कामरूपस्य पीठस्य संस्थानं निर्णयं तथा॥ ३॥
भूयश्च श्रोतुमिच्छामि विस्तरेण महामते।
वायव्यस्याथ मध्यस्य पूर्वभागस्य निर्णयम्॥ ४॥
यथा यस्मिन् निष्ठितोऽस्ति महादेवोऽम्बिका तथा।
तत्सर्वं मुनिशार्दूल कथय श्रोतुमुत्सहे॥ ५॥

और्व उवाच—

उक्तो वायव्यभागस्य निर्णयो नृपसत्तम।
नैर्ऋत्योत्तरमध्याद्रेः शृणिवदानीं विनिर्णयम्॥ ६॥
बहुरोका नाम ननी करतोया प्रदक्षिणे।
उत्तरश्रावणी चास्ते तत् पूर्वं कामरूपकम्॥ ७॥
सुरसो नाम जीमूतः कामरूप ततः स्थितः।
निःसृता बहुरोकेति नदी तस्माद् वृषप्रदा॥ ८॥
आसन्ने सुरसाख्यस्य शिवलिङ्गो महावृषः।
माहेश्वरी तत्र देवी योनिमण्डलरूपिणी॥ ९॥
स्नात्वा तु बहुरोकायामारुह्य सुरसाचलम्।
महावृषं पूजयित्वा महादेवी[९३] महेश्वरीम्॥ १०॥
धूतपापो जितद्वन्द्वः पुनर्योनौ न जायते।
चतुर्भुजो वृषारूढो वरदाभयशूलधृक्॥ ११॥

---

९३. पूजयित्वा।

शुद्धस्फटिकसंकाशो जटावान् स महावृषः।
अघोरस्य तु मन्त्रेण पूजाऽस्य परिकीर्तिता ॥ १२ ॥
कामेश्वर्याः स्वरूपं तु माहेश्वर्याः प्रकीर्तितम्।
पूजापि यद्वदेवास्यास्तद्वत्फलप्रदायिका ॥ १३ ॥
तत्र वसिष्ठकुण्डं तु वसिष्ठमुनिसेवितम्।
यत्र स्थितो वसिष्ठस्तु नरकेण निवारितः॥ १४ ॥
अप्राप्य गन्तु जीमूतं नीलाख्यं वाशपत्तु तम्[९५]।
स्वस्नानार्थं कृतं तत्र कुण्डं देवगणार्चितम् ॥ १५ ॥
तत्र स्नात्वा नरो याति नाकपृष्ठं यथेच्छया।
सुरसस्य च पूर्वस्यां कृत्तिवासाह्वयो गिरिः॥ १६ ॥
कृत्तिवासाः स्वयं तत्र सत्या सहावसत् पुरा।
चन्द्रिकाख्या नदी यत्र तस्यां स्नात्वा दिवं व्रजेत् ॥ १७ ॥
चन्द्रिकायां नरः स्नात्वा सम्पूज्य कृत्तिवाससम्।
भाद्रशुक्लचतुर्थ्यां तु निष्कलङ्को भवेन्नरः॥ १८ ॥
पूर्णभाद्रपदं मासं चन्द्रिकायां नरोत्तमः।
स्नात्वा गच्छति भूतेशं दृष्ट्वैव कृत्तिवाससम् ॥ १९ ॥
उत्तरस्राविणीं नित्यं चन्द्रिकाख्या सरिद्वरा।
नातिदूरे चन्द्रिकायाः पूर्वस्यां दिशि फेनिला ॥ २० ॥
सञ्ज्ञया च सरिच्छ्रेष्ठा शतानन्दावतारिता।
ब्रह्मणो दुहिता सा तु गङ्गा पर्वतसम्भवा ॥ २१ ॥
फेनिलायां नरः स्नात्वा ब्रह्मोत्थानदिने पुनः।
फाल्गुने मासि नरकं जित्वा स्वर्गमवाप्नुयात् ॥ २२ ॥
ततः सिताह्वया पूर्वं सरिदुत्तरगामिनी।
तस्यां स्नात्वा महाचैत्र्यां गङ्गास्नानफलं लभेत् ॥ २३ ॥
ततः पूर्वं सुमदना योजनद्वितयान्तरे।
नदी जनकराजेन समाराध्य वृषध्वजम् ॥ २४ ॥
हिताय भैरवाख्यस्य सुतीक्ष्णादवतारिता।
सुतीक्ष्णं गिरिमारुह्य स्नात्वा सुमदनाजले ॥ २५ ॥
माघशुक्लचतुर्थ्यां तु पूजयित्वा महेश्वरम्।
संप्राप्य सकलान् कामान् शिवलोकाय गच्छति ॥ २६ ॥
एता नद्यः कामरूपैनैर्ऋत्यामुत्तरस्रवाः।

---

९५ शपवास्तु तम्।

पीठस्य पूर्वतस्तत्र त्रिपुरा यत्र पूज्यते ॥ २७ ॥
एवं ते कथित राजन् महापुण्यदमुत्तमम् ।
कामरूपस्य नैर्ऋत्या यत्र शम्भुः सदाम्बिका ॥ २८ ॥
पुनरेव महाराज या नद्यो दक्षिणस्रवाः ।
हिमवत्प्रभवा याताः क्रमशः शृणु भूपते ॥ २९ ॥
अगदस्य नदस्योर्ध्वं भद्राख्या तु महानदी ।
भाद्रे कृष्णचतुर्दश्या यस्या स्नात्वा दिव व्रजेत् ॥ ३० ॥
ततः पूर्वसुभद्राख्या नदी पुण्यतमा सदा ।
वैशाखस्य तृतीयाया यस्या स्नात्वा दिव व्रजेत् ॥ ३१ ॥
ततस्तु मानसा नाम नदी पुण्यतमा मता ।
सरसो मानसाख्यात् तु तृणबिन्द्ववतारिता ॥ ३२ ॥
वैशाख सकल मास तस्या स्नात्वा नरोत्तमः ।
विष्णुलोकमवाप्यैव ततो मोक्षमवाप्नुयात् ॥ ३३ ॥
हिमवन्निकटे शैलो विभ्राटः[१६] स महाद्युतिः ।
यस्मिन् वसति भूतेशः सदा भैरवरूपधृक् ॥ ३४ ॥
तस्मात् तु भैरवी नाम नदी पुण्योदका शुभा ।
प्राङ् मानसाद्या स्रवति गङ्गेव फलदायिनी ॥ ३५ ॥
यस्यां वसन्तसमये स्नात्वा गच्छति वै दिवम् ।
यस्यां सम्पूज्य कामाख्यामिष्टं ज्ञानमवाप्नुयात् ॥ ३६ ॥
सम्पूज्याथ महामाया द्विगुण प्राप्नुयात् फलम् ।
ऊर्ध्वं ततो [१७]देवगङ्गा वर्णासाख्या सरिद्वरा ॥ ३७ ॥
हिमवत्प्रभवा नित्य फलदा मानसोपमा ।
सुभद्राद्यास्तु याः प्रोक्ता वर्णासान्ताः सरिद्वराः ॥ ३८ ॥
हिमवत्प्रभवास्तास्तु सर्वा एवोत्तरस्रवाः ।
पूर्वं तु मदनारास्तु ब्रह्मक्षेत्रस्य पश्चिमे ॥ ३९ ॥
रविक्षेत्र यत्र देव आदित्यः सततं स्थितः ।
भैरवस्य हितार्थाय यत्र सर्वेश्वराः स्थिताः ॥ ४० ॥
कामरूपे महापीठे ब्रह्मेन्द्रवरुणादयः ।
तदा तत्त्वाह्वये शैले श्रीसूर्योऽपि व्यवस्थितः ॥ ४१ ॥
त्रिस्रोता नाम यस्यास्ति नदी पूर्वदिशि स्थिता ।
कपोतकरण पश्चादस्य कुण्डद्वय स्थितम् ॥ ४२ ॥

---

१६. विभ्राटाख्यो महागिरि । १७ थ गगाया नाम्ना ख्याता ।

कपोतकुण्डे विधिवत् स्नात्वा कारणकुण्डके ।
तत्त्वाचल समारुह्य सम्पूज्य च दिवाकरम् ॥ ४३ ॥
सकृदेव नरो याति भास्करस्य गृह प्रति ।
सूर्यरश्मिसमुद्भूत कपोतकरणामृतम् ॥ ४४ ॥
पुण्यतोयसमाख्यात पाप कपोत मे हर ।
इत्यनेन तु मन्त्रेण स्नात्वा कपोतपुष्करे ॥ ४५ ॥
करण समुपस्पृश्य तत्त्वशैले रवि यजेत् ।
त्रिविध ब्रह्मबीज तु सहस्रपदमन्ततः ॥ ४६ ॥
रश्मयेऽपि चतुर्थ्यं तु देवीजाया तु चेष्टतः ।
अङ्गबीजमिद प्रोक्तमादित्यस्यातिकामदम् ॥ ४७ ॥
पद्मासनः पद्मकरः पद्मगर्भसमद्युतिः ।
सप्ताश्व· सप्तरज्जुश्च द्विभुजो भास्करः सदा ॥ ४८ ॥
वर्तुल मण्डलं चास्य अष्टपत्रसमन्वितम् ।
अङ्गुष्ठाग्राङ्गुलीना च हृदादीना तथा च पट्[९८] ॥ ४९ ॥
अङ्गमन्त्रेण सहित उपान्ते[९९] वह्निसयुतः ।
सर्वन्यासे समुद्दिष्टो मन्त्रः सर्वफलप्रदः ॥ ५० ॥
हृच्छिरस्तु शिखावर्मनेत्रास्योदरपृष्ठतः ।
बाह्वोः पाण्योर्जङ्घयोस्तु पादयोश्चापि विन्यसेत् ॥ ५१ ॥
जघने च समस्तानि क्रमान्मन्त्राक्षराणि च
क्रमोच्चोत्तरतः प्रोक्तः पूजने परिकीर्तितः ॥ ५२ ॥
विसर्जनं तथैशान्या विद्याद्या दलशक्तयः ।
निर्माल्यधृक् तत्त्वचण्डो माठराद्यास्तु पार्श्वयोः ॥ ५३ ॥
बीजमुत्तरतन्त्रस्य पूर्वतः प्रतिपादितम् ।
अनेन विधिना तत्त्वे पूजयित्वा नरोत्तमः ॥ ५४ ॥
स कामानखिलान् प्राप्य इहलोके प्रमोदते ।
सुखी शेषे तथा गच्छेद् भास्करस्यालयं प्रति ॥ ५५ ॥
नातिदूरे भास्करस्य दक्षिणस्यां शुभाह्वय· ।
तस्योर्ध्वसानौ वसति लिङ्गं शांकरमुत्तमम् ॥ ५६ ॥
परिवार्य सदा यान्ति महाकायास्तु वानराः ।
परिवार्यावतिष्ठन्ते सेवमानाश्च शङ्करम् ॥ ५७ ॥

---

९८. वषट् । ९९. अपान्ते ।

त्रिस्रोताया नरः स्नात्वा यः पश्येत् तु शुभाचले ।
महात्मानं महादेवं काममिष्ट लभेन्नरः[100] ॥ ५८ ॥
ततः पूर्वं सुरनदी नाम्ना कुसुममालिनी ।
क्षीरोदाख्यापरा तस्मात् ते गते दक्षिणस्रवे ॥ ५९ ॥
एते अपि महाराज पुण्यतोयेऽमृतस्रवे ।
तयोः स्नात्वा नरो याति शङ्करस्यालयं प्रति ॥ ६० ॥
ततोऽपि पूर्वतो देवी लीलाख्या चापरा नदी ।
यस्या[1] स्नात्वा महानद्या शिवलोकाय गच्छति ॥ ६१ ॥
ततः पूर्वं शिवा चण्डी चण्डिकाख्या महानदी ।
निर्याति धवलाख्यात् तु पर्वतात् सुमनोहरात् ॥ ६२ ॥
शिवलिङ्गद्वयं तत्र नातिदूरे व्यवस्थितम् ।
गोलोकं चाथ शृङ्गं च क्रोशमात्रान्तरे स्थितम् ॥ ६३ ॥
चण्डिकाया नरः स्नात्वा आरुह्य धवलेश्वरम् ।
दक्षिण सागर वीक्ष्य दृष्ट्वा गोलोकसञ्ज्ञकम् ॥ ६४ ॥
ततोऽवतीर्य च पुनः शृङ्गिणं भूमिपीठकम् ।
शिवपूजाविधानेन पूजयित्वा महेश्वरम् ॥ ६५ ॥
अश्वमेधस्य यज्ञस्य फल सम्प्राप्य मानवः ।
सर्वान् कामानवाप्येह देहान्ते शिवता व्रजेत् ॥ ६६ ॥
एता याः कथिता नद्यः सर्वा वै दक्षिणस्रवाः ।
तस्मादीशानकाष्ठायां पर्वतो गन्धमादनः ॥ ६७ ॥
यत्र [2]भृङ्गाह्वयं लिङ्ग शिवस्यास्ते महत्तरम् ।
स एव पर्वतश्रेष्ठः प्राप्तः क्षेत्रस्य पश्चिमे ॥ ६८ ॥
धृत्वा ब्रह्मशिला देवी सावित्र प्रतिगामिनी ।
गन्धमादनकस्यान्ते भृङ्गेशस्य पदद्वयम् ॥ ६९ ॥
*स्रवद्गङ्गाजलं चास्ते कुण्ड तत्रान्तरालकम् ।
अन्तरालककुण्डे तु स्नात्वा पीत्वा च तज्जलम् ॥ ७० ॥
भृङ्गेशस्य ततो दृष्ट्वा शिलास्थ पदद्वयम् ।
पूजयित्वा महाभृङ्गं गाणपत्यमवाप्नुयात् ॥ ७१ ॥
शम्भुपादसमुद्भूतमन्तरालद्वशाकरम् ।
वृषध्वजपदाना त्वं सयोजय महावृष ॥ ७२ ॥

---

१००. [1] अवाप्नुयात् । १ माघ्यां नर स्नात्वा । २ दुग्धाह्वयं ।
* स्रवद्गगाजलस्यान्ते भृगेशस्य पदद्वयम् । * अधिक पाण्डुलिप्याम् ।

इत्यनेन तु मन्त्रेण स्नानं कृत्वान्तराजले ।
भृङ्गदेवं ततः पश्येत् कुब्जपीठान्तवासिनम् ॥ ७३ ॥
मणिकूटस्याथ गिरेर्गन्धमादनकस्य च ।
मध्ये स्रवति लौहित्यो ब्रह्मणाग्निसमुत्थितः ॥ ७४ ॥
[३]वर्णाशाया दक्षिणस्या लौहित्यो नाम सागरः ।
मणिकूटः स्थितः पूर्वे हयग्रीवो हरिर्यतः ॥ ७५ ॥
स हयग्रीवरूपेण विष्णुर्हत्वा ज्वरासुरम् ।
निहत्य स हयग्रीवः क्रीडाये यत्र संस्थितः ॥ ७६ ॥
हत्वा ज्वरं तथा विष्णुस्तत्र वासमथाकरोत् ।
नरदेवासुरादीनां यथा भवति वै हितम् ॥ ७७ ॥
ज्वरेणापीडित[४]तनुर्ज्वरं हत्वा महासुरम् ।
सर्वलोकहितार्थाय सोऽगदस्नानमाहरत् ॥ ७८ ॥
अगदस्नानसम्भूतं सजातं च महासरः[५] ।
तस्य स्वयं हयग्रीवो नाम चक्रेऽपुनर्भवम् ॥ ७९ ॥
न पुनर्जायते यस्मात् तत्र स्नात्वा नरोत्तमः ।
अपुनर्भवसंज्ञं तत् सरस्तु परिकीर्तितम् ॥ ८० ॥
मणिकूटाचले विष्णुर्हयग्रीवस्वरूपधृक् ।
शतव्यामप्रमाणेन विस्तरेणैव शोभितम्[६] ॥ ८१ ॥
तस्मात् पूर्वे भद्रकामः पर्वतस्तु त्रिकोणकः ।
यत्र कालहयो नाम शिवलिङ्गो व्यवस्थितः ॥ ८२ ॥
तस्यासन्ने दक्षिणस्यामपुनर्भवकुण्डकम् ।
अपुनर्भूसरस्तीरे पर्वते भद्रकामदे ॥ ८३ ॥
हरवीथीति विख्याता शिला ब्रह्मस्वरूपिणी ।
तत्र योगी महादेवो योगज्ञो ध्यानतत्परः ॥ ८४ ॥
यं दृष्ट्वा योगवान् मर्त्यो मृतो मोक्षमवाप्नुयात् ।
तस्यामेव शिलायां तु गोकर्णो नाम शङ्करः ॥ ८५ ॥
गोकर्णो निहतो येन अन्धकस्य सखा पुरा ।
गोकर्णस्य तथैशान्या केदारः शम्भुरन्ततः ॥ ८६ ॥
ततोऽन्धकसमः प्रोक्तः कमलाकरभोगधृक् ।
यत्रास्ति शम्भुः केदारः स गिरिर्मदनाह्वयः ॥ ८७ ॥

---

३. वर्णाशाया । ४. पीडितस्तत्र । ५. महासुरम् ।
६. गाहिते ।

तत्रैव कमलः प्रोक्तः स महात्मालयप्रदः।
स्नात्वाऽपुनर्भवजले दृष्ट्वा गोकर्णयोगिनौ॥ ८८॥
केदारकमलौ दृष्ट्वा मुक्तिर्माधवदर्शने।
दृष्ट्वा तु माधवं देवं ततः कामं विलोकयेत्॥ ८९॥
कामं विलोक्य तत्रस्थो निरीक्षेदपुनर्भवम्।
एवं कृत्वा पीठयात्रामनेन क्रमयोगतः॥ ९०॥
सप्त पूर्वान् सप्त परानात्मानं दश पञ्च च।
पितॄनुद्धृत्य त्रिदिवं नयेत् स पुरुषोत्तमः॥ ९१॥
विष्णुस्थानसमुद्भूता पुनर्भवहरीश्वर।
पापं हर स्वर्गहेतोर्जितसङ्गमहोदधे॥ ९२॥
अनेनैव तु मन्त्रेण स्नायाद् वीरोऽपुनर्भवेत्।
हयग्रीवस्य तन्त्रं तु पुरैव प्रतिपादितम्॥ ९३॥
रूपं शृणु महाराज चिन्तयेत् तस्य यादृशम्।
कर्पूरकुन्दधवलः सितपद्मोपरिस्थितः॥ ९४॥
चतुर्भुजः कुण्डलादिनानालङ्कारभूषितः।
वरदाभयहस्तस्तु वामहस्तद्वयेन तु॥ ९५॥
पुस्तकं सितपद्मं च धत्ते हस्तद्वयेऽपरे।
श्रीवत्सकौस्तुभोरस्कः क्वचिच्च गरुडासनः॥ ९६॥
सर्वं उत्तरतन्त्रोक्तः क्रमो ग्राह्यः प्रपूजने।
विष्वक्सेनो हयारेस्तु निर्माल्यवृग्विसर्जने॥ ९७॥
शिलारूपप्रतिच्छन्न. सदास्ते गरुडध्वजः।
क्रीडमानोऽथ गन्धर्वैः स्थितो लोकहिताय च॥ ९८॥
हयग्रीवस्य मन्त्रस्य सिद्धिर्लक्षद्वयेन तु।
यावकैः पायसैराज्यैर्होमं कुर्वन् पुरश्चरेत्॥ ९९॥
एकेनैव तु राजेन्द्र पुरश्चरणकर्मणा।
इष्टसिद्धिमवाप्येह विष्णुलोकमवाप्नुयात्॥ १००॥
मन्त्रैस्तु पञ्चवक्त्राणां पञ्चमूर्तिं सदार्चयेत्।
पूर्वं तत्पुरुषादीनां कामादीन् पूजको द्विजः॥ १०१॥
कामस्तत्पुरुषो ज्ञेयो योगीशानः प्रकीर्तितः।
अघोरो ह्यथ गोकर्णः केदारो वामदेवकः॥ १०२॥
सद्योजातस्तु कमलामन्त्रैस्तैस्तैः प्रपूजयेत्।

पर्वतश्चैव केदारः[७] शिवगङ्गा तु कालिका ॥ १०३ ॥
हयग्रीवस्य पूर्वस्या केदारस्य तु पश्चिमे ।
छायाभोगाह्वयस्थान पुरी भोगवती तथा ॥ १०४ ॥
यो गच्छेन्मणिकूटाख्या कौतुकाच्च पुनभवम् ।
स सर्वतीर्थयात्राणा फलमाप्नोति मानवः ॥ १०५ ॥
ज्यैष्ठे मासि सिते पक्षे पञ्चदश्यष्टमीषु च ।
स्नात्वाऽपुनर्भवजले यः पश्येद् विधिवद्धरिम् ।
स सर्वं कुलमुद्धृत्य विष्णुसायुज्यमाप्नुयात् ॥ १०६ ॥
ज्येष्ठ तु सकल मास नित्य पश्येत् तु यो हरिम् ।
हरौ विलीनता याति स सर्वैः सहितः कुलैः ॥ १०७ ॥
एतत् ते कथित पुण्य मणिकूटाह्वयं परम् ।
वाराणसीतो ह्यधिक सिद्धविद्याधरार्चितम् ॥ १०८ ॥
यः पठेच्छृणुयाद्विप्रो मणिकूटस्य निर्णयम् ।
स सर्ववेदस्य फल प्राप्नोत्येव न संशय. ॥ १०९ ॥

इति श्रीकालिकापुराणे अष्टसप्ततितमोऽध्याय ॥ ७८ ॥

---

७. कैलासः ।

एकोनाशीतितमोऽध्यायः

और्व उवाच—

ततः पूर्वं महाराज दर्पणो नाम पर्वतः ।
कुबेरो यत्र वसति धनपालैः समं सदा ॥ १ ॥
यस्मिन्नास्ते मध्यभागे रोहितो रोहिताकृतिः ।
यस्मिँल्लोहादिकं स्पृष्ट्वा स्वर्णतां याति तत्क्षणात् ॥ २ ॥
यत्रातिदूरे स्रवति दर्पणो नाम वै नदः ।
हिमाद्रिप्रभवो नित्यं लौहित्यसदृशः फलैः ॥ ३ ॥
समुत्पन्नं हि लौहित्यं सर्वैर्देवगणैर्हरिः ।
सर्वतीर्थोदकैः सम्यक् स्नापयामास तं सुतम् ॥ ४ ॥
तस्य स्नानसमुद्भूतः पापदर्पस्य पाटनः ।
तेनायं दर्पणो नाम पुरा देवगणैः कृतः ॥ ५ ॥
तस्मिन् स्नात्वा नदवरे योऽर्चयेद् दर्पणाचले ।
कुबेरं प्रतिपत्तिथ्यां कार्तिके शुक्लपक्षके ॥ ६ ॥
स याति ब्रह्मसदनमिह भूतिशतैर्युतः ।
दर्पणाद् दिशि पूर्वस्यामग्निमालाह्वयो गिरिः ॥ ७ ॥
सर्पाकारः सप्तशतव्यामदीर्घोर्ध्वविस्तृतः ।
तत्र तिष्ठति वै वह्निरूर्ध्वभागेऽग्निमण्डले ॥ ८ ॥
सिन्दूरपुञ्जसङ्काशे चारुदारुशिलातले ।
तस्मिन्निरिन्धनो वह्निर्नित्यमद्यापि काशते ॥ ९ ॥
भैरवस्य हितार्थाय कामाख्यापरिसेवने ।
पूर्वमेव स्थितस्तत्र साक्षाद् वह्निर्गणैः सह ॥ १० ॥
लौहित्यपाथसि स्नात्वा त्वग्निमालाह्वयं गिरिम् ।
आरुह्य वह्निं सम्पूज्य मोदते विष्णुमन्दिरे ॥ ११ ॥
पुरस्तादग्निमालस्य कुण्डकं वारुणाह्वयम् ।
तस्य तीरे गिरिश्रेष्ठो नाम्ना कंसकरः स्मृतः ॥ १२ ॥
वरुणस्तत्र वसति नित्यमेव जलाधिपः ।
तस्मिन् कंसकरे सम्यक् पूजयित्वा प्रचेतसम् ॥ १३ ॥
स्नात्वा च वारुणे कुण्डे वारुणं लोकमाप्नुयात् ।
आद्यं व्यञ्जनमेवात्र पञ्चमस्वरसंयुतम् ॥ १४ ॥

शम्भुचूडाशिखायुक्तं कौवेरं बीजमुच्यते।
सप्तमो यः पकारस्य बिन्दुश्चन्द्रार्धसंयुतः॥ १५॥
वह्निबीजमिति ख्यात तेन वह्नि प्रपूजयेत्।
मकारपञ्चमः सोमबिन्दुना वारुणः स्मृतः॥ १६॥
एभिर्मन्त्रैरिमान् देवान् नित्यमेव प्रपूजयेत्।
वायुकूटो नाम गिरिः पूर्वस्या वरुणाचलात्॥ १७॥
द्विखण्डो वायुबीजेन मण्डलेन समन्वितः।
वायुलोकस्थितश्चन्द्रो यस्मान्निःसृत्य मारुतः॥ १८॥
ऊर्ध्वाधोभागमासाद्य नित्य वहति भूपते।
तत्र वायु समभ्यर्च्य वायुलोकमवाप्नुयात्॥ १९॥
पूर्वं वायुगिरे शैलश्चन्द्रकूट इति स्मृतः[८]।
त्रिकोणश्चन्द्रसङ्काशस्तदूर्ध्वे चन्द्रमण्डलम्॥ २०॥
द्वितीयवर्गस्याद्य तु बिन्दुना समलङ्कृतम्।
चन्द्रबीजमिति प्रोक्त तेन चन्द्र प्रपूजयेत्॥ २१॥
अद्यापि प्रतिदर्शे[९] तु पर्वतं[१०] त निशापतिः।
प्रदक्षिणीकरोत्येव दशभिश्चापि खेचरैः॥ २२॥
तस्यैव पूर्वभागे तु सोमकुण्डाह्वय सरः।
तत्र स्नात्वा च पीत्वा च नरः कैवल्यमश्नुते॥ २३॥
स्वर्गादवतरच्चन्द्रः कामाख्यासेवने यदा।
तदा तद्रश्मिसङ्घातान्निःसृतास्तोयराशयः॥ २४॥
तैस्तोयैर्वासवः कुण्डमकरोदिन्द्रचन्द्रयोः।
मध्ये पुण्यतमे स्थाने स्वय ब्रह्मशिलोपरि॥ २५॥
चन्द्ररश्मिसमुद्भूतचन्द्रकुण्डमहोदधौ।
यं य भावं समासाद्य तं चन्द्रकलुष हरम्॥ २६॥
सुधास्रवणमाह्लाद त्व चन्द्रकलुषं हर।
इत्यनेन तु मन्त्रेण यः स्नात्वा चन्द्रपाथसि॥ २७॥
चान्द्रकूट समारुह्य पूजयेद् यस्तु त नरः।
अविच्छिन्ना सन्ततिस्तु सुकान्ता तस्य जायते॥ २८॥
परत्र चन्द्रभवनं भित्त्वा याति पर पदम्।
तीरे तु चन्द्रकूटस्य नन्दनो नाम वै गिरिः॥ २९॥
तस्मिन् वसति शक्रस्तु कामाख्यासेवने रतः।

---

८. श्रुत। ९. प्रतिपर्वं। १०. सततं।

पञ्चभावं समासाद्य सर्वदेवेश्वरो हरिः ॥ ३० ॥
सेवितु त्रिदशेशानीं सतत वर्तते नरः[11] ।
चन्द्रकूटस्य तु गिरेर्नन्दनस्य तथा गिरेः ॥ ३१ ॥
प्रतिदर्शं तथा चन्द्रः प्रदक्षिणयति त्रिधा ।
चन्द्रकूटजले स्नात्वा समारुह्याथ नन्दनम् ॥ ३२ ॥
आराध्य शक्र लोकेश महाफलमवाप्नुयात् ।
नन्दनात् पूर्वभागे तु भस्मकूटो महागिरिः ॥ ३३ ॥
यः स्वय भर्गरूपः स सदा चेच्छान्तमुत्तमम्[12] ।
दक्षिणे भस्मकूटस्य देवी पीयूषधारिणी ॥ ३४ ॥
उर्वशी नाम विख्याता शक्रप्रीतिकरी सदा ।
देवैर्यत् स्थापित पूर्वममृतं भोजनाय वै ॥ ३५ ॥
कामाख्यायास्तदादाय स्वय तिष्ठति चोर्वशी ।
शिलारूपो हरस्ता तु समावृत्यैव तिष्ठति ॥ ३६ ॥
सा चैवामृतराशि तु कृत्वा किञ्चन किंचन ।
उपस्थापयते नित्य कामाख्यायोनिमण्डले ॥ ३७ ॥
सुधाशिलान्तरस्था तु उर्वशीकुण्डवासिनी ।
उर्वशीभस्मकूटस्य मध्ये कुण्ड सदावृतम् ॥ ३८ ॥
द्वात्रिंशद्धनुराकीर्ण पञ्चाशद्धनुरायतम् ।
तत्र स्नात्वा च पीत्वा च नरो मोक्षमवाप्नुयात् ॥ ३९ ॥
कामाख्यायोनिरैशानीं दिश याति सदैव हि ।
भस्मकूटे प्रविशति उर्वशीमपि योगिनी ॥ ४० ॥
आप्यायिता चामृतेन नित्यं देवी प्रमोदते ।

---

११ नम ।

* चन्द्रकूटगिरेर्याम्यभागे गिरिजनार्दन· ।
तस्य याम्ये त्वधोभागे अश्वक्रान्ताह्वय सर ॥ १ ॥
न तस्य सदृश तीर्थमस्ति ब्रह्माण्डगोचरे ।
जले स्थले मृता येऽत्र यान्ति ब्रह्म सनातनम् ॥ २ ॥
जनार्दनगिरौ विष्णुः कूर्मरूपस्वरूपधृक् ।
शिलां भित्वा स्थितस्तत्र देवगन्धर्वसेवितः ॥ ३ ॥
अश्वक्रान्तजले स्नात्वा पूजयित्वा जनार्दनम् ।
फलकोटिं समुद्धृत्य स्वय स्यात् पुरुषोत्तम· ॥ ४ ॥
पाण्डुलिप्यामधिकः *

१२. भर्गरूपस्य स याति शान्तिमुत्तमाम् ।

मोदयुक्ता महादेवी कामेन मोदते सदा ॥ ४१ ॥
भस्मकूटस्य चैशान्या मणिकूटो महागिरिः।
मणिकर्णो नाम हरस्तत्र तिष्ठति लिङ्गकम् ॥ ४२ ॥
स सद्योजातरूपस्तु मणिकर्ण इतीरितः।
सद्योजातस्य मन्त्रेण पूजितव्यः सदाशिवः ॥ ४३ ॥
चन्द्रतीर्थजले स्नात्वा दृष्ट्वा चन्द्र सवासवम्।
मणिकर्णेश्वरं दृष्ट्वा मुक्तिर्भस्माचल गते ॥ ४४ ॥
श्वेतः श्वेताम्बरधरो दशाश्वो हेमभूषितः।
गदापाणिर्द्विबाहुश्च कर्तव्यो वरदः शशी ॥ ४५ ॥
सहस्रनेत्रो गौराङ्गो द्विभुजो वामहस्तगम्।
वज्र गदाकुश धत्ते दक्षिणेनापि पाणिना ॥ ४६ ॥
ऐरावतगजस्थस्तु बाणतूणीरबन्धनः।
धनुश्च कक्षे गृह्णाति सेवमानो महेश्वरीम् ॥ ४७ ॥
वकारानन्तरो वर्णश्चन्द्रबिन्दुसमन्वितः।
शक्रबीजमिति प्रोक्त शक्र तेन प्रपूजयेत् ॥ ४८ ॥
नदी सुमङ्गला नाम हिमपर्वतनिर्गता।
पूर्वस्या मणिकूटस्य सदा स्रवति शोभना ॥ ४९ ॥
मणिकूटं समारुह्य यस्ता पश्यति वै नदीम्।
स गङ्गास्नानज पुण्यमवाप्य त्रिदिव व्रजेत् ॥ ५० ॥
मणिकूटाचलात् पूर्वं मत्स्यध्वजकुलाचल.।
निर्दग्धो यत्र मदनो हरनेत्राग्निना पुनः ॥ ५१ ॥
शरीर प्राप तपसा समाराध्य वृषध्वजम्।
तत्र मत्स्यस्वरूपस्तु कामदेवेन[१३] सस्थितः[१४] ॥ ५२ ॥
अधित्यकायां पृथिवीं वीक्षमाणः समन्ततः।
नदी तु शाश्वती नाम तत्रास्ते दक्षिणस्रवा ॥ ५३ ॥
सरः कामसरो नाम तत्र शैले व्यवस्थितम्।
शाश्वत्या विधिवत्स्नात्वा पीत्वा [१५]कामसरोऽम्भसि ॥ ५४ ॥
विमुक्तपापः शुद्धात्मा शिवलोके महीयते।
गन्धमादनपूर्वस्या सुक्रान्तो नाम पर्वतः ॥ ५५ ॥
तत्प्रान्ते वासवं कुण्डं वासवामृतभोजनम्।

---

१३. कामदेव । १४. सम स्थितः । १५. कामकराम्भसि ।

यत्र स्थित्वा दक्षिणस्या पुरा शक्रः शचीपतिः ॥ ५६ ॥
अमृत श्रान्तदेहस्तु[१६] कामरूपान्तरे पपौ ।
स्नात्वा तु वासवे कुण्डे समारुह्य सुकान्तकम् ॥ ५७ ॥
वासवस्य प्रियो भूत्वा शक्रलोकमवाप्नुयात् ।
पूर्वस्यां तु सुकान्तस्य रक्षःकूटाह्वयो गिरिः ॥ ५८ ॥
यत्रास्ते सतत देवो निर्ऋती राक्षसेश्वरः ।
खड्गहस्तो महाकायो वामे चमधरस्तथा ॥ ५९ ॥
जटाजूटसमायुक्तः प्राशुः कृष्णाचलोपमः ।
द्विभुजः कृष्णवासास्तु [१७]गर्दभोपरिसस्थितः ॥ ६० ॥
प्रान्तोपान्तौ बिन्दुचन्द्रसहितावादिरेव च ।
नैर्ऋत्यं कथित बीज तेन त परिपूजयेत् ॥ ६१ ॥
रक्षःकूट समारुह्य निर्ऋतिं राक्षसेश्वरम् ।
यः पूजयेद् विधानेन चण्डिका राक्षसेश्वरीम् ॥ ६२ ॥
न तस्य राक्षसेभ्योऽस्ति भय नृप कदाचन ।
राक्षसाश्च पिशाचाश्च वेताला गणनायकाः ॥ ६३ ॥
तं दृष्ट्वा पुरुषं राजन् सर्वदैव प्रबिभ्यति ।
रक्षःकूटात् पूर्वदिशि भैरवो नाम माधवः ॥ ६४ ॥
पाण्डुनाथ इति ख्यातो ग्रावरूपेण सस्थितः ।
त पाण्डुनाथ सततमष्टाक्षरभवोत्तरम् ॥ ६५ ॥
तेनैव पूजयेद् देव पाण्डुनाथाह्वय हरिम् ।
वर्णेन रक्तगौराङ्गं गदापद्मधर करे ॥ ६६ ॥
दक्षिणे चक्रशक्ती च बाहुभ्यामपि बिभ्रतम् ।
चतुर्भुजं रक्तपद्मसस्थित मुकुटोज्ज्वलम् ॥ ६७ ॥
कुण्डले बिभ्रतं शुद्धे श्रीवत्सोरस्कमुत्तमम् ।
नमो नारायणायेति मूलबीजेन वा हरेः ॥ ६८ ॥
एव सम्पूजयेद् भूप चतुर्वर्गस्य सिद्धये ।
पाण्डुनाथस्योत्तरस्या ब्रह्मकूटाह्वय सरः ॥ ६९ ॥
ब्रह्मणा निर्मितं पूर्वं स्नानार्थं स्वर्गवासिनाम् ।
आयामेन शतव्याम विस्तीर्ण त्वेतदर्धकम् ॥ ७० ॥
सर्वपापहरं पुण्य देवलोकात् समागतम् ।
कमण्डलुसमुद्भूत ब्रह्मकुण्डामृतस्रव ॥ ७१ ॥

---

१६ प्राप्तहेतोस्तु । १७. खड्गकोपरि ।

हर मे सर्वपापानि पुण्य स्वर्गं च साधय।
इत्यनेन तु मन्त्रेण स्नात्वा तस्मिन् सरोजले॥ ७२॥
पाण्डुनाथ च सम्पूज्य विष्णुसायुज्यमाप्नुयात्।
ब्रह्मकुण्डजले स्नात्वा पूजयित्वा उमापतिम्॥ ७३॥
वायुकूट समारुह्य मुक्तिमेवाप्नुयान्नरः।
पाण्डुनाथात् पूर्वदिशि गिरिश्चित्रह्रदो[१८] हरिः॥ ७४॥
सतत यत्र रमते विष्णुर्वाराहरूपधृक्।
ततस्त नीलकटाख्य कामाख्यानिलय परम्॥ ७५॥
तत्पूर्वभागे वसति ब्रह्मा ब्रह्मगिरिः पुनः।
ब्रह्मशैलस्य पूर्वस्या भूमिपीठे व्यवस्थितम्॥ ७६॥
चारुनिम्नशुभावर्तं कामाख्यानाभिमण्डलम्।
[१९]तवोग्रतारारूपेण रमते परमेश्वरी॥ ७७॥
तत्र तेनैव रूपेण पूजितव्या शुभात्मिका।
तस्यास्तु बीज पूर्वस्मिन्नुत्तरे प्रतिपादितम्॥ ७८॥
रूपं शृणु नरश्रेष्ठ येन ध्येया सदा शिवा।
कृष्णा लम्बोदरी दीर्घा विरला रक्तदन्तिका॥ ७९॥
चतुर्भुजा कृशाङ्गी तु दक्षिणे कर्तृखर्परौ।
खड्ग चेन्दीवर वामे शीर्षे चैकजटा पुनः॥ ८०॥
वामपाद शवस्योर्वोर्निधायाङ्घ्रिं[२०] तु दक्षिणाम्।
शवस्य हृदये न्यास्य साट्टहास प्रकुर्वती॥ ८१॥
नागहारशिरोमालाभूषिता कामदा परा।
त्रिकोण मण्डल चास्या हुङ्कारं मध्यबीजकाम्॥ ८२॥
द्वारेशाना योगिनीनां नामान्यस्यां तु तन्त्रके।
ज्ञेयानि नरशार्दूल यत् प्रोक्त वाम्यगोचरे॥ ८३॥
उर्वश्यां विधिवत् स्नात्वा स्पृष्ट्वा पाण्डुशिलां तथा।
नीलकूट समारुह्य पुनर्योनौ न जायते॥ ८४॥
पुरन्दरपुरायाते वाराणस्याः कलाधिके।
सुधासकीर्णतोयौघै. पाप हर ममोर्वशि॥ ८५॥
अमृतस्राविणी देवी सुधौघपरिपूरणी।
अमृतेनामृतं मेऽद्य देहि देवि ममोर्वशि॥ ८६॥

---

१८. ह्रदो। १९ तत्रोग्रतारा।
२०. निधायोत्थाय।

पुरन्दरप्रिये देवि वाराणस्याः सदाम्बिके[२१] ।
लोहित्यह्रदसकीर्णे पाप हर ममोर्वशि ॥ ८७ ॥
इत्येभिः स्तुतिभिर्मन्त्रैः स्नात्वा पुण्योर्वशीजले ।
सर्वपापविनिर्मुक्तो विष्णुलोके विचेष्टते[२२] ॥ ८८ ॥
उर्वशी द्विभुजा प्रोक्ता स्वर्णकङ्कणधारिणी ।
सौवर्णपात्रममृतस्रावणाय बिभर्ति च ॥ ८९ ॥
शुक्लवस्त्रा गौरवर्णा पीनोन्नतपयोधरा ।
सर्वाङ्गसुन्दरी शुद्धा सर्वाभरणभूषिता ॥ ९० ॥
एतन्नामाद्यक्षर तु मन्त्रमस्याः प्रकीर्तितम् ।
उमातन्त्रे तु गदित मन्त्रमस्याः प्रकीर्तितम् ॥ ९१ ॥
गणेशः पूर्वद्वारस्थः कामाख्यापर्वतस्य तु ।
तत्रैव चाग्निवेतालः स्थितो द्वारि मनोहरः ॥ ९२ ॥
तयो रूप च मन्त्रं च यथोक्त शम्भुना पुरा ।
तदह प्रतिवक्ष्यामि महाराज शृणुष्व मे ॥ ९३ ॥*
ॐ नम उल्कामुखायेति मूलबीजादिसङ्गतम् ।
मन्त्र सिद्धगणेशस्य द्वारस्थस्य प्रकीर्तितम् ॥ ९४ ॥
रूपं तस्य प्रवक्ष्यामि गजवक्त्र त्रिलोचनम् ।
लम्बोदरं चतुर्बाहु व्यालयज्ञोपवीतिनम् ॥ ९५ ॥
शूर्पकर्णं बृहद्गण्डमेकदन्त[२३] पृथूदरम् ।
दक्षिणे तु करे दण्डमुत्पल च तथापरे ॥ ९६ ॥
लड्डुक परशुं चैव वामतः परिकीर्तितम् ।
बृहत्त्वाक्षिप्तगगन पीनस्कन्धाङ्घ्रिपाणिनम् ॥ ९७ ॥
युक्त बुद्धिकुबुद्धिभ्यामधस्तान्मूषकान्वितम् ।
[२४]तन्त्रस्तु यादृशः प्रोक्तः पञ्चवक्त्रस्य पूजने ॥ ९८ ॥
स एव तन्त्रो ग्राह्यस्तु तादृग्विधिनिषेधनम्[२५] ।
द्विभुजः पीनवदनो रक्तनेत्रो भयङ्करः ॥ ९९ ॥
छुरिका दक्षिणे पाणौ वामे रुधिरपात्रकम् ।
दंष्ट्राकरालवदनं कृशो धमनिसन्ततः ॥ १०० ॥
जटां दीर्घां मूर्ध्नि बिभ्रद्घोररावयुतस्तथा ।
पचतुर्थोऽग्निबीजेन षष्ठस्वरविभूषितः ॥ १०१ ॥

---

२१. सदाम्बिके । २२. विराजते । * अधिको मुद्रितपुस्तके
२३. बृहत् तुण्डमेकदंष्ट्रं । २४. मन्त्रस्तु । २५. निषेधकम् ।

अग्निवेतालबीजोऽय सर्वत्र भयनाशकः ।
पूजयेदग्निवेताल सर्वत्र भयवारणम् ॥ १०२ ॥
यः पूजयेत् तस्य पुनर्भूतादिभ्यो भय नहि ।
अष्टानामथ मन्त्राणा योगिनीना क्रमान्नृप ॥ १०३ ॥
शैलपुत्रीप्रमुख्याणा मन्त्राण्यष्टाक्षराणि तु ।
वैष्णवीतन्त्रसंस्थानि पूर्वप्रोक्तानि तानि तु ॥ १०४ ॥
शैलपुत्र्यास्तथा चाङ्गमन्त्र प्राक् प्रतिपादितम् ।
रूप तु नरशार्दूल योगिनीना विशेषतः ॥ १०५ ॥
प्रत्यक्षरेण[२६] बीजेन दुर्गातन्त्रेण वा त्विमा॰ ।
नेत्रबीजेनैव पूज्या योगिन्यो नृपसत्तम ॥ १०६ ॥*
कात्यायनी पाददुर्गा दुर्गातन्त्रेण पूजयेत् ।
तदेव पूजन रूपं तत्पूर्वं प्रतिपादितम् ॥ १०७ ॥
कालरात्र्यास्तु मन्त्रेण कालरात्रि प्रपूजयेत् ।
कालरात्र्या रूपमन्त्रौ पुरैव प्रतिपादितौ ॥ १०८ ॥
महामायातन्त्रमन्त्रैः पूजयेद् भुवनेश्वरीम् ।
एताः सर्वास्तु योगिन्यः कामाख्यावत् फलप्रदाः ॥ १०९ ॥
विशेषो यत्र नैवोक्तो रूपे तन्त्रे च पूजने ।
दुर्गातन्त्रेण मन्त्रेण तत्र पूजां समाचरेत् ॥ ११० ॥
प्रत्येक योगिनीं यस्तु पूजयेन्नरसत्तमः ।
स सर्वयज्ञस्य फल प्राप्नोति नरसत्तमः ॥ १११ ॥
नीलशैलस्य पूर्वस्मिन् स्वरूपं प्रतिपादितम् ।
नाभिमण्डलपूर्वस्या भस्मकूटस्य दक्षिणे ॥ ११२ ॥
पूर्वस्या कर्पटो नाम पवतो यमरूपधृक् ।
तत्र याम्यशिला कृष्णा नीलाञ्जनसमप्रभा ॥ ११३ ॥
अधित्यकाया राजेन्द्र व्यामपञ्चसुविस्तृता[२७] ।
पूजयेत् तत्र शमन पाणौ दण्डं सदैव यः ॥ ११४ ॥
धत्ते तु पाणिना नित्य [२८]प्राणिदण्डस्य साधनम् ।
कृष्णवर्णं तु द्विभुजं किरीटमुकुटोज्ज्वलम् ॥ ११५ ॥
दधतं चासिपुत्रीं च वामपाणौ सदैव हि ।
कृष्णवक्त्रं स्थूलपादं बहिर्निःसृतदन्तकम् ॥ ११६ ॥

---

२६. सपूज्या योगिन्यो नृपसत्तम । * मुद्रितपुस्तकेऽधिक॰ ।
२७. व्याम॰पञ्चक॰ । २८ प्राणदण्डस्य ।

[29]भयाभयप्रदं नित्यं नृणां महिषवाहनम्।
पूजयेत् परया भक्त्या याम्यबीजेन साधकः॥ ११७॥
उपान्तवर्गस्यादिर्यो वर्णो बिन्द्विन्दुसंयुतः।
यमबीजमिति ख्यातं यमस्य प्रीतिदायकम्॥ ११८॥
अनेनैव तु मन्त्रेण शमनं पूजयेत् तु यः।
कर्पटाख्येऽचलवरे नापमृत्युमवाप्नुयात्॥ ११९॥
पूर्वस्यां कर्पटाख्यात् तु शैलाच्चित्रं इति स्मृतः।
यः पूर्वभागप्रान्तेऽभूद् दिश्याग्नेय्यामवस्थितः॥ १२०॥
पीठस्तु ब्रह्मग्रावस्तु स[31] प्राक् पर्वत उच्यते।
तस्मिन् वसन्ति सततं ग्रहा इव यथेच्छया॥ १२१॥
तत्र तान् पूजयेद् यस्तु स नाप्नोत्यापदं क्वचित्।
रूपं मन्त्रं च सूर्यस्य चन्द्रस्य प्रतिपादितम्॥ १२२॥
सप्तानामितरेषां तु मन्त्रं रूपं शृणुष्व मे।
रक्ताम्बरधरः शूली शक्तिमांश्च गदाधरः॥ १२३॥
चतुर्भुजो मेषरथो वरदो मङ्गलो मतः।
पीताम्बरधरः शूली पीतमाल्यानुलेपनः॥ १२४॥
[32]खड्गचर्मगदापणिः सिंहस्थो वरदो बुधः।
स्वर्णगौरः पीतवासाः स्वर्णपर्यकसंस्थितः॥ १२५॥
मालां कमण्डलुं दण्डं वामेन वरदायकम्।
चतुर्भुजं च सर्वज्ञं चिन्तयेद् देवतीर्थकम्॥ १२६॥
सर्वैर्देवगणैर्नित्यं तप्यमानं[33] मनोहरम्।
शुक्लवस्त्रं शुक्लवर्णं शङ्खनागोपरिस्थितम्॥ १२७॥
चतुर्भुजं पाशमाला[34] पुस्तकं च वराभये।
क्रमाद् दक्षिणवामाया धत्ते दैत्यगुरुः सदा॥ १२८॥
इन्द्रनीलनिभः शूली वरदो गृध्रवाहनः।
[35]पाशबाणासनधरो ध्यातव्योऽर्कसुतः सदा॥ १२९॥
कामदेवस्य बीजं तु मन्त्रं भौमस्य कीर्तितम्।
दुर्गाया नेत्रबीजस्य यत्तु मध्यावरं शुभम्॥ १३०॥
तन्मन्त्रं शशिपुत्रस्य सर्वकामफलप्रदम्।

---

२९. ङभयाभयदं। ३०. ···कारकं। ३१ अर्वाक्। ३२. चक्रचर्मगदा। ३३. नम्यमानं। ३४ चाक्षमालां। ३५ पाशपाशासनधरो····।

तकारपञ्चमादिस्तु चतुःषट्स्वरसयुतम् ॥ १३१ ॥
गणेशबीजान्तमिद गुरोर्मन्त्रं प्रकीर्तितम् ।
बिन्द्विन्दुसयुतं चापि पूर्ववर्णद्वयं पुनः ॥ १३२ ॥
सप्तमस्वरसयुक्तो मकारस्त्वादिरन्तरम् ।
प्रान्तवर्गाद्यक्षर तु बिन्द्विन्दुभ्या समन्वितम् ॥ १३३ ॥
भवेच्छुक्रस्य बीज तु सर्वकामसमृद्धिदम् ।
प्रान्तवर्गाद्यक्षरं तु चन्द्रबिन्दुसमन्वितम् ॥ १३४ ॥
आद्यमन्त्रस्वरोपेत तदेवेत्यादिसयुतम् ।
शनैश्चरस्य मन्त्रोऽय सर्वदोपविनाशनः ॥ १३५ ॥
बिन्दुचन्द्रसमायुक्त नामाद्यक्षरमेव वा ।
तेषा सर्वग्रहाणा वै मन्त्रमङ्ग प्रकीर्तितम् ॥ १३६ ॥
शान्तिके पौष्टिके कृत्ये एभिर्मन्त्रैर्ग्रहानिमान् ।
पूजयेत् सर्वदा धीरो भूतिकामो महामतिः ॥ १३७ ॥
वरदाभयहस्तश्च खड्गचर्मधरस्तथा ।
सिंहासनगतः कृष्णो राहुर्धीर. प्रचक्ष्यते ॥ १३८ ॥
धूम्रवर्णो विशालाक्षः पुच्छरूपी चतुर्भुजः ।
खड्गचर्मगदाबाणपाणिः केतुः शवासनः ॥ १३९ ॥
उपान्तादिर्द्वादशेन स्वरेण सहितः पुनः ।
उपान्तः पञ्चमेनेन्दुबिन्दुभ्या सहितावुभौ ॥ १४० ॥
मन्त्रोऽयमनुलोमेन राहोः केतोर्विलोमतः ।
आद्यक्षर पूर्ववद् वा मन्त्रयुक्तमथैतयोः ॥ १४१ ॥
एव चित्रे शैलवरे पूजयित्वा नवग्रहान् ।
अभीष्टाल्लँभते कामान्नरः शान्ति तथोत्तमाम् ॥ १४२ ॥
चित्रकूटात् तु पूर्वस्यां कज्जलाचल उत्तमः[३६] ।
सर्वविद्याधराद्यास्तु सन्त्यस्मिन् देवयोनयः ॥ १४३ ॥
त पर्वतं समारुह्य प्रणम्य सकलान् सुरान् ।
स्वर्गं यान्ति नरश्रेष्ठ इह चाप्यतुलां श्रियम् ॥ १४४ ॥
कज्जलाचलशैलात् तु पूर्वस्मिञ्छुभपर्वतः ।
शच्या सार्धं पुरा रेमे यत्र शक्रः सुरेश्वरः ॥ १४५ ॥
तत्पूर्वस्यां महादेवी नदी कपिलगङ्गिका ।
तस्यां स्नात्वा नरो गङ्गास्नानजं फलमाप्नुयात् ॥ १४६ ॥

---

३६. मुद्रितपुस्तके अधिक. ।

कामाख्यानिलयात् पूर्वं दक्षिणस्या तथा दिशि ।
विद्यते महदावर्तं भुवि ब्रह्मबिलं महत् ॥ १४७ ॥
पचविंशतिमानेन योजनानां नरेश्वर ।
तस्मादायाति सनदी सिताम्भोऽपम[37]तोयभाक् ॥ १४८ ॥
को ब्रह्मा कीर्तितो देवैर्यस्मात् तस्य पिलात्[38] सृता ।
गगेव फलदा यस्मात् तस्मात् कपिलगगिका ॥ १४९ ॥
स्नात्वा कपिलगङ्गाया सर्वमन्वन्तरेषु च ।
नरः स्वर्गमवाप्यादौ ब्रह्मलोक[39] ततो ब्रजेत् ॥ १५० ॥
अतीत्य ता नदी पूर्वभागे दमनिकाह्वया ।
नदी महाकृष्णतोया पापस्य दमनी तथा ॥ १५१ ॥
ततो वृद्धाह्वया चाभूदपरा सरिदुत्तमा ।
तस्या नद्याः पूर्वभागे गङ्गावत् फलदायिनी ॥ १५२ ॥
माघ तु सकलं मास[40] स्नात्वा मुक्तिमवाप्नुयात् ।
तथा दमनिकाया च पर निर्वाणमाप्नुयात् ॥ १५३ ॥

ततः पूर्वे परा देवी नाम्ना सा सरिदुत्तमा ।*
महती दिव्ययमुना यमुनावत् फलप्रदा ॥ १५४ ॥*
दक्षिणाद्रिसमुद्भूता दक्षिणोदधिगामिनी ।*
तस्या तु कार्तिक मास स्नात्वा मुक्तिमवाप्नुयात् ॥ १५५ ॥*

इह चैवोत्तमान् भोगान् भागधेयान् प्रतिष्ठितान् ।
तन्मध्ये भैरवो देवो भर्गसम्भोगसम्भवः ॥ १५६ ॥
[41]दुर्जयाख्ये वरगिरावस्त्युपत्यकभूमिगः ।
योऽसौ शरभरूपस्य मध्यखण्डोऽतिभैरवः ॥ १५७ ॥
स एव भैरवाख्योऽयं पञ्चवक्त्रस्य मन्त्रकैः ।
सम्पूज्य तत्र मतिमान् स याति शिवलोकताम् ॥ १५८ ॥
कामेश्वरस्य सा पूजा कथिता नीलनिर्णये ।
सम्पूज्य पर्वतश्रेष्ठे दुर्जये चाचलोत्तमे ॥ १५९ ॥
तत्र[42] भैरवगङ्गास्ति सरो वै [43]भैरवाह्वयम् ।
तयोः स्नात्वा नरो याति शिवलोकं सनातनम्[44]॥ १६० ॥

---

३७. सितातोयम । ३८. तस्या बिलात् । ३९. 'अवाप्नुया
४० तस्या स्नात्वा नरोत्तम । * मुद्रितपुस्तके अधिक ।
४१. दुर्जयाख्यो हरगिरौहरसमोगग' समौ । ४२. तत्रैवाकाशगंगासि
४३. स्थावरा '' । ४४. अमर्त्यताम् ।

दुर्जयाख्यस्य पूर्वस्या पुर नाम वरासनम् ।
तद्दक्षिणे महाशैलः क्षोभको नाम नामतः ॥ १६१ ॥
तस्मिन् गिरौ शिलापृष्ठे रक्तदेवी व्यवस्थिता ।
पञ्चपुष्करिणी नाम्ना पञ्चयोनिस्वरूपिणी ॥ १६२ ॥
पञ्चभिर्दुर्गायोनिभिः पूजयेत् पंचवक्त्रकम् ।
स्थिता रमयितु तत्र नित्यमेव हिमाद्रिजा ॥ १६३ ॥
तच्छैलपूर्वभागे तु कान्ता नाम महानदी ।
दक्षिणं सागरं याति प्रथमं चोत्तरस्रवा ॥ १६४ ॥
दिव्यं कुण्ड महाकुण्ड [४५]तच्छैलोपत्यकाक्षितौ ।
सस्थित तत्र स्नात्वा तु तां देवी परिपूजयेत् ॥ १६५ ॥
दिव्यकुण्डे नरः स्नात्वा पञ्चपुष्करणी शिवाम् ।
यः पूजयेन्महाभागः स योनौ न हि जायते ॥ १६६ ॥
पञ्चयोन्यः पुष्करिणीः पचैव परिसंस्थिताः ।
यतस्ततः पञ्चरूपा पञ्चपुष्करिणी मता ॥ १६७ ॥
यथाबकुल-पुष्पाणि तथैता पञ्चयोनयः ।
पञ्चपुष्करिणीदेव्यः प्रचण्डाः सर्वकामदाः ॥ १६८ ॥
त्रिपुराद्यास्तु तन्त्रेण ताः पूज्याः साधकोत्तमैः ।
कामेश्वरीतन्त्रमन्त्रैरथवा पूजयेच्छिवाम् ॥ १६९ ॥
बालायास्त्रिपुरायास्तु मन्त्रमस्याः प्रकीर्तितम् ।
कामेश्वर्यास्तु वा मन्त्रं पूजनेऽस्याः प्रकीतितम् ॥ १७० ॥
उग्रचण्डा प्रचण्डा च चण्डोग्रा चण्डनायिका ।
चण्डा चेति च योगिन्यः पञ्चास्याः परिकीर्तिताः ॥ १७१ ॥
शिवलिङ्गं च तत्रास्ति शिलायां हेरुकाह्वयम् ।
देवीदक्षिणपूर्वस्या नायक तं तु पूजयेत् ॥ १७२ ॥
भैरवस्य तु मन्त्रेण पूजयित्वा दिवं व्रजेत् ।
निर्माल्यधारिणी देवी चण्डगौरीति कीर्तिता ॥ १७३ ॥
एतस्यां नरशार्दूल पुरा भर्गेण भाषिता ।
कान्तायां सलिले स्नात्वा वसन्ते[४६] मानवोत्तमः ॥ १७४ ॥
रूपवान् गुणवान् भूत्वा शिवलोकाय गच्छति ।
क्षोभकाख्याद् महाशैलादैशान्यां पर्वतोत्तमः ॥ १७५ ॥
तुंगसन्ध्याचलो नाम वसिष्ठो यत्र शप्तवान् ।

---

४५. तस्यैव । ४६. रमन्ते ।

निमिनाम्नस्तु राजर्षेः शापाद् ब्रह्मसुत. पुरा ॥ १७६ ॥
वसिष्ठो ह्यशरीरोऽभूत् तच्छापाच्च निमिस्तथा ।
ततो ब्रह्मोपदेशेन निर्जने कामरूपके ॥ १७७ ॥
सन्ध्याचले तपस्तेपे तस्य विष्णुरभूत् तदा ।
प्रत्यक्षस्तस्य देवस्य बरदानान्महामुनिः ॥ १७८ ॥
अमृतान्यवतार्याशु कुण्ड कृत्वा गिरेस्तटे ।
तत्र स्नात्वा च पीत्वा च शरीरं प्राप पूरितम् ॥ १७९ ॥
तस्मादमृतकुण्डाच्च सन्ध्या नाम नदीवरा ।
निःसृता तत्र चाप्लुत्य चिरायुरगदो भवेत् ॥ १८० ॥
तस्मात् पूर्वं तु ललिता ललिताख्या सरिद्वरा ।
सागराद् दक्षिणात् पूर्वं महादेवावतारिता ॥ १८१ ॥
वैशाखशुक्लपक्षस्य तृतीयाया नरस्तु यः ।
कुर्याद् वै ललितास्नान स शम्भुसदनं व्रजेत् ॥ १८२ ॥
ललितायाः [४७]पूर्वतीरे भगवान्नाम पर्वतः ।
स्वय विष्णुर्लिङ्गरूपी तत्रास्ते भगवान् हरिः ॥ १८३ ॥
ललिताया नरः स्नात्वा द्वादश्या शुक्लपक्षके ।
भगवन्तं समारुह्य यो यजेत् परमेश्वरम् ॥ १८४ ॥
स याति विष्णुसदन शरीरेण विराजता ।
एताः पूर्वोदिता नद्यः सर्वाश्चैवोत्तरस्रवाः ॥ १८५ ॥
क्रमात् तु दक्षिण यान्ति सागरं जाह्नवीसमाः ।
कामाख्या प्रथमं दृष्ट्वा स्नात्वा चैवोर्वशीजले ।
य एतासु चरेत् स्नानं स तु मुक्तिमवाप्नुयात् ॥ १८६ ॥

इति श्रीकालिकापुराणे एकोनाशीतितमोऽध्याय ॥ ७९ ॥

---

४७ पूर्वभागे ।

अशीतितमोऽध्यायः

और्व उवाच—

शाश्वती कथिता या तु नदी मत्स्यध्वजासिता ।
तस्याः पूर्वे समाख्याता नदी दीपवती मता ॥ १ ॥
एषा च हिमवज्जाता छिन्दन्ती दीपवत्तमः ।
तेन देवमनुष्येषु नदी दीपवती स्मृता ॥ २ ॥
दीपवत्याः पूर्वतस्तु शृङ्गाटो नाम पर्वतः ।
तत्र देवस्य भर्गस्य लिङ्गमेक प्रतिष्ठितम् ॥ ३ ॥
सरित् तु सिद्धा त्रिःस्रोता दक्षिणोदधिगामिनी ।
शृङ्गाटकस्य सतत स्रवन्ती सा तु पादतः ॥ ४ ॥
दक्षिण सागर याति भर्गस्य प्रियकारिणी ।
सलिले यो नरः स्नात्वा त्रिःस्रोताया नरोत्तमः ॥ ५ ॥
शृङ्गाटक समारुह्य पूजयेल्लिङ्गशङ्करम् ।
स दीप्तकायः शुद्धात्मा प्राप्य कामानिहातुलान् ॥ ६ ॥
अन्ते भर्गगृह्र याति ततो मोक्षमवाप्नुयात् ।
हरस्तु द्विभुजस्तस्मिन् सदा वृषभवाहनः ॥ ७ ॥
उमया रमते सार्धं वामदेवस्य मन्त्रकैः ।
तन्त्रैश्च पूजयेद् देवमुमामन्त्रेण चण्डिकाम् ॥ ८ ॥
तत्-पूर्वतो निम्नगा तु नाम्ना तु वृद्धवेदिका ।
तस्यां स्नात्वा फल मर्त्यो वेदिकास्नानज लभेत् ॥ ९ ॥
ततो भट्टारिका नाम हिमशैलसमुद्भवा ।
महानदी देवगणैर्या सदोपास्यते सुखम् ॥ १० ॥
तस्यां यः कुरुते स्नानं युगादिषु चतुर्ष्वपि ।
स याति परम स्थान तद्विष्णोः परम पदम् ॥ ११ ॥
अस्ति नाटकशैले तु सरो मानससन्निभम् ।
यत्र सार्धं शैलपुत्र्या जलक्रीडां सदा हरः ॥ २ ॥
कुरुते नरशार्दूल स्वर्णपङ्कजशोभिते ।
तस्य पश्चान्मध्यपूर्वभागेभ्यस्तु सरित्-त्रयम् ॥ १३ ॥
अवतीर्णं प्रयात्येव दक्षिणं सागर प्रति ।
तस्य पश्चिमभागे तु नदी दिकरिकाह्वया ॥ १४ ॥

दिग्गजक्षतसजाता तेन दिक्करिकाह्वया ।
मध्यभागात् सृता या तु[४८] शङ्करेणावतारिता ॥ १५ ॥
वृद्धगंगाह्वया सा तु गगेव फलदायिनी ।
या निःसृता पूर्वभागात् तस्माद् गिरिवरान्नदी ॥ १६ ॥
सुवर्णस्राविणी ख्याता[४९] सा गङ्गासदृशीफले ।
कुर्वत्याः सरसि स्नान पार्वत्याश्च शरीरतः ॥ १७ ॥
निःसृताः स्वर्णकणिकास्ता वहन्ति चलैरिमाः ।
क्रीडार्थं शम्भुना गात्रे कणिकाभिः[५०] समाचिताः ॥ १८ ॥
स्वस्थानात् तत्र संलग्नास्ततश्चन्दनबिन्दवः ।
ता उमायाः शरीरात् तु सस्रवन्ति जलैः सह ॥ १९ ॥
तत. स्वर्णवहा नाम स्वर्णश्रीः सर्वतोऽधिका ।
एतासु चैत्रमास तु स्नात्वा मर्त्यो नरर्षभः ॥ २० ॥
कृष्णपक्षे चतुर्दश्या त्रिकाल यत्र मानवः ।
चिर देवीगृहे स्थित्वा शेषे ब्रह्मगृहं व्रजेत् ॥ २१ ॥
भूमाववगत. पश्चात् सार्वभौमो नृपो भवेत् ।
वृद्धगङ्गाजलस्यान्तस्तीरे ब्रह्मसुतस्य वै ॥ २२ ॥
विश्वनाथाह्वयो देवः शिवलिङ्गसमन्वितः ।
विश्वदेवी महादेवी योनिमण्डलरूपिणी ॥ २३ ॥
हयग्रीवेण युयुधे तत्र देवो जगत्पतिः ।
हयग्रीवं यत्र हत्वा मणिकूटं पुरागतम् ॥ २४ ॥
तत्र यः पूजयेद् दुर्गां शारदा तन्त्रमन्त्रकैः ।
हयग्रीवस्य मन्त्रेण तन्त्रेण गरुडध्वजम् ॥ २५ ॥
कामेश्वरस्य तन्त्रेण मन्त्रेणापि च शङ्करम् ।
यो यजेत् परया भक्त्या द्वादश्या समुपोषितः ॥ २६ ॥
अष्टम्या च चतुर्दश्यां तस्य पुण्यफल शृणु ।
कल्पकोटित्रय स्थित्वा [५१]शिवगेहे गृहे हरेः ॥ २७ ॥
तावन्तं संस्थितः कालं तावन्त च शिवागृहे ।
शेषे भुव समासाद्य वेदविद् ब्राह्मणो भवेत् ॥ २८ ॥
नद्याः स्वर्णश्रियः पूर्वं नदी कामाह्वया शुभा ।
कामायाः पूर्वभागे तु नदी सोमाशनाह्वया ॥ २९ ॥

---

४८ मध्यभागसृतायास्तु । ४९. सुवर्णश्रीरिति विख्याता ।
५० कलिकाभि । ५१ शिवलोके गृहे तु स ।

सोमाशनायाः पूर्वस्या नदी नाम्ना वृषोदका।
ततः पूर्वे कामरूपं पीठ ते जगता प्रसूः ॥ ३० ॥
जगन्मयी महामाया देवी दिक्करवासिनी।
एता याः कथिता नद्य. सकला दक्षिणस्रवा ॥ ३१ ॥
तासु स्नात्वा च पीत्वा च स्वर्गलोकमवाप्नुयात्।
प्रान्ते दिक्करवासिन्याः सदा वहति स्वर्णदी ॥ ३२ ॥
सितगङ्गाह्वया लोके साक्षाद् गङ्गाफलप्रदा।
सा भूमिपीठसस्था च देवी दिक्करवासिनी ॥ ३३ ॥
अन्तर्जले[५२] प्लावयन्ती याति प्रत्यक्षता सुरैः[५३]।
सितगङ्गाजले स्नात्वा दृष्ट्वा शम्भु हरि विधिम् ॥ ३४ ॥
इष्ट्वा ललितकान्ताख्या पुनर्योनौ न जायते।
लिङ्गस्वरूपी भगवाञ्छम्भुस्तत्र स्वय स्थितः ॥ ३५ ॥
विष्णु. शिलास्वरूपेण ब्रह्मलिङ्गस्वरूपधृक्।
पीठे दिक्करवासिन्या द्विरूपा रमते शिवा ॥ ३६ ॥
तीक्ष्णकान्ताह्वया त्वेका योग्रतारा प्रकीर्तिता।
परा ललितकान्ताख्या या[५४] श्रीमङ्गलचण्डिका ॥ ३७ ॥
तस्यास्तु सतत रूप तीक्ष्णकान्ताह्वय नृप।
कृष्णा लम्बोदरी या तु सा स्यादेकजटा शिवा ॥ ३८ ॥
तेन रूपेण ता देवीं सतत परिपूजयेत्।
अङ्गमन्त्र च रूपं च तस्याः प्राक्प्रतिपादितम् ॥ ३९ ॥
त्रिकोण मण्डल चास्याः कर्तव्य मन्त्रपूर्वकम्।
आदौ रखे ततः पश्चात् सुरेखेति पद ततः ॥ ४० ॥
तथा पदं चाधिगम्य तिष्ठन्त्विति पदं ततः।
मण्डलस्यास्य मन्त्रोऽय तीक्ष्णायाः परिकीर्तितः ॥ ४१ ॥
नरत्रिपुरदेवादियमवेतालदुर्धराः ।
गणश्रमेत्यन्तकान्ता द्वारपालाः प्रकीर्तिताः ॥ ४२ ॥
एतास्तु पूजयेत् सम्यङ्मण्डलस्याष्टदिक्षु वै।
आदौ सम्बोधनं कृत्वा वज्रपुष्पं ततः परम् ॥ ४३ ॥
वह्निजायं[५५] ततः पश्चान्मन्त्रमेषां प्रकीर्तितम्।
पात्रोपकरणादीनां [५६]स्थानस्यान्यस्य सर्वतः ॥ ४४ ॥

---

५२. जलैः। ५३. प्रत्यक्षमान्तरैः। ५४. सा।
५५ वह्निजाया। ५६ स्थानं न्यासस्य।

सर्वमुत्तरतन्त्रोक्त गुह्य रूपद्वयेऽपि च।
चामुण्डा च कराला च सुभगा भीषणा भगा ॥ ४५ ॥
विकटेति च योगिन्यः प्रोक्ता यस्यास्तवैव षट्।
हे भगवत्येकजटे विद्महे पदमन्ततः ॥ ४६ ॥
विकटदष्ट्रे धीमहि तन्नस्तारे प्रचोदयात्।
एषा तु तीक्ष्णगायत्री पीठदेव्याः प्रकीर्तिता ॥ ४७ ॥
निर्माल्यधारिणी चास्या देवी विकटचण्डिका।
माला तु मृन्मयी प्रोक्ता रुद्राक्षसम्भवापि वा ॥ ४८ ॥
विशेष एष देव्यास्तु पूजने परिकीर्तितः।
उपचारादिक कृत्यं बलिदानं जपादिकम् ॥ ४९ ॥
[५७]सर्वं तु पूर्ववद् ग्राह्य कामाख्यापूजने यथा।
*पानेषु मदिरा शस्ता नरो बलिषु पार्थिव ॥ ५० ॥
*मोदको नारिकेल च मासव्यञ्जनमैक्षवम्।
*नैवेद्येषु प्रियकरास्तीक्ष्णायाः परिकीर्तिताः ॥ ५१ ॥
यैषा ललितकान्ताख्या देवी मङ्गलचण्डिका।
वरदाभयहस्ता सा द्विभुजा गौरदेहिका ॥ ५२ ॥
रक्तपद्मासनस्था च मुकुटोज्ज्वलमण्डिता।
रक्तकौशेयवसना स्मितवक्त्रा शुभानना ॥ ५३ ॥
नवयौवनसम्पन्ना चार्वङ्गी ललितप्रभा।
उमाया भाषित मन्त्र यत् पूर्वं त्वेकमक्षरम् ॥ ५४ ॥
मन्त्रमस्यास्तु तज्ज्ञेय तेन देवी प्रपूजयेत्।
नारायण्यै विद्महे त्वा चण्डिकायै तु धीमहि ॥ ५५ ॥
तन्नो ललितकान्तेति ततः पश्चात् प्रचोदयात्।
एषा ललितगायत्री देव्या इष्ट्यै प्रकीर्तिता[५८] ॥ ५६ ॥

---

५७ सर्वमुत्तरतन्त्रोक्त ग्राह्य रूपद्वयेऽपि च।
*चामुण्डा च कराला च शुभदा भीषणा वृषा।
विकटेति च योगिन्य प्रोक्तास्तस्यास्तु भूपते ॥ (क)
ईं भगवत्येकजटे विद्महे पदमन्तत।
विकटदष्ट्रे धीमहि तन्नस्तारे प्रचयोदयात् ॥
एषा तु तीक्ष्णगायत्री पीठदेव्या प्रकीर्तिता ॥ (ख)

* मुद्रितपुस्तके अधिक। ५८ प्रतिष्ठिता।

लोहितागस्य दिवसः प्रियोऽस्याः परिकीर्तितः ।
कालो वसन्तकालश्च स्वरश्चापि तु पञ्चमः ॥ ५७ ॥
अष्टम्या च नवम्या च पूजा कार्या विभूतये ।
निर्माल्यधारिणी चास्या देवी ललितचण्डिका ॥ ५८ ॥
दूर्वाङ्कुरैः समायुक्तमक्षत प्रीतिद परम् ।
अयमस्या विशेषस्तु पूजने परिकीर्तितः ॥ ५९ ॥
वैष्णवीतन्त्रमन्त्रस्य[५९] [६०]तन्त्रं ग्राह्य तु पूजने ।
उपचारो बलिश्चास्या विहितो यः क्रमः पुरा ॥ ६० ॥
महामायामहादेव्यास्तद्ग्राह्यं परिपूजने ।
स्वगात्ररुधिर दद्यादात्मनश्च हिताय वै ॥ ६१ ॥
पटेषु प्रतिमाया वा घटे मङ्गलचण्डिकाम् ।
यः पूजयेद् भौमदिने शुभैर्दूर्वाङ्कुरैः[६१] शिवाम् ॥ ६२ ॥
सततं साधकः सोऽपि काममिष्टमवाप्नुयात् ।
एव दिक्करवासिन्याः कथितः पूजनक्रमः ॥ ६३ ॥
यच्छ्रुत्वा नाशुभ किञ्चिदाप्नोति श्रवणे रतः ।
दिक्करस्त्वरुणः[६२] प्रोक्तस्तथा शम्भुश्च दिक्करः ॥ ६४ ॥
तस्मिन्नध्युषिता देवी तस्माद् दिक्करवासिनी ।
जगत्त्रयेऽपि यस्यास्तु सदृशी क्वापि सुन्दरी ॥ ६५ ॥
नान्यास्ति ललिता तेन देवी ललितकान्तिका ।
शङ्करस्य पुरा प्रोक्तो ग्राह्यो वै पूजनक्रमः ॥ ६६ ॥
शृणु राजन्नवहितो ब्रह्मणः पूजनक्रमम् ।
ब्रह्मबीजं पुरा प्रोक्त तन्मन्त्रं सर्वतश्चरेत् ॥ ६७ ॥
तेनैव तं तु सम्पूज्य परं निर्वाणमाप्नुयात् ।
एतस्य चाङ्गमन्त्रं तु यथा भर्गेण भाषितम् ॥ ६८ ॥
वेतालभैरवाभ्यां तु रूपं च शृणु भूमिप ।
यस्तृतीयश्च वह्निश्च शेषः स्वरसमन्वितः ॥ ६९ ॥
चन्द्रबिन्दुसमायुक्तो ब्रह्ममन्त्रं प्रकीर्तितम् ।
अनेनैव तु मन्त्रेण ब्रह्मणा यः प्रपूजयेत् ॥ ७० ॥
स काममिष्टं संप्राप्य ब्रह्मलोकेषु मोदते ।
ब्रह्मा कमण्डलुधरश्चतुर्वक्त्रश्चतुर्भुजः ॥ ७१ ॥

---

५९. 'मन्त्रं च । ६० यन्त्र । ६१. दूर्वाक्षतैः ।
६२. दिक्करस्तरुणः ।

कदाचिद्रक्तकमले हंसारूढः कदाचन।
वर्णेन रक्तगौराङ्गः प्रांशुस्तुङ्गाङ्ग उन्नतः ॥ ७२ ॥
कमण्डलुं वामकरे स्रुच[63] हस्ते च दक्षिणे।
दक्षिणाधस्तथा माला वामाधश्च तथा स्रुवम्[64] ॥ ७३ ॥
आज्यस्थाली वामपार्श्वे देवाः[65]सर्वेऽग्रतः स्थिताः।
सावित्री वामपार्श्वस्था दक्षिणस्था सरस्वती ॥ ७४ ॥
सर्वे च ऋषयो ह्यग्रे कुर्यादेवं विचिन्तनम्।
चतुष्कोण चतुर्द्वारमष्टपत्रसमन्वितम् ॥ ७५ ॥
चतुष्कोणेष्वङ्कितं तु स्रक्कमण्डलुस्रुक्स्रुवैः।
सम्मार्जनादिक सर्वं याश्चान्याः प्रतिपत्तयः ॥ ७६ ॥
दृष्टाश्चोत्तरतन्त्रोक्ता योगपीठेऽङ्किकादिकाः।
आधारशक्तिप्रमुखांस्तथा सर्वांस्तु पूजयेत् ॥ ७७ ॥
अष्टपत्रेषु [66]पद्मस्य दिक्पालांश्च प्रपूजयेत्।
पद्मासनाय विद्महे हसरूढाय धीमहि ॥ ७८ ॥
तन्नो ब्रह्मन्निति पदं ततः पश्चात् प्रचोदयात्।
एषा तु ब्रह्मगायत्री पूजयेदनया विधिम् ॥ ७९ ॥
निर्माल्यधारी चैतस्य सनत्कुमार उच्यते।
उपचारा. पूर्ववत् तु [67]नेत्राञ्जनविवर्जिताः ॥ ८० ॥
रक्तकौशेयवस्त्र तु ब्रह्मप्रीतिकर परम्।
अन्न सपायस सर्पिस्तिलयुक्त च भाजनम् ॥ ८१ ॥
सितरक्तसमायुक्त चन्दन परिकीर्तितम्।
पार्श्वयोः शकरं विष्णु [68]पूजने पूजयेत् पुरः ॥ ८२ ॥
स्रुवादीन् करसस्थास्तु मण्डले परिपूजयेत्।
सरस्वतीं च सावित्रीं हस पद्म तथैव च ॥ ८३ ॥
अयं विशेषः कथितः प्रणामश्चास्य दण्डवत्।
पद्मबीजभवा माला जपकर्मणि कीर्तिता ॥ ८४ ॥
पूर्णादर्शौ तिथी ग्राह्यौ पूजाकर्मणि सर्वदा।
क्षीरेणार्घं प्रदद्यात् तु सर्वदा ब्रह्मणे नृप ॥ ८५ ॥
अय ते कथितो भूप यथा भर्गेण भाषितः।
दर्शयता स्वपुत्राभ्या कामरूपाह्वय शुभम् ॥ ८६ ॥

---

६३ स्रुव। ६४ स्रुच.। ६५ वेदा। ६६. पद्मस्याष्टदिक्पालानपि।
६७ नेत्ररञ्जन '। ६८. पूजयेत् पूजयेत् पुनः।

यत्र तत्र विधिश्चैव साधकः परिपूजयेत् ।
पीठे सम्यक् पूजयित्वा पर निर्वाणमाप्नुयात् ॥ ८७ ॥
कथिता ब्रह्मणः पूजा पूजन शृणु वैष्णवम् ।
बीज तु वासुदेवस्य पुरैव प्रतिपादितम् ॥ ८८ ॥
तदङ्गमन्त्र राजेन्द्र द्वादशाक्षरमुच्यते ।
नमो भगवते पूर्वं वासुदेवाय वै परम् ॥ ८९ ॥
अङ्गमन्त्रमिद चैव[६९] वासुदेवस्य कीर्तितम् ।
अस्य प्रत्यङ्गरूप तु दधिवामनसञ्ज्ञकम् ॥ ९० ॥
तस्य मन्त्रं नरश्रेष्ठ शम्भुना भाषित शृणु ।
ॐ नमो विष्णवे[७०] पूर्वं पदं तस्य प्रकीर्तितम् ॥ ९१ ॥
पदं च सुरपतये चतुर्थ्यन्तं महाबलम् ।
स्वाहान्तं हृदयासन्नं प्रत्यङ्गवैष्णव मतम् ॥ ९२ ॥
[७१]मन्त्रत्रय तु यो वेद बीजं प्रत्यङ्गसञ्ज्ञकम् ।
स पुमान् देवकायस्तु न स भूयोऽभिजायते ॥ ९३ ॥
सर्वं उत्तरतन्त्रोक्तः क्रमो ग्राह्यः प्रपूजने ।
त्रिषु मन्त्रेषु च सदा विशेष शृणु भूपते ॥ ९४ ॥
रूप तु बीजमन्त्रस्य प्रथम शृणु भूपते ।
पूर्णचन्द्रोपमः शुक्लः पक्षिराजोपरिस्थित ॥ ९५ ॥
चतुर्भुजः पीतवस्त्रैस्त्रिभिः संवीतदेहभृत् ।
दक्षिणोर्ध्वे गदां धत्ते तदधो विकचाम्बुजम् ॥ ९६ ॥
वामोर्ध्व चक्रमत्युग्रं धत्तेऽधः शङ्खमेव च ।
श्रीवत्सवक्षाः सततं कौस्तुभ हृदि चाशुमत् ॥ ९७ ॥
धत्ते कक्षे ह्यधोवामे तूणीरं बाणपूरितम् ।
दक्षिणे कोषगं खड्ग नन्दक सशरासनम् ॥ ९८ ॥
शीर्षे किरीटं सूद्योतं कर्णयोः कुण्डलद्वयम् ।
आजानुलम्बिनी चित्रां वनमाला गले स्थिताम् ॥ ९९ ॥
दधानं दक्षिणे देवी श्रिय पार्श्वे तु बिभ्रतम् ।
सरस्वतीं वामपार्श्वे चिन्तयेद् वरद[७२] हरिम् ॥ १०० ॥
बीजमन्त्रस्य रूप च कथित तव पार्थिव ।
द्वादशाक्षरमन्त्रस्य रूपमेतच्छृणुष्व मे ॥ १०१ ॥

---

६९. '' मन्त्रं तथैतस्य । ७०. तस्य पूर्वपदं प्रकीर्तितम् ।
७१. मन्त्रं यन्त्रं । ७२. अथ त ।

नीलोत्पलदलश्यामं तथैव च चतुर्भुजम् ।
दक्षिणोर्ध्वस्थित पद्मं गदा चाथ प्रयोजयेत् ॥ १०२ ॥
वामेऽधश्चक्रमतुलमूर्ध्वे शख च बिभ्रतम् ।
चिन्तयेद् वरद देव सर्वमन्यच्च पूर्ववत् ॥ १०३ ॥
अष्टादशाक्षरस्यास्य प्रत्यङ्गस्य च चिन्तनम्[७३] ।
शृणु राजन्नवहितो दारिद्र्यभयनाशनम्[७४] ॥ १०४ ॥
पूर्णेन्दुसदृश कान्त्या शुक्लवर्ण विचिन्तयेत् ।
करे विचिन्तयेद् वामे पीयूषापूरितं घटम् ॥ १०५ ॥
दध्यन्नखण्डसयुक्त दक्षिणे स्वर्णभाजनम् ।
पद्मासनगत देव चन्द्रमण्डलमध्यगम् ॥ १०६ ॥
शुक्लवस्त्रधर देवं प्रमाणाद् वामन सदा ।
ईषद्धाससमायुक्त त्रिलोकेश त्रिविक्रमम् ॥ १०७ ॥
चिन्तयेद् वरदं देव सर्वकामफलप्रदम् ।
दहनप्लवनादौ च पूवतन्त्रोदिता यथा ॥ १०८ ॥
तथा मन्त्राः परिग्राह्मास्तथा चोत्तरतन्त्रगाः ।
मण्डलस्य क्रमं तस्य शृणु भर्गेण भाषितम् ॥ १०९ ॥
रेखया नित्यपूजासु रजोभिः पचभिस्तथा ।
नैमित्तिके यथा कार्यं भेदाभेदेन साम्प्रतम् ॥ ११० ॥
हस्तमात्रं[७५] चतुर्द्वार वर्तुलाम्बुजसन्निभम् ।
चतुष्कोणे चतुर्भिस्तु शङ्खैर्युक्तं मनोहरम् ॥ १११ ॥
[७६]बद्धद्वारं दिक्पतीनामायुधैः करणैस्तथा ।
अष्टासु दिक्षु निहित सबहिर्वष्टपद्मकम् ॥ ११२ ॥
एव यथा रजोभिस्तु कार्यं तच्छृणु पार्थिव ।
सितै. पीतैस्तथा रक्तैः श्यामैश्च हरितैः क्रमात् ॥ ११३ ॥
रजोभिर्मण्डलं कुर्यादन्यथा न समाचरेत् ।❀
चतुर्हस्त त्रिहस्तं च द्विहस्त हस्तमात्रकम् ॥ ११४ ॥❀
सर्वत्र मण्डलं कुर्याद् यथोक्तं चाधिकं पुनः ।
राजसूयाश्वमेधादौ चतुर्हस्ताधिक मतम् ॥ ११५ ॥❀
कल्पानतिक्रमाद् भूप यथोक्त यत्र यत्र च ।❀
दिक्पालायुधपद्मानां पूर्ववल्लिखनक्रमः ॥ ११६ ॥

---

७३. विस्तरम् । ७४ " मञ्जनम् । ७५ हस्तमानं ।
७६ चतुर्द्वारं । ❀ अधिका मुद्रितपुस्तके ।

सितै रजोभिः कर्तव्य मध्ये पद्म सुवर्तुलम्।
कर्णिका पीतवर्णास्य केशराग्रं तथारुणम्[७७] ॥ ११७ ॥
रक्तैः पीतैः पूरयेत् तु बहिः पद्मस्य सर्वतः।
वज्र शक्ति लोहदण्ड खड्ग पाशाङ्कुश[७८] गदाम् ॥ ११८ ॥
शूलमष्टदिगीशानामायुधानि क्रमात् पुनः।
शम्भुगौरी तथा ब्रह्मा रामः कृष्णस्तथैव च ॥ ११९ ॥
एतास्तु सतत पूज्याः सस्थिताः[७९] पञ्चदेवताः।
न कदाचिदधः[८०] कुर्याच्छम्भुगौर्यो[८१]र्वियोजनम् ॥ १२० ॥
वियोगे तु कृता पूजा निष्फला तस्य जायते।
विच्छिन्नं मूर्ध्नि भूतं तु पूजित शक्तमेव च ॥ १२१ ॥
न्यासे तु मण्डलस्यास्य रजोदोष विवर्जयेत्।
सर्वत्र मण्डल कार्य वासुदेवस्य पूजने ॥ १२२ ॥
एवमेव नृपश्रेष्ठ निष्फल चान्यथेतरत्[८२]।
बलभद्रश्च कामश्च ह्यनिरुद्धस्तदुद्भवः ॥ १२३ ॥
नारायणस्तथा ब्रह्मा विष्णुः षष्ठः प्रकीर्तितः।
नरसिंहो वराहश्च योगिन्योऽष्टौ प्रकीर्तिताः ॥ १२४ ॥
पूर्वाद्यष्टदले श्वेता रूपतो मन्त्रतः पृथक्।
पूजयेत् कर्णिकामध्ये वासुदेवं तु नायकम् ॥ १२५ ॥
विमला नायिका तस्य वासुदेवस्य कीर्तिता।
बलभद्रमुखानां तु योगिनीः शृणु पार्थिव ॥ १२६ ॥
आदावुत्कर्षिणी ज्ञेया ज्ञाना पश्चात् क्रियापरा।
योगा प्रह्वी तथैशानी अनुग्राही तथाष्टमी ॥ १२७ ॥
सर्वाश्चतुर्भुजाः प्रोक्ताः शङ्खचक्रगदाधराः।
योगिन्यो बलभद्रं[८३] तु काम विधिमृते तथा ॥ १२८ ॥
[८४]विधिखड्गं तु पूर्वोक्त हल च मुषल बलः[८५]।
[८६]खड्ग चक्रं च धत्ते यो गदा पार्श्वे स्थिता सदा ॥ १२९ ॥
कामस्तु पुष्पकोदण्ड धत्ते वामेन पाणिना।
गदा चक्र[८७] च पुष्प च धत्तेऽन्यैः पाणिभिः पुनः ॥ १३० ॥

---

७७. ° रुणम्। ७८. पाश ध्वज। ७९. दिक्पाला।
८०. कदाचिद् बुध। ८१. शम्भुगौर्यां। ८२. चान्यचेतनम्।
८३. बलभद्रस्य। ८४. विधे रूपं। ८५. तथा। ८६. चक्रं शखं
८७. शार्ङ्गं चक्र च। श्वेत ...।

पार्श्वे पद्म तथा धत्ते सर्वमन्यच्च पूर्ववत् ।
चक्र शङ्खो वराहस्य दक्षिणे परिकीर्तितौ ॥ १३१ ॥
नृसिंहस्य पुनश्चक्रशङ्खौ दक्षिणवामयोः ।
शङ्ख पद्म तथा विष्णोः पाण्योर्दक्षिणयोः स्थितम् ॥ १३२ ॥
शंखो गदा वामतस्तु नारायणकरस्थितौ ।
दक्षिणाधो गदा धत्ते ह्यनिरुद्धो नरोत्तमः ॥ १३३ ॥
[८८]सितरक्तस्तथा पीतो भिन्नाञ्जननिभस्तथा ।
नीलोत्पलदलश्यामस्तथा रक्तघनप्रभः ॥ १३४ ॥
भ्रमरश्यामलः पिङ्गः स्वर्णगौरः क्रमादिमे ।
वर्णतो योगिनः प्रोक्ता वासुदेवस्य पार्थिव ॥ १३५ ॥
यादृग्वर्णश्च ध्यान च यस्य यस्य च योगिन. ।
तादृशीर्योगिनीस्तस्य चिन्तयेत् तत्समीपगाः ॥ १३६ ॥
आधारशक्तिप्रमुखाः सर्वा आसनदेवताः ।
ग्रहाश्च सर्वे दिक्पाला ध्यानतो मन्त्रतस्तथा ॥ १३७ ॥
पूजनीया यथोद्देशे मण्डलस्य क्रमान्नृप ।
देवस्य चिन्तितं यद्यच्छरीरे कमलादिकम् ॥ १३८ ॥
धृतास्त्रं वज्रशक्त्यादिगरुडादींश्च पूजयेत् ।
वणमाला शम्भुमतामासाद्य क्रमयोगतः ॥ १३९ ॥
आद्यद्वितीयक्रमतो गदादीनां तु मन्त्रकम् ।
पञ्चरात्रोदिते भागे नारदेन यथोदिताः ॥ १४० ॥
मन्त्राश्चक्रगदादीना ग्राह्याः सर्वत्र पूजने ।
गरुत्मान् सूर्यसङ्काशो गदा कृष्णायसी पुनः ॥ १४१ ॥
सरस्वती शुक्लवर्णा लक्ष्मीर्हेमप्रभा सदा ।
मध्याह्नसूर्यप्रतिम चक्र तु परिकीर्तितम् ॥ १४२ ॥
सम्पूर्णचन्द्रप्रतिमः शङ्खस्तु परिकीर्तितः ।
कौस्तुभो ह्यरुणः प्रोक्तः श्रीवत्सो ह्यरुणद्युतिः ॥ १४३ ॥
आरक्तकौस्तुभो ज्ञेयो माला चित्रा प्रकीर्तिता ।
विद्युत्प्रभा सर्वबाणाः शक्रचापप्रभं धनुः ॥ १४४ ॥
स्वर्णचूर्णप्रकाश तु वस्त्रमस्य प्रकीर्तितम् ।
बालसूर्यप्रतीकाशे[८८] कुण्डले द्वे श्रवोगते ॥ १४५ ॥
सूर्यस्य सदृशं शीर्षे किरीटं परिकीर्तितम् ।

८८. ' सूर्यस्य सदृशे ।

शृणु न्यासं ततो भूप यैर्न्यासैर्विष्णुरूपधृक् ॥ १४६ ॥
साधको हि भवेन्नित्यं स्वर्गमोक्षप्रदायकम् ।
न्यासं तु प्रथमं कुर्यान्मन्त्रविद् द्वादशाक्षरैः ॥ १४७ ॥
वासुदेवस्य बीजेन बीजं चैवाथ योगिनाम् ।
ततो न्यसेन्महामन्त्रे ततश्चाष्टादशाक्षरैः ॥ १४८ ॥
ततस्तु हृदयादीना षड्भिर्मन्त्रैर्द्विधा पुनः ।
एवं चतुर्भिर्न्यासैस्तु पूजामेका समाचरेत्[८९] ॥ १४९ ॥
प्रथम दक्षिणाङ्गुष्ठे न्यसेदाद्यक्षर बुधः ।
*द्वादशाक्षरमन्त्रस्य [९०]शेषबीजानि तु क्रमात् ॥ १५० ॥
*तर्जन्यादौ दक्षिणस्य वामाङ्गुष्ठान्तमेव च ।
*शेषाक्षरद्वयं पश्चाद् न्यसेत् पाणितलद्वये ॥ १५१ ॥
*हृदि शीर्षे शिखाया च स्कन्धयोर्दृक्पिचण्डयोः ।
*पृष्ठे तु भुजयोः पाण्योर्जघयोः पादयोः क्रमात् ॥ १५२ ॥
द्वादशाक्षरमन्त्रस्य बीजानि च ततो न्यसेत् ।
अङ्गुष्ठयोस्तु प्रथम वासुदेवस्य तत्त्वकम् ॥ १५३ ॥
तर्जन्यादौ योगिना तु बीजान्यष्टौ द्वयोर्न्यसेत् ।
शिरोदृगा[९१]स्यकण्ठोरोनाभिगुह्येषु जानुनोः ॥ १५४ ॥
पादयोर्वासुदेवस्य योगिबीजानि विन्यसेत् ।
मन्त्राणि हृदयादीना यान्युक्तानि पुरा नृप ॥ १५५ ॥
तानि न्यस्याङ्गुष्ठमूलेऽङ्गुलीजाते द्वये द्वये ।
वामदक्षिणपाण्योस्तु शेष तु तलयोर्न्यसेत् ॥ १५६ ॥
हृदयाद्यस्त्रपर्यन्तं पुनस्तानि क्रमान्न्यसेसेत् ।
अष्टादशाक्षरस्यादिनववर्णान् न्यसेद् बुधः ॥ १५७ ॥
शिरोनेत्रादिपूर्वोक्ते नवबीजस्य गोचरे ।
शेषान् वर्णान[९२]सङ्कीर्णपार्श्ववस्तिषु शेफसि ॥ १५८ ॥
कट्यामूर्वोर्जङ्घयोश्च न्यसेत् पादाङ्गुलीषु च ।
यस्य मन्त्रस्य या पूजा तन्त्रैस्तु यत्र चोदिता ॥ १५९ ॥
तस्य तन्त्रस्य तत्रैव न्यास मन्त्री समाचरेत् ।
अथ चैकत्र सर्वेषां न्यासं कुर्याद विचक्षणः ॥ १६० ॥
चतुर्विधैः कृतैर्न्यासैः पूतात्मा धूतकल्मषः ।

---

८९ समारभेत् । ९० बीजानि च ततो न्यसेत् ।
* अधिक पाठ मुद्रितपुस्तके । ९१ शिरोदेशास्य । ९२. मुखे ।

साक्षाद् विष्णुर्भवेन्मन्त्री सम्यक् पूजाफलं लभेत् ॥ १६१ ॥
विनापि पूजनं यस्तु न्यासं कुर्याच्चतुर्विधम् ।
स धीरो विष्णुसायुज्यमाप्नोति परमं पदम् ॥ १६२ ॥
योगपीठं ततो ध्यात्वा गरुडं चक्रशङ्खं च ।
गदां लक्ष्मीं तथा पद्मं क्रमादेतेषु विन्यसेत् ॥ १६३ ॥
पूर्वदक्षिणकौबेरपश्चात्[९३]कोणेषु वै क्रमात् ।
दक्षिणे चोत्तरे वापि विन्यसेन्मन्त्रविद् बुधः ॥ १६४ ॥
वनमालां पद्ममध्ये श्रीवत्सं कौस्तुभं मणिम् ।
विन्यस्य दक्षिणे तस्य न्यसेच्छार्ङ्गं शरासनम् ॥ १६५ ॥
तूणीरयुगलं वामे खड्गं दक्षिणतो न्यसेत्
वामे चर्म निधायाशु तत्र कुर्यात् सरस्वतीम् ॥ १६६ ॥
पूजयित्वा च सर्वाणि ततो मुद्रां प्रदर्शयेत् ।
मुद्राः पुटाद्या याः प्रोक्ता विष्णुर्याश्चापि योगिनाम् ॥ १६७ ।
ग्रहाणां दिक्पतीनां च मुद्रास्ता दर्शयेत् पृथक् ।
शेषमन्त्राः पुरा प्रोक्ता अच्छिद्रस्यावधारणे ॥ १६८ ॥
तन्मन्त्रान् संपठित्वैव सूर्यायार्घ्यं निवेदयेत् ।
निर्माल्यधारी विष्णोस्तु विष्वक्सेनश्चतुर्भुजः ॥ १६९ ॥
शङ्खचक्रगदापाणिर्दीर्घश्मश्रुजटाधरः ।
रक्तपिङ्गलवर्णस्तु सितपद्मोपरिस्थितः ॥ १७० ॥
यत् तृतीयस्वरान्तेन संयुक्तो बिन्दुनेन्दुना ।
कीर्तितस्तस्य मन्त्रोऽयं तेन तं परिपूजयेत् ॥ १७१ ॥
विसर्जनं तथा विष्णोरैशान्यां परिकीर्तितम् ।
अन्येषां मनसा कुर्याद् बलादीनां विसर्जनम् ॥ १७२ ॥
एवं यः कुरुते पूजां विष्णोः शम्भोर्विधेः क्वचित् ।
पीठे दिक्करवासिन्याः स याति परमं पदम् ॥ १७३ ॥
यत्र यत्र भवेद् विष्णोः पूजनं नृपसत्तम ।
तत्र तत्रैव तन्त्रोऽयं ग्राह्यो वै वैष्णवैर्बुधैः ॥ १७४ ॥
सङ्क्षेपेणैव तत्रैव पूजयेदधिवामनम् ।
हृदयाद्यङ्गपूजा तु न कर्तव्याऽस्य पूजने ॥ १७५ ॥*

९३ द्वार । * मुद्रिते अधिक ।

सङ्क्षेपैर्विस्तरैर्वापि वासुदेव प्रपूजयेत्।
रक्तं कौशेयवस्त्र च पीत शुक्ल तथैव च॥ १७६॥
प्रीतिद वासुदेवस्य वस्त्रमेतत् प्रकीर्तितम्।
घृतप्रदीपो दीपेषु गन्धेषु मलयोद्भवः॥ १७७॥
पानार्घ्यभोज्यपात्रेषु ताम्रं प्रीतकर मतम्।
किरीट कुण्डलं हारो भूषण[१४]विष्णुतुष्टिदम्॥ १७८॥
शङ्खः स्नानीयपात्रेषु धूपेष्वगुरुरेव च।
प्रीतिदो वासुदेवस्य सततं परिकीर्तितः॥ १७९॥
कदम्बं कुब्जक जाती मल्लिका मालती तथा।
पङ्कज चेति पुष्पाणि तद् विष्णोः प्रीतिदान्युत॥ १८०॥
निर्जल स्थण्डिल स्थान तीर्थं तोयमथापि वा।
तद् विष्णोरिति मन्त्रस्तु स्तुतिः पुरुषसूक्तकम्॥ १८१॥
पुत्रञ्जीवोद्भवा माला प्रशस्ता विष्णुपूजने।❀
तिथिश्च द्वादशी प्रोक्ता वसन्तः काल उत्तमः॥ १८२॥❀
शाल्योदन हविष्यान्न यावक पायस घृतम्।
कृशरान्न तथान्नेषु पानेषु क्षीरमिष्यते॥ १८३॥
दलेषु तुलसीपत्रं बैल्वमामलमेव च।
हरेः प्रीतिकराणि स्युरेतानि नृपसत्तम॥ १८४॥
सर्वाणि परकीयाणि यानि तानि च वर्जयेत्।
एवं यः पूजयेद् विष्णुं सतत नरसत्तम॥ १८५॥
कुलकोटिं समुद्धृत्य स स्वयं स्याज्जनार्दन।
इद ते कथितं भूप वासुदेवस्य मन्त्रकम्॥ १८६॥
पीठस्य कामरूपस्य सङ्क्षेपान्निर्णय तथा।
इति सर्वं कामरूपपीठं शम्भुरदर्शयत्॥ १८७॥
पुत्राभ्या स पुनस्ताभ्यां कैलासं प्रययौ गिरिम्।
तत्र गत्वा यथायोग निधाय तनयौ स्वकौ॥ १८८॥
विमुक्तशापास्ते जाताः शम्भुर्गिरिसुता तथा।
वेतालो भैरवश्चेति नृपसत्तमनिर्जराः॥ १८९॥
इदं यो महदाख्यानं शृणोत्येकाग्रमानसः।
शापभीतिर्न तस्यास्ति व्याधयस्तस्य नाधयः॥ १९०॥

---

१४. पुष्टि... ।

पुत्रपौत्रधनैश्वर्ययुक्तः सर्वत्र वल्लभः ।
सर्वकल्याणसयुक्तो दीर्घकाल स जीवति ॥ १९१ ॥
कामरूपं महापीठं यो जानाति नरोत्तमः ।
स दिव्यज्ञानसम्पन्नः परं निर्वाणमाप्नुयात् ॥ १९२ ॥
यः कामरूपे सकले पीठयात्रा समाचरेत् ।
आसाद्य सकलान् पीठान् पूजयेत् सर्वदेवताः ॥ १९३ ॥
दशपूर्वान् दश परानात्मान चैकविंशतिम्[९५] ।
दिव्ये ज्ञाने विधायाशु सर्वं मुक्तिमियात् सह ॥ १९४ ॥

इति श्रीकालिकापुराणेऽशीतितमोऽध्याय ॥ ८० ॥

---

९५ चैकविंशकम् ।

एकाशीतितमोऽध्यायः

और्व्व उवाच—

कामरूपे महापीठे स्नात्वा पीत्वा च देवताः ।
पूजयित्वा च [१६]विपुला लोकाः स्वर्गं पुरा ययुः ॥ १ ॥
केचिद् भेजुश्च निर्वाण केचिद् यान्ति स्म शम्भुताम् ।
न यमस्तान् वारयितुं नेतु च निजमन्दिरम् ॥ २ ॥
क्षमोऽभून्नरशार्दूल शिवाया जातसाध्वसः ।
यमदूत तत्र यान्त बाधन्ते शकरा गणाः ॥ ३ ॥
न तद्भिया तत्र यान्ति यमदूताः प्रचोदिता ।
तथा दृष्ट्वाथ शमन स्वक्रियापरिवर्जित ॥ ४ ॥
विधातार समासाद्य वचन चेदमब्रवीत् ।
विधातु कामरूपेऽस्मिन् स्नात्वा पीत्वा च मानव ॥ ५ ॥
कामाख्यागणता याति तथा शम्भुगणेशताम् ।
तत्र मे नाधिकारोऽस्ति न तान् वारयितुं क्षम ॥ ६ ॥
विधत्स्वात्रोचित नीतिं युज्यते यदि गोचरे ।
तस्य तद्वचनं श्रुत्वा ब्रह्मा लोकपितामहः ॥ ७ ॥
जगाम विष्णुभवन सहैव समवर्तिना ।
तमासाद्य तथा प्राह विष्णुर्वै यमभाषितम् ॥ ८ ॥
यथावत् सर्वलोकेशः स च तद्वाक्यमग्रहीत् ।
सह ब्रह्मयमाभ्यां तु विष्णु शम्भु ययौ तत ।
सत्कृतस्ततेन पृष्टश्च प्राहेद यमभाषितम् ॥ ९ ॥

श्रीभगवानुवाच—

सर्वदेवै. सर्वतीर्थैं सर्वक्षेत्रैस्तथैव च ।
एतद् व्याप्त कामरूपं नातोऽन्यद् विद्यते परम् ॥ १० ॥
इदं पीठं समासाद्य देवत्वं यान्ति मानवा. ।
अमृतत्वं गणत्व च तत्र शक्तो यमो नहि ॥ ११ ॥

---

१६. सकला लोका स्वर्गं पुरा ययु. ।

[97]तथा कुरु महादेव यथा तत्र क्षमो यमः ।
यमो निरस्तो यत्रास्ति मर्यादा न [98]प्रदृश्यते ॥ १२ ॥

और्व्व उवाच—

एतद् विष्णुवचः श्रुत्वा विधिना सहितस्य[99] तु ।
अङ्गीचकार हृदये तद्वचः साध्यसाधने ॥ १३ ॥
विसृज्य तान् ब्रह्मविष्णुयमान् वृषभवाहन ।
आदाय स्वगणान् सर्वान् कामरूपान्तर ययौ ॥ १४ ॥
उग्रतारा ततो देवी गण च प्राह शङ्करः ।
उत्सारयन्तु सकलानिमॉल्लोकान् गणा द्रुतम् ॥ १५ ॥
उग्रतारे महादेवि त्व चाप्युत्सारय द्रुतम् ।
ततो गणाः कामरूपाद् देवी चाप्यपराजिता ॥ १६ ॥
लोकानुत्सारयामासुः पीठ कर्तुं रहस्यकम् [100] ।
उत्सार्यमाणे लोके तु चतुर्वर्णद्विजातिषु ॥ १७ ॥
सन्ध्याचलगतो विप्रो वसिष्ठः कुपितो मुनिः ।
सोऽप्युग्रतारया देव्या उत्सारयितुमीशया ॥ १८ ॥
गणैः सह धृतः प्राह शाप कुर्वन् सुदारुणम् ।
यस्मादहं धृतो वामे त्वयोत्सारयितु मुनिः ॥ १९ ॥
तस्मात् त्व वाम्यभावेन पूज्या भव समन्त्रिका ।
[1]भ्रमन्ति म्लेच्छवद् यस्माद् गणाना मन्दबुद्धयः ॥ २० ॥
भवन्तु म्लेच्छास्तस्माद् वै भवन्तः कामरूपके ।
महादेवोऽपि यस्मान्मा निःसारयितुमुद्यतः ॥ २१ ॥
तपोधन मुनि दान्त म्लेच्छवद् वेदपारगम् ।
तस्माद् म्लेच्छप्रियो भूयाच्छङ्करश्चास्थिभस्मधृक् ॥ २२ ॥
एतत् तु कामरूपाख्य म्लेच्छैर्गुप्त मदत्वरम् ।
स्वय विष्णुर्न चायाति यावत् स्थानमिदं पुनः ॥ २३ ॥
विरलाश्चागमाः सन्तु य एतत्प्रतिपादकाः ।
विरल यस्तु जानाति कामरूपागम बुधः ॥ २४ ॥
स एव प्राप्ते कालेऽपि सम्पूर्णं फलमाप्स्यति ।
एवमुक्त्वा वसिष्ठस्तु तत्रैवान्तरधीयत ॥ २५ ॥
ते गणा म्लेच्छता याताः कामरूपे सुरालये ।

---

९७. तस्मात् । ९८ प्रवर्तते । ९९ सहित स ।
१००. हरस्यकम् । १ भर्त्संयन्ति स्वेच्छया ।

वामाऽभूदुग्रतारापि शम्भुर्म्लेच्छरतोऽभवत् ॥ २६ ॥
आगमा विरलाश्चासन् ये च मत्प्रतिपादकाः ।
वेदमन्त्रविहीनं तु चतुर्वर्णविवर्जितम् ॥ २७ ॥
कामरूपं क्षणाज्जातं यद् यमेनानुसारितम् ।
आगतेऽपि हरौ मुक्ते शापान् पीठे फलप्रदे ॥ २८ ॥
यथा न सम्यक् स्थास्यन्ति तत्पाठे देवमानुषाः ।
गुप्तये सर्वकुण्डानां ब्रह्मोपायं तथाऽकरोत् ॥ २९ ॥
अपुनर्भवकुण्डस्य सोमकुण्डस्य चोभयोः ।
ब्रह्मोर्वशीकुण्डयोस्तु नदीनामपि भूरिशः ॥ ३० ॥
नदीनां पूर्वमुक्तानामनुक्तानां च गुप्तये ।
सर्वस्यैकफलज्ञाने ब्रह्मोपायं तथाऽकरोत् ॥ ३१ ॥
अमोघायां शान्तनोस्तु भार्यायां तनयं स्वकम् ।
जलरूपं समुत्पाद्य जामदग्न्येन धीमता ॥ ३२ ॥
अवतारयदव्यग्रं स्रावयन् कामरूपकम् ।
स तु ब्रह्मसुतो धीरः स्रावयन् कुण्डसञ्चयान् ॥ ३३ ॥
आच्छाद्य सर्वतीर्थानि भुवि गुप्तानि चाकरोत् ।
लौहित्यमात्रं ये केचिज्जानन्ति तत्र वै नराः ॥ ३४ ॥
ते लौहित्यस्नानफलं प्राप्नुवन्ति सुनिश्चितम् ।
न जानन्ति च कुण्डानि नापि[१] तीर्थानि चान्यतः ॥ ३५ ॥
वसिष्ठशापादेतत् तु प्रवृत्तं तीर्थगोपनम् ।
य कश्चित् तत्र जानाति तीर्थानां च विशेषताम् ॥ ३६ ॥
समवाप्नोति तत् स्नानफलं सम्यग् नरोत्तम ।
सर्वां नदीं समाप्लाव्य सर्वतीर्थानि सर्वतः ॥ ३७ ॥
लौहित्यो ब्रह्मणः पुत्रो याति दक्षिणसागरम् ।
एवं ते कथितं राजन् कामरूपस्य कीर्तनम् ।
यदन्यद्रोचते तुभ्यं तत् पृच्छ निगदामि ते ॥ ३८ ॥

इति श्रीकालिकापुराणे एकाशीतितमोऽध्यायः ॥ ८१ ॥

---

१ थानि ।

द्व्यशीतितमोऽध्यायः

मार्कण्डेय उवाच—

और्वस्य वचनं श्रुत्वा सगरस्तं मुनिं पुनः।
पप्रच्छेदं द्विजश्रेष्ठा हर्षसम्प्लुतमानसः ॥ १ ॥

सगर उवाच—

अमोघायां कथं यज्ञे लौहित्यो ब्रह्मणः सुतः।
कथं शान्तनुजायायां[३] रतः स कमलासनः ॥ २ ॥
पारस्त्रैणेयपुत्रो वा कथं जज्ञे पितामहात्।
तत् सर्वं श्रोतुमिच्छामि कथयस्व द्विजोत्तम ॥ ३ ॥
शृणु त्वं राजशार्दूल कथयामि महत्तरम्।
आख्यानं ब्रह्मपुत्रस्य लौहित्यस्य महात्मनः ॥ ४ ॥
हरिवर्षे महावर्षे शान्तनुर्नाम नामतः।
मुनिरासीन्महाभागो ज्ञानवान् स तपोरतः ॥ ५ ॥
तस्य भार्या महाभागा अमोघाख्या महासती।
हिरण्यगर्भस्य मुनेस्तृणबिन्द्वाश्रमोद्भवा ॥ ६ ॥
तया सार्धं स कैलासे मर्यादापर्वते वसन्।
लोहिताख्यस्य सरसस्तीरे वै गन्धमादने ॥ ७ ॥
एकदा स तपोनिष्ठो निजपुष्पादिगोचरम्[४]।
जगाम वनमध्यं तु चिन्वन् बहुफलानि च ॥ ८ ॥
तस्मिन्नवसरे ब्रह्मा सर्वलोकपितामहः।
तत्राजगाम यत्रास्ति अमोघा शान्तनोः प्रिया ॥ ९ ॥
तां दृष्ट्वा देवगर्भाभां युवतीमतिसुन्दरीम्।
मोहितो मदनेनाशु तदाऽभूद् दूषितेन्द्रियः ॥ १० ॥
उदीरितेन्द्रियो भूत्वा जिघृक्षुस्तां महासतीम्।
अथाधावत् ततो ब्रह्मा सम्मुखो मदनार्दितः ॥ ११ ॥
धावमानं विधातारं दृष्ट्वाऽमोघा महासती।
नैवं नैवमिति प्रोक्त्वा पर्णशालां व्यलीयत ॥ १२ ॥

---

३. भार्यायां। ४. गोचरे।

इद चोवाच धातारममोघा कुपिता तदा ।
पर्णशालान्तरं गत्वा द्वारमावृत्य तत्क्षणात् ॥ १३ ॥
अकार्यं न मया कार्यं मुनिपत्न्या विगर्हितम् ।
बलात् प्रमथ्य चाह् चेत् त्वया त्वां च शपाम्यहम् ॥ १४ ॥
अमोघया चैवमुक्ते विधातुश्च तदा नृप ।
रेतश्चस्कन्द तत्रैव आश्रमे शान्तनोर्मुनेः ॥ १५ ॥
च्युते रेतसि धाताऽपि हसयान समुत्थितः[५] ।
लज्जयाऽतिपरीतात्मा द्रुतं वै स्वाश्रम ययौ ॥ १६ ॥
गते वेधसि शान्तनुश्च निजमाश्रममागतः ।
आगत्य दृष्ट्वा हसाना पादक्षोभ तदा भुवि ॥ १७ ॥
तेजश्च पतित भूमो विधातुर्ज्वलनोपमम् ।
अमोघा परिपप्रच्छ पणशालान्तरस्थिताम् ॥ १८ ॥
किमेतदत्र सुभगे प्रवृत्त दृश्यते तु यत् ।
पक्षिणा च पदक्षोभ तेजश्चेद च कीदृशम् ॥ १९ ॥
सा तस्य वचनं श्रुत्वा शान्तनु मुनिसत्तमम् ।
अमर्षितैव न्यगददाकुला विकलानना[६] ॥ २० ॥
हसयुक्तस्यन्दनेन कोऽप्यागत्य चतुर्मुखः[७] ।
कमण्डलुकरोऽतीव रतिं मा समयाचत ॥ २१ ॥
[८]ततो मया तर्जितः स उटजान्तरलीनया ।
प्रच्याव्य तेजः संयातो मम शापभयार्दितः ॥ २२ ॥
कुरु तत्र प्रतीकार यदि शक्नोपि शान्तनो ।
न हीमा धर्षणां सोढुं कश्चिच्छक्नोति जीवभृत् ॥ २३ ॥
स तस्या वचनं श्रुत्वा स्वयं ब्रह्मा समागतः ।
इति निश्चित्य [९]मनसा[१] [१०]तदा ध्यानपरोऽभवत् ॥ २४ ॥
दिव्यज्ञानेन स ज्ञात्वा देवकार्यमुपस्थितम् ।
तीर्थावतरण चापि हिताय जगतां मुनिः ॥ २५ ॥
ज्ञात्वोदक चिन्तयित्वा स्वभार्यामिदमब्रवीत् ।
इद तेजो ब्रह्मणस्त्व पिबामोघे ममाज्ञया ॥ २६ ॥
हिताय सर्वजगता देवकार्यार्थसिद्धये ।
भवत्या निकटं ब्रह्मा स्वयमेव समागतः ॥ २७ ॥

---

५. समास्थित । ६. विकचानना । ७. चतुर्भुज ।
८ तदुक्तो मया भर्त्सितः । ९. स तदा । १०. तत्र ।

त्वामप्राप्य महत् कृत्यमावयोः स समर्प्य च ।
गतो निजास्पदं तत् त्वं कर्तुमर्हसि तद् वचः ॥ २८ ॥
तच्छ्रुत्वा शान्तनोर्वाक्यममोघातीव लज्जिता ।*
सान्त्वयन्तीव तं प्राह पतिं नत्वा महासती ॥ २९ ॥
नान्यस्य तेजो धास्यामि न च ते विमनस्कता ।*
अवश्य यदि कर्तव्य पीत्वा त्वं मयि चोत्सृज ॥ ३० ॥
ततस्तस्या वचः श्रुत्वा युक्त तथ्य च शान्तनुः ।
स्वय पीत्वा तु तत् तेजः [11]स्वभार्यायां न्यषेचयत् ॥ ३१ ॥
सक्रामितैः [12] शान्तनुना तेजोभिर्ब्रह्मणः सती ।
गर्भं दधारामोघाख्या हिताय जगतां ततः[13] ॥ ३२ ॥
तस्याः काले तु सम्प्राप्ते नासातो[14] जलसञ्चयः ।
तन्मध्ये तनयश्चापि नीलवासाः किरीटधृक् ॥ ३३ ॥
रत्नमालासमायुक्तो रक्तगौरश्च ब्रह्मवत् ।
चतुर्भुजः पद्मविद्याध्वजशक्तिधरस्तथा ॥ ३४ ॥
शिशुमारशिरस्थश्च तुल्यकायो जलोत्करैः ।
तज्जात च तथाभूतं शान्तनुर्लोकशान्तनुः ॥ ३५ ॥
चतुर्णां पर्वतानां च मध्यदेशे न्यवीविशत्[15] ।
कैलासश्चोत्तरे पार्श्वे दक्षिणे गन्धमादनः ॥ ३६ ॥
जारुधिः पश्चिमे शैलः पूर्वे सवर्तकादयः ।
तेषा मध्ये स्वय कुण्ड पर्वताना विधेः सुतः ॥ ३७ ॥
कृत्वाऽतिववृधे नित्य शरदीव निशाकरः ।
त तोयमध्यग पुत्रमासाद्य द्रुहिणः सुतम् ॥ ३८ ॥
क्रमतस्तस्य सस्कारानकरोद् देहशुद्धये ।
अथ काले बहुतिथे व्यतीते ब्रह्मणः सुतः ।, ३९ ॥
तोयराशिस्वरूपेण ववृधे पञ्चयोजनान् ।
तस्मिन् देवाः पपुः सस्नुर्द्वितीय इव सागरे ॥ ४० ॥
सितामलजले हृद्य दिव्यैश्चाप्सरसां गणैः ।
तस्मिन्नवसरे रामो जामदग्न्यः प्रतापवान् । ४१ ॥
चक्रे मातृवध घोरमयुक्तं पितुराज्ञया ।
तस्य पापस्य मोक्षाय स्वपितुश्चोपदेशतः ॥ ४२ ॥

---

* मुद्रितपुस्तके अधिकः । ११ तस्या गर्भे । १२. सक्रमिते ।
१३. पतिं । १४ सजातो । १५ न्यवेशयत् ।

स जगाम महाकुण्ड ब्रह्माख्य[16] स्नातुमिच्छया।
तत्र स्नात्वा च पीत्वा च मातृहत्यामपानयन्।
वीथी परशुना कृत्वा त[17] मह्यामवतारयत्॥ ४३॥

सगर उवाच—

जमदग्नेः सुतो रामः किमर्थं निजमातरम्।
जघान तस्य माता च किन्नाम्नी कस्य चात्मजा॥ ४४॥
मुनेः पुत्रः कथ जातस्तथा क्रूरो महाबलः।
यो युद्धकुशलो वीरो राजन्यान् ममपोथयत्॥ ४५॥
तदह श्रोतुमिच्छामि तत्त्वतो मुनिसत्तम।
कथयस्व महाभाग यदि गुह्य तथापि मे॥ ४६॥
शृणु राजन्नवहितो जमदग्नेः सुतस्य वै।
चरित स यथा जघ्ने प्रसू क्रूरतरश्च सः॥ ४७॥
ब्रह्मपुत्रो[18] भृगुर्नाम ऋचीकस्तत्सुतोऽभवत्।
स भार्यार्थी चरन् भूमौ कान्यकुब्ज गतः पुरा॥ ४८॥
ददर्श चारण्यगत जह्नोर्वंशसमुद्भवम्।
कुशिकस्य सुत गाधि तपःस्थ[19] नृपसत्तम॥ ४९॥
अरण्यस्थस्य तस्याथ पुत्रकामस्य भूभृतः।
सभार्यस्य सुता जज्ञे देवकन्यासमा गुणैः॥ ५०॥
ऋचीको भृगुपुत्रस्ता भार्यार्थं समयाचत।
दातु[20] योग्या सुता मेऽद्य तद्विधाय महामुने॥ ५१॥
किं त्वेकः कुलधर्मो मे विद्यते शुल्कसग्रहे।
एकत्र [21]कृष्णवर्णानामश्वानां चन्द्रवर्चसाम्।
सहस्रमेकं यो दद्यात् तस्मै पुत्री प्रदीयते॥ ५२॥
दास्याम्यश्वसहस्र वै तव राजस्तथाविधम्।
किंचित् कालं प्रतीक्षस्व यावत् तदहमानये॥ ५३॥
एवमस्त्विति त गाधिरुवाच भृगुसूनवे।
गङ्गातीरं कान्यकुब्ज सोऽगच्छद्धयसाधने॥ ५४॥
तत्राराध्य भृगोः पुत्रो वरुणं यादसा पतिम्।
तेन दत्त तदा लेभे सहस्रं वाजिनां मुनिः॥ ५५॥

---

१६. ब्रह्मण.। १७ च क्ष्मामवतारयत्। १८. तदा पुत्री। १९. तपन्त।
२०. गाधिं नृपतिशार्दूल स चोवाच नृपो मुनिम्।
दातुं योग्यां सुतां राजन् यदीच्छा ते ददाम्यहम्॥—पाण्डुलिप्याम्।
२१. श्याम"।

तेन यत्र तदा लब्धा अश्वान् नृपतिसत्तम ।
तदश्वतीर्थं विख्यात महाफलकर परम् ॥ ५६ ॥
गङ्गाजलादुत्थित तु दत्त सम्यक् प्रचेतसा
आदायाश्वसहस्र तु मुनिर्गाधिमथाभ्ययात् ॥ ५७ ॥
तानश्वान् गाधिरादाय पुत्री सत्यवती सुताम् ।
ऋचीकाय ददौ लक्ष्मी केशवायेव सागरः ॥ ५८ ॥
ऋचीको गाधितनया लब्ध्वा भार्यामनिन्दिताम् ।
मुदितः स तया रेमे यथाकाम स्वकाश्रमे ॥ ५९ ॥
कृतदार सुत श्रुत्वा द्रष्टु पुत्र स्नुषा भृगुः ।
अथाजगाम मतिमान् स्नुषा दृष्ट्वा ननन्द च ॥ ६० ॥
दम्पती त समासीन भृगु देवगणार्चितम् ।
पूजयित्वा यथान्याय[२२] तस्थतुस्तौ[२३] कृताञ्जली ॥ ६१ ॥
ततो भृगुः स्नुषा स्वीया सुप्रीत इदमब्रवीत् ।
वर वृणीष्व दास्यामि वाञ्छित वरवर्णिनि ॥ ६२ ॥
अदेयं दुष्कर वापि यत्र ते विद्यते स्पृहा ।
ततः सत्यवतीं पुत्र तप-आम्नाय-पारगम् ॥ ६३ ॥
मातुश्च वीरमतुल पुत्र वरमयाचत ।
स चैवमस्त्वित्युक्त्वैव भूत्वा ध्यानपरस्तदा ॥ ६४ ॥
विश्वमावृत्य मनसा यत्नाच्छ्वास ससर्ज सः ।
तस्य निःश्वासवातात् तु निःसृत वै चरुद्वयम् ॥ ६५ ॥
तस्यैतद् द्वितय दत्त्वा भृगुस्तामिदमब्रवीत् ।
चरुद्वय गृहाणेद[२४] स्नुषे सत्यवति स्वयम् ॥ ६६ ॥
स्नात्वा ऋतौ ऋतौ माता स्नुषे त्वं च करिष्यथः ।
आलिंग्याश्वत्थवृक्ष ते माता पुसवनाय वै ॥ ६७ ॥
चरुमारक्तकं[२५] चेम सा भोक्ष्यति सुतस्ततः ।
त्वं चोदुम्बरवृक्ष तु समालिंग्यासित चरुम् ॥ ६८ ॥
भोक्ष्यसे तव[२६] पुत्रस्तु[२७] भविष्यति सनातनः ।
एवमुक्त्वा भृगुर्यातो यथेच्छ सापि समुदम ॥ ६९ ॥
अवाप मात्रा सहिता भर्त्रा पित्रा च भामिनी ।
अथ स्नानदिनेऽश्वत्थमालिंग्यारक्तकं चरुम् ॥ ७० ॥

---

२२. समासीन । २३ त दूरत । २४. गृहाण त्व ।
२५. चरुमारक्तकं । २६. तेन । २७ पुत्रस्ते ।

आदात् सत्यवती तस्या माता फल्गुसितं चरुम् ।
परिवर्तं तु तज् ज्ञात्वा दिव्यज्ञानो भृगुर्मुनिः ॥ ७१ ॥
अथागत्य स्नुषां तां तु वचनं चेदमब्रवीत् ।
विपर्ययस्त्वया भद्रे वृक्षालिङ्गनकर्मणि ॥ ७२ ॥
तथा [28]चरुप्राशने तु[29] [30]तत्रेद ते भविष्यति ।
ब्राह्मणः क्षत्रियाचारस्तव पुत्रो भविष्यति ॥ ७३ ॥
क्षत्रियो ब्राह्मणाचारो मातुस्ते भविता सुतः ।
इत्युक्त्वा भृगुणा साध्वी तदा सत्यवती भृगुम् ॥ ७४ ॥
पुनः प्रसादयामास पौत्रो मेऽस्त्विति तादृश ।
एवमस्त्विति स प्रोच्य तत्रैवान्तर्दधे भृगुः ॥ ७५ ॥
अथ काले सुतं दीप्तं जमदग्निं च गाधिजा ।
सुषुवे जननी तस्या विश्वामित्रं तपोनिधिम् ॥ ७६ ॥
जमदग्निस्ततो वेदांश्चतुरः प्राप मा चिरम् ।
प्रादुरासीद् धनुर्वेदः स्वयं तस्मिन् महात्मनि ॥ ७७ ॥
विश्वामित्रोऽपि सकलान् वेदानाप तथाऽचिरात् ।
धनुर्वेदं तथा कृत्स्नं विप्रश्चाभूत् तपोबलात् ॥ ७८ ॥
जाज्वल्यमानस्तेजस्वी जमदग्निर्महातपाः ।
वेदैस्तपोभिः स मुनीनत्यक्रामच्च सूर्यवत् ॥ ७९ ॥

इति श्रीकालिकापुराणे द्वयशीतितमोऽध्याय ॥ ८२ ॥

—:०:—

---

२८. च प्राशने । २९. भद्रे । ३०. तदा पुत्रो भविष्यति ।

त्र्यशीतितमोऽध्यायः ।

और्व उवाच[31]—

अथ काले व्यतीते तु जमदग्निर्महातपाः ।
विदर्भराजस्य सुता प्रयत्नेन जिता स्वयम् ॥ १ ॥
भार्यार्थं प्रतिजग्राह रेणुका लक्षणान्विताम् ।
सा तस्मात् सुषुवे पुत्राश्चतुरो वेदसम्मितान् ॥ २ ॥
रुषण्वन्त सुषेण च वसु विश्वावसु तथा ।
पश्चात् तस्या स्वय जज्ञे भगवान् मधुसूदनः ॥ ३ ॥
कार्तवीर्यवधायाशु शक्राद्यै सकलैः सुरैः ।
याचितः पचमः सोऽभूत् तेषा रामाह्वयस्तु सः[32] ॥ ४ ॥
भारावतरणार्थाय जातः परशुना सह ।
सहज परशुं तस्य [33]न जहाति [34]कदाचन ॥ ५ ॥
अय निजपितामह्याश्चरुभुक्तिविपर्ययात् ।
ब्राह्मणः क्षत्रियाचारो रामोऽभूत् क्रूरकर्मकृत् ॥ ६ ॥
स वेदानखिलान् ज्ञात्वा धनुर्वेद च सर्वशः ।
सतत[35] कृतकृत्योऽभूद् वेदविद्याविशारदः ॥ ७ ॥
एकदा तस्य जननी स्नानार्थं रेणुका गता ।
गङ्गातोये ह्यथापश्यन्नाम्ना चित्ररथ नृपम् ॥ ८ ॥
भार्याभिः सदृशीभिश्च जलक्रीडारत शुभम् ।
सुमालिन सुवस्त्र[36] तं तरुणं [37]चन्द्रमालिनम् ॥ ९ ॥
तथाविधं नृप दृष्ट्वा सञ्जातमदना भृशम् ।
रेणुका स्पृहयामास तस्मै राज्ञे सुवर्चसे[38] ॥ १० ॥
स्पृहायुतायास्तस्यास्तु सक्लेदः समजायत ।
विचेतनाम्भसा क्लिन्ना त्रस्ता सा स्वाश्रम ययौ ॥ ११ ॥
अबोधि जमदग्निस्तां रेणुका विकृता तथा ।
धिग् धिक्काररतेत्येव निनिन्द च समन्ततः ॥ १२ ॥

---

३१. मार्कण्डेय उवाच । ३२ य । ३३. त । ३४. कदापि
३५. स्ववातात् । ३६ सुकान्त । ३७. चन्द्रसन्निभ । ३८. सुमान

ततः स तनयान् प्राह चतुरः प्रथम मुनिः ।
रुषण्वत्प्रमुखान् सर्वानेकैक क्रमतो द्रुतम् ॥ १३ ॥
छिन्धीमा पापनिरता रेणुका व्यभिचारिणीम् ।
ते तद्वचो नैव चक्रुर्मूकाश्चासन् जडा इव ॥ १४ ॥
कुपितो जमदग्निस्ताञ्छशापेति विचेतसः[39] ।
गाधि नृपतिशार्दूल स चोवाच नृपो मुनिम् ॥ १५ ॥*
भवध्व [40]यूयमाचिराज्जडा गोबुद्धिगर्धिताः ।
अथाजगाम चरमो जामदग्न्येऽतिवीर्यवान् ॥ १६ ॥
त च राम पिता प्राह पापिष्ठा छिन्धि मातरम् ।
स भ्रातृश्च तथाभूतान् दृष्ट्वा ज्ञानविवर्जितान् ॥ १७ ॥
पित्रा शप्तान् महातेजाः प्रसू परशुनाच्छिनत् ।
रामेण रेणुका छिन्ना दृष्ट्वा विक्रोधनोऽभवत् ॥ १८ ॥
जमदग्निः प्रसन्नः सन्निति वाचमुवाच ह ।
प्रीतोऽस्मि पुत्र भद्र ते यत् त्वया मद्वच. कृतम् ॥ १९ ॥
तस्मादिष्टान् वरान् कामास्त्व वै वरय साम्प्रतम् ।
स तु रामो वरान् वव्रे मातुरुत्थानमादितः ॥ २० ॥
वधस्यास्मरण तस्या भ्रातृणा शापमोचनम् ।
मातृहत्याव्यपनय युद्धे सर्वत्र वै जयम् ॥ २१ ॥
आयुः कल्पान्तपर्यन्त क्रमाद् वै नृपसत्तम ।
सर्वान् वरान् स प्रददौ जमदग्निर्महातपा. ॥ २२ ॥
सुप्तिस्थितेव जननी रेणुका च तदाभवत् ।
वध न चापि सस्मार सहजा प्रकृतिस्थिता ॥ २३ ॥
युद्धे जय चिरायुष्य लेभे रामस्तदैव हि ।
मातृहत्याव्यपोहाय पिता त वाक्यमब्रवीत् ॥ २४ ॥
न पुत्र वरदानेन मातृहत्यापगच्छति ।
तस्मात् त्व ब्रह्मकुण्डाय गच्छ स्नातुं च तज्जले ॥ २५ ॥
तत्र स्नात्वा मुक्तपापो नचिरात् पुनरेष्यसि ।
जगद्धिताय पुत्र त्व ब्रह्मकुण्ड व्रज द्रुतम् ॥ २६ ॥
स तस्य वचन श्रुत्वा राम. परशुधृक् तदा ।
उपदेशात् पितुर्धीतो ब्रह्मकुण्ड वृषोदकम् ॥ २७ ॥

---

३९. विचेतनः ।   * मुद्रिते अधिकः ।
४०. यूमाचाराज्जडा गोवद्धिवर्जिता. ।

तत्र स्नानं च विधिवत् कृत्वा धौतपरश्वधः।
शरीरान्निःसृता मातृहत्या सम्यग् व्यलोकयत् ॥ २८ ॥
जातसप्रत्ययः सोऽथ तीर्थमासाद्य तद्वरम्।
वीथी परशुना कृत्वा ब्रह्मपुत्रमवाहयत् ॥ २९ ॥
ब्रह्मकुण्डात् सृतः सोऽथ कासारे लोहिताह्वये।
कैलासोपत्यकाया तु न्यपतद् ब्रह्मण. सुतः ॥ ३० ॥
तस्यापि सरसस्तीरे समुत्थाय महाबलः।
कुठारेण दिश पूर्वामनयद् ब्रह्मण. सुतम् ॥ ३१ ॥
ततः परत्रापि गिरि हेमशृङ्ग विभिद्य च।
कामरूपान्तरं पीठमावहयदमु हरिः ॥ ३२ ॥
तस्य नाम स्वयं चक्रे विधिर्लोहितगङ्गकम्।
लोहितात् सरसो जातो लोहिताख्यस्ततोऽभवत् ॥ ३३ ॥
स कामरूपमखिल पीठमाप्लाव्य वारिणा।
गोपयन् सर्वतीर्थानि दक्षिण याति सागरम् ॥ ३४ ॥
प्रागेव दिव्ययमुना स त्यक्त्वा ब्रह्मणः सुतः।
पुनः पतति लौहित्ये गत्वा द्वादशयोजनम् ॥ ३५ ॥
चैत्रे मासि सिताष्टम्या यो नरो नियतेन्द्रिय।
चैत्र तु सकल मासं शुचिः प्रयतमानसः ॥ ३६ ॥
स्नाति लौहित्यतोये तु स याति ब्रह्मणः पदम्।
लौहित्यतोये य. स्नाति स कैवल्यमवाप्नुयात् ॥ ३७ ॥
इति ते कथित राजन् यदर्थं मातर पुरा।*
अहन् वीरो जामदग्न्यो यस्माद् वा क्रूरकर्मकृत् ॥ ३८ ॥
इद तु महदाख्यान यः शृणोति दिने दिने।
स दीर्घायुः प्रमुदितो बलवानभिजायते ॥ ३९ ॥
इति ते कथित राजञ्छरीरार्धं यथाद्रिजा।
शम्भोर्जहार वेतालभैरवौ च यथाह्वयौ ॥ ४० ॥
यस्य वा तनयौ जातौ यथा यातौ गणेशताम्।
किमन्यत् कथये तुभ्यं तद्वदस्व नृपोत्तम ॥ ४१ ॥

मार्कण्डेय उवाच—

इत्यौर्वस्य च संवादः सगरेण महात्मना।
योऽसौ कायार्धहरण शम्भोर्गिरिजया कृतः ॥ ४२ ॥

---

* मुद्रिते अधिक ।

सर्वोऽद्य कथितो विप्राः पृष्ट यच्चान्यदुत्तमम् ।
सिद्धस्य भैरवाख्यस्य पीठाना च विनिर्णयम् ॥ ४३ ॥
भृङ्गिणश्च यथोत्पत्तिर्महाकालस्य चैव हि ।
उक्त हि वः किमन्यत् तु पृच्छन्तु द्विजसत्तमाः ॥ ४४ ॥

इति सकलसुतन्त्रं तन्त्रमन्त्रावदातं
बहुतरफलकारि प्राज्ञविश्रामकल्पम् ।
उपनिषदमवेत्य ज्ञानमार्गैकतानं
स्रवति स इह नित्य यः पठेत् तन्त्रमेतत् ॥ ४५ ॥

इति श्रीकालिकापुराणे ऽयशीतितमोऽध्याय ॥ ८३ ॥

चतुरशीतितमोऽध्यायः

ऋषय ऊचुः—

कथितो भवता सर्गः संशयश्चापि शातिताः ।
त्वत्प्रसादान्महाभाग कृतकृत्या वयं गुरो ॥ १ ॥
भूयश्च श्रोतुमिच्छामो वयमेतद् द्विजोत्तम ।
कोऽन्यो भृङ्गी महाकालो जातौ[41] वेतालभैरवौ ॥ २ ॥
वेतालं च महाकालं भैरवं भृङ्गिणं तथा ।
शृणुमो द्विजशार्दूल कथमेषां चतुष्टयम् ॥ ३ ॥

मार्कण्डेय उवाच—

भुवं गते महाकाले मानुष्यस्थे च भृङ्गिणि ।
वेतालभैरवाख्ये च तयोर्भूते द्विजोत्तमाः ॥ ४ ॥
वरलब्धे च वेताले भैरवे तेन सङ्गते ।
अन्धकं तपसा युक्तं भृङ्गिणं चाकरोद्धरः ॥ ५ ॥
अन्धकस्तु हरं पूर्वं विरुध्यापदमागतः ।
पश्चाद्धरं समाराध्य पुत्रोऽभूत् तस्य सोऽसुरः ॥ ६ ॥
भृङ्गिस्नेहाद् भृङ्गिणं तं सञ्ज्ञया चाकरोद्धरः ।
स्नेहेन तु महाकाले बाणं बलिसुतं हरः ॥ ७ ॥
विष्णुना छिन्नबाहुं तु महाकालमथाकरोत् ।
एवं मुनिवरास्तेषां संयतं च चतुष्टयम् ।
वेतालभैरवौ भृङ्गिमहाकालौ ह्यनुक्रमात् ॥ ८ ॥

ऋषय उवाच—

यत् पृष्टं सगरेणैव मुनिमौर्वं महाधियम् ।
नीत्या योज्या यथा भार्या सुत आत्माऽथवा गुरो ॥ ९ ॥
राजनीतौ सता[42] नीतौ सदाचारे च ये स्थिताः ।
विशेषास्तेन ये प्रोक्ता और्वेण सुमहात्मना ॥ १० ॥
विशेषेण द्विजश्रेष्ठ श्रोतुं सम्यक् तपोधन ।
इच्छामस्तान् महाभाग कथयस्व जगद्गुरो ॥ ११ ॥

---

४१ ताभ्यां सुतौ गुरो । ४२. सभा ।

मार्कण्डेय उवाच—

ये ये विशेषाः कथिता और्वेण सुमहात्मना।
तद् वः सर्वं प्रवक्ष्यामि शृण्वन्तु मुनिसत्तमाः ॥ १२ ॥
श्रुत्वैव[४३] सगरो राजा मन्त्रकल्पादिक पुनः।
विशेष परिपप्रच्छ नीत्यादीना महामुनिम् ॥ १३ ॥

सगर उवाच—

यथा नीत्या प्रयोक्तव्यः सुत आत्मा प्रिया तथा।
तेषा विशेषैः सहित सदाचार वदस्व मे ॥ १४ ॥

*और्व उवाच—

क्रमेण शृणु राजेन्द्र यथा नीत्या नियोजिताः।
आत्मा सुतो वा भार्या वा तद्विशेष शृणुष्व मे ॥ १५ ॥*
ज्ञानविद्यातपोवृद्धान् वयोवृद्धान् सुदक्षिणान्।
सेवेत प्रथम विप्रानसूयापरिवर्जितान् ॥ १६ ॥
तेभ्यश्च शृणुयान्नित्य वेदशास्त्रविनिश्चयम्।
यदूचुस्ते च तत् कार्यं प्राज्ञ चैव नृपश्चरेत् ॥ १७ ॥
पञ्चेन्द्रियाणि पञ्चाश्वाः शरीर रथ उच्यते।
आत्मा रथी कशा ज्ञान सारथिर्मन उच्यते ॥ १८ ॥
अश्वान् सुदान्तान् कुर्वीत सारथि चात्मनो वशम्।
कशा दृढा सदा कार्या शरीरस्थिरता तथा ॥ १९ ॥
अदान्तास्तु समारुह्य सैन्धवान् स्पन्दनी यथा।[४४]
अश्वानामिच्छया गच्छन्नुत्पथ प्रतिपद्यते ॥ २० ॥
तत्रावशः सारथिस्तु स्वेच्छया प्रेरयन् हयान्।
नयेत् परवश सम्यग् ग्रथितं वीरमप्युत ॥ २१ ॥
तथेन्द्रियाणि नृपतिर्विषयाणां परिग्रहे।
स्ववश्यानि प्रकुर्वीत मनो ज्ञानं दृढ तथा ॥ २२ ॥
ज्ञाने दृढे कशायां च दृढायां नृपसत्तम।
सारथिः स्ववशो दान्तानीशः प्रेरयितु हयान् ॥ २३ ॥
अतो नृपः स्वेन्द्रियाणि वशे कृत्वा मनस्तथा।
ज्ञानमार्गमधिष्ठाय प्रकुर्वीतात्मनो हितम् ॥ २४ ॥
भोक्तव्यं स्वेच्छया भूयो[४५] न कुर्याल्लोभमाम्बे।
द्रष्टव्यमिति द्रष्टव्यं न द्रष्टव्यं च स्वेच्छया ॥ २५ ॥

४३ श्रुत्वेद। ४४ मुद्रिते अधिक। ४५. भूप।

श्रोतव्यमिति श्रोतव्यं नाधिकं श्रवणे चरेत् ।
शास्त्रतत्त्वामृते धीरः श्रुतिवश्यो भवेन्न हि ॥ २६ ॥
एव घ्राण त्वच चापि वशीकृत्येच्छया नृपः ।
स्वेच्छया नोपभुञ्जीत नोद्दामं विषय व्रजेत् ॥ २७ ॥
एव यदि भवेद्राजा तदा स स्याज्जितेन्द्रियः '
जितेन्द्रियत्वे हेतुश्च शास्त्रवृद्धोपसेवनम् ॥ २८ ॥
अवृद्धसेव्याशास्त्रज्ञो[४६] नृपः शत्रुवशो भवेत् ।
तस्माच्छास्त्रमधिष्ठाय भवेद्राजा जितेन्द्रियः ॥ २९ ॥
धृतिः प्रागल्भ्यमुत्साहो वाक्पटुत्व विवेचनम् ।
दक्षत्व धारयिष्णुत्व दानमैत्रीकृतज्ञता ॥ ३० ॥
दृढशासनतासत्यशौच मतिविनिश्चयम् ।
पराभिप्रायवेदित्व चरित्रं धैर्यमापदि ॥ ३१ ॥
क्लेशधारणशक्तिश्च गुरुदेवद्विजार्चनम् ।
अनसूया ह्यकोपित्व गुणानेतान्नृपोऽभ्यसेत् ॥ ३२ ॥
कार्याकार्यविभागश्च धर्मार्थे काम एव* च ।
सतत प्रतिबुध्येत कुर्यादवसरेऽपि तत् ॥ ३३ ॥
सामदानं च भेदश्च दण्डश्चेति चतुष्टयम् ।
ज्ञात्वोपायास्तु तत्काले तदुपायान् प्रयोजयेत् ॥ ३४ ॥
सामस्तु विषये भेदो मध्यमः परिकीर्तित ।
दानस्य विषये साम योग्यमेवोपलक्ष्यते ॥ ३५ ॥
दानस्य विषये दण्डो ह्यधनः परिकीर्तितः ।
दण्डस्य विषये दान तदप्यधममुच्यते ॥ ३६ ॥
साम्नस्तु गोचरे दण्डो ह्यधमादधमः स्मृतः ।*
सौजन्य सतत ज्ञेयं भूभृतो भेददण्डयोः ॥ ३७ ॥
साम्नो दानस्य च तथा सौजन्यं याति गोचरे ।
कामः क्रोधश्च लोभश्च हर्षो मानो मदस्तथा ॥ ३८ ॥
एतानतिशयान् राजा शत्रूनिव विशातयेत् ।
सेव्याः काले सुयुक्तौ ते लोभगर्वौ विवर्जयेत् ॥ ३९ ॥*
तेज एव नृपाणां तु तीव्रसूर्यस्य वै यथा ।
तत्र गर्वं रोगयुक्त कायवास्त तु सत्यजेत् ॥ ४० ॥
आखेटकाक्षौ स्त्रीसेवा पान चैवार्थदूषणम् ।

---

४६ सेवी । * मुद्रिते अधिक ।

वागदण्डयोश्च पारुष्य सप्तैतानि विवजयेत्[४७] ॥ ४१ ॥
परस्त्रीषु विरक्तासु सेवामेकान्ततस्त्यजेत् ।
सतीषु निजनारीषु युक्त कुर्यान्निवेशनम् ॥ ४२ ॥
रतिपुत्रफला दारास्तास्तु नैकान्ततस्त्यजेत् ।
तयोः सिद्धयै स्त्रियः सेव्या वर्जयित्वातिसक्तताम् ॥ ४३ ॥
मृगया तु प्रमादाना स्थान नित्य विवर्जयेत् ।
अक्षास्तथा न कुर्वीत सत्कार्यासक्तिनाशनम् ॥ ४४ ॥
अन्यैः कृत कदाचित् तु सेवेत नात्मनाचरेत् ।
अकार्यकरणे बीज कृत्याना च विवर्जने ॥ ४५ ॥
अकालमन्त्रभेदे च कलहे सत्कृतिक्षये ।
वर्जयेत् सतत पान शौचमाङ्गल्यनाशनम् ॥ ४६ ॥
अर्थक्षयकर नित्य त्यजेच्चैवात्मदूषणम् ।
अभिशस्तेषु चोरेषु घातकेष्वाततायिषु ॥ ४७ ॥
सतत पृथिवीपालो दण्डपारुष्यमाचरेत् ।
नान्यत्र दण्डपारुष्य कुर्यान्नृपतिसत्तमः ॥ ४८ ॥
वाक्पारुष्य च सर्वत्र नैव कुर्यात् कदाचन ।
रक्षणीय सदा सत्य सत्यमेक परायणम् ॥ ४९ ॥
क्षमा तेजस्विता चैव प्रस्तावान्नृप आचरेत् ।
यानासनाश्रयद्वैधसन्धयो विग्रहस्तथा ॥ ५० ॥
अभ्यसेत् षड्गुणानेतास्तेषां स्थान च शाश्वतम् ।
यः प्रमाण न जानाति स्थाने वृद्धौ तथा क्षये ॥ ५१ ॥
कोषे जनपदे दण्डे न स राज्येऽवतिष्ठते ।
कोषे जनपदे दण्डे चैकैकत्र त्रय त्रयम् ॥ ५२ ॥
प्रस्तावाद्विनियुञ्जीत रक्षेन्नैकांस्ततस्त्विमान् ।
मित्रे शत्रावुदासीने प्रभावं त्रिष्वपीरयेत् ॥ ५३ ॥
उत्साहो विजिगीषायां धर्मकृत्येऽष्टवर्गके ।
शरीरयात्रानिर्वाहे क्रियेत सततं नृपैः ॥ ५४ ॥
मन्त्रनिश्चयसम्भूता बुद्धि सर्वत्र योजयेत् ।
अमात्ये शात्रवे राज्ये पुत्रेष्वन्तःपुरेषु च ॥ ५५ ॥
कृषिं दुर्गं च वाणिज्यं खड्गाना करसाधनम् ।
आदान सैन्यकरयोर्बन्धन गजवाजिनोः ॥ ५६ ॥

---

४७. मुद्रिते अधिक ।

शून्ये सद्मसुखानां च योजन[४८] सतत जनैः।
[४९]त्रयाणा सारसेतूना बन्धनं चेति चाष्टमम् ॥ ५७ ॥
एतदष्टसु वर्गेषु चारान सम्यक् प्रयोजयेत्।
कार्याकार्यविभागाय चाष्टवर्गाधिकारिणाम् ॥ ५८ ॥
अष्टौ चारान्नियुञ्जीयादष्टवर्गेषु पार्थिवः।
दश शून्येषु युञ्जीत क्रमतः शृणु तानि मे ॥ ५९ ॥
स्वामी सचिव-राष्ट्राणि मित्र कोशो बल तथा।
दुर्गं तु सप्तम ज्ञेय राज्याङ्ग गुरुभाषितम ॥ ६० ॥
दुर्गयुक्त चाष्टवर्गे चारान्नात्मनि योजयेत्।
तस्मादिमानि शेषाणि पच चारपदानि च ॥ ६१ ॥
शुद्धान्तेषु च पुत्रेषु स[५०]यूथादौ महानसे।
शत्रूदासीनयोश्चापि बलाबलविनिश्चये ॥ ६२ ॥
अष्टादशसु चैतेषु चारान् राजा प्रयोजयेत्।
न यत्प्रकाशं जानीयात् तत् तच्चारैर्निरूपयेत् ॥ ६३ ॥
निरूप्य तत्-प्रतीकारमवश्य छिद्रतश्चरेत्।
यथानियोगमेतेषा यो यो यत्रान्यथाचरेत् ॥ ६४ ॥
ज्ञात्वा तत्र नृपश्चारै[५१]र्दण्डयेद् वा वियोजयेत्।
चारास्तु मन्त्रिणा सार्धं रहस्ये सस्थितो नृपः ॥ ६५ ॥
प्रदोषसमये पृच्छेत् तदानीमेव 'साधयेत्।
स्वपुत्रे चाथ शुद्धान्ते ये तु चारा महानसे ॥ ६६ ॥
नियुक्तास्तान्मध्यरात्रे पृच्छेत् स्वेऽपि च मन्त्रिणि।
एताश्चारान् स्वय पश्येन्नृपातमन्त्रिणा विना ॥ ६७ ॥
अन्यास्तु मन्त्रिणा सार्धं निरूप्य प्रदिशेत् फलम्।
नैकवेशधरश्चारो नैको नोत्साहवर्जितः ॥ ६८ ॥
सस्तुतो नहि सर्वत्र नातिदीर्घो न वामनः।
सतत न दिवाचारी न रोगी नाप्यबुद्धिमान् ॥ ६९ ॥
न वित्तविभवैर्हीनो न भार्यापुत्रवर्जितः।
कार्यश्चारो नृपतिना तत्त्वगुह्यविनिर्णये ॥ ७० ॥
अनेकवेशग्रहणक्षमं भार्यासुतैर्युतम्।
[५२]बहुदेशवचोऽभिज्ञ पराभिप्रायवेदकम् ॥ ७१ ॥

---

४८ भोजन। ४९. प्रयाणाभाव शत्रूणा। ५० स्रक् पूगादौ।
५१. खण्डयेद्। ५२ दुर्गं।

दृढभक्तं प्रकुर्वीत चारं शक्तमसाध्वसम् ।
अभितिष्ठेत् स्वयं राजा कृषिमात्मसमैस्तथा ॥ ७२ ॥
वणिक्पथे तु दुर्गादौ तेषु शक्तान्नियोजयेत् ।
अन्तःपुरे पितुस्तुल्यान् धीरान् वृद्धान्नियोजयेत् ॥ ७३ ॥
षण्ढान् पण्डास्तथा वृद्धा स्त्रियो वा बुद्धितत्पराः ।
शुद्धान्ते द्वारि युञ्जीयात् स्त्रियो वृद्धा मनीषिणीः ॥ ७४ ॥
नैकः स्वपेत् कदाचित् तु नैको भुञ्जीत पार्थिवः ।
नैकाकिनी तु महिषी व्रजेन्मन्त्राय नैककः[५३] ॥ ७५ ॥
अमात्यानुपधाशुद्धान् भार्याः पुत्रास्तथैव च ।
प्रकुर्यात् सततं भूपः सप्रसादं समाचरन् ॥ ७६ ॥
धर्मार्थकाममोक्षैश्च प्रत्येकं परिशोधनैः ।
उपेत्य धीयते यस्मादुपधा सा प्रकीर्तिता ॥ ७७ ॥
अर्थकामोपधाभ्यां तु भार्यापुत्रांश्च शोधयेत् ।
धर्मोपधाभिर्विप्रास्तु सर्वाभिः सचिवान् पुनः ॥ ७८ ॥
एभिर्यज्ञैस्तथा दानैरिहैव नृपतिर्भवेत् ।
तस्माद् भवांस्तु राज्यार्थी धर्ममेव समाचरेत् ॥ ७९ ॥
अनेनैवाभिचारेण यज्ञैर्वा पार्थिवो ह्ययम् ।
प्राणांस्त्यजति राजा त्वं भविष्यसि न संशयः ॥ ८० ॥
इति धर्मो नृपस्यैव अश्वमेधादिकश्च यः ।
स्वयं न कुरुते भूपस्तस्मात् त्वं कुरु सत्तम ॥ ८१ ॥
एवं मन्त्रैर्मन्त्रयित्वा नृपः कार्यान्तिकाद् द्विजात् ।
[५४]तैरज्ञातान् स्वयं ज्ञात्वा गृह्णीयात् तस्य तैर्मनः ॥ ८२ ॥
यदि राज्याभिलाषेण सचिवोऽधर्ममाचरेत् ।
नृपतौ वाधिकं कुर्याद् धर्मं तं हीनतां नयेत् ॥ ८३ ॥
आभिचारिकमत्यर्थं कुर्वाणं तु विघातयेत् ।
प्रवासयेद् ब्राह्मणं तु पार्थिवश्चाभिचारिकम् ॥ ८४ ॥
एषा धर्मोपधा ज्ञेया तैरमात्यान् सुतान् जयेत् ।
एतादृशीं तथैवान्यामुपधां धर्मतश्चरेत् ॥ ८५ ॥
कोशाध्यक्षान् समामन्त्र्य राजामात्यान् प्रतारयेत् ।
पुत्रानन्यान् प्रति तथा मन्त्रसंवरणाक्षमान् ॥ ८६ ॥
अयं हि प्रचुरः कोषो मदायत्तो नरोत्तम ।

---

५३. "कक्ष. । ५४. तरज्ञाता स्वयं ज्ञाता न गृह्णीयात् ।

आनये तव समत्या तद् यदि त्व प्रतीक्षसि ।: ८७ ॥
तवार्थलग्नादस्माक जीवन च भविष्यति ॥
त्वं चापि प्रचुरैः कोषैः किं किं वा न करिष्यसि ॥ ८८ ॥
एवमन्यैः कोषगतैरुपायैर्नृपसत्तमः ।
पुत्रामात्यादिकान् सर्वान् सतत परिशोधयेत् ॥ ८९ ॥
कोषदोषकरान हन्यात् कर्तुमिच्छून् विवासयेत् ।
द्वैधचित्तान् विमन्येत कुर्याद् वै कोशरक्षणम् ॥ ९० ॥
दासीश्च शिल्पिनीर्वृद्धा मेधाधृतिमतीः स्त्रियः ।
अन्तर्बहिश्च या यान्ति विदिताः सचिवादिभिः ॥ ९१ ॥
ता राजा रहसि स्थित्वा भार्यादिभिरलक्षितः ।
अभिमन्त्र्याथ समन्त्र्य प्रेषयेत् सचिवान् प्रति ॥ ९२ ॥
ता गत्वा हृदय बुद्धा स्त्रियो विज्ञानतत्पराः ।
महिषीप्रमुखा राज्ञस्त्वा वै कामयते शुभाः ॥ ९३ ॥
तत्राह योजयिष्यामि यदि ते विद्यते स्पृहा ।
सचिवस्त्वा कामयते त्वद्योग्यो वरवर्णिनि ॥ ९४ ॥
त सगमयितुं शक्ता यदि श्रद्धा तवास्त्यहम् ।
इत्यनेन प्रकारेण नानोपायैस्तथोत्तरैः ॥ ९५ ॥
भार्याः पुत्रदुहित्रीश्च स्नुषाश्च प्रस्नुषास्तथा ।
शोधयेत् सचिवान् पुत्रान् पौत्रादीन् सेवकांस्तथा ॥ ९६ ॥
कामोपधाविशुद्धास्तु [५५]घातयेदविचारयन् ।
स्त्रियस्तु योज्या दण्डेन ब्राह्मणांस्तु प्रवासयेत् ॥ ९७ ॥
मोक्षमार्गावसक्तं तु हिंसापैशुन्यवर्जितम् ।
क्षमैकसार नृपतिः सचिवं परिवर्जयेत् ॥ ९८ ॥
मोक्षमार्गविषक्तांस्तु दण्डयानपि न दण्डयेत् ।
समबुद्धिस्तु सर्वत्र तस्मात् त परिवर्जयेत् ॥ ९९ ॥*
इति सूत्र चोपधानामुपधा बहुधा पुनः ।
विवेचिता चोशनसा तच्छास्त्रे तत्र बोधयेत् ॥ १०० ॥
विग्रहं सततं राजा परैर्न्न सम्यगाचरेत् ।
भूवित्तमित्रलाभेषु निश्चितेष्वेव विग्रहाः ॥ १०१ ॥
सप्ताङ्गेषु प्रसादश्च सदा कार्यो नृपोत्तमैः ।
कोषस्य सञ्चयं रक्षा सतत सम्यगाचरेत् ॥ १०२ ॥
मन्त्रिणस्तु नृपः कुर्याद् विप्रान् विद्याविशारदान् ।

---

५५. प्रावयेदभिचारिकान् ।

विनयाज्ञान् कुलीनाश्च धर्मार्थकुशलानृजून् ॥ १०३ ॥
मन्त्रयेत् तैः सम ज्ञान नात्यर्थ बहुभिश्चरेत् ।
एकैकेनैव कर्तव्यं मन्त्रस्य च विनिश्चयम् ॥ १०४ ॥
[५६]व्यस्तैः समस्तैश्चान्यस्य व्यपदेशैः समन्तत. ।
सुसवृत मन्त्रगृह स्थल वारुह्य मन्त्रयेत् ॥ १०५ ॥
अरण्ये निःशलाके वा न[५७] यामिन्यां कदाचन ।
शिशूञ्छाखामृगान् पण्डाञ्छुकान् वै सारिकास्तथा ॥ १०६ ॥
वर्जयेन्मन्त्रगेहे तु मनुष्यान् विकृतास्तथा ।
दूषणं मन्त्रभेदेपु नृपाणा यत् तु जायते ॥ १०७ ॥
न तच्छक्य समाधातु दक्षैर्नृपशतैरपि ।
दण्ड्यास्तु दण्डयेद् दण्डैरदण्ड्यान् दण्डयेन्नहि ॥ १०८ ॥
अदण्डयन् नृपो दण्ड्यान्नदण्ड्याश्चापि दण्डयन् ।
नृपतिर्वाच्यतां प्राप्य चौरकिल्विपमाप्नुयात् ॥ १०९ ॥
दुर्गं[५८] तु समता[५९] कुर्यात् प्राकाराट्टालतोरणै. ।
भूषितान्नगराद्राजा दूरे दुर्गाश्रय चरेत् ॥ ११० ॥
दुर्गं वल नृपाणा तु नित्य दुर्गं प्रशस्यते ।
शतमेको योधयत त दुर्गस्थो यो धनुर्द्धरः ॥ १११ ॥
शत दशसहस्राणि तस्माद् दुर्गं [६०]प्रशस्यते ।
जलदुर्गं भूमिदुर्ग वृक्षदुर्गं तथैव च ॥ ११२ ॥
अरण्यमरुदुर्गं च शैलज [६१]परिखोद्भवम् ।
दुर्ग कार्यं नृपतिना यथा दुर्गं[६२] स्वदेशतः ॥ ११३ ॥
दुर्गं कुर्वन् पुरं कुर्यात् त्रिकोण धनुराकृति ।
वर्तुलं च चतुष्कोण नान्यथा नगर चरेत् ॥ ११४ ॥
मृदङ्गाकृतिदुर्गं तु सतत कुलनाशनम् ।
यथा राक्षसराज्यस्य लङ्का दुर्गान्विता पुरा ॥ ११५ ॥
वलेः पुर शोणिताख्य तेजो दुर्गैः प्रतिष्ठितम् ।
तद् यस्माद् व्यञ्जनाकार मनोभ्रष्टः शिवावलिः ॥ ११६ ॥
सौभाग्य [६३]शाल्वराजस्य नगरं पचकोणकम् ।
दिवि यद् वर्तते राज्यं तच्च भ्रष्ट भविष्यति ॥ ११७ ॥
यच्चायोध्याह्वयं भूप पुरमिक्ष्वाकुभूभृताम् ।

५६. व्यस्तैश्चैव समस्तैश्च वाप्यस्य व्यपदेशत. । ५७. सखादीनां ।
५८. दुर्गं । ५९. सतत । ६०. विशिष्यते । ६१. परिखोत्तमम् ।
६२. '' मशेषतः । ६३. शाम्बराज् ।

धनुराकृति तच्चापि ततोऽभूद् विजयप्रदम् ॥ ११८ ॥
दुर्गभूमौ जयेद् दुर्गां दिक्पालाश्चैव द्वारतः।
पूजयित्वा विधानेन जय भूपः समाप्नुयात् ॥ ११९ ॥
अतो दुर्ग नृपः कुर्यात् सतत जयवृद्धये।
न ब्राह्मणान् सदा राजा केनाप्यवमनीकृतान् ॥ १२० ॥
अवमन्य नृपो विप्रान् प्रेत्येह दुःखभाग् भवेत्।
न विरोधस्तु तैः कार्यः स्वानि तेषा न चाददेत् ॥ १२१ ॥
कृत्यकालेषु सतत तानेव - परिपूजयेत्।
नैषा निन्दा प्रकुर्वीत नाभ्यसूया तथाचरेत् ॥ १२२ ॥
एवं नृपो महाबुद्धिस्तत्त्वमण्डलसयुतः।
अप्रमादी चारचक्षुर्गुणवान् सुप्रियवदः ॥ १२३ ॥
प्रेत्येह महतीं सिद्धिं प्राप्नोति सुखभोगवान्।
यैर्गुणैर्योजितश्चात्मा तै' पुत्रानपि योजयेत् ॥ १२४ ॥
[६४]नृपस्य च स्वतन्त्रत्व सतत स्व विनाशयेत्।
स्वतन्त्रो भूपतनयो विकार याति निश्चितम् ॥ १२५ ॥
निर्विकाराय सतत वृद्धाश्च परियोजयेत्।
भोजने [६५]शयने याने पुरुषाणा च वीक्षणे ॥ १२६ ॥
वियोजयेत् सदा दारान् भूपः कामविचेष्टने।
अस्वतन्त्राः स्त्रिय. कार्याः सतत पार्थिवेन तु ॥ १२७ ॥
ताः स्वतन्त्राः स्त्रियो नित्य हानये सम्भवन्ति हि।
तस्मात् कुमार म हषीमुपधाभिर्मनोहरै ॥ १२८ ॥
शोधयित्वा नियुञ्जीत यौवराज्यावरोधयो ।
अन्तःपुरप्रवेशे तु स्वतन्त्रत्व निषेधयेत् ॥ १२९ ॥
भूपपुत्रस्य भार्याया बहिःसारे तथैव च।
अयं विशेषः सक्षेपान्नृपधर्मो मयोदितः ॥ १३० ॥
पुत्राणा गुणविन्यासे भार्याणामपि भूपते।
उशना राजनीतीना तन्त्राणि तु बृहस्पतिः ॥ १३१ ॥
चकारान्यान् विशेषास्तु तयोस्तन्त्रेषु बोधयेत्[६६]।
एवं राजा महाभागो राजनीतौ विशेषताम्।
कुर्वन्न सीदति सदा भूयसी श्रियमश्नुते ॥ १३२ ॥

इति श्रीकालिकापुराणे नृपधर्मकथने चतुरशीतितमोऽध्यायः ॥ ८४ ॥

---

६४. नृप किं स्वस्य तन्त्रत्व सततं भूरिनाशये। ६५ वमने पाने। ६६. बोधय।

पञ्चाशीतितमोऽध्यायः

और्व उवाच—

सदाचारेषु राजेन्द्र विशेषाञ् शृणु सम्प्रति।
यानवश्य नृपः कुर्यात् तान्मत्तः सकलाञ् शृणु ॥ १ ॥
साधवः क्षीणदोषाश्च सच्छब्दः साधुवाचकः।
तेषामाचरण यत् तत् सदाचारः स उच्यते ॥ २ ॥
आगमेषु पुराणेषु सहितासु यथोदितान्।
समुद्दिष्टसदाचारान् गृह्णीयात् तान् गृहस्थवत् ॥ ३ ॥
ऋषीन् यजेद् वेदपाठैर्देवान् होमैः प्रपूजयेत्।
श्राद्धैः पितॄस्तर्पयेत् तु भूतानि बलिभिस्तथा ॥ ४ ॥
मैत्र प्रसाधनं स्नान दन्तधावनमञ्जनम्।
सर्वं गृहस्थवत् कुर्यान्निषेकाद्य विधि तथा ॥ ५ ॥
षट्कर्मसु नियुञ्जीत राजा विप्रान् समन्ततः।
तथैव क्षत्रियादींश्च स्वे स्वे[६७] धर्मे नियोजयेत् ॥ ६ ॥
यः स्वधर्मं परित्यज्य परधर्मं समाचरेत्।
त शतेन नृपो दण्ड पुनस्तस्मिन् नियोजयेत् ॥ ७ ॥
सांवत्सरेषु कृत्येषु विशिष्यैतान समाचरेत् ।*
[६८]अवश्य पार्थिवो राजन् तान् विशेषाञ् शृणुष्व मे ॥ ८ ॥
शरत्काले महाष्टम्या दुर्गायाः परिपूजनम्।
नीराजन दशम्या तु कुर्याद् वै बलवृद्धये ॥ ९ ॥
पौषे मासि तृतीयाया कुर्यात् पुष्याभिषेचनम्।
पूजयित्वा श्रिय देवीं पञ्चम्या नृपतिश्चरेत् ॥ १० ॥
श्रीयज्ञ धनधान्यस्य वृद्धये नृपसत्तम।
ज्यैष्ठे दशहरायां तु विष्णोरिष्टि [६९]तथाचरेत् ॥ ११ ॥
रवौ हरिस्थे द्वादश्यां शक्रपूजा समाचरेत्।
विशिष्यैतांस्तु नृपतिः कुर्याद् यज्ञान् बहुव्ययैः ॥ १२ ॥
एभिः कृतैर्बलं राज्यं कोषश्चापि विवर्धते।
अकृतेष्वेषु यज्ञेषु दुर्भिक्ष मरणं[७०] तथा ॥ १३ ॥
जायन्ते चेतयः सर्वा विशिष्यैतांस्ततश्चरेत्।
शरत्काले महाष्टम्या दुर्गायाः पूजने विधिः ॥ १४ ॥

---

६७. कर्मणि योजयेत्। * मुद्रिते अधिक। ६८. अरण्य पार्थिवान् राजन्।
६९. समाचरेत्। ७०. मरकस्तथा।

पुरा प्रोक्तस्तु विधिना तेन कार्यं तु पूजनम् ।
विधिं नीराजनस्य त्वं श्रृणु पार्थिवसत्तम ॥ १५ ॥
कृतेन येन चाश्वाना गजानामपि वर्धनम् ।
आश्विने शुक्लपक्षे[७१] तु तृतीया स्वातीयोगिनी ॥ १६ ॥
ऐशान्या स्वपुरस्यैव गृह्णीयात् स्थानमुत्तमम् ।
नीराजनं ततः कुर्यात् सम्प्राप्ते दिवसेऽष्टमे ॥ १७ ॥
नीराजनस्य कालस्तु पूर्वमुक्तो मया तव ।
विधानमात्र श्रृणु मे कृतकृत्यो भविष्यसि ॥ १८ ॥
एकं हयं महासत्त्वं सुमनोहरमेव च ।
पूजयेत् सप्तदिवसान गन्धपुष्पांशुकादिभिः ॥ १९ ॥
तृतीयादौ पूजयित्वा नयेत[७२] यज्ञमण्डलम् ।
चेष्टां निरूपयस्तस्य जानीयात् तु शुभाशुभम् ॥ २० ॥
परराष्ट्रावमर्दः स्यादश्वो यदि पलायते ।
म्रियते राजपुत्रस्तु यदि चाश्रूणि मुञ्चति ॥ २१ ॥
नीयमानो न गच्छेत् तु माहिषीमरणं ततः ।
तथैव मुखनासाक्षि शब्दं कुर्याद्धयो यदि ॥ २२ ॥
यः काष्ठाभिमुखं कुर्यात् तत् काष्ठायां जयेद्रिपून् ।
उत्क्षिप्य दक्षिणाग्रं तु पदमश्वो भवेन् पुरः ॥ २३ ॥
तदा यदि समस्ताश्च नृपतिर्विजयेद्रिपून् ।
प्रातर्नीराजनं कुर्याद् दशम्या नृपसत्तम ॥ २४ ॥
तदप्राप्तौ च द्वादश्या तस्यामेव समाचरेत् ।
कार्तिके पचदश्यां वा तत्राभावे तु पार्थिव ॥ २५ ॥
ऐशान्या स्वपुरस्योच्चैर्हस्तमानेन षोडश ।
दशहस्तं तु विपुला कुर्याद् वै तत्र तोरणम् ॥ २६ ॥
द्वात्रिंशद्धस्तमात्रं तु हस्तषोडशविस्तृतम् ।
यज्ञार्थं मण्डलं कुर्यान्मध्ये वेदिं विनिर्दिशेत् ॥ २७ ॥
वेद्याश्चोत्तरतश्चाश्व-वेदिं कुर्यादनुत्तमाम् ।
यत्र संस्थाप्य चाश्वश्च पूजितव्यः पुरोहितैः ॥ २८ ॥
सर्जोदुम्बरशाखानामर्जुनस्याथवा नृप ।
मत्स्यशङ्खाङ्कितैश्चक्रैर्ध्वजैश्चाप्यभिभूषयेत् ॥ २९ ॥
तोरणं कनकरत्नैस्तथा नानाविधैः फलैः ।
भल्लातकं शालिकुष्ठं सिद्धयर्थं सैन्धवस्य तु ॥ ३० ॥

---

७१ या दशमो । ७२ नयेत् त ।

कण्ठदेशे निबध्नीयात् पुष्टिशान्त्यर्थमेव च।
वैष्णवं मण्डलं कृत्वा दिक्पालांश्च नवग्रहान् ॥ ३१ ॥
विश्वेदेवास्तु मन्त्रेण विष्णुमुख्यान् प्रपूजयेत्।
आज्यैस्तिलैश्च पुष्पैश्च मिश्रीकृत्य पुरोहितः ॥ ३२ ॥
रवेस्तु वरुणस्यैव प्रजेशस्य तथैव च।
पुरुहूतस्य विष्णोश्च होमं सप्ताहमाचरेत् ॥ ३३ ॥
एकैकस्य सहस्रं वा अष्टोत्तरशतं च वा।
कुर्यात् तु प्रत्यहं होमं चतुर्वर्गस्य सिद्धये ॥ ३४ ॥
समिधश्चापि होतव्याः पालाशाः खादिरास्तथा।
औदुम्बर्यश्च काश्मर्या आश्वत्थाश्च पुरोधसा ॥ ३५ ॥
सौवर्णान् राजतान् वापि मार्तिकान् वा यथेच्छया।
कुर्यात् तु कलशानष्टौ फलाम्राम्बरयोजितान् ॥ ३६ ॥
क्षिपेत् तेषु घटेष्वेव समङ्गहरितालकम्।
चन्दनं च तथा कुष्ठं प्रियङ्गुं च मनःशिलाम् ॥ ३७ ॥
*अञ्जनं च हरिद्रा च श्वेता दन्ती तथैव च।
भल्लातकं पूर्णकोशं महदेवीं शतावरीम् ॥ ३८ ॥
वचा सनागकुसुमा सोमराजी सुगुप्तिकाम्।
[73]तुत्थं च करवीरं च तुलसीदलमेव च ॥ ३९ ॥
एतानि निक्षिपेन्मध्ये कलशानां पुरोहितः।
कनकैरम्बुजैर्यज्ञदारुभिः स्रुक्स्रुवौ तथा ॥ ४० ॥
कर्तव्यं शान्तिकामेन नीराजनविधौ नृप।
एवं सप्ताहपर्यन्तं पूजाभिर्हवनैस्तथा ॥ ४१ ॥
पूर्वोक्तान् पूजयित्वा तु नृपः सप्ताहमाचरेत्।
यावन्नीराजनं कुर्यात् तावद्राजा वसेद् गृहे ॥ ४२ ॥
रात्रौ न यज्ञभूमौ तु निवसेच्छान्तिमिच्छुकः।
नारोहयेत् तुरङ्गं तं गजं वा तत्र पार्थिवः ॥ ४३ ॥
यावत् सप्ताहपर्यन्तं यानेनान्येन वै व्रजेत्।
भक्ष्यैर्नानाविधैश्चैव मधुपायसयावकैः ॥ ४४ ॥
मोदकैर्वा बलिं कुर्यादन्नव्यञ्जनसम्भवैः।
पूर्वोक्तानां तु देवानां सप्ताहं यावदुत्तमम् ॥ ४५ ॥
सप्तमेऽह्नि तु रेभन्तं[74] पूजयेत् तोरणान्तरे।

---

* अञ्जनं च तथा कुष्ठं प्रियङ्गुं च सुमनःशिलाम्। ' अधिक. पाण्डुलिप्याम्।   ७३. मन्दाक्ष करवीरश्चैव। ७४ भवेनाम्तं।

सूर्यपुत्र महाबाहु द्विभुज कवचोज्ज्वलम् ॥ ४६ ॥
ज्वलन्त शुक्लवस्त्रेण केशानुद्ग्रथ्य वाससा ।
कशा वामकरे बिभ्रद् दक्षिण तु कर पुनः ॥ ४७ ॥
स खड्ग न्यस्य वामाया सितसैन्धवसंस्थितम् ।
एवंविध तु[७५] रेभन्त प्रतिमाया घटेऽपि वा ॥ ४८ ॥
सूर्यपूजाविधानेन पूजयेत् तोरणान्तरे ।
पूजयित्वा तु रेभन्त[७६] द्विरद तुरग तथा ॥ ४९ ॥
अहताम्बरसवीत स्रक्चन्दनसमन्वितम् ।
सुवर्णविद्धनिस्त्रिंश विचित्र कवचादिभि• ॥ ५० ॥
युक्त तु होमकुण्डस्य ऐशान्यामश्ववेदिकाम् ।
पूर्वं कृता नयेदश्वगजपालौ पृथक् पृथक् ॥ ५१ ॥
नीयमाने गजे चाश्वे पूर्वोक्त तु निमित्तकम् ।
यत्नाद् वीक्षेत नृपतिः फल चैवावधारयेत् ॥ ५२ ॥
होमकुण्डस्योत्तरस्या वैयाघ्र चर्मणि स्थितः ।
वेदविदा चाश्वविदा सहितो वीक्ष्य सैन्धवम् ॥ ५३ ॥
नीताय तुरगायाशु भक्तपिण्डीं सुगन्धिनीम् ।
दद्यात् पुरोहितस्तत्र समन्त्र्य शान्तिमन्त्रकैः ॥ ५४ ॥
भक्षणाद् यदि जिघ्रेत् तदश्नीयाद् वा हयः स च ।
तदा स्यात् सर्वकल्याणं विपरीतमतोऽन्यथा ॥ ५५ ॥
शाखामौदुम्बरीमाम्री सकुशा च घटोदके ।
आप्लाव्याप्लाव्य तुरगान् गजान् भूप च सैनिकान् ॥ ५६ ॥
रथाश्च संस्पृशन्मन्त्रैः शान्तिकै• पौष्टिकैस्तथा ।
सेचयेत् सहितैर्विप्रैश्चतुरङ्ग पुरोहितः ॥ ५७ ॥
दिक्पालाना ग्रहाणा च मन्त्रैश्च वैष्णवैस्तथा ।
बहुधा चाभिषिच्याथ ततः सौवर्ण[७७]दर्पणम् ॥ ५८ ॥
वीक्षयित्वा नृप चर्त्विक् ततो मन्त्रिणमेव च ।
राजपुत्र तथामात्यानन्यानपि च सैनिकान् ॥ ५९ ॥
कम्पयन् द्विजशार्दूलः सर्वानेव तु दर्शयेत् ।
चतुरंगस्य स्वस्यापि कृत्वैव शान्तिपौष्टिके ॥ ६० ॥
मृन्मय शात्रव कृत्वा चाभिचारिकमन्त्रकैः ।
हृदि शूलेन विध्वा तं शिर खड्गेन छेदयेत् ॥ ६१ ॥

---

७५. रेवन्तं । ७६ रेवन्त । ७७ सर्पणम् ।

आचार्यः कविका पश्चादभिमन्त्र्य हयाय वै ।
ऐन्द्रैः प्राभाकरैर्मन्त्रैर्दद्याद् वक्त्रे स्वय पुनः ॥ ६२ ॥
तमनेन तु मन्त्रेण समारुह्य नृपस्तदा ।
गच्छेदुत्तरपूर्वा तु दिश सर्वैर्बलैर्युतः ॥ ६३ ॥
ऋत्विक् पुरोहिताचार्याः सर्व एव नृप तदा ।
अनुगच्छेयुरन्यानि निमित्तानि विलोकितुम् ॥ ६४ ॥
वादित्रघोषैस्तुमुलैरातपत्रैर्वृतस्तथा ।
गच्छेन्नीराजने राजा दारयन्निव मेदिनीम् ॥ ६५ ॥
मणिविद्रुममुक्तादि स्वर्ण-रत्नैरलङ्कृतः ।
क्रोशमात्र ततो गत्वा पूर्वद्वारेण पार्थिवः ॥ ६६ ॥
स्वपुर प्रविशेद् विप्रैर्यज्ञ यायात् पुरोहितः ।
तत्र गत्वा दक्षिणा तु हिरण्य गा तथा तिलम् ॥ ६७ ॥
दत्त्वा पश्चाद् द्विजेभ्यस्तु दद्याद् दानानि शक्तितः ।
एव नीराजन कृत्वा बलाना च महीक्षितः ॥ ६८ ॥
प्रेत्येह सुस्थिरा लक्ष्मी नृपतिः प्राप्नुयात् तथा ।
त्वमश्वामृतसञ्जात सागरोद्भव सैन्धव ॥ ६९ ॥
येन सत्येन बहसे शक्रं तेनेह मा वह ।
येन सत्येन रेभन्त येन सत्येन भास्करम् ॥ ७० ॥
वहसे तेन सत्येन विजयाय वहस्व माम् ।
आभ्या तु भूपमन्त्राभ्यामश्वारोहणमाचरेत् ॥ ७१ ॥
आरुह्याग्रं महिष्यास्तु शुद्धान्ते लम्बयेत् ततः ।
महिषी च ततो भूप पर्यङ्कोपरि संस्थितम् ॥ ७२ ॥
दूर्वाक्षतैः ससिद्धार्थैः स्त्रीभि. सह तमर्चयेत् ।
कृते तु भूमिग्रहणे तृतीयायां निराजने ॥ ७३ ॥
सूतक यदि जायेत तत्र दुष्यति केवलम् ।
सूतकी मृतकी वापि पार्थिवस्तु यथा तथा ॥ ७४ ॥
बलनीराजनं कुर्यात् तन्मात्रं च विशेषतः ।
सद्यः शौचं भवेद्राज्ञो व्यवहारविलोकने ॥ ७५ ॥
तथाधिवासने यज्ञे परराष्ट्रविमर्दने ।
अय ते कथितो राजन्नीराजनक्रमो मया ।
पुष्यस्नानविधानं तु पार्थिव शृणु साम्प्रतम् ॥ ७६ ॥

इति श्रीकालिकापुराणे पञ्चाशीतितमोऽध्याय ॥ ८५ ॥

षडशीतितमोऽध्यायः ।

और्व उवाच—

श्रृणु राजन् प्रवक्ष्यामि पुष्यस्नानविधिक्रमम् ।
येन विज्ञानमात्रेण विघ्ना नश्यन्ति सन्ततम् ॥ १ ॥
पौषे पुष्यर्क्षगे चन्द्रे पुष्यस्नान नृपश्चरेत् ।
सौभाग्यकल्याणकरं दुर्भिक्षमरणापहम् ॥ २ ॥
विष्ट्यादिदुष्टकरणे व्यतीपाते च वैधृतौ ।
वज्रे शूले हर्षणादौ योगे तु यदि लभ्यते ॥ ३ ॥
तृतीयायुक्तपुष्यर्क्षं रविशौरिकुजेऽहनि ।
तदा समस्तदोषाणा तत् स्नानं हानिकारकम् ॥ ४ ॥
ग्रहदोषाश्च जायन्ते यदि राज्येषु चेतयः ।
तदा पुष्ये तु नक्षत्रे कुर्यान्मासान्तरेऽपि च ॥ ५ ॥
इयं तु ब्रह्मणा शान्तिरुदिष्टा गुरवे पुरा ।
शक्रादिसर्वदेवाना शान्त्यर्थं च जगत्पतिः ॥ ६ ॥
तुषकेशास्थिवल्मीक-कीटदेशादिवर्जिते ।
शर्कराक्रमिकुष्माण्ड-बहुकृष्टविवर्जिते ॥ ७ ॥
काकोलूकैश्च कङ्कैश्च काकोलैर्गृध्रशौनकै. ।
बर्जिते कण्टकिवने विभीतकविवर्जिते ॥ ८ ॥
शिग्रुश्लेष्मातकाभ्या तु जलौकाद्यैर्विवर्जिते ।
स्वस्थाने [78] चम्पकाशोक-वकुलादिविराजिते ॥ ९ ॥
हंसकारण्डवाकीर्णे सरस्तीरेथवा शुचौ ।
पुष्यस्नानाय नृपतिर्गृह्णीयात् स्थानमुत्तमम् ॥ १० ॥
तत पुरोहितो राजा नाना वादित्रनिःस्वनैः ।
प्रदोषसमये गच्छेत् तत् स्थान पूर्ववासरे ॥ ११ ॥
तस्य स्थानस्य कौवेर्यां दिशि स्थित्वा पुरोहितः ।
सुगन्धचन्दनैः पानेः कर्पूराद्यधिवासितै. ॥ १२ ॥
गोरोचनाभिः सिद्धार्थैरक्षतैः सफलादिभि ।

---

७८. रम्याकाशोकवसालादिविभूषिते ।

गन्धद्वारेत्यादिभि[७९]र्मन्त्रैः सर्वाधिसिक्तकैः ॥ १३ ॥
अधिवास्य तु तत्स्थान पूजयेत तत्र देवता ।
गणेश केशव शक्र ब्रह्माण चापि शङ्करम् ॥ १४ ॥
उमया सहित देव सर्वाश्च गणदेवता. ।
मातृश्च पूजयेत् तत्र नृपतिः सपुरोहितः ॥ १५ ॥
मङ्गलान् कलशान् कृत्वा नानानैवेद्यसञ्चयान् ।
प्रदद्यात् पायस स्वादुफल मोदकयावकौ ॥ १६ ॥
अधिवास्य च तत् स्थान दूर्वासिद्धार्थकाक्षतैः ।
तत्स्थानाच्चापि भूतानि सारयेन्मन्त्रमीरयन् ॥ १७ ॥
अपसर्पन्तु ते भूता ये भूता भूमिपालकाः ।
भूतानामविरोधेन स्नानकर्म करोम्यहम् ॥ १८ ॥
ततः करौ पुटीकृत्य मन्त्रणानेन पार्थिवः ।
आवाहयेदिमान् देवान् पूज्यान पुष्याभिषेकत. ॥ १९ ॥
आगच्छन्तु सुराः सर्वे येऽत्र पूजाभिलाषिणः ।
दिशो हि पालका सर्वे ये चान्येऽप्यशभागिन. ॥ २० ॥
ततः पुष्पाञ्जलिं दत्त्वा पुनर्मन्त्र पठेदिमम ।
अद्य तिष्ठन्तु विबुधाः स्थानमासाद्य मामकम् ॥ २१ ॥
स्वपूजा प्राप्य पातारो दत्त्वा शान्ति महीभुजे ।
ततस्ता नृपती रात्रि नयेत् तु सपुरोहितः ॥ २२ ॥
स्वप्ने शुभाशुभ विद्यान्नृपस्तु सपुरोहितः ।
कृत्वा पूजां तु देवाना रात्रौ स्थाने नृप. स्वपेत् ॥ २३ ॥
शुभाशुभफल स्वप्ने ज्ञेयं [८०]दोषज्ञसम्मते ।
दुःस्वप्नदर्शन चेत् स्यात् तदा पुष्याभिषेचने ॥ २४ ॥
होमं चतुर्गुणं कुर्याद् दत्त्वा चापि गवा शतम् ।
गोवाजिकुजराणां तु प्रासादस्य गिरेस्तरोः ॥ २५ ॥
आरोहण शुभकरं राज्यश्रीवृद्धिकारकम् ।
दधिदेवसुवर्णाना [८१]ब्राह्मणस्य प्रदर्शनम् ॥ २६ ॥
वीणादूर्वाक्षतफल पुष्पच्छत्रविलेपनम् ।
शीताशु[८२]चक्रशात्रूणा पद्मस्य सुहृदस्तथा ॥ २७ ॥
लाभाः क्षयकराः शत्रौ रत्नकारस्य भूभृतः ।
दर्शनं चोपरागस्य निगडेन च बन्धनम् ॥ २८ ॥

---

७९ सर्वौषध्यादिवासितै । ८०. दैवज्ञ ।
८१ भुजगस्य च दर्शनम् । ८२ छत्रशंखानां ।

मासस्य भोजन चैव पर्वतस्य विवर्तनम् ।
[८३]नाभिमध्ये तरूत्पत्तिर्मृत प्रत्यनुरोदनम् ॥ २९ ॥
अगम्यागमन कूप पङ्कगर्भावतीर्णता ।
पर्वतस्य तथा नद्याः [८४]स्रोतसा लङ्घन तथा ॥ ३० ॥
स्वपुत्रमरण चैव पान रुधिरमद्ययोः ।
भोजन पायसस्यापि मनुष्यारोहण तथा ॥ ३१ ॥
कल्याणसुखसौभाग्य-राज्य-शत्रुक्षय तथा ।
एते स्वप्नाः प्रकुर्वन्ति नृपस्य नृपसत्तम ॥ ३२ ॥
खरोष्ट्रमहिषाणा च आरोहो राज्यनाशनः ।
नृत्य गीत तथा हास्य पाठश्चाप्यशुभप्रदः ॥ ३३ ॥
रक्तवस्त्रपरिधान रक्तमालानुलेपनम् ।
रक्ता कृष्णा स्त्रियं चैव कामयन् मृत्युमाप्नुयात् ॥ ३४ ॥
कूपान्तरे प्रवेश॰ स्याद् दक्षिणाशागतिस्तथा ।
पङ्के निमज्जन स्नान भार्यापुत्रविनाशनम् ॥ ३५ ॥
लाभस्तस्य भवेत् स्वप्नेऽप्यरुत्पत्तिर्नृपस्य च ।
आदाय गर्भनाडी तु सकुलो याति [८५]खञ्जनम् ॥ ३६ ॥
स तु राज्यान्तरं प्राप्य महाकल्याणमाप्नुयात् ।
दीर्घ विंशतिहस्त तु हस्तषोडशविस्तृतम् ॥ ३७ ॥
कुर्यात् तु लक्षणोपेत यज्ञमण्डलमुत्तमम् ।
ततोऽपरेऽह्नि पूर्वाह्णे मातृणा पूजन चरेत् ॥ ३८ ॥
कुड्यलग्ना वसोर्धारां वृद्धिश्राद्ध तथैव च ।
चन्दनागुरुकस्तूरीधूमकर्पूरचूर्णकैः ॥ ३९ ॥
सम्पूज्य मण्डलस्थान तस्मिन् ह्रौं शम्भवे नमः ।
अस्त्राय हुं फडित्येवं लिखेन्मन्त्रद्वय बुधः ॥ ४० ॥
मन्त्रविन्मण्डलज्ञश्च सूत्रैः कम्बलसम्भवैः ।
कौशेयैर्वा स्वस्तिकाख्य प्रथमं मण्डल लिखेत् ॥ ४१ ॥
चतुर्हस्तप्रमाण तु मण्डल विलिखेत् ततः ।
हस्तप्रमाणं पद्म तु मण्डलस्य प्रकीर्तितम् ॥ ४२ ॥
द्वाराणि सार्धहस्तानि कर्णिकाकेशरोज्ज्वलम् ।
सितं रक्तं च पीतं च कृष्णं हरितमेव च ॥ ४३ ॥

---

८३ नाभिमूले । ८४. प्रोक्तारः शत्रुकर्तन । ८५. ख द्रुतम् ।

शालिचूर्णैश्च कौसुम्भैर्हारिद्रैर्हरिद्रवैः।
कुर्यात् तथाञ्जनैश्चूर्णै राजा मण्डलवृद्धये ॥ ४४ ॥
पद्मान्ततः समारभ्य ताल पश्चिमगामिनम्।
पश्चिमद्वारमध्ये च शतहस्त विनिर्दिशेत् ॥ ४५ ॥
प्रत्येक द्वारमध्ये तु पद्म चैवाष्टपत्रकम्।
कुर्यान्मण्डलभागज्ञश्चूर्णैरेव पृथक् पृथक् ॥ ४६ ॥
चूर्णैस्तु मण्डल कृत्वा सूत्राण्युत्सारयेत् ततः।
उत्सार्य सूत्र प्रथम मण्डल पूजयेत् ततः ॥ ४७ ॥
[86]भवनाय नम इति ततो हस्त वियोजयेत्।
सव्यावलम्बहस्त तु रजःपात्र समाचरेत् ॥ ४८ ॥
मध्यमानामिकाङ्गुष्ठैरुपरिष्टाद् यथेच्छया।
अधोमुखाङ्गुलीः[87] कृत्वा पातयेच्च विचक्षणः ॥ ४९ ॥
समारेखा तु कर्तव्या विच्छिन्ना पुष्परञ्जिता।
अङ्गुष्ठपर्वनैपुण्यात् समा कार्या विजानता ॥ ५० ॥
संसक्तविषम स्थूल विच्छिन्न कृसराकृतम्।
पर्यन्तमर्पित ह्रस्वमालिखेन्न कदाचन ॥ ५१ ॥
ससक्ते कलह विद्यादूर्ध्व रखे तु विग्रहम्।
अतिस्थूले भवेद् व्याधिर्नित्य पीडाविमिश्रिते ॥ ५२ ॥
बिन्दुभिर्भयमाप्नोति शत्रुपक्षान्न संशयः।
कृशाया चार्थहानिः स्याच्छिन्नाया मरण ध्रुवम् ॥ ५३ ॥
वियोगो वा भवेत् तस्य इष्टद्रव्यसुतस्य वा।
अविदित्वा लिखेद् यस्तु मण्डल तु यथेच्छया ॥ ५४ ॥
सर्वदोषानवाप्नोति ये दोषाः [88]पूर्वमीरिताः।
सितसर्षपदूर्वाया रेखाः कार्या विजानता[89] ॥ ५५ ॥
विमल विजय भद्रं विमानं शुभदं शिवम्।
वर्धमान च देव च शताक्ष कामदायकम् ॥ ५६ ॥
रुचिक स्वस्तिक चैव द्वादशैते तु मण्डलाः।
यथास्थान यथायज्ञ योजनीया विचक्षणैः ॥ ५७ ॥
सागरे मथ्यमाने तु पीयूषार्थं सुरोत्करैः।
पीयूषधारणार्थाय निर्मिता विश्वकर्मणा ॥ ५८ ॥

---

८६. भवभवनाय इति। ८७ अधोमुखाञ्जलिं।
८८. पूर्वभाषिताः। ८९. प्रमाणतः।

कला कला तु देवानामसित्वा ते पृथक् पृथक् ।
यतः कृतास्तु कलसास्ततस्ते परिकीर्तिताः ॥ ५९ ॥
नवैव कलसाः प्रोक्ता नामतस्तान्निबोधत ।
गोह्योपगोह्यो मरुतो मयूखश्च तथापरः ॥ ६० ॥
मनोहाचार्यभद्रश्च विजयस्तनु[९०]दूषकः ।
इन्द्रियघ्नोऽथ विजयो नवमः परिकीर्तितः ॥ ६१ ॥
तेषामेव क्रमाद् भूप नव नामानि यानि तु ।
शृणु तान्यपराण्येव शान्तिदानि सदैव हि ॥ ६२ ॥
क्षितीन्द्र• प्रथम• प्रोक्तो द्वितीयो जनसम्भवः ।
पवनाग्नी ततो द्वे तु यजमानस्ततः परः ॥ ६३ ॥
कोषसम्भवनाभ्या[९१] तु षष्ठः स परिकीर्तितः ।
सोमस्तु सप्तमः प्रोक्त आदित्यस्तु तथाष्टमः ॥ ६४ ॥
विजयो नाम कलसो योऽसौ नवम उच्यते ।
स तु पचमुखः प्रोक्तो महादेवस्वरूपधृक् ॥ ६५ ॥
घटस्य पञ्चवक्त्रेषु पञ्चवक्त्रः स्वय तथा ।
यथाकाष्ठा स्थितः सम्यग्वामदेवादिनामतः ॥ ६६ ॥
मण्डलस्य तु पद्मान्तः पञ्चवक्त्र घट न्यसेत् ।
क्षितीन्द्र पूर्वतो[९२] न्यस्य पश्चिमे जलसम्भवम् ॥ ६७ ॥
वायव्ये वायव न्यस्य आग्नेये ह्यग्निसम्भवम् ।
नैर्ऋत्ये यजमान तु ऐशान्या कोषसम्भवम् ॥ ६८ ॥
सोममुत्तरतो योज्य सौर दक्षिणतो न्यसेत् ।
न्यस्यैव कलसाश्चैव तेषु चेतान् विचिन्तयेत् ॥ ६९ ॥
कलसाना मुखे ब्रह्मा ग्रीवाया शङ्करः स्थितः ।
मूले तु संस्थितो विष्णुर्मध्ये मातृगणाः स्थिताः ॥ ७० ॥
दिक्पाला देवताः सर्वा वेष्टयन्ति दिशो दश ।
कुक्षौ तु सागराः सप्त सप्तद्वीपाश्च संस्थिताः ॥ ७१ ॥
नक्षत्राणि ग्रहा सर्वे तथैव कुलपर्वताः ।
गङ्गाद्याः सरितः सर्वा वेदाश्चत्वार एव च ॥ ७२ ॥
कलसे सस्थिता• सर्वे तेषु तानि विचिन्तयेत् ।
[९३]रत्नानि सर्वबीजानि पुष्पाणि च फलानि च ॥ ७३ ॥

---

९०. शोषक । ९१. नाम्ना । ९२. पुरतो ।
९३. तथा रत्नानि सर्वाणि ।

वज्रमौक्तिकवैदूर्यमहापद्मेन्द्रस्फाटिकैः ।
सर्वधाममय बिल्व नागरोदुम्बरं तथा ॥ ७४ ॥
बीजपूरकजम्बीरकाश्मीराम्रातदाडिमम् ।
यवं शालिं च नीवार गोधूम सितसर्षपम् ॥ ७५ ॥
कुङ्कुमागुरुकर्पूरमदन रोचन तथा ।
चन्दन च तथा मार्सीमेला कुष्ठ तथैव च ॥ ७६ ॥
[९४]कस्तूरीपत्रचूर्ण च जलनिर्यासकाम्बुदम् ।
शैलेय बदर जातीपत्रपुष्पे तथैव च ॥ ७७ ॥
कालशाक तथा पृक्का[९५] देवीपणकमेव च ।
वचा धात्री समञ्जिष्ठा तुरुष्क मङ्गलाष्टकम् ॥ ७८ ॥
दूर्वां मोहनिका भद्रा शतमूली शतावरीम् ।
[९६]वर्णाना सरला क्षुद्रा सहदेवी गजाह्वयाम् ॥ ७९ ॥
पूर्णकोषा सिता पीठा गुञ्जा शिरसिकानलौ[९७] ।
व्यामक गजदन्त च शतपुष्प पुनर्नवाम् ॥ ८० ॥
ब्राह्मी देवीं शिवा रुद्रा सर्वसन्धानिका तथा ।
समाहृत्य शुभानेतान् कलसेषु निधापयत् ॥ ८१ ॥
कलसस्य यथादेश विधिं शम्भुं गदाधरम् ।
यथाक्रम पूजयित्वा शम्भु मुख्यतया यजेत् ॥ ८२ ॥
प्रासादेन तु मन्त्रेण शम्भुं तन्त्रेण शङ्करम् ।
प्रथमं पूजयेन्मध्ये नाना नैवेद्यवेदनैः ॥ ८३ ॥
दिक्पालाना घटेष्वेव दिक्पालानपि पूजयेत् ।
पूर्वं बहिः स्थापितेषु ग्रहाणां कलसेषु च ॥ ८४ ॥
नवग्रहान् पूजयेत् तु मातृर्मातृघटेषु च ।
सर्वे देवा घटे पूज्या घटास्तेषा पृथक् पृथक् ॥ ८५ ॥
नवैव तत्र पूर्वोक्ताः स्मृता मुख्यतया नृप ।
भक्ष्यैर्भोज्यैश्च पेयैश्च पुष्पैर्नानाविधैः फलैः ॥ ८६ ॥
यावकैः पायसैश्चैव यथासम्भवयोजितैः ।
पुष्यस्नानाय नृपतिः पूजयेत् सकलान् सुरान् ॥ ८७ ॥
दक्षिणे मण्डलस्याथ कुण्डं निर्माय पायसैः ।
समिद्भिः शालिसिद्धार्थैर्घृतैर्दूर्वाक्षतैस्तथा ॥ ८८ ॥

---

९४. कर्पूरपत्रचण्डञ्च । ९५ पुन्ना । ९६. वर्णानां ।
९७ शिरसिकामलौ ।

केवलैश्च तथैवाज्यैः पूजितान् सकलान् सुरान् ।
होमेन तोषयेद् वृद्ध्यै नृपः[९७] सत्विक्पुरोहितः ॥ ८९ ॥
होमान्ते मण्डलोदीच्या वेदिकाया सपट्टकम् ।
रोचनाख्यमलकारास्तथा सर्वान् नियोजयेत् ॥ ९० ॥
वृद्धावङ्गुलमङ्गुल्या षड्विंशाङ्गुलिकावधि ।
वृत्त वा चतुरस्र वा पद्म [९८]त्रिकोणसञ्ज्ञकम् ॥ ९१ ॥
रत्नेशां पद्ममध्ये तु गोमुष्टिकविनायकैः ।
श्रीश्रीवृक्षवरारोहामुमादेवी शुभान्विताम् ॥ ९२ ॥
रत्नैः सर्वैरलङ्कारैः पट्ट कार्यं द्विहस्तकम् ।
हस्तविस्तारमुच्छ्रायं नवहस्तं दशाङ्गुलम् ॥ ९३ ॥
स्नानार्थं सार्धहस्तं च पट्ट वृत्त गुणान्वितम् ।
शय्या चतुर्गुणा दीर्घा धनुर्मान तु पीठकम् ॥ ९४ ॥
गजसिहकृताटोपं हेमरत्नविभूषितम् ।
सिहाख्य [९९]सार्धविस्ताराद् दण्डासनमथापि वा ॥ ९५ ॥
व्याघ्रचित्रकपट्टैर्वा उपधानानि कारयेत् ।
अन्यैर्वा निर्मिता चर्ममृदुतूलकपूरिता ॥ ९६ ॥
शय्या दीर्घार्धविस्तीर्णा चतुर्हस्ता सुलक्षणा ।
वितस्त्यधिकमिच्छन्ति नृपस्य गुरुविद्यया ॥ ९७ ॥
अर्धचन्द्रसमं कुर्यादासनं चतुरस्रकम् ।
उपधानानि शय्यायाः कर्णादिमूलभेदतः[१००]॥ ९८ ॥
षोडशैवात्र कार्याणि वर्णचित्रयुतानि च ।
यानं सिहासनं पट्टं शय्योपकरणादिकम् ॥ ९९ ॥
राज्ञो नूतनयोग्यं तद् वेद्या उत्तरतो न्यसेत् ।
तेषां तु पश्चिमे स्वर्णरत्नौघखचिते वरे ॥ १०० ॥
पर्यङ्के यज्ञदार्वौघनिर्मिते महदास्तरे ।
अर्धाच्छादनसंयुक्ते चर्मावृतचतुष्टये ॥ १०१ ॥
वृषभस्य तथोर्णायाः सिंहशार्दूलयोरपि ।
पादपीठे रत्नयुते पादावारोप्य पार्थिवः ॥ १०२ ॥*
(क)तस्मिन् पर्यङ्कपीठस्थे चमखड्गचतुष्टये ।

---

९७. नृपस्यर्त्विक् । ९८ त्रिकोणक द्रुत । ९९ सार्धहस्त वा ।
१०० देक्त । * मुद्रिते अधिक ।
(क) शिवैर्नारायणैरैन्द्रैर्ब्रह्मशक्रपर्यंक पाण्डुलिप्यामधिक ।

नानालङ्कारभूषाढ्य नृपति रत्नशालिनम् ॥ १०३ ॥
स्नापयेद् ब्राह्मणै. सार्धं राजान सुखसङ्गतम् ।
सवीतकम्बल कृष्ण [1]बहुवस्त्रैश्च शोभितम् ॥ १०४ ॥
कलसैर्वलिपुष्पाद्यैः [2]शालिचूर्णैश्च स्नापयेत् ।
(क)अष्टौ षोडश विंशाष्टशतमधिक च वा ॥ १०५ ॥
कलसाना समाख्याता अधिकस्योत्तरोत्तरम् ।
जयकल्याणदैर्मन्त्रैर्मङ्गलोत्थैश्च शाम्भवैः ॥ १०६ ॥
वैष्णवैरथ दिक्पालैर्ग्रहमन्त्रैश्च मातृकैः ।
आज्यं तेजः समुद्दिष्टमाज्य पापहर परम् ॥ १०७ ॥
आज्य सुराणामाहार आज्ये लोकाः प्रतिष्ठिताः ।
(ख)भौमान्तरिक्षं दिव्य वा यत् ते कल्मषमागतम् ॥ १०८ ॥
सर्वं तदाज्यसस्पर्शात् प्रणाशमुपगच्छत ।
ततोऽपनीयगात्रात् तु कम्बल वस्त्रमेव च ॥ १०९ ॥
कलसैः स्नापयेद् भूप पुष्पस्नानीयपूरितै. ।
एभिर्मन्त्रैर्नरश्रेष्ठ तनुतत्त्वार्थसाधकैः ॥ ११० ॥
(ग)सुरास्त्वामभिपिञ्चन्तु ये च सिद्धाः पुरातनाः ।
ब्रह्मा विष्णुश्च रुद्राश्च साध्याश्च समरुद्गणाः ॥ १११ ॥
आदित्या वसवो रुद्रा अश्विनौ यौ भिषग्वरौ ।
अदितिर्देवमाता च स्वाहा लक्ष्मी. सरस्वती ॥ ११२ ॥
कीर्तिर्लक्ष्मीर्धृतिः श्रीश्च सिनीवाली कुहूस्तथा ।
दितिश्च सुरसा चैव विनता कद्रुरेव च ॥ ११३ ॥
देवपत्न्यश्च याः प्रोक्ता देवमातर एव च ।
सर्वास्त्वामषिञ्चन्तु सिद्धाश्चाप्सरसां गणाः ॥ ११४ ॥
नक्षत्राणि मुहूर्ताश्च पक्षाहोरात्रसन्धयः ।*
सवत्सरा निमेषाश्च कलाः काष्ठाः क्षणा लवाः ॥ ११५ ॥
सर्वे त्वामभिषिञ्चन्तु कालस्यावयवस्तथा ।

---

१. नृप वस्त्रावगाहितं । २ सर्पिश्चूर्णैः ।
(क) आचम्य च ततोदेवान् गुरून् विप्राश्च पूजयेत् । "पाण्डुलिप्यामधिक. ।
(ख) वादित्रघोषैस्तुमुलैस्तथा तौर्यत्रिकै शुभै. ।
कृत्वाप आज्ञासस्पर्शात् प्रणाशमुपगच्छतु । " "
(ग) एवं कृत्वा नृप पश्चात् त्रिरात्र सयतो भवेत् । " "
* पाण्डुलिप्यामधिकः ।

वैमानिकाः सुरगणा मनवः सागरैः सह ॥ ११६ ॥
सरितश्च महानागा नागाः किंपुरुषास्तथा ।
वैखानसा महाभागा द्विजा वैहायसाश्च ये ॥ ११७ ॥
सप्तर्षय सदाराश्च ध्रुवस्थानानि यानि तु ।
मरीचिरत्रिः पुलहः पुलस्त्यः क्रतुरङ्गिराः ॥ ११८ ॥
भृगुः सनत्कुमारश्च सनकश्च सनन्दनः ।
सनातनश्च दक्षश्च जैगीषव्योऽभिनन्दनः ॥ ११९ ॥
एकतश्च द्वितश्चैव त्रितो जावालिकाश्यपौ ।
दुर्वासा दुर्विनीतश्च कण्वः कात्यायनस्तथा ॥ १२० ॥
मार्कण्डेयो दीर्घतमाः शुनःशेफो विदूरथः ।
और्वः संवर्तकश्चेव च्यवनोऽत्रिः पराशरः ॥ १२१ ॥
द्वैपायनो यवक्रीतो देवरातः सहात्मजः ।
एते चान्ये च बहवो वेदव्रतपरायणाः ॥ १२२ ॥
सशिष्यास्तेऽभिषिञ्चन्तु सदाराश्च तपोधनाः ।
पर्वतास्तरवो नद्यः पुण्यान्यायततनानि च ॥ १२३ ॥
प्रजापतिः क्षितिश्चैव गावो विश्वस्य मातरः ।
वाहनानि च दिव्यानि सर्वे लोकाश्चराचराः ॥ १२४ ॥
अग्नयः पितरस्तारा जीमूताः ख दिशो जलम् ।
एते चान्ये च बहवः पुण्यसकीर्तनाः शुभाः ॥ १२५ ॥
तोयैस्त्वामभिषिञ्चन्तु सर्वोत्पातनिबर्हणैः ।*
इत्येवं शुभदैरेतैर्दिव्यैर्मन्त्रैस्तथापरैः ॥ १२६ ॥
सोरैर्नारायणै रौद्रैर्ब्रह्मशक्रसमुद्भवैः ।
अपोहिष्ठा हिरण्येति सम्भवेति सुरेति च ॥ १२७ ॥
मानस्तोकेति मन्त्रेण गन्धद्वारेत्यनेन च ।
सर्वमगलमागल्ये श्रीश्च ते ग्रहयोगिभिः ॥ १२८ ॥
इत्येवं स्नानमासाद्य गात्रमावृत्य कम्बलैः ।
सर्वमंगलमन्त्रेण वस्त्र कार्पासकं ध्रियात् ॥ १२९ ॥
आचम्य च ततो देवान् गुरु विप्राश्च पूजयेत् ।
ध्वजच्छत्रं चामर च घण्टा चाश्वान् गजास्तथा ॥ १३० ॥
मन्त्र जप्त्वा धारयेत् तु ततो गच्छेद्द्धुताशनम् ।
तत्र गत्वा वह्निमध्ये वह्नेः श्रीर्वीक्ष्य पार्थिवः ॥ १३१ ॥

* पाण्डुलिप्यामधिकः ।

निमित्तान्यनिमित्तानि लक्षयेत् तत्र बिन्दुभिः ।
दैवज्ञकञ्चुक्यमात्यवन्दिपौरजनैर्वृतः ॥ १३२ ॥
वादित्रघोषैस्तुमलैस्तथा तौर्यत्रिकै शुभैः ।
कृत्वा शेषे पुनः शान्तिमाशीर्वाच्य च वै द्विजान् ॥ १३३ ॥
पूर्णा विधाय विधिवद् दक्षिणा कनकान्विताम् ।
धान्यानि चाथ वासासि दत्त्वा कुर्याद् विसर्जनम ॥ १३४ ॥
ततः शेषजलैः सर्वानमात्यादीन् पुरोहितः ।
सेचयेच्चतुरङ्ग च बल चापि सराष्ट्रकम् ॥ १३५ ॥
एव कृत्वा नृपः पश्चात् त्रिरात्र सयतो भवेत् ।
मासमैथुनहीनश्च कुर्यान्माङ्गल्यसेवनम् ॥ १३६ ॥
पुष्यनक्षत्रयुक्ता तु तृतीया यदि लभ्यते ।
तस्यां पूज्या सदा देवी चण्डिका शकरेण ह ॥ १३७ ॥
पाञ्चालिकाविहाराद्यैः शिशूना कौतुकैस्तथा ।*
वैवाहिकेन विधिना मोहयेच्चण्डिकां शिवाम ॥ १३८ ॥
चतुष्पथेषु सर्वेषु देवदेवीगृहेषु च ।
पताकाभिरलं कुर्यादेव कुर्वन्न सीदति ॥ १३९ ॥
एव कृत्वा शान्तियागं तथा पुष्याभिषेचनम् ।
चतुरङ्गैः समं राजा भार्याभिस्तु नरै सह ॥ १४० ॥
राज्यमण्डलसंयुक्तः परत्रेह न सीदति ।
नातः परतरो यज्ञो नातः परतरोत्सवः ॥ १४१ ॥
नातः परतरा शान्तिर्नातः परतरं शिवम् ।
अनेनैव विधानेन नृपतेरभिषेचनम् ॥ १४२ ॥
युवराज्याभिषेकं च कुर्याद्राजपुरोहितः ।
नृपाभिषेककरणमादौ यदि समाचरेत् ॥ १४३ ॥
अनेनैव विधानेन स्थिरः स्यान्नृपतिस्तदा ।
अयं यज्ञः समुद्दिष्टः शक्रार्थं ब्रह्मणा पुरा ।
एवं यज्ञ नृपः कृत्वा परत्रेह न सीदति ॥ १४४ ॥*

इति श्रीकालिकापुराणे षडशीतितमोऽध्याय ॥ ८६ ॥

---

* पाण्डुलिप्यामधिक ।

सप्ताशीतितमोऽध्यायः

मौर्व उवाच—

अथातः [१]शृणु राजेन्द्र शक्रोत्थान ध्वजोत्सवम् ।
यत् कृत्वा नृपतिर्याति न कदाचित् पराभवम् ॥ १ ॥
रवौ हरिस्थे द्वादश्या श्रवणेन विडौजसम् ।
आराधयेन्नृपः सम्यक् सर्वविघ्नोपशान्तये ॥ २ ॥
राजोपरिचरो नाम वसुनामापरस्तु यः ।
नृपस्तेनायमतुलो यज्ञः प्रावर्तितः पुरा ॥ ३ ॥
प्रावृट्काले च नभसि द्वादश्यामसितेतरे ।
पुरोहितो बहुविधैर्वाद्यैस्तूर्यैः समन्वितः ॥ ४ ॥*
प्रथम शक्रकेत्वर्थं वृक्षमामन्त्र्य वर्धयेत् ।
सवत्सरो वार्धकिश्च कृतमङ्गलकौतुकः ॥ ५ ॥
उद्याने देवतागारे श्मशाने मार्गमध्यत. ।
ये जातास्तरवस्तास्तु वर्जयेद् वासवध्वजे ॥ ६ ॥
बहुवल्लीयुतं शुष्क बहुकण्टकसंयुतम् ।
कुब्ज वृक्षादनीयुक्त लताच्छन्नतरु त्यजेत् ॥ ७ ॥
पक्षिवाससमाकीर्ण कोटरैर्बहुभिर्युतम् ।
पवनानलविध्वस्तं तरु यत्नेन वर्जयेत् ॥ ८ ॥
नारीसञ्ज्ञाश्च ये वृक्षा अतिह्रस्वा अतिकृशाः ।
तान् सदा वर्जयेद् धीरः सर्वदा शक्रपूजने ॥ ९ ॥
अर्जुनोऽप्यश्वकर्णश्च प्रियकोषक एव च ।
औदुम्बरश्च पचैते केत्वर्थे ह्युत्तमाः स्मृताः ॥ १० ॥
अन्ये च देवदार्वाद्याः शालाद्यास्तरवस्तथा ।
प्रशस्तास्तु परिग्राह्या नाप्रशस्ताः कदाचन ॥ ११ ॥
धृत्वा वृक्ष ततो रात्रौ स्पृष्ट्वा मन्त्रमिमं पठेत् ।
यानि वृक्षेषु भूतानि तेभ्यः स्वस्ति नमोऽस्तु वः ॥ १२ ॥
उपहारं गृहीत्वेम क्रियता वासवध्वजम् ।
पार्थिवस्त्वा वरयते स्वस्ति तेऽस्तु नगोत्तम ॥ १३ ॥

---

१. सप्रवक्ष्यामि । * मुद्रिते इत आरभ्य अधिक. ।

ध्वजार्थं देवराजस्य पूजेय प्रतिगृह्यताम् ।
ततोऽपरेऽह्नि त छित्त्वा मूलमष्टागुल पुनः ॥ १४ ॥
जले क्षिपेत् तथाग्रस्य च्छित्वैव चतुरङ्गुलम् ।
ततो नीत्वा पुरद्वार केतु निर्माय तत्र वै ॥ १५ ॥
शुक्लाष्टम्या भाद्रपदे केतु वेदी प्रवेशयेत् ।
द्वाविंशद्धस्तमानस्तु अधमः केतुरुच्यते ॥ १६ ॥
द्वात्रिंशत् तु ततो ज्यायान् द्वाचत्वारिंशदेव च ।
ततोऽधिकः समाख्यातो द्वापञ्चाशत् तथोत्तमः ॥ १७ ॥
कुमार्यः पञ्च कर्तव्याः शक्रस्य नृपसत्तम ।
शालमय्यस्तु ताः सर्वा अपराः शक्रमातृकाः ॥ १८ ॥
केतोः पादप्रमाणेन कार्याः शक्रकुमारिकाः ।
मातृकार्धप्रमाणां तु मन्त्रिहस्तद्वय तथा ॥ १९ ॥
एव कृत्वा कुमारीश्च मातृका केतुमेव च ।
एकादश्या सिते पक्षे यष्टि तामधिवासयेत् ॥ २० ॥
अधिवास्य ततो यष्टिं गन्धद्वारादिमन्त्रकैः ।
द्वादश्या मण्डलं कृत्वा वासव विस्तृतात्मकम् ॥ २१ ॥
अच्युत पूजयित्वा तु शक्र पश्चात् प्रपूजयेत् ।
शक्रस्य प्रतिमा कुर्यात् काञ्चनीं दारवीं च वा ॥ २२ ॥
अन्यतैजससम्भूता सर्वाभावे तु मृन्मयीम् ।
ता मण्डलस्य मध्ये तु पूजयित्वा विशेषतः ॥ २३ ॥
ततः शुभे मुहूर्ते तु केतुमुत्थापयेन्नृपः ।
वज्रहस्त सुरारिघ्न बहुनेत्र पुरन्दर ।
क्षेमार्थं सर्वलोकानां पूजेय प्रतिगृह्यताम् ॥ २४ ॥
एह्येहि सर्वामरसिद्धसङ्घैरभिष्टुतो वज्रधरामरेश ।
समुत्थितस्त्व श्रवणाद्यपादे गृहाण पूजां भगवन्नमस्ते ॥ २५ ॥
एवमुत्तरतन्त्रोक्तैर्दहनप्लवनादिभिः ।
इति मन्त्रेण तन्त्रेण नाना नैवेद्यवेदनै ॥ २६ ॥
अपूपैः पायसैः पानैर्गुडैर्धानाभिरेव च ।
भक्ष्यैर्भोज्यैश्च विविधैः पूजयेच्छ्रीविवृद्धये ॥ २७ ॥
घटे तु दशदिक्पालान् ग्रहांश्च परिपूजयेत् ।
साध्यादीन् सकलान् देवान् मातृः सर्वा अनुक्रमात् ॥ २८ ॥
ततः शुभे मुहूर्ते तु ज्ञानी वर्धकिसंयुतः ।

केतूत्थापनभूमिं तु यज्ञवेद्यास्तु पश्चिमे ॥ २९ ॥
विप्रैः पुरोहितैः सार्धं गच्छेद्राजा सुमंगलैः ।
रज्जुभिः पचभिर्बद्धं यन्त्रश्लिष्टं समातृकम् ॥ ३० ॥
कुमारीभिस्तु सयुक्तं दिक्पालाना च पट्टकैः ।
बृहद्भिरतिकान्तैश्च नानाद्रव्यैः सुपूरितैः ॥ ३१ ॥
यथावर्णैर्यथादेशे योजितैर्वस्त्रवेष्टितैः ।
युक्त तं किङ्किणीजालैर्बृहद्घण्टौघचामरैः ॥ ३२ ॥
भूषित मुकुरैरुच्चैर्माल्यैर्बहुविधैस्तथा ।
बहुपुष्पैः सुगन्धैश्च भूषित रत्नमालया ॥ ३३ ॥
चित्रमाल्याम्बरैश्चैव चतुर्भिरपि तोरणैः ।
उत्थापयेन्महाकेतु राजकीयैः शनैः शनैः ॥ ३४ ॥
तमुत्थाय महाकेतुं पूजित मण्डलान्तरे ।
प्रतिमा ता नयेन्मूल केतोः शक्र विचिन्तयन् ॥ ३५ ॥
यजेत् तं पूर्ववत् तत्र शची मातलिमेव च ।
जयन्त तनय तस्य वज्रमैरावत तथा ॥ ३६ ॥
ग्रहाश्चाप्यथ दिकपालान सर्वाश्च गणदेवताः ।
अपूपाद्यैः पूजयेत् तु वलिभि· पायसादिभिः ॥ ३७ ॥
पूजिताना च देवाना शश्वद्धोमं समाचरेत् ।
होमान्ते तु बलिं दद्याद् वासवाय महात्मने ॥ ३८ ॥
तिल घृत चाक्षत च पुष्प दूर्वा तथैव च ।
एतैस्तु जुहुयाद् देवान् स्वैः स्वैर्मन्त्रैर्नरोत्तम ॥ ३९ ॥
ततो होमावसाने तु भोजयेद् ब्राह्मणानपि ।
एव सम्पूजयेन्नित्य सप्तरात्रं दिने दिने ॥ ४० ॥
ब्राह्मणैः सहिता राजा वेदवेदागपारगैः ।
सर्वत्र शक्रपूजासु यज्ञेषु परिकीर्तितः ॥ ४१ ॥
त्रातारमिति मन्त्रोऽयं वासवस्य प्रियः परः ।
एव कृत्वा दिवाभागे शक्रोत्थापनमादितः ॥ ४२ ॥
श्रवणर्क्षयुतायां तु द्वादश्या पार्थिवः स्वयम् ।
अन्तपादे भरण्या तु निशि शक्र विसर्जयेत् ॥ ४३ ॥
सुप्तेषु सर्वलोकेषु यथा राजा न पश्यति ।
षण्मासान्मृत्युमाप्नोति राजा दृष्ट्वा विसर्जनम् ॥ ४४ ॥
शक्रस्य नृपशार्दूल तस्मान्नेक्षेत तन्नृपः ।
विसर्जनस्य मन्त्रोऽयं पुराविद्भिरुदीरितः ॥ ४५ ॥

साधं सुरासुरगणैः पुरन्दर' शतक्रतोः ।
उपहार गृहीत्वेम महेन्द्रध्वज गम्यताम् ॥ ४६ ॥
सूतके तु समुत्पन्ने वारे भौमस्य वा शनैः ।
भूमिकम्पादिकोत्पाते वासव न विसर्जयेत् ॥ ४७ ॥
उत्पाते सप्तरात्र तु तथोपप्लवदर्शने ।
व्यतीत्य शनिभौमौ च ह्यन्यर्क्षेऽपि विसर्जयेत् ॥ ४८ ॥
सूतके त्वथ सम्प्राप्ते व्यतीते सूतके पुनः ।
यस्मिन् तस्मिन् दिने चैव सूतकान्ते विसर्जयेत् ॥ ४९ ॥
तथा केतुं नृपो रक्षेत् पतन्ति शकुना यथा ।
न केतौ नृपशार्दूल यावन्नहि विसर्जनम् ॥ ५० ॥
शनै शनैः पातयेत् तु यथोत्थापनमादितः ।
कृतं तथा यथा भग्ने केतौ मृत्युमवाप्नुयात् ॥ ५१ ॥
विसृष्ट शक्रकेतुं तु सालङ्कार तथा निशि ।
क्षिपेदनेन मन्त्रेण त्वगाधे सलिले नृप ॥ ५२ ॥
तिष्ठ केतो महाभाग यावत् सवत्सर जले ।
भवाय सर्वलोकानामन्तराय विनाशक ॥ ५३ ॥
उत्थापयेत् तूर्यरवैः सर्वलोकस्य वै पुरः ।
रहो विसर्जयेत् केतु विशेषो यः प्रपूजने ॥ ५४ ॥
एव यः कुरुते पूजां वासवस्य महात्मनः ।
स चिर पृथिवीं भुक्त्वा वासवं लोकमाप्नुयात् ॥ ५५ ॥
न तस्य राज्ये दुर्भिक्ष नाधयो व्याधयः क्वचित् ।
स्थास्यन्ति मृत्युर्नाकाले जनानां तत्र जायते ॥ ५६ ॥
तत्तुल्यः कोऽपि नान्योऽस्ति प्रियः शक्रस्य पार्थिव ।
तस्य पूजा सर्वपूजा केशवाद्याश्च तत्रगाः ॥ ५७ ॥
सकलकलुषहारि व्याधिदुर्भिक्षनाशं
सकलभवनिवेशं सर्वसौभाग्यकारि ।
सुरपतिगृहगाभिर्वार्चन शक्रकेतोः
प्रतिशरदमनेकैः पूजयेच्छ्रीविवृद्ध्यै ॥ ५८ ॥

इति श्रीकालिकापुराणे सप्ताशीतितमोऽध्याय. ॥ ८७ ।

अष्टाशीतितमोऽध्यायः

और्व उवाच—

ज्येष्ठ दशहराया तु विष्णोरिष्टि नृप शृणु ।*
येन वा विधिना कुर्यादिष्टि विष्णोर्नृपः सदाः ॥ १ ॥
प्रत्यब्दं पार्थिवः कुर्यात् प्रतिमा काञ्चनीं हरेः ।
अन्यतेजीमयी वापि दारवी वा शिलामयीम् ॥ २ ॥
तां प्रतिष्ठाप्य विधिना मानोन्मानैस्तु शिल्पिभिः ।
प्रतिष्ठां विधिवत् तस्याः कुर्याद् विप्रै पुरोहितैः ॥ ३ ॥
ता सस्थाप्य सुरागारे स्वय वा यत्नतः कृते ।
वासुदेवस्य बीजेन पूर्वोक्तविधिना तथा ॥ ४ ॥
सर्वोपचारैर्भक्त्या तु वासुदेव प्रपूजयेत् ।
पूजान्ते सस्कृते वह्नौ कुण्डमध्ये स्थितो द्विजः ॥ ५ ॥
आज्यै. सहस्र जुहुयादाहुतीना हरेः प्रियम् ।*
सपूज्य वासुदेव तु होमं कृत्वा ततो द्विजः ॥ ६ ॥
नृपस्यानुमते ता तु प्रतिमा मण्डल नयेत् ।
प्रतिमायाः कपोलौ द्वौ स्पृष्ट्वा दक्षिणपाणिना ॥ ७ ॥
प्राणप्रतिष्ठा कुर्वीत तस्या देवस्य वै हरेः ।
कृताया तु प्रतिष्ठाया प्राणाना नृपसत्तम ॥ ८ ॥
विष्णुप्राणास्तां प्रतिमामायान्ति नियत स्वयम् ।
प्राणेष्वथागतेष्वस्यां देवत्व नियत भवेत् ॥ ९ ॥
अकृताया प्रतिष्ठायां प्राणानां प्रतिमासु च ।
यथापूर्वं तथाभावः स्वर्णादीना न विष्णुता ॥ १० ॥
अन्येषामपि देवाना प्रतिमास्वपि पार्थिव ।
प्राणप्रतिष्ठा कर्तव्या तस्या देवत्वसिद्धये ॥ ११ ॥
सुवर्णं तु सुवर्णं स्याच्छिला दारु तथा शिला ।
अन्यच्च स्वस्वरूपं स्यात् प्राणस्थानमृते सदा ॥ १२ ॥
वासुदेवस्य बीजेन तद् विष्णोरित्यनेन च ।
तथैवाङ्काङ्किमन्त्राभ्या प्रतिष्ठामाचरेद्धरेः ॥ १३ ॥

---

* मुद्रिते अधिक ।

तथैव हृदयेऽङ्गुष्ठं दत्त्वा शश्वच्च मन्त्रवित् ।
एभिर्मन्त्रैः प्रतिष्ठाप्य हृदयऽपि समाचरेत् ॥ १४ ॥
अस्यै प्राणा प्रतिष्ठन्तु अस्यै प्राणाः क्षरन्तु यत् ।
असौ देवत्वसख्यायै स्वाहेति यजुरुच्चरन् ॥ १५ ॥
अङ्गमन्त्रैरङ्गिमन्त्रैर्वैदिकैरित्यनेन च ।
प्राणप्रतिष्ठा सर्वत्र प्रतिमासु समाचरेत् ॥ १६ ॥
प्रतिमापूजने कुर्यादात्मन्यपि च मन्त्रवित् ।
प्राणप्रतिष्ठां प्रथम पूजाभागविशुद्धये ॥ १७ ॥*
अस्मिन् प्राणप्रतिष्ठा तु प्रतिमापूजनादृते ।
न कश्चित् तु बुधः कुर्यात् कृत्वा मृत्युमवाप्नुयात् ॥ १८ ॥
विष्णोरिष्टिमिमा कृत्वा दशम्या पार्थिवोत्तम ।
तस्यामेव तु पूर्णाया प्रतिमा स्थापयेत् ततः ॥ १९ ॥
एव दशहराया तु कृत्वेष्टिं पार्थिवो हरेः ।
सर्वान् कामानवाप्नोति निर्विघ्नोऽपि स जायते ॥ २० ॥
श्रीपचम्या श्रियं देवी कुन्दैः सपूजयेत्सदा ।
वासव गजराजस्थमुपहारैस्तथोत्तमैः ॥ २१ ॥
लक्ष्म्यास्तन्त्रं महामन्त्र वासवस्य पुरोदितम् ।
अत्रापि पूजने ग्राह्यं मण्डलादि यथाक्रमम् ॥ २२ ॥
एवं कृते पूजने तु श्रीपंचम्या विशेषतः ।
श्रीयुतो नृपतिर्भूयान्न श्रीहानिमवाप्नुयात् ॥ २३ ॥
सदाचारविशेषोऽय कथितस्तव पार्थिव ।
निषेधे तु विशेषाश्च शृणु येन श्रियेष्यते ॥ २४ ॥
असंपूज्य तथा विष्णुं शिवमग्नि पुरन्दरम् ।
अदत्त्वा च तथा दानं न भुञ्जीत नृपः क्वचित् ॥ २५ ॥
हावयेदग्निहोत्रं तु नित्यमेव पुरोहितैः ।
अकृत्वा चाग्निहोत्र तु भुञ्जन्नरकमाप्नुयात् ॥ २६ ॥
नारक्षिते गृहे राजा रत्नदीपविवर्जिते ।
स्वपेत् तथा स्त्रिया सार्धं न कदाचन सविशेत् ॥ २७ ॥
भुक्त्वान्न श्रीफलं नाद्यात् तथा धात्रीफलं नृपः ।
बुद्धिक्षयकरा ह्येता माष आसवमृत्तिकाः ॥ २८ ॥

---

* मुद्रिते अधिक ।

निम्बाटरूषच्युताश्च बुद्धिवृद्धिकरा मताः ।
वृद्धिक्षयकरा नित्य त्यजेद्राजा च भोजने ॥ २९ ॥
भक्षयेदन्वह बुद्धिवृद्धिहेतु नृपोत्तमः ।
न पर्यायविहीन तु प्रारोहेदासन नृपः ॥ ३० ॥
न यान न गज नाश्वमारोहेद्धीनमासनैः ।
नैकस्तु विचरेद्राजा कदाचिदपि निर्जने ॥ ३१ ॥
मदहेतुं न भुजीयात् कदाचिदपि भोजने ।
कदाचिन्नापि सेवेत ह्यष्टम्या मासमैथुने ॥ ३२ ॥
दर्शश्राद्ध गयाश्राद्धं तिलैस्तर्पणमेव च ।
न जीवत्पितृको भूप कुर्यात् कृत्वाघमाप्नुयात् ॥ ३३ ॥
न क्षेत्रजादींस्तनयान् राज्ये राजाभिषेचयेत् ।
पितृणा शुद्धये निल्यमौरसे तनये सति ॥ ३४ ॥
औरसः क्षेत्रजश्चैव दत्तः कृत्रिम एव च ।
गूढोत्पन्नोऽपविद्धश्च भागार्हास्तनया इमे ॥ ३५ ॥
कानीनश्च सहोढश्च क्रीत. पौनर्भवस्तथा ।
स्वयंदत्तश्च दासश्च षडते पुत्रपासुलाः ॥ ३६ ॥
अभावे पूर्वपूर्वेषा परान् समभिषेचयेत् ।
पौनर्भव स्वयदत्त दास राज्ये न योजयेत् ॥ ३७ ॥
दत्ताद्याश्चापि तनया निजगोत्रेण सस्कृताः ।
आयान्ति पुत्रता सम्यगन्यबीजसमुद्भवाः ॥ ३८ ॥
पितुर्गोत्रेण य. पुत्रः संस्कृतः पृथिवीपतेः ।
आचूडान्त न पुत्रः स पुत्रतां याति चान्यतः ॥ ३९ ॥
चूडान्ता यदि सस्कारा निजगोत्रेण सस्थिताः ।
दत्ताद्यास्तनयास्ते स्युरन्यथा दास उच्यते ॥ ४० ॥
ऊर्ध्वं तु पंचमाद् वर्षाद् दत्ताद्याश्च सुतान्नृप ।
गृहीत्वा पचवर्षीय पुत्रेष्टि प्रथम चरेत् ॥ ४१ ॥
पौनर्भव तु तनया जातमात्र समानयेत् ।
कृत्वा पौनर्भवष्टोम जातमात्रस्य तस्य वै ॥ ४२ ॥
सर्वास्तु कुर्यात् सस्कारान् जातकर्मादिकान्नरः ।
कृते पौनर्भवष्टोमे सुत पौनर्भवः स्मृतः ॥ ४३ ॥
एकोद्दिष्ट पितुः कुर्यान्न श्राद्ध पार्वणादिकम् ।
क्रीता या वनिता मूल्यैः सा दासीति निगद्यते ॥ ४४ ॥

तस्या यो जायते पुत्रो दासः पुत्रस्तु स स्मृतः ।
न राज्ञो राज्यभाक् स स्याद् विप्राणा नापि श्राद्धकृत् ॥ ४५ ॥
अधमः सर्वपुत्रेभ्यस्त तस्मात् परिवर्जयेत् ।
पुराण धर्मशास्त्राणि सहिताश्च मुनीरिताः ॥ ४६ ॥
नाध्यापयेन्नृपः शूद्रैर्विहितानि यदृच्छया ।
यस्य राज्ये सदा शूद्राः पुराण संहिता तथा ॥ ४७ ॥
पठन्ति स्यात् स हीनायुः राजा राष्ट्रेण सान्वयः ।
मोहाद् वा कामतः शूद्रः पुराण सहिता स्मृतिम् ॥ ४८ ॥
पठन्नरकमाप्नोति पितृभिः सह पापकृत् ।
शूद्रेभ्यो विहित यत् तु यश्च मन्त्र उदाहृतः ॥ ४९ ॥
तद् विप्रवचनाद् ग्राह्य द्वय शूद्रैः सदैव हि ।
न योजयेन्नृपः शूद्र व्यवहारस्य दर्शने ॥ ५० ॥
नियोज्य तत्र त भूपस्तामिस्र तेन पच्यते ।
हीनायुश्च भवेल्लोको राजा वापि सहायजः ॥ ५१ ॥
काण व्यङ्गमपुत्रं वा नाभिज्ञमजितेन्द्रियम् ।
न ह्रस्व व्याधित वापि नृप कुर्यात् पुरोहितम् ॥ ५२ ॥
कृपणस्य धनं राजा न गृह्णीयात् कदाचन ।
न द्विजाना तथा दद्याद् धनानि विपुलान्यपि ॥ ५३ ॥
नारोहेत् कामुकोन्मत्तगजं राजा कदाचन ।
आरुह्य कामुकस्त तु परत्रेह विषीदति ॥ ५४ ॥
अनायुष्यं न कुर्यात् तु कर्म भूपः कदाचन ।
सततं चायुषो वृद्ध्यै यतेत सकलैर्धनैः ॥ ५५ ॥
न क्रूरवारे नाष्टम्यां न षष्ठ्या च नृपोत्तमः ।
अञ्जनाभ्यञ्जने कुर्यात् ताम्बूलस्यापि भोजनम् ॥ ५६ ॥
अतिसूक्ष्मं तथा पूर्णं ग्रहणं चन्द्रसूर्ययोः ।
नालोकयेत् स्वय राजा रक्त सूर्यं तथैव च ॥ ५७ ॥
उत्पातं जायते यत्तु दिव्य भौमं च नाभसम् ।
नेक्षेत यत्नान्नृपतिर्दंष्ट्रा नाद्यात् त्र्यहं पुनः ॥ ५८ ॥
सर्वदा मङ्गल रत्नं धारयेत् सह दूर्वया ।
अवस्त्राच्छादित गात्र न विप्रेभ्यः प्रदर्शयेत् ॥ ५९ ॥
न तोयेषु मुखं पश्येन्नाद्यान्मांसानि पर्वसु ।
नारोहयेत् खरं चोष्ट्रं न वामीमपि गुर्विणीम् ॥ ६० ॥

एव नययुतो राजा चतुरङ्ग विवर्धयन् ।
आत्मान सतत रक्षन् सदा वीर्यं विवर्धयेत् ॥ ६१ ॥
वीजक्षयकरन्नित्य भक्ष्य भोज्य च पानकम् ।
वर्जयेत् क्षारशाकाद्यान् बह्वम्ल बहुतिक्तकम् ॥ ६२ ॥
कास्य-राजतपात्रस्थ तोयं नद्याश्च वर्धनम् ।
मूत्रवृद्धिकर वीर्यक्षयकारि विवर्जयेत् ॥ ६३ ॥
ताम्राय-स्वर्णशीसाना पात्रस्थ फलचर्मणो ।
शुक्रवृद्धिकर तोयं तदुपासीत यत्नतः ॥ ६४ ॥
सर्वमूलेषु कृत्येषु सदाचारेषु तिष्ठतः ।
भुक्त्वेह विविधान् भोगानैन्द्र स्थानं व्रजेत् परम् ॥ ६५ ॥

मार्कण्डेय उवाच—

एवमौर्वस्तु सगर शशास मुनिपुङ्गवः ।
शास्त्राणि चैव सर्वाणि सदाचाराश्च गृह्यकान् ॥ ६६ ॥
बहुशः कथयामास सगराय महात्मने ।
तन्नास्ति यत् पुरौर्वेण कथित सगराय न ॥ ६७ ॥
राजनीतिः सता नीतिर्यच्चान्यच्छास्त्रसम्भवम् ।
सहितासु पुराणेषु यच्चागमचये स्थितम् ॥ ६८ ॥
सर्वं शुश्राव सगरो मुखादौर्वस्य धीमतः ।
तेषा तु कथितं किंचिदुद्धृत्य द्विजसत्तमाः ॥ ६९ ॥
विष्णुधर्मोत्तरे पूर्वं मया रहसि भाषितम् ।
राजनीति सदाचार वेदवेदाङ्गसङ्गतम् ॥ ७० ॥
रहस्य सतत विष्णोर्वीक्षध्वं द्विजसत्तमाः ।
यच्चानुदितमन्यत्र गदितं वा ससंशयम् ॥ ७१ ॥
सशयच्छेदन तेषु युष्मभ्य कथित द्विजाः ।
अनुक्तसशयच्छेदि पुराण कालिकाह्वयम्
योऽभ्यसेत् सतत विप्रः स वेदाना फल लभेत् ॥ ७२ ॥

इति श्रीकालिकापुराणे अष्टाशीतितमोऽध्याय ॥ ८८ ॥

एकोननवतितमोऽध्यायः

ऋषय ऊचुः—

सङ्क्षेपतः सदाचारो विशेषो राजनीतिषु ।*
श्रुतस्त्वद्वचनादौर्वः सगराय यथोक्तवान् ॥ १ ॥
विष्णुधर्मोत्तरे तन्त्रे बाहुल्य सर्वतः पुनः ।
द्रष्टव्यस्तु सदाचारो द्रष्टव्यास्ते प्रसादतः ॥ २ ॥
भूयो नः सशयो योऽस्ति तदनुक्त त्वया पुरा ।
छिन्धि विप्रेन्द्र पृच्छामः पर कौतहलं हि नः ॥ ३ ॥
अपुत्रस्य गतिर्नास्ति श्रूयते वेदलोकयोः ।
वेतालभैरवौ यातौ पुरा वै तपसे गिरिम् ॥ ४ ॥
पूर्वस्त्वकृतदारौ तौ तयोः पुत्रा न च श्रुताः ।
न जाता अथवा जाता यदि नाना द्विजोत्तम ।
तेपा तु सम्यगिच्छामि श्रोतु स स्थानमुत्तमम ॥ ५ ॥

मार्कण्डेय उवाच—

अपुत्रस्य गतिर्नास्ति निश्चित चेति सत्तमाः ।
स्वपुत्रैर्भ्रातृपुत्रैर्वा पुत्रवन्तो हि स्वर्गताः ॥ ६ ॥
जातापत्यौ च तौ विप्रा धीरौ वेतालभैरवौ ।
तयोर्वंशान् प्रवक्ष्यामि शृण्वन्तु च महर्षयः ॥ ७ ॥
सम्यक् सिद्धिमवाप्यैव यदा वेतालभैरवौ ।
हरस्य मन्दिर प्राप्तौ कैलास प्रतिहर्षितौ ॥ ८ ॥
तदा हरस्य वजनान्नन्दी तौ रहसि द्विजाः ।
प्राहेदं वचन तथ्यं सान्त्वयन्निव बोधकृत् ॥ ९ ॥

नन्द्युवाच—

अपुत्रौ पुत्रजनने भवन्तौ शङ्करात्मजौ ।
यततां जातपुत्रस्य सर्वत्र सुलभा गतिः ॥ १० ॥*
पुन्नाम नरक पुत्रविहीनः परिपश्यति ।
न तपोभिर्न धर्मेण तन्मोचयितुमीश्वरः ॥ ११ ॥

---

* पाण्डुलिप्यामधिक. ।

केवलात् पुत्रजननात् तस्मान्मोक्षः प्रजायते।
तदुत्पादयता पुत्र भवन्तौ देवयोनिषु ॥ १२ ॥
अमर्त्यता तु युवयोः क्षीरपानादजायत।
कात्यायन्यास्ततः पुत्रानमर्त्याः स्वसमा यतः ॥ १३ ॥
तस्माद् यथा तथा पुत्रानुत्पाद्य सुरयोनिषु।
प्रियौ भवन्तौ शिवयोर्भवनं न चिरादिति ॥ १४ ॥

मार्कण्डेय उवाच—

तस्येति वचनं श्रुत्वा नन्दिनः प्रीतमानसौ।
एवमेव करिष्यावो नन्दिन चेत्यभाषताम् ॥ १५ ॥
ततस्तौ सततं कृत्वा नन्दिनौ वचन हृदि।
अचेष्टता स्वपुत्रार्थे व्रजन्तौ तावितस्ततः ॥ १६ ॥
अथैकदा भैरवोऽसौ उर्वशीमप्सरोवराम्।
हिमवत्-पर्वतप्रस्थे ददर्श सुमनोहराम् ॥ १७ ॥
अथ तां कामुको भूत्वा ययाचे सुरतोत्सवम्।
वेश्याभावाच्च सुप्रीता सा यथेच्छमुवाच तम् ॥ १८ ॥
ततस्तस्या भैरवस्तु चकार सुरतोत्सवम्।
प्रीतायामुर्वशीदेव्या सुप्रीतोऽभूच्च केलिभिः ॥ १९ ॥
सुप्रीतायामथोर्वश्या तेजोभिर्भैरवस्य तु।
सद्योजातोऽभवत् पुत्रो बालसूर्यसमप्रभः ॥ २० ॥
त तु पुत्र परित्यज्य ययौ स्वस्थानमुर्वशी।
आदाय तनयं पश्चाद् भैरवः स्वपद ययौ ॥ २१ ॥*
सस्कृत्य तनय त तु भैरवो मोदसयुतः।*
सुवेशमिति तन्नाम चकार सगणाधिपः ॥ २२ ॥
अथ तं जातवयस शक्रसूर्यसमप्रभम्।
विद्याधराधिपत्ये तु सुवेशमभ्यषेचयत् ॥ २३ ॥
स तु विद्याधराध्यक्षस्तनयामतिसुन्दरीम्।
येमे गन्धर्वराजस्य धृतराष्ट्राह्वयस्य च ॥ २४ ॥
तस्या तस्य सुतो जज्ञे रुरुर्नाम मनोहरः।
रुरोस्तु तनयो बाहुर्मैनाक्यामभ्यजायत ॥ २५ ॥
बाहोस्तु पुत्राश्चत्वारस्तपनोऽङ्गद ईश्वरः।
कुमुदोऽभूत् कनीयास्तु चार्वत्यां तु मनोहरः ॥ २६ ॥
कुमदस्य सुतो जज्ञे देवसेनो महाबलः।
स देवसेनः पृथिवीमवतीर्य मनोहरः ॥ २७ ॥

* पाण्डुलिप्यामधिक ।

मान्धातुर्यौवनाश्वस्य तनया केशिनी मुहुः ।
वरयामास भार्यार्थे मृद्वङ्गीमप्सरःसमाम् ॥ २८ ॥
यौवनाश्वोऽपि मान्धाता शक्रस्य वचनाद् ददौ ।
केशिनी तनया स्वीया देवसेनाय वाञ्छया ॥ २९ ॥
केशिनीमुपयम्याथ देवसेनस्तया वसन् ।
वाराणस्यां शम्भुपुर्यां हरमाराधयच्छिवम् ॥ ३० ॥
आराधितो हरः प्रीतस्तस्येष्टं प्रददौ वरम् ।
सोऽप्याददे हरात् तस्मादिष्टमेव वरत्रयम् ॥ ३१ ॥
यावच्च सूर्यो भविता तावत् स्थास्यति संततिः ।
अस्यामेव नगर्यां ये मद्वंशस्यापि राजता ॥ ३२ ॥
प्रसन्नो मम वशे त्वं नित्यमेव भविष्यसि ।*
इत्यादाय वरं सोऽपि देवसेनो महाकृती ॥ ३३ ॥
शङ्करस्य प्रसादेन चिरं तां बुभुजे पुरीम् ।
देवसेनोऽथ केशिन्यां जनयामास पुत्रकान् ॥ ३४ ॥
यूयं शृणुत सप्तैतान्नामतः कीर्तितास्तथा ।
सुमना वसुदानश्च ऋतुधृग् यवनः कृती ॥ ३५ ॥
नीलो विवेकी ह्येते वै सर्वशास्त्रविशारदाः ।
सर्वे वंशकराः पुत्रा देवसेनस्य सत्तमाः ॥ ३६ ॥
अथ काले तु संप्राप्ते देवसेनोऽपि भार्यया ।
पुत्रेषु राज्यं निःक्षिप्य यातो विद्याधरक्षयम् ॥ ३७ ॥
ततस्ते तस्य तनयाः कृत्वा सुमनसं नृपम् ।
वसुदानादयः सर्वे बुभुजुश्चोत्तमां श्रियम् ॥ ३८ ॥
जाताः सुमनसः पुत्रास्त्रयः शूरा महाबलाः ।
सुमतिश्च विरूपश्च सत्यः शास्त्रार्थपारगाः ॥ ३९ ॥
सुमतेरभवत् कन्या सुतः सत्यस्य डिण्डिमः ।
विरूपस्याभवद् गाधिर्गाधेर्मित्रोऽभवत् सुतः ॥ ४० ॥
तेषां कल्पोऽभवद्राजा कल्पात् तु विजयोऽभवत् ।
यो विजित्य क्षितिं सर्वां पार्थिवान् भूरितेजसः ॥ ४१ ॥
शक्रस्यानुमते चक्रे खाण्डवं शतयोजनम् ।
यत् सव्यसाची ह्यदहत् पाण्डुपुत्रः प्रतापवान् ।
आवहत् परमां प्रीतिं ज्वलनस्य महात्मनः ॥ ४२ ॥

---

* पाण्डुक्षिप्यामधिक ।

ऋषय उचुः—

कथं स खाण्डव चक्रे विजय. शतयोजनम् ।
तद् वयं श्रोतुमिच्छामः कथयस्व तपोधन ॥ ४३ ॥*

मार्कण्डेय उवाच—

सोमवंशेऽभवद्राजा महाबलपराक्रमः ।*
धीरः सुदर्शनो नाम चारुरूपः प्रतापवान् ॥ ४४ ॥
स वै हिमवतो नातिदूरे भङ्क्त्वा महावनम् ।
सिंहान् व्याघ्रान् समुत्सार्य क्वचिच्चापि तपोधनान् ॥ ४५ ॥
खाण्डवीं नाम नगरीमकरोत् तत्र शोभनाम् ।
त्रिंशद्योजनविस्तीर्णामायता शतयोजनाम् ॥ ४६ ॥
उच्चप्राकारसयुक्ता साट्टालाम्बुदतोरणाम् ।
निम्नाभिरतिदीर्घाभि. परिखाभि' समावृताम् ॥ ४७ ॥
अधृष्यामपरैर्वारैर्नानाजनसमावृताम् ।
दीर्घिकाभिश्चोपवनैर्बहुभिश्चाप्सरोगणैः ॥ ४८ ॥
आकीर्णा च तथारामैरुत्तमैरपि मानवैः ।
सोत्सवाः सततं यत्र जना देवान् दिवि स्थितान् ॥ ४९ ॥
स्पर्धन्ते स्म मुदा युक्ता आद्या-भोगसमन्विताः ।
स वै सुदर्शनो राजा खात्वा भूमि विदार्य च ॥ ५० ॥
गङ्गा कनखला देवी वाहयामास खाण्डवीम् ।
संप्लाव्याखाण्डवीमध्य तेन खातैश्च वर्त्मभिः ॥ ५१ ॥
वक्रानुवक्रगा भूत्वा याति सीतां नदी प्रति ।
स जित्वा सकलान् भूपान् वित्तानाहृत्य भूरिशः ॥ ५२ ॥
वशीचकार खाण्डव्या मध्ये रत्नैरनेकशः ।
अन्येषा नगरेभ्यस्तु जनानानीय भूपतिः ॥ ५३ ॥
खाण्डव्यां वासयामास हठादपि सुदर्शनः ।
देवदानवगन्धर्वान् जित्वा जित्वा युधा कृती ॥ ५४ ॥*
देववृक्ष देवरत्न देवी चापि तथौषधिम् ।*
खाण्डव्या रोपयामास स भूपालः सुदर्शनः ॥ ५५ ॥
विष्णुस्ततोऽपि वै जिष्णुर्नृपतिं त सुदर्शनम् ।
उपचारं च बहुधा देवानां च तथा नृणाम् ॥ ५६ ॥

---

* मुद्रिते अधिक ।

वाराणसीपति वीर विजय जयशालिनम् ।
युद्धाय कृतसाचिव्य तद्वैरे समयोजयत् ॥ ५७ ॥
विजयो विवर प्राप्य महाबलपराक्रमः ।
सुदर्शनस्य नृपतेरवस्कन्दमथाकरोत् ॥ ५८ ॥
असहत् स ह्यवस्कन्ध विजयस्य सुदर्शनः ।
चतुरङ्गबलेनाशु युद्धायाभिमुखोऽभवत् ॥ ५९ ॥
विजयो रथमारुह्य नियोज्य चतुरङ्गिणीम् ।
ततः सुदर्शन योद्धु सम्मुखोऽभवदञ्जसा ॥ ६० ॥
तदा महायुद्धमासीद्विजयेन महात्मना ।
सुदर्शनस्य नृपतेर्वृत्रवासवयोर्यथा ॥ ६१ ॥
सुदर्शनस्य सेनानी रुमण्वान्नाम वीर्यवान् ।
काचन रथमारुह्य विजय समुखोऽभ्ययात् ॥ ६२ ॥
अक्षौहिण्यस्तु सप्तास्य परिवार्य समन्ततः ।
व्यधमत्ता शत्रुसेना यावतीमुद्यतायुधः ॥ ६३ ॥
विजयस्य च सेनानीः सञ्जय. स रिपुञ्जय ।
नागानीकेन जग्राह रुमण्वन्त ससैनिकम् ॥ ६४ ॥
तयोर्महदभूद् युद्धं सेनान्योर्वीरयोमहत् ।
ववर्ष शरवर्षेण रुमण्वानथ सजयम् ॥ ६५ ॥
कुर्वंश्चापि महानाद गर्ज हृष्टैव केशरी ।
रुमण्वानथ विंशत्या बाणैर्विद्ध्वाथ सञ्जयम् ॥ ६६ ॥*
क्षुरप्रेण धनुस्तस्य चिच्छेद कृतहस्तवत् ।*
सोऽपि कार्मुकमादाय तदाऽन्यत् सजयस्त्रिभिः ॥ ६७ ॥
बाणैर्विव्याध भल्लेन धनुश्चिच्छेद तत्क्षणात् ।
शतान्यष्टौ च नागानां सहस्राणि च पचषट् ॥ ६८ ॥
पत्तीनां वाजिनां त्रीणि सहस्राणि समन्ततः ।
संजयो निर्जघानाशु बाणवर्षैः सुदारुणैः ॥ ६९ ॥
अथान्यद् धनुरादाय रुमण्वान् कुपितो भृशम् ।
भल्लेन सारथेरस्य शिरः कायादपाहरत् ॥ ७० ॥
हयांश्चास्य चतुर्भिस्तु बाणैर्निन्ये यमक्षयम् ।
चतुरः पंचभिर्बाणैरविध्यच्चापि सञ्जयम् ॥ ७१ ॥
संजयोऽप्यतिवेगेन गदामादाय तत् क्षणात् ।
अवतीर्य रथोपस्थाद्रुमण्वन्तमधावत ॥ ७२ ॥

* मुद्रिते अधिक. ।

स धावन्त सञ्जय तं रुमण्वान् द्रुतहस्तवत् ।
शरवर्षेण सञ्छाद्य वारयामास संजयम् ॥ ७३ ॥
गदाया भ्रामणेनासौ निवार्य शरवर्षणम् ।
आससाद रुमण्वन्त केसरीव महागजम् ॥ ७४ ॥
आसाद्य ता गदा गुर्वीमाविध्यातीव सञ्जयः ।
एकेनैव प्रहारेण सरथ त व्यपोथयत् ॥ ७५ ॥
स पपात महावीरः पृथिव्या गदया हतः ।
वज्रहतो यथा शालः प्रफुल्लो वनमध्यगः ॥ ७६ ॥
रुमण्वन्त निपतित दृष्ट्वा राजा सुदर्शन. ।
शोक-कोपसमाविष्टः सधूम इव पावकः ॥ ७७ ॥
जज्वालाकुलदेहोऽपि क्रोधेनातीव सयुतः ।
आरुह्य जवनैरश्वैर्युक्त वैयाघ्रकृत्तिना ॥ ७८ ॥*
रथ काचन-चित्राग सिहध्वज-विभूषितम् ।*
आमुक्तो धनुरादाय विस्फाय च पुन. पुनः ॥ ७९ ॥
ससैन्यः सञ्जय राजा समाद्रवत वेगवान् ।
अथास्य निशितै. शस्त्रैः सेनामग्रगता भृशम् ॥ ८० ॥
न्यहनत् सकला राजा मृगानिव मृगाधिपः ।
एकामक्षौहिणीमग्रगामिनी विपुलौजसाम् ॥ ८१ ॥
क्रोशद्वयेन न्यहनत् तमासीव दिवाकरः ।
हत्वा चाक्षौहिणीमेकामासाद्य सजय नृपः ॥ ८२ ॥
बाणैः षष्ट्या तु विव्याध ध्वजमेकेन चिच्छिदे ।
सजयोऽप्यथ विंशत्या हृदि विद्ध्वा सुदर्शनम् ॥ ८३ ॥
ललाटे त्वेकबाणेन प्राविध्यत् कृतहस्तवत् ।
क्षुरप्रेणास्य कोदण्ड छित्त्वा राज्ञः प्रतापवान् ॥ ८४ ॥
सारथि दशभिर्बाणैः पुनर्विव्याध सञ्जयः ।
कोदण्डमन्यमादाय तदा राजा सुदर्शनः ॥ ८५ ॥
शरवर्षेण तीव्रेण ववर्षातीव सञ्जयम् ।
तयोर्महदभूद् युद्धं मुनिविस्मयकारकम् ॥ ८६ ॥
शस्त्रैरस्त्रैर्भृशं तीक्ष्णैर्बलिवासवयोरिव ।
ततः सुदर्शनो राजा भल्लेनास्य दृढ धनुः ॥ ८७ ॥
चिच्छेद सारथिं चास्य जघान निशितै शरैः ।

---

* पाण्डुलिप्यामधिक ।

स्वयं संयम्य वाहान् स सञ्जयः परवीरहा ॥ ८८ ॥
धनुरन्यत् समादाय परिवार्य सुदर्शनम् ।
विव्याध दशभिर्बाणैर्धनुरप्यच्छिनद् दृढम् ॥ ८९ ॥
शरासनान्तर राजा समादाय सुदर्शनः ।
सञ्जयस्य चतुर्वाहाञ्छरैर्निन्ये यमक्षयम् ॥ ९० ॥*
मुष्टौ धनुश्च चिच्छेद त च विव्याध पचभि. ।*
विरथश्छिन्नवाहश्च सञ्जयः खड्गचर्मणी ॥ ९१ ॥
आदाय सम्मुख राज्ञोऽभ्यद्रवत् कुपितो भृशम् ।
तस्य चाप ततः खड्ग क्षुरप्रेण सुदर्शनः ॥ ९२ ॥
द्विधा चिच्छेद भल्लेन चर्म चाप्यच्छिनत्तदा ।
अथ द्रुत तदोपेत्य सञ्जय स्यन्दनोत्तमम् ॥ ९३ ॥
सुदर्शनस्य सूत तु कराभ्या पातयत् क्षितौ ।
रथाभ्याशे गतस्यास्य सञ्जयस्य सुदर्शनः ॥ ९४ ॥
शिरश्चिच्छेद खड्गेन ततोऽसौ न्यपतद् भुवि ।
स पपात तदा तस्य रथाभ्याशे महाबल. ॥ ९५ ॥
कृत्तः परशुनाऽरण्ये पुष्पितः शालवृक्षवत् ।
सञ्जय पतित दृष्ट्वा विजयः क्रोधमूर्च्छितः ॥ ९६ ॥
महता शङ्खनादेन नादयस्तु नभःस्थलम् ।
रथेन स्वर्णचित्रेण व्याघ्रचर्मविराजिना ॥ ९७ ॥
केतुना वृषभेणाथ योजनार्धोच्छ्रितेन च ।
नादयन् ककुभः सर्वा रथौघपरिवेष्टितः ॥ ९८ ॥
विमुञ्चञ्छरवर्षाणि ससाद च सुदर्शनम् ।
आसाद्य तं नृपं भूपो विजयः परवीरहा ॥ ९९ ॥
हृदि विद्ध्वा त्रिभिर्बाणैस्तिष्ठतिष्ठेति चाब्रवीत् ।
सुदर्शनोऽपि विजयं नदन्त कुंजरोपमम् ॥ १०० ॥
दशभिर्निशितैर्बाणैर्विद्ध्वा चिच्छेद तद्-धनुः ।
अथैन छिन्नधन्वान जत्रुदेशे त्रिभिः शरैः ॥ १०१ ॥
निर्भिद्याथ महानादं ननाद स सुदर्शनः ।
सोऽन्यद्धनुः समादाय कङ्कपत्रैस्त्रिभिः शरैः ॥ १०२ ॥*
विव्याध हृदये वीरो विजयोऽपि सुदर्शनम् ।*
ततस्तन्नृपमुद्दिश्य महाशक्तिं सुदीपिताम् ॥ १०३ ॥

---

* पाण्डुलिप्यामधिक ।

नागकन्यां कोपयुक्तां लेलिहानामिवातुलाम् ।
स्वर्णदण्डा सुतीक्ष्णाग्रा तैलधौता सुनिर्मलाम् ॥ १०४ ॥
समुद्यम्याथाचिक्षेप विजयः शात्रव प्रति ।
सुदर्शनस्य हृदयं सा शक्तिः प्रविवेश ह ॥ १०५ ॥
स विह्वलो रथोपस्थे ह्यधोवक्त्र उपाविशत् ।
तस्मिन् मोह-समापन्ने नृपतौ च सुदर्शने ॥ १०६ ॥
तस्याग्रतस्तथा पार्श्वे ये स्थितास्तत्र सैनिकाः ।
तान् सर्वानहनद्राजा क्षणमात्राद् द्विजोत्तमाः ॥ १०७ ॥
रथान् दशसहस्राणि तावन्त्येव च दन्तिनाम् ।
पंचविंशसहस्राणि वाजिनां च तरस्विनाम् ॥ १०८ ॥
लक्षद्वयं तु पत्तीना क्षणमात्रादपोथयत् ।
स तु लब्ध्वा ततः सञ्ज्ञा धनुरादाय वै दृढम् ॥ १०९ ॥
शरवर्षण विजयं ववर्ष स सुदर्शनः ।
निवार्य शरवर्षेण विजय तु सुदर्शनः ॥ ११० ॥
भल्लेन कार्मुकं सज्य तस्य चिच्छेद तत्क्षणात् ।
सारथेस्तु शिरः कायाद् भल्लेनापाहरत् ततः ॥ १११ ॥
हयांश्च चतुरश्चास्य प्रेषयामास मृत्यवे ।
अथैवं विरथ भूप दशभि कङ्कपत्रिभिः ॥ ११२ ॥
विव्याध हृदये भूयो ननाद च सुदर्शनः ।
स च्छिन्नधन्वा विरथो गदामादाय वेगवान् ॥ ११३ ॥
विजयो विजयाकाङ्क्षी सुदर्शनमधावत ।
आपतन्तं महावीरं बाणवर्षैः सुदर्शनः ॥ ११४ ॥*
ववर्ष वर्षासु यथा वारिदः पृथिवीधरम् ।*
विजयः शरवृष्टिं ता प्राच्छाद्य स्वशरेण वै ॥ ११५ ॥
गदया तं रथारूढमाससाद तु तत्क्षणात् ।
आसाद्य तं महावीर्यं विजयोऽथ सुदर्शनम् ॥ ११६ ॥
शीर्षे प्रहृत्य गदया पातयामास भूतले ।
गिरेः शृङ्गं यथा तुङ्ग वज्राशनिविदारितम् ॥ ११७ ॥
तथा सुदर्शनो राजा दारितो गदयाऽपतत् ।
तस्मिन्निपतिते वीरे सेनाभिस्तस्य सैनिकाः ॥ ११८ ॥
भयात् संप्राद्रवंस्तस्माद् दिशश्च प्रदिशस्तथा ।

---

* पाण्डुलिप्यामधिक ।

नष्टेषु तस्य सैन्येषु विजयः खाण्डवी पुरीम् ॥ ११९ ॥
प्रविश्य ददृशे तत्र राशीभूतान् गिरीनिव ।
सुवर्णानां च रत्नाना सचयान् बहुशः पुनः ॥ १२० ॥
दृष्ट्वा सरांसि तत्रैष प्रफुल्लकमलानि च ।
हसकारण्डवानादैर्नादितानि समन्ततः ॥ १२१ ॥
राशीन् सुवर्णरत्नानां पर्वतानिव विस्तृतान् ।
पुष्पितान् देववृक्षाश्च भ्रमद्भ्रमरभूषितान् ॥ १२२ ॥
प्रासादान् विपुलाञ्छुभ्रान् कैलाससदृशान् गजान् ।
प्रस्फुटांश्च सुगन्धाढ्यान् प्रतिगेहे व्यवस्थितान् ॥ १२३ ॥
उत्फुल्लनयनो राजा विजयः परवीरहा ।
मेनेऽमरावती तां तु पुरीम् क्षितिगतामिव ॥ १२४ ॥
त वीक्षन्त नरपति नगरीं तां सुरेश्वरः ।
समेत्य विजय प्राह सान्त्वयन् श्लक्ष्णया गिरा ॥ १२५ ॥

इन्द्र उवाच—

राजन् महावनमिदमासीद् देवगणावृतम् ।
न च गन्धर्वयक्षाणां मुनीनां च मनोहरम् ॥ १२६ ॥*
सर्वानुत्सार्य देवादीन् मम चाप्यप्रिये रतः ।*
भङ्क्त्वा वनमिदं गुह्यमुत्साद्य च तपोधनम् ॥ १२७ ॥
खाण्डवीं नगरीं चक्रे हठाद्राजा सुदर्शनः ।
तदिद पुनरेव त्व वनं कुरु नरोत्तम ॥ १२८ ॥
तत्राहं विहरिष्यामि तक्षकेण सम रहः ।
मुनीनां च तप स्थानमतुल ते प्रसादतः ।
भविष्यति च यक्षाणां किन्नराणां च पार्थिव ॥ १२९ ॥

मार्कण्डेय उवाच—

एतच्छ्रुत्वा वचस्तस्य शक्रस्य विजयस्तदा ।
वनमेवाकरोत् तान्त खाण्डवीं शक्रगौरवात् ॥ १३० ॥
गच्छन्तु भो यथास्थानं प्रजाः सर्वा यथेच्छया ।
येषां वाञ्छास्ति लोकानां मद्राज्यगमने पुनः ॥ १३१ ॥
वाराणसीं ते गच्छन्तु मयैव प्रतिपालिताम् ।
ततस्तस्य वचः श्रुत्वा जनाः केचिन्निजास्पदम् ॥ १३२ ॥

---

* पाण्डुलिप्यामधिक. ।

जग्मुर्वाराणसी केचिद् विजयेनाभिपालिताम्।
ततो धनानां तान् राशीन् रत्नानां च पृथक् पृथक्। १३३॥
मणीनां कनकाना च कुप्याना विजयस्तथा।
विविधैर्वारयामास पुरी वाराणसी प्रति॥ १३४॥
गन्धर्वाणां च देवाना यदानीत हठात् पुरा।
रत्नदार्वादिक यत् तु विजय तत् प्रसाद्य च॥ १३५॥
तैस्तैर्नीत च खाण्डव्याः स्वस्थान प्रतिहर्षितैः।
त्रिशद्योजनविस्तीर्णां शतयोजनमायताम्॥ १३६॥
ता पुरीं विजयश्चक्रे नचिरादेव वै वनम्।
तस्मिञ्छक्रस्य सम्मत्या तक्षक. सहितो गणैः॥ १३७॥
उवास सुचिर तत्र ततोऽभून्निर्जन वनम्।
तत्र देवाः सगन्धर्वाः क्रीडन्तेऽप्सरसा गणाः॥ १३८॥*
आशासन्तश्च विजय रणेषु विजयावहम्।
प्राप्तेऽष्टाविंशतितमे युगे द्वापरशेषतः॥ १३९॥
वह्निर्ब्राह्मणरूपेण भिक्षा जिष्णुमयाचत।
दातुमङ्गीकृते भिक्षा तदा पाण्डुसुतेन वै॥ १४०॥
वह्निः स्वरूपमास्थाय जिष्णुं वचनमब्रवीत्।
अहमग्नि पाण्डुपुत्र यज्ञभागाभिभोजनात्॥ १४१॥
व्याधितोऽहं ततो व्याधि मम त्व नाशयाधुना।
खाण्डव नाम विपिन सपत्रिमृगराक्षसम्॥ १४२॥
यदि त्वं मा भोजयितुं शक्नोषि श्वेतवाहन।
तदा मम ह्यसौ व्याधिरपयास्यति नो चिरात्॥ १४३॥
पुरा तु विजयो राजा खाण्डवीं नाम ता पुराम्।
भङ्क्त्वा वन यतश्चक्रे तेन तत् खाण्डव वनम्॥ १४४॥
मदर्थं देवविहित वन तु श्वेतवाहन।
विरोधात् तत् तु शक्रस्य न स्वय भोक्तुमुत्सहे॥ १४५॥
तस्मात् त्राहि महाभाग वने तस्मिन्नियोजय।
यथाह सकलं भोक्तुं शक्नोमि तत्प्रसादतः॥ १४६॥
तस्य तद्वचनं श्रुत्वा सव्यसाची महाबलः।
दाहयामास विपिन तत्सर्वं प्राणिसयुतम्॥ १४७॥
देवकीतनयेनासौ वासुदेवेन पालितः।

---

* पाण्डुलिप्यामधिक.।

खाण्डवं दाहयामास ज्वलनस्य हिते रतः ॥ १४८ ॥
सुप्रीतः प्रददौ तस्मादर्जुनाय महात्मने ।
वह्निर्धनुश्च गाण्डीव वारुण देवनिर्मितम् ॥ १४९ ॥
अक्षय्ये चेषुधी दिव्ये रूपाढ्याश्चतुरो हयान् ।
हनूमताधिष्ठित तु महान्तं वानरध्वजम् ॥ १५० ॥*
खड्ग च त्रिशिख तीक्ष्ण दहनः सव्यसाचिने ।*
नीरोगश्चाभवद् वह्निस्तथा जिष्णुप्रसादतः ॥ १५१ ॥
तैर्बाणैस्तेन धनुषा तेन खड्गेन केतुना ।
तदश्वस्यन्दनेनापि विजिग्ये फाल्गुनो रिपून् ॥ १५२ ॥
एवं भैरववशेषु सञ्जातो विजयो नृपः ।
खाण्डव नाम विपिन चकार सुमहाकृती ॥ १५३ ॥
विजयस्य सुता जातास्त्रयोदश महाबलाः ।
द्युतिमान् सौम्यदर्शी च भूरिः प्रद्युम्न एव च ॥ १५४ ॥
क्रतुस्तुण्डो विरूपाक्षो विक्रान्तोऽथ धनजयः ।
प्रहर्षः प्रबलः केतुस्तथोपरिचरोऽपरः ॥ १५५ ॥
एषा राजाऽभवद् वीरः शेषोपरिचरस्तु यः ।
वाराणस्यां नगर्या यो यज्ञलक्ष पुराऽकरोत् ॥ १५६ ॥
लक्षयज्ञकरः कोऽपि नासीन्नापि भविष्यति ।
राजा क्षितौ महाभागो यथोपरिचरस्तथा ॥ १५७ ॥
एषां सूतिप्रसूतैश्च व्याप्तं सर्वमिदं जगत् ।
चिरेण तान् कः संख्यातु शक्नोति भुवि मानुषः ॥ १५८ ॥
क्रमाद् भैरववंशेन व्याप्तं लोकत्रय त्विदम् ।
एतद् वः कथित विप्राः सन्तानं भैरवस्य तु ॥ १५९ ॥
येषा श्रुत्वा कथामात्रं नापुत्रो जायते नरः ।
इद यः कीर्तयेत् पुण्यं चरित विजयस्य तु ॥ १६० ॥
सतत विजयस्तस्य जायते न पराभवः ।
एकाग्रमनसा यस्तु शृणुयादिदमुत्तमम् ।
तस्य वंशस्य विच्छेदो न कदाचिद् भविष्यति ॥ १६१ ॥*

इति श्रीकालिकापुराणे एकोननवतितमोऽध्याय. ॥ ८९ ॥

---

* पाण्डुलिप्यामधिकः ।

नवतितमोऽध्यायः

मार्कण्डेय उवाच—

वेतालस्य च सन्तान शृण्वन्तु मुनिसत्तमाः ।*
यच्छ्रुत्वा सर्वपापेभ्यस्तत्क्षणादेव हीयते ॥ १ ॥

दक्षस्य तनया चाभूत् सुरभिर्नाम नामतः ।
गवा माता महाभागा सर्वलोकोपकारिणी ॥ २ ॥

तस्यां तु तनया जज्ञे कश्यपात् तु प्रजापतेः ।
नाम्ना सा रोहिणी शुभ्रा सर्वकामदुघा नृणाम् ॥ ३ ॥

तस्यां जज्ञे शुनःशेफान्मुनेरतितपोधनात् ।
कामधेनुरिति ख्याता सर्वलक्षणसयुता ॥ ४ ॥

सा सिताभ्रप्रतीकाशा चतुर्वेदचतुष्पदा ।
स्तनैश्चतुर्भिर्धर्मार्थकामप्रसवकारिणी ॥ ५ ॥

सा सुवर्णशरीरा तु कालेन महता सती ।
निर्मलं यौवनं प्राप कामधेनुर्मनोहरम् ॥ ६ ॥*

ता चरन्तीं मेरुपृष्ठे चारुरूपा सुलक्षणाम् ।†
ददर्श स तु वेतालः कामुकश्चाभ्यपद्यत ॥ ७ ॥

तं कामुकं च वेताल विदित्वा कामधेनुका ।
पशुधर्मात् स्वय भेजे त पुत्र शशभृद्भृतः ॥ ८ ॥

सोऽवाप तस्या परममामोद शङ्करात्मजः ।
सा चापि परमा तस्मिन् मुदमापातिहर्षिता ॥ ९ ॥

तयोः प्रवृत्ते सुरते तस्या गर्भोऽभवत् तदा ।
काले प्राप्ते तु सुषुवे कामधेनुर्महावृषम् ॥ १० ॥

सोऽचिरेणैव कालेन सुमहान् वृषभोऽभवत् ।
महाककुदसयुक्तश्चारुशृङ्गसमन्वितः ॥ ११ ॥

उत्क्षिप्य विचलत्-कर्णयुगलो दीर्घबालधिः ।
ककुदेन च शृङ्गाभ्या कर्णाभ्या ससिताभ्रवत् ॥ १२ ॥

---

* पाण्डुलिप्यामधिक । † पाण्डुलिप्या दृश्यते ।

विचलन् ददृशे देवैः शृङ्गैरिव सिताचलः।
वेतालस्त्वकरोत् तस्य नाम शृङ्ग इति द्विजाः॥ १३॥
स तु शृङ्गो ज्ञानशाली समाराधयदीश्वरम्।
सोऽपि तुष्टो वरं तस्मै ददाविष्टं हरः[४] प्रभुः॥ १४॥
तमेव वाहनं चक्रे कृत्वा दैवतनुं वृषम्।*
सुचिरायुश्च बलवान् पृथिवीधारणे क्षमः॥ १५॥
शृङ्गो नाम महातेजाः केतुः सोऽप्यभवत् प्रभोः।
शृङ्गो भूत्वा मतो यस्माच्छङ्करस्य महात्मनः॥ १६॥
अतः शृङ्ग इति ख्यातिमथ प्राह महेश्वरः।*
स तु शृङ्गो महादेवे ध्यानासक्ते क्वचिन् क्वचित्॥ १७॥
वरुणस्य गृहं गत्वा सुरभेस्तनयास्तु याः।
रूपयौवनसम्पन्ना भेजेऽल सुरतेन ताः॥ १८॥
वरुणस्य गृहे गावः सर्वलक्षणसंयुताः।
तिष्ठन्ति सततं विप्रास्तासु तासु सुताः पुनः॥ १९॥
बह्वयस्तु च समुत्पन्नास्तेषां सूतिप्रसूतिभिः।
सर्वं जगदिदं व्याप्तं तेभ्यो यज्ञः प्रवर्तते॥ २०॥
आज्येन देवास्तुष्यन्ति यज्ञा आज्ये प्रतिष्ठिताः।
यज्ञाधानमिदं सर्वं जगत् स्थावरजङ्गमम्॥ २१॥
तदाज्यं तु गवाधीनं ततः सर्वं गवि स्थितम्।
तदिदं सकलं विश्वं गवाधीनं द्विजोत्तमाः॥ २२॥
वेतालस्य च ता गावो वंश्याः सर्वप्रियाः सदा।
य इदं शृणुयान्नित्यं वेतालस्य महात्मनः॥ २३॥
वंशानां जन्म विप्रेन्द्राः स सुखी बलवान् भवेत्।
न गावो नापि विभवास्तस्य नश्यन्ति वै क्वचित्॥ २४॥
न च भूतपिशाचाद्यास्तं पश्यन्ति कदाचन।
वेतालः सततं तस्य रक्षामाचरति स्वयम्॥ २५॥
इति वः कथितं विप्रा यथा वेतालभैरवौ।
जनयामासतुः पुत्रान् विच्छिन्नाः संशयाश्च वः॥ २६॥
यथा च कालिका देवी मोहयामास शंकरम्।
यथोत्पन्ना शरीरार्धं कृतं शम्भोर्यथा तथा॥ २७॥

४ महेश्वर। * मुद्रिते अधिक।

काळिकायै नमस्तुभ्यमिति यो भाषते स्वयम् ।
तस्य हस्ते स्थिता मुक्तिस्त्रिवर्गस्तु वशानुगः ।। २८ ।।

इति वः कथितं पुण्य पुराण कालिकाह्वयम् ।
मन्त्रयन्त्रमय[5] शुद्ध ज्ञानद कामद परम् ।। २९ ।।
[illegible] गुह्यतमं लोके वेदेषु च तथा द्विजाः ।
दे[illegible]न्धर्वसिद्धाद्यैः स्पृहणीयमिद सदा ।। ३० ।।

अधी[illegible] श्रुत मत्तो वसिष्ठेन महात्मना ।
इदं [illegible]णममृत कालिकाह्वयमुत्तमम् ।। ३१ ।।
तेन गु[illegible] सर्वं कामरूपे सुरालये ।
तमिदानीं [illegible]यात व्यक्तीकृत्य महर्षयः ।। ३२ ।।
युष्माभिरपि [illegible]ं गोप्य लोकेषु सर्वदा ।
शठाय चलचि[illegible] नास्तिकायाजितात्मने ।। ३३ ।।
भक्तिश्रद्धाविहीनाय [illegible]तव्य कदाचन ।
इद सकृत् पठेद् यस्तु [illegible] कालिकाह्वयम् ।। ३४ ।।
स कामानखिलान् प्राप्य [illegible]समवाप्नुयात् ।
मन्दिरे लिखित यस्य पुर[illegible]दमुत्तमम् ।। ३५ ।।
सदा तिष्ठति नो तस्य विघ्नः सजाय[illegible] द्विजाः ।
योऽधीतेऽहन्यहन्येतद् गुह्य तन्त्रमिद प[illegible] ।। ३६ ।।
अधीताः सकला वेदास्तेनेह द्विजसत्तमाः ।
तस्मान्नैवाधिकोऽन्योऽस्ति कृतकृत्यो विचक्षणः ।। ३७ ।।
स सुखी बल्लवाँल्लोके दीर्घायुरपि जायते ।। ३८ ।।

[6]यो लोकमीश सतत बिभर्ति
यः पालयत्यन्तकरस्तथान्ते ।
इदं समस्त भ्रममभ्रम वा
मदीयरूपं च नमोऽस्तु तस्मै ।। ३९ ।।

प्रधानपुरुषो यस्य प्रपञ्चो योगिनां हृदि ।
यः पुराणाधिपो विष्णुः प्रसीदतु स वः शिवः[7] ।। ४० ।।

---

५. एतद् वेदमय ।

६. यो लोक ईश सतत बिभर्ति । यः पा[redacted] ।।

७. स्थित ।

योे हेतुरुग्रः पुरुषः पुराणः
सनातनः शाश्वत ईश्वरः परः ।
पुराणकृद् वेदपुराणवेद्यः
प्रस्तौमि तन्नौमि पुराणशेषे ॥ ४१ ॥

इति सकलजगद् बिभर्ति यासा
मधुरिपुमोहकरी 'रमास्वरूपा ।
रमयति च हर शिवास्वरूपा
वितरतु वो विभवं शुभानि माया ॥ ४२ ॥

इति श्रीकालिकापुराणे नवतितमोऽध्याय ॥ ९० ॥

इति श्रीकालिकापुराण समाप्तम् ।